कृष्णदास संस्कृत सीरीज
१५७

महाकविकालिदासप्रणीतं

कुमारसम्भवं महाकाव्यम्

(सम्पूर्णम्)

आदितोऽष्टमसर्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतया 'सञ्जीविनी' व्याख्यया, अष्टमसर्गादारभ्य सप्तदशसर्गपर्यन्तं सीतारामकविकृतया व्याख्यया, 'सरला' हिन्दीव्याख्यया च विभूषितम्

सम्पादकः व्याख्याकारश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम० ए०, पीएच० डी०, साहित्याचार्यः
संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी - १
१९९७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०५४

पो० बा० नं० ११९८
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बाक्स १००८, वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : आफिस : ३३३४५८
आवास : ३३४०३२, ३३५०२०

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
157

KUMĀRASAṀBHAVAM MAHĀKĀVYAM

OF

MAHĀKAVI KĀLIDĀSA

I-VIII Cantos with **'Sañjīvinī'** Commentary of **Mallināth** and VIII-XVII Cantos with Commentary of **Sītārāma Kavi**

With **'Saralā'** Hindi Commentary

Edited & Translated by
DR. SUDHĀKAR MĀLAVĪYA
M.A., Ph. D., Sāhityācārya
Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University
Varanasi – 5



KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI – 221001
1997

Oriental Publishers and Distributors
Post Box No. 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Varanasi-221001 (INDIA)
Phone : 335020

First Edition
1997

Also can be had from :
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : Office : 333458
Res. : 334032, 335020

भूमिका

महाकवि कालिदास संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि व नाटककार तथा भारतीय साहित्य और प्राचीन भारतीय अन्तरात्मा के प्रतिनिधि कवि हैं । भारतीय सौन्दर्य-दर्शन की सभी विभूतियाँ इनके साहित्य में समाहित हो गई हैं । एसे सुप्रसिद्ध कवि का जीवनचरित्र अद्यापि अनुमान का विषय बना हुआ है ।

महाकवि ने अपने ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे उनकी प्रकृति का पता चलता है । अपने "**रघुवंश**" महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने अपनी विनम्र प्रकृति का परिचय दिया है । अपनी प्रतिभा को हीन बताते हुए महाकवि, रघु जैसे तेजस्वी कुल के वर्णन में स्वयं को असमर्थ पाते हैं और छोटी नाव द्वारा सागर को पार करने की तरह अपनी धृष्टता प्रदर्शित करते हैं (१/२-४) । **अभिज्ञानशाकुन्तल** में महाकवि, विद्वानों की महत्ता स्वीकार करते हुए, उनकी स्वीकृति पर ही अपनी रचना को सफल मानते हैं (शाकुन्तल १/२) । कवि होने पर भी उनमें आलोचक की प्रतिभा विद्यमान है । मालविकाग्निमित्र में वे प्रत्येक प्राचीन वस्तु को इसलिये स्तुत्य नहीं मानते कि वह पुरानी है और न नये पदार्थों को केवल नवीनता के कारण बुरा मानते हैं (मालविकाग्निमित्र १/२) ।

अनेक व्यक्तियों ने कालिदास की प्रशस्तियाँ की हैं, तथा अनेक ग्रन्थों में उनकी प्रशंसा के पद्य प्राप्त होते हैं । उदाहरणतः – राजशेखर, दण्डी, बाण (हर्षचरित १/१६), तिलकमञ्जरी (२५), आर्यासप्तशती (३५), सोड्ढल, कृष्णभट्ट, सोमेश्वर, श्रीकृष्ण कवि, भोज व सुभाषितरत्नभाण्डागार (२/१६, २/२१)। इनके सुप्रसिद्ध काव्य "**मेघदूत**" के तिब्बती तथा सिंहली भाषा में प्राचीन काल में ही अनुवाद हो चुके हैं । कालिदास उपमा–सम्राट् माने जाते हैं – (उपमा कालिदासस्य") और प्रचीन कवियों द्वारा कविकुलगुरु तथा कविताकामिनी के विलास जैसे दुर्लभ उपाधियों से ये विभूषित किये गये हैं ।

कालिदास का काल और जीवनवृत्त

कालिदास के जीवन एवं जन्म-तिथि के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है, जिसके कई कारण बताये गए हैं । स्वयं कवि का अपने विषय में कुछ भी न लिखना,

इनके नाम पर कई प्रकार की किंवदन्तियों का प्रचलित होना तथा कृत्रिम नामों का जुड़ जाना और कालान्तर में संस्कृत-साहित्य में "कालिदास" नाम की उपाधि हो जाना। किंवदन्तियों के अनुसार ये अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में वज्रमूर्ख थे, तथा आगे चलकर देवी काली की कृपा से ये महान् पण्डित बने । किंवदन्तियाँ इन्हें विक्रम की सभा का रत्न व भोज की राजसभा का कवि भी बतलाती हैं ।

इनके बारे में लंका में भी एक जनश्रुति प्रचलित है । तदनुसार लंका के राजा कुमारदास की कृति "जानकीहरण" की प्रशंसा करने पर ये राजा द्वारा लंका बुलाए गए थे । इसी प्रकार इन्हें "सेतुबन्ध" महाकाव्य के प्रणेता प्रवरसेन का मित्र कहा जाता है एवं मातृचेट् से वे अभिन्न माने जाते हैं ।

इनके **जन्म–स्थान** के बारे में भी यही बात है । कोई इन्हें बंगीय, कोई काश्मीरी, कोई मालव निवासी, कोई मैथिल एवं कोई बक्सर के पास का रहने वाला बतलाता है । कालिदास की कृतियों में उज्जैन के प्रति अधिक आत्मीयता प्रदर्शित की गई है । अतः अधिकांश विद्वान् इन्हें मालव–निवासी मानने के पक्ष में है । इधर विद्वानों का झुकाव इस तथ्य की ओर अधिक है कि इनकी जन्मभूमि काश्मीर व कर्मभूमी मालवा थी । पद्मभूषण म. म. डॉ, **वासुदेव मिराशी** विदर्भ प्रदेश से भी इनका संबन्ध जोड़ते हैं ।

कालिदास के स्थिति-काल को लेकर भारतीय व पाश्चात्य पण्डितों में अत्यधिक वाद–विवाद हुआ है । इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ई० छठी शताब्दी तक माना जाता रहा है । परम्परागत अनुश्रुति के अनुसार महाकवि कालिदास, सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे । इनके ग्रन्थों में भी विक्रम के साथ रहने की बात सूचित होती है । कहा जाता है कि कालिदास के "शान्कुतल" का अभिनय विक्रम की "**अभिरूप-भूयिष्ठा**" परिषद में ही हुआ था । "विक्रमोर्वशीय" नाटक में भी "विक्रम" का नाम उल्लिखित है । "**अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः**" इस वाक्य से भी ज्ञात होता है कि कालिदास का, विक्रम से संबन्ध रहा होगा । अभिनन्दकृत "रामचरित-महाकाव्य" के "**ख्यातिकामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना**" इस कथन से भी विक्रम के साथ महाकवि के संबन्ध की पुष्टि होती है । इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास शकाराति अर्थात् शक आक्रान्ताओं को परास्त करने वाले विक्रम की सभा में रहे होंगे ।

कालिदास के समय निरूपण के बारे में तीन मत प्रधान हैं –

(क) कालिदास का आर्विर्भाव षष्ठ शतक में हुआ था,

(ख) इनकी स्थिति गुप्तकाल में थी और

(ग) विक्रम संवत् के आरम्भ में ये विद्यमान थे ।

प्रथम मत के पोषक **फर्ग्युसन** प्रभृति विद्वान् हैं । इनके मतानुसार मालवराज यशोधर्मा के समय में कालिदास विद्यमान थे । इन्होंने छठी शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त कर, उनकी स्मृति में ६०० वर्ष पूर्व की तिथि देकर मालव-संवत् चलाया था । यही संवत् आगे चलकर विक्रम–संवत् के नाम से प्रचलित हुआ । इन विद्वानों ने "रघुवंश" में वर्णित हूणों की विजय के आधार पर कालिदास का समय छठी शताब्दी माना है –

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ।। (४/६६)

परन्तु यह मत अमान्य हो गया है क्योंकि कुमारगुप्त की प्रशस्ति के रचियता वत्सभट्टि (४७३ ई०) की रचना में कालिदासकृत "ऋतुसंहार" के कई पद्यों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है ।

द्वितीय मत के अनुसार कालिदास गुप्त–काल में हुए थे । इसमें भी दो मत हैं – एक के अनुसार वे कुमारगुप्त के राजकवि थे, और द्वितीय मतानुसार इन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना जाता है । प्रो० के० बी० पाठक ने इन्हें स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन कवि माना है । इनके अनुसार वल्लभेदवकृत निम्न श्लोक ही इस मत का आधार है –

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ।।

पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें शकों को पराजित कर भारत से बाहर खदेड़ने वाले चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि माना है । "रघुवंश" के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु–विजय, समुद्रगुप्त की दिग्विजय से साम्य रखती है तथा इन्दुमती के स्वयंवर में प्रयुक्त उपमा के वर्णन में चन्द्रगुप्त के नाम की ध्वनि निकलती है । परन्तु यह मत भी टिक नहीं पाया, क्योंकि द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रथम विक्रमादित्य नहीं थे और इनसे भी पहले प्राचीन मालवा में राज्य करने वाले एक विक्रम का पता लग चुका है । अतः कालिदास की स्थिति गुप्तकाल में नहीं मानी जा सकती ।

तृतीय मत के अनुसार कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शती के माने जाते हैं । वे विक्रमादित्य के नवरत्नों में प्रमुख माने गए हैं । **महाकवि हाल** की "गाथासप्तशती" में विक्रम नामक दानशील राजा का उल्लेख प्राप्त होता है (५/६४) । **स्मिथ** के अनुसार इसका रचना-काल ७० ई० के आसपास है । विद्वानों ने विक्रम का समय ईसा से एक सौ वर्ष पूर्व माना है । इन्हीं विक्रमादित्य को "शकारि" की उपाधि प्राप्त हुई थी । ईसा के १५० वर्ष पूर्व, शकों के भारत पर आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है । अतः इससे "शकारि" उपाधि की संगति में भी कोई बाधा नहीं पड़ती । भारतीय

विद्वानों ने इस विक्रम को ऐतिहासिक व्यक्ति मान कर उनकी राजसभा में कालिदास की उपस्थिति स्वीकार की है । **अभिनन्द** ने अपने "रामचरित" में इस बात का उल्लेख भी किया है कि कालिदास की कृतियों को शकारि द्वारा ख्याति प्राप्त हुई थी ।

कालिदास के आश्रयदाता विक्रम का नाम महेन्द्रादित्य था । कवि ने अपने नाटक "विक्रमोर्वशीय" में अपने आश्रयदाता के इस नाम का संकेत किया है । बौद्धकवि **अश्वघोष ने,** जिनका समय विक्रम का प्रथम शतक है, कालिदास के अनेक पद्यों का अनुकरण किया है । इससे **कालिदास का समय, विक्रम संवत् का प्रथम शतक सिद्ध होता है** । कालिदास को उत्तरकालीन मानने वाले विद्वान्, कालिदास द्वारा अश्वघोष का अनुकरण मानते हैं ।

कालिदास की कृतियाँ

कालिदास की सात कृतियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें ४ काव्य तथा ३ नाटक हैं । १. ऋतुसंहार, २. कुमारसंभव, ३. मेघदूत, ४. रघुवंश, ५. मालविकाग्निमित्र, ६. विक्रमोर्वशीय एवं ७. अभिज्ञानशाकुन्तल ।

कालिदास का काव्य सौन्दर्य

अपनी तीन कृतियों द्वारा कालिदास भारतीय संस्कृति के रसात्मक व्याख्याता सिद्ध होते हैं । भारतीय संस्कृति के महान् विषयों – १. तप, २. तपोवन एवं ३. तपस्या, का इन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । शाकुन्तल, रघुवंश एवं कुमारसंभव में इन तीनों का उदात्त रूप अंकित है । कालिदास के काव्य में भारतीय सौन्दर्य–तत्त्व का उत्कृष्ट रूप चित्रण हुआ है । मनुष्य एवं प्रकृति दोनों का मधुर संपर्क व अद्‌भुत एकरसता दिखा कर कवि ने प्रकृति के भीतर स्फुरित होने वाली हृदय संवेदना को पहचाना है । इनके अधिकांश प्रकृति–वर्णन, स्वाभाविकता से पूर्ण व रसमय हैं । कवि ने प्रकृति को भावों का आलम्बन बना कर उसके द्वारा रसानुभूति कराई है । कुमारसंभव व शाकुन्तल में पशुओं पर प्रकृति के मादक एवं करुण प्रभाव का निदर्शन हुआ है । कुमारसंभव तो मानों कवि की सौंदर्य–चेतना की रमणीय रंगशाला ही है । इसमें कवि ने हिमालय को जड सृष्टि का रूप न देकर, "देवतात्मा" कहा है जहाँ पर सभी देवता आकर निवास करते हैं ।

कालिदास भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण के कवि हैं । इनकी कलात्मक कविता में प्रेम, सौन्दर्य व मानवता को उन्नत करने वाले भावों की अभिव्यक्ति हुई है । रघुवंश के द्वितीय सर्ग में सुदक्षिणा व दिलीप के उदात्त स्वरूप के चित्रण में मानवचरित्र के अन्तःसौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है । रघुवंश के इन्दुमती–स्वयंवर में

दीप–शिखा की अपूर्व उपमा के कारण कवि, "**दीपशिखा-कालिदास**" के नाम से विख्यात हो गये हैं ।

कालिदास ने जहाँ नागरिक जीवन की समृद्धि व विलासिता का चित्रण किया है वहीं तपोनिष्ठ साधकों के पवित्र वास-स्थानों का भी स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है । कवि का मन जितना उज्जयिनी, अलका व अयोध्या के वर्णन में रमा है, उससे कम आसक्ति पार्वती की तपःनिष्ठा एवं कण्व ऋषि के आश्रम वर्णन में नहीं दिखाई पड़ती ।

कालिदास रसनिष्ठ कलाकार हैं । वे प्रधानतः शृङ्गार रस की ओर आकर्षित हैं । किन्तु अज-विलाप, रति-विलाप व यक्ष के अश्रु-सिक्त संदेश-कथन में करुणा का श्रोत उमड़ पड़ता है । अज-विलाप एवं रति-विलाप में अतीत की प्रणयक्रीडा की मधुर स्मृति के चित्र रह-रह कर पाठकों के हृदय के तारों को झंकृत कर देते हैं ।

एक सफल नाटककार होने के कारण कालिदास ने अपने दोनों प्रबन्ध-काव्यों में नाटकीय संवादों का अत्यन्त कुशलता के साथ नियोजन किया है । दिलीप-सिंह-संवाद, रघु-इन्द्र-संवाद, एवं पार्वती-ब्रह्मचारी-संवाद, उत्कृष्ट संवाद-कला का निदर्शन करते हैं ।

इस प्रकार कालिदास ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर समस्त भारतीय विद्या के प्रौढ़ अनुशीलन का परिचय दिया है । इनकी राजनैतिक व दार्शनिक एवं सामाजिक मान्यताएं ठोस आधार पर अधिष्ठित हैं । इन्होंने जीवन के शाश्वत एवं सार्वभौमिक तत्त्वों का रसात्मक चित्र प्रस्तुत कर वास्तविक अर्थ में "विश्वकवि" की उपाधि प्राप्त की है ।

कुमारसंभव और उसका परिमाण

कुमारसम्भवम् महाकवि कालिदास कृत प्रख्यात महाकाव्य है । इसके कुल १७ सर्गों में से प्रथम ८ सर्ग ही कालिदास ने स्वयं रचे हैं । शेष किसी अन्य कवि के हैं ।

आठवें सर्ग के बाद कालिदास ने यह महाकाव्य अधूरा ही क्यों छोड़ दिया ? इस विषय में एक दन्तकथा बतायी जाती है कि आठवें सर्ग में कालिदास ने शिव–पार्वती के संभोग का उत्तान वर्णन किया, जिससे उन्हें कुष्ठ रोग हो गया, और वे इस महाकाव्य को पूरा नहीं कर सके । संभव है कि तत्कालीन पाठकों एवं टीकाकारों ने देवताओं के संभोग-वर्णन के प्रति अपना तीव्र रोष व्यक्त किया हो, जिसके कारण कालिदास को वह अधूरा छोड़ना पड़ा ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार कुमारसंभव में कालिदास ने कुमार कार्तिकेय के जन्म वर्णन का संकल्प किया था और आठवें सर्ग में शिव-पार्वती के एकान्त समागम

से वे यही सूचित भी करना चाहते हैं । इस दृष्टि से उन्होंने आठवें सर्ग में ही अपनी संकल्पपूर्ति पर महाकाव्य समाप्त किया । अलङ्कारशास्त्र के ग्रन्थो में आठवें सर्ग तक के ही उदाहरण भी मिलते हैं ।

इस महाकाव्य में अनेक रमणीय एवं सौन्दर्यस्थलों के अतिरिक्त हिमालय, पार्वती की तपस्या, वसन्तागमन, शिव-पार्वती-विवाह, रति-क्रीडा आदि के विवरण हैं ।

कुमारसम्भव के प्रमुख टीकाकार

१. मल्लिनाथ । २. कृष्णपति शर्मा । ३. कृष्णमित्राचार्य । ४. गोपालनन्द । ५. गोविन्दराम । ६. चरित्रवर्धन । ७. जिनभद्रसूरि । ८. नरहरि । ६. प्रभाकर । १०. बृहस्पति ११. भरतसेन । १२. भीष्ममिश्र १३. मुनि मतिरत्न । १४. रघुपति । १५. वत्स (या व्यासवत्स) १६. आनन्ददेव । १७. वल्लभदेव । १८. विन्ध्येश्वरी प्रसाद १६. हरिचरणदास २०. नवनीतराम मिश्र । २१. भरत मल्लिक २२. जयसिंह २३. लक्ष्मीवल्लभ । २४. दक्षिणावर्तनाथ । २५. विद्यामाधव २६. नन्दगोपाल । २७. सीताराम । २८. नारायण । २६. हरिदास । ३०. अरुणगिरिनाथ । ३१. गोपालदास । ३२. तर्कवाचस्पति । ३३. सरस्वतीतीर्थ । ३४. रामपारस । ३५. जीवानन्द विद्यासागर और ३६. कुमारसेन ।

कुमारसम्भव की कथा

प्रस्तुत महाकाव्य के **प्रथम सर्ग** में शिव के निवासस्थान हिमालय का मनोरम वर्णन है । हिमालय का मेना से विवाह एवं पार्वती का जन्म, पार्वती का रूप-चित्रण, नारद द्वारा शिव-पार्वती के विवाह की चर्चा तथा पार्वती द्वारा शिव की आराधना आदि घटनाएँ वर्णित हैं ।

दूसरे सर्ग में तारकासुर से पीडित देवगण ब्रह्मा के पास जाते हैं कि शिव के वीर्य से सेनानी का जन्म हो, तो वे तारकासुर का वध कर देवताओं के उत्पीड़न का अन्त कर सकते हैं ।

तृतीय सर्ग में इन्द्र के आदेश से कामदेव शिव के आश्रम में जाते हैं और वे चारों ओर वसन्त ऋतु का प्रभाव फैलाते हैं । उमा सखियों के साथ जाती हैं और उसी समय कामदेव अपना बाण शिव पर छोड़ते हैं । शिव की समाधि भंग होती है और उनके मन में चञ्चल विकार दृष्टिगोचर होने से क्रोध उत्पन्न होता है । वे कामदेव को अपनी ओर बाण छोड़ने के लिये उद्यत देखते हैं और तृतीय नेत्र खोल कर उन्हें भस्मसात् कर देते हैं ।

चतुर्थ सर्ग में कामदेव की पत्नी रति करुण विलाप करती है । वसन्त उसे सान्त्वना देता है किन्तु वह संतुष्ट नहीं होती । वह वसन्त से चिता सजाने को कह

कर अपने पति का अनुसरण करना ही चाहती है कि उसी समय आकाशवाणी उसे वैसा करने से रोकती है । उसे अदृश्य शक्ति के द्वारा यह वरदान प्राप्त होता है कि पति के साथ उसका पुनर्मिलन होगा ।

पञ्चम सर्ग में उमा, शिव की प्राप्ति के लिये तपस्या निमित्त अपनी माता से आज्ञा प्राप्त करती हैं । वह फलोदय पर्यन्त साधना में निरत होना चाहती हैं । माता-पिता के मना करने पर भी स्थिर निश्चय वाली उमा अन्त तक अपने हठ पर अटल रहती हैं और घोर तपस्या में लीन होकर, नाना प्रकार के कष्टों को सहन करती हैं । उनकी साधना पर मुग्ध होकर बटुरूपधारी शिव का आगमन होता है । वे बटु शिव के अवगुणों का वर्णन कर उमा का मन उनकी ओर से हटाने का प्रयास करते हैं । परन्तु उमा अपने अभीष्ट देव की उद्वेगजनक निन्दा सुनकर भी अपने पथ पर अडिग रहती हैं और उग्रता एवं तीक्ष्णता से बटुक के आरोपों का प्रत्युत्तर देती हैं । पश्चात् प्रसन्न होकर साक्षात् शिव प्रकट होते हैं और उमा को आशीर्वाद देते हैं ।

छठे सर्ग में शिव का संदेश लेकर सप्तर्षिगण हिमवान् के पास जाते हैं ।

सप्तम सर्ग में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है । शिव और उनकी बारात को देखने के लिए उत्सुक नारियों की चेष्टाओं का मनोरम वर्णन किया गया है ।

आठवें सर्ग में शिव-पार्वती का कामशास्त्रानुसार रतिविलास तथा आमोद-प्रमोद का वर्णन है ।

कुमारसम्भव का काव्य सौष्ठव

कुमारसम्भव में पार्वती की तपस्या और उसके फलस्वरूप मृत्यु को जीतने वाले पति की प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार है –

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ।। ५. २ पृ० ११७

कालिदास ने **'तथाविधं'** शब्द के भीतर गम्भीर अर्थ की अभिव्यञ्जना की है । शङ्कर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दिया । अपना अर्धनारीश्वर रूप देकर पत्नी को इतना उच्चस्थान प्रदान करना सत्कार का महान् उत्कर्ष तथा आदर की पराकाष्ठा है । क्योंकि पार्वती की तपस्या का फल था **'तथाविधं प्रेम'** (अलौकिक कोटि का प्रेम) और **'तादृशः पतिः'** (उस प्रकार के मृत्यु को भी जीतने वाले महादेव रूप पति) । भारतीय समाज में **'गौरी पूजा'** का रहस्य इसी महान् स्वार्थ त्याग के भीतर छिपा हुआ है । तपस्या ने ही गौरी को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया ।

इस प्रकार पञ्चम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त एवं हृदयावर्जक है उतना ही तृतीय सर्ग में भगवान् शङ्कर की समाधि का वर्णन भी है । कालिदास की कविता में शब्दों का चयन अत्यन्त उत्कृष्ट

है – **प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता**, (५. १); **विभावरी यद्यरुणाय कल्पते**, (५. ४४) आदि में चारुता और विभावरी शब्द का अन्य पर्याय यहाँ भाव की वह गहराई नहीं प्रदान कर सकते हैं । **एवंवादिनि देवर्षौ** (६. ८४, पृ० १६१) आदि पद्य में कुमारी कन्या की स्वाभाविक लज्जायुक्त प्रवृत्ति का दिग्दर्शन है। **क्रोधं प्रभो संहर संहरेति** (३. ७२, पृ० ६३) आदि पद्य में संहर शब्द आदेश नहीं किन्तु अनुनय का सूचक है ।

कालिदास के शृङ्गार वर्णन में संयोग एवं विप्रलम्भ का भावपक्ष कुमारसम्भव के इस श्लोक से स्पष्ट है–

हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयमास विलोचनानि ।। ३. ६७ पृ० ६१

कामदेव के बाण से विद्ध होने पर शिव जी के हृदय का धैर्य कुछ कुछ उसी तरह विचलित हो गया जैसे चन्द्रोदय के समय समुद्र का अन्तःस्तल ईषत्तरल हो उठता है । भगवान् शङ्कर ने हृदय में इस तरह की चञ्चलता को लेकर अपने तीनों नेत्रों से बिम्ब के फल के समान ओष्ठों वाले पार्वती के मुख की ओर देखा ।

इस पद्य में कवि ने व्यञ्जनावृत्ति द्वारा शिव के पूर्वानुराग की स्थिति का अत्यन्त सरस वर्णन किया है । श्लोक में 'तु' का प्रयोग 'शिव की तो यह दशा थी' इस भाव की व्यञ्जना कराता है । शिव जी के धैर्य लोप के साथ 'किञ्चित्' शब्द का प्रयोग उनकी जितेन्द्रियता का भी संकेत करता है । यहाँ पर आलङ्कारिकों ने पार्वती के अधर की ओर नेत्र व्यापार के द्वारा 'चुम्बनेच्छा' की व्यञ्जना भी मानी है । समुद्र से उपमा देकर कवि ने शिव जी के ईषद्धैर्यच्युति के भाव की पुष्टि की है ।

कालिदास के प्रकृति वर्णन की कला इस श्लोक के चित्रण से साक्षात् परिलक्षित है । यहाँ वसन्त के आविर्भाव पर प्रकृति में भी शृङ्गार का आविर्भाव हो जाता है –

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ।। ३. ३६ पृ० ७८

प्रिय सूर्य को विदेश जाते देखकर दक्षिण दिशा निःश्वास छोड़ने लगती है; तो मदमस्त वनस्थलियाँ अपने प्रिय वसन्त से रतिक्रीडा कर अर्धचन्द्राकार पलाश पुष्पों के नखक्षतों को प्रकाशित करती सुशोभित होती है । हस्तिनी सूड़ में कमलपराग से सुगन्धित जल भरकर अपने प्रिय गज को पिलाने लगती है और चक्रवाक आधे खाए बिसतन्तु को अपनी प्रिया को खिलाने लगता है । भौंरा अपनी प्रिया के पीछे पीछे घूमता हुआ एक ही फूल के कटोरे से मधु पान करता है और काला हिरन स्पर्श से आनन्दित बन्द आँखों वाली हिरनी को अपने सींग से खुजलाने लगता है ।

काम के बिना रति जीवित रह ही कैसे सकती है ? स्त्रियाँ तो पति के मार्ग का ही अनुसरण करती हैं । अचेतन पदार्थ भी अपनी क्रिया से इस बात की पुष्टि करते हैं –

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।। ४. ३३ पृ० ११०

चन्द्रमा की प्रिया ज्योत्स्ना उसके अस्त होते ही आकाश से ओझल हो जाती है । मेघ के नभोमण्डल से विलीन होने के साथ ही साथ उसकी सहगामिनी बिजली भी अन्तर्हित हो जाती है तो फिर चेतनासम्पन्न रति भला अपने प्रिय का साथ कैसे छोड़ सकती है ?

पञ्चम सर्ग में भगवान् शङ्कर के एकाएक प्रगट हो जाने पर क्रोधित पार्वती की दशा का वर्णन कालिदास ने अपनी उपमा द्वारा इस प्रकार किया हैं –

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि–
र्निक्षेपणाय पदपुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मर्गाचलव्यतीकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।। ५. ८५ पृ० १५८

भगवान् शङ्कर को एकाएक देशकर कम्पन एवं स्वेद से युक्त अंगयष्टि वाली तथा जाने के लिए आगे पैर उठा कर उद्यत् पार्वती मार्ग में पड़े हुए पर्वत के द्वारा गति रोक लिए जाने के कारण व्याकुल नदी के समान न आगे बढ़ सकीं और न तो ठहर ही सकीं ।

इस ग्रन्थ को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने का श्रेय **चौखम्बा संस्कृत सीरीज** एवं इससे सम्बद्ध संस्था **कृष्णदास अकादमी** के संचालकों को है, जो संस्कृत साहित्य की सेवा में सौ से भी अधिक वर्षों से संलग्न हैं । मैं उनका हृदय से आभारी हूँ । मैं अपने पूज्य गुरुवर्य पं० श्रीरतिनाथ झा के आशीर्वाद की नित्य कामना करता हूँ जिन्होंने मुझे इस ग्रन्थ को १६५४ ई० में अत्यन्त स्नेह से पढ़ाया था । अन्त में भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना है कि वे सभी का कल्याण करें ।

विक्रमसम्वत् २०५४
दीपावली, ३०. १०. १६६७

विद्वद्वशंवदः
डॉ० सुधाकर मालवीयः
बी ३१/२१ ए, लंका, वाराणसी
(संस्कृत विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

*

कुमारसम्भव की सूक्तियाँ

(१) एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः । १ . ३

(२) क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव । १ . १२

(३) अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे । १ . ५२

(४) विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।। १ . ५६

(५) शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः । २ . ४०

(६) विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ।। २ . ५५

(७) प्रयोजनाऽपेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु । ३ . १

(८) प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ।। ३ . २८

(६) आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति । ३ . ४०

(१०) न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्
पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् । ३ . ६३

(११) स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।। ४ . २६

(१२) शशिना सह याति कौमुदी,
सह मेघेन तडित्प्रलीयते । ४. ३३

(१३) प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।। ४ . ३३

(१४) रविपीतजला तपात्यये पुनरोधेन हि युज्यते नदी । ४ . ४४

(१५) प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता। ५ . १

(१६) क ईप्सिताऽर्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् । ५ . ५

(१७) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते । ५ . १६

(१८) शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् । ५ . ३३

(१६) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् । ५ . ४५

(२०) मनोरथानामगतिर्न विद्यते । ५ . ६४

(२१) अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् । ५ . ७५

(२२)	न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।	५ . ८२
(२३)	न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।	५ . ८३
(२४)	क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।	५ . ८६
(२५)	स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा, वृत्तं हि महितं सताम् ।	६ . १२
(२६)	क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ।	६ . १३
(२७)	प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ।	६ . २०
(२८)	विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः ।	६ . २६
(२९)	यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ।	६ . ५६
(३०)	विनियोगप्रसादा हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु ।	६ . ६२
(३१)	अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ।	६ . ७६
(३२)	प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ।	६ . ८५
(३३)	भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः ।	६ . ८६
(३४)	स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः।	७ . २२
(३५)	कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भि– र्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ।	७ . ९३
(३६)	धिङ् महत्त्वमसतां हृताऽन्तरम् ।	८ . ५७
(३७)	विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ।	८ . ६५
(३८)	स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ?	१० . ६
(३९)	कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारिता ।	१० . २५
(४०)	विपदा परिभूताः किं व्यवस्यन्ति विलम्बितुम् ?	१० . ३५
(४१)	कं नाऽभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी ?	१० . ४८
(४२)	रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ।	११ . ११
(४३)	पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षात् ?	११ . १७
(४४)	प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य ?	१२ . ३२
(४५)	भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुवं फलाविष्टमहोदयाय ।	१२ . ४३
(४६)	ध्रुवमभिमते पूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति ?	१२ . ३०
(४७)	युयुत्सुभिः किं समरे विलम्ब्यते ?	१५ . ४७
(४८)	न कस्य वीर्याय वरस्य सङ्गतिः ?	१५ . ५१

*

विषयानुक्रमणिका

*

कुमारसम्भवं महाकाव्यम्

॥ श्रीः ॥

कुमारसम्भवम्

सान्वयाऽनुवादसञ्जीविन्याख्यव्याख्यासमेतम्

प्रथमः सर्गः

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ १ ॥

❀ सञ्जीवनी ❀

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये ।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये ॥

अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तन्नरं वपुषि, कुञ्जरं मुखे, मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥
शरणं करवाणि शर्मदं ते चरणं वाणि ! चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब ! कृतार्थसार्थवाहम् ॥

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥
भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्याविषमूर्च्छिता ।
एषा सञ्जीविनी व्याख्या तामद्योज्जीवयिष्यति ॥

तत्रभवान् कालिदासः कुमारसम्भवं काव्यं चिकीर्षुः 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इति शास्त्रात्काव्यादौ वक्ष्यमाणार्थानुगुणं वस्तु निर्दिशति—

अन्वयः—उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयः नाम नगाधिराजः (अस्ति । यः) पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य पृथिव्याः मानदण्डः इव स्थितः (अस्ति) ।

संजीविनी—अस्तीति । उत्तरस्यां दिशि । अनेनास्य देवभूमित्वं सूच्यते । देवतात्माधिष्ठाता यस्य सः । एतेनास्य वक्ष्यमाणमेनकापरिणयपार्वतीजननादिचेतनव्यवहारयोग्यत्वसिद्धिः । हिमस्यालयः स्थानमिति हिमालयो नाम = हिमालय इति प्रसिद्धः । अधिको राजाधिराजः । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' । न गच्छन्तीति नगा अचलास्तेषामधिराजो नगाधिराजोऽस्ति । कथं-

भूतः। पूर्वापरौ = प्राच्यपश्चिमौ तोयनिधी = समुद्रौ वगाह्य = प्रविश्य। अतएव पृथिव्या भूमेर्मानं = हस्तादिना परिच्छेदः। भावे ल्युट्। तस्य दण्डः। यद्वा मीयतेऽनेनेति मानम्। करणे ल्युट्। स चासौ दण्डश्च स इव स्थितः। आयामपरिच्छेदकदण्ड इव स्थित इत्यर्थः। पूर्वापरसागरावगाहित्वं चास्य हिमालयस्यास्त्येव। उक्तं च ब्रह्माण्डपुराणे—'कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणे वर्षपर्वतौ। पूर्वपश्चिमगावेतावर्णवान्तरुपस्थितौ॥' अत्र हिमाचलस्योभयाब्धिव्याप्तिसाम्यान्मानदण्डत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षालङ्कारः। 'प्रकृतेऽप्रकृतगुणक्रियादिसम्बन्धादप्रकृतत्वेन प्रकृतस्य सम्भावनमुत्प्रेक्षा' इत्यलङ्कारसर्वस्वकारः। अस्मिन्सर्गे प्रायेण वृत्तमुपजातिः। क्वचिदिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रे च। तल्लक्षणं तु—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः'। 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ'। 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति॥ १॥

❀ सरला ❀

नत्वा सरस्वतीं भक्त्या भानुं च कुलदैवतम्।
कुमारसम्भवस्यास्य भाषाटीकां करोम्यहम्॥

हिन्दी—उत्तर दिशा में देवतात्मा स्वरूप हिमालय नामक पर्वतों के राजा हैं जो पूर्व और पश्चिम के समुद्र में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड (नापने के लिये दण्ड विशेष जिसे लट्ठा कहा जाता है) की तरह स्थित हैं।

विमर्शः—'देवतात्मा' कहने का अभिप्राय यह है कि वह जड़ नहीं हैं, किन्तु उनमें वक्ष्यमाण मेना-परिणय पार्वतीजननादि योग्य चेतन व्यवहार की योग्यता भी है।

इतः परं षोडशभिः श्लोकैर्हिमाद्रिं वर्णयति। तत्र नगाधिराजत्वं निर्वोढुमाह—

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥ २॥

अन्वयः—सर्वशैलाः यं वत्सं परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ स्थिते (सति) भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां धरित्रीं दुदुहुः।

संजी०—यमिति॥ सर्वे च ते शैलाश्च सर्वशैलाः। 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति समासः। यं हिमालयं वत्सं परिकल्प्य विधाय दोहदक्षे दोहनसमर्थे मेरौ दोग्धरि स्थिते सति। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सप्तमी। पृथूपदिष्टां पृथुना वैन्येनोपदिष्टामोदृक्तया प्रदर्शितां धरित्रीम्। गोरूपधरामिति शेषः। 'गौर्भूत्वा तु वसुन्धरा' इति विष्णुपुराणात्। 'अकथितं च' इति कर्मत्वम्। भास्वन्ति च भास्वत्यश्च भास्वन्ति द्युतिमन्ति। ओषधिविशेषणं चैतत्। 'नपुंसकमनपुंसकेन—' इत्यादिना नपुंसकैकशेषः। रत्नानि मणीञ्जातिश्रेष्ठवस्तूनि च। 'रत्नं श्रेष्ठे मणावपि' इति विश्वः। 'जातौ

जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिति कथ्यते' इति यादवः। महौषधीश्च संजीवनी-प्रभृतीश्च क्षीरत्वेन परिणता इति शेषः। 'ताः क्षीरपरिणामिनीः' इति विष्णुपुराणात्। दुदुहुः। 'दुहि याचि—' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम्। अत्र प्रयोजकत्वेऽपि शैलानां 'पञ्चभिर्हलैः कर्षति ग्रामं ग्रामणीः' इतिवत्तत्समर्था-चरणात्कर्तृत्वेन व्यपदेशः। दुहेः स्वरितेत्त्वेऽप्यकर्त्रभिप्रायविवक्षायां परस्मै-पदम्। अत्रार्थे प्रमाणम्—गोर्भूमिरचलाः सर्वे कर्तारोऽत्र पयांसि च। ओषध्यश्चैव भास्वन्ति रत्नानि विविधानि च॥ वत्सश्च हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः॥' इति। एतेन वत्सस्य मातुः प्रेमास्पदत्वादस्य सारग्राहित्वं गम्यते। तथा चास्य नगस्य रत्नविशेषभोक्तृत्वान्नगाधिराजत्वं युक्तमिति भावः। अत्र हिमवद्वर्णनस्य प्रकृतत्वात्तद्गतौषधिरत्नानां द्वयानामपि प्रकृत-त्वात्तेषां दोहनक्रियारूपसमानधर्मसम्बन्धादौपम्यस्य गम्यत्वात्केवलप्राकरणि-कविषयस्तुल्ययोगिता नामालङ्कारः। तदुक्तम्—'प्रस्तुतानां तथान्येषां केवलं तुल्यधर्मतः। औपम्यं गम्यते यत्र सा मता तुल्ययोगिता॥' न चात्र रूपक-परिणामाद्यलङ्कारशङ्का कार्या तेषामारोपहेतुत्वात्। हिमहेमाचलादिषु वत्सत्व-दोग्धृत्वादीनामागमसिद्धत्वेनानारोप्यमाणत्वादिति॥ २॥

हिन्दी—पूर्वकाल में सभी पर्वतों ने दोहन कार्य में कुशल सुमेरु को दुहने वाला तथा इन्हीं हिमालय को बछड़ा मानकर पृथुराज की आज्ञा से देदीप्यमान अनेक मरकतादि रत्न तथा जाज्वल्यमान मृतसंजीविनी आदि अनेक जड़ी-बूटियों का गो-रूप धारण करने वाली पृथ्वी से दोहन किया था।

विमर्शः—पृथूपदिष्टां—पूर्वकाल में वेन के पाप के कारण पृथ्वी ने प्रजाओं को अन्न फल औषधि देना बन्द कर दिया, उसके पाप से संत्रस्त हुई प्रजाओं को दुःखी देखकर ऋषियों ने उसे मार डाला और उसके शरीर का मन्थन किया। फलतः उसके पाप अंश से निषाद तथा पुण्यांश से महाराज पृथु उत्पन्न हुए। ऋषियों ने उन्हीं पृथु को पृथ्वी का राजा बनाया। तब भूखी प्रजाओं ने उनसे अपने जीविका की प्रार्थना की। प्रजाओं का कष्ट देखकर महाराज ने पृथ्वी का वध करने के लिए धनुष बाण उठाया फिर तो पृथ्वी गोरूप धारण कर भाग चली। जाती भी कहाँ। अपने को अशरण देख कर भयभीत हो रुक गई और पृथु के कहने से सब कुछ देना स्वीकार कर अपना दोहन करने की प्रार्थना की। फिर पृथु ने प्रजाओं को अपनी-अपनी जाति में श्रेष्ठ लोगों को दुहने वाला तथा बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दुह कर अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त करने की आज्ञा दी। उसी समय पर्वतों ने सुमेरु को दुहने वाला तथा हिमालय को बछड़ा बना कर रत्नों एवं औषधियों का दोहन किया।

ननु हिमदोषदूषितस्य तस्यात्यन्तमनभिगम्यत्वाच्छिन्नत्रिण इव सर्वमपि सौभाग्यं विफलमित्याशङ्क्याह—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ ३ ॥

अन्वय :—अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम् । हि एकः दोषः गुणसन्निपाते इन्दोः किरणेषु अङ्क इव निमज्जति ।

संजी०—अनन्तेति ॥ प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । अनन्तानामपरिमितानां रत्नानां श्रेष्ठवस्तूनां प्रभवस्य यस्य हिमाद्रेर्हिमम् । कर्तृ । सुभगस्य भावः सौभाग्यम् । 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः । तद्विलुम्पतीति सौभाग्यविलोपि सौन्दर्यविघातकं न जातं नाभूत् । तथा हि । एको दोषो गुणसन्निपात इन्दोः किरणेष्वङ्क इव निमज्जति । अन्तर्लीयत इत्यर्थः । न हि स्वल्पो दोषोऽमितगुणाभिभावक एव किन्तु कश्चिदिन्दुकलङ्कादिवद्गुणैरभिभूयते । अन्यथा सर्वरम्यवस्तुहानिप्रसङ्गादिति भावः । अत्रोपमानुप्राणितोऽर्थान्तरन्यासालङ्कारः । तल्लक्षणं तु—'ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन । तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ॥' इति दण्डी ॥ ३ ॥

हिन्दी—अनन्त रत्नों के उत्पत्तिस्थान उस हिमालय के सौन्दर्य को बर्फ नष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ । क्योंकि एक दोष गुणों के समुदाय में इस प्रकार छिप जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों में उसका कलङ्क छिप जाता है ।

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति ।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः अप्सरोविभ्रममण्डनानां संपादयित्रीं बलाहकच्छेदविभक्तरागाम् अकालसंध्याम् इव शिखरैः बिभर्त्ति ।

संजी०—यश्चेति । किञ्चेति चकारार्थः । यो हिमाद्रिरप्सरसां विभ्रममण्डनानि विलासालङ्करणानि ! अथवा विभ्रमो विपरीतन्यासः । 'विभ्रमस्त्वरयाऽकाले भूषास्थानविपर्यये' इति दशरूपकात् । तेन मण्डनानि तेषां सम्पादयित्रीम् । एतद्धातुरागदर्शिन्योऽप्सरसः सन्ध्याभ्रमेण प्रसाधनाय त्वरयन्तीति भावः । तथात्वे भ्रान्तिमदलङ्कारो व्यज्यते । 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी । वारीणां वाहका बलाहकाः पृषोदरादित्वात्साधुः । तेषां छेदेषु खण्डेषु विभक्तः संक्रमितो रागो यया ताम् । एतेनाद्रेरभ्रङ्कषत्वं गम्यते । इदं विशेषणद्वयं सन्ध्यायामपि योज्यम् । धातवः सिन्दूरगैरिकाद्योऽस्य सन्तीति धातुमान् । नित्ययोगे मतुप् । तस्य भावो धातुमत्ता ताम् । धातुयोगित्वमिति सम्बन्धोऽपि वाच्यार्थः । 'समासकृत्तद्धितेषु सम्बन्धाभिधानं भावप्रत्ययेन' इति वचनात् । लक्षणया नित्यानुषङ्गिकधातुमित्यर्थः । अकालसन्ध्यामिवानियत-

कालप्राप्तसन्ध्यामिव शिखरैर्बिभर्ति धत्ते। अत्र सन्ध्याशब्दस्य जातिवाचित्वा-ज्जात्युत्प्रेक्षा ॥ ४ ॥

हिन्दी—जो हिमालय अपने शिखरों में अप्सराओं के विलास के लिए आभूषणों का संपादन करने वाली तथा मेघ के टुकड़ों में अपना रंग संक्रमण करने वाली धातु-मत्ता को मानो असमय में प्राप्त सन्ध्या की तरह धारण करता है।

विमर्शः—अकालसन्ध्यामिव यद्यपि सन्ध्या नहीं हुई है फिर भी बादल के खण्डों में गैरिकादि की आभा से संध्या हुई समझकर अप्सरायें आतुर होकर त्वरावश प्रसाधन के लिए सिन्दूर गैरिकादि धातुओं का ही अपने विलासोपयुक्त मण्डन कार्य में उपयोग करती हैं जिसे हिमालय ने धारण किया है।

आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—सिद्धा आमेखलं सञ्चरतां घनानाम् अधः सानुगतां छायां निषेव्य वृष्टिभिः उद्वेजिता (सन्तः) यस्य आतपवन्ति शृङ्गाणि आश्रयन्ते।

संजी०—आमेखलमिति ॥ सिद्धा अणिमादिसिद्धा देवयोनिविशेषाश्च। 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः। आ मेखलाभ्य आमेखलं नितम्बपर्यन्तम्। 'मेखला खण्डबन्धे स्यात्काञ्चीशैलनितम्बयोः' इति विश्वः। 'आङ् मर्यादाभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः। सञ्चरतां घनानां मेघाना-मधः सानूनि मेघमण्डलादधस्तटानि गतां प्राप्ताम्। 'द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति समासः। छायामनातपम्। 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः'। इत्यमरः। निषेव्य। वृष्टिभिरुद्वेजिताः = क्लेशिताः सन्तः। 'उद्वेगस्तिमिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि' इति शब्दार्णवः। यस्य हिमाद्रेरातपवन्ति सातपानि शृङ्गाण्याश्रयन्ते। आश्रित्य स्थिता इत्यर्थः। अतिमेघमण्डलमस्यौन्नत्यमिति भावः।

हिन्दी—हिमालय के ऊपरी भाग पर निवास करने वाले सिद्ध लोग जिस हिमालय के मध्य भाग में संचरण करने वाले मेघों की छाया का सेवन कर, वृष्टि होने पर उद्विग्न होकर पुनः धूप वाले उससे ऊपर के शिखरों पर चले जाते हैं।

विमर्शः—'आतपवन्ति शृङ्गाणि'—इस श्लोक से कवि ने यह सूचित किया है कि हिमालय के शिखर अत्यन्त उच्च हैं, जहाँ वृष्टि नीचे होने पर भी ऊपर घाम ही घाम है। सिद्धाः कहने का भाव यह है कि जिन्हें अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हैं तथा जो विशेष-विशेष देवयोनियाँ है वही उन शिखरों पर निवास कर सकती हैं। सामान्यजन नहीं।

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यस्मिन् किराताः तुषारस्रुतिधौतरक्तम् हतद्विपानां केसरिणां पदम् अदृष्ट्वा अपि नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलैः मार्गं विदन्ति ।

संजी०—पदमिति ॥ यस्मिन्नद्रौ किरातास्तुषारस्रुतिभिर्हिमनिस्यन्दैर्धौतं क्षालितं रक्तं शोणितं यस्य तत्तथोक्तम् अतो दुर्ग्रहमिति भावः । हता द्विपा गजा यैस्तेषां हतद्विपानां केसरिणां सिंहानां पदं पादप्रक्षेपस्थानमदृष्ट्वापि नखरन्ध्रैर्नखद्रोणिभिर्मुक्तैर्मुक्ताफलैर्मार्गं विदन्ति जानन्ति । अत्र व्याधाः सिंहघातिनो गजेन्द्राश्च मुक्ताकरा इति भावः । 'करीन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि । मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भवमेव भूरि' ॥ ६ ॥

हिन्दी—जिस हिमालय पर किरात लोग पिघले हुए बर्फों से खून के धो दिये जाने के कारण हाथी के मारनेवाले सिंहों के पैर का निशान न पाकर भी मारते समय केवल उनके नाखून के छेदों से गिरे हुए गजमुक्ताओं को देखकर उनके गतागत मार्ग को जान लेते हैं ।

विमर्शः—यहाँ कवि ने देखा है कि हिमालय पर सिंह को मारने वाले व्याध है और सिंह द्वारा मारे जाने वाले हाथियों में गजमुक्ता होता है ।

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुञ्जरबिन्दुशोणाः भूर्जत्वचः विद्याधरसुन्दरीणाम् अनङ्गलेखक्रियया उपयोगं व्रजन्ति ।

संजी०—न्यस्ताक्षरा इति ॥ यत्र हिमाद्रौ धातुरसेन सिन्दूरादिद्रवेण **'शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः'** इत्यमरः । न्यस्ताक्षरा लिखितवर्णा अत एव कुञ्जरस्य ये बिन्दवः काये वयोविशेषभाविनः पद्मकाख्याः । 'पद्मकं बिन्दुजालकम्' इत्यमरः । त इव शोणा रक्तवर्णाः । लिखितभागेष्विति शेषः । भूर्जत्वचो भूर्जपत्रवल्कलानि । 'भूर्जपत्रो भुजो भूर्जो मृदुत्वक्चर्मिका अपि' इति यादवः । विद्याधरसुन्दरीणाम् । लिख्यन्ते येषु ते लेखाः पत्रिकाः । अनङ्गस्य लेखास्तेषां क्रियया कामव्यञ्जकलेखकरणेनेत्यर्थः । उपयोगमुपकारं व्रजन्ति । दिव्याङ्गनाविहारयोग्योऽयं शैल इति भावः ॥ ७ ॥

हिन्दी—सिन्दूरादि रक्तवर्णों के रस से अङ्कित है अक्षर जिस पर ऐसे तथा गजबिन्दु के समान लाल वर्ण वाले भोजपत्र जहाँ विद्याधर-दम्पतियों के परस्पर प्रेमप्रपञ्च लिखे जाने वाले पत्र के काम में आते हैं ।

विमर्शः—इससे सूचित होता है कि दिव्याङ्गनाओं के विहार के योग्य यह पर्वत है।

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किंनराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—यः दरीमुखोत्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् पूरयन् उद्गास्यतां किन्नराणां तानप्रदायित्वं उपगन्तुम् इच्छति इव।

संजी०—य इति ॥ यो हिमाद्रिः दरी गुहा सेव मुखं तस्मादुत्थेनोत्पन्नेन। 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः। समीरणेन वायुना कीचका वेणुविशेषाः। 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः। तेषां रन्ध्रभागाञ्छिद्र-प्रदेशान्पूरयन्धमयन्। वांशिकोऽपि वंशरन्ध्राणि मुखमारुतेन पूरयतीति प्रसिद्धिः। उद्गास्यतां देवयोनित्वादुच्चैर्गान्धारग्रामेण गानं करिष्यताम्। उक्तं च नादेन—'षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः। न तु गान्धार-नामानं स लभ्यो देवयोनिभिः ॥' इति किन्नराणां देवगायकानां तानप्रदायित्वम्। तानो नाम स्वरान्तरप्रवर्तको रागस्थितिप्रवृत्त्यादिहेतुरंशापरनामा वंशवाद्य-साध्यः प्रधानभूतः स्वरविशेषः 'तानस्त्वंशस्वरो मतः' इत्यभिनवगुप्तः। 'गाता यं यं स्वरं गच्छेत्तं तं वंशेन तानयेत्' इति भरतः। तत्प्रदानशीलत्वं तानप्रदायित्वं वांशिकत्वमुपगन्तुमिच्छतीवेत्युत्प्रेक्षा। सा च दरीमुखोत्थेने-त्येकदेशविवर्तिरूपकोज्जीविता। मुखसाध्यत्वात्तानप्रदायित्वस्य। यत्रावयव-रूपणादवयविरूपणं गम्यते तदेकदेशविवर्ति रूपकम्। गम्यते चात्रावयविनः पुंसो रूपणं यच्छब्दनिर्दिष्टे हिमाद्रावित्यलं बहुना ॥ ८ ॥

हिन्दी—यह हिमालय अपनी गुहा में उठे हुए वायु के द्वारा वेणु के छिद्रों को भरता हुआ मानो गान करने वाले देवगायकों के गाने का तान प्रदान करने की इच्छा करता है।

विमर्शः—जैसे कोई गाने वालों का सुर कोई मुख की हवा को बाँसुरी में भर कर भरता है, उसी प्रकार दरीमुख से उठे हुए ये पवन वेणु के रन्ध्रभाग को भर कर तान भरने की इच्छा रखते हैं।

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्नुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥ ९ ॥

अन्वयः—यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणां स्नुतक्षीरतया प्रसूतो गन्धः सानूनि सुरभिः करोति।

संजी०—कपोलेति ॥ यत्र हिमाद्रौ करिभिर्गजैः। कपोलगण्डूर्गण्डस्थलकण्डूर्विनेतुमपनेतुं विघट्टितानां घर्षितानां सरलद्रुमाणां सम्बन्धि स्नुतानि करिकपोलघर्षणात्क्षरितानि क्षीराणि येषां तेषां भावस्तत्ता तया हेतुना प्रसूत उत्पन्नो गन्धः सानूनि सुरभीकरोति। एतेनास्य गजाकरत्वं गम्यते, तथा च गजायुर्वेदे—हिमवद्विन्ध्यमलया गजानां प्रभवा नगाः'। इति ॥ ९ ॥

हिन्दी—इस पर्वत पर हाथियों के द्वारा अपने गण्डस्थल की खुजली मिटाने के लिये रगड़े गये देवदारु के वृक्षों से चूते हुए दूध की सुगन्धि इसके सारे शिखरों को सुगन्ध से युक्त कर देती है।

विमर्शः—उपर्युक्त पद्य से सूचित होता है कि हिमालय गजों का आकर है।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥ १० ॥

अन्वयः—यत्र रजन्यां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः ओषधयः वनितासखानां वनेचराणां अतैलपूराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति।

संजी०—वनेचराणामिति ॥ यत्र हिमाद्रौ रजन्यां दर्यः कन्दरा एव गृहास्तेषामुत्सङ्गेष्वभ्यन्तरेषु निषक्ताः संक्रान्ता भासो यासां ता ओषधयस्तृणज्योतींषि। 'अग्नावोषधीषु च तेजो निधाय रविरस्तं याति' इत्यागमः। वनितानां सखायो वनितासखाः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'। तेषाम्। रममाणानामित्यर्थः। वने चरन्तीति वनेचराः किराताः। 'चरेष्टः' इति टप्रत्ययः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इत्यलुक्। तेषां वनेचराणाम्। अतैलपूराः। अनपेक्षिततैलसेका इत्यर्थः। सुरतकर्मणि प्रदीपा भवन्ति। अत्रौषधीष्वारोप्यमाणस्य प्रदीपत्वस्य प्रकृतसुरतोपयोगित्वात्परिणामालङ्कारः। तदुक्तम्—'आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः' इति। तथा प्रदीपकारणतैलपूरणनिषेधादकारणकार्योत्पत्तिर्लक्षणा विभावना चेत्युभयोः संसृष्टिः ॥ १० ॥

हिन्दी—जिस हिमालय पर्वत पर रात्रि के समय उसके गुफा रूपी घर में प्रकाशित होने वाली औषधियाँ वनेचर-मिथुनों के सुरत के समय बिना तेल के जलने वाले दीपक का काम करती हैं।

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥ ११ ॥

अन्वयः—यत्र शिलीभूतहिमे अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अपि मार्गे श्रोणिपयोधरार्ताः अश्वमुख्यः मन्दां गतिं न भिन्दन्ति।

संजी०—उद्वेजयतीति ॥ यत्र हिमाद्रौ । शिलीभूतं घनीभूतं हिमं यत्र तस्मिन् । अत एवाङ्गुलीनां पार्ष्णीनां च भागाग्रप्रदेशानुद्वेजयत्यतिक्लेशयत्यपि मार्गे । श्रोणयश्च पयोधराश्च श्रोणिपयोधरम् । दुर्वहेण दुर्धरेण श्रोणिपयोधरेणार्ताः पीडिताः । आङ्पूर्वादृच्छतेः क्तः । 'उपसर्गादृति धातौ' इति वृद्धिः । अश्वानां मुखानीव मुखानि यासां ता अश्वमुख्यः किंनरस्त्रियः । उष्ट्रमुखवत्समासः । 'स्यात्किनरः किंपुरुषस्तुरंगवदनो मयुः' ॥ इत्यमरः । मन्दां मन्थरां गतिं न भिन्दन्ति । न त्यजन्तीत्यर्थः । पादपीडाकरेऽप्यतिभारभङ्गुरशरीरतया न शीघ्रं गन्तुं शक्नुवन्ति इति ॥ ११ ॥

हिन्दी—जिस हिमालय पर जमे हुए बड़े-बड़े चट्टानों के रूप में परिणत बर्फ पर अपने पैर रखने से अङ्गुलियों एवं एड़ियों के शीत युक्त होने पर भी अपने नितम्ब और पयोधर के भार के कारण आर्त्त किन्नरियाँ अपनी स्वाभाविक मन्द गति का त्याग नहीं करती ।

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥ १२ ॥

अन्वयः—यः दिवाभीतम् इव गुहासु लीनं अन्धकारं दिवाकरात् रक्षति । उच्चैःशिरसां शरणं प्रपन्ने क्षुद्रेऽपि सति (सज्जन इव) नूनं ममत्वम् ।

संजी०—दिवाकरादिति ॥ यो हिमाद्रिर्दिवा दिवसे भीतं भयाविष्टमिव । उलूकमिवेति च ध्वनिः । गुहासु लीनमन्धकारं ध्वान्तम् । दिवा दिनं करोतीति दिवाकरस्तस्माद्दिवाकरात् । 'दिवाविभानिशाप्रभाभास्करे-'त्यादिना टप्रत्ययः । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी । रक्षति त्रायते । ननु क्षुद्रसंरक्षणमनर्हमित्याशङ्क्याह—क्षुद्र इति । उच्चैःशिरसामुन्नतानां शरणं प्रपन्ने शरणागते क्षुद्रे नीचेऽपि सति सज्जन इव नूनं ममत्वं ममायमित्यभिमानः । अस्तीति शेषः । ममशब्दात्त्वप्रत्ययः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

हिन्दी—जो हिमालय में दिन के कारण भयभीत हुए अतएव अपनी गुहा में छिपे हुए अन्धकार की सूर्य से सदैव रक्षा करता है । क्योंकि बड़े लोग अपने शरण में आये हुए तुच्छ जनों पर भी सज्जनोचित ममता रखते हैं ।

लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्र मरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥ १३ ॥

अन्वयः—(यत्र) चमर्यः इतस्ततः लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः यस्य गिरिराजशब्दं अर्थवन्तं कुर्वन्ति ।

संजी०—लाङ्गूलेति ॥ चमर्यो मृगीविशेषा इतस्ततो लाङ्गूलानि वालधयः । 'पुच्छोऽस्त्री लोमलाङ्गूले वालहस्तश्च वालधिः' इत्यमरः । तेषां विक्षेपै-

विधूननैर्विसर्पिण्यो विसृमराः शोभाः कान्तयो येषां तैश्चन्द्रमरीचिभिरिव गौरैः शुभ्रैः । 'गौरः करीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणेऽपि च' इति यादवः । 'उपमानानि सामान्यवचनैः' इति समासः । बालव्यजनैश्चामरैर्यस्य हिमाद्रेर्गिरिराजशब्दं गिरिराज इति संज्ञामर्थयुक्तमभिधेयवन्तं कुर्वन्ति । राजानो हि छत्रचामरादिचिह्निता इति भावः ॥ १३ ॥

हिन्दी —जिस पर्वत पर चमरी नामक हरिणियाँ चन्द्रकिरणों के समान धवल बालव्यजन जैसे शोभित होते हुए अपने लाङ्गूल को इधर उधर डुला कर उसके गिरिराज शब्द को अन्वर्थ कर रही हैं) क्योंकि राजा लोग छत्र चामर से युक्त होते हैं ।

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥ १४ ॥

अन्वयः—यत्र अंशुकाक्षेपविलज्जितानां किंपुरुषाङ्गनानां यदृच्छया गृहद्वारविलम्बिबिम्बाः जलदाः तिरस्करिण्यो भवन्ति ।

संजी०—यत्रेति ॥ यत्र हिमाद्रौ । अंशुकाक्षेपेण वस्त्रापहरणेन विलज्जितानां किंपुरुषाङ्गनानां किंनरस्त्रीणां यदृच्छया दैवगत्या दरीगृहद्वारेषु विलम्बिबिम्बा लम्बमानमण्डला जलदास्तिरस्करिण्यो जवनिका भवन्ति । 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा' । इत्यमरः । 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' इति सत्वम् । अत्र जलदेष्वारोप्यमाणस्य तिरस्करिणीत्यस्य प्रकृतोपयोगित्वात्परिणामलङ्कारः ॥ १४ ॥

हिन्दी—जिस हिमालय पर्वत पर (सुरत के समय प्रियतमकृत) वस्त्रापहार से लज्जित हुई किन्नरस्त्रियों का, यदृच्छा से आये हुए (सुरत भवन रूपी) गुहा के द्वार पर लटकते हुए मेघमण्डल जवनिका का काम करते हैं ।

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥ १५ ॥

अन्वयः—भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः भिन्नशिखण्डिबर्हः यद्वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते ।

संजी०—भागीरथीति । भागीरथीनिर्झरसीकराणां गङ्गाप्रवाहपाथःकणानाम् । कर्मणि षष्ठी । वोढा प्रापकः । वहेस्तृच् । मुहुः पुनः पुनः सद्यो वा । 'पौनःपुन्ये भृशार्थे च सद्यो वा स्यान्मुहुः पदम्' इति वैजयन्ती । कम्पिता देवदारवो येन स तथोक्तः । भिन्नानि विश्लेषितानि शिखण्डिनां बर्हाणि गतिलाघवार्थं किरातकटिबद्धानि येन स तथोक्तः । क्रमाद्विशेषणत्रयेण शैत्यसौरभ्य-

मान्द्यान्युक्तानि । यस्य हिमाद्रेर्वायुः । अन्विष्टमृगैर्मार्गितमृगैः । श्रान्तैरिति भावः । 'अन्विष्टं मार्गितं मृगितम्' इत्यमरः । किरातैरासेव्यते ॥ १५ ॥

हिन्दी—जहाँ गङ्गा के झरनों के जल-बिन्दुओं को धारण करने वाला, बारम्बार देवदारु के वृक्षों को कँपाने वाला तथा मोरपङ्खों को विकसित करने वाला वायु मृगों के अन्वेषण से थके हुए किरातों के द्वारा सेवन किया जाता है ।

विमर्शः—यहाँ पर 'भागीरथीनिर्झरसीकराणां से वायु का शैत्य 'मुहुः कम्पित-देवदारुः' से सौरभ्य तथा 'भिन्नशिखण्डबर्हः' से उस वायु का मन्दत्व सूचित होता है ।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥ १६ ॥

अन्वयः—सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि पद्मानि अधःपरिवर्त्तमानः विवस्वान् ऊर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रबोधयति ।

संजी०—सप्तर्षीति ॥ सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः । 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति समासः । तेषां हस्तैरवचितेभ्यो लूनेभ्योऽवशेषाण्यवशिष्टानि । 'शेषोऽप्रधानसन्तापे त्रिष्वन्यत्रोपयुज्यते' इति केशवः । कर्मण्यप्रत्ययः । अनेन पद्मानां साफल्यं सूचितम् । यस्य हिमाद्रेः रोहन्तीति रुहाणि । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति कप्रत्ययः । अग्र उपरि यानि सरांसि तेषु रुहाणि पद्मान्यधः-परिवर्तमानो भ्रमन्विवस्वान्सूर्य ऊर्ध्वमुखैर्मयूखैः प्रबोधयति विकासयति । न कदाचिदधोमुखैः । अतिमार्तण्डमण्डलत्वादग्रभूमेरिति भावः । सप्तर्षिमण्डलं ध्रुवादप्यूर्ध्वमिति ज्यौतिषिकाः । अतस्तेषामग्रसरोरुहमार्गितत्वं युक्तम् ॥१६॥

हिन्दी—सप्तर्षियों के द्वारा तोड़ लिए जाने पर भी जहाँ के सरोवरों में बचे हुए कमलों को उनके नीचे संचरण करने वाला सूर्य अपने ऊपर की ओर जाने वाली किरणों से विकसित करता है ।

विमर्शः—सप्तर्षि-मण्डल ध्रुव से भी ऊपर है ऐसा ज्योतिषियों का कहना है । इसलिए इस श्लोक के द्वारा वहाँ के तालाबों में रहने वाले कमल सूर्य के ऊपरी किरणों से खिलते हैं ।

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥ १७ ॥

अन्वयः—यस्य यज्ञाङ्गयोनित्वं धरित्रीधरणक्षमं सारं च अवेक्ष्य प्रजापतिः स्वयं कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यम् अन्वतिष्ठत् ।

संजी०—यज्ञाङ्गेति ॥ यस्य हिमाद्रेर्यज्ञाङ्गानां यज्ञसाधनानां सोमलतादीनां योनिः प्रभवस्तस्य भावस्तत्त्वम्। 'यज्ञाङ्गार्थं मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः' इति विष्णुपुराणात्। धरित्रीधरणक्षमं भूभारधरणयोग्यं सारं बलं च। 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः। अवेक्ष्य ज्ञात्वा प्रजापतिः स्वयमेव कल्पितो यज्ञभागो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। 'सोमस्य राज्ञः कुरङ्ग इन्दोः शृङ्गी समुद्रस्य शिशुमारो हिमवतो हस्ती' इति श्रुतेरिति भावः। शैलानामाधिपत्यमधिपतित्वम्। 'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्' इति यक्प्रत्ययः। अन्वतिष्ठत्। ददाति स्मेत्यर्थः। उक्तं च ब्रह्माण्डपुराणे 'शैलानां हिमवन्तं च नदीनां चैव सागरम्। गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रं चित्ररथं विधिः' ॥ इति ॥ १७ ॥

हिन्दी—जिस हिमालय के यज्ञीय द्रव्यों की उत्पत्ति की कारणता तथा पृथ्वी धारण की योग्यता देख कर स्वयं ब्रह्मदेव ने उसे यज्ञभाग का भागी बना कर पर्वतों का स्वामित्व प्रदान किया।

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥ १८ ॥

अन्वयः—मेरुसखः स्थितिज्ञः स पितॄणां मानसीं मुनीनामपि माननीयां आत्मानुरूपां मेनां कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे।

संजी०—स इति ॥ मेरोः सखा मेरुसखः। बन्धुसम्पन्न इति भावः। स्थितिज्ञो मर्यादाभिज्ञः। अनेन श्रुतसम्पत्तिः सूच्यते। स हिमवान्पितॄणां मानसीं मनःसङ्कल्पजन्यां मुनीनामपि माननीयाम्। योगिब्रह्मवादिभ्यां पूज्यामित्यर्थः। उक्तं च विष्णुपुराणे—'तेभ्यः शुभास्पदं जज्ञे मेनका हरिणी तथा। ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ॥' इति। आत्मानुरूपां कुलशीलसौन्दर्यादिभिः सदृशीं मेनां मेनकादेवीति नामवतीं कन्यां कुलस्य स्थितये प्रतिष्ठायै विधिना यथाशास्त्रेणोपयेमे परिणीतवान्। 'उपाद्यमः स्वकरणे' इत्यात्मनेपदम्। 'तेषां तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः। पत्नी हिमवतो यस्याः पुत्रो मैनाक उच्यते ॥' इति ब्रह्माण्डपुराणात् ॥ १८ ॥

हिन्दी—मेरुपर्वत के मित्र, अपनी मर्यादा का ध्यान रखने वाले जिस हिमालय पर्वत ने पितरों की मानसी कन्या मुनिगणों की भी माननीया तथा कुल शील सौन्दर्य से अपने सर्वथा अनुरूप मेना नाम की कन्या के साथ कुल की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रविधि से विवाह किया।

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्याः ॥ १९ ॥

अन्वयः—अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे प्रवृत्ते मनोरमं यौवनम् उद्वहन्त्याः भूधरराजपत्न्या गर्भः अभवत् ।

संजी०—कालक्रमेणेति ॥ अथ कालक्रमेण । गच्छता कालेनेत्यर्थः । तयोर्मेनकाहिमवतोः स्वरूपयोग्ये सौन्दर्यानुगुणे । यद्वा रूप्यते निश्चीयतेऽनेनेति रूपं ज्ञानं तद्योग्ये । शास्त्रानुसारिणीत्यर्थः । सुरतप्रसङ्गे सुरतकर्मणि प्रवृत्ते सति मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या भूधरराजपत्न्या मेनकाया गर्भोऽभवत् ॥ १९ ॥

हिन्दी—कुछ दिन बीत जाने पर उन दोनों के योग्य सुरत प्रसङ्ग प्रवृत्त होने पर अत्यन्त मनोहर यौवन धारण करने वाली हिमालय की पत्नी मेना को गर्भ धारण हुआ ।

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्राववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥ २० ॥

अन्वयः—सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधिबद्धसख्यं पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धे अपि कुलिशक्षतानां अवेदनाम् मैनाकम् असूत ।

संजी०—असूतेति । सा मेना नागवधूपभोग्यम् । नागकन्यापरिणेतारमित्यर्थः । अम्भोनिधिना बद्धसख्यं समुद्रकृतमैत्रीकम् । सख्यमूलं सूचयति—पक्षच्छिदि पक्षच्छेत्तरि । 'सत्सूद्विषे—' त्यादिना क्विप्प्रत्ययः । वृत्रशत्रौ क्रुद्धे कुपिते सत्यपि कुलिशक्षतानां वज्रप्रहाराणाम् । सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । जानातीति ज्ञः । 'इगुपधज्ञा—' इति कप्रत्ययः । वेदनानां ज्ञः । अथवा वेदनां जानातीति वेदनाज्ञः । 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः । 'उपपदमतिङ्' इति समासः । स न भवतीत्यवेदनाज्ञस्तम् । कुलिशक्षतवेदनानभिज्ञमित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । पक्षच्छेदोद्यतशक्रात्त्राणाय शरणागमनममनयोः सख्यमूलमिति भावः । मैनाकं पुत्रमसूत । सर्वपर्वतपक्षच्छेदेऽप्ययमच्छिन्नपक्ष एवेति मैनाकस्योत्कर्षः । तादृक्पुत्रवत्त्वं हिमाद्रेरिति सार्थकं मैनाकस्य वर्णनम् । 'पिता न ज्ञायते यस्या भ्राता यदि न विद्यते । नोपयच्छेत्तु तां कन्यां धर्मलोपभयात्सुधीः ।' इत्यभ्रातृकन्यापरिणयनिषेधात्प्रकृते पार्वतो भ्रातृमत्येवेति सूचनार्थं मैनाकपर्वतमिति तात्पर्यार्थः ॥ २० ॥

हिन्दी—मेना ने नागकन्या से विवाह करने वाले, समुद्र से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने वाले तथा पर्वतों का पङ्ख काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर भी उनके वज्र प्रहार की वेदना से सर्वथा निर्मुक्त मैनाक पर्वत को पैदा किया ।

विमर्शः—असूत इति—यहाँ मैनाक के वर्णन से कवि ने सिद्ध किया है कि मेना का पुत्र बड़ा भाग्यशाली है जिसका पङ्ख इन्द्र भी क्रुद्ध होने पर नहीं काट सके ।

दूसरी बात जो मैनाक से सम्बन्ध रखती है वह यह कि पार्वती भ्रातृमती हैं और भ्रातृमती कन्या से विवाह की प्रशस्ति मानी जाती है। यथा—

पिता न ज्ञायते यस्या भ्राता यदि न विद्यते।
नोपयच्छेत्तु तां कन्यां धर्मलोपभयात्सुधीः॥

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥ २१॥

अन्वयः—अथ दक्षस्य कन्या भवपूर्वं पत्नी सती पितुः अवमानेन प्रयुक्ता योगविसृष्ट-देहा सती जन्मने तां शैलवधूं प्रपेदे।

संजी०—अथेति॥ अथ मैनाकजननानन्तरं दक्षस्य प्रजापतेः कन्या भवस्य महादेवस्य पूर्वपत्नी पूर्वभार्या सती पतिव्रता। 'सती साध्वी पतिव्रता' इत्यमरः। सती नाम देवी। पितुर्दक्षस्य। कर्तरि षष्ठी। अवमानेन स्वभर्त्र-वज्ञया प्रयुक्ता प्रेरिता योगेन योगमार्गेण विसृष्टदेहा त्यक्तदेहा सती। जन्मने पुनरुद्भवाय तां शैलवधूं मेनकां प्रपेदे। अतः पुरा किल सती देवो दक्षाध्वरे तत्कृतां स्वभर्त्रवज्ञामसहमाना पितरं प्रसूं चोपेक्ष्य मत्कर्तव्यकार्यं त्वज्ज्मातैव करिष्यतीति निर्धार्य देवकार्याणि साधयितुं च योगाग्निना स्वशरीरं ददाहेति पुरावृत्तकथानुसन्धेया॥ २१॥

हिन्दी—इसके अनन्तर दक्ष की कन्या महादेव की पूर्व पत्नी पतिव्रता सती देवी ने अपने पिता के अपमान से प्रेरित होकर योगबल से अपना शरीर त्याग दिया। तदनन्तर पुनः जन्म लेने के लिये शैलपत्नी मेना को प्राप्त किया।

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या।
सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साहगुणेन सम्पत्॥ २२॥

अन्वयः—भव्या सा भूधराणाम् अधिपेन समाधिमत्यां तस्यां सम्यक्प्रयोगात् अपरिक्षतायां नीतौ उत्साहगुणेन संपत् इव उदपादि।

संजी०—सेति॥ भव्या कल्याणी सा सती भूधराणामधिपेन हिमवता समाधिमत्यां नियमवत्यां तस्यां मेनकायां सम्यक्प्रयोगात्साध्वाचरणाद्धेतोर-परिक्षतायामभ्रष्टायां नीतावुत्साहगुणेनोत्साहशक्त्या कर्त्री। सम्पदिवोदपा-द्युत्पादिता। उत्पद्यतेर्ण्यन्तात्कर्मणि लुङ्। 'चिण्भावकर्मणोः' इति चिण्प्रत्ययः। 'चिणो लुक्' इति तस्य लुक्॥ २२॥

हिन्दी—पर्वतराज हिमालय ने पतिव्रता दक्षकन्या सती को नियम का आचरण करने वाली उस मेना में इस प्रकार पैदा किया जिस प्रकार उत्तम आचरण से सर्वदा सफल होने वाली नीति में उत्साहशक्ति के द्वारा संपत्ति पैदा होती है।

प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातं शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि ।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ॥ २३ ॥

अन्वयः—प्रसन्नदिक् पांसुविविक्तवातं शङ्खस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि तज्जन्मदिनं स्थावरजङ्गमानां शरीरिणां सुखाय बभूव ।

संजी०—प्रसन्नेति ॥ प्रसन्ना निर्मला दिशो यस्मिंस्तत्प्रसन्नदिक् । पांसुविविक्ता रजोरहिता वाता यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । शङ्खस्य स्वनात्स्वनस्य वानन्तरं पुष्पवृष्टिर्यस्मिंस्तत्तथोक्तं तस्याः पार्वत्या जन्मदिनम् । स्थितिशीलाः स्थावराः शैलवृक्षादयः । 'स्थेशभासपिसकसो वरच्' इति वरच्प्रत्ययः । जङ्गम्यन्ते भृशं गच्छन्तीति जङ्गमा देवतिर्यङ्मनुष्यादयः । स्थावराश्च जङ्गमाश्च तेषां द्वयानामपि शरीरिणां सुखायानन्दाय बभूव ॥ २३ ॥

हिन्दी—उस पार्वती के जन्म के समय दिशायें निर्मल थीं । धूलि-रहित वायु बह रही थी । शङ्ख के शब्द के अनन्तर देवगण आकाश से पुष्पवृष्टि कर रहे थे । किं बहुना उसका वह जन्मदिन स्थावर शैल वृक्षादि और जङ्गम (देव-मनुष्य-तिर्यगादि) सभी प्रकार के प्राणियों के लिये सुखकारक हुआ ।

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे ।
विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव ॥ २४ ॥

अन्वयः—स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सवित्री विदूरभूमिः नवमेघशब्दात् उद्भिन्नया रत्नशलाकया इव सुतरां चकासे ।

संजी०—तयेति ॥ स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सावित्री जनयित्री । 'स्वरतिसूयतिधूञूदितो वा' इतीडागमः । विदूरस्याद्रेः प्रान्तभूमिर्विदूरभूमिः । 'अविदूरं विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधसः । काकतालीयसीमान्ते मणीनामाकरो भवेत् ॥' इति बुद्धः । नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकया रत्नाङ्कुरयेव सुतरां चकासे रराज ॥ २४ ॥

हिन्दी—अपने लावण्य की प्रभा से प्रकाशित होने वाली उस कन्या से प्रसवित्री माता मेनका इस प्रकार शोभित हुई जिस प्रकार विदूर पर्वत की भूमि नवमेघ शब्द से उद्भिन्न रत्नकान्ति से शोभित होती है ।

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा ।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि ॥२५॥

अन्वयः—लब्धोदया दिने दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणि कलान्तराणि इव पुपोष ।

संजी०—दिन इति ॥ लब्ध उदयो यया सा लब्धोदया । उत्पन्नेत्यर्थः । अभ्युदितेत्यन्यत्र दिने दिने प्रतिदिनम् । 'नित्यवीप्सयोः' इति वीप्सायां द्विरुक्तिः । परिवर्धमाना । उभयत्र समानमेतत् । सा बाला । चन्द्रमस इयं चान्द्रमसी लेखेव लावण्यमयान्कान्तिविशेषप्रचुरान् । 'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥' इति भूपालः । विशेषानवयवान् । 'विशेषोऽवयवे व्यक्तौ' इत्युत्पलमालायाम् । ज्योत्स्नायामन्तरमन्तर्धानं येषां तानि ज्योत्स्नान्तराशि ज्योत्स्नायान्तर्हितानि । तन्मयानीति यावत् । अन्याः कलाः कलान्तराणीव सुप्सुपेति समासः । 'स्थानात्मीयान्यतादर्थ्यरन्ध्रान्तर्धिषु चान्तरम्' इति शाश्वतः । पुपोषोपचितवती । इयं वाक्योपमेत्याह दण्डी । तल्लक्षणं तु—'वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थः कोऽपि यद्युपमीयते । एकानेकेव शब्दत्वात् सा तु वाक्योपमा द्विधा ॥' इति ॥ २५ ॥

हिन्दी—जन्म के अनन्तर प्रतिदिन निरन्तर बढ़ती रहने वाली वह पार्वती अपने लावण्यमय विशेषताओं को इस प्रकार उपचय करने लगीं जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में बढ़ने वाली चन्द्रमा की कला प्रतिदिन अपने में अन्तर्हित नित्य अन्य-अन्य नवीन-नवीन कलाओं का उपचय (वृद्धि) करती है ।

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव ।
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥२६॥

अन्वयः—बन्धुप्रियां तां बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना पार्वती इति आजुहाव । पश्चात् मात्रा उमा इति तपसः निषिद्धा (सती) सुमुखी उमाऽख्यां जगाम ।

संजी०—तामिति ॥ बन्धुप्रियां तां बालां बन्धुजनः पित्रादिः । अभिजनादागतेनाभिजनेन । पित्रादिपूर्वसंबन्धोपाधिकेनेत्यर्थः । 'अभिजनाः पूर्वबान्धवाः' इति काशिका । नाम्ना । पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती । 'तस्यापत्यम्' इत्यण्प्रत्ययः । इति जुहावाहूतवान् । ह्वयतेर्लिटि रूपम् । पर्वतजन्यत्वोपाधिना पार्वतीति नाम्ना प्रसिद्धिरिति भावः । पश्चादभिजननामप्रवृत्त्यनन्तरं मात्रा जनन्या । उ इति संबोधने । 'उ इति वितर्कसंबोधनपादपूरणेषु' इति गणव्याख्याने । माशब्दो निषेधे । उहे वत्से, मा मा कुर्वित्येवंरूपेण । तपसस्तपश्चर्यायाः । 'वारणार्थानामीप्सितः' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी । निषिद्धा निवारिता सती सुमुखी सा बालोमेत्याख्यां नामधेयमुमाख्यां जगाम ॥२६॥

हिन्दी—परिवार के लोगों ने बन्धुजनों की प्रिय उस कन्या का नाम पितृपरम्परया ('पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती') से प्राप्त पार्वती रखा, फिर माता के द्वारा (उ संबोधने मा मा तप कुरु) तपस्या से वारण करने के कारण वह 'उमा' नाम से विख्यात हुई ।

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम् ।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥ २७ ॥

अन्वयः—पुत्रवतः अपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्तिं न जगाम । हि अनन्त पुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसङ्गा ।

संजी०—महीभृत इति । पुत्राश्च दुहितरश्च पुत्राः । 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्' इत्येकशेषः । तेऽस्य सन्तीति पुत्रवान् । भूमार्थे मतुप् । तस्य पुत्रवतोऽपि । बह्वपत्यस्यापीत्यर्थः । महीभृतो हिमाद्रेर्दृष्टिश्चक्षुस्तस्मिन्नपत्ये तोकं 'अपत्यं तोकं तयोः समे' इत्यमरः । तस्यां पार्वत्यामित्यर्थः । तृप्तिं न जगाम । तथा हि अनन्तपुष्पस्य नानाविधकुसुमस्यापि मधोर्वसन्तस्य संबन्धिनी द्विरेफमाला भृङ्गपङ्क्तिश्चूतस्य विकारे चूते चूतकुसुमे । 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' इति विकारार्थोत्पन्नस्याण्प्रत्ययस्य लुक्प्रकरणे 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' इति पठनाल्लुक् । सविशेषः सातिशयः सङ्गो यस्याः सा तथोक्ता । अत्यन्तासक्तेत्यर्थः ॥ २७ ॥

हिन्दी—पुत्रवान् होने पर भी उन हिमालय की दृष्टि पार्वती रूप कन्या अपत्य में तृप्ति को नहीं प्राप्त करती थी जिस प्रकार अनन्त पुष्पों वाले वसन्त ऋतु की भ्रमर पङ्क्ति आम्रकुसुम में ही विशेष रुचि रखती है ।

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥ २८ ॥

अन्वयः—प्रभामहत्या शिखया दीप इव त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्ग इव संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव तया स पूतश्च विभूषितश्च

संजी०—प्रभेति । प्रभामहत्या प्रकाशाधिकया शिखया ज्वालया दीप इव । शिखादीपयोरवयवावयविभावाद्भेदेन व्यपदेशः त्रयो मार्गा यस्यास्तया त्रिमार्गया मन्दाकिन्या । तृतीयो द्यौर्लोक इति त्रिदिवः स्वर्गः। वृत्तिविषये त्रिशब्दस्य त्रिभागवत्पूरणार्थत्वम् पृषोदरादित्वाद्दिवशब्दादकारागमः। पुंस्त्वं लोकात् । दीव्यतेर्घञर्थे कविधानम् । दीव्यन्त्यत्र जना इति क्षीरस्वामी । तस्य मार्ग इव । संस्कारो व्याकरणजन्या शुद्धिस्तद्वत्या गिरा वाचा । 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि' इति श्रुतेरिति भावः। मनस ईषा मनीषा सास्यास्तीति मनीषी विद्वानिव । शकन्ध्वादित्वात्साधुः। तया पार्वत्या स हिमवान्पूतः शोधितश्च विभूषितश्च । अत्र शिखागिरोरविशिष्टयोरुपमानानर्हत्वान्न विशेषणाधिक्यदोषः। इयं मालोपामा ॥ २८ ॥

हिन्दी—जिस प्रकार अधिक प्रकाश वाली ज्योति की ज्वाला से दीपक, मन्दाकिनी से स्वर्ग का मार्ग, संस्कारवती वाणी से मनीषी शुद्ध एवं विभूषित होते हैं उसी प्रकार उस पार्वती से पर्वतराज हिमालय शोधित एवं विभूषित हुये'

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥ २९ ॥

अन्वयः—सा बाल्ये क्रीडा रसं निर्विशती इव सखीनां मध्यगता (सती) मन्दाकिनी सेकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च मुहुः रेमे ।

संजी०—मन्दाकिनीति ॥ सा पार्वती बाल्ये वयसि क्रीडानां रसः स्वादः। रुचिरिति यावत् तं क्रीडारसम् । 'रसो गन्धे रसः स्वादे' इति विश्वः । निर्विशतीव भुञ्जानेव 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इति विश्वः । 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति विकल्पान्नुपभावः । सखीनां मध्यगता सदी मन्दाकिन्याः सैकतेषु पुलिनेषु वेदिकाभिः कन्दुकैः। क्रियया निवृ॑त्तैः कृत्रिमैः। 'ड्वितः क्त्रिः' इति क्त्रिप्रत्ययः । 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' इति ममागमश्च । पुत्रकैः पाञ्चालिकाभिः । 'पाञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वस्त्रदन्तादिभिः कृता' इत्यमरः। 'संज्ञायां कन्' इति कन्प्रत्ययः । मुहुः पुना रेमे ॥ २९ ॥

हिन्दी—वह पार्वती अपनी बाल्यावस्था में क्रीडारस का उपभोग करती जैसी मन्दाकिनी तीर पर बालू की वैदिका से गेंद से और गुडियों से सखियों के साथ बारम्बार खेलती थी ।

तां हंसमालाः शरदीव गङ्गां महौषधिं नक्तमिवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥ ३० ॥

अन्वयः—स्थिरोपदेशां तां उपदेशकाले प्राक्तनजन्म विद्याः शरदि गङ्गां हंसमाला इव नक्तं महौषधिं आत्मभास इव प्रपेदिरे ।

संजी०—तामिति ॥ स्थिरः स्थेयानुपदेशः प्राग्भवीयो यस्यास्तादृशीम् । मेधाविनीमित्यर्थः । तां पार्वतीमुपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः । पूर्वजन्माभ्यस्तविद्या इत्यर्थः । शरदि गङ्गां हंसमाला इव नक्तं रात्रौ महौषधिं तृणविशेषमात्मभासः स्वदीप्तय इव प्रपेदिरे । उपमानसामर्थ्यादुपदेशमन्तरेणैवेति गम्यते ॥ ३० ॥

हिन्दी—उपदेश को स्थिरता से ग्रहण करनेवाली अतएव मेधाविनी उस पार्वती को शिक्षाकाल में पूर्व जन्म की सभी विद्यायें इस प्रकार प्राप्त हो गई जिस प्रकार शरद ऋतु में सारसपंक्ति गङ्गा को तथा महौषधियाँ रात्रि में अपने अन्तर्हित ज्योति को प्राप्त कर लेती हैं ।

असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे ॥ ३१ ॥

अन्वयः—अथ सा अङ्गयष्टेः असंभृतं मण्डनम् अनासवाख्यं मदस्य करणं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तं अस्त्रं बाल्यात् परं वयः प्रपेदे ।

संजी०—असम्भृतमिति । अथ सा पार्वती । अङ्गयष्टेरसम्भृतमयत्नसिद्धम् मण्डनं प्रसाधनमनासवाख्यामासवाख्यारहितं मदस्य करणं साधनं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रमस्त्रभूतं बाल्याच्छैशवात्परमनन्तरभावि वयो यौवनं प्रपेदे प्राप । यौवनेनैव हि युवतयः प्रमाद्यन्ते माद्यन्ते काम्यन्ते चेति भावः । अत्र द्वितीयपाद आसवरूपकारणाभावेऽपि तत्कार्यमदोक्तेर्विभावनालङ्कारः । तदुक्तम्—'कारणाभावे कार्योत्पत्तिर्विभावना' इति । प्रथमतृतीययोस्त्वारोप्यमाणयोर्मण्डनमदनास्त्रत्वयोः प्रकृतोपयोगात्परिणामालङ्कारः । तल्लक्षणं तूक्तम् ॥ ३१ ॥

हिन्दी—इसके बाद उसने धीरे-धीरे शरीर के अयत्नसिद्ध भूषणभूत तथा बिना मद्य के मद के साधनभूत, एवं बिना पुष्प के कामदेव के अस्त्रभूत यौवन को प्राप्त किया।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ ३२ ॥

अन्वयः—नवयौवनेन विभक्तं तस्या वपुः तूलिकया उन्मीलितं चित्रम् इव सूर्यांशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्रशोभि बभूव ।

संजी०—उन्मीलितमिति ॥ नवयौवनेन प्रथमयौवनेन विभक्तमभिव्यञ्जितम् । पीनजघनादिसंस्थानमित्यर्थः । तस्याः पार्वत्या वपुस्तूलिकया कूर्चिकया । शलाकयेत्यर्थः । 'तूलिका कथिता लेख्यकूर्चिका तूलशय्ययोः' इति विश्वः । उन्मीलितं रञ्जनद्रव्येणोद्भासितं समुत्कीर्णम् । रूपमिति यावत् । चित्रमालेख्यमिव । सूर्यांशुभिर्भिन्नं विकसितमरविन्दं पद्ममिव चतस्रोऽस्रयो यस्य तच्चतुरस्रमन्यूनातिरिक्तं यथा तथा शोभत इति चतुरस्रशोभि । ताच्छील्ये णिनिः । बभूव । चित्रारविन्दयोस्तूलिकातरणिकिरणसम्बन्ध इव स्वयं सिद्धस्यैवाङ्गसौष्ठवस्य यौवनप्रादुर्भावोऽभिव्यञ्जको बभूवेत्यर्थः ॥ ३२ ॥

हिन्दी—नवीन यौवन से लावण्यमय स्तनजघनादि अवयव युक्त पार्वती का शरीर तूलिका (रंगने वाली कूँची) से उज्वलित चित्र के समान, सूर्य किरणों से विकसित कमल के समान पूर्णरूप से शोभायमान हुआ ।

देवतानां रूपं पादाङ्गुष्ठप्रभृति वर्ण्यते मानुषाणां केशादारभ्येति धार्मिकाः । सम्प्रति सप्तदशभिः श्लोकैः पार्वत्याः पादादिकेशान्तवर्णनमारभते—

अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥३३॥

अन्वयः—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् इव उद्गिरन्तौ तच्चरणौ पृथिव्याम् अव्यवस्थाम् स्थलारविन्दश्रियं आजह्रतुः ।

संजी०—अभ्युन्नतेति ॥ अभ्युन्नतयोरङ्गुष्ठनखयोः प्रभाभिर्निमित्तेन निक्षेपणान्निर्भरन्यासाद्धेतोः रागमन्तर्गतं लौहित्यम् । 'रागः क्लेशादिके रक्ते मात्सर्ये लोहितादिषु' इति शाश्वतः । उद्गिरन्तौ वमन्तौ । बहिर्नि सारयन्ताविव स्थिताविर्त्यथः । अत्रोद्गिरतेर्गौणार्थत्वान्न ग्राम्यतादोषः प्रत्युत गुण एव । यथाह दण्डी—निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते ॥' इति । तस्याश्चरणौ तच्चरणौ । पृथिव्यामव्यवस्थां व्यवस्थारहिताम् । सञ्चारिणीमित्यर्थः । स्थला विन्दश्रियमाजह्रतुः । स्थलविशेषणान्नियतलौहित्यलाभः । अत्र सामुद्रिकाः—'यस्या रक्ततलौ पादावुन्नताग्रौ तलस्पृशौ । निगूढगुल्फौ निहतौ सा स्यान्नृपतिसम्मता ॥' इति । अत्रोपमानधर्मस्यारविन्दश्रियश्चरणयोरुपमेययोरसम्भवादरविन्दश्रियमिव श्रियमिति प्रतिबिम्बीकरणाक्षेपान्निदर्शनालङ्कारः । सा च सम्बन्धेऽसम्बन्धलक्षणातिशयोक्त्यनुप्राणिताव्यवस्थामित्यनेन स्थलारविन्दस्य स्थैर्यसम्बन्धेऽप्यसम्बन्धाभिधानात् । निदर्शनालक्षणं तु—'असम्भवद्धर्मयोगादुपमानोपमेययोः । प्रतिबिम्बक्रिया गम्या यत्र सा स्यान्निदर्शना ॥' ३३ ॥

हिन्दी—पार्वती के चरणों के स्वाभाविक रूप से ऊँचे-ऊंचे दोनों अँगूठे से भूमि पर चलते समय अपने में अन्तर्हित राग (लालिमा) को बाहर उगलते हुये मानो चलायमान स्थलारविन्द (गुलाब के पुष्पों) की शोभा को प्राप्त करते थे ।

सा राजहंसैरिव संनताङ्गी गतेषु लीलाञ्चितविक्रमेषु ।
व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धै—रादित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ॥ ३४ ॥

अन्वयः—प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसिञ्जितानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नताङ्गी सा लीलाञ्चितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव ।

संजी०—सेति ॥ प्रत्युपदेशलुब्धैः । 'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा । अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपपद्यते ।' इति न्यायादिति भावः । तदेव व्यनक्ति—नूपुरसिञ्जितान्यादित्सुभिरादातुमिच्छुभिः । मञ्जीरसिञ्जितमञ्जुकूजयोपदेशमिच्छद्भिरित्यर्थः । राजहंसैः सन्नताङ्गी । कुचभारादिति भावः । सा पार्वती लीलाभिर्विलासैरञ्चिताः पूजिता विक्रमाः पादन्यासा येषु तेषु । 'अञ्चेः पूजायाम्' इतीडागमः । 'लीला विलासक्रिययोः' इत्यमरः' । गतेषु विषयेषु व्यनीयतेव विनीता किमु । अन्यथा कथमस्या हंसगमनमित्युत्प्रेक्षा ॥ ३४ ॥

हिन्दी—मन्जीर सिञ्जित मधुरशब्द को शिक्षा द्वारा शिक्षा ग्रहण करने वाले राजहंसो ने मानो पार्वती को विलासयुक्त पदविन्यास की शिक्षा दी ।

विशेष—यहाँ कवि ने गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपपद्यते।

इस न्याय से यह बताने की चेष्टा की है कि राजहंसों ने पार्वती को अपने चाल की शिक्षा दी। उसके बदले पार्वती ने अपने नूपुर सिञ्जित मधुर शब्द की शिक्षा राजहंसों को दी।

वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः॥ ३५॥

अन्वयः—वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे शुभे तदीये जङ्घे सृष्टवतः विधातुः शेषाङ्ग निर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्न आस इव।

संजी०—वृत्तेति। वृत्ते वर्तुले पूर्वमनुगतेऽनुपूर्वे। गोपुच्छाकार इत्यर्थः। वृत्ते च ते अनुपूर्वे च नातिदीर्घे च। महाविभाषया न समासः। नञो विशेषणत्वं चशब्दप्रयोगादेव ज्ञेयम्। शुभे मङ्गले। तस्या इमे जङ्घे प्रसृते। 'जङ्घा तु प्रसृता' इत्यमरः। सृष्टवतो निर्मितवतो विधातुः स्रष्टुः शेषाङ्गनिर्माणविधौ। जङ्घाव्यतिरिक्तावयवनिर्माणार्थमित्यर्थः। उत्पाद्ये पुनः सम्पाद्ये लावण्ये कान्तिविशेषविषये। लावण्यलक्षणं तूक्तम् (२५) श्लोक टी०। यत्न आसेव बभूवेवेत्युत्प्रेक्षा। उपादानमन्तरेण कार्यस्य दुष्करत्वादङ्गानां न लावण्योपादानकत्वात्पूर्वसम्पादितस्य च जङ्घार्थमेव कार्त्स्न्येन विनियोगात्पुनर्लावण्यसम्पादने यत्नः स्यादेवेत्येतादृक्सौन्दर्ये तज्जङ्घे इति भावः। आसेति बभूवार्थे 'तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम्' इत्याह शाकटायनः। वल्लभस्तु—'न तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययम्' 'अस्तेर्भूः' इति भ्वादेशनियमात्तात्तिङन्तस्यैवाभावात्। किंतु कवीनामयं प्रामादिकः प्रयोगः' इत्याह। वामनस्तु—'अस गतिदीप्त्यादानेष्विति धातोर्लिटि रूपमिदम्' इत्याह। अस इत्यानुदात्तेद्दीप्त्यर्थे आस दिदीपे। प्रवृत्तः इत्यर्थः॥ ३५॥

हिन्दी—उस पार्वती के दोनों गोल-गोल आनुपूर्वी रूप से चढ़ाव उतारवाले अनति दीर्घ जङ्घा को निर्माण करने वाले ब्रह्मदेव के एकत्रीकृत समस्त सौन्दर्य उसी के निर्माण में व्यय हो जाने से अन्य अवयवों के निर्माण में अतिरिक्त लावण्यद्रव्य का मानो अत्यन्त प्रयत्न से उन्हें संग्रह करना पड़ा।

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥ ३६॥

अन्वयः—नागेन्द्रहस्ताः त्वचि कर्कशत्वात् कदलीविशेषाः एकान्तशैत्यात् लोके परिणाहिरूपं लब्ध्वा अपि तदूर्वोः उपमानग्राह्याः जाताः।

संजी०—नागेन्द्रेति । नागेन्द्राणामैरावतादीनां हस्ता करास्त्वचि चर्मणि कर्कशत्वात्कदलीविशेषा रामरम्भादय एकान्तशैत्यान्नियतशैत्याद्धेतोः लोके परिणाहि वैपुल्ययुक्तम्। 'परिणाहो विशालता' इत्यमरः । रूपं लब्ध्वापि । अपिशब्दात्करिकदलीमात्रस्य तादृक्परिणाहो नास्तीति भावः । तस्या ऊर्वोस्तदूर्वोरुपमानबाह्या जाता उपमानक्रियानर्हा बभूवुः । तदूर्वोर्न कार्कश्यं नाप्येकान्तशैत्यमिति भावः ॥ ३६ ॥

हिन्दी—गजेन्द्र के शुण्ड त्वचों के कठोर होने के कारण, कदली विशेष अत्यन्त शीतल होने के कारण विशालता को प्राप्त करने पर भी उसके ऊरु की उपमा (सादृश्य) से बाहर (तुच्छ) हो गये ।

एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।
आरोपितं यद् गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमङ्कम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यत् पश्चात् अनन्यनारीकमनीयम् अङ्कम् आरोपितम् अनिन्दिता । याः काञ्चीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि ।

संजी०—एतावतेति । अनिन्दिताया अनवद्यायाः पार्वत्याः काञ्चीगुणस्थानं नितम्बबिम्बमेतावता नन्वेतावतैव । 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनया मन्त्रणे ननु' इत्यमरः । शोभत इति शोभि । आवश्यके णिनिः, ततस्तप्रत्ययः । अनुमेयं शोभित्वं यस्य तदनुमेयशोभि । 'त्वप्रत्ययश्वस्तुगतार्थत्वान्न प्रयुक्तः' इत्याह वामनः । पश्चादादौ नौ स्पृह्येऽपि पश्चात् । तपश्चर्यानन्तरमित्यर्थः । गिरौ शेत इति गिरिशः शिवः । 'गिरौ डश्छन्दसि' इति डप्रत्ययः । भाषायामपि क्वचिदिष्यते । अथवा गिरिः कैलासोऽस्यास्तीति गिरिशः । लोमादित्वाच्छप्रत्ययः । तेन गिरिशेन । अन्यासां नारीणां कमनीयः कामयितुं शक्यो न भवतीत्यनन्यनारीकमनीयस्तमङ्कं निजोत्सङ्गमारोपितमधिरोपितमिति यत् । एतावता लिङ्गेनेति पूर्वेणान्वयः । रोहतेर्ण्यन्तात्कर्मणि क्तः । 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' इति हकारस्य पकारः । गत्यर्थविवक्षायां द्विकर्मकत्वम् । प्रधाने कर्मणि क्तः । गिरिजानितम्बबिम्बं विश्वातिशायिसौन्दर्यं गिरिशाङ्कारूढत्वाद्व्यतिरेकेण नार्यन्तरनितम्बबिम्बवत् । विपक्षे हेत्वनुक्तिरेव बाधिका । दाक्षायणीनितम्बबिम्बस्य तु पक्षसपक्षयोरन्यतरभावानतिवृत्तेर्निष्कलङ्कमनुमानमित्यलमस्थानसंरम्भेण ॥ ३७ ॥

हिन्दी—विवाह के अनन्तर शङ्कर ने अन्य नारियों के लिये सर्वथा दुर्लभ ऐसे स्वकीय अङ्क में पार्वती के मनोज्ञ नितम्बों को स्वयम् स्थापित किया । इसी से उसके नितम्ब की शोभा का अनुमान किया जा सकता है ।

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोमराजिः ।
नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवार्चिः ॥३८॥

अन्वय—नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रं प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमनेः अर्चिः इव रराज ।

संजी०—तस्या इति ॥ नीवीं वस्त्रग्रन्थिम् । 'स्त्रीकटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च' इत्यमरः । अतिक्रम्यातीत्य नतं निम्नं नाभिरन्ध्रं प्रविष्टा प्रविशन्ती तन्वी सूक्ष्मा तस्याः पार्वत्या नवलोमराजिः सितेतरस्यासितस्य । इन्द्रनीलस्येत्यर्थः । तस्याः पार्वत्या मेखला तन्मेखला । तस्या इत्यनुवृत्तो पुनस्तच्छब्दोपादानं वाक्यान्तरत्वात्सोढव्यम् । यद्वा तस्या नीव्या मेखला तन्मेखला तत्र तनवस्थानात् । तस्या मध्यमणेरर्चिः प्रभेव रराज । 'ज्वाला-भासोर्नपुंस्यर्चिः' इत्यमरः ॥ ३८ ॥

हिन्दी—नीवी का अतिक्रमण कर पार्वती के नम्र नाभिदेश में प्रविष्ट हुई अत्यन्त सूक्ष्म रोमपङ्क्ति इन्द्र नीलमणि के समान मेखला की मध्य मणि से निकली हुई मानो प्रभा थी ।

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला ।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारु वलित्रयं कामस्य आरोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तं सोपानम् इव बभार ।

संजी०—मध्येनेति ॥ 'वेदिः परिष्कृता भूमिः' इत्यमरः । वेदिविलग्नमध्या वेदिवत्कृशमध्या । तनुमध्येति यावत् । सा बाला पार्वती । मध्येन मध्यभागेन चारु सुन्दरं वलित्रयं कामस्यारोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तं रचितं सोपानमिव बभारेत्युत्प्रेक्षा ॥ ३९ ॥

हिन्दी-वेदी के समान मध्यभाग वाली अतएव कृशोदरी पार्वती मध्यभाग में सुन्दर त्रिवली को स्तनवदनादि उच्च प्रदेश में कामदेव के चढ़ने के लिये तारुण्य से बनाई गई सुन्दर तीन सीढ़ियों की तरह धारण करती थी ।

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ ४० ॥

अन्वय—अन्योन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं तथा प्रवृद्धं श्याममुखस्य तस्य मध्ये यथा मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् आसीत् ।

संजी०—अन्योन्येति । अन्योन्यं परस्परम् । 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये' इति द्विरुक्तिः । 'समासवच्च बहुलम्' इति बहुलवचनादसमासपक्षेऽपि

पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः। उत्पीडयदुपरुन्धत्पाण्डु गौरमुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं तथा तेन प्रकारेण प्रवृद्धम्। कर्तरि क्तः। श्याममुखस्य कृष्णचूचुकस्येति स्वरूपवर्णनं तस्य स्तनद्वयस्य मध्ये यथा येन प्रकारेण मृणालसूत्रान्तरं बिसतन्तुमात्रावकाशोऽप्यलभ्यं लब्धुमशक्यम्। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये' इत्यमरः। अत्र सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपातिशयोक्त्यलङ्कारः। कुचयोः पीवरत्वातिशयार्थमवकाशसम्बन्धेऽप्यसम्बन्धाभिधानादिति ॥ ४० ॥

हिन्दी—कमल के समान नेत्र वाली पार्वती के परस्पर सटे हुये सुन्दर दोनों स्तन इस तरह बढ़े हुये थे कि श्याममुख वाले उन दोनों के बीच में कितना अवकाश हैं इस परीक्षा के लिये परीक्षक ने बिसतन्तु के इतना भी अन्तर नहीं पाया।

लोके सुकुमारत्वमेव कुसुमास्त्रस्य साधकत्वमिति स्थिते सत्याह—

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यौ बाहू पराजितेन अपि मकरध्वजनेन हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ तदीयौ बाहू शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ इति मे वितर्कः (अस्ति)

संजी०—शिरीषेति॥ तस्या इमौ तदीयौ बाहू शिरीषपुष्पादधिकं सौकुमार्यं मार्दवं ययोस्तथोक्ताविति मे वितर्क ऊहः। कुतः। यौ बाहू पराजितेनापि पूर्वं निर्जितेनापि मकरध्वजेन कामेन हरस्य कण्ठपाशौ कण्ठबन्धनरज्जू कृतौ। कण्ठालिङ्गनं प्रापिताबित्यर्थः। तदसाध्यसाधनात्तत आधिक्यमिति भावः। अत्र बाह्वोरारोपितकण्ठपाशत्वस्य प्रकृतवैरनिर्यातनोपयोगात्परिणामालङ्कारः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—पराजित हुये कामदेव ने जिन बाहुओं के द्वारा शिवजी को कण्ठ में फाँस कर उन्हें पराजित किया पार्वती के वे बाहू शिरीष के पुष्प से भी अधिक सुकुमार थे ऐसा मेरा (कवि का) विचार है।

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥४२॥

अन्वयः—स्तनबन्धुरस्य तस्याः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योन्यशोभाजननात् भूषणभूष्यभावः साधारणः बभूव।

संजी०—कण्ठस्येति॥ स्तनाभ्यां बन्धुरस्योन्नतस्य तस्याः पार्वत्याः कण्ठस्य गलस्य निस्तलस्य वर्तुलस्य मुक्ताकलापस्य मुक्ताभूषणस्य च। 'वर्तुलं निस्तलं वृत्तं बन्धुरं तून्नतानतम्'। 'कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि' इति चामरः। अन्योन्यशोभाजननाद् भूषणभूष्यभावोऽलङ्कारालङ्कार्यभावः साधारणः समानो

बभूव। उभावप्यन्यस्य भूष्यौ भूषणे च बभूवतुरित्यर्थः। अत्र कण्ठमुक्ता-कलापयोः सोभाक्रियाद्वारेणान्योन्यभूषाजनकत्वादन्योन्यालङ्कारः। तदुक्तम्—'परस्परं क्रियाजननमन्योन्यम्' इति ॥ ४२ ॥

हिन्दी—पार्वती के स्तनोन्नत कण्ठ प्रदेश तथा उसमें धारण किये गये गोल-गोल मोतियों के आभूषण दोनों ही परस्पर शोभा बढ़ाने के कारण भूषणभूष्यभाव को प्राप्त हुये।

अर्थात् कण्ठ की शोभा मौक्तिक से और मौक्तिक की शोभा कण्ठ से इस प्रकार परस्पर भूषणभूष्यभाव प्राप्त हुआ।

इदानीं पार्वतीवदनं चन्द्रकमलसदृशमित्येतदेव वचोभङ्ग्याह—

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥४३॥

अन्वयः—लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता सती पद्मगुणान् न भुङ्क्ते। पद्माश्रिता सती चान्द्रमसीं अभिख्यां न भुङ्क्ते। उमामुखं प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयां प्रीतिम् अवाप।

संजी०—चन्द्रमिति ॥ लोला चपला परिभ्रमणशीलेत्यर्थः। लक्ष्मीः कान्त्य-भिमानिनी देवता चन्द्रं गता प्राप्ता सती पद्मगुणान्सौगन्ध्यादीन्न भुङ्क्ते नानु-भवति। पद्माश्रिता सती चन्द्रमस इमां चान्द्रमसीमभिख्यां शोभाम्। 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः। अमृतवदानन्दिनीं न भुङ्क्ते। उमामुखं प्रतिपद्य तु द्वे चन्द्रपद्मे संश्रयः कारणं यस्यास्तां द्विसंश्रयां प्रीतिमानन्दमवाप। तत्रो-भयगुणसम्भवादिति भावः। अत्रोपमानभूतचन्द्रपद्मापेक्षयोपमेयस्योमामुख-स्याधिकगुणवत्त्वोक्त्या व्यतिरेकालङ्कारः। तदुक्तम्—'भेदप्राधान्येनोपमाना-दुपमेयस्याधिक्ये विपर्यये वा व्यतिरेकः' इति ॥ ४३ ॥

हिन्दी—चञ्चल लक्ष्मी रात्रि में पूर्णचन्द्र में रहने के कारण कमलगत सौरभ्यादि गुणों को नहीं प्राप्त करती और दिन में कमल में रहने के कारण चन्द्रगत आह्ला-दकत्वादि गुणों को नहीं प्राप्त करती किन्तु जब वे पार्वती के मुख को प्राप्त की तो चन्द्र और कमल दोनों के ही गुणों (सौरभ्य आह्लादकत्वादि) का सुख प्राप्त करने लगीं।

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥४४॥

अन्वयः—पुष्पं प्रवालोपहितं स्यात् यदि मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थं स्यात् यदि ततः विशदस्य ताम्रोष्ठपर्यस्तरुचः तस्याः स्मितस्य अनुकुर्यात्।

संजी०—पुष्पमिति ॥ पुष्पं पुण्डरीकादिकं प्रवाले बालपल्लव उपहितं निहितं स्याद्यदि। 'प्रवालो वल्लकीदण्डे विद्रुमे बालपल्लवे' इति विश्वः। मुक्ताफलं वा स्फुटे निर्मले वा विद्रुमे तिष्ठतीति स्फुटविद्रुमस्थं स्याद्यदि ततस्तर्हि विशदस्य शुभ्रस्य ताम्रे अरुणे ओष्ठे पर्यस्ता प्रसृता रुक्कान्तिर्यस्य तथोक्तस्य तस्याः पार्वत्याः स्मितस्यानुकुर्यात्। स्मितमनुकुर्यादित्यर्थः। अत्र माषाणामश्नीयात्' इतिवत्सम्बन्धमात्रविवक्षया षष्ठी। अत्र पुष्पप्रवालयोश्चासम्बन्धेऽपि सम्बन्धोक्तयातिशयोक्तिः। 'सा च सम्भावना' इत्यलङ्कारसर्वस्वकारः। विशेषस्तु पुष्पमुक्ताफलयोरुपमानयोः प्रकृतोत्कर्षार्थमुपमेयताकल्पनात्प्रतीपालङ्कारः। तदुक्तम्—'उपमानस्याक्षेप उपमेयताकल्पनं वा प्रतीपः' इति लक्षणात्। स पूर्वोक्तातिशयोक्त्यनुप्राणित इति ॥ ४४ ॥

हिन्दी—यदि नूतनपल्लव से अनुविद्ध श्वेत पुष्प हो अथवा मूंगे में अनुस्यूत मोती हो तो दोनों में किसी एक के साथ पार्वती के रक्तवर्ण के ओष्ठ पर बिखरी हुई धवल स्मित की समानता की जा सकती है।

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥ ४५ ॥

अन्वयः—अभिजातवाचि तस्याम् अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायां अन्यपुष्टा अपि ताड्यमाना वितन्त्रीः इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा भवति।

संजी०—स्वरेणेति। अभिजातवाचि मधुरभाषिण्यां तस्यां पार्वत्याममृतस्रुतामृतस्राविणेव। क्विप्। स्वरेण नादेन प्रजल्पितायामालपन्त्याम्। कर्तरि क्तः। अन्यैः काकादिभिः पुष्टान्यपुष्टा कोकिलापि। मुख्यया वृत्त्या जातिवचनत्वभावान्ङीबभावः। ताड्यमाना वाद्यमाना विषमबद्धा तन्त्रीर्वितन्त्रीरिव अवितॄस्तृतन्त्रिभ्यः ई' इति तन्त्रिधातोरौणादिक ईप्रत्ययः। ङीबभावान्न 'हल्ङ्याब्भ्यः—' इति सुलोपः। तदुक्तम्—'अवीलक्ष्मीतरीतन्त्रीधीह्रीश्रीणामुणादिषु। स्त्रीलिङ्गानाममीषां तु न सुलोपः कदाचन ॥ एते ङीबन्ता न भवन्तीत्यर्थः। श्रोतुर्जनस्य प्रतिकूलशब्दा कर्णकठोरनादा भवतीति शेषः ॥४५॥

हिन्दी—पार्वती के मधुर भाषण में अमृत बरसाने वाले मधुर नाद के सामने मधुर आलाप में प्रसिद्ध कोयल का मधुर शब्द भी अनजान में बजाई गई वाणी की तरह सुनने वालों को कठोर प्रतीत होती थी।

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ? ॥ ४६ ॥

अन्वयः—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयताक्ष्या तया मृगाङ्गनाभ्यः गृहीतं नु यद्वा मृगाङ्गनाभिः ततो गृहीतं नु।

संजी०—प्रवातेति। प्रवाते प्रभूतवातस्थले यन्नीलोत्पलं ततो निर्विशेषं निर्भेदं, तत्सदृशमित्यर्थः। अधीरविप्रेक्षितं चकितावलोकितमायताक्ष्या विशालनेत्रया तया पार्वत्या मृगाङ्गनाभ्यो हरिणीभ्यो गृहीतमभ्यस्तं नु। अत्र विवक्षितस्य परस्परग्रहणस्योत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षेति केचित्। तदुपजीविसन्देहालङ्कार इत्यन्ये। उभयोः संकर इत्यपरे ॥ ४६ ॥

हिन्दी--मन्द मन्द वायु के झकोरे से हिलने वाले नीलकमल के समान सुन्दर कटाक्षावलोकन को पार्वती ने हरिणियों से सीखा था अथवा हरिणियों ने पार्वती से सीखा था। इस बात का निर्णय विचार करने पर भी संभव नहीं है।

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ ४७ ॥

अन्वयः---आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाऽञ्जननिर्मिता इव (स्थिता) या कान्तिः लीलाचतुरां तां वीक्ष्य अनङ्गः स्वचापसौन्दर्यं मुमोच।

संजी०—तस्या इति। आयतलेखयोर्दीर्घरेखयोस्तस्याः पार्वत्या भ्रुवोः सम्बन्धिनी शलाकयाञ्जनेन निर्मितेव स्थिता या कान्तिर्लीलाचतुरां विलाससुभगां तां कान्तिं वीक्ष्यानङ्गः स्वचापसौन्दर्येण यो मदस्तं मुमोच। इह सौन्दर्यातिशयोक्तिः ॥ ४७ ॥

हिन्दी—अञ्जन शलाका से निर्मित चित्ररेखा की तरह आयत लीवर में दक्ष अतएव विशाल पार्वती के भ्रू युगों की कान्ति को देखकर कामदेव ने अपने धनुष की शोभा का अभिमान छोड़ दिया।

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—तिरश्चां चेतसि लज्जा स्यात् यदि, असंशयं पर्वतराजपुत्र्याः तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य चमर्यः बालप्रियत्वं शिथिलं कुर्युः।

संजी०—लज्जेति। तिरश्चां तिर्यग्जातीनां चेतसि लज्जा स्याद्यदि। संशयाभावोऽसंशयम्। सन्देहो नास्तीत्यर्थः। पर्वतराजपुत्र्याः। शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् इति ङीन्। तं प्रसिद्धं केशकलापम्। 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः। प्रसमीक्ष्य दृष्ट्वा चमर्यो मृगीविशेषाः बाला प्रिया यासामिति विग्रहे बालप्रियास्तासां भावो बालप्रियत्वम्। प्रियबालमित्यर्थः। आहिताग्न्यादिपाठाद्वा परनिपातः। 'त्वतलोर्गुणवचनस्य' इति पुंवद्भावः। शिथिलं कुर्युः। निर्लज्जत्वान्न शिथिलयन्तीत्यर्थः। अत एवात्र निर्लज्जत्वकरणहेतोराद्यपादे वाक्यार्थत्वेनोक्त्या काव्यलिङ्गाख्योऽलङ्कारः। तदुक्तम्—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' इति ॥ ४८ ॥

हिन्दी—मनुष्यों के समान यदि पशु पक्षियों के मन में लज्जा होती तो चमरी मृगियाँ पार्वती के केश पाशों को देखकर स्वकीय सौरम्य रहित केशपाशों में विशेष आदर कभी न करतीं।

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ ४९ ॥

अन्वयः—सा विश्वसृजा एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव प्रयत्नात् यथाप्रदेशं विनिवेशीतेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता।

संजी०—सर्वोपमेति। किंबहुना सा पार्वती विश्वसृजा विधात्रैकत्र तिष्ठतीत्येकस्थं तस्य सौन्दर्यस्य। सर्ववस्तुगतस्येत्यर्थः। दिदृक्षयेव प्रयत्नाद्यथाप्रदेशं क्रमाद्विनिवेशितेन स्थापितेन सर्वेषामुपमाद्रव्याणां चन्द्रारविन्दाद्युपमानवस्तूनां समुच्चयेन समाहारेण निर्मिता। दिदृक्षयेवेति फलोत्प्रेक्षा दर्शनार्थित्वाद्विश्वसृज इति ॥ ४९ ॥

हिन्दी—संपूर्ण जगत् का निर्माण करने वाले ब्रह्मदेव ने मानो एक ही स्थान पर समग्र सौन्दर्य को देखने की इच्छा से बड़े प्रयत्नपूर्वक सर्वोपमा योग्य प्रसिद्ध और सुन्दर द्रव्यों (चन्द्र, कमल, तिल, कुसुम आदि) की खोज कर पुनः उन्हें यथा स्थान मुख, नेत्र नासिका आदि) सन्निविष्ट कर पार्वती की रचना की थी।

तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥५०॥

अन्वयः—कामचरः नारदः कदाचित् पितुः समीपे तां कन्यां प्रेक्ष्य किल प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धं हरं एकबधूं भवित्रीं समादिदेश।

संजी०—तामिति। कामेनेच्छया चरतीति कामचरो नारदः। कदाचित्पितुर्हिमवतः समीपे कन्यां तां पार्वतीं प्रेक्ष्य किल प्रेम्णा न त्वन्यथा हरस्य शिवस्यार्धं हरतीत्यर्धंहरा। 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' इत्यच्प्रत्ययः। शरीरास्यार्धंहरास् शरीरार्धहराम्। कुलधुन्धरादिवद्यद्वारा समुदायविशेषकत्वात्समासः। अन्यथा त्वर्धंम्य समप्रविभागवचनत्वादशरीरेति स्यात्। एकवधूमसपत्नीकां भार्यास्। 'पूर्वकाल—'इत्यादिना समासः। भवित्रीं भाविनीं समादिदेश। हरस्यार्धाङ्गहारिण्येकपत्नी भविष्यतीत्यादिष्टवानित्यर्थः ॥ ५० ॥

हिन्दी—यदृच्छया विचरण करने वाले नारदमुनि ने एक समय हिमालय के समीप में उस कन्या को देखकर यह कन्या शङ्कर के आधे शरीर को हरण करने वाली उनकी एक मात्र पत्नी होगी। ऐसी भविष्यवाणी की।

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः।
ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥५१॥

अन्वयः—'गुरुः अतः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराभिलाषः सन् तस्थौ। मन्त्रपूतं हव्यं कृशानो ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति।

संजी०—गुरुरिति। गुरुः पिता। 'गुरू गोः पतिपित्राचार्यौ' इत्यमरः। अतो नारदवचनाद्धेतोरस्याः पार्वत्याः प्रगल्भे वयस्यपि यौवने सत्यपि निवृत्तोऽन्यस्मिन्वरे जामातर्यभिलाषो यस्य स तथोक्तः सन्। 'वरो ना रूपजामात्रोः' इति वैजयन्ती। तस्थौ। वरान्तरं नान्विष्टवानित्यर्थः। ननु कुतोऽसौ निबन्ध इत्यत आह—ऋत इति। तथाहि मन्त्रैः पूतं संस्कृतं हूयत इति हव्यमाज्यादिकं कृशानोः पावकादृते कृशानुं विना। 'अन्यारादितरे—' इत्यादिना पञ्चमी। अपराणि तेजांसि सुवर्णादीनि नार्हन्ति। न भजन्तीत्यर्थः। ईश्वरादन्यस्य तद्योग्यस्याभावादुपेक्षेति भावः॥ ५१॥

हिन्दी—विश्वसनीय नारद के कथनानुसार हिमालय ने युवती होने पर भी पार्वती के लिये अन्य वर के खोज की अभिलाषा नहीं की। जिस प्रकार मन्त्र से पवित्र की गई आहुति को केवल अग्नि ही ग्रहण कर सकता है। अन्य नहीं।

तर्हि तमेवाहूय दीयतामित्याशङ्क्याह—

अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ॥ ५२ ॥

अन्वयः—अद्रिः अयाचितारं देवदेवं सुतां ग्राहयितुं न शशाक (तथाहि) साधुः अभ्यर्थनाभ्यङ्गभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थ्यम् अवलम्बते।

संजी०—अयाचितारमिति। अद्रिर्हिमवानयाचितारमयाचमानं देवदेवं महादेवं सुतां पार्वतीं ग्राहयितुं स्वयमाहूय परिग्राहयितुं न शशाक नोत्सेहे। तथाहि साधुः सज्जनः। 'साधुर्वार्धुषिके चारौ सज्जने चाभिधेयवत्' इति विश्वः। अभ्यर्थनाभङ्गभयेन याच्ञावैफल्यभीत्येष्टेऽप्यर्थे विषये माध्यस्थ्यमौदासीन्यमवलम्बते॥ ५२॥

हिन्दी—हिमालय बिना याचना किये अपनी पुत्री का विवाह शिव जी से अपनी इच्छानुसार नहीं करना चाहते थे क्योंकि बड़े लोग अपने इष्ट वस्तु के सम्पादन में प्रार्थना भङ्ग के भय के कारण किसी ने मध्यस्थता का आश्रय चाहते हैं।

न च तथैव स्थितः, किं तूपायान्तरं चिन्तितवानिति वक्तुं प्रस्तौति—

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।
तदाप्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत् ॥ ५३ ॥

अन्वयः—सुदती सा पूर्वे जनने यदा दक्षरोषात् शरीरं ससर्ज । तदा प्रभृति एव पशूनां पतिः विमुक्तसङ्गः सन् अपरिग्रहः अभूत् ।

संजी०—यदेति । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती । 'वयसि दन्तस्य दन्तृ' इति दत्रादेशः । 'उगितश्च' इति ङीप् । सा पार्वती पूर्वे जनने पूर्वस्मिञ्जन्मनि । पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति स्मिन्नादेशविकल्पः । 'पूर्वज्वलने' इति पाठे पूर्व दाक्षायणीत्वे ज्वलने योगाग्नौ । यदा यस्मिन्कालेदक्षरोषाच्छरीरं देहं ससर्ज तत्याज, तदाप्रभृत्ये तदाद्येव यदा तथा पशूनां पतिः शिवो विमुक्तसङ्गस्त्यक्तविषयासङ्गः सन् । अपरिग्रहोऽपत्नीकोऽभूत् । स्त्र्यंतरं न परिजग्राहेत्यर्थः 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः ॥ ५३ ॥

हिन्दी—जब सुन्दर दाँतों वाली पार्वती ने अपने पूर्वजन्म में पिता दक्ष के ऊपर क्रुद्ध होकर अपने शरीर को त्याग दिया तभी से शङ्कर ने भी सर्वसङ्ग का परित्याग कर दिया और किसी दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया ।

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु ।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्क्वणात्किन्नरमध्युवास ॥ ५४ ॥

अन्वयः—कृत्तिवासाः यतात्मा सः तपसे गङ्गा प्रवाहो क्षितदेवदारु मृगनाभिगन्धि क्वणात्किन्नरं किञ्चित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास ।

संजी०—स इति । कृत्तिवासाश्चर्माम्बरः । 'अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री' इत्यमरः । यतात्मा नियतचित्तः सः पशुपतिस्तपसे तपोर्थं गङ्गाप्रवाहेणोक्षिताः सिक्ता देवदारवो यस्मिंस्मतत्तथोक्तम् । मृगनाभिगन्धि कस्तूरीगन्धवत् । कस्तूरीमृगसञ्चारादिति भावः । 'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी चाथ कोलकम्' इत्यमरः । क्वणन्तो गायन्तः किन्नरा यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । किञ्चित्किमपि हिमाद्रेः प्रस्थं सानुमध्युवास । कुत्रचित्प्रस्थ उवासेत्यर्थः । 'उपान्वध्याङ्वसः' इत्याधारस्य कर्मत्वम् । 'प्रस्थोऽस्त्री सानुमानयोः' इत्यमरः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—जितेन्द्रिय उन भगवान् शङ्कर ने तपश्चर्या करने के लिये गजचर्म धारण कर लिया और भागीरथी के प्रवाह से सींचे जाते हैं देवदारु के वृक्ष जहाँ पर ऐसे कस्तूरी मृगों से सुगन्धित किन्नर मिथुनों से गायमान हिमालय के किसी रमणीय शिखर पर निवास करने लगे ।

गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः ।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ॥ ५५ ॥

अन्वयः—गणाः नमेरुप्रसवाऽवतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वचः दधानाः मनः शिला-विच्छुरिताः शलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः ।

संजी०—गणा इति ॥ गणाः प्रमथगणाः । 'गणाः प्रमथसंख्यौघाः इति वैजयन्ती । नमेरुप्रसवावतंसाः सुरपुंनागकुसुमशेखराः । 'नमेरुः' सुरपुंनागः' इति विश्वः । स्पर्शवतीः सुखस्पर्शाः । मृद्वीरित्यर्थः । प्रशंसायां मतुप् । भूर्ज-त्वचो भूर्जवल्कलानि दधानाः । बसाना इत्यर्थः । मनःशिलाभिर्धातुविशेषै-र्विच्छुरिता अनुलिप्ताश्च सन्तः । शिलायां भवं शैलेयम् । गन्धौषधिविशेषः । शिलायाः 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति भवार्थे ढक् । शिलाजतु च शैलेयम्' इति यादवः । तेन नद्धेषु व्याप्तेषु शिलातलेषु निषेदुः । उपविविशुरित्यर्थः ॥ ५५ ॥

हिन्दी—शिव जी के प्रमथादि गण भी सर्वदा सुलभ सुरपुंनाग के कुसुमों का आभूषण तथा अत्यन्त मुलायम भोज पत्र पहन कर शिलाजीत से व्याप्त पत्थरों की चट्टानों पर बैठ गये ।

तुषारसंघातशिलाः सुराग्रैः समुल्लिखन्दर्पकलः ककुद्मान् ।
दृष्टः कथंचिद्गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद ॥ ५६ ॥

अन्वयः—तुषारसङ्घातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः विविग्नैः गवयैः कथ-ञ्चिद् दृष्टः ककुद्मान् असोढसिंहध्वनिः सन् उन्ननाद ।

संजी०—तुषारेति । तुषारसंघाता हिमघनास्त एव शिलास्ताः खुराग्रैः समुल्लिखन्विदारयन्दर्पेण कलो मधुरध्वनिर्यस्य स दर्पकलो विविग्नैर्भीतैर्ग-वयैर्गोसदृशमृगविशेषैः कथंचित्कृच्छ्रेण दृष्टः । काकुदमस्यास्तीति ककुद्मान्वृषभो-ऽसोढः सिंहानां ध्वनिर्येन स सिंहध्वनिमसहमानः सन् । उन्ननादोच्चैर्ननाद । जगर्जेत्यर्थः । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । तदुक्तम्—स्वभावोक्तिरसौ चारु यथा-वद्वस्तुवर्णनम्' इति ॥ ५६ ॥

हिन्दी—बर्फ के बड़े-बड़े चट्टानों को अपने खुरों के अग्रभाग से विदीर्ण करता हुआ अहङ्कार से मधुर शब्द करता हुआ भय से व्याकुल गवयों से किसी प्रकार देखा जाता हुआ बड़े-बड़े डील वाला और सिंह के नाद को सहन न कर सकने वाला शिव का नन्दी वहीं बड़ी भयङ्कर गर्जना करने लगा ।

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः ।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार ॥ ५७ ॥

अन्वयः—तपसः फलानां स्वयं विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वयं एव मूर्त्यन्तरं समित्स-मिद्धं अग्नि आधाय केन अपि कामेन तपः चचार ।

संजी०—तत्रेति। तपसः फलानामिन्द्रत्वादीनां स्वयं विधाता जनयिता। दातेत्यर्थः। अष्टौ मूर्तये यस्य सोऽष्टमूर्तिरीश्वरः। 'भूतार्कचन्द्रयज्वानो मूर्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः'। इति तत्र प्रस्थे स्वं स्वकीयमेव मूर्त्यन्तरं मतिभेदं समिद्भिः समिद्धं दीपितमग्निमाधाय प्राप्तछाप्य केनापि कामेन फलकामनया तपश्चचार चक्रे। 'प्रयोजनमुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इति न्यायात्कामेनेत्युक्तम्। तस्यावाप्तसमस्तकामत्वात्केनापीत्युक्तम्॥ ५७॥

हिन्दी—हिमालय के उसी रम्य शिखर पर तपस्या के स्वर्गादि फलों का देने वाले अष्टमूर्त्ति महादेव जी ने अपने मूर्त्यन्तर (अग्निर्वैरुद्र इति स्मरणात्) समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि का आधान कर किसो अनिर्वचनीय फल की कामना से तपस्या करने लगे।

अनर्घ्यमर्घ्येण तमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनायास्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम्॥ ५८॥

अन्वयः—अद्रिनाथः अनर्घ्यं स्वर्गौकसाम् अर्चितं तं अर्घ्येण अर्चयित्वा अस्य आराधनाय सखी समेतां प्रयतां तनूजाम् आदिदेश।

संजी०—अनर्घ्येति। अद्रीणां नाथोऽद्रिनाथो हिमवान्। अर्घं मूल्यमर्हतीत्यर्घः। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः। 'दण्डादिभ्यो यः' इति यप्रत्ययः। अर्घ्यो न भवतीत्यनर्घ्यस्तमनर्घ्यम्। अमूल्यमित्यर्थः। स्वर्ग ओकः स्थानं येषां तेषां स्वर्गौकसां देवानामर्चितम्। देवैः पूज्यमानमित्यर्थः। 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' इति वर्तमाने क्तः। 'क्तस्य च वर्तमाने' इति षष्ठी। तमीश्वरमर्घ्येण पूजार्थोदकेन। 'पादार्घाभ्यां च' इति यत् प्रत्ययः। 'षट् तु त्रिष्वर्घ्यमर्घार्थे पाद्यं पादाय वारिणि' इत्यमरः। अर्चयित्वा पूजयित्वास्येश्वरस्याराधनाय सखीभ्यां जयाविजयाभ्यां समेतां प्रयतां नियतां तनूजां सुतां समादिदेशाज्ञापयामास॥ ५८॥

हिन्दी—हिमालय ने अत्यन्त श्रेष्ठ देवताओं के भी पूज्य उन शङ्कर की यथायोग्य पूजा कर उनकी सेवा के लिये सखियों के साथ श्रद्धा युक्त पार्वती को नियुक्त कर दिया।

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः॥ ५९॥

अन्वयः—गिरीशः समाधे प्रत्यर्थिभूतां अपि शुश्रूषमाणां ताम् अनुमेने। विकारहेतौ सति येषां चेतांसि न विक्रियन्ते त एव धीराः।

संजी०—प्रत्यर्थीति । गिरिशः शिवः समाधेः प्रत्यर्थिभूतां प्रतिपक्षभूतामपि । सुप्सुपेति समासः । श्रोतुमिच्छन्तीं शुश्रूषमाणां सेवमानाम् । सेवका हि सेव्ये दत्तकर्णा भवन्ति । इच्छार्थे सन्प्रत्ययः । 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' इत्यात्मनेपदम् । तां पार्वतीमनुमेनेऽङ्गीचकार । न प्रतिषिद्धवानित्यभिप्रायः । न चैतावता धीरस्य कश्चिद्विकार इत्याशयः । धीरत्वमेवार्थान्तरन्यासेनाह—विकारेति । विकारस्य प्रकृतेरन्यथात्वस्य हेतौ स्त्रीसंनिधानादिकारणे सति विद्यमानेऽपि येषां चेतांसि न विक्रियन्ते न विकृतिं नीयन्ते त एव धीराः । 'विक्रियन्ते' इति कर्मणि लट् ॥ ५९ ॥

हिन्दी—महादेव जी ने तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने वाली उस सुन्दरी पार्वती को सेवा-शुश्रूषा के लिए स्वीकार कर लिया, क्योंकि चित्त में विकार के हेतुभूत (युवती स्त्री आदि) वस्तुओं के रहने पर भी जिनके चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होता है वे ही धीर कहे जाते हैं ।

शुश्रूषाप्रकारमेवाह—

अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥ ६० ॥

अन्वयः—सुकेशी सा अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां च उपनेत्री (सती) तच्छिरश्चन्द्रपादैः नियमितपरिखेदा (सती) प्रत्यहं गिरिशम् उपचचार ।

संजी०—अवचितेति । सुकेशी शोभनमूर्धजा । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीप् । सा पार्वत्यवचितानि लूनानि बलिपुष्पाणि पूजाकुसुमानि यया सा । वेदेर्नियमवेदिकायाः संमार्गे संमार्जने दक्षा । नियमविधेर्नित्यकर्मानुष्ठानस्य यानि जलानि तेषां बर्हिषां कुशानां चोपनेत्र्यानेत्री सती । तस्य गिरिशस्य शिरसि चन्द्रस्य पादै रश्मिभिः । 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः । नियमितपरिखेदा निर्वर्तितपरिश्रमा सत्यहन्यहनि प्रत्यहम् । 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि'—इत्यादिना नित्यतार्थेऽव्ययीभावः । नपुंसकादन्यतरस्याम्' इत्यच्प्रत्ययः । गिरिशमुपचचार शुश्रूषांचक्रे ॥ ६० ॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्य
उमोत्पत्तिर्नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

हिन्दी—सुन्दर केशों वाली वह पार्वती शिव जी की पूजा के लिये फूलों को बीन कर वेदिका का भलीभाँति संमार्जन कर नित्यकर्म के लिये जल तथा कुशों को लाकर प्रतिदिन सदाशिव की श्रद्धापूर्वक सेवा करने लगी और शिव जी के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की किरणों से अपनी क्लान्ति दूर कर लेती थी।

॥ इस प्रकार कालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के प्रथम सर्ग की हिन्दी पूर्ण हुई ॥

द्वितीयः सर्गः

तस्मिन्विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः ।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः ॥ १ ॥

अन्वयः—तस्मिन् काले तारकेण विप्रकृताः दिवौकसः तुरासाहं पुरोधाय स्वायंभुवं धाम ययुः ।

संजी०—तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्काले पार्वतीशुश्रूषाकाले तारकेण तारकनाम्ना वज्रणखपुत्रेण केनचिदसुरेण विप्रकृता उपप्लुताः । दिवमोकः स्थानं येषां ते दिवौकसो देवाः । 'दिवं स्वर्गेऽन्तरिक्षे च' इति विश्वः । द्यौरोक इति पक्षे पृषोदरादित्वात्साधुः । तुरं त्वरितं साहयत्यभिभवतीति तुराषाट् । साहयतेश्चौरादिकात्क्विप् । 'नहिवृतिवृषि—' इत्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घः । प्रकृतिग्रहणे प्रातिपदिकस्यापि ग्रहणात् । मुग्धबोधकारस्तु तुराशब्दष्टाबन्त इत्याचष्टे । तं तुरासाहं देवेन्द्रम् । अजादिषु साड्रूपत्वाभावात् । 'सहेः साडः सः' इति षत्वं न भवति । पुरोधाय पुरस्कृत्य । स्वयंभुवो ब्रह्मण इदं स्वायंभुवम् । संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् 'ओर्गुणः' इति गुणो न । धाम स्थानं ययुः । ब्रह्मलोकं जग्मुरित्यर्थः ॥ १ ॥

हिन्दी—जिस समय पार्वती सदाशिव की सेवा कर रही थी उस समय तारकासुर से पीड़ित हुये देवगण इन्द्र को आगे कर (प्रार्थना करने के लिये) स्वयंभू ब्रह्मदेव के लोक (सत्यलोक) में गये ।

तेषामाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम् ।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव ॥ २ ॥

अन्वयः—परिम्लानमुखश्रियां तेषां ब्रह्मा सुप्तपद्मानां सरसां प्रातः दीधितिमान् इव आविरभूत् ।

संजी०–तेषामिति । परिम्लाना परिक्षीणा मुखश्रीर्मुखकान्तिर्येषां तथोक्तानां तेषां देवानां ब्रह्मा सुप्तपद्मानां मुकुलितारविन्दानां सरसां प्रातर्दीधितिमान्सूर्य इवाविरभूत् । प्रकाशोऽभूदित्यर्थः । 'प्रकाशे प्रादुराविः स्यात्' इत्यमरः । सूर्योपमानेन तेषां म्लानिहरणत्वं सूचितम् । अत्रोपमाऽलङ्कारः । तल्लक्षणं तु—

'स्वतः सिद्धेन भिन्नेन संमतेन च धर्मतः ।
साम्यमन्येन वर्ण्यस्य वाच्यं चेकपदोपमा ॥' इति ॥ २ ॥

हिन्दी—तारकासुर के भय से उदासमुखश्री वाले उन देवताओं के समक्ष ब्रह्मदेव इस प्रकार प्रकट हुए जिस प्रकार प्रातःकाल मुकुलित कमलों वाले तालाब के सम्मुख उदीयमान सूर्य प्रकट हो जाते हैं।

अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम्।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ ३ ॥

अन्वयः—अथ ते सर्वे सर्वतोमुखं वागीशं सर्वस्य धातारं प्रणिपत्य अर्थ्याभिः वाग्भि उपतस्थिरे।

संजी०—अथेति। अथाविर्भावानन्तरं सर्वे ते देवाः सर्वतः समन्ततो मुखानि यस्य तं सर्वतोमुखम्। चतुर्मुखमित्यर्थः। वाचां विद्यानामीशं सर्वस्य जगतो धातारं स्रष्टारं ब्रह्माणं प्रणिपत्य नमस्कृत्य। अर्थादनपेताभिरर्थ्याभिः। अर्थयुक्ताभिरित्यर्थः। 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः। वाग्भिरुपतस्थिरे। तुष्टुवुरित्यर्थः। 'उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम्।' इत्यात्मनेपदम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—ब्रह्मदेव के प्रकट हो जाने के अनन्तर वे सभी देवगण चतुर्मुख वाणीपति, सबके धाता (पोषक) उन ब्रह्मदेव को प्रणाम कर अर्थयुक्त वाणी से इस प्रकार स्तुति करने लगे।

स्तुतिप्रकारमाह 'नमः' इत्यादिभिर्द्वादशभिः श्लोकैः—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! सृष्टेः प्राक् केवलात्मने पश्चात् गुणत्रयविभागाय भेदम् उपेयुषे (अतएव) त्रिमूर्त्तये तुभ्यं नमः।

संजी०—नम इति। हे भगवन्नित्यध्याहार्यं व्याख्येयम्। सृष्टेः प्राक्। 'अन्यारात्—' इत्यादिनाञ्चूत्तरपदयोगे पञ्चमी। केवलात्मन एकरूपाय। 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इति श्रुतेः। 'निर्णीते। केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृत्स्नयोः' इत्यमरः। पश्चात्सृष्टिप्रवृत्तिकाले। विभज्यतेऽनेनेति विभागः। गुणानां सत्त्वादीनां त्रयमेव विभागो यस्य तस्मै। 'गुणाः सत्त्वं रजस्तमः' इत्यमरः। भेदमुपाधिम्। स्रष्टृत्वादिकमित्यर्थः। उपेयुषे प्राप्तवते। 'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति निपातः। अत एव त्रिमूर्तये ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणे तुभ्यं नमः। 'नमः स्वस्ति—' इत्यादिना चतुर्थी। उक्तं च—'नमो रजोजुषे सृष्टौ स्थितौ सत्त्वमयाय च। तमोरूपाय संहारे त्रिरूपाय स्वयंभुवे ॥' इति ॥ ४ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! इस सृष्टि के पहिले मात्र अकेले, इसके पश्चात् सृष्टिप्रवृत्ति काल में सत्त्व, रज तथा तम आदि गुणों के विभाग करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश रूप त्रिमूर्त्ति को धारण करने वाले आपको प्रणाम है।

यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज त्वया।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अज ! अपाम् अन्तः त्वया यत् अमोघं बीजं उप्तम् अतः चराचरं विश्वं (जातम्) (तेन) तस्य प्रभवः गीयसे ।

संजी०—यदिति ॥ न जायत इत्यजः । हे अज, अपां जलानामन्तस्त्वया यदमोघमवन्ध्यं बीजं वीर्यमुप्तं निक्षिप्तम् । 'मुक्तम्' इति पाठे विसृष्टमित्यर्थः । 'शुक्रं तेजोरेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि च' इत्यमरः । अतस्ते बीजाच्चराचरं स्थावरजङ्गमात्मकम् । समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः । विश्वं जगत् । उत्पन्नमिति शेषः । तस्य विश्वस्य । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणं गीयसे । 'अदश्चराचरं विश्वं प्रसवस्तस्य गीयते' इति पाठे अद इदं चराचरं विश्वं तस्य बीजस्य प्रसवो गीयते । लोक इति शेषः । अत्र मनुः—'अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् । तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ इति ॥ ५ ॥

हिन्दी—हे अज ! आपने जल की सृष्टि कर उसमें अपना अमोघ बीज वपन किया। जिससे यह सारा चराचरात्मक विश्व उत्पन्न हुआ इसीलिये तो आप इस विश्व के उत्पत्तिस्थान (कारण) कहे जाते हैं ।

तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥ ६ ॥

अन्वयः—एकः त्वम् तिसृभिः अवस्थाभिः महिमानं उदीरयन् प्रलयस्थिति-सर्गाणां कारणतां गतः ।

संजी०—तिसृभिरिति ॥ एकः सृष्टेः प्राक्केवलस्त्वं तिसृभिरवस्थाभिस्त्रैगुण्यमयीभिर्हरिहरब्रह्मस्वरूपाभिर्महिमानं निजशक्तिमुदीरयन्विजृम्भयन्प्रलयस्थितिसर्गाणामन्तस्थित्युत्पत्तीनां कारणतां गतः । इदं 'पश्चाद्भेदमुपेयुषे' (२।४) इत्यस्य विवरणमतो न गतार्थत्वदोषः ॥ ६ ॥

हिन्दी—सृष्टि के पहले अकेले ही तुम, सृष्टि के अनन्तर आप हरि-हर-हिरण्यगर्भ इन तीन अवस्था-विशेषों से अपनी महिमा व्यक्त कर विश्व के प्रलय, स्थिति तथा सृष्टि की कारणता को प्राप्त हुये हो ।

भूतसृष्टिकर्तृत्वमुक्त्वा मिथुनसृष्ट्यर्थं मूर्तिमतो ब्रह्मणो भेदमाह—

स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया ।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—सिसृक्षया भिन्नमूर्त्तेः ते स्त्रीपुंसौ आत्मभागौ स्तः । तौ एव प्रसूतिभाजः सर्गस्य पितरौ स्मृतौ ।

संजी०—स्त्रीपुंसाविति ॥ स्त्री च पुमांश्च स्त्रीपुंसौ। 'अचतुर—' इत्यादिनाच्प्रत्ययान्तो निपातः। सिसृक्षया स्रष्टुमिच्छया भिन्नमूर्तेर्द्विधाकृतविग्रहस्य ते तवात्मनो देहस्य भागावात्मभागौ। 'आत्मा जीवे धृतौ देहे स्वभावे परमात्मनि' इति विश्वः। तावेव भागौ प्रसूतिभाज उत्पत्तिभाजः। सृज्यत इति सर्गस्तस्य। निजसृष्टेरित्यर्थः। माता च पिता च पितरौ। 'पिता मात्रा' इत्येकशेषः। स्मृतौ। वृद्धैरिति शेषः। अत्र मनुः—'द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥' इति ॥ ७॥

हिन्दी—जब आपने सृष्टि करने की इच्छा की उसी समय आप के शरीर के स्त्री-पुरुष दो भाग हो गये। अतः स्त्री और पुरुष दोनों ही आपके समान भाग हैं। इसीलिये वे दोनों उत्पन्न होने वाले इस सृष्टि के माता-पिता कहे जाते हैं। ('तस्य रूपमभूद् द्वेधा' इति भागवते)।

स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिदिवस्य ते।
यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ॥ ८॥

अन्वयः—स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिदिवस्य ते यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ (एव) भूतानां प्रलयोदयौ स्तः।

संजी०—स्वकालेति ॥ स्वकालस्य परिमाणेन 'चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इत्युक्तरूपेण व्यस्तं विभक्तं रात्रिदिवं रात्र्यहनी यस्य तस्य। यद्यपि 'अचतुर—' आदिसूत्रेण रात्रौ च दिवा च रात्रिदिवमिति सप्तम्यर्थे वृत्तौ द्वन्द्व इत्युक्तं तथापि 'दोषामन्यमहः' दिवामन्या रात्रिः' इत्यादिवदत्राऽपि प्रातिपदिकार्थवृत्तित्वं कथंचित्प्रयोगबलादाश्रयणीयम्। ते तव यौ तु स्वप्नावबोधौ तावेव भूतानां प्रलयोदयौ संहारसृष्टी। यदाहुः—'यदा स देवो जागर्ति तदैव चेष्टते जगत्। यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं प्रलीयते॥' इति। एतच्च दैनन्दिनसृष्टिप्रलयाभिप्रायकं महाप्रलयस्य ब्रह्मणो वर्षशतान्ते भावित्वात् ॥८॥

हिन्दी—अपने जीवन के काल-परिमाण के अनुसार कल्प रूप रात और दिन का विभाग कर आपका शयन तथा अवबोध इस सृष्टि मात्र का प्रलय तथा प्रबोध कहा जाता है।

विमर्श—चारों युग जब एक हजार बार बीत जाते हैं तो ब्रह्मा का एक दिन तथा उतनी की ही रात्रि होती है। जिसे कल्प कहते हैं। ब्रह्मा का एक कल्प जिसमें वे सोते हैं प्राणियों का प्रलय होता है। उनका प्रातःकाल = उनके प्रबोध के उतने ही काल को प्राणियों का सृष्टिकाल कहा जाता है।

जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः॥ ९॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वं जगद्योनिः किन्तु स्वयं अयोनिः, जगदन्तः किन्तु स्वयं निरन्तकः, त्वं जगदादिः किन्तु स्वयं अनादिः, त्वं जगदीशः स्वयं निरीश्वरः असि ।

संजी०—जगदिति । हे भगवन्, त्वं जगद्योनिर्जगत्कारणं स्वयमयोनिरनादित्वादकारणकस्त्वम् । अन्तयतीत्यन्तः । पचाद्यच् । जगतोऽन्तर्जगत्संहर्ता स्वयं निरन्तको नित्यत्वादन्तरहितः । त्वं जगतामादिर्जगदादिः । सृष्टेः प्रागपि सन्नित्यर्थः । अतएव त्वमनादिरादिरहितः । त्वं जगतामीशो नियन्ता स्वयं निरीश्वरः । अनियम्य इत्यर्थः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतिरेवात्र प्रमाणम् । अत्रायोनिरित्यादौ नञ्तत्पुरुषाश्रयणे विरोधः । बहुव्रीहिणा तु तत्परिहार इति विरोधाभासालङ्कारः । यथाहुः—'विरोधे तु विरोधाभासः' इति ॥ ९ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! आप स्थावरजङ्गमात्मक इस जगत् के कारण हैं, किन्तु आप का कोई भी कारण नहीं है, आप जगत् का नाश करने वाले हैं, किन्तु आपका विनाश करने वाला कोई नहीं है । इसी प्रकार आप इस जगत् के आदि में अवश्य विद्यमान हैं पर स्वयं आप अनादि हैं, आप इस जगत् के ईश्वर हैं, किन्तु आपका ईश्वर कोई नहीं है ।

तव तु न प्रपञ्चस्येव जन्मतिरोधानज्ञानेषु परापेक्षेत्याह—

आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥ १० ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वम् आत्मानम् आत्मना एव वेत्सि । आत्मानम् आत्मना सृजसि कृतिना आत्मना च आत्मनि एव प्रलीयसे ।

संजी०—आत्मानमिति ॥ हे भगवन्, त्वमात्मानं लोकानुग्रहार्थं ब्रह्मरूपेणोत्पिपादयिषितं स्वस्वरूपमात्मनैव वेत्सि जानासि । सर्वापि क्रिया कर्तव्यार्थज्ञानपूर्विकेति भावः । तथात्मानमात्मनैव । आत्मन्येवेत्यत्रापि सम्बध्यते । स्वस्मिन्नेव सृजसि । अधिष्ठानमपि स्वयमेवेत्यर्थः । 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितम्' इति श्रुतेः । कृतिना समर्थेन । इदं सर्वत्र सम्बध्यते । आत्मना स्वेनैवात्मन्येव प्रलीयसे स्वस्मिन्नेव प्रलीनो भवसि । लीयतेर्दैवादिकात्कर्तरि लट् । 'प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति वार्तिकात्सर्वत्रात्मनेति तृतीया । न हि ते प्रपञ्चस्येव ज्ञानोत्पत्तिलयेषु परापेक्षेति फलितार्थः ॥ १० ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! तुम लोकानुग्रह के लिये ब्रह्मरूप से उत्पन्न किये जाने वाले अपने स्वरूप को स्वयं जानते हो तथा अपने को अपने से ही अपने आत्मस्वरूप में सृष्टि करते हो । इस प्रकार अपना अधिष्ठान भी तुम्हीं हो, और समर्थ होने के कारण स्वयं ही अपनी आत्मा में लीन भी हो जाते हो ।

द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः ।
व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वं द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मः लघुः गुरुः व्यक्तः व्यक्तेतरश्च असि । विभूतिषु ते प्राकाम्यम् अस्ति ।

संजी०—द्रव इति ॥ त्वमित्यनुषज्यते । हे भगवन्, त्वं द्रवः सरित्समुद्रादिवद्रसात्मकोऽसि । संघातेन निबिडसंयोगेन कठिनो महीधरादिवत् । स्थूल इन्द्रियग्रहणयोग्यो घटादिवत् । सूक्ष्मोऽतीन्द्रियः परमाण्वादिवत् । लघुरुत्पतनयोग्यस्तूलादिवत् । गुरुर्हेमाद्रिवदचलनीयः । व्यक्तः कार्यरूपोऽसि । व्यक्तेतरः कारणरूपश्चासि । एवं विभूतिष्वणिमादिषु ते तव । प्रकामस्य भावः प्राकाम्यं यथाकामत्वम् ॥ ११ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! आप सरित्समुद्रादि के समान द्रवरूप (रसात्मक) हैं । पृथ्वी, पर्वतादि के समान कठिन हैं । घटादि पदार्थ के समान इन्द्रियों से ग्राह्य स्थूल हैं, परमाण्वादि के समान अतीन्द्रिय हैं, रूई आदि की तरह लघु तथा पर्वतादि के समान आप अचल भी हैं । आप कार्यरूप से व्यक्त तथा कार्यों के कारण रूप होने से अव्यक्त भी हैं । इस तरह अणिमादि सिद्धियों में आपका यथेष्ट प्राकाम्य है । अतः आप सब कुछ हैं ।

उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरुदीरणम् ।
कर्म यज्ञः फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! यासां गिरां उद्घातः प्रणवः, यासां त्रिभिः न्यायैः उदीरणं यासां कर्म यज्ञः । फलं स्वर्गः तासां गिरां प्रभवः असि ।

संजी०—उद्घात इति ॥ हे भगवन्, यासां गिरां वाचामुद्घात उपक्रमः प्रणव ओंकारात्मकः । 'ओंकारप्रणवौ समौ' इति । 'स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः' इति चामरः । इदमुपसंहारस्याप्युपलक्षणम् । 'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वतः । दहत्येनः कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशेषतः ॥' इति निरुक्तपरिशिष्टयोर्यास्कः । नीयन्त एभिरर्थविशेषा इति न्यायाः स्वराः । उक्तं च—'स्वरविशेषादर्थप्रतिपत्तिः' । 'यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्' इति । यासां गिरां त्रिभिर्न्यायैरुदात्तानुदात्तस्वरितैः स्वरैरुदीरणमुच्चारणम् । यासां कर्म । प्रतिपाद्यमित्यर्थः । यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः । न तु चैत्यवन्दनादिरिति भावः । फलं स्वर्गः । कर्मद्वारेति शेषः । कर्मस्वर्गौ ब्रह्मापवर्गयोरप्युपलक्षणे । त्वं तासां गिराम् । वेदानामित्यर्थः । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । प्रणेता स्मर्ता वा मतभेदेन ॥ १२ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! जिस वेदरूप वाणी का आरम्भ प्रणव है तथा जो उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन तीन स्वरों से उच्चरित होती है, जिससे ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ किये जाते हैं और जिन यज्ञों का फल स्वर्गादि है ऐसी वेदवाणी के आप प्रभवस्थान हैं।

सांख्यमतेन स्तुवन्ति—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः॥ १३॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वां पुरुषार्थप्रवर्त्तिनीं प्रकृतिम् आमनन्ति त्वाम् एव तद्दर्शिनं उदासीनं पुरुषं विदुः।

संजी०—त्वामिति॥ हे भगवन्, त्वां पुरुषस्यार्थो भोगापवर्गरूपस्तदर्थं प्रवर्तत इति पुरुषार्थप्रवर्तिनीं तां प्रकृतिं त्रैगुण्यात्मकं मूलकारणम्। 'प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे'। इति यादवः। आमनन्ति कथयन्ति। 'म्ना अभ्यासे' इति धातोर्लट्। 'पाघ्राध्मास्थाम्ना–' इत्यादिना मनादेशः। प्रकृति-पुरुषभेदाग्रहणात्प्रकृतिपुरुषाभेदव्यपदेशः। त्वामेव तां प्रकृतिं साक्षित्वेन पश्यतीति तद्दर्शिनमुदासीनं कूटस्थं पुरुषं विदुर्विदन्ति। 'विदो लटो वा' इति झेर्जुसादेशः। 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' इति श्रुतिरत्र प्रमाणम्॥ १३॥

हिन्दी—हे भगवन् ! सांख्यस्मृति आपको पुरुषार्थ के लिये प्रवृत्त करने वाली मूल प्रकृति कहती है और वही आपको उस प्रकृति का साक्षात्कार करने वाला उदासीन (कूटस्थ) पुरुष भी मानती है।

त्वं पितॄणामपि पिता देवानामपि देवता।
परतोऽपि परश्चासि विधाता वेधसामपि॥ १४॥

अन्वयः—हे भगवन् ! त्वं पितॄणां अपि पिता, देवानाम् अपि देवता, परतः अपि परश्च असि। वेधसामपि विधाता असि।

संजी०—त्वमिति॥ हे भगवन्, त्वं पितॄणामग्निष्वात्तादीनामपि पिता। तेषामपि तर्पणीय इत्यर्थः। देवानामिन्द्रादीनामपि देवता। तेषामपि यजनीय इत्यर्थः। परतोऽपि परश्चासि। सर्वोत्तरोऽसीत्यर्थः। 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥' इति सर्वोत्तरत्वाभिधानात्। वेधसां दक्षादीनामपि विधाता स्रष्टासि॥ १४॥

हिन्दी—हे भगवन् ! आप अग्निष्वात्तादि पितरों के भी पिता हैं, इन्द्रादिदेवों के भी देव हैं, मायासंवलित ब्रह्म से भी परे परब्रह्म स्वरूप हैं और जगत् की सृष्टि करने

वाले मरीच्यादि प्रजापतियों के भी सृष्टिकर्त्ता हैं। किंतु आप से परे कोई भी नहीं है।
'पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः'। इति स्मृतेः।

त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत्परम्॥ १५॥

अन्वयः—हे भगवन्! शाश्वतः त्वम् एव हव्यं होता च असि। भोज्यं भोक्ता च असि, वेद्यं वेदिता च असि, ध्याता यच्च परं ध्येयं तच्च असि।

संजी०—त्वमेवेति। शश्वत्सिद्धः शाश्वतः। शैषिकोऽण्प्रत्ययः। यद्यपि 'कालाट्ठञ्' इति ठञपवादः। अतएव सूत्रकारस्यापि प्रयोगः—'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इति। तथापि प्रयोगवशात्साधुरिति वामन इति। शाश्वतः प्रयुक्तः शाश्वतस्त्वमेव। हूयत इति हव्यं हविराज्यादिकम्। जुहोतीति होता यजमानश्चासि। भोज्यमभ्यवहार्यमन्नम्। 'भोज्यं भक्ष्ये' इति निपातनात्कुत्वाभावः। भोक्ताऽन्नादश्चासि। वेद्यं साक्षात्कार्यं वस्तु वेदिता साक्षात्कर्ता चासि। ध्याता स्मर्ता च। यत्परं वस्तु ध्येयं तच्चासि। साक्षात्कारसाधनभूतप्रत्ययविशेषप्रवाहो ध्यानम्॥ १५॥

हिन्दी—हे भगवन्! आप ही पशुपुरोडाशादि यज्ञसाधन द्रव्य हैं और यजमान भी आप ही हैं, आप ही अन्नादि रूप से भोज्य हैं और उस अन्न के भोक्ता भी आप ही हैं। आप ही साक्षात्कार्य वस्तु हैं और आप ही उसके साक्षात्कर्त्ता भी हैं। इतना ही नहीं ध्याता भी आप ही हैं और उससे परे ध्येय भी आप ही हैं।

इति तेभ्यः स्तुतीः श्रुत्वा यथार्था हृदयंगमाः।
प्रसादाभिमुखो वेधाः प्रत्युवाच दिवौकसः॥ १६॥

अन्वयः—वेधाः इति तेभ्यः यथार्थाः हृदयंगमाः स्तुतीः श्रुत्वा प्रसादाभिमुखः सन् दिवौकसः इति प्रत्युवाच।

संजी०—इतीति॥ वेधा ब्रह्मेति तेभ्यो देवेभ्यः। 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी। यथार्थाः सत्या अतएव हृदयं गच्छन्तीति हृदयंगमा मनोहराः। खच्प्रकरणे 'गमेः सुप्युपसंख्यानम्' इति खच्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः। स्तुतीः स्तोत्राणि श्रुत्वा प्रसादाभिमुखोऽनुग्रहप्रवणः सन्। दिवौकसो देवान्प्रत्युवाच॥ १६॥

हिन्दी—इस प्रकार देवताओं द्वारा सत्य और मनोहर स्तुति को सुनकर प्रसन्न हुये ब्रह्मदेव इन्द्रादि देवताओं से कहने लगे।

अथ कविराह—

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्था चतुष्टयी॥ १७॥

अन्वयः—चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः पुराणस्य कवेः तस्य चतुर्मुखसमीरिता सती चरितार्था आसीत् ।

संजी०—पुराणस्येति ॥ द्रव्यगुणक्रियाजातिभेदेन चत्वारोऽवयवा यस्या इति चतुष्टयी चतुर्विधा । 'संख्याया अवयवे तयप्' इति तयप् । 'टिड्ढाणञ्द्वयसच्—' इत्यादिना ङीप् । शब्दानां प्रवृत्तिर्वैखरीप्रमुखा वाग्वृत्तिः । उक्तं च—'वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा । द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा वागनपायिनी ॥' इति । पुराणस्य पुरातनस्य । पृषोदरादित्वात्साधुः । कवेः कवयितुस्तस्य ब्रह्मणश्चतुर्भिर्मुखैः समीरिता सती । 'तद्धितार्थ—' इत्यादिनोत्तरपदसमासः । समाहारे चतुर्मुखीति स्यात् । चरितार्थाऽन्वर्थासीत् । चतुर्मुखोच्चारणाच्चातुर्विध्यं सफलमासीदित्यर्थः ॥ १७ ॥

हिन्दी—'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' 'जाति गुण द्रव्य और यदृच्छा' अथवा 'परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी' नामक चार प्रकार की शब्दों की प्रवृत्ति उस समय पुराणपुरुष उन ब्रह्मदेव के मुखों से निकलने के कारण चरितार्थ हो रही थीं ।

भगवानाह—

स्वागतं स्वानधीकारान्प्रभावैरवलम्ब्य वः ।
युगपद्युगबाहुभ्यः प्राप्तेभ्यः प्राज्यविक्रमाः ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे प्राज्यविक्रमाः ! स्वान् अधिकारान् प्रभावैः अवलम्ब्य युगपत् प्राप्तेभ्यः युगबाहुभ्यः वः स्वागतम् ।

संजी०—स्वागतमिति ॥ हे प्राज्यविक्रमाः प्रभूतपराक्रमा देवाः । 'प्राज्यं भूरि प्रभूतं च' इति यादवः । स्वान्स्वकीयानधीकारान्नियोगान् । 'उपसर्गस्य घञि—' इति वा दीर्घः । प्रभावैः सामर्थ्यैरवलम्ब्यास्थाय । यथाधिकारं स्थित्वापीत्यर्थः । युगपत्समकालं प्राप्तेभ्यः । युगपत्प्राप्त्या महत्कार्यमनुमीयत इति भावः । युगबाहुभ्यः । दीर्घबाहुभ्य इत्यर्थः । आजानुबाहुत्वं भाग्यलक्षणम् । वो युष्मभ्यम् । 'बहुवचनस्य वस्नसौ' इति वसादेशः । 'कर्मणा यमभिप्रैति—' इत्यत्र कर्मपदेन क्रियाग्रहणात्संप्रदानत्वम् । स्वागतं शोभनागमनम् । काकुरत्रानुसन्धेया ॥ १८ ॥

हिन्दी—हे अत्यन्त पराक्रमशाली देवगणों ! अपने-अपने अधिकारों को अपने-अपने सामर्थ्य से धारण किये हुये एक साथ आये आजानुबाहु आप लोगों का स्वागत है ।

किमिदं द्युतिमात्मीयां न बिभ्रति यथा पुरा ।
हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे वत्साः ! हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषि इव वः मुखानि पुरा यथा आत्मीयां द्युतिं न बिभ्रति । इदं किम् ?

संजी०—किमिति ॥ 'वत्साः' इत्युत्तरश्लोकीयं (२।२८) सम्बोधनमत्राप्यनुषञ्जनीयम् । हे वत्साः पुत्रकाः, हिमेन नीहारेण क्लिष्टप्रकाशानि मन्दप्रभाणि ज्योतींषि नक्षत्राणीव । 'दीप्तितारामहुताशेषु ज्योतिः' इति शाश्वतः । वो युष्माकं मुखानि पुरा यथा पूर्वमिवात्मीयां द्युतिं न बिभ्रति । इदम् किम् । किं निबन्धनमित्यर्थः । किमिदमित्यनेन वाक्यार्थः परामृश्यते ॥ १९ ॥

हिन्दी—हे वत्सो ! जिस प्रकार कुहासे से नक्षत्र मलिन पड़ जाते हैं, उसी प्रकार आप लोगों का यह मुख पहले की तरह स्वाभाविक कान्ति को न धारण कर मलीन दिखाई पड़ रहा है, इसका कारण क्या है ?

उक्तमेव प्रपञ्चयति सप्तभिः श्लोकैः—

प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णसुरायुधम् ।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रीव लक्ष्यते ॥ २० ॥

अन्वयः—अर्चिषां प्रशमात् अनुद्गीर्णसुरायुधं एतत् वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठिताश्रि इव लक्ष्यते ?

संजी०—प्रशमादिति ॥ अर्चिषां तेजसां प्रशमान्निर्वाणादनुद्गीर्णसुरायुधम् । अनुदितचित्रप्रभमित्यर्थः । एतद्वृत्रस्य हन्तुरिन्द्रस्य कुलिशं वज्रम् । कुण्ठिता अश्रयो यस्य तत्कुण्ठिताश्रि कुण्ठितकोटीव लक्ष्यते दृश्यते ॥ २० ॥

हिन्दी—अपने तेज के नष्ट हो जाने से चित्र-विचित्र प्रभा (सतरङ्गी) से हीन दिखाई पड़ने वाला यह इन्द्र का वज्र हतश्री जैसा क्यों लगता है ?

किं चायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः ।
मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ २१ ॥

अन्वयः—किञ्च अयम् अरिदुर्वारः प्रचेतसः पाणौ पाशः मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनः दैन्यम् आश्रितः ।

संजी०—किं चेति ॥ किं चायमरिदुर्वारो रिपुदुष्प्रधर्षः प्रचेतसो वरुणस्य । 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः । पाणौ पाशो रज्जुरायुधविशेषः । मन्त्रेण गारुडेन हतवीर्यस्य प्रतिबद्धशक्तेः फणिनः सर्पस्य दैन्यं शोच्यत्वमाश्रितः । अत्र फणिनिष्ठदैन्यस्य पाशेऽसम्भवाद्दैन्यमिव दैन्यमिति कल्पनादसंभवद्वस्तुसंबन्धो निदर्शनालंकारः ॥ २१ ॥

हिन्दी—शत्रुओं का संहार करने वाला वरुण के हाथ में रहने वाला यह पाश गारुड़ मन्त्र से तेजोविहीन सर्प के समान क्यों दीनता को प्राप्त हो रहा है ?

कुबेरस्य मनःशल्यं शंसतीव पराभवम्।
अपविद्धगदो बाहुर्भग्नशाख इव द्रुमः ॥ २२ ॥

अन्वयः—अपविद्धगदः भग्नशाखः द्रुम इव स्थितः कुबेरस्य बाहुः मनःशल्यं पराभवं शंसति इव।

संजी०—कुबेरस्येति ॥ अपविद्धा त्यक्ता गदा येन सोऽपविद्धगदः। अतएव भग्नशाखो द्रुम इव स्थितः कुबेरस्य बाहुर्मनःशल्यम्। दुःखहेतुत्वान्मनसः शल्यप्रायमित्यर्थः। पराभवम्। शत्रुकृतमिति शेषः। शंसतीव कथयतीव। लक्षणयानुमापयतीत्यर्थः। बाहौ मुख्यकथनस्यासम्भवादिवशब्दोऽप्यत एव ॥ २२ ॥

हिन्दी—गदाविहीन कुबेर का हाथ कटीशाखा वाले वृक्ष की तरह मानसिक शल्य के समान उनके शत्रुजन्य पराभव को सूचित करने जैसा प्रतीत हो रहा है।

यमोऽपि विलिखन्भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—अस्तमितत्विषा दण्डेन यम अपि भूमिं विलिखन् अमोघे अपि अस्मिन् निर्वाणालातलाघवं कुरुते।

संजी०—यम इति ॥ अस्तं नाशमिताः प्राप्ताः। अस्तमिति मकारान्तमव्ययम्। तस्य 'द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' इति समासः। अस्तमितास्त्विषो यस्य तेन निस्तेजस्केन दण्डेन यमोऽपि भूमिं विलिखन्नमोघेऽपि प्रागिति भावः। अस्मिन्दण्डे निर्वाणालातस्य शान्तोल्मुकस्य। अलातं नाम भूलेखनशलाका तस्य यल्लाघवं क्लैब्यं तत्कुरुते। 'अलातमुल्मुकं ज्ञेयम्' इति हलायुधः। 'निर्वाणोऽवाते' इति निपातनान्निष्ठानत्वम्। अत्रापि लाघवमिव लाघवमिति कल्पनान्निदर्शनालंकारः ॥ २३ ॥

हिन्दी—यह यमराज भी अस्तमित तेज वाले अपने दण्ड से पृथ्वी को कुरेदते हुये कभी व्यर्थ न होने वाले इसमें बुझे हुये कोयले के समान इसकी निष्क्रियता प्रगट कर रहे हैं।

अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः।
चित्रन्यस्ता इव गताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—प्रतापक्षतिशीतला अमी आदित्याश्च कथं चित्रन्यस्ता इव प्रकामालोकनीयतां गताः।

संजी०—अमी इति ॥ प्रतापक्षत्या तेजसां क्षयेण शीतला अमी आदित्याश्च। द्वादशेति शेषः। कथम्। केन हेतुनेत्यर्थः। चित्रन्यस्ताश्चित्रलिखित इव। प्रकाममत्यन्तमालोकनीयतां दृश्यतां गताः प्राप्ताः ॥ २४ ॥

हिन्दी—तेज के नष्ट हो जाने से अत्यन्त ठण्डे पड़े हुये ये बारहों आदित्य चित्र-लिखित की तरह आँखों से इस प्रकार दृश्य क्यों हो रहे हैं।

पर्याकुलत्वान्मरुतां वेगभङ्गोऽनुमीयते।
अम्भसामोघसंरोधः प्रतीपगमनादिव॥ २५॥

अन्वयः—मरुतां पर्याकुलत्वात् वेगभङ्गः अम्भसां प्रतीपगमनात् ओघसंरोध इव अनुमीयते।

संजी०—पर्याकुलेति॥ मरुतां वायूनाम्। सप्तसप्तानामिति शेषः। पर्याकुलत्वात्स्खलितगतित्वाद्धेतोर्वेगस्य भङ्गोऽम्भसां जलानां प्रतीपगमनात्। उत्तानावरोहादित्यर्थः। ओघस्य संरोधः प्रवाहप्रतिबन्ध इवानुमीयते॥ २५॥

हिन्दी—इन वायु लोगों का वेग व्याकुलता के कारण इस प्रकार भग्न दिखाई पड़ रहा है जिस प्रकार उच्च प्रदेश के अवरोध से जल का प्रवाह रुक जाता है और वह प्रतिकूल दिशा में प्रवाहित होने लगता है।

आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः।
रुद्राणामपि मूर्धानः क्षतहुंकारशंसिनः॥ २६॥

अन्वयः—आवर्जितजटामौलिविलम्बिशशिकोटयः रुद्राणाम् अपि मूर्धानः क्षतहुङ्कारशंसिनः (दृश्यते)

संजी०—आवर्जितेति॥ आवर्जितेषु परिभवदुःखावनम्रेषु जटानां मौलिषु जटाजूटेषु विलम्बिन्यः स्रंसिन्यः शशिकोटयश्चन्द्ररेखा येषां ते तथोक्ताः। रुद्राणामपि। एकादशानामिति शेषः। मूर्धानः क्षतं हुङ्कारं शंसन्तीति तथोक्ताः। हुङ्कारक्षत्यनुमापका इत्यर्थः। हुङ्कारशस्त्रा हि रुद्रा इति भावः॥ २६॥

हिन्दी—(पराजयजन्य) अवनतजटाजूट वाले मस्तक में चन्द्रकिरणों को लटकाने वाले ये रुद्र लोग भी स्वकीय हुङ्कार के नष्ट होने की सूचना दे रहे हैं।

लब्धप्रतिष्ठाः प्रथमं यूयं किं बलवत्तरैः।
अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः॥ २७॥

अन्वयः—प्रथमं लब्धप्रतिष्ठा यूयं बलवत्तरैः परैः उत्सर्गा अपवादैः इव किं कृतव्यावृत्तयः (भवथ)

संजी०—लब्धेति॥ प्रथमं पूर्वं लब्धप्रतिष्ठा लब्धस्थितयः। लब्धावकाशा इत्यन्यत्र। यूयं बलवत्तरैः पौरुषातिरेकात्प्रबलतरैः। निरवकाशैरित्यन्यत्र। परैः शत्रुभिरुत्सर्गाः सामान्यशास्त्राणि 'मा हिंस्यात्' इत्येवमादीनि। अपोद्यन्त एभिरित्यपवादैः 'गामालभेत' इत्यादिभिर्विशेषशास्त्रैरिव किं कृतव्यावृत्तयः

कृतप्रतिष्ठाभङ्गाः। कृतविषयसंकोचरूपबाधा इत्यन्यत्र। 'विषयसंकोच एव बाधः' इत्याचार्याः। निषेधशास्त्रस्यावैदिकहिंसापरिहारेण लौकिकमात्रे व्यवस्थापनाद्विषयसंकोच इत्यलमतिगहनावगाहनेन ॥ २७ ॥

हिन्दी—जिस प्रकार 'मा हिंस्यात्सर्वभूतानि' यह लौकिक उत्सर्ग शास्त्र 'गामालभेत' इत्यादि वैदिक अपवाद शास्त्र से बाधित होने के कारण संकुचित हो जाता है उसी प्रकार प्रथम लब्धप्रतिष्ठ (उत्सर्ग शास्त्र की तरह) इसके बाद प्रबल शत्रुओं (अपवाद शास्त्रों) से पीड़ित होने के कारण आप लोगों ने उस प्रतिष्ठा को खो दिया है क्या ?

तद्ब्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥ २८ ॥

अन्वयः—तत् हे वत्साः ! समागता यूयं इतः किं प्रार्थयध्वम्। ब्रूत। हि मयि लोकानां सृष्टिः रक्षा युष्मासु अव्यवस्थिता।

संजी०—तदिति ॥ तत्तस्मात्कारणात्। हे वत्साः पुत्रकाः। 'वत्सस्त्वर्भकपुत्राद्योर्वर्षे वत्सं तु वक्षसि' इति विश्वः। स्वयं पितामहत्वाद्वत्सा इत्यामन्त्रयते। सम्भूयागताः समागताः इतो मत्तः किं प्रार्थयध्वम्। किमिच्छतेत्यर्थः। ब्रूत। लोकरक्षणे यूयमेव कर्तार इत्याह—मयि लोकानां सृष्टिः। रक्षा युष्मास्ववस्थिता। अतस्तदर्थमपि नास्ति मदपेक्षेत्यर्थः ॥ २८ ॥

हिन्दी—इसलिये एक साथ में आये हुये हे वत्सो ! तुम लोग बताओ मुझसे क्या चाहते हो। क्योंकि सृष्टि रचना का भार तो मेरे ऊपर अवश्य है किन्तु उस रची गई सृष्टि की रक्षा का भार आप लोगों पर ही निर्भर है।

ततो मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना।
गुरुं नेत्रसहस्रेण नोदयामास वासवः ॥ २९ ॥

अन्वयः—ततः वासवः गुरुं मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना नेत्रसहस्रेण नोदयामास।

संजी०—तत इति ॥ ततो भगवत्प्रश्नानन्तरं वासव इन्द्रो गुरुं बृहस्पतिम्। 'गुरू गीष्पतिपित्राद्यौ' इत्यमरः। मन्दानिलोद्धूतो यः कमलाकरः स इव शोभत इति तेन तथोक्तेन नेत्राणां सहस्रेण नोदयामास प्रेरयामास। सहस्रग्रहणमास्थातिशयार्थम्। अनिमेषाणामपि प्रयत्नवशादक्षिस्पन्दो न विरुध्यते ॥ २९ ॥

हिन्दी—इस प्रकार पितामह के वचन सुन लेने के बाद मन्द-मन्द वायु की प्रेरणा से हिलते हुये कमल-समूहों के समान सुशोभित नेत्रों से इन्द्र ने गुरु बृहस्पति को बोलने के लिये इशारा किया।

स द्विनेत्रं हरेश्चक्षुः सहस्रनयनाधिकम् ।
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलजासनम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—हरेः सहस्रनयनाधिकं द्विनेत्रं चक्षुः स वाचस्पतिः प्राञ्जलिः सन् जलजासनम् इदम् उवाच ।

संजी०—स इति ॥ हरेरिन्द्रस्य । 'इन्द्रो दुश्च्यवनो हरिः' इति हलायुधः । सहस्रान्नयनेभ्योऽधिकं सहस्रनयनाधिकम् । तदगोचरदर्शित्वादिति भावः । द्वे नेत्रे यस्य तद्द्विनेत्रम् । प्रसिद्धाच्चक्षुषोऽयं विशेष इत्यर्थः । चक्षुश्चक्षुर्भूतः । चक्षुष्ट्वारोपस्य प्रकृतोपयोगात्परिणामालङ्कारः स वाचस्पतिः । कस्कादित्वाद-लुक्सत्वे । 'षष्ठ्याः पतिपुत्र'—इत्यादिना सत्वमिति स्वामी । तन्न, छन्दोविषयत्वात् । प्राञ्जलिः सन् । जलजासनं ब्रह्माणमिदमुवाच ॥३०॥

हिन्दी—तब महेन्द्र के सहस्रनयन की अपेक्षा विशेष दूरदर्शी द्विनेत्रात्मक चक्षुरूप बृहस्पति हाथ जोड़कर ब्रह्मदेव से (आगे कही जाने वाली) इस प्रकार बोले—

एवं यदात्थ भगवन्नामृष्टं नः परैः पदम् ।
प्रत्येकं विनियुक्तात्मा कथं न ज्ञास्यसि प्रभो ॥ ३१ ॥

अन्वयः—भगवन् यद् आत्थ । तत् एवम् । नः पदं परैः आमृष्टम् । प्रभो प्रत्येकं विनियुक्तात्मा त्वं कथं न ज्ञास्यसि ?

संजी०—एवमिति ॥ हे भगवन् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न ! यदात्थ 'कृतव्यावृत्तयः परैः' (२।२७) इति यद्ब्रवीषि । 'ब्रुवः पञ्चानाम्—' इत्यादिनाहादेशः । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति वर्तमानप्रयोगः । वामनस्तु भ्रान्तोऽयं प्रयोग इत्याह । आहेति भूते णलन्तभ्रमवदिति । आहेत्युपलक्षणम् । तदेवं सत्यम् । नोऽस्माकं पदमधिकारः परैः शत्रुभिरामृष्टमाक्षिप्तम् । हे प्रभो, प्रत्येकं प्रतिपुरुषं विनियुक्तात्मा प्रवेशितस्वरूपः । सर्वान्तर्यामीत्यर्थः । कथं न ज्ञास्यसि न वेत्सि ! वर्तमानेऽपि वचनभङ्ग्या भविष्यन्निर्देशः प्रसिद्धः । 'अपह्नवे ज्ञः' 'अकर्मकाच्च' इत्यात्मनेपदविकल्पः ॥ ३१ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं, वह सत्य ही है, हम लोगों के इन्द्रासनादि को शत्रुओं ने छीन लिया है । भला सर्वान्तर्यामी आत्मरूप से सब में विद्यमान विश्वात्मा आप इन सब बातों को कैसे न जान लेंगे ।

उक्तमेव प्रपञ्चयति—

भवल्लब्धवरोदीर्णस्तारकाख्यो महासुरः ।
उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! भवल्लब्धवरोदीर्णः तारकाख्यः महासुरः धूमकेतुः इव लोकानाम् उपप्लवाय उत्थितः ।

संजी०—भवदिति ॥ भवतस्त्वत्तो लब्धेन वरेणोदीर्णं उद्धतः तारक इत्याख्या नामधेयं यस्य स तारकाख्यः । महानसुरो महासुरः । 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' इति तत्पुरुषः । धूमकेतुरुत्पातविशेष इव लोकानामुपप्लवायोपद्रवायोत्थित उत्पन्नः ॥ ३२ ॥

हिन्दी—हे भगवन् ! आप के द्वारा प्राप्त वरदान से उद्धत हुआ तारकासुर नामक महादैत्य समस्त लोकों को उपद्रुत करने के लिये धूमकेतु नक्षत्र के समान उत्पन्न हुआ है ।

पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम् ।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अस्य पुरे रविः तावन्तम् एव आतपं तनोति । यावन्मात्रेण दीर्घिकाकमलोन्मेषः साध्यते ।

संजी०—पुर इति ॥ अस्य तारकस्य पुरे रविः सूर्यस्तावन्तं तावन्मात्रमेवातपं तनोति । यावन्मात्रेण यावतैव । यावती मात्रा मितिर्यस्य यावन्मात्रं तेन वा । अल्पपरिमाणेनेत्यर्थः । 'मात्रा परिच्छदे । अल्पे च परिमाणे सा मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' इत्यमरः । दीर्घिकासु क्रीडावापीषु कमलानामुन्मेषो विकासः साध्यते निष्पाद्यते । कठोरकिरणोऽपि मन्दोष्णः सन्नेव तद्भीत्या पुरे प्रकाशत इत्यभिप्रायः ॥ ३३ ॥

हिन्दी—इस तारकासुर के नगर में भय से सूर्य उतना ही किरण बिखेरता है जितने से उसके तालाब के कमल विकसित हो जावें ।

सर्वाभिः सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभिर्निषेवते ।
नादत्ते केवलां लेखां हरचूडामणीकृताम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—चन्द्रः तं सर्वदा सर्वाभिः कलाभिः निषेवते केवलां हरचूडामणिकृतां लेखां न आदत्ते ।

संजी०—सर्वाभिरिति ॥ चन्द्रस्तं तारकं सर्वदा । कृष्णपक्षेऽपीत्यर्थः । सर्वाभिः कलाभिर्निषेवते । 'कला तु षोडशो भागः' इत्यमरः । केवलां हरचूडामणीकृतां शिवशिरोमणीकृतां लेखां नादत्ते न गृह्णाति ॥ ३४ ॥

हिन्दी—हे प्रभो ! चन्द्रमा कृष्णपक्ष में भी अपनी सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण होकर तारकासुर की सेवा करता है । वह केवल शिव के मस्तक में रहने वाली द्वितीया के चन्द्रमा के कला को ही ग्रहण नहीं करता है ।

व्यावृत्तगतिरुद्याने कुसुमस्तेयसाध्वसात् ।
न वाति वायुस्तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—वायुः कुसुमस्तेयसाध्वसात् उद्याने व्यावृत्तगतिः सन् तत्पार्श्वे तालवृन्तानिलाधिकं न वाति ।

संजी०—व्यावृत्तेति ॥ वायुः स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयं चौर्यम् । 'स्तेनाद्यन्नलोपश्च' इति यत्प्रत्ययो नलोपश्च । कुसुमानां स्तेयं तस्मात्स्तेयाभियोगाद्दण्डाद्वा साध्वसं भयं तस्माद्धेतोरुद्याने व्यावृत्तगतिः । निवृत्तोद्यानसंचारः सन्नित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः । तत्पार्श्वे तत्समीपे । तालस्य वृन्तैरुद्ग्रथ्यते । तालस्येव वृन्तमस्येति वा तालवृन्तं तस्यानिलात् व्यजनसञ्चारपवनादधिकं यथा तथा न वाति । 'व्यजनं तालवृन्तकम्' इत्यमरः ॥ ३५ ॥

हिन्दी—वायुदेव तारकासुर के बगीचे में अकारण कोई पुष्पपात न हो इसलिए भयसंत्रस्त हो उसके समीप ताड़ के पंखे से अधिक नहीं बहता ।

पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसंभारतत्पराः ।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते ॥ ३६ ॥

अन्वयः—ऋतवः पर्यायसेवां उत्सृज्य पुष्पसंभारतत्पराः सन्तः उद्यानपालसामान्यं तम् उपासते ।

संजी०—पर्यायेति ॥ ऋतवः षड् वसन्तादयः पर्यायसेवां क्रमसेवामुत्सृज्य पुष्पाणां सम्भारे संग्रहे तत्पराः । आसक्ताः सन्त इत्यर्थः । 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः । उद्यानपालैरुद्यानाधिकृतैः सामान्यं साधारणं यथा भवति तथा तं तारकमुपासते सेवन्ते । शीतोष्णादिदोषप्रकाशनं तु दूरापास्तमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

हिन्दी—छहो ऋतु अपनी बारी-बारी की सेवा को छोड़कर अपने-अपने काल में होने वाले पुष्पों को विकसित कर एक साथ ही सामान्य मालियों की तरह उस तारकासुर की सेवा करते हैं ।

तस्योपायनयोग्यानि रत्नानि सरितां पतिः ।
कथमप्यम्भसामन्तरानिष्पत्तेः प्रतीक्षते ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सरितां पतिः तस्य उपायनयोग्यानि रत्नानि अम्भसाम् अन्तः आनिष्पत्तेः कथमपि प्रतीक्षते ।

संजी०—तस्येति ॥ सरितां पतिः समुद्रस्तस्य तारकस्योपायनानां प्राभृतानां योग्यानि । 'प्राभृतं तु प्रदेशनम् । उपायनम्' इत्यमरः । रत्नान्यम्भसाम-

न्तरानिष्पत्तेः परिपाकपर्यन्तम् । विकल्पादसमासः । कथमपि महता यत्नेन प्रतीक्षते । कदा वा परिपच्येरन्नित्येकाग्रेण पालयतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

हिन्दी—समुद्र तारकासुर को उपायन देने योग्य बहुमूल्य रत्नों को अपने जल के भीतर पूर्ण रूप से परिपक्व होने तक किसी-किसी प्रकार प्रतीक्षा करता रहता है ।

ज्वलन्मणिशिखाश्चैनं वासुकिप्रमुखा निशि ।
स्थिरप्रदीपतामेत्य भुजङ्गाः पर्युपासते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—ज्वलन्मणिशिखाः वासुकिप्रमुखाः भुजङ्गाः च निशि स्थिरप्रदीपताम् एत्य एनं पर्युपासते ।

संजी०—ज्वलदिति ॥ किंचेति चार्थः । ज्वलन्त्यो मणीनां शिरोरत्नानां शिखा ज्वाला येषां ते वासुकिप्रमुखा भुजङ्गाः सर्पाः । सिद्धाश्च ध्वन्यन्ते । 'भुजङ्गः सिद्धसर्पयोः' इत्यमरः । निशि स्थिरप्रदीपतामनिर्वाणदीपत्वमेत्यैनं तारकं पर्युपासते परिवृत्य सेवन्ते ॥ ३८ ॥

हिन्दी—वासुकि आदि प्रमुख महासर्प रात्रि में उसके अन्धकार को दूर करने के लिए अपने शिर पर कभी न बुझने वाला मणियों का दीपक रखकर उस महादैत्य की सेवा करते हैं ।

तत्कृतानुग्रहापेक्षी तं मुहुर्दूतहारितैः ।
अनुकूलयतीन्द्रोऽपि कल्पद्रुमविभूषणैः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—इन्द्रः अपि तत्कृतानुग्रहापेक्षी सन् मुहुः दूतहारितैः कल्पद्रुमविभूषणैः तम् अनुकूलयति ।

संजी०—तत्कृतेति ॥ इन्द्रोऽपि तेन तारकेण कृतं तत्कृतमनुग्रहं प्रसादमपेक्षत इति तथोक्तः सन् । मुहुर्दूतहारितैर्दूतप्रापितैः कल्पद्रुमाणां विभूषणैः । तत्प्रसूनैरित्यर्थः । तं तारकमनुकूलयत्यनुकूलं करोति ॥ ३९ ॥

हिन्दी—इन्द्र भी प्रतिदिन दूतों के द्वारा लाये गये कल्पवृक्ष के बहुमूल्य रत्नों का उपहार भेजकर उस तारकासुर के अनुग्रह की अपेक्षा रखते हैं ।

इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम् ।
शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ॥ ४० ॥

अन्वयः—इत्थं आराध्यमानः अपि सः भुवनत्रयं क्लिश्नाति । तथा हि दुर्जनः प्रत्यपकारेण शाम्येत् उपकारेण न (शाम्येत्) ।

संजी०—इत्थमिति ॥ इत्थमुक्तप्रकारेण रविशशिपवनोदधिभुजंगसुरेन्द्रैराराध्यमानोऽपि भुवनत्रयं क्लिश्नाति पीडयति । तथाहि—दुर्जनः प्रत्यप-

कारेण प्रतीकारेणैव शाम्येच्छान्तो भवेत्। उपकारेण तु न शाम्येत्। प्रत्युत प्रकुप्यतीति भावः॥ ४०॥

हिन्दी—इस तरह ऊपर कही गई विधि के अनुसार तत्तद् बताओं के आराधना करने पर भी वह तारकासुर तीनों लोकों को कष्ट पहुँचाता ही रहता है। ठीक ही है, दुर्जन प्रत्यपकार (प्रतीकार) से शान्त होता है, उपकार से नहीं। प्रत्युत वह और उद्दण्ड हो जाता है।

तेनामरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः।
अभिज्ञाश्छेदपातानां क्रियन्ते नन्दनद्रुमाः॥ ४१॥

अन्वयः—तेन अमरवधूहस्तैः सदयालूनपल्लवाः नन्दनद्रुमाः छेदपातानाम् अभिज्ञाः क्रियन्ते।

संजी०—तेनेति॥ तेन तारकेणामरवधूहस्तैः। सुकुमारैरिति भावः। तैरपि सदयमालूना अवतंसार्थं छिन्नाः पल्लवा येषां ते नन्दनद्रुमाः। छेदाश्च पाताश्च छेदपातास्तेषाम्। अभिजानन्तीत्यभिज्ञाः। कृद्योगात्कर्मणि षष्ठी। क्रियन्ते॥ ४१॥

हिन्दी—जिस नन्दन वन के पत्तों को देवाङ्गनायें अपने सुकुमार हाथों से सदय होकर तोड़ती हैं, उस नन्दन वन के वृक्षों को वह तारकासुर निर्दयता पूर्वक काट कर गिराता है।

वीज्यते स हि संसुप्तः श्वाससाधारणानिलैः।
चामरैः सुरबन्दीनां बाष्पसीकरवर्षिभिः॥ ४२॥

अन्वयः—हि यतः सः संसुप्तः सन् श्वाससाधारणानिलैः बाष्पसीकरवर्षिभिः सुरबन्दीनां चामरैः वीज्यते।

संजी०—वीज्यते इति॥ हि यस्मात्कारणात्स तारकः संसुप्तः सन्। श्वाससाधारणो निश्वाससमानोऽनिलो येषां तैः ततोऽप्याधिक्ये निद्राभङ्गभयादिति भावः। बाष्पसीकरवर्षिभिः तासां स्त्रीणां रोदनस्यायमवसर इति भावः। सुरबन्दीनां सुरप्रग्रहस्त्रीणां सम्बन्धिभिः। 'प्रग्रहापग्रहौ बन्द्याम्' इत्यमरः। चामरैर्वीज्यते॥ ४२॥

हिन्दी—उस तारकासुर के सोने की अवस्था में बन्दी बनाई गई देवाङ्गनायें सामान्य श्वास से अधिक न होने वाले चामर की हवा से आँखों से आँसू टपकाती हुई सेवा करती हैं।

उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि क्षुण्णानि हरितां खुरैः।
आक्रीडपर्वतास्तेन कल्पिताः स्वेषु वेश्मसु॥ ४३॥

अन्वयः—तेन हरितां खुरैः क्षुण्णानि मेरुशृङ्गाणि उत्पाट्य स्वेषु वेश्मसु आक्रीड-पर्वताः कल्पिताः।

संजी०—उत्पाट्येति ॥ तेन तारकेण हरितां सूर्याश्वानाम्। 'हरित्सूर्ये च सूर्याश्वे वर्णे च हरिते दिशि' इति विश्वः। खुरैः शफैः क्षुण्णानि चूर्णितानि। एतेन तेषामत्यौन्नत्यं सूचितम्। मेरुशृङ्गाण्युत्पाट्य स्वेषु वेश्मसु। वेश्मस्विति बहुवचनेनास्य भुवनत्रयनिवासः सूचितः। आक्रीडन्त एष्विव्त्याक्रीडाः। ते च ते पर्वताः कल्पिताः कृताः ॥ ४३ ॥

हिन्दी—प्रतिदिन सूर्य के घोड़ों की टाप से चूर्ण हो जाने वाले सुमेरु पर्वत के सुवर्णमय शिखरों को उखाड़ कर इस तारकासुर ने अपने घर में क्रीडापर्वत का निर्माण किया है।

मन्दाकिन्याः पयः शेषं दिग्वारणमदाविलम्।
हेमाम्भोरुहसस्यानां तद्वाप्यो धाम सांप्रतम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—साम्प्रतं मन्दाकिन्याः दिग्वारणमदाविलं पयः शेषम्। हेमाम्भोरुह-सस्यानां तद्वाप्यः धाम।

संजी०—मन्दाकिन्या इति ॥ साम्प्रतं सम्प्रति मन्दाकिन्या भागीरथ्या दिग्वारणानां दिग्गजानां मदैराविलं कलुषं पयो जलमेव। शिष्यते इति शेषं शिष्टम्। कर्मण्यण्प्रत्ययः। 'शिष्वन्यत्रोपयुज्यते' इति नपुंसकत्वम्। तर्हि कनककमलानि क्व गतानीत्याह—हेमेति। हेमाम्भोरुहाण्येव सस्यानि तेषां तु तस्य वाप्यस्तद्वाप्य एव धाम स्थानम्। सर्वाण्यप्युत्पाट्य स्वदीर्घिकास्वेव प्रतिरोपितवानित्यर्थः ॥ ४४ ॥

हिन्दी—अब मन्दाकिनी में दिग्गजों के मद से मैला जल शेष रह गया है क्योंकि उसमें होनेवाले सुवर्ण कमलों को उखाड़ कर उस तारकासुर ने अपने बावियों में लगा रखा है।

भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते।
खिलीभूते विमानानां तदापातभयात्पथि ॥ ४५ ॥

अन्वयः—तदापातभयात् विमानानां पथि खिलीभूते सति स्वर्गिभिः भुवनालोकन-प्रीतिः न अनुभूयते।

संजी०—भुवनेति ॥ तस्य तारकस्यापातात्समापत्तेर्भयाद्विमानानां पथि खिलीभूतेऽप्रहतीभूते सति। 'द्वे खिलाप्रहते समे' इत्यमरः। स्वर्गिभिर्देवैर्भुवना-नामालोकने प्रीतिर्नानुभूयते ॥ ४५ ॥

तदिच्छामो विभो ! स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये ।
कर्मबन्धच्छिदं धर्मं भवस्येव मुमुक्षवः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—तत् हे विभो मुमुक्षवः भवस्य शान्तये कर्मबन्धच्छिदं धर्मम् इव तस्य शान्तये सेनान्यं स्रष्टुं इच्छामः ।

संजी०—तदिति ॥ तत्तस्मात्कारणात् । हे विभो स्वामिन्, मोक्तुं भवं त्यक्तुमिच्छवो मुमुक्षवो विरक्ता भवस्य संसारस्य शान्तये निवृत्तये कर्मैव बन्धस्तं छिनत्तीति कर्मबन्धच्छित् तं धर्ममिव । आत्मज्ञानहेतुभूतमिति शेषः । 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इति ज्ञानादेव मुक्तिः । तस्य तारकस्य शान्तये नाशाय । सेनां नयतीति सेनानीश्चमूपतिः । 'सत्सूद्विष—' इत्यादिना क्विप् । तं सेनान्यं कंचित्स्रष्टुमिच्छामः । वयमिति शेषः ॥ ५१ ॥

हिन्दी—इस कारण, हे प्रभो हम लोग भी उस तारकासुर के विनाश के लिए इस देवसेना का अधिनायक उत्पन्न करना चाहते हैं जिस प्रकार मुमुक्षुजन संसार का नाश करने के लिए कर्म के बन्धन को नष्ट करने वाले धर्म की इच्छा करते हैं ।

सेनानीसृष्टेः फलमाह—

गोप्तारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित् ।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो बन्दीमिव जयश्रियम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—सुरसैन्यानां गोप्तारं यं पुरस्कृत्य गोत्रभिद् जयश्रियम् बन्दीम् इव शत्रुभ्यः प्रत्यानेष्यति ।

संजी०—गोप्तारमिति ॥ सुरसैन्यानां देवतासेनानां गोप्तारं रक्षितारं यं सेनान्यं पुरस्कृत्य पुरोधाय । 'पुरोऽव्ययम्' इति गतित्वात् 'नमस्पुरसोर्गत्योः' इति सकारः । गां पृथ्वीं त्रायन्त इति गोत्रास्तान्भिनत्तीति गोत्रभिदिन्द्रो जयश्रियं बन्दीमिव बन्दीकृतां स्त्रियमिव शत्रुभ्यः सकाशात्प्रत्यानेष्यति प्रत्याहरिष्यति तं स्रष्टुमिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ५२ ॥

हिन्दी—देवसेना की रक्षा करने वाले जिस सेनापति को आगे रखकर शत्रु के वशीभूत देवलक्ष्मी को पुनः वापस ला सकें जिस प्रकार कोई विजयी राजा अपने शत्रुओं से बन्दियों को वापस लाता है ।

वचस्यवसिते तस्मिन्ससर्ज गिरमात्मभूः ।
गर्जितानन्तरां वृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सा ॥ ५३ ॥

अन्वयः—तस्मिन् वचसि अवसिते सति आत्मभूः गिरं ससर्ज । सा सौभाग्येन गर्जितान्तरां वृष्टिं जिगाय ।

संजी०—वचसीति ॥ तस्मिन्बार्हस्पत्ये वचस्यवसिते परिसमाप्ते सत्यात्मभूर्ब्रह्मा गिरं वाचं ससर्ज जगादेत्यर्थः। सा गीः सौभाग्येन मनोहरत्वेन। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः गर्जितादूर्गर्जितस्य वानन्तरां प्रवृत्तां वृष्टि जिगाय जितवती। गर्जितपरत्वाद् वृष्टेरिव तद्विज्ञापनफलत्वाद् गिरः सुभगत्वमिति भावः ॥ ५३ ॥

हिन्दी—इस प्रकार बृहस्पति के कथन के समाप्त हो जाने पर ब्रह्मदेव ने अपनी बात कहने के लिए वाणी का प्रयोग किया। उस समय उनकी वह वाणी अपने मनोहरता से मेघ की गर्जना के अनन्तर होने वाली वृष्टि की मनोहरता को भी जीतने वाली थी।

संपत्स्यते वः कामोऽयं कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
न त्वस्य सिद्धौ यास्यामि सर्गव्यापारमात्मना ॥ ५४ ॥

अन्वयः—अयं वः कामः संपत्स्यते। कश्चित् कालः प्रतीक्ष्यताम्। तु अस्य सिद्धौ आत्मना सर्गव्यापारं न यास्यामि।

संजी०—सम्पत्स्यत इति ॥ अयं वो युष्माकं कामो मनोरथः सेनानीरूपः सम्पत्स्यते सेत्स्यति। कश्चित्कियानपि कालः प्रतीक्ष्यताम्। तु किन्तु तस्य सेनान्यः सिद्धौ विषय आत्मना स्वयं सर्गः सृष्टिरेव व्यापारस्तं न यास्यामि। नाहं स्रक्ष्यामीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—हे देवगणो! आप लोगों का मनोरथ पूर्ण होगा। कुछ काल तक प्रतीक्षा कीजिये। क्योंकि आप लोगों की कार्य-सिद्धि के लिए हम अपने से कोई भी सृष्टि व्यापार नहीं करना चाहते।

कुत इत्याशङ्क्याह—

इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत एवार्हति क्षयम्।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—इतः प्राप्तश्रीः स दैत्यः इत एवं क्षयं न अर्हति विषवृक्षः अपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुम् इष्यते तत् असाम्प्रतम्।

संजी०—इत इति ॥ इतो मत्त एव प्राप्तश्रीर्लब्धोदयः स दैत्यस्तारकासुर इतो मत्त एव क्षयं नाशं नार्हति। तथाहि। अन्यो वृक्षस्तावदास्ताम्। विषस्य वृक्षो विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य कुतश्चित्कारणात्सम्यग् वर्धयित्वा स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतमनर्हः। असाम्प्रतमित्यनेन निपातेनाभिहितत्वाद् वृक्ष इति द्वितीयान्तो न भवत्यनभिहिते कर्मणि द्वितीयाभिधानात्। यथाह वामनः—

'निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न विभक्तिः परिगणनस्य प्रायिकत्वात्' इति॥५५॥

हिन्दी—हे देवगणो! हमारे द्वारा ही उसने श्री की प्राप्ति की है। फिर हमी से वह नाश प्राप्त करने योग्य किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि विष का पेड़ अपने से लगाकर एवं उसे बढ़ाकर पुनः उसे काटने की इच्छा अनुचित है।

वृतं तेनेदमेव प्राङ् मया चास्मै प्रतिश्रुतम् ।
वरेण शमितं लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—प्राक् तेन इदम् एव वृतम् । मया अस्मै प्रतिश्रुतं च । हि लोकान् दग्धुं तत् तपः अलम् । मया तु वरेण शमितम् ।

संजी०—वृतमिति ॥ प्राक्पूर्वं तेनासुरेणेदमेव देवैरवध्यत्वमेव वृतं प्रार्थितम् । मया चास्मै तारकाय प्रतिश्रुतं प्रतिज्ञातम् । 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । कर्तव्यं चैतदित्याह—लोकान्दग्धुमलं शक्तम् । 'पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु' इति तुमुन्प्रत्ययः । तस्य तपस्तत्तपो वरेण वरदानेन शमितं हि मयेति शेषः ॥ ५६ ॥

हिन्दी—उस तारकासुर ने अपनी तपस्या के समय देवासुर से अवध्यत्व रूप वर माँगा था और मैंने उसे देना स्वीकार भी कर लिया । क्योंकि उसका तप समस्त लोकों को जलाने में समर्थ था जिसे मैंने केवल वरदान देकर शान्त किया ।

संयुगे सांयुगीनं तमुद्यतं प्रसहेत कः ।
अंशादृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—संयुगे उद्यतं सांयुगीनं निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः अंशात् ऋते कः प्रसहेत ।

संजी०—संयुग इति ॥ संयुगे युद्ध उद्यन्तं व्याप्रियमाणम् । संयुगे साधु सांयुगीनम् । 'प्रतिजनादिभ्यः खञ्' इति खञ्प्रत्ययः । तं तारकं निषिक्तस्य क्वचित्क्षेत्रे क्षरितस्य । 'नीलः कण्ठे लोहितश्च केशेष्विति नीललोहित' इति पुराणम् ।' इति स्वामी । तस्य नीललोहितस्य धूर्जटे रेतसः शुक्रस्यांशादृतेंऽशं विनान्यः कः प्रसहेताभिभवेत् । 'प्रसहनमभिभवः' इति वृत्तिकारः ॥ ५७ ॥

हिन्दी—युद्ध में सर्वदा निरत रहने वाले, अतएव युद्धविशारद, उस तारकासुर का अभिभव शङ्कर के रेत (वीर्य) के अंश के बिना भला और कौन कर सकता है ?

कथमसावीदृक्शक्तिरित्याह—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम् ।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हि यतः सः देवः तमःपारे व्यवस्थितं परं ज्योतिः अस्ति । अत एव मया विष्णुना च परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिः स न भवति ।

संजी०—स इति ॥ स देवो नीललोहितस्तमसः पारे परतो व्यवस्थितं तमोगुणातीतं परं ज्योतिः परमात्मा हि । अत एव मया परिच्छिन्नप्रभा-

र्द्धिरवगाढमहिमातिशयो न भवति। तथा विष्णुना च न। अतस्तस्यासाध्यं नास्तीत्यर्थः॥ ५८॥

हिन्दी—वह शङ्कर भगवान् अविद्या रूप अन्धकार से सर्वथा परे परं ज्योति स्वरूप परमात्मा हैं। इसलिए उनकी महिमा हमारे तथा विष्णु के द्वारा नहीं कही जा सकती। उनके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है।

सम्प्रति तदंशोत्पत्तावुपायं दर्शयति—

उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः।
शंभोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लोहवत्॥ ५९॥

अन्वयः—ते यूयं संयमस्तिमितं शंभोः मनः उमारूपेण अयस्कान्तेन लोहवत् आक्रष्टुं यतध्वम्।

संजी०—उमेति॥ ते कार्यार्थिनो यूयं संयमस्तिमितं समाधिनिश्चलं शम्भोर्मन उमारूपेणोमासौन्दर्येण। 'रूपं स्वभावे सौन्दर्ये नाणके पशुशब्दयोः। ग्रन्थावृत्तौ नाटकादावाकारश्लोकयोरपि॥' इति विश्वः। अयस्कान्तेन मणिविशेषेण। 'कस्कादिषु च' इति सकारः। लोहवदयोधातुमिव। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वतिप्रत्ययो मृग्यः। आक्रष्टुमाहर्तुं यतध्वमुद्युक्ता भवत॥ ५९॥

हिन्दी—इसलिए आप लोग संयम से सर्वथा स्थिर रहने वाले शिवजी के मन को पार्वती के द्वारा आकृष्ट करने का यत्न उसी प्रकार करें जिस प्रकार चुम्बक लोहे को आकृष्ट करता है।

न च गत्यन्तरमस्तीत्याह—

उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्बीजमाहितम्।
सा वा शंभोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम॥ ६०॥

अन्वय—उभयोः शम्भोः मम वा आहितं बीजं वोढुं क्रमेण शंभोः सा वा मम च तदीया जलमयी मूर्त्तिः वा उभे एव क्षमे।

संजी०—उभे इति॥ उभयोः शंभोर्मम चाहितं निषिक्तं बीजं तेजो वोढुं सोढुं सा वोमा शंभोरष्टमूर्तेस्तस्येयं तदीया जलमयी मूर्तिर्वा मम। उभे एव क्षमे न तृतीयेत्यर्थः। वा शब्दो द्वन्द्वार्थे न त्वन्यार्थे। एतदेवोदाहृत्येत्थमेव व्याख्यातं गणव्याख्याने। अत्र दीपकालङ्कारः। प्राकरणिकयोरुमामहेश्वरयोप्राकरणिकयोर्ब्रह्मजलमूर्त्योश्चौपम्यस्य गम्यत्वात्। यथाह भोजराजः—'प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां चौपम्यस्य गम्यत्वे दीपकम्' इति। न चेयं तुल्ययोगिता तस्याः केवलप्रस्तुतविषयत्वेन केवलाप्रस्तुतविषयत्वेन चोत्थानादिति॥ ६०॥

हिन्दी—शङ्कर एवं मेरे द्वारा निषिक्त वीर्य को धारण करने में दो ही समर्थ हैं शंभु के निषिक्त तेज को पार्वती और मेरे द्वारा निषिक्त बीज को उनकी जलमयी मूर्त्ति। (इसके अतिरिक्त कोई तीसरी शक्ति (समर्थ) नहीं है)।

तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः।
मोक्ष्यते सुरबन्दीनां वेणीर्वीर्यविभूतिभिः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—तस्य शितिकण्ठस्य आत्मा वः सेनापत्यम् उपेत्य वीर्यविभूतिभिः सुरबन्दीनां वेणीः मोक्ष्यते।

संजी०—तस्येति ॥ तस्य शितिकण्ठस्याष्टमूर्तेरात्मा। पुत्र इत्यर्थः। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः। वो युष्माकं सेनापतेर्भावः सैनापत्यम्। 'पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यो यक्' इति यक्प्रत्ययः। उपेत्य प्राप्य वीर्यविभूतिभिः शौर्यसम्पत्तिभिः सुरबन्दीनां वेणीर्मोक्ष्यते विस्रंसयिष्यति। तारकासुरं हनिष्यतीति भावः ॥ ६१ ॥

हिन्दी—उन्हीं शङ्कर की आत्मा (पुत्र आत्मा वै जायते पुत्रम् इति स्मरणात्) आप लोगों का सेनापतित्व प्राप्त कर अपने पराक्रम से तारकासुर के द्वारा बन्दी की गई देवाङ्गनाओं की वेणी मुक्त करावेगा।

इति व्याहृत्य विबुधान्विश्वयोनिस्तिरोदधे।
मनस्याहितकर्तव्यास्तेऽपि देवा दिवं ययुः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—विश्वयोनिः विबुधान् प्रति इति व्याहृत्य तिरोदधे। ते देवा अपि मनसि आहितकर्त्तव्या सन्तः दिवं ययुः।

संजी०—इतीति ॥ विश्वस्य योनिः कारणम्। 'योनिः स्त्रीणां भगस्थाने कारणे तान्त्रिके पणे' वैजयन्ती। विबुधान्सुरानिति व्याहृत्याभिधाय तिरोदधेऽन्तर्हितवान्। ते देवा अपि मनस्याहितं कर्तव्यं यैस्ते तथोक्ताः सन्तो दिवं स्वर्गं ययुः प्रापुः ॥ ६२ ॥

हिन्दी—ब्रह्मा इस प्रकार देवताओं से कहकर अन्तर्धान हो गये। उधर वे देवगण भी आगे के कर्त्तव्य का अपने मन में निश्चय कर स्वर्ग चले गये।

तत्र निश्चित्य कंदर्पमगमत् पाकशासनः।
मनसा कार्यसंसिद्धौ त्वराद्विगुणरंहसा ॥ ६३ ॥

अन्वयः—पाकशासनः तत्र निश्चित्य कार्यसिद्धौ त्वरा द्विगुणरंहसा मनसा कन्दर्पम् अगमत्।

संजी०—तत्रेति ॥ पाको नाम कश्चिदसुरस्तस्य शासन इन्द्रस्तत्र हर-चित्ताकर्षणकृत्ये कन्दर्पं निश्चित्य। साधकत्वेनेति शेषः। कार्यसंसिद्धौ त्वरयौ-

त्सुक्येन। द्वौ गुणौ यस्य तद्द्विगुणं द्विरावृत्तं रंहो वेगो यस्य तेन तथोक्तेन। 'गुणस्तु वृत्तिशब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु' इति वैजयन्ती। मनसागमत्। सस्मारेत्यर्थः। गमेर्लुङ्। लृदित्त्वाच्च्लेरङादेशः॥ ६३॥

हिन्दी—इन्द्रदेव ने स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ कार्य का निश्चय कर अपनी कार्यसिद्धि के विषय में शीघ्रता से दुगुने उत्साहित मन से कामदेव का स्मरण किया।

अथ स ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं
रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे।
सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः
शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिः पुष्पधन्वा॥ ६४॥

अन्वयः—अथ स पुष्पधन्वा ललितयोषिद्भ्रूलताचारुशृङ्गं चापं रतिवलयपदाङ्के कण्ठे आसज्य सहचरमधुहस्तन्यस्तचूताङ्कुरास्त्रः प्राञ्जलिः सन् शतमखम् उपतस्थे।

संजी०—अथेति। अथ स्मरणानन्तरम्। स स्मृत इत्यर्थः। पुष्पं धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा कामः। 'वा संज्ञायाम्' इत्यनङ्। 'ललितं त्रिषु सुन्दरम्' इत्यमरः। ललितायाः सुन्दर्या योषितो भ्रुवौ लते इव चारुणी शृङ्गे कोटी यस्य तत्तथोक्तं चापम्। रतिः स्मरप्रिया। 'रतिः स्मरप्रिया' इत्यमरः। तस्या वलयपदानि कङ्कणस्थानान्यङ्कश्चिह्नं यस्य स तथोक्ते कण्ठ आसज्य लगयित्वा चापकण्ठविशेषणाभ्यां शृङ्गारैकनिधेस्त्रिभुवनैकवीरस्य शृङ्गारवीरोपकरणेषु तुल्यरसत्वं व्यज्यते। सहचरस्य सख्युर्मधोर्वसन्तस्य हस्ते न्यस्तं चूताङ्कुरमेवास्त्रं यस्य स तथोक्तः प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः सन्। शतमखमिन्द्रमुपतस्थे सङ्गतवान्। सङ्गतिकरणार्थादात्मनेपदम्। अत्र 'स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्' इति। मालिनीवृत्तमेतत्—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात्॥ ६४॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये ब्रह्मसाक्षात्कारो
नाम द्वितीयः सर्गः।

हिन्दी—इन्द्र के स्मरण करते ही कामदेव, सुन्दरी स्त्रियों के मनोहर भ्रुकुटी के समान कोटी है जिसकी ऐसे धनुष को रति कङ्कण चिह्नित अपने कण्ठ में लटकाकर तथा अपने परम मित्र वसन्त के हाथ में आम्रकुसुम रूप स्वकीय बाण को देकर हाथ जोड़े इन्द्र के संमुख आकर खड़ा हो गया।

इस प्रकार कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग की हिन्दी पूर्ण हुई॥ २॥

तृतीयः सर्गः

तस्मिन्मघोनस्त्रिदशान्विहाय सहस्रमक्ष्णां युगपत्पपात ।
प्रयोजनाऽपेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥ १ ॥

अन्वयः—मघोनः अक्ष्णां सहस्रं त्रिदशान् विहाय तस्मिन् युगपत् पपात । प्रायः प्रभूणाम् आश्रितेषु गौरव प्रयोजनवशात् चलं भवति ।

संजी०—तस्मिन्निति । मघोन इन्द्रस्याक्ष्णां सहस्रं त्रिरावृत्ता दशपरिमाणमेषामिति त्रिदशान्देवान् । संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' इति बहुव्रीहिः । 'बहुव्रीहौ संख्येये'—इति डच्प्रत्ययः । उक्तार्थत्वात्सुचो निवृत्तिः । विहाय त्यक्त्वा तस्मिन्कामे युगपत्पपात । सहस्रेणाक्षिभिरद्राक्षीदित्यादरातिशयोक्तिः । ननु सुचिरपरित्यागेन भगवतो महेन्द्रस्य कथमकाण्डे तस्मिन्नेकस्मिन्पक्षपात इत्याशङ्क्यार्थान्तरं न्यस्यति—प्रायो भूम्ना प्रभूणामाश्रितेषु सेवकेषु विषये गौरवमादरः प्रयोजनापेक्षितया कार्यार्थितत्वेन हेतुना चलं चञ्चलम् । फलतन्त्रा प्रभवो न तु गुणतन्त्रा इति भावः ॥१॥

हिन्दी—कामदेव के आते ही इन्द्रदेव के सहस्रों नेत्र समस्त देवताओं की ओर से हटकर मात्र कामदेव पर एक साथ ही पड़ गये । क्योंकि प्रभु लोग अपने मतलब को सिद्ध करने के लिये अपने आश्रितों पर सम्मान का भाव प्रायशः एक समान नहीं रखते हैं ।

स वासवेनासनसन्निकृष्टमितो निषीदेति विसृष्टभूमिः ।
भर्तुः प्रसादं प्रतिनन्द्य मूर्ध्ना वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—सः वासवेन आसनसन्निकृष्टम् इतः निषीद इति विसृष्टभूमिः सन् भर्तुः प्रसादं मूर्ध्ना प्रतिनन्द्य मिथ एनं एवं वक्तुं प्राक्रमत ।

संजी०—स इति । स कामो वासवेनेन्द्रेणासनस्य सिंहासनस्य सन्निकृष्टं सन्निहितमासनसन्निकृष्टं यथा तथा । शेषषष्ठ्यायं समासः । कृद्योगलक्षणया तु न । लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इति षष्ठीनिषेधात् । इतो निषीदेहोपविशेति विसृष्टभूमिर्दत्तावकाशः सन् । भर्तुः स्वामिनः प्रसादमनुग्रहं मूर्ध्ना प्रतिनन्द्य सम्भाव्य मिथो रहसि । 'मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि' इत्यमरः । एनमिन्द्रमेवं वक्ष्यमाणप्रकारेण वक्तुं प्राक्रमतोपक्रान्तवान् । 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' इत्यात्मनेपदम् ॥ २ ॥

हिन्दी—'यहाँ हमारे समीप बैठो' इस प्रकार हाथ के इशारे से इन्द्र ने कामदेव को अपने समीप आसन पर आदर के साथ बैठाया । कामदेव ने भी स्वामी के आदर को विनम्र शिर से स्वीकार कर एकान्त में इन्द्र से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया ।

आज्ञापय ज्ञातविशेष ! पुंसां लोकेषु यत्ते करणीयमस्ति ।
अनुग्रहं संस्मरणप्रवृत्तमिच्छामि संवर्धितमाज्ञया ते ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे पुंसां ज्ञातविशेष लोकेषु ते यत् करणीयम् अस्ति तत् आज्ञापय । संस्मरणप्रवृत्तं ते अनुग्रहं आज्ञया संवर्द्धितम् इच्छामि ।

संजी०—आज्ञापयेति ॥ हे पुंसां ज्ञातविशेष ज्ञातसार । ज्ञातपुंविशेषेत्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । आज्ञापय । तदिति शेषः । उत्तरवाक्ये यच्छब्दप्रयोगान्न पूर्ववाक्ये तच्छब्दप्रयोगनिर्बन्धः । किं तदित्याह—लोकेषु ते तव यत्करणीयं कर्तव्यमस्ति । संस्मरणेन प्रवृत्तमुत्पन्नं ते तवानुग्रहं प्रसादमाज्ञया नियोगेन संवर्धितं वृद्धिं गमितमिच्छामि । संस्मरणकृतमनुग्रहं केनचिन्नियोगेन वर्धय । क्वचित्कर्मणि नियुङ्क्ष्वेत्यर्थः । अन्यथा मे नास्ति परितोष इति भावः । तुमुन्नन्तपाठे णिजर्थे यत्नः कार्यः ॥ ३ ॥

हे समस्त पुरुषों के अन्तःकरण की बात जानने वाले प्रभो ! तीनों लोकों में मेरे द्वारा किया जाने वाला आप का जो कार्य है उसके लिए आप मुझे आदेश करें । आपके स्मरण से उत्पन्न हुए अनुग्रह रूप अंकुर को मैं आपकी आज्ञा से संवर्द्धित (कर उसे पल्लवित) करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

न च मे किंचिदसाध्यमस्तीत्याह—

केनाभ्यसूया पदकाङ्क्षिणा ते नितान्तदीर्घैर्जनिता तपोभिः ।
यावद्भवत्याहितसायकस्य मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवर्ती ॥ ४ ॥

अन्वयः—ते पदकाङ्क्षिणा केन नितान्तदीर्घैः तपोभिः अभ्यसूया जनिता । तं ब्रूहि यतः स आहितसायकस्य अस्य मत्कार्मुकस्य निदेशवर्त्ती यावत् भवति ।

संजी०—केनेति ॥ पदकाङ्क्षिणा स्वाराज्यकामेन केन पुंसा नितान्तदीर्घैरतिप्रभूतैस्तपोभिस्ते तवाभ्यसूयेर्ष्या जनिता । तं ब्रूहीति शेषः । किमर्थम् । यावद्यतः स भवद्वैर्याहितसायकस्य संहितबाणस्यास्य मत्कार्मुकस्य निदेशे वर्त्तत इति निदेशवर्त्याज्ञावशो भवति । अविलम्बेनैव भविष्यतीत्यर्थः । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ॥ ४ ॥

हिन्दी—आपको हटाकर आप के पद (इन्द्रासन) चाहने वाले किस व्यक्ति ने अपनी घोर तपश्चर्या से आपसे ईर्ष्या उत्पन्न की है ? शीघ्रता से उसका नाम कहिये । जिससे मेरे ये धनुष पर चढ़े हुए बाण उसे घायल कर अपने वशवर्ती बनावें ।

सम्प्रति चतुर्वर्गे मोक्षमधिकृत्याह—

असंमतः कस्तव मुक्तिमार्गं पुनर्भवक्लेशभयात्प्रपन्नः ।
बद्धश्चिरं तिष्ठतु सुन्दरीणामारेचितभ्रूचतुरैः कटाक्षैः ॥ ५ ॥

अन्वयः—तव असंमतः कः पुनर्भवक्लेशभयात् मुक्तिमार्गं प्रपन्नः (तं ब्रूहि)सुन्दरीणां आरेचितभ्रूचतुरैः कटाक्षैः बद्धः सन् चिरम् तिष्ठतु ।

संजी०—असम्मत इति ॥ तवासम्मतः कः पुनर्भवः पुनरुत्पत्तिः। संसार इति यावत्। तत्र ये क्लेशा जन्मजरामरणादयस्तेभ्यो भयान्मुक्तिमार्गं प्रपन्नस्तं वद। यतः सोऽप्यारेचिताभिरेकैकशो विवर्तिताभिर्भ्रूभिश्चतुरैः सुन्दरीणां कटाक्षैर्बद्धश्चिरं तिष्ठतु। आरेचितलक्षणं तु—'स्याद्भ्रुवोर्ललिताक्षेपादेकस्या एव रेचितम्। तयोर्मूलसमुत्क्षेपं कौटिल्याद्भ्रूकुटिर्विदुः।' इति ॥ ५ ॥

हिन्दी—आपकी संमति के बिना कौन पुरुष संसार के जन्म मरण रूप क्लेश से भयभीत होकर मोक्षमार्ग को प्राप्त करना चाहता है ? (आप उसे बताइये जिससे) यह सुन्दरियों के सुडौल भ्रूविन्यास वाले कटाक्ष विलासों से वशीभूत होकर चिरकाल तक भव-बन्धन में पड़ा रहे।

धर्मार्थावधिकृत्याह—

अध्यापितस्योशनसापि नीतिं प्रयुक्तरागप्रणिधिर्द्विषस्ते।
कस्यार्थधर्मौ वद पीडयामि सिन्धोस्तटावोघ इव प्रवृद्धः ॥ ६ ॥

अन्वयः—उशनसा नीतिम् अध्यापितस्य अपि ते कस्य द्विषः अर्थधर्मौ प्र युक्तराग-प्रणिधिः अहं प्रवृद्ध ओघः सिन्धोः तटौ इव पीडयामि वद ।

संजी०—अध्यापितस्येति ॥ उशनसा शुक्रेण नीतिं नीतिशास्त्रमध्यापित-स्यापि अपि शब्दाच्छुक्रशिष्याणामप्रधृष्यत्वं गम्यते। 'गतिबुद्धि—' इत्यादिना द्विकर्मकादिण्धातोर्ण्यन्तात्प्रधाने कर्मणि क्तः 'अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः'। इति वचनात्। ते द्विषस्तव शत्रोः कस्यार्थधर्मौ प्रयुक्तः प्रहितो रागो विषयाभिलाष एव प्रणिधिर्दूतो येन सोऽहम्। 'प्रणिधिः प्रार्थने चरे' इति यादवः। प्रवृद्ध ओघः प्रवाहः सिन्धोर्नद्यास्तटाविव पीडयामि वद ॥ ६ ॥

हिन्दी—हे प्रभो ! उशना के द्वारा नीतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने वाले, किन्तु से शत्रुता रखने वाले, आपके किस शत्रु के अर्थ और धर्म दोनों का विनाश विषय वासना रूप अपने गुप्तचर को भेजकर उसी प्रकार कर दें, जिस प्रकार वर्षाकाल में बढ़े हुए नदी का वेग अपने दोनों ओर के तटों को विनष्ट कर देता है।

काममधिकृत्याह—

कामेकपत्नीव्रतदुःखशीलां लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम्।
नितम्बिनीमिच्छसि मुक्तलज्जां कण्ठे स्वयंग्राहनिषक्तबाहुम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—एक पत्नीव्रतदुःखशीलां चारुतया लोलं मनःप्रविष्टां नितम्बिनीम् मुक्तलज्जां काम् सतीं कण्ठे स्वयं ग्राहनिषक्तबाहुम् इच्छसि ।

संजी०--कामिति । एकः पतिर्यस्याः सैकपत्नी पतिव्रता । 'नित्यं सपत्न्यादिषु' इति ङीप् । तस्या व्रतं पातिव्रत्यं तेन दुःखशीलां दुःखस्वभावाम् । दृढव्रतामित्यर्थः । 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः । चारुतया सुन्दरत्वेन हेतुना लोलं मनस्त्वच्चित्तं प्रविष्टां कां नितम्बिनीं नारीं मुक्तलज्जां सतीं कण्ठे स्वयंग्राहनिषक्तबाहुम् । स्वयं गृह्णातीति स्वयंग्राहा । 'विभाषा ग्रहः' इति णप्रत्ययः । न च जलचर एव ग्राह इति नियमः । जलचरे ग्राह एवेति नियमादिति । स्वयंग्राहा च सा निषक्तबाहुश्च तां तथाभूतामिच्छसि । त्वदर्थे पतिव्रतामपि व्रताद्भ्रंशयिष्यामीत्यर्थः ॥ एतच्चेन्द्रस्य पारदारिकत्वादुक्तम् । तथा च श्रुतिः--'अहल्यायै जारा' इति ॥७॥

हिन्दी—हे महेन्द्र ! पतिव्रता होने के कारण आपको दुःख देने वाली किन्तु सौन्दर्यातिशय से आपके चञ्चल मन को आकृष्ट करने वाली इस प्रकार की किस स्त्री को लज्जारहित हो अपने आप आकर अपने कण्ठ में लिपटी हुई देखना चाहते हैं ।

त्रिविधा नायिका स्वकीया परकीया साधारणी चेति । तत्र परकीयां प्रत्युक्तम् । इतरे प्रत्याह—

कयासि कामिन् सुरतापराधात्पादानतः कोपनयावधूतः ।
तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं प्रवालशय्याशरणं शरीरम् ॥८॥

अन्वयः—हे कामिन् ! कोपनया कया सुरतापराधात् पादानतः सन् अवधूतः असि तस्याः शरीरं दृढानुतापं प्रवालशय्याशरणं करिष्यामि ।

संजी०--कयेति ॥ हे कामिन्कामुक, सुरतापराधात् । अन्यासङ्गादित्यर्थः । पादानतः प्रणतः सन् । कोपनया कोपनशीलया कया स्त्रियावधूतस्तिरस्कृतोऽसि । तस्याः शरीरं दृढानुतापं गाढपश्चात्तापमत एव प्रवालशय्याशरणं करिष्यामीति ॥८॥

हिन्दी--हे कामुक ! सुरत में (सपत्नी नाम ग्रहणादि रूप) अपराध हो जाने के कारण पैर पर गिर कर मनाने पर भी क्रुद्ध हुई किस स्त्री ने आपका अपमान किया है (उसका नाम कहिये) ? मैं उसके शरीर को कामज्वर के संताप से पीड़ित कर उसे पल्लवों की शीतल शय्या का आश्रय लेने के लिए विवश करूँ ।

प्रसीद विश्राम्यतु वीर ! वज्रं शरैर्मदीयैः कतमः सुरारिः ।
बिभेतु मोघीकृतबाहुवीर्यः स्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताधराभ्यः ॥९॥

अन्वयः—हे वीर ! प्रसीद । वज्रं विश्राम्यतु । मदीयैः शरैः मोघीकृतबाहुवीर्यः कतमः सुरारिः कोपस्फुरता धराभ्यः स्त्रीभ्यः अपि बिभेतु ।

संजी०—प्रसीदेति ॥ हे वीर, प्रसीद प्रसन्नो भव। वज्रं कुलिशं विश्राम्यतु। उदास्तामित्यर्थः। मदीयैः शरैर्मोघीकृतबाहुवीर्यो विफलीकृतभुजशक्तिः कतमो दैत्यदानवादिषु यः कश्चन सुरारिः। 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' इति डतमच्प्रत्ययः। कोपेन स्फुरिताधराभ्य स्त्रीभ्योऽपि बिभेतु। किमु वक्तव्यं पुंभ्य इत्यर्थः। सकृद्भीतः सर्वतो बिभेतीति भावः। 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी ॥९॥

हिन्दी—हे वीर ! मुझ पर दया कीजिये । आपका वज्र भी विश्राम करे । मात्र मेरे वाणों से जिसका बाहुबल नष्ट हो गया है ऐसे किस दैत्य को क्रोध से ओष्ठ कम्पित करने वाली मात्र स्त्री के द्वारा, भयभीत कर दूँ ।

तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥१०॥

अन्वयः—तव प्रसादात् कुसुमायुधः अपि एकं मधुं एव सहायं लब्ध्वा पिनाकपाणेः हरस्य अपि धैर्यच्युतिं कुर्याम् । अन्ये धन्विनः मम के ?

संजी०—तवेति ॥ किं बहुना, तव प्रसादादनुग्रहात्कुसुमायुधोऽप्यतिदुर्बलास्त्रोऽप्यहमेकं मधुं वसन्तमेव सहायं लब्ध्वा पिनाकः पाणौ यस्य स पिनाकपाणिः। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यो'। हरस्यापि। हरः पिनाकी चेत्यतिदारुण इति भावः। धैर्यच्युतिं धैर्यहानिं कुर्याम्। कर्तुं शक्नुयामित्यर्थः। 'शकि लिङ् च' इति शक्यार्थे लिङ्। अन्ये धन्विनो धनुर्भृतो मम के। न केऽपीत्यर्थः। किंशब्दः कुत्सायाम्। 'कुत्साप्रश्नवितर्केषु क्षेपे किंशब्द इष्यते, इति शाश्वतः ॥१०॥

हिन्दी—हे प्रभो ! यद्यपि मेरे पास मात्र फलों के वाण ही साधन है फिर भी आपकी कृपा से केवल अपने वसन्त मित्र की सहायता लेकर मैं पिनाक जैसे महाप्रबल धनुष को धारण करने वाले शंकर के भी धैर्य को विनष्ट कर दूँ । मेरे सामने दूसरे धनुर्धरों की गणना ही क्या है ?

अथोरुदेशादवतार्य पादमाक्रान्तिसंभावितपादपीठम् ।
संकल्पितार्थे विवृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे ॥११॥

अन्वयः—अथ आखण्डलः ऊरुदेशात् पादम् आक्रान्ति संभावितपादपीठम् (यथा स्यात्तथा) अवतार्य संकल्पितार्थे विवृतात्मशक्तिं कामम् इदं बभाषे ।

संजी०—अथेति ॥ अथ स्मरवाक्यश्रवणानन्तरमाखण्डलः सहस्राक्ष ऊरुदेशात्पादमाक्रान्त्याक्रमणेन संभावितं पादपीठं यस्मिंस्तद्यथा तथावतार्य संकल्पितार्थे हरचित्ताकर्षणरूपे विषये विवृतात्मशक्तिम्। 'कुर्यां

हरस्यापि—' (३ । १०) इत्यादिना प्रकटीकृतस्वसामर्थ्यं कामं स्मरमिदं वक्ष्यमाणं बभाषे ॥११॥

हिन्दी--(कामदेव की बात सुनने के अनन्तर) इन्द्रदेव पैर को जाँघ से हटाकर आसन पर रखते हुए अपने अभीष्ट शिव के चित्ताकर्षण करने के लिए स्वयमेव अपनी शक्ति प्रगट करने वाले कामदेव से इस प्रकार बोले---

सर्वं सखे ! त्वय्युपपन्नमेतदुभे ममास्त्रे कुलिशं भवांश्च ।
वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च ॥१२॥

अन्वयः—हे सखे ! सर्वम् एतत् त्वयि उपपन्नम् । मम कुलिशं भवान् च उभे (मम) अस्त्रे । वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कण्ठं च त्वम् सर्वतोगामि साधकं च ।

संजी० —सर्वमिति ॥ हे सखे ! सखे इति संबोधनं गौरवार्थम् । सर्वमेतत्त्वय्युपपन्नं सिद्धम् । मम कुलिशं वज्रं भवांश्चोभे अस्त्रे । तत्र वज्रं तपोवीर्येण तपोबलेन महत्सु प्रबलेषु कुण्ठं प्रतिबद्धप्रसरम् । त्वमस्त्रं सर्वतोगामि च साधकं च । तापसेष्वप्यकुण्ठमित्यर्थः ॥१२॥

हिन्दी--हे प्रिय मित्र ! तुम्हारे जैसे मित्र से सब कुछ साध्य है । एक हमारा वज्र और दूसरे तुम दो ही तो हमारे अस्त्र हैं । जिसमें हमारा वज्र तो तपोबल से अधिक वीर्यवान् हुए शत्रु के विषय में बेकाम है । किन्तु तुम तो सर्वत्र गति रखने के कारण अप्रतिहत हो इसलिए सभी प्रकार के कार्यों को संपादन करने में समर्थ हो ।

अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥१३॥

अन्वयः—हे सखे ! ते सारम् अवैमि । अतः खलु आत्मसमं त्वां गुरूणि कार्ये नियोक्ष्ये कृष्णेन भूधरताम् अवेक्ष्य शेषः देहोद्वहनाय व्यादिश्यते ।

संजी०—अवैमीति ॥ हे सखे, ते सारं बलमवैमि वेद्मि । अतः खल्वत एवात्मसमं मत्तुल्यं त्वां गुरुणि महति कार्ये 'तस्मै हिमाद्रेः' (३ । १६) इति वक्ष्यमाणे नियोक्ष्ये । 'स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्' इति वार्तिकादात्मनेपदनियमः । तथाहि । सारपरीक्षापूर्वक एव सर्वत्र नियोग इत्याह--कृष्णेन विष्णुना । धरतीति धरः । पचाद्यच् । भुवो धरो भूधरस्तस्य भावस्तत्ता भूधरताम् । भूधरणशक्तिमित्यर्थः । अवेक्ष्य ज्ञात्वा शेषः सर्पराजो देहोद्वहनाय स्वदेहमुद्वोढुम् । क्रियार्थोपपदस्य—' इत्यादिना चतुर्थी । व्यादिश्यते नियुज्यते । शेषशायी हि भगवान् ॥१३॥

हिन्दी--हे प्रिय मित्र ! मैं तुम्हारी शक्ति को जानता हूँ । इसीलिए तुम्हें अपने सदृश विशिष्ट-विशिष्ट गुरुतर कार्यों में नियुक्त करता हूँ । भगवान् विष्णु ने शेष में समस्त पृथ्वी धारण करने की सामर्थ्य जान कर ही त्रैलोक्य धारणक्षम अपने शरीर के वहन (शय्यारूप से) कार्य में उन्हें नियुक्त किया है ।

नियोगाङ्गीकारं सिद्धवत् कर्त्तुमाह—

आशंसता बाणगतिं वृषाङ्के कार्यं त्वया नः प्रतिपन्नकल्पम् ।
निबोध यज्ञांशभुजामिदानीमुच्चैर्द्विषामीप्सितमेतदेव ॥१४॥

अन्वयः—वृषाङ्के बाणगतिं आशंसता त्वया नः कार्यं प्रतिपन्नकल्पं (कृतम्) इदानीम् उच्चैर्द्विषां यज्ञांशभुजां ईप्सितम् एतत् एव निबोधं ।

संजी०—आशंसतेति ॥ वृषाङ्के हरे बाणगतिं बाणप्रसरमाशंसता कथयता । 'कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेः' (३ । १०) इत्यादिनेति शेषः । त्वया नोऽस्माकं कार्यं प्रतिपन्नकल्पमङ्गीकृतप्रायम् । 'ईषदसमाप्तौ—' इत्यादिना कल्पप्प्रत्ययः । कथमेतदित्याह—इदानीमुच्चैरुन्नता द्विषो येषां तेषामुच्चैर्द्विषां यज्ञांशभुजां देवानाम् । एतेन द्विषल्लुप्तयज्ञभागत्वं सूच्यते । ईप्सितमाप्तुमिष्टमेतदेव हरे बाणप्रयोगरूपमेव निबोध । हरायत्तं बुद्धयस्वेत्यर्थः । 'बुध बोधने' इति धातोर्लोट् । अत्र 'आशंसता प्रार्थयमानेन' इति नाथव्याख्यानमनाथव्याख्यानम् । आङ्पूर्वयोः शास्तिशंसत्योरिच्छार्थत्वे आत्मनेपदनियमात् । याच्ञार्थत्वस्याप्रामाणिकत्वात् । 'कुर्यां हरस्यापि—' (३ । १०) इत्यत्रानयोरभावादयोगाच्चेति ॥१४॥

हिन्दी—हे काम ! तुमने शंकर के विषय में अपने बाणों की गति बता कर हम लोगों का कार्य करना एक प्रकार से स्वीकार ही कर लिया है । वृद्ध हुए तारकासुर जैसे प्रबल शत्रु हैं जिनके ऐसे हम देवता लोगों का इस समय यही प्रयोजन समझो ।

किं तत्कार्यं कथं वा तस्य हरायत्तत्वं कुतो वा मदपेक्षेत्याह—

अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः ।
स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो ब्रह्माङ्गभूर्ब्रह्मणि योजितात्मा ॥१५॥

अन्वयः—हि अमी देवा जयाय भवस्य वीर्यप्रभवं सेनान्यं उशन्ति । ब्रह्माङ्गभूः ब्रह्मणि योजितात्मा स त्वदेकेषु निपातसाध्यः अस्ति ।

संजी०—अमी इति ॥ हि यस्मादमी देवा जयाय शत्रुजयार्थं भवस्य हरस्य वीर्यप्रभवं तेजः संभूतं सेनापतिमुशन्ति कामयन्ते । 'वश कान्तौ' इति धातोर्लट् । ब्रह्मणां सद्योजातादिमन्त्राणामङ्गानां हृदयादिमन्त्राणां भूः स्थानं ब्रह्माङ्गभूः । कृतमन्त्रन्यास इत्यर्थः । ब्रह्मणि निजतत्त्वे 'वेदस्तत्त्वं

तपो ब्रह्म ब्रह्मा' इत्युभयत्राप्यमरः । योजितात्मा नियमितचित्तः । मन्त्रन्यासपूर्वकं ब्रह्म ध्यायन्नित्यर्थः । स भवश्च त्वदेकेषोस्तवैकबाणस्य निपातेन साध्यः । अनन्यसाध्योऽयमस्मिन्नवसर इति भावः ॥१५॥

हिन्दी—क्योंकि शत्रु को पराजित करने के लिए शंकर के तेज से उत्पन्न बालक को सेनापति बनाना चाहते हैं ।

उधर मन्त्रन्यासपूर्वक ब्रह्म का ध्यान करते हुए शंकर समाधि में बैठे हुए हैं, उनकी यह समाधि तुम्हारे एक ही बाण से टूट सकती है ।

तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां यतात्मने रोचयितुं यतस्व ।
योषित्सु तद्वीर्यनिषेकभूमिः सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम् ॥१६॥

अन्वयः—यतात्मने तस्मै प्रयतां हिमाद्रेः तनूजां रोचयितुं यतस्व । योषित्सु तद्वीर्यनिषेकभूमिः सा एव क्षमा इति आत्मभुवा उपदिष्टम् ।

संजी०—तस्मा इति ॥ यतात्मने नियतचित्ताय तस्मै भवाय । 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । प्रयतां हिमाद्रेस्तनूजां पार्वतीं रोचयितुं यतस्व । भवितव्यं चात्र पार्वत्यैवेत्याह—योषित्सु स्त्रीषु मध्ये । 'यतश्च निर्धारणम्' इति सप्तमी । क्षमा शक्ता तस्य हरस्य वीर्यं रेतस्तस्य निषेकः क्षरणं तस्य भूमिः क्षेत्रं सा पार्वत्येवेत्यात्मभुवा ब्रह्मणोपदिष्टम् । 'उभे एव क्षमे वोढुम्' (२ । ६०) इत्यादिनोक्तमित्यर्थः ॥१६॥

हिन्दी—विषयों से पराङ्मुख हुए उन शिव के मन में अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण वाली पार्वती के प्रति चाह उत्पन्न करने का तुम प्रयत्न करो । क्योंकि समस्त स्त्री जाति में वही एक पार्वती ही शंकर के वीर्यनिषेक की योग्य अधिकारिणी है, यह बात स्वयं ब्रह्माजी ने कही है ।

सापीदानीं संनिकृष्टैव तस्येत्याह—

गुरोर्नियोगाच्च नगेन्द्रकन्या स्थाणुं तपस्यन्तमधित्यकायाम् ।
अन्वास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं मया मत्प्रणिधिः स वर्गः ॥१७॥

अन्वय—नगेन्द्रकन्या च गुरोः नियोगात् अधित्यकायां तपस्यन्तं स्थाणुम् अन्वास्ते । इति मया अप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं । स वर्गः मत्प्रणिधिः अस्ति ।

संजी०—गुरोरिति ॥ नगेन्द्रकन्या पार्वती च गुरोः पितुर्नियोगाच्छासनादधित्यकायां हिमाद्रेरूर्ध्वभूमौ । 'भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः । 'उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः' इति त्यकन्प्रत्ययः । तपस्यन्तं तपश्चरन्तम् 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः' इति क्यङ्प्रत्ययः । ततः शतृप्रत्ययः ।

स्थाणुं रुद्रमन्वास्ते। उपास्ते इत्यर्थः। इतीदं मयाप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतम्। न चैतदैतिह्यमात्रमित्याह—स वर्गः सोऽप्सरसां गणो मत्प्रणिधिर्मम गूढचरः। 'प्रणिधिः प्रार्थने चर' इति यादवः ।।१७।।

हिन्दी—इस समय पार्वती अपने पिता की आज्ञा से हिमालय के ऊपर वाले शिखर पर तपश्चर्या कर रहे शंकर की सेवा कर रही हैं। यह बात हमने अप्सराओं के मुख से सुनी है। क्योंकि वह अप्सरावर्ग हमारा गुप्तचर है।

तद् गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव।
अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वां बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः ।।१८।।

अन्वय—तत् सिद्ध्यै गच्छ। देवकार्यं कुरु। अयम् अर्थः अर्थान्तरभाव्य एव। बीजाङ्कुर उदयात् प्राक् अम्भ इव त्वाम्—उत्तमं प्रत्ययम् अपेक्षते।

संजी०—तदिति ।। तत्तस्मात्सिद्ध्यै कार्यसिद्ध्यर्थं गच्छ। देवकार्यं कुरु। आशिषि लोट्। अयमर्थः प्रयोजनमर्थान्तरभाव्यः कारणान्तरसाध्य एव। तच्च कारणान्तरं पार्वतीसंनिधानमिति भावः। 'अर्थः प्रकारे विषये वित्तकारणवस्तुषु। अभिधेये च शब्दानां वृत्तौ चापि प्रयोजने।' इति विश्वः। तथापि बीजसाध्योऽङ्कुरो बीजाङ्कुर उदयादुत्पत्तेः प्रागम्भ इव त्वामुत्तमं प्रत्ययं चरमं कारणमपेक्षते। 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु'। इत्यमरः। तस्मादस्मिन्नर्थे तव चरमसहकारित्वादनन्यसाध्योऽयमर्थ इति भावः ।।१८।।

हिन्दी—इसलिए कार्यसिद्धि के लिए तुम जाओ और देवताओं के कार्य का संपादन करो। जिस प्रकार पृथ्वी और कृषि के संयोग से होने वाला बीजांकुर कारणत्वेन सर्वप्रथम जल की अपेक्षा रखता है, (उसी तरह पार्वती के सन्निधान मात्र से होने वाला शिव का चित्ताकर्षणरूप देवताओं का यह कार्य भी सर्वप्रथम तुम्हें ही अन्तिम कारण मानता है)।

तस्मिन्सुराणां विजयाभ्युपाये तवैव नामास्त्रगतिः कृती त्वम्।
अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म ।।१९।।

अन्वयः—सुराणां विजयाभ्युपाये तस्मिन् अस्त्रगतिः तव एव नाम। अतः त्वं कृती। हि अप्रसिद्धम् अपि अनन्यसाधारणम् एव कर्म पुंसां यशसे भवति।

संजी०—तस्मिन्निति ।। सुराणां विजयाभ्युपाये जयस्योपायभूते तस्मिन्हरेऽस्त्रगतिरस्त्रप्रसरस्तवैव नाम। नामेति संभावनायाम्। अन्येषां तु संभावनापि नास्तीति भावः। अतस्त्वं कृती कृतमस्यास्तीति कृती कृतार्थः।

तथाहि। अप्रसिद्धमप्यनन्यसाधारणमेव कर्म पुंसां यशसे हि। इदं तु प्रसिद्धमसाधारणं चेत्यतियशस्करमिति भावः ॥१९॥

हिन्दी—देवताओं की तारकासुर के ऊपर विजय प्राप्त कराने वाले शंकर के विषय में मात्र तुम्हारे ही अस्त्रों की गति है दूसरों की नहीं, यह सिद्ध है। इसलिए तुम कृतार्थ हो। क्योंकि अन्यों के लिए सर्वथा असाध्य एवं ऐसा असाधारण कार्य पुरुष के यश का कारण बनता है।

प्रोत्साहनार्थं स्तौति—

सुराः समभ्यर्थयितार एते, कार्यं त्रयाणामपि विष्टपानाम्।
चापेन ते कर्म न चातिहिंस्रमहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः ॥२०॥

अन्वयः—एते सुरा समभ्यर्थयितारः। कार्यं त्रयाणाम् अपि विष्टपानाम्। कर्म ते चापेन। अतिहिंस्रं च न। अहो बत स्पृहणीयवीर्यः असि।

संजी०—सुरा इति ॥ एते सुराः समभ्यर्थयितारो याचितारः। कार्यं प्रयोजनं त्रयाणां विष्टपानामपि संबन्धि। सर्वलोकार्थमित्यर्थः। कर्म ते तव चापेन। न त्वन्येनेति भावः। अतिहिंस्रमतिघातुकं च न। अहो बत इति संबोधने। 'अहो बतानुकम्पायां खेदे संबोधनेऽपि च' इति विश्वः। अथवा अहो आश्चर्ये। बतेत्यामन्त्रणे संतोषे चेति। 'बतामन्त्रणसंतोषखेदानुक्रोशविस्मये' इति विश्वः। स्पृहणीयवीर्योऽस्याश्चर्यविक्रमोऽसि। 'आश्चर्यं स्पृहणीयं च' इति नानार्थकोषः ॥२०॥

हिन्दी—ये देवता लोग तुम से प्रार्थना कर रहे हैं। काम भी केवल एक का नहीं प्रत्युत् तीनों लोकों के निवासियों का है। वह कार्य एकमात्र तुम्हारे धनुष से साध्य है, जो प्राणघातक भी नहीं है। अहो, तुम्हारा पुरुषार्थ सबके लिए स्पृहणीय है।

मधुश्च ते मन्मथ! साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ॥२१॥

अन्वयः—हे मन्मथ! असौ मधुश्च ते साहचर्यात् अनुक्तः अपि सहाय एव समीरणः हुताशनस्य नोदयिता भव इति केन व्यादिश्यते।

संजी०—मधुरिति ॥ हे मन्मथ! असौ मधुश्च वसन्तोऽपि ते साहचर्यात्सहचरत्वादेवानुक्तोऽप्यप्रेरितोऽपि सहायः सहकार्येव। तथाहि। समीरणो वायुर्हुताशनस्याग्नेर्नोदयिता प्रेरको भवेति केन व्यादिश्यते। अत्र मधुसमीरणयोरुक्तिमन्तरेण सहायताकरणं सामान्यधर्मः। स च वाक्यद्वये वस्तुप्रतिवस्तुभावेन पृथङ् निर्दिष्ट इति प्रतिवस्तूपमालंकारोऽयम्। तदुक्तम्—'यत्र सामान्यनिर्देशः पृथग्वाक्यद्वये यदि। गम्यौपम्याश्रिता सा स्यात्प्रतिवस्तूपमा मता ॥' इति ॥२१॥

हिन्दी—हे काम ! यह वसन्त तो बिना कहे ही स्वाभाविक मैत्री के कारण तुम्हारा सहायक है ही । 'हवा तुम अग्नि की सहायता करो' भला इस प्रकार का उपदेश कोई वायु को करता है । वह तो बिना कहे ही अग्नि की सहायता करता है ।

तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञामादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे ।
ऐरावतास्फालनकर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदङ्गमिन्द्रः ॥२२॥

अन्वय—तथा इति भर्तुः शेषाम् इव आज्ञां मूर्ध्ना आदाय मदनः प्रतस्थे इन्द्रः ऐरावतास्फालनकर्कशेन हस्तेन तदङ्गम् पस्पर्श ।

संजी०—तथेति ॥ तथास्त्विवति भर्तुः स्वामिनः शेषामिव प्रसाददत्तां मालामिव । 'प्रसादान्निजनिर्माल्यदाने शेषेति कीर्तिता'—इति विश्वः । 'माल्याक्षतादिदाने स्त्री शेषा' इति वैजयन्तीकेशवौ । आज्ञां मूर्ध्नादाय शिरसा गृहीत्वा मदनः प्रतस्थे । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् । इन्द्र ऐरावतास्फालनेन प्रोत्साहनार्थेन ताडनेन कर्कशेन परुषेण हस्तेन तदङ्गं मदनदेहं पस्पर्श । हस्तस्पर्शेन संभावयामासेत्यर्थः । 'शेषामिवाज्ञाम्' इत्यत्र साधकबाधकप्रमाणाभावादुपमोत्प्रेक्षयोः संदेहसंकर इति । यदि भर्त्रा शेषापि दत्ता तदा तामाज्ञामिवेत्युपमा । अथ न दत्ता तर्हि शेषात्वेनोत्प्रेक्षिता । शेषादानं तु संदिग्धमिति ॥२२॥

हिन्दी—कामदेव भी 'तथास्तु' कहकर इन्द्र की आज्ञा को शिर पर चढ़ा कर जाने के लिए तैयार हो गया । जाते समय इन्द्र ने ऐरावत के आस्फालन से कर्कश हुए अपने हाथ से कामदेव की पीठ ठोंकी ।

स माधवेनाभिमतेन सख्या रत्या च साशङ्कमनुप्रयातः ।
अङ्गव्ययप्रार्थितकार्यसिद्धिः स्थाण्वाश्रमं हैमवतं जगाम ॥२३॥

अन्वयः—स अभिमतेन सख्या माधवेन रत्या च (सह) साशंकम् अनुप्रयातः सन् अङ्गव्ययप्रार्थितकार्यसिद्धिः हैमवतं स्थाण्वाश्रमं जगाम ।

संजी०—स इति ॥ स मदनोऽभिमतेन प्रियेण सख्या सुहृदा माधवेन वसन्तेन रत्या स्वदेव्या च साशङ्कं संकटमापतितमिति सभयमनुप्रयातः सन् । तथाङ्गस्य व्ययेनापि प्रार्थिता कार्यसिद्धिर्येन स तथोक्तः । शीत्वा मृत्वापि सर्वथा देवकार्यं साधयिष्यामीति कृतनिश्चयः सन्नित्यर्थः । हैमवतं हिमवति भवं स्थाणो रुद्रस्याश्रमं जगाम ॥२३॥

हिन्दी—सशंकितमन से पीछे-पीछे चलने वाले अनुकूल मित्र वसन्त एवं प्रिय पत्नी रति के साथ कामदेव 'मैं अपनी जान देकर भी देवताओं का कार्य सिद्ध करूँगा' इस दृढ़ निश्चय के साथ हिमालय के शिखर पर शंकर के आश्रम की ओर चला ।

तस्मिन्वने संयमिनां मुनीनां तपःसमाधेः प्रतिकूलवर्ती ।
संकल्पयोनेरभिमानभूतमात्मानमाधाय मधुर्जजृम्भे ॥२४॥

अन्वयः--तस्मिन् वने संयमिनां मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्त्ती संकल्पयोनेः अभिमानभूतम् आत्मानम् आधाय मधुः जजृम्भे ।

संजी०—तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्वने स्थाण्वाश्रमे संयमिनां समाधिमतां मुनीनां तपसः समाधेरेकाग्रतायाः प्रतिकूलं वर्तते इति प्रतिकूलवर्ती विरोधी मधुर्वसन्तः संकल्पयोनेर्मनोभवस्याभिमानभूतम् । गर्वहेतुभूतमित्यर्थः । कार्यकारणयोरभेदोपचारः । आत्मानं निजस्वरूपमाधाय संनिधाय जजृम्भे प्रादुर्बभूव । वसन्तधर्मान्प्रवर्तयामासेत्यर्थः ॥२४॥

हिन्दी--शंकर के उस तपोवन में समाधि में लीन रहने वाले मुनियों के तपः-समाधि के प्रतिकूल विघ्न उत्पन्न करने वाला वसन्त जिस पर कामदेव को अत्यन्त गर्व रहता है अपने स्वरूप को (कुसुम नवपल्लव कोकिल कूज भ्रमर झंकार) बना कर विकसित करने लगा ।

वसन्तधर्मानाह—

कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य ।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिश्वासमिवोत्ससर्ज ॥२५॥

अन्वयः—उष्णरश्मौ समयं विलंघ्य कुबेरगुप्ता दिशं गन्तुं प्रवृत्ते प्रति दक्षिणा-दिक् मुखेन गन्धवहं व्यलीक निःश्वासम् इव ससर्ज ।

संजी०—कुबेरेति । उष्णरश्मौ सूर्ये साहसिके च नायके समयं दक्षिणायनकालं संगमकालं च विलङ्घ्याकाण्डे व्यतिक्रम्य कुबेरगुप्तां धनपतिपालितां कुत्सितशरीरेण केनचिद्रक्षितां च दिशमुदीचीं स्त्री-लिङ्गाक्षिप्तां कांचिन्नायिकां च गन्तुं चलितुं संगन्तुं च प्रवृत्ते सति दक्षिणा दिग्दाक्षिण्यवती नायिका च मुखेनाग्रभागेन वक्त्रेण च । वहतीति वहः । पचाद्यच् । गन्धस्य वहं गन्धवहमनिलं व्यलीकेन दुःखेन निश्वा-सस्तं व्यलीकनिश्वासमिव । 'दुःखे वैलक्ष्ये व्यलीकमप्रियाकार्यवस्तुनोः' इति वैजयन्ती । उत्ससर्ज प्रवर्तयामास । स्वभर्तरि समयोल्लङ्घनेन पराङ्गनासंगतिं प्रवृत्ते सति स्त्रियो दाक्षिण्यादकिंचिद्वदा दुःखान्निश्व-सन्तीति भावः । उत्तरायणे सति मलयानिलाः प्रवृत्ताः इति वाक्यार्थः । अत्रोत्प्रेक्षालंकारः । न च समासोक्तिरेवेयमुत्प्रेक्षानुप्रविष्टेति शङ्कितव्यम् । केवलविशेषसामर्थ्यादेवाप्रस्तुतप्रतीतौ सोत्तिष्ठते । अत्र तु दक्षिणेति विशेष्य-सामर्थ्यादपि नायिका प्रतीयते । न च श्लेष एव प्रकृताप्रकृतविषयः, उभयश्लेषे श्लिष्टविशेष्यानङ्गीकारात् । तस्माच्छब्दशक्तिमूलोऽयं ध्वनिः ।

स च व्यलीकनिश्वासरूपचेतनधर्मसंभावनार्थं दक्षिणस्या दिशो नायिकया सहाभेदमासादयन्नभेदलक्षणातिशयोक्त्युपजीविनीं निश्वासमिवेति वाच्योत्प्रेक्षां निर्वहतीति वाच्यसिद्धयङ्गभूत इत्युत्पश्यामः ॥२५॥

हिन्दी—उस समय सूर्य के अपनी मर्यादा त्याग कर असमय में (दक्षिणायन से उत्तरायण हो जाने पर) दक्षिण दिशा ने दीर्घ निःश्वास की तरह मलय पवन को प्रवाहित किया।

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥२६॥

अन्वयः—अशोकः सद्यः स्कन्धात् प्रभृति एव पल्लवानि कुसुमानि असूत आसञ्जितनूपुरेण सुन्दरीणां पादेन सम्पर्कं न अपैक्षत।

संजी०—असूतेति ॥ अशोको वृक्षविशेषः सद्यः स्कन्धात्प्रकाण्डात्प्रभृत्येव स्कन्धादारभ्येत्यर्थः। भाष्यकारवचनात्प्रभृतियोगे पञ्चमीति कैयटः। भाष्यं च 'मूलात्प्रभृत्यग्राद्वृक्षांस्तक्ष्णुवन्ति' इति 'कार्तिक्याः प्रभृत्याग्रहायणी मास' इत्यादि। सपल्लवानि कुसुमान्यसूत। उभयमप्यजीजनदित्यर्थः। आसिञ्जितो नूपुरो यस्य तेन। सिञ्जधातोः 'अकर्मक—' इत्यादिना कर्तरि क्तः। सुन्दरीणां पादेन संपर्कं ताडनं नापैक्षत। 'सनूपुररवेण स्त्रीचरणेनाभिताडनम्। दोहदं यदशोकस्य ततः पुष्पोद्गमो भवेत् ॥' इति। तथाहि—'पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः शोकं जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः। आलोकितः कुरुबकः कुरुते विकासमालोडितस्तिलक उत्कलिको विभाति' इति ॥२६॥

हिन्दी—मूर्त्तिमान् वसन्त के स्वयं उस तपोवन में पधारने से अशोक वृक्ष शाखा-प्रशाखा से लेकर नीचे से ऊपर तक सर्वत्र पल्लव एवं नवकुसुमों से संपन्न हो गया। उस समय उसने पायजेब सहित सुन्दरी स्त्रियों के पदाघात रूप खाद की अपेक्षा नहीं की।

सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे ।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य ॥२७॥

अन्वयः—मधुः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नवचूतबाणे समाप्तिं नीते सति सद्यः मनोभवस्य नामाक्षराणि इव द्विरेफान् निवेशयामास।

संजी०—सद्य इति। मधुर्वसन्त एवेषुकारः प्रवालोद्गमाः पल्लवाङ्कुरा एव चारूणि पत्त्राणि पक्षा यस्य तस्मिन्। 'पत्त्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः। नवं चूतं चूतकुसुमं तदेव बाणस्तस्मिन्नवचूतबाणे समाप्तिं नीते

सति सद्यो मनोभवस्य धन्विनो नामाक्षराणीव, द्विरेफान्भ्रमरान्निवेशयामास निदधौ। अत्र प्रवालपत्र इत्याद्येकदेशविवर्तिरूपकं मधोरिषुकारत्वं रूपं यन्नामाक्षराणीवेत्युत्प्रेक्षायां निमित्तमित्येकदेशविवर्तिरूपकोत्थापितेयमुत्प्रेक्षा ॥२७॥

हिन्दी--वसन्त ने कोमल-कोमल लाल पत्तों के आने से मनोहर पत्तों वाले आम्रकुसुमरूपी कामदेव के वाणों के तैयार हो जाने पर शीघ्र उस पर बैठने वाले भ्रमरों के बहाने मानों कामदेव का नाम लिख दिया।

विमर्श--उक्त पद्य में उत्प्रेक्षा से वसन्त इषुकार है। नवप्रवालोद्गम बाण का पुच्छ है। स्वयम् आम कुसुम बाण है। उस पर बैठने वाले भ्रमर कामदेव के नामाक्षर है। ऐसा सूचित किया।

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥२८॥

अन्वयः--कर्णिकारं वर्णप्रकर्षे सति निर्गन्धतया चेतः दुनोति स्म। प्रायेण विश्वसृजः प्रवृत्तिः गुणानां सामग्र्यविधौ पराङ्मुखी भवति।

संजी०—वर्णेति। कर्णिकारं कर्णिकारकुसुमम्। 'अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः' इत्युत्पन्नस्य तद्धितस्य 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' इति लुक्। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम्। वर्णप्रकर्षे वर्णोत्कर्षे सत्यपि निर्गन्धतया हेतुना चेतो दुनोति स्म पर्यतापयत्। 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट्। तथाहि। प्रायेण विश्वसृजो विधातुः प्रवृत्तिर्गुणानां सामग्र्यविधौ साकल्यसंपादनविषये पराङ्मुखी। सर्वत्रापि वस्तुनि किंचिद्वैकल्यं संपादयति। यथा चन्द्रे कलङ्कः। अतः कर्णिकारेऽपि नैर्गन्ध्यं युज्यत इति भावः। सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः ॥२८॥

हिन्दी--कर्णिकार का पुष्प देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हुए भी गन्धविहीन होने के कारण प्रायः सहृदय पुरुषों के चित्त में तरस उत्पन्न करता है। ब्रह्मदेव की पराङ्मुखी आदत यह है कि वह संपूर्ण पदार्थों के निर्माण में कुछ न कुछ कमी अवश्य रखते हैं। सम्पूर्ण गुणसम्पन्न नहीं बनाते।

बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद् बभुः पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥२९॥

अन्वयः--अविकासभावात् बालेन्दुवक्राणि अतिलोहितानि पलाशानि वसन्तेन समागतानां वनस्थलीनां सद्यः नखक्षतानि इव बभुः।

संजी०—बालेन्द्विति। अविकासभावान्निर्विकासत्वान्मुकुलभावाद्धेतोर्बालेन्दुरिव वक्राण्यतिलोहितान्यतिरक्तानि पलाशानि किंशुकपुष्पाणि।

'पलाशे किंशुकः पर्णः' इत्यमरः। वसन्तेन पुंसा समागतानां संगतानां वनस्थलीनां स्त्रीणां सद्यः सद्योदत्तानि। पुराणेष्वतिलौहित्याभावादिति भावः। नखक्षतानीव बभुः। अत्र वसन्तस्य वनस्थलीनां च विशेषण-साधारण्यान्नायकव्यवहारप्रतीतेः समासोक्तिस्तावदस्ति। 'नखक्षतानीव' इति जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा वक्रत्वलौहित्यगुणनिमित्ता जागर्ति। सा च नायक-व्यवहाराश्रितसमासोक्तिगर्भिण्येवोत्तिष्ठत इत्युभयोरेककालतैव। विशेषण-सामर्थ्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिरिष्यत इति हि लक्षणम् ॥२९॥

हिन्दी—कलिका रूप होने से अर्धचन्द्र के सदृश टेढ़े अत्यन्त लाल वर्ण के पलाशपुष्प बसन्त रूपी पुरुष के साथ समागम करने वाली वनस्थली रूप स्त्री के होंठों पर सद्यः किये गये नखक्षतों के समान मालूम होते थे।

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार ॥३०॥

अन्वयः—मधुश्रीः लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं तिलकं मुखे प्रकाश्य बालारुण कोमलेन रागेण चूतप्रवालोष्ठम् अलञ्चकार।

संजी०—लग्नेति। मधुश्रीर्वसन्तलक्ष्मीर्लग्नद्विरेफा एवाञ्जनभक्तयः कज्जलरचनास्ताभिश्चित्रं चित्रवर्णं तिलकं पुष्पविशेषमेव तिलकं विशेषकम्। मुखं प्रारम्भस्तस्मिन्नेव मुखे वक्त्रे प्रकाश्य प्रकटय्य बालारुणकोमलेन बालार्कसुन्दरेण रागेणारुणिम्ना तेनेव लाक्षारागेण चूतप्रवाल एवोष्ठस्तं चूतप्रवालोष्ठमलंचकार प्रसाधयामास। अत्र रूपकालंकारः ॥३०॥

हिन्दी—वसन्त शोभारूपी नायिका ने भ्रमररूपी कज्जल की विशेष रचना से युक्त (तिलक वृक्ष के कुसुमरूपी) तिलक को अपने अग्रभाग रूपी मुख में लगाकर पुनः प्रातःकालीन उदय होते हुए सूर्यरूपी महावर से आम्रपल्लवरूपी ओष्ठ को अलंकृत किया।

मृगाः प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः।
मदोद्धताः प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः ॥३१॥

अन्वयः—प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकणैः विघ्नितदृष्टिपाताः मदोद्धताः मृगाः प्रत्यनिलं मर्मरपत्रमोक्षाः वनस्थलीः विचेरुः।

संजी०—मृगा इति। प्रियालद्रुमा राजादनवृक्षाः। 'राजादनः प्रियालः स्यात्' इत्यमरः। तेषां मञ्जर्यस्तासां रजःकणैर्विघ्निताः संजातविघ्ना दृष्टीनां पाताः प्रसादा येषां ते तथोक्ताः मदोद्धता मृगाः प्रत्यनिलमनिला-भिमुखं मर्मरा मर्मरशब्दवन्तः पत्रमोक्षा जीर्णपर्णपाता यासु ता वनस्थली-

विचेरुर्वनप्रदेशेषु चरन्ति स्म । 'देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' । इति चरतेः सकर्मकत्वम् ॥३१॥

हिन्दी--उस समय प्रियाल वृक्षों के मञ्जरियों के रजःकणों के गिरने से अच्छी तरह देखने में असमर्थ और मद से उद्धत मृगगण हवा के झोंके से सूखे पत्तों के गिरने से मर्मरशब्द करने वाली वनभूमि पर इधर-उधर दौड़ने लगे ।

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य ॥३२॥

अन्वयः--चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलः यद् मधुरं चुकूज । तत एव मनस्विनीमानविघातदक्षं स्मरस्य वचनं जातम् ।

संजी०—चूताङ्कुरेति । चूताङ्कुराणामास्वादेन कषायकण्ठो रक्तकण्ठः । 'सुरभावपथे रक्ते कषायः' इति केशवः । पुमान्कोकिलः पुंस्कोकिलः। पुंग्रहणं प्रागल्भ्यद्योतनार्थम् । मधुरं चुकूजेति यत्तत्कूजनमेव मनस्विनीनां मानविघाते रोषनिरासे दक्षं स्मरस्य वचनं मानं त्यजतेत्याज्ञावचनं जातम् । कोकिलकूजितश्रवणान्तरं स्मराज्ञप्ता इव मानं जहुरित्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी—आम्र कुसुम के आस्वाद से मधुर ध्वनि वाले पुंस्कोकिल का जो कूजन होने लगा । उससे मानवती स्त्रियों के मान को दूर करने वाली कामदेव के आने की घोषणा होने लगी ।

हिमव्यपायाद्विशदाधराणामापाण्डरीभूतमुखच्छवीनाम् ।
स्वेदोद्गमः किंपुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्त्रविशेषकेषु ॥३३॥

अन्वयः--हिमव्यपायात् विशदाधराणाम् आपाण्डरीभूतमुखच्छवीनां किंपुरुषाङ्गनानां पत्रविशेषकेषु स्वेदोद्गमः पदं चक्रे ।

संजी०—हिमेति । हिमस्य व्यपायादपगमाद्विशदा नीरुजा अधरा ओष्ठा यासां तासामापाण्डरीभूतमुखच्छवीनाम् । कुङ्कुमपरिहारादिति भावः । किंपुरुषाङ्गनानां पत्रविशेषकेषु पत्ररचनासु स्वेदोद्गमः पदं चक्रे । घर्मोदयात्स्वेदोदयोऽभूदित्यर्थः । विशदाधरत्वं मधूच्छिष्टराहित्यादिति भावः । हेमन्तेषु नार्यो बिम्बोष्ठेषु मधूच्छिष्टं शीतभयाद्दधतीति प्रसिद्धम् ॥३३॥

हिन्दी--पाला गिरने से मनोहर ओष्ठों एवं स्वच्छ मुखों से सुशोभित होने वाली किन्नरियों के पत्ररचनाओं पर सूर्योदय होने के कारण स्वेद का उद्गम होने लगा ।

तपस्विनः स्थाणुवनौकसस्तामाकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम् ।
प्रयत्नसंस्तम्भितविक्रियाणां कथंचिदीशा मनसां बभूवुः ॥३४॥

अन्वयः—स्थाणुवनौकसः ताम् आकालिकीं मधुप्रवृत्तिं वीक्ष्य प्रयत्नसंस्तम्भितविक्रियाणां मनसां कथञ्चित् ईशाः बभूवुः ।

संजी०—तपस्विन इति । स्थाणोर्वनमोको येषां ते तपस्विनस्तत्रत्या मुनयः । समानकाले आद्यन्तावस्था आकालिकीम् । अकालभवत्वादुत्पत्त्यनन्तरविनाशिनीमित्यर्थः । 'आकालिकडाद्यन्तवचने' इति समानकालादिकट्प्रत्ययः प्रकृतेराकाल आदेशश्च निपातितः । 'टिड्ढाणञ्-'इत्यादिना ङीप् । केचिदकालाद् देहादध्यात्मादित्वाद्भवार्थे ठगित्याहुः । तामाकालिकीं मधुप्रवृत्तिं वीक्ष्य प्रयत्नेन संस्तम्भितविक्रियाणां निरुद्धविकाराणां मनसां कथंचिदीशा नियन्तारो बभूवुः ॥३४॥

हिन्दी—असमय में इस प्रकार वसन्त की समृद्धि देखकर शङ्कर के आश्रम में रहने वाले तपस्वीगण किसी-किसी प्रकार अपने मन के विकारों को रोककर उसे नियन्त्रित करने में समर्थ हुये ।

तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।
काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः ॥३५॥

अन्वयः—आरोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने तं देशं प्रपन्ने सति द्वन्द्वानि काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं भावं क्रियया विवव्रुः ।

संजी०—तमिति । आरोपितमधिज्यं कृतं पुष्पचापं येन तस्मिन्नतिर्द्वितीया यस्य तस्मिन्रतिसहाये मदने तं देशं स्थाण्वाश्रमं प्रपन्ने प्राप्ते सति द्वन्द्वानि स्थावराणि जङ्गमानि च मिथुनानि काष्ठोत्कर्षः । 'काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि' इत्यमरः । तां गतो यः स्नेह इष्टसाधननिबन्धनः प्रेमापरनामा ममताभिमानः 'प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः' इत्यमरः । स एव रसस्तेनानुविद्धं संपृक्तं भावं रत्याख्यं शृङ्गारभावं क्रियया कार्यभूतया चेष्टया विवव्रुः प्रकटीचक्रुः । शृङ्गारचेष्टाः प्रावर्तन्तेत्यर्थः ॥३५॥

हिन्दी—उन शंकर के आश्रम में कुसुममय चाप धारण किये हुए रति के साथ कामदेव के पहुँचते ही स्थावर, जङ्गमात्मक सभी प्रकार के स्त्री-पुरुषों के जोड़े अत्यन्त बढ़ी हुई संभोग की इच्छा को परस्पर आलिङ्गन आदि क्रिया-व्यापारों के द्वारा प्रकट करने लगे ।

ताश्चेष्टा आह 'मधु' इत्यादिभिश्चतुर्भिः —

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥३६॥

अन्वयः—द्विरेफः कुसुमैकपात्रे स्वां प्रियाम् अनुवर्त्तमानः सन् मधु पपौ: कृष्णसारः स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीं शृङ्गेण अकण्डूयत ।

संजी०--मध्विवति। द्वौ रेफौ वर्णविशेषौ यस्य स द्विरेफो भ्रमरः। उपचारात्तदर्थोऽपि द्विरेफ उच्यते। यथाह कैयटः-- शब्दधर्मेणाप्यर्थस्य व्यपदेशो दृश्यते। यथा भ्रमरशब्दस्य द्विरेफत्वाद् द्विरेफो भ्रमरः' इति। कुसुममेवैकं साधारणं पात्रं तस्मिन्मधु मकरन्दम्। 'मधु मद्ये पुष्परसे' इति विश्वः। स्वां प्रियां भृङ्गीमनुवर्तमानोऽनुसरन्पपौ। तत्पीतशेषं पपावित्यर्थः। कृष्णश्चासौ सारः शबलश्च कृष्णसारः कृष्णमृगः। 'वर्णो वर्णेन' इति समासः। स्पर्शेन स्पर्शसुखेन निमीलिताक्षीं मृगीं शृङ्गेणाकण्डूयत कषितवान्। 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यक्। ततः कर्तरि लङ् ॥३६॥

हिन्दी—उस समय भ्रमर कुसुमरूपी एक ही पात्र में अपनी प्रिया का अनुसरण करता हुआ मधुपान करने लगा और कृष्णसार नामक मृग स्पर्शजन्य सुख से आँख मूँदकर खड़ी रहने वाली स्वप्रिया मृगी को सींग से खुजलाने लगा।

ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा ॥३७॥

अन्वयः--रसात् करेणुः पङ्कजरेणुगन्धि गण्डूषजलं गजाय ददौ। रथाङ्गनामा अर्धोपमुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास।

संजी०—ददाविति। रसादतिरागात्करेणुः करिणी। 'करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे' इत्यमरः। पङ्काज्जायत इति पङ्कजं तस्य रेणुः पङ्कजरेणुस्तस्य गन्धोऽस्यास्तीति पङ्कजरेणुगन्धि गण्डूषजलं मुखान्तर्धृतजलं गजाय ददौ। रथाङ्गनामा चक्रवाकोऽर्धं यथा तथोपभुक्तेनार्द्धजग्धेन बिसेन जायां संभावयामास। स्वजग्धशेषं ददावित्यर्थः ॥३७॥

हिन्दी—हथिनी अत्यन्त प्रेम से कमलों के पराग से सुगन्धित मधुर जल को सूँड़ में लेकर हाथी को पान कराने लगी और चक्रवाक पक्षी अपने द्वारा अर्धोपभुक्त मृणालदण्ड को चक्रवाकी को खिलाने लगा।

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किंचित्समुच्छ्वासितपत्त्रलेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं किंपुरुषश्चुचुम्बे ॥३८॥

अन्वयः—किंपुरुषः गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशैः किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखं पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं चुचुम्बे।

संजी०--गीतान्तरेष्विति। किंपुरुषः किंनरः श्रमवारिलेशैः स्वेदोदबिन्दुभिः किंचिदीषत्समुच्छ्वासिता विश्लेषिताः पत्त्रलेखा यस्य तत्। पुष्पाणामासवो मद्यं पुष्पासवः। पुष्पोद्भवमद्यमित्यर्थः। वसन्ते मधूकस्य संभवात्पुष्पवासितमिति केचित्। तेनाघूर्णिताभ्यामुद्भ्रान्ताभ्यां नेत्राभ्यां शोभत इति तथोक्तं प्रियामुखं गीतान्तरेषु गीतमध्येषु चुचुम्बे चुचुम्ब ॥३८॥

हिन्दी—किन्नर गाने के मध्य में गाने के परिश्रम से जायमान स्वेदकणों से कुछ मिटे हुए पत्ररचना वाले तथा पुष्पासव पान से घूरते हुए लाल-लाल नेत्रों से अपनी प्रियतमा किन्नरियों के मुखों का चुम्बन करने लगे।

पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥३९॥

अन्वयः—तरवो अपि पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः लतावधूभ्यः विनम्रशाखाभुजबन्धनानि अवापुः।

संजी०—पर्याप्तेति। पर्याप्ताः समग्राः पुष्पस्तबका एव स्तना यासां ताभ्यः। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति विकल्पान्न ङीप्। स्फुरन्तः प्रवालाः पल्लवा एवौष्ठास्तैर्मनोहराभ्यो लता एव वध्वस्ताभ्यः सकाशात्तरवोऽपि। लिंगादेव पुंस्त्वं गम्यते। विनम्राः शाखा एव भुजास्तैर्बन्धनान्यवापुः। ताभिरालिंगिता इत्यर्थः। स्थावराणामपि मदनविकारोऽभूत्किमुतान्येषामिति भावः। एतच्च तरुलतानामपि चेतनत्वादुक्तम्। यथाह मनुः—'अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः'। इति। अत्र रूपकालंकारः ॥३९॥

हिन्दी—वृक्ष भी कुसुमगुच्छरूपी स्तनों से परिपूर्ण पल्लवरूपी ओष्ठों से मनोहर लगने वाली अपनी लतारूपी कामिनियों के फैली हुई शाखारूपी भुजाओं से आलिंगन का सुख प्राप्त करने लगे।

श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥४०॥

अन्वयः—अस्मिन् क्षणे हरः श्रुताप्सरोगीतिः अपि प्रसंख्यानपरः बभूव। आत्मेश्वराणां विघ्नाः जातु समाधिभेदप्रभवः न भवन्ति।

संजी०—श्रुतेति। अस्मिन्क्षणे वसन्providedाविर्भावकाले भगवान्हरः श्रुताप्सरोगीतिरपि। दिव्यांगनागानमाकर्णयन्नपीत्यर्थः। प्रसंख्यानपर आत्मानुसंधानपरो बभूव। तथाहि। आत्मनश्चित्तस्येश्वराणां नियन्तॄणाम्। वशिनामित्यर्थः। विहन्यन्त एभिरिति विघ्नाः प्रत्यूहाः। घञर्थे कप्रत्ययः। जातु कदाचिदपि समाधिभेदे समाधिभञ्जने प्रभवः समर्था न भवन्ति ॥४०॥

हिन्दी—इस प्रकार समस्त प्राणियों में कामवासना के उत्पन्न हो जाने के समय भी अप्सराओं का गीत सुन कर शंकर जी रञ्चमात्र भी अपनी समाधि से विचलित नहीं हुए। क्योंकि विघ्न आत्मज्ञ पुरुषों की समाधि में किञ्चिन्मात्र भी भेद उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते।

लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः ।
मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्व्यनैषीत् ॥४१॥

अन्वयः—अथ लतागृहद्वारगत वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः नन्दी मुखार्पित-काङ्गुलि संज्ञया एव गणान् 'चापलाय मा भवत' इति व्यनैषीत् ।

संजी०--लतेति । अथ लतागृहद्वारं गतो वामे प्रकोष्ठेऽर्पितहेमवेत्रो धारितहेमदण्डो नन्दी नन्दिकेश्वरः । 'नन्दी भृङ्गिरिटिस्तण्डुनन्दिनौ नन्दि-केश्वरे' इति कोशः । मुखेऽर्पितायाः सरोषविस्मयस्तिमितावलोकं निहिताया एकस्या अंगुलेस्तर्जन्याः सञ्ज्ञया सूचनयैव । 'संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यै-श्चार्थसूचना' । इत्यमरः । गणान्प्रमथांश्चापलाय चापलं कर्तुं मा भवतेति । 'क्रियार्थोपपदस्य--' इत्यादिना चतुर्थी । व्यनैषीच्छिक्षितवान् ॥४१॥

हिन्दी—लता-गृह के द्वार पर पहरे का काम करने वाले बायें हाथ के प्रकोष्ठ में सुवर्णमय वेत्र धारण करने वाले नन्दी ने उस समय 'रञ्च मात्र भी चपलता मत करना' इस प्रकार अपने मुख पर अंगुली रखकर इशारे से ही गणों को मना किया ।

न केवलं गणा एव विनीताः, किन्तु जरायुजादिचतुर्विधं प्राणिजातमपीत्याह—

निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम् ।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे ॥४२॥

अन्वयः—निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम् सर्वम् एव काननम् तच्छासनात् चित्रार्पितारम्भम् इव अवतस्थे ।

संजी०--निष्कम्पेति । निष्कम्पवृक्षम्, इदमुद्भिज्जोपलक्षणम् । निभृत-द्विरेफं निश्चलभृङ्गम् । स्वेदजोपलक्षणमेतत् । मूकाण्डजं निःशब्दपक्षिसरी-सृपादिकम् । एतेनाण्डजजातिरुक्ता । शान्तमृगप्रचारम्, जरायुजोपलक्षण-मेतत् । सर्वमेव काननं तच्छासनान्नन्दीश्वराज्ञया चित्रार्पितारम्भं चित्र-लिखितारम्भमिवावतस्थे । 'नृगवाद्या जरायुजाः । स्वेदजाः कृमिदंशाद्याः पक्षिसर्पादयोऽण्डजाः । 'उद्भिदस्तरुगुल्माद्याः इत्यमरः ॥४२॥

हिन्दी--इस प्रकार नन्दिकेश्वर के इशारा करते ही आश्रम के सभी वृक्ष स्थिर हो गये । भ्रमरगण जहाँ के तहाँ निश्चल हो गये । पक्षिगण भी चुपचाप हो गये । मृगों ने अपना इधर-उधर का दौड़ना बन्द कर दिया । इस तरह उद्भिज्ज अण्डज, स्वेदज, जरायुज सकल प्राणिसमूह चित्र-लिखित से जैसे के तैसे जहाँ के तहाँ निश्चल हो गये ।

दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरःशुक्रमिव प्रयाणे ।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश ॥४३॥

अन्वयः--कामः प्रयाणे पुरःशुक्रम् इव तस्य दृष्टिपातं परिहृत्य प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं भूतपतेः ध्यानास्पदं विवेश ।

संजी०—दृष्टिप्रपातमिति। कामः प्रयाणे यात्रायां पुरोगतः शुक्रो यस्मिन्देशे तं पुरःशुक्रं देशमिव। 'प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रत्यङ्गारकमेव च। अपि शक्रसमो राजा हतसैन्यो निवर्त्तते।' इति प्रतिषेधात्। तस्य दृष्टिप्रपातं दृग्विषयं परिहृत्य प्रान्तेषु पार्श्वदेशेषु संसक्ता अन्योन्यसंसृष्टा नमेरूणां सुरपंनागानां शाखा यस्य तत्। तिरोधानयोग्यमिति भावः। भूतपतेः शिवस्य ध्यानास्पदं समाधिस्थानम्। 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' इति निपातः। विवेश ॥४३॥

हिन्दी—कामदेव यात्रा में सम्मुख शुक्र के समान उस (नन्दिकेश्वर) की दृष्टि बचाकर नागकेशर की घनी झाड़ी से घिरे हुए शङ्कर के समाधि-स्थल में प्रविष्ट हो गया।

सदेवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम्।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ॥४४॥

अन्वयः—आसन्नशरीरपातः स शार्दूलचर्मव्यवधानवत्यां देवदारुद्रुमवेदिकायाम् आसीनं संयमिनं त्रियम्बकं ददर्श।

संजी०—स इति। आसन्नशरीरपात आसन्नमृत्युः स कामः शार्दूलचर्मणा व्यवधानवत्याम्। व्याघ्रचर्मास्तृतायामित्यर्थः 'मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि' इति प्राशस्त्यादिति भावः। देवदारुद्रुमवेदिकायामासीनमुपविष्टं संयमिनं समाधिनिष्ठं त्रियम्बकं त्रिनेत्रं ददर्श। केचित्साहसिकाः 'त्रिलोचनम्' इति पेठुः। त्र्यम्बकमित्युक्ते पादपूरणव्यत्यासात्त्रियम्बकमिति पादपूरणार्थोऽयमियङादेशश्छान्दसो महाकविप्रयोगादभियुक्तैरङ्गीकृतः ॥४४॥

हिन्दी—सद्यः आसन्न मृत्यु वाले उस कामदेव ने देवदारु के नीचे बने चबूतरे पर व्याघ्रचर्म को बिछाकर उसी पर सावधानी से बैठे हुए समाधि में लीन तीन नेत्रों वाले संयमी शङ्कर जी को देखा।

तमेव देवं षड्भिः श्लोकैर्वर्णयति—

पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं संनमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसंनिवेशात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये ॥४५॥

अन्वयः—पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायं ऋज्वायतं सन्नमितोभयांसम् उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात् अङ्कमध्ये प्रफुल्लराजीवम् इव स्थितं ददर्श।

संजी०—पर्यङ्केति। पर्यङ्कबन्धेन वीरासनेन स्थिरपूर्वकायं निश्चलोत्तरार्धमृजुरायतश्चर्ज्वायतस्तं संनमिताबुभावंसौ यस्य तं तथोक्तम्। वृत्तिविषये उभशब्दस्थान उभयशब्दप्रयोग इत्युक्तं कैयटेन। उत्तान ऊर्ध्वतलो

यः पाणिद्वयस्य संनिवेशः संस्थानं तस्मादङ्कमध्ये प्रफुल्लं राजीवं पङ्कजं यस्य तमिव स्थितम्। वीरासने वसिष्ठः—'एकं पादमथैकस्मिन्विन्यस्योरौ तु संस्थितम्। इतरस्मिंस्तथैवोरुं वीरासनमुदाहृतम्॥' इति। तथा योगसारे—'उत्तानिते करतले करमुत्तानितं परम्। आदायाङ्कगतं कृत्वा ध्यायेद्यस्तस्य सोऽन्तरम्॥' इति। ४५॥

हिन्दी—वीरासन से शरीर के उत्तर भाग को निश्चल बनाकर सीधे तथा विशाल दोनों कन्धों को नीचे की ओर झुका कर तथा फूले कमल के समान उत्तान हाथ की दोनों हथेलियों को मध्य में रखे हुए शङ्करजी को देखा।

भुजंगमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम्॥४६॥

अन्वयः—भुजङ्गमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्त द्विगुणाक्षसूत्रम् कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां ग्रन्थिमतीं कृष्णत्वचं दधानं तं ददर्श।

संजी०—भुजंगमेति॥ भुजंगमेनोन्नद्ध उन्नमय्य बद्धो जटाकलापो येन तं तथोक्तम्। कर्णावसक्तम्। कर्णावलम्बीत्यर्थः। अत एव द्विगुणं द्विरावृत्तमक्षसूत्रमक्षमाला यस्य तं कण्ठप्रभाणां सङ्गेन मिश्रणेन विशेषनीलामतिनीलां ग्रन्थिमतीं बन्धनयुक्तां कृष्णत्वचं कृष्णमृगाजिनं दधानम्॥४६॥

हिन्दी—सर्प से जटाजूटों को बाँधे हुए, कान में दुहरी रुद्राक्षमाला लपेटे हुए गले की काली-काली प्रभा से मिश्रित बन्धनयुक्त काले मृगचर्म को धारण किये हुए शङ्कर जी को देखा।

किंचित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैर्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः॥४७॥

अन्वयः—किञ्चितत्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैः भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः अविस्पन्दितपक्ष्ममालैः अधोमयूखैः नेत्रैः लक्ष्यीकृतघ्राणं तं ददर्श।

संजी०—किंचिदिति। किंचित्प्रकाशा ईषत्प्रकाशाः स्तिमिता निश्चला उग्राश्च ताराः कनीनिका येषां तैः। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः। भ्रूविक्रियायां भ्रूविक्षेपे विरतप्रसङ्गैः प्रसक्तिरहितैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैरचलितपक्ष्मपङ्क्तिभिरधःप्रसृता मयूखा येषां तैरधोमयूखैर्नेत्रैः। त्रिनेत्रत्वाद्बहुवचनम्। लक्ष्यीकृतघ्राणं नासाग्रनिविष्टदृष्टिमित्यर्थः। 'करणान्यबहिष्कृत्य स्थाणुवन्निश्चलात्मकः। आत्मानं हृदये ध्यायेन्नासाग्रन्यस्तलोचनः॥' इति योगसारे॥४७॥

हिन्दी—कुछ-कुछ प्रकाश उत्पन्न करने वाले निश्चल तथा उग्र पुतलियों वाले पलकों को न गिराते हुए निश्चल भ्रुकुटी वाले इस प्रकार के तीनों नेत्रो के प्रकाश से सीधे नीचे के नासिकाग्रभाग को लक्ष्य कर देखते हुए शङ्कर जी को देखा ।

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥४८॥

अन्वयः—अन्तश्चराणां मरुतां निरोधात् अवृष्टिसंरम्भं अम्बुवाहम् इव (स्थितम्) अनुत्तरङ्गम् अपाम् आधारम् इव (स्थितम्) निवात निष्कम्पं प्रदीपम् इव (स्थितम्) तं ददर्श ।

संजी०—अवृष्टीति । अन्तश्चरन्तीत्यन्तश्चरास्तेषां मरुतां प्राणादीनां निरोधाद्धेतोरवृष्टिसंरम्भमविद्यमानवर्षसंभ्रममम्बुवाहमिव स्थितम् । एतेन प्राणनिरोधः सूचितः । अनुत्तरङ्गमनुद्भूततरंगमपामाधारं ह्रदमिव स्थितम् । एतेनापाननिरोधः सूचितः । तथा निवाते निर्वातदेशे निष्कम्पं निश्चलं प्रदीपमिव स्थितम् । एतेन शेषवायुनिरोधः सूचितः । 'निवातावाश्रयावातौ' इत्यमरः ॥४८॥

हिन्दी—शरीर के भीतर संचरण करने वाले प्राणादि वायुओं के निरोध से वृष्टिव्यापाररहित जलपूर्ण मेघ के समान स्थित तरङ्गों को अपने भीतर समेट लेने वाले निश्चल जलाशय के समान स्थित निर्वातप्रदेश में स्थित निश्चल प्रदीप के समान स्थिर शरीर वाले शङ्करजी को देखा ।

कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गैर्ज्योतिःप्ररोहैरुदितैः शिरस्तः ।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः ॥४९॥

अन्वयः—कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गैः शिरस्तः उदितैः ज्योतिः प्ररोहैः मृणाल सूत्राधिकसौकुमार्यां बालस्य इन्दोः लक्ष्मीम् ग्लपयन्तं तं ददर्श ।

संजी० — कपालेति । कपालनेत्रान्तरेण ब्रह्मकरोटिनेत्रविवरेण लब्धमार्गैः शिरस्तो ब्रह्मरन्ध्रात्, पञ्चम्यास्तसिल् । उदितैरुद्भूतैर्ज्योतिः प्ररोहैस्तेजोऽङ्कुरैर्मृणालसूत्राधिकं सौकुमार्यं मार्दवं यस्यास्तां बालस्येन्दोः शिरश्चन्द्रस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तम् ॥४९॥

हिन्दी—नेत्र और ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से निकलने वाले शिर प्रदेश से उत्पन्न ज्योतिःरूप अङ्कुरों से मृणालसूत्र से भी अधिक सुकुमार बालेन्दु की शोभा को तिरस्कृत करते हुए शङ्करजी को देखा ।

मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ।।५०।।

अन्वयः—नवद्वारनिषिद्धवृत्ति समाधिवश्यं मनः हृदिव्यवस्थाप्य क्षेत्रविदः यम् अक्षरं विदुः तम् आत्मानम् आत्मनि अवलोकयन्तं तं ददर्श ।

संजी०--**मन इति ।** नवभ्यो द्वारेभ्यो निषिद्धा निर्वर्तिता वृत्तिः संचारो यस्य तत्तथोक्तम् । समाधिना प्रणिधानेन वश्यं वशंगतम् । यत्प्रत्ययः । 'प्रणिधानं समाधानं समाधिश्च समाश्रयः' इति हलायुधः । मनोहृदि हृदयाख्येऽधिष्ठाने व्यवस्थाप्य । तथा च वसिष्ठः--'यतो निर्याति विषयान्यस्मिश्चैव प्रलीयते । हृदयं तद्विजानीयान्मनसः स्थितिकारणम् ।।' इति । क्षेत्रविदः क्षेत्रज्ञाः पुरुषः । यं न क्षरतीत्यक्षरमविनाशिनं विदुर्विदन्ति । 'विदो लटो वा' इति झेर्जुस् । तमात्मानमात्मनि स्वस्मिन्नवलोकयन्तं साक्षात्कुर्वन्तम् । स्वातिरेकेण परमात्मनोऽभावादिति भावः ।।५०।।

हिन्दी--नयन, श्रवणादि नव इन्द्रियों में रोक ली गई है वृत्ति जिसकी ऐसे समाधिनिष्ठ मन को अपने हृदय में स्थापित कर क्षेत्रज्ञ लोग जिसे अक्षर-तत्त्व कहते हैं उस परमात्मा का अपनी आत्मा में साक्षात्कार करने वाले शङ्करजी को देखा ।

स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
नालक्षयत्साध्वससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ।।५१।।

अन्वयः--स्मरः तथाभूतं मनसा अपि अधृष्यं अयुग्मनेत्रं अदरात् पश्यन् साध्वससन्नहस्तः सन् स्वहस्तात् स्रस्तं शरं चापम् अपि न अलक्षयत ।

संजी०--**स्मरेति ।** स्मरः कामस्तथाभूतं पूर्वोक्तरूपं मनसाप्यधृष्यमयुग्मनेत्रं विषमाक्षमदूरात्पश्यन् । साध्वसेन सन्नहस्तो विश्लथपाणिः सन् । स्वहस्तात्स्रस्तं शरं चापमपि चापं च नालक्षयन्न विवेद । भीतो मुह्यतीति भावः ।।५१।।

हिन्दी--उपर्युक्त स्वरूप वाले एवं मन से भी अधृष्य (पराभवरहित) शङ्करजी को समीप में देखकर कामदेव का हाथ भय से इतना शिथिल हो गया कि उससे 'धनुष और बाण नीचे गिर पड़ा' यह कामदेव को भी ज्ञात न हो सका ।

निर्वाणभूयिष्ठमथास्य वीर्यं संधुक्षयन्तीव वपुर्गुणेन ।
अनुप्रयाता वनदेवताभ्यामदृश्यत स्थावरराजकन्या ।।५२।।

अन्वयः--अथ निर्वाणभूयिष्ठम् अस्य वीर्यं वपुर्गुणेन संधुक्षयन्ती इव स्थिता वनदेवताभ्याम् अनुप्रयाता स्थावरराजकन्या अदृश्यत ।

संजी०—निर्वाणेति । अथ निर्वाणेन नाशेन भूयिष्ठं निर्वाणभूयिष्ठम् । नष्टप्रायमित्यर्थः । अस्य स्मरस्य वीर्यं बलं वपुर्गुणेन सौन्दर्येण संधुक्षयन्तीव पुनरुज्जीवयन्तीव स्थिता वनदेवताभ्यां सखीभूताभ्यामनुप्रयातानुगता स्थावरराजकन्या पार्वत्यदृश्यत दृष्टा ॥५२॥

हिन्दी—इस प्रकार नष्टप्राय हुए कामदेव के पराक्रम को, शरीर के लोकोत्तर सौन्दर्य गुण से, पुनः उज्जीवित करती हुई जैसी स्थित हुई वनदेवता रूप दो सखियों के साथ जाती हुई पार्वती को कामदेव ने देखा ।

तामेवाह चतुर्भिः—

अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ॥५३॥

अन्वयः—अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागम् आकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती अदृश्यत ।

संजी० अशोकेति । अशोकपुष्पेण निर्भर्त्सितास्तिरस्कृताः पद्मरागा येन तत्तथोक्तम् । आकृष्टहेमद्युतीन्याहृतस्वर्णाभरणवर्णानि कर्णिकाराणि यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । मुक्ताकलापीकृतानि सिन्धुवाराणि निर्गुण्डीकुसुमानि यस्मिंस्तत् । 'सिन्धुवारेन्द्रसुरसौ निर्गुण्डीन्द्राणिकेत्यपि' इत्यमरः । वसन्तपुष्पाण्येवाभरणं वहन्ती ॥५३॥

हिन्दी—पद्मरागमणि को तिरस्कृत करने वाले अशोकपुष्पों के आभरण, सुवर्णद्युति को आकृष्ट करने वाले कर्णिकार के पुष्पों के समस्त आभरण तथा मुक्ता समूह के समान निर्गुण्डी पुष्पों के आभरण इस प्रकार समस्त वसन्त पुष्पों के आभूषणों को धारण करने वाली पार्वती को कामदेव ने देखा ।

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव ॥५४॥

अन्वयः—स्तनाभ्यां किञ्चिद् आवर्जिता इव तरुणार्करागं वासः वसाना, अतएव पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा पल्लविनी सञ्चारिणी लता इव अदृश्यत ॥

संजी०—आवर्जितेति । स्तनाभ्यां किंचिदावर्जितेवेषदानमितेव तरुणार्कस्य राग इव रागो यस्य तत् । बालार्कारुणमित्यर्थः । उपमानपूर्वपदो बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च । वासो वसानाच्छादयन्ती । अत एव पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा पल्लविनी किसलयवती संचारिणी लतेव । स्थितेति शेषः ॥५४॥

हिन्दी—स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई प्रातःकाल की लाल सूर्य-प्रभा के समान रक्तवर्ण की साड़ी धारण किये इसलिए फूलों के भार से लटकने वाली नये-नये कोमल पल्लवों से युक्त चलने वाली लता के समान पार्वती को देखा ।

स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनः पुनः केसर दामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण मौर्वी द्वितीयामिव कार्मुकस्य ॥५५॥

अन्वयः—स्थानविदा स्मरेण न्यासीकृतां कार्मुकस्य द्वितीयां मौर्वीम् इव नितम्बात् स्रस्तां केसरदामकाञ्चीं पुनः पुनः अवलम्बमाना पार्वती अदृश्यत ।

संजी०—स्रस्तामिति । स्थानविदा निक्षेपयोग्यस्थानवेदिना स्मरेण न्यासीकृतां निक्षेपीकृताम् । कर्मणि प्रभवतीति कार्मुकं धनुः । 'कर्मण उकञ्' इत्युकञ्प्रत्ययः । तस्य द्वितीयां मौर्वीमिव स्थिताम् । अत्र हि न्यस्ता मौर्व्युत्तरत्र हरवैरनिर्यातनायोपयुज्यत इति भावः । नितम्बात्स्रस्तां चलितां केसरदाम बकुलमाला सैव काञ्ची तां पुनःपुनरवलम्बमाना हस्तेन धारयन्ती ॥५५॥

हिन्दी—निक्षेप रखने के योग्य स्थान को जानने वाले, कामदेव द्वारा स्थापित धनुष की दूसरी डोरी के समान, चलने से नितम्बप्रदेश से खसकी हुई केशर माला से बनी काञ्ची को पुनः पुनः हाथ से पकड़ कर चलती हुई पार्वती को देखा ।

सुगन्धिनिश्वासविवृद्धतृष्णं बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम् ।
प्रतिक्षणं संभ्रमलोलदृष्टिर्लीलारविन्देन निवारयन्ती ॥५६॥

अन्वयः—सुगन्धिनिःश्वासविवृद्धतृष्णं बिम्बाधराऽऽसन्नचरं द्विरेफं प्रतिक्षणं संभ्रमलोलदृष्टिः सती लीलारविन्देन निवारयन्ती पार्वती अदृश्यत ।

संजी०—सुगन्धीति । सुगन्धिभिर्निश्वासैर्विवृद्धतृष्णम् । बिम्बतुल्योऽधरो बिम्बाधरः । 'वृत्तौ मध्यपदलोपः स्यात्' इति वामनः । तस्यासन्नचरं संनिकृष्टचरं द्विरेफं भृङ्गं प्रतिक्षणं संभ्रमेण लोलदृष्टिश्चञ्चलाक्षी सती लीलारविन्देन निवारयन्ती ॥५६॥

हिन्दी—सुगन्धित निःश्वास की तृष्णा से ओठों के पास आने वाले भ्रमरों के कारण प्रतिक्षण घबराहट से अपने नेत्रों को चञ्चल बनाकर उन भ्रमर समूहों को लीलाकमल से दूर करने वाली पार्वती को देखा ।

तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंसे ॥५७॥

अन्वयः—सर्वावयवानवद्यां रतेः अपि ह्रीपदम् आदधानां तां वीक्ष्य पुष्पचापः जितेन्द्रिये शूलिनि स्वकार्यसिद्धिं पुनः आशशंसे ।

संजी०—तामिति । सर्वावयवेष्वनवद्यामगर्ह्याम् । 'अवद्यपण्य—' इति निपातः । रतेः कामकलत्रस्यापि ह्रीपदं लज्जानिमित्तमादधानाम् । न्यून-

तामावहन्तीमित्यर्थः । तां पार्वतीं वीक्ष्य पुष्पचापः कामो जितेन्द्रिये दुर्जयेऽपीत्यर्थः। शूलिनि शिवे विषये स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंसे चकमे। पूर्वं 'साध्वससन्नहस्तः' (३।५१) इत्यादिना कार्यसिद्धेरुन्मूलितत्वाभिधानादिह पुनरित्युक्तम् ।।५७।।

हिन्दी—शरीर के समस्त अवयवों से सुन्दर, रति को भी अपने सौन्दर्य से लज्जित करने वाली उस पार्वती को देख कामदेव को जितेन्द्रिय शङ्कर के विषय में अपनी कार्यसिद्धि की सफलता का पुन: विश्वास हुआ ।

भविष्यतः पत्युरुमा च शंभोः समाससाद प्रतिहारभूमिम् ।
योगात्स चान्तः परमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परं ज्योतिरुपारराम ।।५८।।

अन्वयः—उमा च भविष्यतः पत्युः शम्भोः प्रतिहारभूमिम् समाससाद। स च अन्तः परमात्मसंज्ञं परं ज्योतिः दृष्ट्वा योगात् उपारराम ।

संजी०—भविष्यत इति। उमा च भविष्यतः पत्युः शंभोः प्रतिहारभूमिं द्वारदेशं समाससाद। 'स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः' इत्यमरः। स शंभुश्चान्तः परमात्मेति संज्ञा यस्य तत्परं मुख्यम्। 'परं दूरान्मुख्येषु' इति यादवः। ज्योतिर्दृष्ट्वा साक्षात्कृत्य योगाद् ध्यानात्। 'योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमरः। उपाररामोपारतः। 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम् ।।५८।।

हिन्दी—इधर पार्वती भी अपने भावी पति शंकर के आश्रम के द्वार पर पहुँची। उधर शङ्कर भी अपने हृदय में स्वयं प्रकाशस्वरूप उत्कृष्ट तेज का ध्यान करते हुए समाधि से उपरत हो रहे थे ।

ततो भुजंगाधिपतेः फणाग्रैरधः कथंचिद्धृतभूमिभागः ।
शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः पर्यङ्कबन्धं निबिडं बिभेद ।।५९।।

अन्वयः—ततः भुजङ्गाधिपतेः फणाग्रैः अधः कथञ्चिद्धृतभूमिभागः शनैः कृतप्राणविमुक्तिः ईशः निबिडं पर्यङ्कबन्धं बिभेद ।

संजी०—तत इति। ततो भुजंगाधिपतेः शेषस्य फणाग्रैरधो भूमेरधः कथंचिदतियत्नेन धृतो भूमिभागः स्वोपवेशनभूभागो यस्य स तथोक्तः। वायुधारणाहितलाघवनिवृत्त्या भगवतो गुरुत्वादिति भावः। शनैः कृता प्राणानां प्राङ्निरुद्धानां विमुक्तिः पुनः संचारो येन स कृतप्राणविमुक्तिरीशो निबिडं दृढं पर्यङ्कबन्धं वीरासनं बिभेद शिथिलीचकार।।५९।।

हिन्दी—समाधि से उपरत होने की अवस्था में शेष के फणाग्रों से किसी प्रकार भूमि को धारण किये जाने पर भगवान् शङ्कर ने धीरे-धीरे अपने प्राणों को नीचे उतारते हुए अपना वीरासन शिथिल किया ।

तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी शुश्रूषया शैलसुतामुपेताम् ।
प्रवेशयामास च भर्तुरेनां भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम् ।।६०।।

अन्वयः—अथ नन्दी तस्मै प्रणिपत्य शुश्रूषया उपेतां शैलसुतां शशंस । भर्तुः भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम् एनां प्रवेशयामास ।

संजी० —तस्मा इति । अथ नन्दी तस्मै भगवते । क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी । प्रणिपत्य नमस्कृत्य शुश्रूषया सेवया निमित्तेनोपेताम् । सेवार्थमागतामित्यर्थः । शैलसुतां शशंस निवेदयामास । भर्तुः स्वामिनो भ्रूक्षेपमात्रेण भ्रूसंज्ञयैवानुमतप्रवेशामङ्गीकृतप्रवेशामेनां शैलसुतां प्रवेशयामास च ।।६०।।

हिन्दी—नन्दिकेश्वर ने समाधि से विरत होते ही अवसर देखकर शङ्कर को प्रणाम किया और सेवा के लिए उपस्थित हिमालय-कन्या पार्वती के आने की सूचना दी । तदनन्तर वह स्वामी शङ्कर के नेत्र के इशारे से प्रवेश की अनुमति जानकर पार्वती को आश्रम के भीतर ले गया ।

तस्याः सखीभ्यां प्रणिपातपूर्वं स्वहस्तलूनः शिशिरात्ययस्य ।
व्यकीर्यत त्र्यम्बकपादमूले पुष्पोच्चयः पल्लवभङ्गभिन्नः ।।६१।।

अन्वयः—तस्याः सखीभ्यां स्वहस्तलूनः पल्लवभङ्गभिन्नः शिशिरात्ययस्य पुष्पोच्चयः त्र्यम्बकपादमूले प्रणिपातपूर्वं व्यकीर्यत ।

संजी०—तस्या इति । तस्याः पार्वत्याः सखीभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां स्वहस्तेन लून उपचितः पल्लवभङ्गभिन्नः किसलयशकलमिश्रः शिशिरात्ययस्य वसन्तस्य सम्बन्धी पुष्पोच्चयः पुष्पप्रकरः । 'हस्तादाने चेरस्तेये' इति घञ्विषयत्वात्कवीनामयं प्रामादिकः प्रयोग इति वल्लभः । त्र्यम्बकपादमूले प्रणिपातपूर्वं नमस्कारपूर्वकं व्यकीर्यत विक्षिप्तः ।।६१।।

हिन्दी—पार्वती की वनदेवता रूप उन सखियों ने स्वयं अपने हाथ से चुने हुए पल्लवयुक्त वसन्तकालिक पुष्पों को शिवजी के चरण-कमलों में प्रणामपूर्वक समर्पित किया ।

उमापि नीलालकमध्यशोभि विस्रंसयन्ती नवकर्णिकारम् ।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय ।।६२।।

अन्वयः—उमा अपि नीलालकमध्यशोभि नवकर्णिकारं विस्रंसयन्ती कर्णच्युतपल्लवेन मूर्ध्ना वृषभध्वजाय प्रणामं चकार ।

संजी०—उमेति । उमापि नीलालकानां मध्ये शोभत इति तथोक्तम् । अलकन्यस्तमित्यर्थः । नवकर्णिकारं विस्रंसयन्ती कर्णाच्च्युतः पल्लवो

यस्य तेन मूर्ध्ना वृषभध्वजाय प्रणामं चकार। क्रियाग्रहणात्संप्रदानत्वम् ॥६२॥

हिन्दी—पार्वती ने भी अपने काले-काले बालों की शोभा के लिये बीच-बीच में गुँथे हुए नवकर्णिकार के पुष्पों को तथा कर्णावतंसभूत नवपल्लवों के अपने शिरः प्रदेश से शङ्कर के चरणों पर गिरा कर उन्हे प्रणाम किया।

अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥६३॥

अन्वयः—सा भवेन 'अनन्यभाजं पतिम् आप्नुहि' इति तथ्यम् एव अभिहिता। हि ईश्वरव्याहृतयः कदाचित् अपि लोके विपरीतम् अर्थम् न पुष्णन्ति।

संजी०--अनन्येति। सा कृतप्रणामा देवी भवेन हरेण। अन्यां न भजतीति तमनन्यभाजम् 'भजो ण्विः' इति ण्विप्रत्ययः। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पूर्वपदस्य पुंवद्भावः। पतिमाप्नुहीति तथ्यं सत्यमेवाभिहितोक्ता उत्तरत्र तथैव संभवादिति भावः। अभिदधातेर्ब्रुवर्थस्य दुहादित्वादप्रधाने कर्मणि क्तः। तथाहि। ईश्वरव्याहृतयो महापुरुषोक्तयः कदाचिदपि लोके भुवने। 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः। विपरीतं विसंवादिनमर्थमभिधेयं न पुष्णन्ति। न बोधयन्तीत्यर्थः ॥६३॥

हिन्दी—पार्वती द्वारा प्रणाम करने के पश्चात् शङ्कर ने भी 'अन्य स्त्री को स्वीकार न करने वाले पति को प्राप्त करो' ऐसा सत्य ही आशीर्वाद दिया। ठीक ही है महात्माओं के वचन सर्वदेश, सर्वकाल एवं सर्वावस्था में कभी भी मिथ्या नहीं होते।

कामस्तु बाणावसरं प्रतीक्ष्य पतङ्गवद्वह्निमुखं विविक्षुः।
उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः शरासनज्यां मुहुराममर्श ॥६४॥

अन्वयः—कामः तु बाणावसरं प्रतीक्ष्य पतङ्गवत् वह्निमुखं विविक्षुः उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः सन् शरासनज्यां मुहुः आममर्श।

संजी०--काम इति। कामस्तु बाणावसरं प्रतीक्ष्योमासंनिधानादयमेव बाणप्रयोगसमय इति ज्ञात्वा पतङ्गेन तुल्यं पतङ्गवच्छलभवत्। 'समौ पतङ्गशलभौ' इत्यमरः। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वतिप्रत्ययः। वह्निमुखं विविक्षुः प्रवेष्टुमिच्छुः। विशतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। उमायाः समक्षमक्ष्णः समीपमुमासमक्षम्। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' इति समासान्तोऽच्प्रत्ययः। हरे बद्धलक्ष्यः सन्। शरासनस्य ज्यां मौर्वीं मुहुराममर्श परामृष्टवान् ॥६४॥

हिन्दी--कामदेव भी अपने बाण छोड़ने का अवसर देखकर अग्निमुख में प्रवेश की इच्छा करने वाले पतङ्ग के समान पार्वती के सामने ही शङ्कर को अपनी बाण का निशाना बनाने के लिए अपने धनुष की डोरी बारम्बार छूने लगा।

अथोपनिन्ये गिरिशाय गौरी तपस्विने ताम्ररुचा करेण।
विशोषितां भानुमतो मयूखैर्मन्दाकिनीपुष्करबीजमालाम् ॥६५॥

अन्वयः--अथ गौरी तपस्विने गिरिशाय ताम्ररुचा करेण भानुमतः मयूखैः विशोषितां मन्दाकिनीपुष्करबीजमालाम् उपनिन्ये।

संजी०—अथेति। अथ गौरी। तपोऽस्यास्तीति तपस्वी। 'अस्माया-मेधास्रजो विनिः' इति विनिप्रत्ययः। तस्मै तपस्विने गिरिशाय ताम्ररुचा रक्तवर्णेन करेण भानुमतोंऽशुमतो मयूखैर्विशोषितां मन्दाकिन्याः पुष्कराणि पद्मानि तेषां बीजानि तेषां मालां जपमालिकामुपनिन्ये समर्पितवती ॥६५॥

हिन्दी--पार्वती ने प्रणाम करने के अनन्तर तपश्चर्या करके उठे हुए शङ्कर जी को अपने कमल के समान कोमल हाथों से सूर्य की किरणों में सुखाये गये कमलगट्टों की माला पहनाया।

प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥६६॥

अन्वयः—त्रिलोचनश्च प्रणयिप्रियत्वात् तां प्रतिग्रहीतुम् उपचक्रमे। पुष्पधन्वा च सम्मोहनं नाम अमोघं बाणं धनुषि समधत्त।

संजी०—प्रतिग्रहीतुमिति। त्रिलोचनश्च प्रणयिप्रियत्वादर्थिप्रियत्वात्तामक्षमालां प्रतिग्रहीतुं स्वीकर्तुमुपचक्रमे। पुष्पं धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा कामश्च। 'वा संज्ञायाम्' इत्यनङादेशः संमोह्यतेऽनेनेति संमोहनं नाम। नामेति प्रसिद्धौ। अमोघं बाणं सायकं धनुषि समधत्त संहितवान् ॥६६॥

हिन्दी—भगवान् शङ्कर ने भी भक्तवत्सलता के कारण पार्वती की दी हुई उस कमलगट्टे की माला को स्वीकर कर लिया। उधर कामदेव ने भी संमोहन नामक अपने अमोघ बाण को धनुष पर चढ़ाया।

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥६७॥

अन्वयः--हरस्तु चन्द्रोदयारम्भे अम्बुराशि इव किञ्चित्परिलुप्तधैर्यः सन् विम्बाफलधरोष्ठे उमामुखे विलोचनानि व्यापारयामास।

संजी०--हर इति। हरस्तु हरोऽपि चन्द्रोदयारम्भेऽम्बुराशिरिव किंचिदीषत्परिलुप्तधैर्यः न तु प्राकृतजनवदत्यन्तलुप्तधैर्य इति भावः। बिम्बफलतुल्योऽधरोष्ठो यस्य तस्मिन्नुमामुखे विलोचनानि व्यापारयामास। त्रिभिरपि लोचनैः साभिलाषमद्राक्षीदित्यर्थः। एतेन भगवतो रतिभावोदय उक्तः ॥६७॥

हिन्दी--शङ्कर ने चन्द्रोदय काल में समुद्र की तरह कुछ ही अंशों में अपना धैर्य त्यागकर बिम्बफल के समान ओष्ठ वाले पार्वती के मुख की ओर अपने तीनों नेत्रों से देखना प्रारम्भ किया।

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥६८॥

अन्वयः--शैलसुताऽपि स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः अङ्गैः भावं विवृण्वती चारुतरेण पर्यस्तविलोचनेन मुखेन साचीकृता तस्थौ।

संजी०--विवृण्वतीति। शैलसुतापि स्फुरद्बालकल्पैर्विकसत्कोमलनीपसदृशैः। पुलकितैरित्यर्थः। 'ईषदसमाप्तौ-' इत्यादिना कल्पप्प्रत्ययः। 'अङ्गैर्भावं रत्याख्यं विवृण्वती प्रकाशयन्ती चारुतरेण पर्यस्तविलोचनेन व्रीडाविभ्रान्तनेत्रेण मुखेनासाचि साचि संपद्यमाना साचीकृता तिर्यक्कृता। 'तिर्यगर्थे साचि तिर' इत्यमरः। तस्थौ। ह्रिया मुखं साचीकृत्य स्थितेत्यर्थः। न केवलं हरस्यैव देव्या अप्युदितो रतिभाव इति भावः ॥६८॥

हिन्दी—पार्वती भी खिले हुए कदम्ब के कोमल पुष्प के समान रोमाञ्चित अपने अंगों से रतिभाव को प्रकट करती हुई शङ्कर के संमुख होने से संकुचित नेत्रों वाले अपने मुख को फेर कर कुछ तिरछे खड़ी हो गई।

अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद् बलवन्निगृह्य।
हेतुं स्वचेतो विकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥६९॥

अन्वयः—अथ अयुग्मनेत्रः वशित्वात् इन्द्रियक्षोभं पुनः बलवत् निगृह्य स्वचेतो विकृतेः हेतुं दिदृक्षुः सन् दिशाम् उपान्तेषु दृष्टिं ससर्ज।

संजी०--अथेति। अथायुग्मानि नेत्राणि यस्य सोऽयुग्मनेत्रस्त्रिनेत्रो वशित्वाज्जितेन्द्रियत्वादिन्द्रियक्षोभं पूर्वोक्तमिन्द्रियविकारं पुनर्बलवद् दृढं निगृह्य निवार्य स्वचेतोविकृतेः स्वचित्तविकारस्य हेतुं कारणं दिदृक्षुर्द्रष्टुमिच्छुर्दिशामुपान्तेषु दृष्टिं ससर्ज प्रसारयामास ॥६९॥

हिन्दी--त्रिनेत्र शङ्करजी जितेन्द्रिय होने पर भी अपने इन्द्रियों के क्षोभ

को पुनः बलपूर्वक रोक कर अपने चित्त की विकृति का कारण जानने के लिये दिशाओं में चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाने लगे ।

स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम् ।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥७०॥

अन्वयः--स दक्षिणापाङ्ग निविष्टदृष्टिम् नतांसम् आकुञ्चितसव्यपादं चक्रीकृत चारुचापं प्रहर्त्तुम् अभ्युद्यतम् आत्मयोनिं ददर्श ।

संजी०--स इति । स भगवान्दक्षिणापाङ्गे निविष्टा स्थिता मुष्टिर्यस्य तं नतांसमाकुञ्चितः सव्यपादो यस्य तम् । आलीढाख्यस्थानके स्थितमित्यर्थः । चक्रीकृतचारुचापं मण्डलीकृतसौम्यकोदण्डं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिं मनोभवं ददर्श । आलीढलक्षणमाह यादवः-'स्थानानि धन्विनां पञ्च तत्र वैशाखम-स्त्रियाम् । वितस्त्यन्तरगौ पादौ मण्डलं तोरणाकृति ॥ समानौ स्यात्समपद-मालीढं पदमग्रतः । दक्षिणं वाममाकुञ्च्य प्रत्यालीढं विपर्ययः' ॥७०॥

हिन्दी--तब शङ्कर ने दाहिने आँख के कोने में अपनी मुट्ठी लगाये हुए कन्धे को लटका कर बायें पैर के घुटनों को मोड़े हुए धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर अपने ऊपर बाण छोड़ने में समुद्यत इस प्रकार के कामदेव को देखा।

तपःपरामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥७१॥

अन्वयः-- तपः परामर्शविवृद्धमन्योः भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य तृतीयाद् अक्षणः स्फुरन् उदर्चिः कृशानुः सहसा निष्पपात किल ।

संजी०--तप इति । तपःपरामर्शेन तपस आस्कन्दनेन विवृद्धमन्योः प्रवृद्धकोपस्य भ्रूभङ्गेण दुष्प्रेक्ष्यं दुर्दर्शं मुखं यस्य तस्य हरस्य तृतीयादक्षणः स्फुरन्नुद्दीप्यमान उदर्चिरुद्भूतज्वालः कृशानुरग्निः सहसातर्कितमेव । 'अतर्किते तु सहसा' इत्यमरः । निष्पपात किल निश्चक्राम खलु ॥७१॥

हिन्दी--उस समय तपस्या में विघ्न उपस्थित करने के कारण क्रोध के बढ़ जाने से उत्पन्न अतएव टेढ़ी भौंहों से दुष्प्रेक्ष्य मुख वाले उन शङ्कर के तृतीय नेत्र से देदीप्यमान होकर उठती ज्वाला से युक्त अग्निदेव प्रकट हो गये ।

क्रोधं प्रभो ! संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥७२॥

अन्वयः--प्रभो क्रोधं 'संहर संहर' इति मरुतां गिरः खे यावत् संचरन्ति, तावत् भवनेत्रजन्मा स वह्निः मदनं भस्मावशेषं चकार ।

संजी०–क्रोधमिति । हे प्रभो स्वामिन्, क्रोधं संहर संहर निवर्तय निवर्तय । 'चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन द्वित्वम् । 'संभ्रमेण वृत्तिश्चापलम्' इति काशिका । इत्येवं मरुतां देवानां गिरो वाचः खे व्योम्नि यावच्चरन्ति प्रवर्तन्ते तावत्तत्कालमेव भवस्य नेत्राज्जन्म यस्य स भवनेत्रजन्मा । 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः । स वह्निर्मदनं भस्मैवावशेषो यस्य तं भस्मावशेषं चकार । ददाहेत्यर्थः ।।७२।।

हिन्दी–'हे प्रभो अपना क्रोध 'रोकिये रोकिये' इस प्रकार प्रार्थना के शब्द आकाशमण्डल में देवता लोग कर ही रहे थे कि इतने में शिव के तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुई अग्नि ने कामदेव को भस्मावशेष बना दिया ।

तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम् ।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ।।७३।।

अन्वयः–तीव्राभिषङ्गप्रभवेण इन्द्रियाणां वृत्तिं संस्तम्भयता मोहेन रतिः मुहूर्तं अज्ञातभर्तृव्यसना सती कृतोपकारा इव बभूव ।

संजी०–तीव्रेति । तीव्राभिषङ्गप्रभवेणातिदुःसहाभिभव संभवेन । 'अभिषङ्गस्त्वभिभवे सङ्ग आक्रोशनेऽपि च' इति वैजयन्ती । इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां वृत्तिं व्यापारं संस्तम्भयता प्रतिबध्नता मोहेन मूर्च्छया कर्त्रा । रतिर्मदनभार्या मुहूर्तमज्ञानं भर्तृव्यसनं भर्तृनाशो यया सा तथोक्ता सती कृतोपकारेव बभूव । सहसा दुःखोपनिपातान्मुमूर्च्छेत्यर्थः । मोहेन दुःखसंवेदनाभावात् तस्योपकारकत्वोक्तिः ।।७३।।

हिन्दी–अत्यन्त दुःसह पराभव से उत्पन्न हुए तथा इन्द्रियों को स्वस्व व्यापार में होने वाली वृत्ति को नष्ट करने वाले मोह ने रति को मूर्च्छित कर दिया । मानो उस मूर्च्छा से रति कुछ समय तक पति की विपत्ति को न जानती हुई उपकृत-सी हो गई ।

तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी वनस्पतिं वज्र इवावभज्य ।
स्त्रीसंनिकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ।।७४।।

अन्वयः–तपस्वी भूतपतिः तपसः विघ्नं तं वज्रः वनस्पतिम् इव आशु अवभज्य स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्तुं इच्छन् सन् सभूतः अन्तर्दधे ।

संजी०–तमिति । तपस्वी तपोनिष्ठो भूतपतिः शिवस्तपसो विघ्नमन्तरायभूतं तं काममाशु वज्रोऽशनिर्वनस्पतिं वृक्षमिवावभज्य भङ्क्त्वा स्त्रीसंनिकर्षं स्त्रीसंनिधानं परिहर्तुमिच्छन् । तस्यानर्थहेतुत्वादिति भावः । सभूतः सगणः सन्नन्तर्दधे ।।७४।।

हिन्दी—तपस्वी भगवान् शङ्कर तप के साक्षात् विघ्नरूप उस कामदेव को भस्म कर स्त्रीसान्निध्य त्याग करने की इच्छा से इस प्रकार तिरोहित हो गये जिस प्रकार बिजली शीघ्रता से पेड़ को नष्ट कर अन्तर्हित हो जाती है।

शैलात्मजापि पितुरुच्छिरसोऽभिलाषं
व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च।
सख्योः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा
शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथञ्चित् ॥७५॥

अन्वयः—शैलात्मजा अपि उच्छिरसः पितुः अभिलाषं ललितम् आत्मनः वपुः च व्यर्थं समर्थ्य सख्योः समक्षम् इति च अधिकजातलज्जा शून्या सती कथञ्चित् भवनाभिमुखी जगाम।

संजी०—शैलात्मजेति ॥ शैलात्मजा पार्वत्यप्युच्छिरस उन्नतशिरसो महतः पितुरभिलाषं हरो वरोऽस्त्विति मनोरथं ललितं सुन्दरमात्मनो वपुश्च व्यर्थं निष्फलं समर्थ्य विचार्य सख्योः समक्षं पुर इति च हेतुनाधिकं जातलज्जा। समानजनसमक्षमवमानस्यातिदुःसहत्वादिति भावः। शून्या निरुत्साहा सती कथंचित्कृच्छ्रेण भवनस्याभिमुखी जगाम ॥७५॥

हिन्दी—पार्वती ने भी महत्वाकाङ्क्षी अपने पिता की अभिलाषा और स्वकीय सुन्दर शरीर को निष्फल जान कर विजया तथा मालिनी नामक सखियों के सामने इस प्रकार के तिरस्कार से लज्जित एवं उदास हो बड़े कष्ट के साथ अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

सपदि मुकुलिताक्षीं रुद्रसंरम्भभीत्या
दुहितरमनुकम्प्यामद्रिरादाय दोर्भ्याम्।
सुरगज इव बिभ्रत्पद्मिनीं दन्तलग्नां
प्रतिपथगतिरासीद् वेगदीर्घीकृताङ्गः ॥७६॥

अन्वयः—सपदि अद्रिः रुद्रसंरम्भभीत्या मुकुलिताक्षीम् अनुकम्प्यां दुहितरं दोर्भ्याम् आदाय दन्तलग्नां पद्मिनी बिभ्रत् सुरगज इव वेगदीर्घीकृताङ्गः सन् प्रतिपथगतिः आसीत्।

संजी०—सपदीति। सपद्यद्रिर्हिमवान्रुद्रस्य संरम्भात्कोपाद्भीत्या। 'संरम्भः संभ्रमे कोपे' इति विश्वः। मुकुलिताक्षीं निमीलितनेत्राम्। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति षच्प्रत्ययः। 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष्। अनुकम्पितुमर्हामनुकम्प्याम्। 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत्प्रत्ययः। दुहितरं दोर्भ्या-

मादाय दन्तयोर्लग्नां पद्मिनीं नलिनीं बिभ्रत्सुरगज इव वेगेन रयेण दीर्घीकृताङ्ग आयतीकृतशरीरः सन् । पन्थानं प्रतिगता मार्गानुसारिणी गतिर्यस्य स प्रतिपथगतिरासीत् । पन्थानमनुसृत्य जगामेत्यर्थः ॥७६॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये मदनदहनो
नाम तृतीयः सर्गः ।

— ❀ —

हिन्दी—उसी समय हिमालय ने शङ्कर के कोप के डर से आँखों को बन्द की हुई अत्यन्त दीन कन्या पार्वती को अपने हाथों से उठा कर दाँतों पर कमलिनी धारण किये ऐरावत हाथी के समान वेग से शरीर को लम्बा कर उल्टे घर का रास्ता पकड़ कर प्रस्थान किया ।

इस प्रकार कालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के
तृतीय सर्ग की डॉ० सुधाकरमालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

— ❀ —

॥ चतुर्थः सर्गः ॥

मूर्च्छिता रतिरित्युक्तम् । संप्रति तद्वृत्तान्तमेवाह--

अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता ।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥ १ ॥

अन्वयः--अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूः असह्यवेदनं नववैधव्यं प्रतिपादयिष्यता विधिना विबोधिता ।

संजी०--अथेति । अथानन्तरं मोहो मूर्च्छा परमयनमाश्रयो यस्याः सा मोहपरायणा मोहैकशरणा सती । 'परायणमभिप्रेते तत्परे परमाश्रये' । इति यादवः । विवशा मूढत्वान्निश्चेष्टा कामवधू रतिः । असह्या दुःसहा वेदना यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । विधवायां गतभर्तृकाया भावो वैधव्यम् । नवं च तद्वैधव्यं चेति नववैधव्यम् । नवग्रहणं दुःसहत्वद्योतनार्थम् । प्रतिपादयिष्यतानुभावयिष्यता । क्रियार्थक्रियायां लृट् । विधिना दैवेन । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः । विबोधिता । वैधव्यानुफलोऽयं विधिरिति भावः । अस्मिन्सर्गे वियोगिनीवृत्तानि--'विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी' इति लक्षणात् ॥१॥

हिन्दी--इसके बाद मूर्च्छित हो कर विवश पड़ी हुई उस रति को नवीन वैधव्य का असह्य दुःख अनुभव कराने के लिये अदृष्ट ने फिर उसे चेतना संपन्न किया ।

अवधानपरे चकार सा प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने ।
न विवेद तयोरतृप्तयोः प्रियमत्यन्तविलुप्तदर्शनम् ॥ २ ॥

अन्वयः--सा प्रलयान्तोन्मिषिते विलोचने अवधानपरे चकार । किन्तु प्रियम् अतृप्तयोः तयोः अत्यन्तविलुप्तदर्शनं न विवेद ।

संजी०--अवेति । सा रतिः प्रलयान्ते मूर्च्छावसाने । 'प्रलयो नष्टचेष्टता' इत्यमरः । उन्मिषिते उन्मीलिते विलोचने । अवधानं परं प्रधानं ययोस्तेऽवधानपरे दिदृक्षयावहिते चकार । द्रष्टव्याभावात्तु न विवेदेत्याहनेति । प्रियं काममतृप्तयोस्तृप्तिं न गतयोः । नित्यदिदृक्षमाणयोरित्यर्थः । तयोर्लोचनयोः । दर्शनक्रियापेक्षया संबन्धे षष्ठी । अत्यन्तविलुप्तं दर्शनं स्वलोचनयोः करणयोर्यस्य कर्मभूतस्य तमत्यन्तविलुप्तदर्शनं सन्तं न विवेद न ज्ञातवती । प्रियनाशापरिज्ञानाद्दिदृक्षांचक्र इति तात्पर्यार्थः ॥२॥

हिन्दी--होश में आने पर रति ने कामदेव को देखने की इच्छा से आँख खोल कर उन्हें समाहित किया, पर तरसी हुई अपनी आँखों के लिए अब कामदेव का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ होगा, यह बात शङ्कर की नेत्राग्नि निकलते समय स्वयं मूर्च्छित हो जाने के कारण वह न जान सकी।

अयि जीवितनाथ जीवसीत्यभिधायोत्थितया तया पुरः।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अयिजीवितनाथ ! जीवसि ? इति अभिधाय उत्थितया तया पुरः क्षितौ पुरुषा कृति केवलं हरकोपानलभस्म ददृशे।

संजी०--अयीति। अयीति प्रश्ने। 'अयि प्रश्नानुनययोः' इति विश्वः। अयि जीवितनाथ! जीवसि कच्चिदित्यभिधायोत्थितया तया रत्या पुरोऽग्रे क्षितौ पुरुषस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्य तत्पुरुषाकृति केवलमेकं हरकोपानलभस्म ददृशे दृष्टम्। न तु पुरुष इति भावः ॥ ३ ॥

हिन्दी--रति 'हे प्राणनाथ जीवित हो क्या?' ऐसा कहती हुई उठ कर उसके पास जा कर ज्यों ही देखने लगी उस समय उसे केवल शङ्कर की कोपाग्नि से दग्ध पुरुषाकृति में भस्ममात्र दिखाई पड़ा। उसे प्रियदर्शन नहीं हुआ।

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गन धूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ॥ ४ ॥

अन्वयः---अथ पुनः एव जिह्वला वसुधाऽऽलिङ्गन धूसरस्तनी विकीर्ण मूर्धजा सा स्थली समदुःखां, कुर्वती इव विललाप।

संजी०—अथेति। अथ भस्मदर्शनानन्तरं पुनरेव विह्वला विक्लवा वसुधालिङ्गनधूसरस्तनी वसुधालिङ्गनेन क्षितिलुण्ठनेन धूसरौ धूसरवर्णौ स्तनौ कुचौ यस्याः सा तथोक्ता। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीष्। विकीर्ण मूर्धजा विकीर्णा विक्षिप्ता मूर्धजा केशा यस्याः सा तथोक्ता सा रतिः स्थलीं वनभूमिम्। तत्रत्यान्प्राणिन इत्यर्थः। 'जानपदकुण्डगोणस्थले –त्यादिना ङीष् समदुःखां स्वतुल्यशोकां कुर्वतीव विललाप परिदेवितवती। 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः ॥ ४ ॥

हिन्दी--कामदेव की मृत्यु का निश्चय कर लेने के बाद दुःख से विलाप करती हुई जमीन पर लोटने से धूल से लथपथ स्तनों एवं बिखरे हुए बालों से दिखाई पड़ने वाली वह रति उस वनस्थली में रहने वाले समस्त पशु-पक्षिगणों को भी अपने समान दुःखी करती हुई जैसी विलाप करने लगी।

उपमानमभूद्विलासिनां करणं यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिदं गतमीदृशीं दशां, न विदीर्ये, कठिनाः खलु स्त्रियः ॥५॥

अन्वयः--तव यत् करणम् कान्तिमत्तया विलासिनाम् उपमानम् अभूत्ः तत् इदम् ईदृशीं दशां गतम्। तथापि अहं न विदीर्ये हि स्त्रियः कठिनाः खलु।

संजी०—उपेति। तव यत्करणं गात्रम् 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः। कान्तिमत्तया सौन्दर्येण हेतुना विलासिनां विलसनशीलानाम्। 'वौ कषलसे'—त्यादिना घिनुण्प्रत्ययः। उपमीयते येन तदुपमानमभूत्। तत्करणमिदमीदृशीं दशामवस्थां गतम्। भस्मीभूतमित्यर्थः। तथापि न विदीर्ये न विदीर्णा भवामि। कर्तरि लट्। तथाहि। स्त्रियः कठिनाः खलु। कठिनत्वादविदीर्यमाणत्वमित्यर्थः। कारणात्कार्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः। 'धीरसंचारिणी दृष्टिर्गतिर्गोवृषभाञ्चिता। स्मितपूर्वं तथालापो विलास इति कीर्तितः॥ इति॥५॥

हिन्दी--हे प्रिय! तुम्हारा जो शरीर सौन्दर्याधिक्य से विलासी पुरुषों का उपमान था, अब वही तुम्हारा यह शरीर, इस अवस्था को प्राप्त हो रहा है। यह देख कर भी मेरा कलेजा नहीं फट जाता। हाय, स्त्री जाति बहुत कठोर होती है। ऐसा ही अनुमान करती हूँ।

क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः॥६॥

अन्वयः--हे प्रिय! क्षतसेतुबन्धनः जलसंघातः नलिनीम् इव त्वदधीनजीवितां माम् विनिकार्य क्षणभिन्नसौहृदः सन् (त्वं) क्व न विद्रुतः असि।

संजी०—क्वेति। हे प्रिय! क्षतसेतुबन्धनो भग्नसेतुबन्धो जलसंघातो जलौघो नलिनीमिव। जलैकायत्तजीवितामिति शेषः। त्वदधीनजीवितां त्वदायत्तप्राणां मां क्व नु विनिकीर्य कुत्र वा निक्षिप्य क्षणभिन्नसौहृदः क्षणत्यक्तसौहार्दः सन्। विद्रुतः पलायितोऽसि। सेतुसौहृदयोः स्थितिहेतुत्वेन साम्यम्। सुहृदो भावः सौहृदम्। युवादित्वादण्प्रत्ययः। 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' इति हृदादेशः। अणि 'हृद्भावात्र 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इत्युभयपदवृद्धिः। हृद्भूतस्याण्विधाने तूभयपदवृद्धिः स्यात्। यथा सुहृदो भावः सौहार्दमिति। तदेवाह वामनः-'सौहृददौर्हृदशब्दावनणि हृद्भावात्' इति॥६॥

हिन्दी--हे प्रिय! जैसे जल का प्रचण्ड प्रवाह क्षणमात्र में बाँध तोड़ कर जलाधीन कमलिनी को इधर-उधर बिखेर कर जल्दी से निकल जाता है उसी तरह

तुम भी मेरे प्रेम-बन्धन को अकस्मात् तोड़कर तुम्हारे अधीन जीने वाली मुझ रति को यहीं छोड़कर कहाँ चले गये ?

कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् ।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥७॥

अन्वयः — हे प्रिय ! त्वं मे विप्रियं न कृतवान् असि । मया च ते प्रतिकूलं न कृतम् । अकारणम् एव विलपन्त्यै रतये किं दर्शनं न दीयते ?

संजी॰—कृतेति । हे प्रिय, त्वं मे मम विप्रियमप्रियं कृतवान्नासि । मया च ते तव प्रतिकूलमप्रियं न कृतम् । अकारणं निष्कारणमेव । परस्परापकारलक्षणकारणाभावेऽपीत्यर्थः । क्रियाविशेषणमेतत् । विलपन्त्यै । त्वद्दर्शनार्थिन्या अपीति भावः । रतये किं कथं दर्शनं न दीयते । क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी ॥७॥

हिन्दी—हे नाथ ! तुमने कभी भी मेरी बुराई नहीं की और न मैंने ही कभी आप की बुराई की, तब बिना कारण ही इस प्रकार बिलखती हुई मुझ रति को अपना दर्शन क्यों नहीं देते ।

विप्रियमाशङ्कते—

स्मरसि स्मर ! मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम् ।
च्युतकेशरदूषितेक्षणान्यवतंसोत्पलताडनानि वा ॥८॥

अन्वयः हे स्मर ! गोत्रस्खलितेषु मेखलागुणैः बन्धनं स्मरसि ? उत च्युतकेसरदूषितेक्षणानि अवतंसोत्पलताडनानि च स्मरसि ।

संजी॰—स्मरसीति । हे स्मर ! गोत्रस्खलितेषु नामव्यत्यासेषु । 'गोत्रं नाम्न्यचले कुले' इति विश्वः । मेखलागुणैर्बन्धनं स्मरस्युत स्मरसि वा । 'विकल्पे किं किमुत च' इत्यमरः । च्युतकेशरैर्भ्रष्टकिञ्जल्कैर्दूषिते ईक्षणे येषु तान्यवतंसोत्पलताडनानि । सधूलिक्षेपताडनानीत्यर्थः । स्मरसि वा । अपकारस्मरणादिदमदर्शनमिति भावः ॥८॥

हिन्दी—हे नाथ ! क्या सपत्नी के नाम ग्रहण रूप अपराध किये जाने के कारण मेरे द्वारा किये गये काञ्ची गुण में अपने बन्धन को स्मरण कर रहे हो इसलिए अथवा उसी अपराध में कर्णभूषण के कुवलय द्वारा ताड़न किये जाने पर उनसे गिरे हुए परागों के आँखों में पड़ जाने के कारण जो तुम्हें पीड़ा उत्पन्न हुई थी, मेरे उस अपराध का स्मरण कर तुम मेरी आँखों के सामने नहीं आ रहे हो ।

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम् ।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः ? ॥९॥

अन्वयः—'हृदये वससि' इति मत्प्रियं यत् अवोचः तत् कैतवम् अवैमि। इदम् उपचारपदं न चेत् त्वम् अनङ्गः, कथम रतिः अक्षता।

संजी०--हृदय इति। हृदये वससीति स्मरवाक्यानुवादः। इत्येवं रूपं मत्प्रियं यदवोच उक्तवानसि। ब्रुञो लुङि 'वच उम्' इत्युमागमः। तत्कैतवमवैमि मिथ्येति मन्ये। इदं वचनमुपचारपदं परस्य रञ्जनार्थं यदसत्यभाषणं स उपचारस्तस्य पदं स्थानम्। कैतवस्थानमिति यावत्। न चेत्त्वमनङ्गोऽशरीरः। कथं रतिरक्षताऽविनष्टा। आश्रयनाशेऽप्याश्रितमविनष्टमिति विरोधादिति भावः॥९॥

हिन्दी—तुम सदा कहा करते थे 'हे रति तुम सर्वदा मेरे हृदय में निवास करती हो।' यह तुम्हारा वचन मात्र मुझे फुसलाने के लिए ही था, ऐसा अब मुझे मालूम पड़ने लगा है। यदि मुझे फुसलाने की बात न होती तो तुम शरीररहित अनङ्ग कैसे बन गये और यह रति ज्यों की त्यों अक्षत कैसे बनी रहती ?

न च मे कश्चिद्विचारः किंतु लोकः शोच्यत इत्याह—

परलोकनवप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव।
विधिना जन एष वञ्चितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम्॥१०॥

अन्वयः—अहं परलोकनवप्रवासिनः तव पदवीं प्रतिपत्स्ये, विधिना एष जनः वञ्चितः, देहिनां सुखं त्वदधीनं खलु।

संजी०—परलोकेति। परलोकं प्रति नवप्रवासिनोऽचिरप्रोषितस्य। अनेनानुगमनकालानतिपातः सूच्यते। तव पदवीं मार्गं प्रतिपत्स्ये। त्वामनुगमिष्यामीत्यर्थः। अतो मे नास्ति विचार इति भावः। किंतु विधिना दैवेनैष जनो लोको वञ्चितः प्रतारितः। देहिनां सुखं त्वदधीनं त्वय्यधीनं खलु। अधिशब्दस्य शौण्डादित्वात् 'सप्तमी शौण्डैः' इति समासः। 'अध्युत्तरपदात्' इति खप्रत्ययः। एवमन्यत्रापि सुखप्रदाभावे कुतः सुखमिति भावः॥१०॥

हिन्दी— हे प्रियतम! परलोकरूप नये प्रवास करने के लिए अकेले तुम चले गये। मैं भी तुम्हारे रास्ते से आकर शीघ्र तुमसे मिलूँगी। अदृष्ट ने मुझे मूर्च्छित कर ठग लिया क्योंकि मात्र मेरा सुख तुम्हारे अधीन नहीं प्रत्युत समस्त संसार का सुख तुम्हारे अधीन है।

तदेवाह—

रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय! कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः॥११॥

अन्वयः--हे प्रिय ! रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः प्रियाः कामिनां वसतिं प्रापयितुं त्वद् ऋते क ईश्वरः ?

संजी०--रजनीति । हे प्रिय ! रजनीतिमिरेणावगुण्ठित आवृते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवा गर्जितभीताः प्रियाः कामिनां वसतिं प्रापयितुं त्वदृते त्वां विना । 'अन्यारादितरर्ते--' इत्यादिना पञ्चमी । क ईश्वरः शक्तः ? न कश्चिदित्यर्थः । न हि कामान्धानां भीतिरस्तीति भावः ॥११॥

हिन्दी—वर्षाकाल में रात के समय गाढ़े अन्धकार से भयानक नगर के रास्ते में बादल की गर्जना से विकल हुई अभिसारिकाओं को अपने प्रियतम के संकेतस्थल तक पहुँचाने में तुम्हारे विना अब कौन सहायता करेगा ?

नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे ।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना ॥१२॥

अन्वयः—अरुणानि नयनानि घूर्णयन् पदे पदे वचनानि स्खलयन् प्रमदानां वारुणीमदः अधुना त्वयि असति विडम्बना ।

संजी०--नयनानीति । अरुणानि नयनानि घूर्णयन्भ्रमयन् । तथा पदे पदे प्रतिपदम् । वीप्सायां द्विरुक्तिः । वचनानि स्खलयन्विपर्यासयन्प्रमदानां वारुणीमदो मद्यमदोऽधुना त्वय्यसति विडम्बनानुकृतिमात्रम् । मदनाभावे मदस्य निष्फलत्वादिति भावः । तथा च शिशुपालवधे--'तां मदो दयितसंगमभूषः' (१० । ३३) इति ॥१२॥

हिन्दी--हे प्रभो ! लाल-लाल नेत्रों से घूरने वाला, पद-पद पर बोलने में आवाज को लड़खड़ाने वाला मद्य का नशा अब तुम्हारे विना स्त्रियों के लिए उपहासास्पद हो जाएगा ।

अवगम्य कथीकृतं वपुः प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः ।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनङ्ग ! मोक्ष्यति ॥१३॥

अन्वयः—हे अनङ्ग ! प्रियबन्धोः तव वपुः कथीकृतम् अवगम्य निष्फलोदयः निशाकरः बहुले गतेऽपि तनुतां दुःखं मोक्ष्यति ।

संजी०—अवगम्येति । हे अनङ्ग अशरीर ! प्रियबन्धोः प्रियसखस्य तव वपुः शरीरं कथीकृतमकथा कथा संपद्यमानं कृतं शब्दमात्रावशिष्टमवगम्य ज्ञात्वा निष्फलोदयः । उद्दीप्याभावादुद्दीपनवैफल्यमिति भावः । निशाकरश्चन्द्रो बहुले कृष्णपक्षे गतेऽपि तनुतां कार्श्यं दुःखं यथा तथा कृच्छ्रान्मोक्ष्यति । वृथा वृद्धिरिति दुःखयिष्यत इत्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी--हे अनङ्ग ! मित्र से अत्यधिक प्रेम रखने वाले तुम्हारे शरीर को कथामात्रावशिष्ट सुनकर चन्द्रमा भी अपना उदय निष्फल समझकर कृष्णपक्ष के बीत जाने पर शुक्ल पक्ष में बड़ी कठिनाई से अपने को पुष्ट करेगा ।

हरितारुणचारुबन्धनः कलपुंस्कोकिलशब्दसूचितः ।
वद संप्रति कस्य बाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥१४॥

अन्वयः--हरितारुणचारुबन्धनः कलपुंस्कोकिलशब्दसूचितः नवचूतप्रसवः संप्रति कस्य बाणतां गमिष्यति ? (इति त्वमेव) वद ।

संजी०—हरितेति । हरितं चारुणं च । 'वर्णो वर्णेन' इति तत्पुरुषः । हरितारुणं चारु बन्धनं वृन्तं पुङ्खश्च यस्य स तथोक्तः । कलेन मधुरेण पुंस्कोकिलशब्देन पुरुषकोकिलनादेन सूचितोऽनुमापितश्च । चूतवर्णकार्यत्वात्कलशब्दस्येति भावः । नवचूतप्रसवो नवचूतकुसुमं संप्रति कस्य बाणतां शरत्वं गमिष्यति ? वद । अन्यस्य पुष्पबाणस्याभावादिति भावः ॥१४॥

हिन्दी--हे प्रियतम ! पुंस्कोकिल के मधुर शब्द से जिसके उद्गम का अनुमान किया जाता है ऐसे लाल बन्धनवाला नये आम का बौर (कुसुम) अब किसका बाण बनेगा ? तुम्हीं बताओ ।

अलिपङ्क्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता ।
विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदतीव माम् ॥१५॥

अन्वयः—त्वया अनेकशः धनुषः गुणकृत्ये नियोजिता इयम् अलिपङ्क्तिः करुणस्वनैः विरुतैः गुरुशोकां मां अनुरोदिति इव ।

संजी०—अलीति । त्वयानेकशो बहुशो धनुषः कार्मुकस्य गुणकृत्ये मौर्वीकार्ये गुणवत्कर्मणि च नियोजिताधिकृतेयमलिपङ्क्तिः करुणस्वनैर्दीनस्वनैर्विरुतैः कूजितैर्गुरुशोकां दुर्भरदुःखाम् । 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे' इति शब्दार्णवः । मामनुरोदितीव उपसर्गात्सकर्मकत्वम् । 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' इतीडागमः ॥१५॥

हिन्दी--हे नाथ ! अनेक बार तुम्हारे धनुष की डोरी के लिए काम में आने वाली यह भ्रमरपंक्ति अपने करुणाजनक शब्दों से मानों वह भी दीर्घ शोक से आर्त्त हुई मुझ अभागिनी के पीछे रोती-सी जान पड़ती है ।

प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः ।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् ॥१६॥

अन्वयः--तावत् पुनः अपि मनोहरं वपुः प्रतिपद्य उत्थितः सन् मधुरालापनिसर्गपण्डितां कोकिलां रतिदूतिपदेषु आदिश ।

संजी०—प्रतिपद्येति । तावत्पुनरपि मनोहरं वपुः शरीरं प्रतिपद्य प्राप्योत्थितः सन् । मधुरालापेषु प्रियोक्तिषु निसर्गपण्डितां स्वभावप्रगल्भां कोकिलां

रतिदूतिपदेषु। सुरतदूतीस्थानेष्वादिशाज्ञापय। प्रगल्भानामेव दौत्याधिकार इति भावः। ङीबन्तस्यापि दूतीशब्दस्य छन्दोभङ्गभयाद्ध्रस्वः। 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गे त्यजेद्गिरम्' इति केचित्। 'उणादयो बहुलम्' इति बहुलग्रहणाद्ध्रस्व इति वल्लभः ॥१६॥

हिन्दी--हे प्रिय! भस्ममय इस शरीर को त्याग कर पहले के समान नवीन अत्यन्त सुन्दर शरीर को पुनः धारण कर कामिनी और कामुक के परस्पर संघटन कार्य के लिये स्वभावतः मधुर बोल बोलने में विदुषी इन कोकिलाओं को दूती के कार्य में नियुक्त करो।

शिरसा प्रणिपत्य याचितान्युपगूढानि सवेपथूनि च।
सुरतानि च तानि ते रहः स्मर! संस्मृत्य न शान्तिरस्ति मे ॥१७॥

अन्वयः--हे स्मर! ते शिरसा प्रणिपत्य याचितानि सवेपथूनि उपगूढानि च तानि रहः सुरतानि संस्मृत्य मे शान्तिः न अस्ति।

संजी०--शिरसेति। हे स्मर! शिरसा प्रणिपत्य याचितानि सवेपथूनि सकम्पानि। 'ट्वितोऽथुच्' इत्यथुचप्रत्ययः। सात्विकान्तरोपलक्षणमेतत्। 'स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू। अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ सात्विकाः परिकीर्तिताः॥' इति। उपगूढान्यालिङ्गनानि च। नपुंसके भावे क्तः। तान्यनुभूतप्रकाराणि रह एकान्ते सुरतानि च संस्मृत्य मे शान्तिर्नास्ति। अत्र समानकर्तृकत्वं दुर्घटं समानक्रियापेक्षास्तीति केचित् ॥१७॥

हिन्दी—हे स्मर! प्रणयकोप में मान करने वाली मुझ रति को एकान्त में मनाने के लिए मेरे पैरों में पड़ कर तुम्हारे द्वारा की गई प्रार्थना पुनः प्रसन्न हो जाने पर सकम्प तुम्हारा आलिङ्गन, उसके अनन्तर भी एकान्त में किये गये तुम्हारे सुरत आदि का स्मरण कर इस समय मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिल रही है।

रचितं रतिपण्डित! त्वया स्वयमङ्गेषु ममेदमार्तवम्।
ध्रियते कुसुमप्रसाधनं तव तच्चारु वपुर्न दृश्यते ॥१८॥

अन्वयः—हे रतिपण्डित! त्वया मम अंगेषु स्वयं रचितम् आर्त्तवं कुसुमप्रसाधनं इदं ध्रियते। तव तत् चारु वपुः न दृश्यते।

संजी०--रचितमिति। हे रतिपण्डित रतिकुशल, त्वया ममाङ्गेष्ववयवेषु स्वयं रचितम् ऋतुरस्य प्राप्त आर्तवं वासन्तम्। 'ऋतोरण्' इत्यण्प्रत्ययः। कुसुमप्रसाधनं पुष्पाभरणमिदं ध्रियतेऽवतिष्ठते। 'धृञ् अवस्थाने' इति धातोस्तौदादिकात्कर्तरि लट्। तव तत्प्रसाधकं चारु सुन्दरं वपुस्तु न दृश्यते ॥१८॥

हिन्दी—हे रतिपण्डित ! तुम्हारे द्वारा मेरे शरीर पर अपने हाथ से बनाया हुआ यह ताजे वसन्त पुष्पों का अलंकार ज्यों का त्यों विद्यमान है किन्तु उन अलंकारों से सजाने वाले तुम्हारे शरीर का सौन्दर्य कहाँ चला गया ?

विबुधैरसि यस्य दारुणैरसमाप्ते परिकर्मणि स्मृतिः ।
तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणं निर्मितरागमेहि मे ।।१९।।

अन्वयः—दारुणैः विबुधैः यस्य परिकर्मणि असमाप्ते स्मृतः असि तमिमं दक्षिणेतररं मे चरणं निर्मितरागं कुरु । एहि ।

संजी० विबुधैरिति । दारुणैः क्रूरः । प्राणान्तिके कर्मणि नियोगादिति भावः । विबुधैर्देवैः । अनभिज्ञत्वं च ध्वन्यते । यस्य मच्चरणस्य परिकर्मणि प्रसाधने । 'परिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः । असमाप्ते सति स्मृतोऽसि । तमिमं दक्षिणेतरं वामं मे चरणं निर्मितरागं रचितलाक्षारागं कुर्वंह्यागच्छ ।।१९।।

हिन्दी—हे नाथ ! स्नेहवश अपने हाथों से महावर लगाने में प्रवृत्त हुए आप केवल मेरे दाहिने पैर में ही महावर लगा कर क्रूर देवों के याद करने से चले गये । इसलिये मेरे शेष बायें पैर को भी अलक्तक से विभूषित करो । शीघ्र आओ ।

अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयणी भवामि ते ।
चतुरैः सुरकामिनीजनैः प्रिय ! यावन्न विलोभ्यसे दिवि ।।२०।।

अन्वयः—अहं पतङ्गवर्त्मना एत्य पुनः ते अङ्काश्रयणी भवामि । हे प्रिय ! दिवि चतुरैः सुरकामिनीजनैः यावत् न विलोभ्यसे ।

संजी०—अहमिति । अहं पतङ्गवर्त्मना शलभमार्गेण । अग्निप्रवेशेनेत्यर्थः । 'पतङ्गः शलभे चाग्नौ मार्जारेऽर्के शरे खगे'—इति वैजयन्ती । एत्यागत्य पुनस्तेऽङ्काश्रयण्युत्सङ्गवर्तिनी भवामि संप्रत्येव भविष्यामि । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् । हे प्रिय ! दिवि स्वर्गे चतुरैः सुरकामिनीजनैरप्सरोगणैर्यावन्न विलोभ्यसे विलोभयिष्यसे । 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति लट् ।।२०।।

हिन्दी—हे प्रियतम ! मैं पतङ्ग के रास्ते (अग्निप्रवेश द्वार) का अनुसरण कर शीघ्र तुम्हारे पास आकर तुम्हारी गोद का आश्रय लूंगी, जब तक स्वर्ग में पुरुषों के चित्त को आकृष्ट करने में चतुर अप्सरायें तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट न करें ।

मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे ।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण ! त्वामनुयामि यद्यपि ।।२१।।

अन्वयः—हे रमण ! त्वाम् अनुयामि यद्यपि किन्तु रतिः मदनेन विना कृता क्षणमात्रं जीविता किल । इति इदं वचनीयं मे व्यवस्थितम् ।

संजी०--मदनेनेति। हे रमण! त्वामनुयामि यद्यप्यनुगमिष्याम्येव। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट्। 'यद्यपीत्यवधारणे' इति केशवः। किंतु रतिर्मदनेन विनाकृता। वियोजिता सतीत्यर्थः। सुप्सुपेति समासः। क्षणमात्रं जीविता किलेतीदं वचनीयं निन्दा मे मम व्यवस्थितं स्थिरमभूत् ॥२१॥

हिन्दी--हे रमण! यद्यपि यह निश्चित है कि मैं तुम्हारा अनुगमन करूँगी तथापि कामदेव के बिना भी रति कुछ क्षणमात्र जीवित रही यह लोकापवाद तो मेरे लिए अमिट हो जायगा।

क्रियतां कथमन्त्यमण्डनं परलोकान्तरितस्य ते मया।
सममेव गतोऽस्यतर्किता गतिमङ्गेन च जीवितेन च ॥२२॥

अन्वयः—परलोकान्तरितस्य ते मया अन्त्यमण्डनं कथं क्रियताम्? अङ्गेन जीवितेन च समम् एव अतर्कितां गतिं गतः असि।

संजी०--क्रियतामिति। परलोकेऽन्तरितस्य व्यवहितस्य। मृतस्येत्यर्थः। ते तव मयान्त्यमण्डनं कथं केन प्रकारेण क्रियताम्। क्रियतामित्यत्र कामचारे लोट् बोध्यः। द्रुतदग्धस्य ते यथेच्छ मण्डनमपि न सभवतीत्यर्थः। कुतः। अङ्गेन च जीवितेन च समं सहैवार्तकितामविचारितां गतिं गतोऽसि। इह मृतशरीरमपि नास्ति कस्य मण्डनमिति भावः ॥२२॥

हिन्दी—दुःख है कि मैं परलोक में गये हुए तुम्हारे मृतक शरीर को किस प्रकार सुसज्जित एवं अलंकृत करूँ? अन्य जगत् के प्राणियों का तो प्राण निकलने पर शरीर शेष रह जाता है पर तुम तो शरीर तथा प्राण, दोनों को सहसा साथ २ लेकर इस अतर्कित गति को प्राप्त हुए हो।

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वनः।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च यत् ॥२३॥

अन्वयः—शरम् ऋजुतां नयतः उत्सङ्गनिषण्णधन्वनः ते मधुना सह सस्मितां कथां यत् नयनोपान्तविलोकितं च। तच्च स्मरामि।

संजी०--ऋजुतामिति। शरमृजुतामार्जवं नयत उत्सङ्गे निषण्णमङ्कगतं धनुर्यस्य तस्य। 'धनुषश्च' इत्यनङादेशः। ते तव मधुना वसन्तेन सह 'मधुर्दैत्ये वसन्ते च चैत्रे च' इति विश्वः। सस्मितां कथामालापं तथा यन्नयनोपान्तविलोकितमपाङ्गवीक्षणम्। त इत्यनुषङ्गः। तच्च स्मरामि ॥२३॥

हिन्दी—बाण की वक्रता को सीधा करते हुए तथा अपने अंक में धनुष धारण किये हुए वसन्त के साथ मन्द स्मितयुक्त तुम्हारी बातों को एवं बीच-बीच में तिरछे कटाक्षयुक्त मेरी ओर किये गये अवलोकन को मैं अब स्मरण कर रही हूँ।

क्व नु ते हृदयंगमः सखा कुसुमायोजितकार्मुको मधुः ।
न खलूग्ररुषा पिनाकिना गमितः सोऽपि सुहृद्गतां गतिम् ? ॥२४॥

अन्वयः—हृदयङ्गमः ते सखा कुसुमायोजितकार्मुकः मधुः क्व नु (अथवा) स अपि उग्ररुषा पिनाकिना सुहृद्गतां गतिं न गमितः खलु।

संजी०—क्वेति। हृदयं गच्छतीति हृदयंगमो हृद्यः। खच्प्रकरणे 'गमेः सुप्युपसंख्यानम्' इति खच्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः। ते तव सखा कुसुमैरायोजितमारचितं कार्मुकं येन कार्मुकनिर्माता मधुर्वसन्तः क्व नु क्व वा। गत इति शेषः। अथवा सोऽप्युग्ररुषा तीव्रकोपेन पिनाकिनेश्वरेण सुहृदा मदनेन गतां प्राप्तां गतिम्। भस्मतामित्यर्थः। न गमितः खलु न प्रापितः किम्। 'जिज्ञासानुनये खलु' इत्यमरः ॥२४॥

हिन्दी—तुम्हारे लिए फूलों के द्वारा धनुष का निर्माण करने वाला तुम्हारा अत्यन्त प्रिय मित्र वसन्त भी इस समय दिखाई नहीं देता। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह भी शंकर के अत्यन्त कोप से तुम्हारी गति को प्राप्त हो गया हो ?

अथ तैः परिदेविताक्षरैर्हृदये दिग्धशरैरिवाहतः ।
रतिमभ्युपपत्तुमातुरां मधुरात्मानमदर्शयत्पुरः ॥२५॥

अन्वयः—अथ तैः परिदेविताक्षरैः हृदये दिग्धशरैः इव आहतः मधुः आतुराम् रतिम् अभ्युपपत्तुम् आत्मानं पुरः अदर्शयत्।

संजी०—अथेति। अथ तैः परिदेविताक्षरैर्विलापवचनैर्हृदये दिग्धशरैर्विषलिप्तमुखैः शरैरिवाहतः सन्। 'विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ' इत्यमरः। मधुर्वसन्त आतुरामापन्नां रतिमभ्युपपत्तुमनुग्रहीतुम्। आश्वासयितुमित्यर्थः। 'अभ्युपपत्तिरनुग्रहः' इत्यमरः। आत्मानं पुरोऽदर्शयत्। आविरभूदित्यर्थः ॥२५॥

हिन्दी—इस प्रकार रति के विलापाक्षर रूपी विष में बुझे हुए बाणों से हृदय में आहत हुआ वसन्त प्रियाविरहित होने से आतुर रति को सान्त्वना देने के लिए स्वयं ही रति के आगे आविर्भूत हुआ।

तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥२६॥

अन्वयः—सा तम् अवेक्ष्य भृशं रुरोद। स्तनसम्बाधम् उरः जघान च। हि स्वजनस्य अग्रतः दुःखं विवृतद्वारम् इव उपजायते।

संजी०--तमिति। सा रतिस्तं मधुमवेक्ष्य दृष्ट्वा भृशं रुरोद। स्तनौ संबाध्य स्तनसंबाधम्। 'परिक्लिश्यमाने च' इति णमुल्। उरो जघान ताडितवती च। तथाहि। स्वजनस्याग्रतो दुःखं विवृतमपसारितं द्वारं कपाटं यस्य तदिवोपजायत आविर्भवति। उच्छृङ्खलं प्रवर्तत इत्युत्प्रेक्षाभिप्रायः ॥२६॥

हिन्दी—वसन्त को देखते ही रति ऊँचे स्वर में जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगी और स्तनों से निपीड़ित अपनी छाती भी पीटने लगी। क्योंकि अपने प्रियजनों को देख लेने पर हृदयस्थित दुःख अश्रु आदि से निकलने के लिये स्वयं द्वार को उद्घाटित कर देता है।

इति चैनमुवाच दुःखिता 'सुहृदः पश्य वसन्त! किं स्थितम्?।
तदिदं कणशो विकीर्यते पवनैर्भस्म कपोतकर्बुरम् ॥२७॥

अन्वयः--दुःखिता सा एनम् इति उवाच। हे वसन्त! पश्य सुहृदः किं स्थितम्। तत् इदं कपोतकर्बुरम् भस्मपवनैः कणशः विकीर्यते।

संजी०--इतीति। दुःखमस्याः संजातं दुःखिता। संजातदुःखेत्यर्थः। तारकादित्वादितच्। सा रतिरेनं वसन्तमित्युवाच च। चकारः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थः। हे वसन्त! पश्य सुहृदस्त्वत्सखस्य किं स्थितं किमुपस्थितं तदिदं कपोतकर्बुरं पारावतशबलं कणशश्चूर्णीभूतम्। अल्पार्थाच्छस्प्रत्ययः। भस्म पवनैर्विकीर्यते विक्षिप्यते। पश्य भस्मीभूतस्ते सुहृदित्यर्थः ॥२७॥

हिन्दी--दुःखित हुई रति वसन्त से इस प्रकार बोली - देखो वसन्त, तुम्हारे प्रिय मित्र को यह कैसी दशा हो गई। यह तुम्हारा सखा भस्मीभूत हो गया और इसके कर्बुर (चितकबरे) रङ्ग के समान भस्म को वायु कणशः जहाँ-तहाँ विकीर्ण कर रहा है।

अयि संप्रति देहि दर्शनं स्मर! पर्युत्सुक एष माधवः।
दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥२८॥

अन्वयः—अयि स्मर संप्रति दर्शनं देहि। एष माधवः पर्युत्सुकः अस्ति। नृणां दयितासु प्रेम अनवस्थितम्। सुहृज्जने प्रेम तु न चलं च खलु।

संजी०--अयीति। अयि स्मर! संप्रति दर्शनं देहि। एष माधवो वसन्तः पर्युत्सुकस्त्वद्दर्शनोत्कण्ठितः। त्वामप्यनादृतवतोऽस्य को माधव इत्याशङ्कयाह—नृणां पुरुषाणां दयितासु प्रेमानवस्थितमस्थिरम्। चलमित्यर्थः। सुहृज्जने प्रेम तु न चलं खलु ॥२८॥

हिन्दी—हे काम! तुम अभी दर्शन दो। यह वसन्त तुम्हें देखने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है। स्त्री जनों के प्रति पुरुष का प्रेम चञ्चल रहता है।

इसलिये भले ही मेरी उपेक्षा करो किन्तु सुहृज्जनों के प्रति अनुराग स्थिर रहता है, इसलिए इसकी उपेक्षा मत करो।

ईदृशाः सुहृदः कति न सन्तीत्याशङ्क्य न कोऽपीत्याह—

अमुना ननु पार्श्ववर्तिना जगदाज्ञां ससुरासुरं तव।
बिसतन्तुगुणस्य कारितं धनुषः पेलवपुष्पपत्त्रिणः ॥२९॥

अन्वयः—पार्श्ववर्त्तिना अमुना ससुरासुरं जगत् विषतन्तु गुणस्य पेलवपुष्पपत्रिणः तव धनुषः आज्ञां कारितं ननु।

संजी०—अमुनेति। ननु मदन पार्श्ववर्तिना सहचरेणामुना वसन्तेन ससुरासुरं सुरासुरसहितं जगद्बिसतन्तुगुणस्य मृणालसूत्रमौर्वीकस्य पेलवानि कोमलानि पुष्पाण्येव पत्त्रिणो बाणा यस्य तस्य तव धनुष आज्ञां कारितम्। जगदाज्ञा कारितेत्यर्थः। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इति जगतः कर्मत्वम् ॥२९॥

हिन्दी—इसी पार्श्ववर्ती वसन्त की सहायता से सुरासुरों के सहित सारा जगत् मृणाल की प्रत्यञ्चा वाले मनोहर पुष्पों के बाण से युक्त तुम्हारे धनुष की आज्ञा के वशवर्ती होकर उसका लोहा मानता है।

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥३०॥

अन्वयः—स ते सखा अनिलाहतः दीपः इव गतः एव। न निवर्त्तते। अहम् अस्य दशा इव तिष्ठामि। अविषह्यव्यसनेन धूमितां मां पश्य।

संजी० गत इति। स ते सखाऽनिलाहतो वायुताडितो दीप इव गत एव न निवर्तते। अहमस्य दीपायमानस्य दशा वर्तिरिव। तिष्ठामीति शेषः। 'दशा वर्तावस्थायां वस्त्रान्ते स्युर्दशा अपि' इति विश्वः। कुतः। अविषह्यव्यसनेन सोढुमशक्यदुःखप्रकर्षेण धूमितां संजातधूमां मां पश्य। धूमवत्त्वान्नष्टदीपदशासाम्यं धूमश्च व्यसनमेवेत्यर्थः ॥३०॥

हिन्दी—हे वसन्त ! अब तुम वायु के झोंके से बुझे दीप के समान उसे बिनष्ट समझो। अब वह पुनः लौटकर आने वाला नहीं। मैं उस दीप की वर्त्तिका जैसी शेष हूँ। अतः अब दुखप्रकर्ष से युक्त धूएँ से युक्त मुझे देखो।

विधिना कृतमर्धवैशसं ननु मां कामवधे विमुञ्चता।
अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी ॥३१॥

अन्वयः—ननु कामवधे मां विमुञ्चता विधिना अर्धवैशसं कृतम्। अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने सति वल्लरी पतनाय भवति।

संजी०—विधिनेति। ननु वसन्त ! कामवधे मदनवधे मां विमुञ्चता वर्जयता। अमारयतेत्यर्थः। विधिना दैवेन। विशसति हिनस्तीति विशसो

घातुकः । पचाद्यच् । विशसस्य कर्म वैशसम् । युवादित्वादण्प्रत्ययः । अर्धवैशसमर्धवधः कृतम् । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेः । पत्युः स्वस्य चाश्रयाश्रयिभूतयोरेकपदार्थत्वाभिप्रायेणार्धोक्तिः । तथा चैकदेशवधे देशान्तरस्यापि वधनियमनान्मामपि विधिरघ्नन्नेव हतवानिति तात्पर्यम् । एतदेवोपपादयति--अनपायिन्यनपायित्वेन विश्वस्ते संश्रयद्रुमे आश्रयवृक्षे गजभग्ने सति वल्लरी लता पतनाय, भवतीति शेषः । पतितुमेव सालमित्यर्थः 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इति चतुर्थी ॥३१॥

हिन्दी--मुझे छोड़कर मेरे अर्धाङ्ग पति मात्र की हत्या कर दैव ने आधा ही पाप किया । किन्तु जब हाथी ने आश्रयभूत पेड़ को नष्ट कर दिया, तब उसकी आश्रित लता भी अवश्य विनष्ट होगी ।

संप्रत्यनन्तरकर्तव्यं प्रार्थयते--

तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम् ।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु ! मां प्रापय पत्युरन्तिकम् ॥३२॥

अन्वयः—तत् अनन्तरं भवता इदं बन्धुजन प्रयोजनं क्रियताम् । ननु विधुरां मां ज्वलनाति सर्जनात् पत्युः अन्तिकं प्रापय ।

संजी०—तदिति । तत्तस्मात्कारणादुक्तप्रकारेण । अन्यथापि मरणस्यावश्यंभावादित्यर्थः । अनन्तरं भवतेदं वक्ष्यमाणं बन्धुजनप्रयोजनं बन्धुकृत्यं क्रियताम् । प्रार्थनायां लोट् । तदेवोपदिशति-- ननु वसन्त ! विधुरां विवशां मां ज्वलनातिसर्जनादग्निदानात्पत्युरन्तिकं प्रापय । अग्निप्रवेशनं कारयेत्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी--अब आप इसके अनन्तर सुहृद्जनोचित यह कार्य संपादन करें कि मुझको अग्नि प्रज्वलित कर विधुर हुई मुझे उसमें प्रविष्ट करा कर मेरे पति के पास भिजवा दें ।

कर्तव्यश्चायमर्थः स्त्रीणामित्याह—

शशिना सह याति कौमुदी, सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥३३॥

अन्वयः—कौमुदी शशिना सह याति । तडित् मेघेन सह प्रलीयते । प्रमदाः पतिवर्त्मगाः इति विचेतनैः अपि प्रतिपन्नम ।

संजी०—शशिनेति । कौमुदी चन्द्रिका शशिना सह याति । शशिन्यस्तमिते स्वयं नश्यतीत्यर्थः । तडित्सौदामिनी मेघेन सह प्रलीयते प्रणश्यति । कर्तरि लट् । प्रमदाः स्त्रियः पतिवर्त्मगच्छन्तीति पतिवर्त्मगाः पतिमार्गानुगामिन्य इत्येतद्विचेतनैः । अविवेकिभिरपीत्यर्थः । नाथस्तु 'पृथग्जनैः' इति पपाठ । प्रतिपन्नं ज्ञातम् ।'अलवणा यवागूः' 'अनुदरा कन्या' इतिवदल्पत्वाभि-

प्रायेण विचेतनैरपीति निर्देशः। पतिवर्त्मगा इत्यत्र स्मृतिः—'आर्तार्ते, मुदिते हृष्टा, प्रोषिते मलिना कृशा। मृते म्रियेत या पत्यौ, सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥' इति ॥३३॥

हिन्दी—चन्द्रिका (चाँदनी) अपने पति चन्द्रमा के साथ ही अस्त होती है। बिजली भी मेघों के साथ अन्तर्हित हो जाती है, स्त्री को अपने पति के सहगामिनी होना चाहिए, यह बात तो अचेतनों को भी ज्ञात है।

अमुनैव कषायितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना।
नवपल्लवसंस्तरे यथा रचयिष्यामि तनुं विभावसौ ॥३४॥

अन्वयः—अमुना सुभगेन प्रियागत्रभस्मना एव कषायितस्तनी नवपल्लवसंस्तरे यथा विभवसौ तनुं रचयिष्यामि।

संजी०—अमुनेति ॥ अमुना पुरोवर्तिना सुभगेन शोभनेन प्रियगात्रभस्मनैव। एवकारो मण्डनान्तरनिवृत्त्यर्थः। कषायितस्तनी रञ्जितस्तनी। 'रागे क्वाये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे'। इति वैजयन्ती। नवपल्लवसंस्तरे यथा नवपल्लवतल्प इव विभावसौ वह्नौ तनुं शरीरं रचयिष्यामि निधास्यामीत्यर्थः ॥३४॥

हिन्दी - अब मैं अपने आगे पड़े हुए प्रियतम के शोभित गात्रभस्म से अपने स्तन का अनुलेप बनाकर नवीन पल्लव की शय्या के समान इस अग्निदेव में अपने शरीर को स्थापित करूँगी।

कुसुमास्तरणे सहायतां बहुशः सौम्य, गतस्त्वमावयोः।
कुरु संप्रति तावदाशु मे प्रणिपाताञ्जलियाचितश्चिताम् ॥३५॥

अन्वयः—हे सौम्य ! त्वम् आवयोः बहुशः कुमुमास्तरणे सहायतां गतः असि। प्रणिपाताञ्जलिः याचितः तावत् आशु मे चिन्तां कुरु।

संजी०—कुसुमेति ॥ हे सौम्य ! साधो त्वमावयो रति पञ्चबाणयोर्बहुशो बहुबारं कुसुमास्तरणे पुष्पशयने सहायतां गतः। संप्रति प्रणिपाताञ्जलिना याचितः। अञ्जलिपूर्वकं प्रार्थितः सन्नित्यर्थः। आशु मे चितां काष्ठचयं कुरु कुरुष्व। यथेह तथामुत्रोपकर्तव्यं मित्रेणेत्यर्थः ॥३५॥

हिन्दी—हे वसन्त ! तुम हम दोनों के सुरत समय में बहुत बार पुष्पशय्यादि प्रस्तुत कर सहायता किया करते थे। अब इस समय हाथ जोड़कर मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ कि तुम इस समय मेरे लिए शीघ्र चिता तैयार करो।

तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेर्दक्षिणवातवीजनैः।
विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना ॥३६॥

अन्वय—तदनु मदर्पितं ज्वलनं दक्षिणवातवीजनैः त्वरयेः । ते विदितं खलु यथा स्मरः मां विना क्षणम् अपि न उत्सहते ।

संजी०—तदन्वित ॥ तच्चिताकरणानन्तरं मय्यर्पितं मदर्पितं ज्वलनमग्निं दक्षिणवातवीजनैर्मलयमारुतसंचारणैस्त्वरयेः । त्वरितं ज्वलयेत्यर्थः । त्वराहेतुमाह—ते तव विदितं खलु 'मतिबुद्धपूजार्थेभ्यश्च' इति वर्तमाने क्तः । तद्योगात्कर्तरि षष्ठी । यथा येन प्रकारेण स्मरो मां विना क्षणमपि नोत्सहते न हृष्यति । तथा त्वया ज्ञातमेवेत्यर्थ ॥३६॥

हिन्दी—मेरे लिए तैयार की गई चिता की अग्नि को दक्षिण दिशा के पवनरूपी पंखे से शीघ्रातिशीघ्र प्रदीप्त कराओ । क्योंकि तुम इस बात को जानते हो कि कामदेव मेरे बिना क्षणमात्र भी नहीं रह सकता है ।

इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ ।
अविभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः ॥३७॥

अन्वयः—अपि च विधिं विधाय नौ एक एव सलिलस्य अञ्जलिं दीयताम् । तं स ते बान्धवः परत्र मया सहितः अविभज्य पास्यति ।

संजी०—इतीति ॥ अपि चेत्येवं विधाय कृत्वा नावावाभ्यामेक एव सलिलस्याञ्जलिर्दीयताम् । तमञ्जलिं स ते बान्धवः सखा स्मरः परत्र परलोके मया सहितोऽविभज्य पास्यति ॥३७॥

हिन्दी—पूर्वोक्त प्रकार से सारा कार्य संपादित कर हम दोनों के लिए तुम एक ही जलाञ्जलि से तर्पण करना, जिससे तुम्हारा मित्र कामदेव परलोक में मेरे साथ उस एक ही अञ्जलि को बिना विभाग किये पान करे ।

परलोकविधौ च माधवः स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः ।
निवपेः सहकारमञ्जरीः प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा ॥३८॥

अन्वयः—हे माधव ! परलोकविधौ च स्मरम् उद्दिश्य विलोलपल्लवाः सहकारमञ्जरीः निवपेः हि ते सखा प्रियचूतपल्लवः अस्ति ।

संजी०—परलोकेति ॥ किंच हे माधव वसन्त ! परलोकविधौ पिण्डौदकादिकर्मणि स्मरमुद्दिश्य विलोलाः पल्लवा यासु ताः सहकारमञ्जरीश्चूतवल्लरीर्निर्वपेर्देहि । हि यस्मात्कारणात्ते सखा स्मरः प्रियाश्चूतप्रसवा यस्य स तथोक्तः ॥३८॥

हिन्दी—हे माधव ! कामदेव का और्ध्वदैहिक कार्य करते समय श्राद्ध में चञ्चल किसलय युक्त आम्रमञ्जरी अवश्य देना । क्योंकि तुम्हारा सुहृद् कामदेव सहकार मञ्जरी से बहुत प्रेम करता था ।

इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं ह्रदशोषविक्लवां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पयत् ॥३९॥

अन्वयः—इति देहविमुक्तये स्थितां रतिम् आकाशभवा सरस्वती ह्रदशोषविक्लवां शफरीं प्रथमा वृष्टिः इव अन्वकम्पत।

संजी०—इतीति। इति देहस्य विमुक्तये शरीरस्य विसर्गाय स्थिताम्। कृतनिश्चयामिति यावत्। रतिमाकाशभवा सरस्वत्यशरीरा वाग्घ्रदशोषविक्लवां ह्रदस्य जलाधारस्य शोषेण विक्लवां शफरीं प्रोष्ठीम्। 'प्रोष्ठी तु शफरी द्वयोः' इत्यमरः। प्रथमा वृष्टिर्वर्षमिवान्वकम्पयदनुकम्पितवती। सदयमुवाचेत्यर्थः। 'कृपा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः ॥३९॥

हिन्दी—अपने शरीर को त्यागने के लिये उद्यत हुई रति पर अकस्मात् होने वाली आकाशवाणी ने इस प्रकार कृपा की जिस प्रकार तालाब के जल के सूख जाने पर मृतप्राय मछली पर प्रथम होने वाली वृष्टि उसमें प्राण संचरण कराती है।

कुसुमायुधपत्नि! दुर्लभस्तव भर्ता न चिराद्भविष्यति।
शृणु येन स कर्मणा गतः शलभत्वं हरलोचनार्चिषि ॥४०॥

अन्वयः—हे कुसुमायुधपत्नि तव भर्त्ता चिरात् दुर्लभो न भविष्यति। शृणु येन कर्मणा सः हरलोचनार्चिषि शलभत्वं गतः।

संजी०—कुसुमेति॥ हे कुसुमायुधपत्नि रते! तव भर्त्ता चिराच्चिरं दुर्लभो न भविष्यति। किंत्वचिरमेव सुलभो भविष्यतीत्यर्थः। किंच शृणु। तत्कर्मेति शेषः। येन कर्मणा स ते भर्त्ता हरलोचनस्यार्चिर्ज्वाला। 'ज्वाला भासो न पुंस्यर्चिः' इत्यमरः। तस्मिञ्शलभत्वं पतङ्गत्वं गतः। 'समौ पतङ्गशलभौ' इत्यमरः ॥४०॥

हिन्दी—आकाशवाणी ने कहा—हे रति, कुछ समय के बाद तुम्हारा पति तुम्हें पुनः प्राप्त होगा। जिस कर्म के फलस्वरूप वह हर-कोपानल की ज्वाला में भस्मीभूत हुआ, उसे सुनो।

तदेव कर्मोपाचष्टे—

अभिलाषमुदीरितेन्द्रियः स्वसुतायामकरोत्प्रजापतिः।
अथ तेन निगृह्य विक्रियामभिशप्तः फलमेतदन्वभूत् ॥४१॥

अन्वयः—उदीरितेन्द्रियः प्रजापतिः स्वसुतायाम् अभिलाषम् अकरोत्। अथ तेन विक्रियां निगृह्य अभिशप्तः सन् एतत्फलम् अन्वभूत।

संजी०—अभिलाषेति॥ उदीरितेन्द्रियः प्रेरितेन्द्रियः। स्मरेणेति शेषः। प्रजापतिर्ब्रह्मा स्वसुतायां सरस्वत्यामभिलाषमनुरागमकरोत्। अथ तेन

प्रजापतिना विक्रियामिन्द्रियविकारं निगृह्य निरुध्याभिशप्तः सन्। एतत् फलं दाहात्मकं स्वकर्मफलमन्वभूत् ॥४१॥

हिन्दी—पूर्वकाल में सृष्टि करते समय ब्रह्मदेव ने अपनी कन्या सरस्वती को देखकर उसमें कामानुराग व्यक्त किया। तब प्रजापति ने अपने इन्द्रियों के विकार को रोक कर कामदेव को भस्म होने का शाप दिया जिससे वह इस गति को प्राप्त हुआ।

शापावधिरपि तेनैवोक्त इत्याह श्लोकद्वयेन—

परिणेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥४२॥
इति चाह स धर्मयाचितः स्मरशापावधिदां सरस्वतीम्।
अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः ॥४३॥

अन्वयः—धर्मयाचितः सः तपसा तत्प्रवणीकृतः हरः यदा पार्वतीं परिणेष्यति। तदा उपलब्धसुखः सन् स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति। इति स्मर शापावधिदां सरस्वतीं च आह। वशिनः अम्बुधराश्च अशनेः अमृतस्य उभयोः योनयः भवन्ति किल।

संजी०—परिणेष्यतीति॥ इतीति च। धर्मेण धर्माख्यप्रजापतिना याचितः प्रार्थितः स भगवान्ब्रह्मा। तपसा कारणेन तस्यां पार्वत्यां प्रवणीकृतोऽभिमुखीकृतो हरः शिवो यदा पार्वतीं परिणेष्यत्युद्वक्ष्यति तदोपलब्धसुखः प्राप्तानन्दः सन्। स्मरं कामं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति संगमयिष्यति। इत्येवं स्मरशापस्यावधिदामवसानदायिनीं सरस्वतीं वाचं चाह। एवं शापावधिमप्युक्तवानित्यर्थः। ननु तथा क्रुद्धस्य कथमीदृशी शान्तिरत आह—वशिनो जितेन्द्रियाश्चाम्बुधराश्चाशनेरमृतस्य चेत्युभयोर्योनयः प्रभवः वशिपक्षेऽशन्यमृतशब्दौ कोपप्रसादपरौ। अन्यत्र वैद्युताग्न्युदकपरौ। युग्मकम् ॥४२-४३॥

हिन्दी—सृष्टि-रक्षा के लिए जब धर्म ने ब्रह्मदेव से प्रार्थना की तब ब्रह्मदेव ने कहा—जब महेश्वर पार्वती की तपस्या से संतुष्ट होकर उनके साथ विवाह करेंगे, उस समय काम को अपने लिए सुख का उपयुक्त साधन समझ सर्वप्रथम उसे शरीर से युक्त करेंगे। इस प्रकार काम हमारे अभिशाप से छुटकारा प्राप्त करेगा, जिस प्रकार मेघ में जल और विद्युत् दोनों रहते हैं उसी प्रकार संयमी पुरुषों में कोप और प्रसाद दोनों ही एकत्र रहते हैं।

तदिदं परिरक्ष शोभने! भवितव्यप्रियसंगमं वपुः।
रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी ॥४४॥

अन्वयः—हे शोभने ! तत् भवितव्य प्रियसङ्गमम् इदं वपुः परिरक्ष । हि रविपीतजला नदी तपात्यये पुनः ओघेन युज्यते ।

संजी०--तदिति ॥ हे शोभने ! तत्तस्मात्कारणाद्भवितव्यो भविष्यत्प्रियसंगमो यस्य तत्तथोक्तमिदं वपुः परिरक्ष । तथाहि । रविपीतजला नदी तपात्यये प्रावृषि । 'प्रावृट् तपात्यये' इति हलायुधः । पुनरोघेण प्रवाहेण युज्यते संगच्छते हि ॥४४॥

हिन्दी—हे शोभने ! इस कारण भविष्य में होने वाले प्रियसङ्गम के लिए अपने इस शरीर की रक्षा करो । देखो, ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणों द्वारा जल के शोषित हो जाने पर सूखी हुई नदी पुनः वर्षा ऋतु में जल पा जाने से प्रवाहित होने लगती है ।

इत्थं रतेः किमपि भूतमदृश्यरूपं
मन्दीचकार मरणव्यवसायबुद्धिम् ।
तत्प्रत्ययाच्च कुसुमायुधबन्धुरेना-
माश्वासयत्सुचरितार्थपदैर्वचोभिः ॥४५॥

अन्वयः--इत्थम् अदृश्यरूपम् किमपि भूतं रतेः मरणव्यवसायबुद्धिम् मन्दीचकार । अथ कुसुमायुध बन्धुश्च तत्प्रत्ययाद् एनां सुचरितार्थपदैः वचोभिः आश्वासयत् ।

संजी०—इत्थमिति ॥ इत्थमनेन प्रकारेणादृश्यरूपं किमपि भूतं कश्चित्प्राणी । 'युक्ते क्ष्मादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु' इत्यमरः । रतेर्मदनदाराणां मरणव्यवसायबुद्धिं मरणोद्योगबुद्धिं मन्दीचकार । निवारयामासेत्यर्थः । 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः' इत्यमरः । अथ कुसुमायुधबन्धुर्वसन्तश्च तत्प्रत्ययात्तस्मिन्भूते विश्वासात् । 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः । एनां रतिं सुष्ठु चरितार्थानि पदानि येषां तैर्वचोभिर्वाक्यैराश्वासयत् । सर्वथा ते देवताप्रसादात्प्रियसंगमो भविष्यतीत्यादिवचनैरस्या दुःखमपाचकारेत्यर्थः ॥४५॥

हिन्दी--इस प्रकार किसी अदृश्य दैव ने रति को देहत्याग के लिये उद्यत संकल्प से निवृत्त किया । फिर उसी देववाणी के ऊपर विश्वास कर कामसखा वसन्त भी युक्तिपूर्ण वचनों से रति को आश्वासन देने लगा ।

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयांबभूव ।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥४६॥

अन्वयः--अथ व्यसनकृशा मदनवधूः उपप्लवान्तं किरणपरिक्षय धूसरादिवातनस्य शशिनः लेखा प्रदोषम् इव परिपालयाम्बभूव ।

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरं व्यसनेन दुःखेन कृशा मदनवधू रतिरुपप्लवान्तं विपदवधिं किरणपरिक्षयेण धूसरा मलिना दिवातनस्य दिनभवस्य। 'सायंचिरम्' इत्यादिना ट्युप्रत्ययः। शशिनश्चन्द्रस्य लेखा प्रदोषं रात्रिमिव परिपालयांबभूव प्रतीक्षांचक्रे। पुष्पिताग्रावृत्तम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ॥४६॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये रतिविलापो
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

— ❀ —

हिन्दी—आकाशवाणी एवं वसन्त द्वारा दिए गये आश्वासन को सुनकर शोक से कृश शरीर रति मदन के अभिशाप की अन्तिम तिथि की उसी प्रकार प्रतीक्षा करने लगी जैसे दिन में प्रकाशक्षय से धूमिल दिखाई पड़ने वाली चन्द्रकला अपने प्रकाशप्रद सन्ध्या समय की प्रतीक्षा करती है।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के तृतीय
सर्ग की डॉ० सुधाकरमालवीय कृत हिन्दी
व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

□

॥ पञ्चमः सर्गः ॥

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥१॥

अन्वयः—पार्वती तथा समक्षं मनोभवं दहतां पिनाकिना भग्नमनोरथा सती हृदयेन रूपं निनिन्द तथा हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला भवति ।

संजी०—तथेति ॥ पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती तथा तेन प्रकारेणाक्ष्णोः समीपे समक्षं पुरतः । 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धी-' त्यादिनाव्ययीभावः । मनोभवं मन्मथं दहता भस्मीकुर्वता पिनाकिनेश्वरेण भग्नः खण्डितो मनोरथोऽभिलाषो यस्याः मा तथोक्ता सती हृदयेन मनसा रूपं सौन्दर्यं निनिन्द । 'धिङ् मे रूपं यद्धरमनोहरणाय नालमिति गर्हितवती'त्यर्थः । युक्तं चैतदित्याह-तथाहि । चारुता सौन्दर्यं प्रियेषु विषये सौभाग्यं प्रियवाल्लभ्यं फलं यस्याः सा तथोक्ता । सौन्दर्यस्य तदेव फलं यद्भर्तृ सौभाग्यं लभ्यते । नो चेद्विफलं तदिति भावः । अस्मिन्सर्गे वंशस्थं वृत्तम्-'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात् ॥१॥

हिन्दी—इस प्रकार आँखों के सामने ही कामदेव को दग्ध करने वाले शिव के द्वारा भग्नमनोरथ वाली पार्वती ने अन्तःकरण से अपने सौन्दर्य की निन्दा की । क्योंकि यथार्थ सुन्दरता वही हैं जो अपने प्रियतम को लुभा ले या जिसे प्राप्त कर प्रिय अपने को सौभाग्यशाली समझे ।

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥२॥

अन्वयः—सा आत्मनः अवन्ध्यरूपतां कर्त्तुं समाधिम् आस्थाय तपोभिः इयेष । वा अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशः पतिः च द्वयम् कथत् अवाप्यते ।

संजी०—इयेषेति ॥ सा पार्वती समाधिमेकाग्रतामास्थायावलम्ब्य तपोभिर्वक्ष्यमाणनियमैः करणभूतैरात्मनः स्वस्यावन्ध्यरूपतां सफलसौन्दर्यं कर्तुमियेषेच्छति स्म । तपसा शिवं वशीकर्तुमुद्युक्तेत्यर्थः । अन्यथा ततोऽन्यप्रकारेण कथं वा तद्द्वयमवाप्यते । किं तद्द्वयम् ? तथाभूता विधा प्रकारो यस्य तत्तथाविधं प्रेम स्नेहः येनार्धाङ्गहरा हरस्य भवेदिति भावः । तादृशः

पतिश्च । यो मृत्युंजय इति भावः । द्वयमेव खलु स्त्रीणामपेक्षितं यद्भर्तृवाल्लभ्यं जीवद्भर्तृकत्वं चेति । तच्च तपश्चर्यैकसाध्यमिति निश्चिकायेत्यर्थः । अत्र मनुः—'यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम् । तत्सर्वं तपसा प्राप्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥' इति ॥२॥

हिन्दी—उस पार्वती ने अपने रूप को सफल बनाने के लिए समाधि लगाकर तपस्याओं के द्वारा शिव को प्राप्त करने की इच्छा की । अन्यथा शङ्कर जैसा प्रेम और उनके जैसा स्वामी, ये दोनों किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते है । अर्थात् वैसे प्रेम तथा वैसे पति को प्राप्त करने के लिए तपस्या ही एक मार्ग है ।

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥३॥

अन्वयः—मेना च गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् एनां सुतां तपसे कृतोद्यमां निशम्य वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती उवाच ।

संजी०—निशम्येति ॥ मेना मेनका च गिरीशप्रतिसक्तमानसां हरासक्तचित्तां तपसे तपश्चरणाय कृतोद्यमां कृतोद्योगां सुतां निशम्य श्रुत्वैनां पार्वतीं वक्षसा परिरभ्यालिङ्ग्य महतो मुनिव्रतात्तपसो निवारयन्त्युवाच । मुनिव्रतादित्यत्र यद्यपि मुनिव्रतस्य मेनकाया अनीप्सितत्वात् 'वारणार्थानामीप्सितः' इति नापादानत्वं तथापि कृतोद्यमामिति मानसप्रवेशोक्तत्वात् 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इत्यपादानत्वमेव स्यात् । यथाह भाष्यकारः—'यच्च मिथ्या संप्राप्य निवर्तते तच्च ध्रुवमपायेऽपादानमिति प्रसिद्धम्' इति ॥३॥

हिन्दी—पार्वती की माता मेना शिव में आसक्त मनवाली उस अपनी पुत्री को तपस्या करने के लिए उद्यत सुन हृदय से लगाती हुई उस अत्यन्त कठोर मुनियों के आचरण से रोकती हुई बोली ।

सामान्यनिषेधमुक्त्वा विशेषनिषेधमाह—

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्त्रिणः ॥४॥

अन्वयः—हे वत्से मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति । तपः क्व । तावकं वपुः च क्व । पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत । पतत्त्रिणः पुनः न ।

संजी०—मनीषिता इति ॥ हे वत्से ! मनस ईषिता इष्टा मनीषिताः । शकन्ध्वादित्वात्साधुः । देवताः शच्यादयो गृहेषु सन्ति । त्वं तामाराधयेति शेषः । तपः क्व तवेदं तावकम् । 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च' इत्यणप्रत्ययः । 'तवकममकावेकवचने' इति तवदेकाशः । वपुश्च क्व । तथाहि । पेलवं मृदुलं

शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य भृङ्गस्य पदं पदस्थितिं सहेत। पतत्त्रिणः पुनः पक्षिणस्तु पदं न सहेत। अतिसौकुमार्याद्दिव्योपभोगभोग्यं ते वपुर्न दारुणतपःक्षममित्यर्थः। अत्र दृष्टान्तालंकारः ॥४॥

हिन्दी—हे पुत्रि ! हमारे अभीष्ट देवता तो हमारे घर में ही है। कहाँ यह कठिन तपस्या ? और कहाँ अत्यन्त कोमल तुम्हारा शरीर ? शिरीष का कोमल कुसुम एक भौंरे के चरणभार को सह सकता है। किन्तु पक्षि के पदभार को किस प्रकार सह सकता है ?

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क इप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥५॥

अन्वयः—इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुतां उद्यमात् नियन्तुं न शशाक (तथा हि) ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयः च कः प्रतीपयेत्।

संजी०—इतीति॥ इत्येवमनुशासत्युपदिशन्ती मेना ध्रुवेच्छां स्थिरव्यवसायां सुतां पार्वतीमुद्यमादुद्योगात्तपोलक्षणान्नियन्तुं निवारयितुं न शशाक समर्था नाभूत्। तथाहि। ईप्सितार्थे इष्टार्थे स्थिरनिश्चयं मनो निम्नाभिमुखं पयश्च कः प्रतीपयेत्प्रतिकूलयेत्। प्रतिनिवर्तयेदित्यर्थः। निम्नप्रवणं पय इवेष्टार्थाभिनिविष्टं मनो दुर्वारमिति भावः। अत्र दीपकानुप्राणितोऽर्थान्तरन्यासालंकारः ॥५॥

हिन्दी—इस प्रकार उपदेश देती हुई पार्वती की माता मेना दृढ़ संकल्पवाली अपनी पुत्री को उसके निश्चय को बदलने में समर्थ न हो सकी। ठीक ही है, अपने अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति के लिए सुदृढ़ निश्चय वाले मन को, और नीचे की ओर बहने वाले जल को कौन पलट सकता है ?

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥६॥

अन्वयः—कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरं आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनः अरण्यवासम् अयाचत।

संजी०—कदाचिदिति॥ अथ कदाचिन्मनस्विनी स्थिरचित्ता सा पार्वती मनोरथज्ञमभिलाषाभिज्ञं पितरं हिमवन्तमासन्नसख्याप्तसखी सैव मुखमुपायः। 'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इति विश्वः।' तेन फलोदयः फलोत्पत्तिरन्तोऽवधिर्यस्य तस्मै तपःसमाधये तपोनियमार्थमात्मनः स्वस्यारण्यनिवासं वनवासमयाचत। 'दुह्याच्–' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् ॥६॥

हिन्दी—इसके बाद एक दिन स्थिरचित्तवाली उस पार्वती ने अपने मनोरथ को जानने वाले अपने पिता से अपनी हृदय वाली सहेली के द्वारा तपस्या करने के लिए वन में निवास करने की आज्ञा माँगी।

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥७॥

अन्वयः—अथ अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृतामनुज्ञा गौरी पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् शिखरं जगाम।

संजी०—अथेति ॥ अथ गौर्यनुरूपेण योग्येनाभिनिवेशेनाग्रहेण तुष्यतीति तथोक्तेन गरीयसा पूज्यतमेन गुरुणा पित्रा कृताभ्यनुज्ञा तपः कुर्विति कृतानुमतिः सती पश्चात्तपःसिद्ध्युत्तरकालं प्रजासु जनेषु तदाख्यया तस्या गौर्याः संज्ञया प्रथितम्। गौरीशिखरमिति प्रसिद्धमित्यर्थः। शिखण्डिमत्। न तु हिंस्रप्राणिप्रचुरमिति भावः। शिखरं श्रृङ्गं जगाम ययौ ॥७॥

हिन्दी—इसके बाद पार्वती के अनुरूप आग्रह से संतुष्ट हुए अपने पूज्यतम पिता से आज्ञा पाकर मयूरों से युक्त उस चोटी पर चली गयी, जिसका नाम बाद में चलकर उसी गौरी के नाम से ही जनता में प्रसिद्ध हुआ।

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥८॥

अन्वयः—अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविर्शीणसंहति वल्कलं बबन्ध।

संजी०—विमुच्येति ॥ अहार्यनिश्चया अनिवार्यनिश्चया सा गौरी विलोलाभिश्चलाभिर्यष्टिभिः प्रतिसरैः प्रविलुप्तं प्रमृष्टं चन्दनं स्तनान्तरगतं येन तं तथोक्तं हारं मुक्तावलीं विमुच्य विहाय बालारुणबभ्रु बालार्कपिङ्गलं पयोधरयोः स्तनयोरुत्सेधेनोच्छ्रायेण विशीर्णा विघटिता संहतिरवयवसंश्लेषो यस्य तत्तथोक्तं वल्कलं कण्ठलम्बि स्तनोत्तरीयभूतं बबन्ध। धारयामासेत्यर्थः ॥८॥

हिन्दी—अनिवार्यनिश्चयवाली उस गौरी ने अपने उस हार को, जिसने अपनी लड़ियों से छाती में लगे हुए चन्दन को पोंछ दिया था, उसको हटा कर अपने उच्च-स्तनों की रगड़ से जिसके अवयव शिथिल हो गये, ऐसे वल्कल को धारण किया।

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥९॥

अन्वयः—तदाननैः प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत् जटाभिः अपि (एवम्) अभूत्। पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिः एव न प्रकाशते। स शैवलासङ्गम् अपि प्रकाशते।

संजी०—यथेति॥ तस्या देव्या आननं तदाननं प्रसिद्धैर्भूषितैः। 'प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ' इत्यमरः। रोहन्तीति रुहाः। 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति कप्रत्ययः। शिरसि रुहास्तैः शिरोरुहैर्मूर्धजैर्यथा मधुरं प्रियमभूत्। 'स्वादुप्रियौ तु मधुरौ' इत्यमरः। जटाभिरप्येवं मधुरमभूत्। तथाहि पङ्कजं पद्मं षट्पद्श्रेणिभिर्भ्रमरपङ्क्तिभिरेव न किंतु सह शैवालसङ्गेन सशैवाल सङ्गमपि। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः। प्रकाशते। शैवलेनापि शोभते एवत्यर्थः॥९॥

हिन्दी—पार्वती का मुख अलङ्कृत केशकलापों द्वारा जैसा मनोहर लगता था, जटाओं के द्वारा भी वैसा ही सुन्दर लगता था, क्योंकि भौरों की पङ्क्तियों से मण्डित ही कमल सुन्दर नहीं लगता हैं वह सेवार के द्वारा घिरे रहने पर भी वैसा ही मनोहर लगता है।

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम्।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रसनागुणास्पदम्॥१०॥

अन्वयः—सा व्रताय प्रतिक्षणं कृतरोमविक्रियां त्रिगुणां यां मौञ्जीं बभार तत्पूर्वनिबद्धया तया अस्याः रसनागुणास्पदं सरागम् अकारि।

संजी०—प्रतीति। सा देवी प्रतिक्षणं क्षणे क्षणे कृतरोमविक्रियां पारुष्यात् कृतरोमाञ्चां त्रिगुणां त्रिरावृत्तां यां मौञ्जीं मुञ्जमयीं मेखलां व्रताय तपसे बभार। तदेव पूर्वं प्रथमं यस्य तत्पूर्वं यथा तथा निबद्धया तया मौञ्ज्यास्या देव्या रसनागुणस्यास्पदं स्थानं जघनम्। सह रागेण सरागं सलोहितमकारि कृतम्। सौकुमार्यातिशयादिति भावः॥१०॥

हिन्दी—उसने व्रत के लिए प्रतिक्षण रोमाञ्च कर देने वाली तीन लड़ो वाली जिस मौञ्जी मेखला को धारण किया उसने उसी समय पहले बाँधे जाने के कारण उस कोमल कटि स्थान को ललाई से युक्त कर दिया।

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः॥११॥

अन्वयः—तया विसृष्टरागात् अधरात् स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् च निवर्तितः करः कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः अक्षसूत्रप्रणयीकृतः।

संजी०—विसृष्टेति॥ तया देव्या विसृष्टरागात्त्यक्तलाक्षारसरञ्जनादधरादधरोष्ठान्निवर्तितः। 'निसृष्टरागात्' इति पाठे नितरां त्यक्तलाक्षा-

रागात् । रागत्यागेन निष्प्रयोजनत्वादिति भावः । तथा स्तनाङ्गरागेणारुणितादरुणीकृतात् । पतनसमये तस्य स्तनयोरुपरोधादिति भावः । कन्दुकाच्च निर्वर्तितः । कुशाङ्कुराणामादानेन लवनेन परिक्षता व्रणिता अङ्गुलयो यस्य स तथोक्तः करः पाणिरक्षसूत्रप्रणय्यक्षमालासहचरः कृतः ॥११॥

हिन्दी--यही गौरी पहले अपने जिन हाथों से अधरों को रंगती थी, स्तनों को रंगती थी और गेंद खेलती थी उसने इन क्रियाओं से अपने हाथ को रोक कर कुश के अङ्कुर लाने के कारण अपनी अङ्गुलियों को क्षत-विक्षत कर लिया और अक्षसूत्र (रुद्राक्ष) की कठोर माला भी उसी से धारण कर ली ।

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥१२॥

अन्वयः--या महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि दूयते स्म । सा बाहुलतोपधायिनी केवलं स्थण्डिले एव अशेत निषेदुषी च ।

संजी०--महार्हेति ॥ महानर्हो मूल्यं यस्याः सा महार्हा श्रेष्ठा या शय्या तस्यां परिवर्तनेन लुण्ठनेन च्युतैर्भ्रष्टैः स्वकेशपुष्पैरपि या देवी दूयते स्म क्लिश्यते स्म । पुष्पाधिकसौकुमार्यादिति भावः । सा देवी बाहुलतामुपधत्त उपधानीकरोतीति बाहुलतोपधायिनी सती केवले संस्तरणरहिते स्थण्डिले भूमावेवाशेत शयितवती । तथा निषेदुष्युपविष्टा च । 'क्वसुश्च' इति क्वसुः । 'उगितश्च' इति ङीप् । भूमावेव शयनादिव्यवहारो न जातूपरीत्यर्थः ॥१२॥

हिन्दी—जो गौरी सुसज्जित अमूल्य पलङ्गों पर करवटें बदलने के कारण अपने केश से गिरे हुये कोमल पुष्पों से भी पीड़ा का अनुभव करती थी, वही इस समय इस भयंकर वन में बिना किसी विस्तरे के केवल जमीन पर अपनी बाहुलता की तकिया बनाकर सोती थी और उस कठोर भूमि पर यों ही बैठती थी ।

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ॥१३॥

अन्वयः—नियमस्थया तया विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं च इति द्वयं तन्वीषु लतासु हरिणाङ्गनासु च इति द्वयेऽपि पुनः ग्रहीतुम् निक्षेपः अर्पितम् इव ।

संजी०-पुनरिति ॥ नियमस्थया व्रतस्थया तया देव्या द्वयेऽपि द्वयं पुनर्ग्रहीतुं पुनरानेतुं निक्षेपोऽर्पितमिव निक्षेपत्वेनार्पितं किमु । क्वचित् 'द्वयीषु' इति प्रामादिकः पाठः । कुत्र द्वये किं द्वयमर्पितमित्याह -तन्वीषु लतासु विलास एव चेष्टितं विलासचेष्टितं हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं चञ्चलावलोकितं च । व्रतस्थायां तस्यां तयोरदर्शनाल्लतादिषु दर्शनाच्चार्पितमिवेत्युत्प्रेक्षा न तु वस्तुतोऽर्पणमस्तीति भावः ॥१३॥

हिन्दी--व्रत धारण करने वाली उस गौरी ने अपने हाव-भाव तथा चञ्चल-दृष्टियों से देखना —इन दोनों को सूक्ष्म लताओं और हरिणियों, इन दोनों को रखी गई धरोहर के रूप में फिर लेने के लिये अर्पित किया। अर्थात् उसके शृङ्गारजन्य हाव-भाव तथा कटाक्षनिक्षेप समाप्त हो गये।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥

अन्वयः—अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत् गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति।

संजी०--अतन्द्रितेति॥ सा देवी स्वयमेवातन्द्रितासंजाततन्द्रा सती। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः वृक्षकान्स्वल्पवृक्षान्। 'अल्पे' इत्यल्पार्थे कप्रत्ययः। घटावेव स्तनौ तयोः प्रस्रवणैः प्रसूतपयोभिर्व्यवर्धयत्। गुहः कुमारोऽपि प्रथमाप्तजन्मनां प्रथमलब्धजन्मनाम्। अग्रजातानामित्यर्थः। येषां वृक्षकाणां संबन्धि पुत्रवात्सल्यं सुतप्रेम नापाकरिष्यति। उत्तरत्र कुमारोदयेऽपि न तेषु पुत्रवात्सल्यं निवर्तिष्यत इत्यर्थः ॥१४॥

हिन्दी--आलस्यरहित उस पार्वती ने स्वयमेव उन छोटे-छोटे वृक्षों को स्तन जैसे घड़ों के जल से सींच-सींच कर बढ़ाया था। अपने से प्रथम पैदा होने वाले इन वृक्षों के वात्सल्य को बाद में पैदा होने वाले कार्तिकेय जी भी नहीं कम कर सकेंगे। अर्थात् बाद में कार्त्तिकेय का जन्म होगा तब भी इन पौधों के प्रति पार्वती का वात्सल्य कम न होकर वैसा ही रहेगा।

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥१५॥

अन्वयः--अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणाः तस्यां तथा विशश्वसुः यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः (स्व) लोचने सखीनां पुरः अमिमीत।

संजी०--अरण्येति॥ अरण्यबीजानां नीवारादीनामञ्जलयस्तेषां दानेन लालिता हरिणाश्च तस्यां देव्यां तथा विशश्वसुर्विस्रम्भं जग्मुः। 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः। यथा कुतूहलादौत्सुक्यात्तदीयैर्हरिणसंबन्धिभिर्नयनैर्नेत्रैः करणैः। स्वकीये लोचने सखीनां पुरः पुरतः। अनेन तेषां संबन्धसहत्वमुक्तम्। अमिमीत। अक्षिपरिमाणतारतम्यज्ञानाय मानं चकारेत्यर्थः। केचित्तु सा पार्वती तदीयैर्नेत्रैः कुतूहलात्पुरोऽग्रे वर्तमानानां सखीनां लोचने अमिमीत व्रतस्थत्वान्नात्मन इत्याहुः। 'माङ्माने' इत्यस्माद्धातोर्लङ्। इयमेव खलु विश्वासस्य पराकाष्ठा यदक्षिपीडनेऽपि न क्षुभ्यन्तीति भावः ॥१५॥

हिन्दी--पार्वती के जङ्गली अन्न (नीवारादि) के अञ्जलि-दान से पालित

मृग उसमें इतना विश्वास करने लग गये थे कि सखियों के सामने ही पार्वती उन्हें पकड़ कर उनकी आँखों से अपनी आँखों को मापती थी। विश्वास की पराकाष्ठा है कि वह जब हरिणों की आँखों को पकड़ती थी तो वे भी नहीं घबड़ाते थे।

तपः प्रभावमाह—

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥१६॥

अन्वयः—कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनीं ताम् दिदृक्षवः ऋषय अभ्युपागमन्। (यतः) धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते।

संजी०—कृतेति। कृताभिषेका कृतस्नानां हुतजातवेदसं हुताग्निकाम्। कृतहोमामित्यर्थः। त्वचा वल्कलेनोत्तरासङ्गवतीमुत्तरीयवतीं त्वगुतरासङ्गवतीम्। अधीतमस्या अस्तीत्यधीतिनीं स्तुतिपाठादि कुर्वतीम्। 'इष्टादिभ्यश्च' इतीनिप्रत्ययः। तां देवीं दिदृक्षवो द्रष्टुमिच्छव ऋषयो मुनयोऽभ्युपागमन्समुपागताः। न चात्र कनिष्ठसेवादोष इत्याह—धर्मवृद्धेषु वयो न समीक्ष्यते न प्रमाणीक्रियते। सति धर्मज्यैष्ठ्ये वयोज्यैष्ठ्यं न प्रयोजकमित्यर्थः। तथा च मनुः—'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वा युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥' इति ॥१६॥

हिन्दी—नित्य नियमपूर्वक स्नान करनेवाली, अग्नि में हवन करनेवाली तथा बल्कल का उत्तरीय धारण करने वाली एवं स्तुतिपाठ करने वाली पार्वती को देखने के लिये ऋषि-मुनि भी आने लगे। क्योंकि धर्मवृद्धों के विषय में अवस्था का विचार नहीं किया जाता।

विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि।
नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ॥१७॥

अन्वयः—विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्ट प्रसवार्चितातिथि नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं तत् तपोवनं पावनं बभूव।

संजी०—विरोधीति॥ विरोधिभिः सत्त्वैर्गोव्याघ्रादिभिरुज्झितपूर्वमत्सरं त्यक्तपूर्ववैरम्। हिंसारहितमित्यर्थः। द्रुमैरभीष्टप्रसवेनेष्टफलेनार्चिताः पूजिता अतिथयो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। नवानामुटजानां पर्णशालानामभ्यन्तरेषु संभृताः संचिता अनला अग्नयो यस्मिंस्तत्तथोक्तं तच्च तपोवनम्। पावयतीति पावनं बभूव। अहिंसातिथिसत्काराग्निपरिचर्याभिर्जगत्पावनं बभूवेत्यर्थः ॥१७॥

हिन्दी—उस तपोवन में परस्पर वैर रखने वाले प्राणियों ने अपना प्राचीन वैर भाव छोड़ दिया, वृक्ष मनोवाञ्छित फलफूलों के द्वारा अतिथियों का स्वागत

करने लगे, नई पर्णकुटी में अग्नि सञ्चित रहने लगी--ऐसा वह तपोवन पवित्र हो गया।

यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे ॥१८॥

अन्वयः—सा यदा तावता पूर्वतपः समाधिना कांक्षितं फलं लभ्यं न अमंस्ततदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुं प्रचक्रमे।

संजी०—यदेति ॥ सा देवी यदा यस्मिन्काले तावता तावत्प्रमाणेन पूर्वतपःसमाधिना पूर्वेणानुष्ठीयमानप्रकारेण तपोनियमेन काङ्क्षितं फलं लभ्यं लब्धुं शक्यं नामंस्त। अशक्यममंस्तेत्यर्थः। तदा तत्काले। अविलम्बेनेत्यर्थः। स्वशरीरस्य मार्दवं मृदुत्वं सौकुमार्यमनपेक्ष्याविगणय्य महद् दुश्चरं तपश्चरितुं साधयितुं प्रचक्रम उपचक्रमे ॥१८॥

हिन्दी—पार्वती ने जब अपने उतनी अनुष्ठान विधि से मनोवाञ्छित फल को लभ्य नहीं समझा तब अपने शरीर की कोमलता पर ध्यान दिये विना और भी कठोर व्रत करना प्रारम्भ किया।

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥१९॥

अन्वयः— या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत। ध्रुवं (तस्याः) वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च आसीत्।

संजी०—क्लममिति ॥ या देवी कन्दुकलीलया कन्दुकक्रीडयापि क्लमं ययौ ग्लानिं प्राप तया देव्या मुनीनां चरितं तीव्रं तपो व्यगाह्यत प्रविष्टम्। अत्रोत्प्रेक्षते--ध्रुवमस्या वपुः काञ्चनपद्मेन सुवर्णकमलेन निर्मितं घटितम्। अत एव प्रकृत्या पद्मस्वभावेन मृदु च सुकुमारमपि काञ्चनस्वभावेन ससारं च कठिनमेव। तथा च तदुपादानकत्वाद्देव्या वपुषः सुकुमारस्यापि तीव्रतपःक्षमत्वमित्युत्प्रेक्षार्थः ॥१९॥

हिन्दी--जो पार्वती पहले गेंद खेलने में परिश्रान्त हो जाती थीं उसी ने अब मुनियों के जैसा आचरण प्रारम्भ किया। निश्चय ही उसका शरीर स्वर्ण कमलघटित था जो स्वभाव से तो अत्यन्त मृदु था पर (तप जैसा क्लेश सहन करने के लिये) दृढ़ भी।

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥

अन्वयः—शुचौ शुचिस्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्यगता नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सवितारम् ऐक्षत।

संजी०-शुचाविति ॥ शुचौ ग्रीष्मे शुचिस्मिता विशदमन्दहासा सुमध्यमा पार्वती ज्वलतां दीप्तिमतां चतुर्णां हविर्भुजामग्नीनां मध्यगता सती। नेत्रे प्रतिहन्तीति तां नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां सावित्रं तेजो विजित्य न विद्यतेऽन्यत्र दृष्टिर्यस्याः सानन्यदृष्टिः सती सवितारं सूर्यमैक्षत ददर्श। 'ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः' इति स्मरणात्। पञ्चाग्निमध्ये तपश्चचारेत्यर्थः। तत्र सवितैव पञ्चमोऽग्निः—'अग्निः सविता सवितैवाग्निः' इति श्रौतलिङ्गात् ॥२०॥

हिन्दी—ग्रीष्म काल में मन्दहास करने वाली सुमध्यमा वह पार्वती अपने चारों ओर अग्नि जला कर उसके बीच में बैठ कर नेत्रों को चकाचौंध उत्पन्न करने वाली प्रभा को भी जीत कर एकटक सूर्य को देखने लगी।

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः शनैः शनैः श्यामिकया कृतं पदम् ॥२१॥

अन्वयः—सवितुः गभस्तिभिः तथा अतितप्तं तदीयं मुखं कमलश्रियं दधौ श्यामिकया केवलम् अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः शनैः शनैः पदं कृतम्।

संजी०—तथेति ॥ सवितुः सूर्यस्य गभस्तिभिः किरणैस्तथा पूर्वोक्तप्रकारेणातितप्तं संतप्तं तस्या इदं तदीयं मुखं कमलश्रियं कमलस्य शोभां दधौ प्राप। यथा रवितापात्कमलं न म्लायति प्रत्युत विकसति तथा तदीयं मुखमासीदिति भावः। किन्त्वस्य मुखस्य दीर्घयोरपाङ्गयोः केवलं नेत्रान्तयोरेव शनैर्मन्दंमन्दं श्यामिकया कालिम्ना पदं स्थानं कृतम्। तयोः सौकुमार्यादित्यर्थः ॥२१॥

हिन्दी—सूर्य की किरणों से उस प्रकार संतप्त होने पर भी उनका मुख मलिन न हो कर कमल के समान खिल उठा, उधर कालिमा ने उनके विशाल दोनों कटाक्षों पर धीरे-धीरे अपना स्थान बना लिया।

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्त साधनः ॥२२॥

अन्वयः—अयाचितोपस्थितम् केवलम् अम्बु रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मयः च तस्याः पारणाविधिः बभूव किल। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्त साधनः न बभूव।

संजी०—अयाचितेति ॥ अयाचितोपस्थितमप्रार्थितोपनतं केवलमम्बूदकं रसात्मकस्यामृतमयस्योडूनां नक्षत्राणां पतिश्चन्द्रस्तस्य रश्मयश्च तस्याः पार्वत्याः पारणाविधिरभ्यवहारकर्म बभूव। तावन्मात्रसाधनकोऽभूदित्यर्थः।

साध्यसाधनयोरभेदेन व्यपदेशः साधनान्तरव्यावृत्त्यर्थः। किलेति प्रसिद्धौ। वृक्षाणां या वृत्तिर्जीवनोपायस्तद्व्यतिरिक्तं साधनमुपायो यस्य स तथोक्तः पारणाविधिर्न बभूव। वृक्षोऽप्ययाचितोपस्थितेन मेघोदकेनेन्दुकिरणैश्च जीवतीति प्रसिद्धम्। अम्बिकापि तावन्मात्रमवालम्बतेत्यर्थः ॥२२॥

हिन्दी—विना माँगे प्राप्त केवल जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणें, ये ही उसके भोजन तथा पेय हुए। वृक्षों की जिस प्रकार जीविका का साधन मेघजल और चन्द्रमा की किरणें होती है उसी प्रकार उसके भी जीविका के साधन यही दो हुए, अन्य नहीं।

निकामतप्ता विविधेन वह्निना नभश्चरेणेन्धनसंभृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम् ॥२३॥

अन्वयः—विविधेन नभश्चरेण इन्धनसंभृतेन च वह्निना निकामतप्ता सा तपात्यये नवैः वारिभिः उक्षिता (सती) भुवा सह ऊर्ध्वगम् उष्माणम् अमुञ्चत।

संजी॰—निकामेति। विविधेन पञ्चविधेनेत्यर्थः। नभश्चरेण खेचरेण। आदित्यरूपेणेत्यर्थः। इन्धनसंभृतेन काष्ठसमिद्धेन वह्निना निकाममत्यन्तं तप्ता साम्बिका तपात्यये ग्रीष्मान्ते। प्रावृषीत्यर्थः। नवैर्वारिभिरुक्षिता सिक्ता सती भुवा पञ्चाग्नितप्तया सहोर्ध्वगमूर्ध्वप्रसृतमूष्माणं बाष्पममुञ्चत्। 'ग्रीष्मोष्मबाष्पमूष्माणम्' इति यादवः ॥२३॥

हिन्दी—नाना प्रकार की आकाशीय तथा काष्ठादि से जलने वाली अग्नियों के द्वारा अत्यन्त तपाई गई वह पार्वती ग्रीष्म के अन्तिम समय में नई वर्षा के बौछारों से अभिषिक्त हो कर पृथ्वी के साथ ही गरम-गरम वाष्प छोड़ने लगी।

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥२४॥

अन्वयः—प्रथमोदबिन्दवः क्षणं तस्याः पक्ष्मसु स्थिताः। ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः वलीषु स्खलिताः नाभिं चिरेण प्रपेदिरे।

संजी॰—स्थिता इति ॥ उदकस्य बिन्दव उदबिन्दवः। 'मन्थौदन–' इत्यादिनोदकशब्दस्योदादेशः। प्रथम उदबिन्दवः। प्रथमविशेषणाद् बिन्दूनां विरलत्वं बहुवचनान्नातिविरलत्वं च गम्यते। तथा च चिरत्वनाभ्यन्तर-गमनयोर्निर्वाहः। तस्याः पार्वत्याः पक्ष्मसु नेत्रलोमसु क्षणं स्थिताः स्थितिं गताः। स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणां सान्द्रत्वं क्षणमिति स्नैग्ध्यं च गम्यते। अनन्तरं ताडितो व्यथितोऽधर ओष्ठो यैस्तैस्तथोक्तैः। एतेनाधरस्य मार्दवं गम्यते। ततः पयोधरयोः स्तनयोरुत्सेध उपरिभागे निपातेन पतनेन चूर्णिता जर्जरिता कुचकाठिन्यादिति भावः। तदनु वलीषूदररेखासु स्खलिताः।

निम्नोन्नत्वादिति भावः। इत्थं चिरेण न तु शीघ्रम्। प्रतिबन्धबाहुल्यादिति भावः। नाभिं प्रपेदिरे प्रविष्टा न तु निर्जग्मुः। एतेन नाभेर्गाम्भीर्यं गम्यते। अत्र प्रतिपदमर्थवत्त्वात्परिकरालंकारः ॥२४॥

हिन्दी—वर्षाकाल के वे प्रथम जलविन्दु उसके पलकों पर क्षणभर के लिए रुक जाते थे। फिर वहाँ से नीचे गिर कर अधरों को पीड़ित कर कठोर स्तनों के ऊपरी भाग पर गिर कर चूर-चूर हो जाते थे (छितरा जाते थे)। वहाँ से त्रिवली की ऊँची-नीची रेखाओं में फिसलते हुई नाभि तक बहुत देर में पहुँचते थे।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥२५॥

अन्वयः—निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनीं शिलाशयां तां महातपः साक्ष्ये स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः उन्मिषितैः व्यलोकयन् इव।

संजी०—शिलाशयामिति। निरन्तरासु नीरन्ध्रास्वन्तरे मध्ये वातो यासां तादृश्यो या वृष्टयस्तास्वन्तरवातवृष्टिषु। न निकेते गृहे वसतीत्यनिकेतवासिनीम्। अनावृतदेशवासिनीमित्यर्थः। शिलायां शेत इति शिलाशयां शिलातलशायिनीम्। 'अधिकरणे शेतेः' इत्यच्प्रत्ययः। तां पार्वतीं 'साक्षाद्द्रष्टा साक्षी।' 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इतीनिप्रत्ययः। तस्य कर्म साक्ष्यं महातपसः साक्ष्ये स्थिताः क्षपास्तडिन्मयैर्विद्युद्रूपैरुन्मिषितैरवलोकनैर्व्यलोकयन्निव। इवेति चक्षुषा विलोकनमेवोत्प्रेक्ष्यते। साक्ष्यं तु 'आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥' इति प्रमाणसिद्धत्वान्नोत्प्रेक्ष्यमित्यनुसंधेयम् ॥२५॥

हिन्दी—अनवरत अपने भीतर हवा के झकोरों को लेकर होने वाली वर्षा में बिना घर के रहनेवाली तथा शिला के ऊपर सोने वाली उस पार्वती की तपस्या देखने के लिए साक्षी रूप में उपस्थित रात्रियाँ मानो बिजली रूप अपने नेत्रों से उसे देख रही हों।

एवं वर्षासु विहितं तपःप्रकारमुक्त्वा सम्प्रति हेमन्ते तपश्चरणप्रकारमाह—

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ॥२६॥

अन्वयः—सा अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्य रात्रिः उदवासतत्परा परस्पराक्रन्दिनि पुरः वियुक्ते चक्रवाकयोः मिथुने कृपावती निनाय।

संजी०—निनायेति । सा पार्वती । उत्किरन्ति क्षिपन्तीत्युत्किराः । 'इगुपधज्ञा' -इत्यादिना कः । अत्यन्तं हिमानामुत्किरा अनिला यासु ताः सहस्यरात्रीः पौषरात्रीः । 'पौषे तैषसहस्यौ द्वौ' इत्यमरः । उदके वास उद्-वासः 'पेषंवासवाहनधिषु च' इत्युदादेशः । उदवासे तत्परा आसक्ता तथा परस्परमाक्रन्दित्यन्योन्यमाक्रोशिनि पुरोऽग्रे वियुक्ते विरहिणि । वियोगं प्राप्त इति यावत् । चक्रवाकी च चक्रवाकश्च चक्रवाकौ तयोश्चक्रवाकयोर्मिथुने द्वन्द्वे कृपावती सती निनाय । दुःखिषु कृपालुत्वं महतां स्वभाव इति चक्रवाकमिथुने कृपा न तु कामितयेति वाच्यानवकाशः । 'अप्सु वासस्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयेत्तपः' इति मनुः ॥२६॥

हिन्दी--वह पार्वती अत्यन्त बर्फीली हवा वाली ठंढी पौष मास की रातों को शीतल जल में खड़ी रह कर बिताती थी, उसी समय वियुक्त मिलने के लिए परस्पर रट लगाने वाले चक्रवाकों के मिथुनों पर भी वह अपनी दया प्रकट करती थी ।

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्त्रशोभिना ।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदां सरोजसंधानमिवाकरोदपाम् ॥२७॥

अन्वयः--सा निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतसंपदाम् अपां सरोजसन्धानम् अकरोत् इव ।

संजी०--मुखेनेति । सा पार्वती निशि रात्रौ पद्मवत्सुगन्धिना सुरभिणा । 'गन्धस्येत्-' इत्यादिनेकारः । प्रवेपमानः कम्पमानोऽधर ओष्ठ एव पत्त्रं दलं तेन शोभत इति तथोक्तेन मुखेन तुषारवृष्ट्या तुहिनवर्षेण क्षता नाशिताः पद्मसंपदो यासां तासामपां सरोजसंधानं पद्मसंघट्टनमकरोदिव । इत्युत्प्रेक्षालंकारः । पद्मान्तरं तुहिनेनोपहन्यते तन्मुखपद्मं तु न तथेति व्यतिरेकालंकारो व्यज्यत इत्युभयोः संकरः ॥२७॥

हिन्दी--वह पार्वती रात्रि के समय कमल के समान सुगन्धित तथा कम्पायमान अधरपत्रों से सुशोभित अपने मुख द्वारा पाला पड़ने के कारण विनष्ट कमल संपत्ति वाले जल के लिए मानो कमलों की श्रेणी रच रही थी ।

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥२८॥

अन्वयः--स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता तपसः परा काष्ठा हि । तया पुनः तदपि अपाकीर्णम । अतः प्रियंवदां तां पुराविदः अपर्णा इति वदन्ति ।

संजी०—स्वयमिति। स्वयं विशीर्णानि स्वतश्च्युतानि द्रुमपर्णान्येव वृत्तिर्जीवनं यस्य तस्य भावस्तत्ता तपसः परा काष्ठा परमुत्कर्षो हि। 'काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि' इत्यमरः। तया देव्या पुनस्तत्पर्णवर्तनमप्यपाकीर्णमपाकृतम्। अतः पर्णापाकरणाद्धेतोः। प्रियं वदतीति प्रियंवदा। 'प्रियवशे वदः खच्' इति खचप्रत्ययः। 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः। तां पार्वतीं पुराविदः पुराणज्ञास्तपःकरणसमयेऽविद्यमानं पर्णभक्षणं यस्याः सापर्णेति वदन्ति। नामान्तरसमुच्चयार्थश्चकारः। अत्र 'अपर्णाम्' इत्यपपाठः इति शब्दाभिहिते द्वितीयानुपपत्तेः। यथाह वामनः-'निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः परिगणनस्य प्रायिकत्वात्' इति। स्वयं प्रियंवदाः परेषामपि प्रियवादभाजनानि भवन्तीति भावः ॥२८॥

हिन्दी—अपने आप वृक्षों से गिरे हुए पत्तों द्वारा जीवन निर्वाह करना तप का चरमोत्कर्ष कहा जाता हैं। पर पार्वती ने उन पत्तों को भी खाना छोड़ दिया। इसी कारण पुराविद् पुराणों के जानने वाले लोग उसे अपर्णा ऐसा, कहने लगे।

मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा ॥२९॥

अन्वयः—सा मृणालिकापेलवम् स्वम् अङ्गम् एवमादिभिः व्रतैः अहर्निशं ग्लपयन्तीसा कठिनै शरीरैः उपार्जितम् तपस्विनां तपः दूरम् अधःचकार।

संजी०—मृणालिकेति। मृणालिकापेलवं पद्मिनीकन्दकोमलं स्वं स्वकीयमङ्गं शरीमेवमुक्तप्रकारतोयाग्निमध्यवासव्रतमादिर्येषां तैर्व्रतैरहश्च निशा चाहर्निशम्। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः, अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। ग्लपयन्ती कर्शयन्ती सा पार्वती कठिनैः क्लेशसहैरित्यर्थः। शरीरैरुपार्जितं संपादितं तपस्विनामृषीणां तपो दूरमत्यन्तमधश्चकार तिरश्चकार। अतिशिश्य इत्यर्थः। तपस्विभिरप्येवं तपः कर्तुं न शक्यत इति तात्पर्यार्थः ॥२९॥

हिन्दी—उसने कमलिनी के समान अपने कोमल अङ्गों को उपर्युक्त प्रकार के अनेक व्रतों द्वारा दिन-रात क्लेश सहन कर कृश बना दिया और अपने कठिन शरीर से उपार्जित बड़े-बड़े तपस्वियों के भी तप को बहुत दूर नीचे ढकेल दिया। (अर्थात् वह घोर तपस्या करने लगी)।

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥३०॥

अन्वयः—अथ अजिनाषाढधरः प्रगल्भवान् ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलन् इव कश्चित् जटिलः शरीरबद्धः प्रथमाश्रमः यथा तपोवनं विवेश।

संजी०--अथेति । अथानन्तरमजिनं कृष्णमृगत्वक् । आषाढः प्रयोजनमस्येत्याषाढः पालाशदण्डः । 'पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यमरः। 'विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः' इत्यण्प्रत्ययः । तयोर्धरस्तथोक्तः प्रगल्भवाक्प्रौढवचनो ब्रह्ममयेन वैदिकेन तेजसा । ब्रह्मवर्चसेनेत्यर्थः । ज्वलन्निव स्थितः । इवशब्दो निर्धारणार्थः । कश्चिदनिर्दिष्टो जटिलो जटावान् । ब्रह्मचारीति शेषः । पिच्छादित्वादिलच्प्रत्ययः । शरीरबद्धो बद्धशरीरः । शरीरवानित्यर्थः । वाहिताग्न्यादिषु पाठात्साधुः । प्रथमाश्रमो यथा ब्रह्मचर्याश्रम इव । यथाशब्द इवार्थे । तपोवनम् । देव्या इति शेषः । विवेश प्रविष्टवान् ॥३०॥

हिन्दी—पार्वती के इतने कठोर तप करने के अनन्तर कृष्णमृग चर्म एवं पालाशदण्डधारी तथा बोलने में निपुण अपने ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान की तरह किसी जटाधारी ब्रह्मचारी ने शरीरवान् ब्रह्मचर्याश्रम के समान उस पार्वती के तपोवन में प्रवेश किया ।

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥

अन्वयः—आतिथेयी पार्वती तं बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय । साम्ये निविष्टचेतसाम् अपि वपुर्विशेषेषु अतिगौरवाः क्रियाः भवन्ति ।

संजी०—तमिति । अतिथिषु साध्व्यातिथेयी । 'पथ्यतिथी'–त्यादिना ढञ्प्रत्ययः । 'टिड्ढाणञ्'--त्यादिना ङीप् । पार्वती तं ब्रह्मचारिणं बहुमानपूर्वया । बहुमानः पूर्वो यस्यास्तया । गौरवपूर्वयेत्यर्थः । सपर्ययार्चया 'सपर्यार्चार्हणाः समा' इत्यमरः । प्रत्युदियाय प्रत्युज्जगाम । कथं समानेऽपि तस्यास्तादृशी प्रतिपत्तिरत आह—साम्ये सत्यपि निविष्टचेतसां स्थिरचित्तानां वपुर्विशेषेषु व्यक्तिविशेषेष्वतिशयितं गौरवं यासु ता अतिगौरवा अतिगौरवसहिताः क्रियाश्चेष्टा भवन्ति । प्रवर्तन्त इत्यर्थः । साधवो न साम्याभिनिवेशिन इति भावः ॥ ३१ ॥

हिन्दी—अतिथिसत्कार में निपुण उस पार्वती ने अत्यन्त मानसम्मान एवं पूज्यभाव से युक्त होकर उसका स्वागत किया । क्योंकि साम्य में निविष्ट चित्त वाले होने पर भी सज्जन लोगों की व्यक्ति विशेष में अतिशय गौरवमयी चेष्टायें होती है ।

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥३२॥

अन्वयः--स विधि प्रयुक्तां सत्क्रियां परिगृह्य क्षणं परिश्रमं विनीय च नाम उमां ऋजुना एवं चक्षुषा पश्यन् अनुज्झितक्रमः सन् वक्तुं प्रचक्रमे ।

संजी०—विधीति । स ब्रह्मचारी विधिना प्रयुक्तामनुष्ठितां सत्क्रियां पूजां परिगृह्य स्वीकृत्य क्षणं परिश्रमं च विश्रामं च विनीयनाम । नामेत्यपरमार्थे । अथोमामृजुनैव विलासरहितेनैव चक्षुषा पश्यन्ननुज्झितक्रमोऽत्यक्तोचितपरिपाटीकः सन् । वक्तुं प्रचक्रमे प्रारेभे ॥ ३२ ॥

हिन्दी—यथाविधि पार्वती के द्वारा किये गये सत्कार को ग्रहण कर तथा क्षणभर में मार्गजनित खेद को मिटाकर उमा को सरलता (विलासरहित) पूर्वक अपनी आँखों से देखते हुये स्वकीय परिपाटी के अनुसार उस ब्रह्मचारी ने कहना प्रारम्भ किया ।

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥३३॥

अन्वयः--अपि क्रियार्थं समित्कुशं सुलभम् ? अपि जलानि ते स्नानविधिक्षमाणि अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे ? खलु शरीरम् आद्यम् धर्मसाधनम् अस्ति ।

संजी०--अपीति । अत्रापिशब्दः प्रश्ने । क्रियार्थं होमादिकर्मानुष्ठानार्थम् । समिधश्च कुशाश्च समित्कुशम् । 'जातिरप्राणिनाम्' इति द्वन्द्वैकवद्भावः । सुलभमपि सुलभं कच्चित् । जलानि ते तव स्नानविधिक्षमाणि स्नानक्रियायोग्यान्यपि कच्चित् । किञ्च स्वशक्त्या निजसामर्थ्यानुसारेण तपसि प्रवर्तसेऽपि । देहमपीडयित्वा तपश्चरसि कच्चिदित्यर्थः । युक्तं च नामैतत् । खलु यस्माच्छरीरमाद्यं धर्मसाधनम् । धर्मस्तु कायेन वाचा बुद्ध्या धनादिना च बहुभिः साध्यते तेषु च वपुरेव मुख्यं साधनम् । सति देहे धर्मार्थकाममोक्षलक्षणाश्चतुर्वर्गाः साध्यन्ते । अतएव 'सततमात्मानमेव गोपयीत' इति श्रुतिः ॥ ३३ ॥

हिन्दी--हवनादि करने के लिये समिधायें एवं कुश समूह तो तुम्हें सुलभ हैं न ? तुम्हारे स्नानविधि के लिये योग्य जल तो मिल जाता है न ? अपनी शक्ति के अनुसार ही तो तप में प्रवृत्त हो न ? क्योंकि शरीर ही धार्मिक कार्यों का प्रथम साधन है।

अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम् ।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा ॥३४॥

अन्वयः--अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतम् आसां वीरुधां प्रवालम् अनुबन्धि यत् चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते दन्तवाससा तुलाम् आरोहति ।

संजी०--अपीति। त्वयावर्जितेन सिक्तेन वारिणा संभृतं जनितमासां वीरुधां लतानां प्रवालं पल्लवमनुबन्ध्यप्यनुस्यूतं किम्। यत्प्रवालं चिरोज्झितशिवरकालत्यक्तो लाक्षारागो येन तत्तथापि पाटलम्। स्वभावरक्तमित्यर्थः। तेन चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तव दन्तवाससाधरेण। 'ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी' इत्यमरः। तुलां साम्यमारोहति। गच्छतीत्यर्थः। अत्र तुलाशब्दस्य सादृश्यवाचित्वात्तद्योगेऽपि 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यामि'----ति न तृतीयाप्रतिषेधस्तत्र सूत्रे सदृशवाचिन एव ग्रहणादिति ॥ ३४ ॥

हिन्दी--तुम्हारे द्वारा जल न भरकर सींची हुई इन लताओं में लाल-लाल कोमल ये नये पल्लव तो क्रमशः निकल रहे हैं न ? जो बहुत दिनों से लाक्षारस के रङ्ग से छूटे हुये तुम्हारे अधरों के समान होने वाले हैं।

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः करस्थदर्भप्रणयापहारिषु।
य उत्पलाक्षि! प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥३५॥

अन्वयः--करस्थदर्भप्रणयापहारिषु हरिणेषु ते मनः अपि प्रसन्नम्। उत्पलाक्षि! ये प्रचलैः विलोचनैः तव अक्षि सादृश्यं प्रयुञ्जते इव।

संजी०--अपीति। करस्थान्दर्भान्प्रणयेन स्नेहेनापहरन्तीति ते तथोक्तेषु। सापराधेष्विति भावः। 'करस्थदर्भप्रणयापराधिषु' इति पाठे दर्भाणां प्रणयेन प्रार्थनयापराधिषु हरिणेषु विषये ते मनः प्रसन्नमपि? न क्षुभितं किम्। सापराधेष्वपि न कोपितव्यं तपस्विभिरिति भावः। हे उत्पलाक्षि, ये हरिणाः प्रचलैश्चञ्चलैर्विलोचनैर्नेत्रैस्तवाक्षिसादृश्यं प्रयुञ्जत इवाभिनयन्तीव। प्रसन्नत्वान्मृगनेत्राणि त्वन्नयनैः साम्यमुपयान्तीति भावः। 'उत्पलक्षेपचलैः' इति पाठान्तर 'उत्पलकम्पचलैः'। भावानयने द्रव्यानयनमिति न्यायेन क्षिप्यमाणोत्पलचलैरित्यर्थः ॥ ३५ ॥

हिन्दी--हे कमलनयने! तुम्हारी मुट्ठी में अवस्थित कुशों को प्रेमपूर्वक खींच कर हरण करने वाले उन हरिणों में जो अपने चञ्चल नेत्रों द्वारा तुम्हारे नेत्रों की समता उपस्थित करते होंगे, तुम्हारा मन प्रसन्न तो रहता है न ?

यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने! तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥३६॥

अन्वयः हे पार्वति 'पापवृत्तये रूपं न' इति यदुच्यते तद्वचः अव्यभिचारि। तथा हि (हे) उदारदर्शने! ते शीलं तपस्विनाम् अपि उपदेशतां गतम्।

संजी०----यदिति। हे पार्वति! रूपं सौम्याकृतिः पापवृत्तये पापाचरणाय न भवतीति यदुच्यते। लोकैरिति शेषः। तद्वचो न व्यभिचरति न

स्खलतीत्यव्यभिचारि सत्यम्। 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः' 'न सुरूपाः पापसमाचारा भवन्ति' इत्यादयो लोकवादा न विसंवादमासादयन्तीत्यर्थः। किमिति ज्ञायते--तथाहि। हे उदारदर्शने आयताक्षि! सुरूपे इत्यर्थः। अथवोन्नतज्ञाने। विवेकवतीत्यर्थः। ते तव शीलं सद्वृत्तम्, 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः। तपस्विनामप्युपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशः प्रवर्तकं प्रमाणं तत्तामुपदेशतां गतं प्राप्तम्। मुनयोऽपि, त्वां वीक्ष्य स्ववृत्ते प्रवर्तन्त इति भावः॥ ३६॥

हिन्दी--हे पार्वति! पापाचरण में रूप कारण नहीं होता' ऐसा जो कहा जाता है वह कथन सत्य ही है, क्योंकि हे सुन्दरि, तुम्हारा सद्वृत्त तपस्वियों को भी उपदेश देने वाली योग्यता से युक्त हो गया है।

विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः॥३७॥

अन्वयः--एष महीधरः विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः दिवः च्युतैः गाङ्गैः जलैः तथा न पावितः यथा अनाविलैः त्वदीयैः चरितैः सान्वयः पावितः।

संजी०---विकीर्णेति। एष महीधरो हिमवान्। सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति समासः। विकीर्णैः पर्यस्तैः सप्तर्षीणां सम्बन्धिभिर्बलिभिः पुष्पोपहारैः प्रहसन्ति ये तथोक्तैर्दिवोऽन्तरिक्षाच्च्युतैर्गाङ्गैः सलिलैस्तथा न पावितः। अनाविलैरकलुषैस्त्वदीयैश्चरितैर्यथा सान्वयः सपुत्रपौत्रः पावितः पवित्रीकृतः॥ ३७॥

हिन्दी—यह हिमालय पर्वत सप्तर्षियों द्वारा चढ़ाये गये खिले हुये पुष्पों के प्रकाश से गिरे हुये गङ्गा के पुनीत जल से उतना पवित्र नहीं बना है जितना तुम्हारे आचरणों के द्वारा अपनी संपूर्ण सन्तान-परम्परा सहित पवित्रीकृत है।

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि!।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते॥३८॥

अन्वयः—हे भाविनि, अनेन धर्मः सविशेषम् अद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति। यत् मनोनिर्विषयार्थकामया त्वया एक-एव प्रतिगृह्य सेव्यते।

संजी०---अनेनेति। हे भाविनि प्रशस्ताभिप्राये! अनेन कारणेन धर्मः सविशेषं सातिशयमद्य मे। त्रयाणां धर्मकामार्थानां वर्गस्त्रिवर्गः। 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः इत्यमरः। तत्र सारः श्रेष्ठः प्रतिभाति। यद्यस्मात्कारणान्मनसो निर्विषयावर्थकामौ यस्यास्तया त्वयैको धर्म एव प्रतिगृह्य स्वीकृत्य सेव्यते। यत्त्वयार्थकामौ विहाय धर्म एवावलम्बितः, अतः सर्वेषां नः स श्रेयानिति प्रतिपद्यत इत्यर्थः॥ ३८॥

हिन्दी—हे प्रशस्त अभिप्राय वाली, इस तुम्हारी तपस्या के कारण तो धर्म

ही अतिशय रूप से आज मुझे धर्म, अर्थ और काम — इस त्रिवर्ग में श्रेष्ठ लगता है क्योंकि जिसके हृदय से भोगविलास सम्बन्धी अर्थ और काम निकल गये हैं, ऐसे तुम्हारे द्वारा केवल धर्म ही स्वीकृत होकर पालन किया जा रहा है।

सम्प्रति मनोरथं जिज्ञासुः प्रस्तौति—

प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि।
यतः सतां संनतगात्रि ! संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥३९॥

अन्वयः—आत्मना प्रयुक्तसंस्कारविशेषं मां परं संप्रतिपत्तुं न अर्हसि। हे संनतगात्रि यतः मनीषिभिः सतां संगतं साप्तपदीनम् उच्यते।

संजी०—प्रयुक्तेति। आत्मना त्वया प्रयुक्तः कृतः सत्कारविशेषः पूजातिशयो यस्य तं मां परमन्यं संप्रतिपत्तुमवगन्तुं नार्हसि। हे संनतगात्रि संनताङ्गि ! 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यः' इति वक्तव्यान्ङीप्। यतः कारणान्मनस ईषिभिर्मनीषिभिर्विद्वद्भिः। शकन्ध्वादित्वात्साधुः। सतां संगतं सख्यं सप्तभिः पदैरापद्यत इति साप्तपदीनं सप्तपदोच्चारणसाध्यमुच्यते। तच्चावयोस्त्वत्कृतसत्कारप्रयोगादेव सिद्धमित्यर्थः। 'साप्तपदीनं सख्यम्' इति निपातनात्साधु ॥ ३९ ॥

हिन्दी—अपने से स्वयं मेरा सत्कार करने वाली तुम मुझे दूसरा या पराया मत समझो। हे नताङ्गि ! क्योंकि विद्वान् लोग कहते हैं कि सज्जनों की मित्रता तो केवल सात पदों के उच्चारण से अथवा साथ में सात पग चलने मात्र से हो जाती है।

अतोऽत्र किंचिद्भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने ! न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥४०॥

अन्वयः—हे तपोधने अतः अत्र बहुक्षमां भवतीं द्विजातिभावात् उपपन्नचापलः अयं जनः किञ्चित्प्रष्टुमनाः अस्ति। रहस्यं न चेत् प्रतिवक्तुम् अर्हसि।

संजी०—अत इति। हे तपोधने ! अतः सख्याद्धेतोरत्र प्रस्तावे बहुक्षमाम्। बहूक्तिसहाम्, यद्वा क्षमावतीम्। भवतीं त्वां द्विजातिभावाद् ब्राह्मणत्वादुपपन्नचापलः सुलभधाष्टर्चोऽयं जनः। स्वयमित्यर्थः। किंचित्प्रष्टुं मनो यस्य स किञ्चित्प्रष्टुमनाः प्रष्टुकामः। 'तुं काममनसोरपी' ति मकारलोपः। रहसि भवं रहस्यं गोप्यं न चेत्प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ ४० ॥

हिन्दी—हे तपोधन यतः आप हमारी मित्र हैं अतः बहुक्षमाशील आप से द्विजाति (ब्राह्मण) होने के कारण चञ्चलतायुक्त यह कुछ पूँछना चाह रहा है; उसमें यदि कोई गोपनीय न हो तो आप को उसका उत्तर देना चाहिये।

प्रष्टव्यमाह—

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः ।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद ॥४१॥

अन्वयः—प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः । वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् । अमृग्यम् ऐश्वर्यसुखम् । वयः तपः फलं स्यात् किम् अतः परं वद ।

संजी०—कुल इति । प्रथमस्य वेधसो हिरण्यगर्भस्य कुलेऽन्ववाये प्रसूतिरुत्पत्तिः । 'यज्ञार्थं हि मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः' इति ब्रह्मपुराणवचनात् । वपुः शरीरं त्रयाणां लोकानां सौन्दर्यमिवोदितमेकत्र समाहृतम् ऐश्वर्यसुखं संपत्सुखममृग्यमन्वेषणीयं न भवति । किन्तु सिद्धमेवेत्यर्थः । वयो नवम् । यौवनमित्यर्थः । अतः परमतोऽन्यत्किं तपःफलं स्याद्वद । अस्ति चेदिति शेषः । न किञ्चिदस्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

हिन्दी—प्रथम प्रजापति के उत्तम कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है, आप का शारीरिक सौन्दर्य त्रिलोक में अद्वितीय है । आप को ऐश्वर्य का सुख अन्वेषणीय है नहीं । फिर इससे बढ़कर तप का फल क्या हो सकेगा ? क्या सत्कुल में जन्म, शारीरिक सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य सुख के अतिरिक्त और कुछ भी चाहिये ?

भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा न दृश्यते तच्च कृशोदरि ! त्वयि ॥४२॥

अन्वयः—दुःसहाद् अनिष्टाद् अपि मनस्विनीनाम्, ईदृशी प्रतिपत्तिः भवति नाम । (किंतु) हे कृशोदरि ! विचारमार्गप्रहितेन चेतसा तत् च त्वयि न दृश्यते ।

संजी०—भवतीति ॥ दुःसहात्सोढुमशक्यादनिष्टाद्भर्त्रादिकृतादपि मनस्विनीनां धीरस्त्रीणामीदृशी तपश्चरणलक्षणा प्रतिपत्तिः प्रवृत्तिः । 'प्रतिपत्तिस्तु गौरवे । प्राप्तौ प्रवृत्तौ प्रागल्भ्ये' इति केशवः । भवति नाम । नामेति सम्भावनायाम् । विचारमार्गे प्रहितेन चेतसा चित्तेन तदनिष्टं च । हे कृशोदरि ! त्वयि न दृश्यते । विचार्यमाणे तदपि नास्त्यसम्भावितत्वादित्यर्थः ॥ ४२ ॥

हिन्दी—किसी दुःसह अनिष्ट के भय से भी मनस्विनी स्त्रियों की ऐसी प्रवृत्ति हो सकती हैं पर हे कृशोदरि ! मन में विचार करने पर वह भी तुम में दिखाई नहीं पड़ता । अर्थात् तुम किसी अनिष्ट भय के कारण तप कर रही हो, वह तो प्रतीत भी नहीं होता ।

अनिष्टाभावमेव प्रपञ्चयति—

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रु ! कुतः पितुर्गृहे ।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥४३॥

अन्वयः—हे सुभ्रु ! इयम् आकृतिः अलभ्यशोकाभिभवा: । पितुः गृहे विमानना कुतः । तव पराभिमर्शः न अस्ति । पन्नगरत्नसूचये कः करं प्रसारयेत् ।

संजी०—अलभ्येति । हे सुभ्रु ! इयं त्वदीयाकृतिर्मूर्तिरलभ्यो लब्धुमनर्हः शोकेन भर्त्राद्यवमानजेन दुःखेनाभिभवस्तिरस्कारो यस्याः सा तथोक्ता। दृश्यत इति शेषः । असम्भावितश्चायमर्थ इत्याह–पितुर्गृहे विमाननावमानः कुतः । न सम्भाव्यत एवेत्यर्थः । 'सुभ्रु ! कुतस्तातगृहेऽवमाननम्' इति पाठान्तरकरणं तु साध्वसमेवोक्तोपपत्तिासम्भवात् । अन्यत्रापि 'सुभ्रु ! त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ता कथा योषिताम्' । इत्यादिप्रयोगदर्शनाद्व शस्थवृत्ते पादादौ जगणभङ्गप्रसङ्गाच्चेत्यलं गोष्ठीभिः । न चाप्यन्यस्माद्भावीत्याह—पराभिमर्शः परधर्षणं तु तव नास्ति । पन्नगरत्नसूचये फणिशिरोमणिशलाकां ग्रहीतुमित्यर्थः । 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति चतुर्थी । करं हस्तं कः प्रसारयेत् 'सुभ्रु' इत्यत्र भ्रूशब्दस्योवङ्स्थानीयत्वात् 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' इति नदीसंज्ञाप्रतिषेधात् 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वं नास्ति । तेन ह्रस्वः प्रामादिक इति केचित् । अन्ये तु 'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्' इत्यत्र 'अलाबूः' 'कर्कन्धूः' इत्युकारान्तादप्यूङ्प्रत्ययमुदाजहार भाष्यकारः । एतस्मादेव ज्ञापकात्क्वचिदूकारान्तस्याप्यूङन्तत्वान्नदीत्वे ह्रस्वत्वमित्याहुः । अतएवाह वामनः—'ऊकारादप्यूङ्प्रकृतेः' इति ॥ ४३ ॥

हिन्दी—हे सुन्दर भौंहों वाली ! यह आपकी आकृति पति आदि के द्वारा किये गये अपमान एवं दुःख से होने वाले तिरस्कार का भाजन नहीं हो सकती । पिता के घर में अपमान की बात तो सर्वथा दूर है ही । शत्रु का भी तिरस्कार है ही नहीं क्योंकि सर्प के फणों में रहने वाली मणि को पकड़ने के लिये कौन सा ऐसा व्यक्ति है जो उस पर अपना हाथ बढ़ाने का दुःसाहस भी करे ?

किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥४४॥

अन्वयः—हे गौरि ! किमिति त्वया यौवने आभरणानि अपास्य वार्धकशोभिवल्कलं धृतम् । यदि प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी अरुणाय कल्पते (तर्हि) वद ।

संजी०—किमिति । हे गौरि ! किमिति केन हेतुना यौवने त्वयाभरणान्यपास्य विहाय । वृद्धस्य भावो वार्धकम् । मनोज्ञादित्वाद् वुञ्प्रत्ययः । 'वार्धकं वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि' । इति विश्वः । तत्र शोभत इति वार्धकशोभि वल्कलं धृतम् । प्रदोषे रजनीमुखे स्फुटाः प्रकटाश्चन्द्रस्तारकाश्च

यस्याः सा स्फुटचन्द्रतारका विभावरी रात्रिररुणाय सूर्यसुताय कल्पते यद्यरुणं गन्तुं कल्पते किम्। वद ब्रूहि। 'क्रियार्थोपपदस्ये—' त्यादिना चतुर्थी। दीप्यमानशशाङ्कतारके प्रदोषे यद्यरुण उदेति ततो विभूषणापहारेण तव वल्कलधारणं संघटत इति भावः ॥ ४४ ॥

हिन्दी—हे गौरि! आपने इस यौवनावस्था में सुन्दर आभूषणों को त्याग कर वृद्धावस्था में शोभा देने वाले वल्कल को क्यों धारण किया है? देदीप्यमान चन्द्रमा और तारागणों से सुन्दर दिखाई पड़ने वाली रात्रि क्या कभी प्रभातकालीन अरुणिमा के योग्य बनती है? अर्थात् नहीं।

तप-प्रयोजनं निराकर्तुमाह—

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्॥४५॥

अन्वयः—यदि दिवं प्रार्थयसे (तर्हि) श्रमः वृथा (कुतः) तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः (सन्ति) अथ उपयन्तारं (प्रार्थयसे) (तर्हि) समाधिना अलम्। तथा हि रत्नम् न अन्विष्यति (किन्तु) तत् मृग्यते।

संजी०—दिवमिति॥ दिवं स्वर्गं प्रार्थयसे कामयसे यदि तर्हि श्रमस्तपश्चरणप्रयासो वृथा निष्फलः। यदि स्वर्गार्थं तप्यसे ततः श्रमं मा कार्षीः। कुतः? तव पितुर्हिमवतः प्रदेशा देवभूमयः स्वर्गपदार्थाः तत्रत्या इत्यर्थः। अथोपयन्तारं वरं प्रार्थयसे तर्हि समाधिना तपसालम्। न कर्तव्यमित्यर्थः। निषेध्यस्य निषेधं प्रति करणत्वात्तृतीया। तथाहि रत्नं कर्तृ। नान्विष्यति न मृगयते। ग्रहीतारमिति शेषः। किन्तु तद्रत्नं मृग्यते ग्रहीतृभिरिति शेषः। न हि वरार्थं त्वया तपसि वर्तितव्यं किंतु तेनैव त्वदर्थमिति भावः॥४५॥

हिन्दी—यदि आप स्वर्ग-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करती हैं तब तो आपका यह तप का परिश्रम बेकार है। स्वर्ग तो आपके पिता के प्रदेश हैं और इसके अतिरिक्त यदि आप वर के लिये प्रार्थना करती हो तब तो तपस्या की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि रत्न स्वयम् किसी को ढूँढने नहीं जाता। अपितु अन्य लोग ही उसे ढूँढते फिरते हैं।

वरवाचकाक्षरश्रवणानन्तरमेव देव्या उष्णोच्छ्वासमालक्ष्य प्रश्नेषु च प्रत्युत्तरमनुपलभ्य स्वयमेवाशङ्क्याह—

निवेदितं निश्वसितेन सोष्मणा मनस्तु मे संशयमेव गाहते।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्॥४६॥

अन्वयः—त्वया सोष्मणा निःश्वसितेन निवेदितम् मे मनः तु संशयम् एव गाहते (प्रथमं) ते प्रार्थयितव्य एव न दृश्यते (पुनः) प्रार्थितदुर्लभः कथं भविष्यति।

संजी०—निवेदितमिति। सोष्मणा निश्वसितेन निश्वासवायुना निवेदितम्। चिन्तानुभावेनोष्णोच्छ्वासेन ते वरार्थित्वं सूचितमित्यर्थः। तर्हि किं प्रश्नव्यसनेनेत्याह—मनस्तु तथापि मे संशयमेव गाहते प्राप्नोति। कुतः? ते तव। 'कृत्यानां कर्तरि वा' इति षष्ठी। प्रार्थयितव्यः प्रार्थयितुमर्ह एव न दृश्यते। प्रार्थितदुर्लभः प्रार्थितो यो दुर्लभः स कथं भविष्यति? नास्त्येवेत्यर्थः ॥४६॥

हिन्दी—अथवा अपने उष्ण निःश्वासों के द्वारा (वर ही प्रार्थनीय है) ऐसा निवेदन करने वाला मेरा मन तो फिर भी संशय का अवगाहन करता है (संशयापन्न है) क्योंकि सर्वप्रथम आपका प्रार्थयितव्य ही कोई नहीं दिखाई पड़ता (और कदाचित् मिल भी जाय) तो आपके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वह दुर्लभ कैसे हो जायगा?

अथ पतिप्रार्थनामेव सिद्धवत्कृत्वाह—

अहो! स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः ॥४७॥

अन्वयः—अहो! तव ईप्सितः युवा कः। अपि स्थिरः (वर्तते) यः चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः श्लथलम्बिनीः जटाः उपेक्षते।

संजी०—अहो इति। अहो चित्रम्। तवेप्सित आप्तुमिष्टो युवा कोऽपि स्थिरः कठिनः। वर्तत इति शेषः। कुतः। यो युवा चिराय चिरात्प्रभृति कर्णोत्पलशून्यतां गते प्राप्ते कपोलदेशे गण्डस्थले श्लथाः शिथिलबन्धना अत एव लम्बिन्यस्ताः श्लथलम्बिनीः कलमाः शालिविशेषास्तेषामग्राणि तद्वत्पिङ्गला जटा उपेक्षते यस्त्वामीदृशीं दृष्ट्वा न व्यथते स नूनं वज्रहृदय इत्यर्थः ॥४७॥

हिन्दी—अहो आश्चर्य! यह खेद की बात है कि आपका वाञ्छित वह युवक बहुत कठिन हृदय वाला है जो इतने दिनों से कर्णफूलरहित आपके कपोल प्रान्त पर कलम नामक धान के अग्रभाग के समान पीली शिथिल लटकने वाली लम्बी इन जटाओं की अब तक अवहेलना करता है।

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥४८॥

अन्वयः—मुनिव्रतैः अतिमात्रकर्शिताम् दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदां दिवा शशाङ्कलेखाम् इव त्वां पश्यतः सचेतसः कस्य मनः न दूयते।

संजी०—मुनिव्रतैरिति। मुनिव्रतैश्चान्द्रायणादिभिरतिमात्रमत्यन्तं कर्शितां कृशीकृतां दिवाकरेण सूर्येणाप्लुष्टानि दग्धानि वातातपसंस्पर्शान्मृ-

दुत्वाच्च श्यामीकृतानि विभूषणस्थानानि भूषणस्थानानि यस्यास्तां तथोक्ताम्। अत एव दिवाह्नि शशाङ्करेखामिव स्थितां त्वां पश्यतः सचेतसो जीवतः कस्य पुंसो मनो न दूयते न परितप्यते। अपि तु सर्वस्यैवेत्यर्थः ॥४८॥

हिन्दी—मुनियों के चान्द्रायण आदि व्रतों के करने के कारण अत्यन्त कृश, सूर्य के ताप से जलाये हुए अलङ्कारों के स्थान वाली दिन में चन्द्रलेखा के समान आपके देखते हुए कौन ऐसा सचेतन है जिसका मन पीड़ित नहीं होता। अर्थात् तुम्हें देख कर सभी के मन में कष्ट का अनुभव होता है।

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥४९॥

अन्वय—तव प्रियं सौभाग्यमदेन वञ्चितम् अवैमि। यः आत्मीयं वक्त्रं चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः अस्य चक्षुषः चिरं लक्ष्यं न करोति।

संजी०—अवैमीति। तव प्रियं वल्लभं सौभाग्यमदेन सौन्दर्यगर्वेण कर्त्रा। वञ्चितं विप्रलब्धमवैमि वेद्मि। यः प्रियश्चतुरं मधुरमवलोकत इति चतुरावलोकिनोऽरालपक्ष्मणः कुटिलरोम्णः। 'अरालं वृजिनं जिह्मम्' इत्यमरः। अस्य त्वदीयस्य चक्षुष आत्मीयं वक्त्रं मुखं चिरं लक्ष्यं विषयं न करोति दृष्टिपथं न गच्छतीत्यर्थः। तदयं गर्वेण हतो निष्फलात्मलाभो जात इति भावः ॥४९॥

हिन्दी—आपके उस प्रिय को मैं सौभाग्य के गर्व से वंचित समझता हूँ जो इस प्रकार मनोहर ढंग से देखने वाले तथा टेढ़े भौहों वाले इन आपके नयनों का लक्ष्य अपने मुख को नहीं बनाया अर्थात् उसका मुख तुम्हारी इस दृष्टि से देखा नहीं गया।

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि ! विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥५०॥

अन्वयः—हे गौरि ! कियत् चिरं श्राम्यसि ? पूर्वाश्रमसञ्चितं मम अपि तपः विद्यते। तदर्धभागेन काङ्क्षितं वरं लभस्व। तं च साधु वेदितुम् इच्छामि।

संजी०—कियदिति॥ हे गौरि, कियत्किंप्रमाणकम्। किमवधिकमित्यर्थः। चिरं श्राम्यसि तपस्यसि। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। ममापि पूर्वाश्रमः प्रथमाश्रमो ब्रह्मचर्याश्रमस्तत्र संचितं संपादितं तपो विद्यते अर्धश्चासौ भागश्च तेन तस्य तपसोऽर्धभागेनैकदेशेन काङ्क्षितमिष्टं वरमुपयन्तारं लभस्व। तं वरं साधु सम्यग्वेदितुं ज्ञातुमिच्छामि। यद्यसौ योग्यो भवति तदा ममापि संमतिरिति भावः ॥५०॥

हिन्दी—हे गौरि ! भला तुम कितने दिनों तक (इतना कठिन तप रूप) परिश्रम करोगी ? देखो ब्रह्मचर्याश्रम का संचित मेरा भी कुछ तप है, उसके आधे भाग को मिला कर तुम अपने मनोवाञ्छित वर को प्राप्त कर लो । किन्तु मैं तुम्हारे उस वाञ्छित वर को भली प्रकार जानना चाहता हूँ ।

इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना मनोगतं सा न शशाक शंसितुम् ।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत ॥५१॥

अन्वयः—इति द्विजन्मनः प्रविश्य अभिहिता सा मनोगतं शंसितुम् न शशाक । अथो परिपार्श्ववर्तिनीं वयस्यां विवर्तितानञ्जननेत्रम् ऐक्षत ।

संजी०—इतीति । इतीत्थं द्विजन्मना द्विजेन प्रविश्यान्तर्गत्वा । आप्तवद्रहस्यमुद्धाट्येत्यर्थः । अभिहितोक्ता सा पार्वती मनोगतं हृदिस्थं वरं शंसितुं वक्तुं न शशाक समर्था नाभूत् । लज्जयेति शेषः । अथोऽनन्तरं परिपार्श्ववर्तिनीं वयस्यां सखीं विवर्तितं विचालितमनञ्जनं व्रतवशाद्वर्जितकज्जलं नेत्रं यस्मिन्कर्मणि तत्तथैक्षत । नेत्रसंज्ञयैव प्रत्युत्तरं वाचयांचकारेत्यर्थः ॥५१॥

हिन्दी—इस प्रकार उस नवागत ब्रह्मचारी ने जब पार्वती के मनोगत वर को उसके हृदय में प्रविष्ट हो कर पूछा तो पार्वती उसे किसी प्रकार कह न सकी । फिर उसने पास में बैठी अपनी प्रिय सहेली की ओर अपने कज्जल विरहित नेत्रों को घुमा कर देखा ।

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं निबोध साधो ! तव चेत्कुतूहलम् ।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ॥५२॥

अन्वयः—तदीया सखी तम् वर्णिनम् उवाच । हे साधो ! तव कुतूहलं चेत् (तर्हि) निबोध । यदर्थम् एतया अम्भोजम् उष्णवारणम् वपुः तपः साधनं कृतम् ।

संजी०—सखीति ॥ तस्याः पार्वत्याः इयं तदीया सखी वयस्या तम् । 'वर्णः प्रशस्तः' इति क्षीरस्वामी । सोऽस्यास्तीति वर्णिनं ब्रह्मचारिणम् । 'वर्णाद्ब्रह्मचारिणि' इतीनिप्रत्ययः । उवाच ब्रूते स्म । किमिति । हे साधो विद्वन् ! तव कुतूहलं चेत् । श्रोतुमस्तीति शेषः । तर्हि निबोधावगच्छ । आकर्णयेत्यर्थः । 'बुध अवगमने' इति धातोर्भौवादिकाल्लोट् । श्रोतव्यं किं तदाह—यस्मै लाभायेदं यदर्थम् । 'अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता चेति वक्तव्यम्', इति वार्तिकनियमात्क्रियाविशेषणम् । एतया पार्वत्याम्भोजं पद्ममुष्णवारणमातपत्रमिव वपुः शरीरं तपःसाधनं कृतम् । तपःप्रवृत्तिकारणमुच्यते श्रूयतामित्यर्थः ॥५२॥

हिन्दी—उसकी सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा—हे महानुभाव ! यदि आपको इस विषय में महान् उत्सुकता है तो (मैं जो आगे) कह रही हूँ, उसे सुनें । जिस लिए इस मेरी सखी ने कमल को छत्र बनाने के समान सुकोमल अपने शरीर को तप का साधन बनाया है ।

'दृङ्मनः सङ्गसंकल्पो जागरः कृशतारतिः ।
ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश ॥' इति ।

तत्रास्याः काश्चिद्दशाः क्रममनादृत्यैव योजयति-'इयम्' इत्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः--

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी ।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ॥५३॥

अन्वयः--मानिनी इयं अधिश्रियः महेन्द्रप्रभृतीन् चतुर्दिगीशान् अवमत्य मदनस्य निग्रहात् अरूपहार्यम् पिनाकपाणिं पतिम् आप्तुम् इच्छति ।

संजी०—इयमिति । मानिनीन्द्राणीप्रभृतीरतिशय्य वर्तितव्यमित्यभिमानवतीयं पार्वत्यधिश्रियोऽधिकैश्वर्यान्महेन्द्रप्रभृतीनिन्द्रादींश्चतसृणां दिशामीशानिन्द्रवरुणयमकुबेरान् । 'तद्धितार्थे'-त्यादिनोत्तरपदसमासः । अवमत्यावधूय मदनस्य निग्रहान्निबर्हणाद्धेतोः । अकामुकत्वादित्यर्थः । रूपेण सौन्दर्येण हार्यो वशीकरणीयो न भवतीत्यरूपहार्यं पिनाकः पाणौ यस्य तं पिनाकपाणिं हरम् । 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः' इति साधु । पतिं भर्तारमाप्तुमिच्छति । एतेन संकल्पावस्था सूचिता ॥५३॥

हिन्दी--मनस्विनी यह पार्वती अत्यन्त ऐश्वर्य संपन्न चारों दिशाओं के स्वामियों--इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर इनकी अवहेलना कर मदन को दण्डित करने के कारण कामुक सौन्दर्य के द्वारा वश में न करने योग्य उन महावीर पिनाकी को पति रूप में प्राप्त करना चाहती है ।

असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः ।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ॥५४॥

अन्वयः--विशीर्णमूर्तेः अपि पुष्पधन्वनः शिलीमुखः पुरा असह्य हुङ्कारनिवर्तितः (अतः) पुरारिम् अप्राप्तमुखः (सन्) इमां हृदि व्यायतपातम् अक्षिणोत् ।

संजी०—असह्येति । पुरा पूर्वमसह्येन सोढुमशक्येन हुङ्कारेण रौद्रेण निर्वर्तितः । अतएव पुरारिं हरमप्राप्तमुखोऽप्राप्तफलो विशीर्णमूर्तेर्नष्टशरीरस्यापि पुष्पधन्वनः कामस्य शिलीमुखो बाण इमां पार्वतीं हृदि व्यायतः । सुदूरावगाढ इति यावत् । तादृक्पातः प्रहारो यस्मिन्कर्मणि तत्तथाक्षिणोदकशत् । दग्धदेहस्यापि मार्गणो लग्नः । 'मृदुः सर्वत्र बाध्यते' इति भावः । अनेन 'विवृण्वती शैलसुतापि भावम्' (३।६८) इत्यत्रोक्तं चक्षुप्रीतिमनःसङ्गाख्यमवस्थाद्वयमनन्तरावस्थोपयोगितयानूद्य कार्श्यावस्था सूचिता ।

हिन्दी—नष्ट शरीर होने पर भी उस कामदेव का बाण पहले तो पुरारि के असहनीय हुङ्कार से डर कर पीछे की ओर भागा । फिर जब उनके अङ्गों को

अपने मुख (अग्रभाग से) स्पर्श भी नहीं कर पाया, इस लिए इस दुर्बल बेचारी पार्वती के हृदय में गहरी चोट पहुँचा कर उसे ही क्षतिग्रस्त बनाया ।

तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ॥५५॥

अन्वयः--तदा प्रभृति पितुः गृहे उन्मदना ललाटिकाचन्दनधूसरालका बाला तुषारसंघातशिलातलेषु अपि जातु निर्वृतिं न लभते स्म ।

संजी०—तदेति । तदेति छेदः । तदाप्रभृति । तत आरभ्येत्यर्थः । सप्तम्यर्थस्यापि दाप्रत्ययस्य पञ्चम्यर्थे लक्षणा । प्रभृतियोगे पञ्चमीनियमात् । पितुर्गृहे उन्मदनोत्कटमन्मथा ललाटस्थालंकारो ललाटिका तिलकः । 'कर्णललाटात्कनलंकारे' इति कन्प्रत्ययः । तस्याश्चन्दनेन धूसरा धूसरवर्णा अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्याः सा तथोक्ता बाला पार्वती जातु कदाचिदपि तुषारसंघातास्तुषारघनास्त एव शिलास्तासां तलेषूपरिभागेष्वपि निर्वृतिं सुखं न लभते स्म । एतेनारत्यपरसंज्ञा विषयविद्वेषाऽवस्था द्वादशावस्थापक्षे संज्वरश्च व्यज्यते ॥५५॥

हिन्दी--जिस दिन से इसे इस प्रकार का मार्मिक आघात हुआ उसी समय से ले कर पिता के घर में मदनोन्मत्ता एवं शिरःप्रदेश में आभूषण के रूप में लगाये गये चन्दन के तिलक के रगड़ से धूसर केशकलापों वाली शीतलोपचारयुक्ता यह बाला पार्वती बर्फ की जमी हुई चट्टानों पर भी सुख से सो नहीं पाती ।

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ॥५६॥

अन्वयः--इयं पिनाकिनः चरिते उपात्तवर्णे (सति) सबाष्प कण्ठस्खलितैः पदैः वनान्तसंगीतसखीः किन्नरराजकन्यकाः अनेकशः अरोदयत् ।

संजी०—उपात्तेति । पिनाकिनः शंभोश्चरिते त्रिपुरविजयादिचेष्टित उपात्तवर्णे प्रारब्धगीतक्रमे । 'गीतक्रमे स्तुतौ वेदे वर्णशब्दः प्रयुज्यते' । इति हलायुधः । सबाष्पे गद्गदे कण्ठे स्खलितैर्विशीर्णैः पदैः सुप्तिङन्तरूपैः करणैः । वनान्ते संगीतेन निमित्तेन सखीर्वयस्याः । किन्नरराजकन्यका अनेकशो बहुशोऽरोदयदश्रुमोक्षमकारयत् । हरचरितगानजनितमदनवेदनामेनां वीक्ष्य किंनर्योऽपि रुरुदुरिति भावः । अत्र वर्णस्खलनलक्षणकार्योक्त्या पुनः पुनस्तत्कारणीभूतमूर्च्छावस्थाप्रादुर्भावो व्यज्यतेऽन्यथा सखीरोदनानुपपत्तेरिति । द्वादशावस्थापक्षे तु प्रलापावस्था च व्यज्यते । 'प्रलापो गुणकीर्तनम्' इत्यालंकारिकाः ॥५६॥

हिन्दी—यह पार्वती पिनाकी के वीर कर्मों का गीत क्रम में गान आरम्भ करते समय वाष्प गद्गद कण्ठ होने के कारण किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से

उच्चरित अस्फुट पदों द्वारा उस वनप्रदेश में रहने वाली अपनी संगीत सहेलियाँ किंपुरुष गन्धर्वों की लड़कियों को कई बार रुला देती थी ।

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ ! व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ।।५७।।

अन्वयः—(किं च) त्रिभागशेषासु निशासु क्षणं नेत्रे निमील्य हे नीलकण्ठ ! क्व व्रजसि ? इति अलक्ष्यवाक् असत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना सहसा व्यवबुध्यत ।

संजी०—त्रिभागेति । किंचेति चार्थः । शिष्यत इति शेषः । कर्मणि घञ् । त्रिभ्यो भागेभ्यः शेषास्ववशिष्टासु । यद्वा रात्रेस्त्रियामत्वेन प्रसिद्धत्वात्तृतीयो भागास्त्रिभागः । संख्याशब्दस्य वृत्तिविषये पूरणार्थत्वमिष्यते । यथा 'शतांशः' 'सहस्रांशः' इति । त्रिभागः शेषो यासां तासु निशासु क्षणं क्षणमात्रं नेत्रे निमील्य मीलयित्वा सहसा सद्यः । हे नीलकण्ठ ! क्व व्रजसि कुत्र गच्छसीत्यलक्ष्या निर्विषया वाग्वचनं यस्याः सा यथोक्ता तथासत्ये मिथ्याभूते कण्ठेऽर्पितं बाहुबन्धनं यस्याः सा तथा सती व्यबुध्यत बिबुद्धवती । एतेन जागरोन्मादौ सूचितौ ।।५७।।

हिन्दी—इसके बाद भी सूनी रात्रि के अन्तिम पहर में क्षणभर के लिए आँखें मूंद कर जब झपकी लेती थी उसी समय शीघ्र ही 'हे नीलकण्ठ (मुझे छोड़कर) कहाँ जा रहे हो ? इस प्रकार के अलक्षित असङ्गवाक्यों को बकती हुई झूठे ही अपने कण्ठ में बाहुओं को डाल कर मानो शङ्कर का आलिङ्गन कर रही हो—ऐसा अभिनय करती हुई, यह अचानक चकपका कर जाग पड़ती थी ।

स्वप्नसादृश्यप्रतिकृतिदर्शनतदङ्गस्पृष्टस्पर्शाख्याश्चत्वारो विरहिणां विनोदाः । तत्र स्वप्नसंदर्शनमुक्त्वा प्रतिकृतिदर्शनमाह—

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः।।५८।।

अन्वयः—यदा त्वं बुधैः सर्वगतः उच्यसे अतः भावस्थम् इदम् कथं न वेत्सि ? इति मुग्धया (पार्वत्या) स्वहस्तोल्लिखितः चन्द्रशेखरः रहसि उपालभ्यत ।

संजी०—यदेति । यदा यत इत्यर्थः । यदेति हेतावित्युक्त्वा गणव्याख्यानेऽस्योदाहृतत्वात् । त्वं बुधैर्मनीषिभिः सर्वगतः सर्वव्यापीत्युच्यसे । तत इत्यध्याहारः । भावे रत्याख्ये तिष्ठतीति भावस्थम् । त्वय्यनुरागिणमित्यर्थः । इमं जनम् । इममित्यात्मनिर्देशः । कथं न वेत्सि न जानासीति मुग्धया मूढया । अकिंचित्करश्चित्रगतोपालम्भ इत्यजानानयेत्यर्थः । तया स्वहस्तेनोल्लिखित-

श्चित्रे लिखितश्चन्द्रशेखरो रहस्येकान्ते। सखीमात्रसमक्षमित्यर्थः। उपालभ्यत साधिक्षेपमुक्तश्च। उक्तसमुच्चयार्थश्चकारः। यद्यपि रहसीत्युक्तं तथापि सखीसमक्षकरणाल्लज्जात्यागो व्यज्यत एव ॥५८॥

हिन्दी—हे नीलकण्ठः ! भला जब आप मनीषियों के द्वारा सर्वगत कहे जाते हैं तब अपने प्रेम में स्थित इस जन को आप क्यों नहीं समझ जाते। इस प्रकार उस मुग्धा पार्वती के द्वारा अपने हाथों से बनाये गये चन्द्रशेखर के चित्र से एकांत में पूछा जाता था।

यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥५९॥

अन्वयः—जगत्पतेः तस्य अधिगमे अन्यं विधिं विचिन्वती यदा न अपश्यत तदा गुरोः अनुज्ञया अस्माभिः सह तपसे तपोवनं प्रस्थिता।

संजी०—यदेति॥ जगत्पतेस्तस्येश्वरस्याधिगमे प्राप्तावन्यं विधिमुपायं विचिन्वती मृगयमाणा यदा नापश्यत्तदेयं पार्वती गुरोः पितुरनुज्ञयास्माभिः सह तपसे तपश्चरितुं तपोवनं प्रपन्ना प्राप्ता ॥५९॥

हिन्दी—जगत्पति सदाशिव की प्राप्ति में अन्य उपायों को ढूँढती हुई जब इसने अन्य और उपाय नहीं देखा तब माता-पिता से आज्ञा लेकर हम सखियों को साथ ले इस तपोवन में तप करने के लिए पहुँची।

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलं तपःसाक्षिषु दृष्टमेष्वपि।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ॥६०॥

अन्वयः—सख्या स्वयं कृतजन्मसु तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेषु अपि फलं दृष्टम्, किन्तु शशिमौलिसंश्रयः अस्याः मनोरथः प्ररोहाभिमुखः अपि च न दृश्यते।

संजी—द्रुमेष्विति। सख्या पार्वत्या स्वयं कृतं जन्म येषां तेषु। स्वयं रोपितेष्वित्यर्थः। तपसः साक्षिषु साक्षाद्द्रष्टृष्वेषु द्रुमेष्वपि फलं दृष्टं लब्धम्। जनितमित्यर्थः। अस्याः पार्वत्याः शशिमौलिसंश्रयश्चन्द्रशेखरविषयो मनोरथस्तु प्ररोहाभिमुखोऽङ्कुरोन्मुखोऽपि न दृश्यते। 'प्ररोहस्त्वङ्कुरोऽङ्कुरः' इति वैजयन्ती। स्वयं रोपितवृक्षफलकालेऽप्यस्या मनोरथस्य नाङ्कुरोदयोऽप्यस्ति। फलाशा तु दूरापास्तेत्यर्थः ॥६०॥

हिन्दी—हमारी सखी इस पार्वती ने जिन पेड़-पौधों को लगाकर जल से उन्हें सींच कर बढ़ाया था, उन जड़ वृक्षों में भी फल दिखाई पड़ने लग गये, पर आश्चर्य ! शङ्कर जी से सम्बन्धित इसके मनोरथ अब तक भी अंकुरित नहीं हुए दीखते।

न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम् ।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥६१॥

अन्वयः—प्रार्थितदुर्लभः सः तपः कृशां सखीभिः अस्रोत्तरम् ईक्षिताम् इमां सखीं तदवग्रहक्षतां सीतां वृषा इव कदा अभ्युपपत्स्यते तत् न वेद्मि ।

संजी०—नेति । प्रार्थितः सन्दुर्लभः प्रार्थितदुर्लभः स देवस्तपःकृशां तपसा कृशां क्षीणामत एव सखीभिरस्रोत्तरमश्रुप्रधानं यथा भवति तथेक्षितामिमां नः सखीं तस्येन्द्रस्यावग्रहेणानावृष्टया क्षतां पीडिताम् । 'वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः । अवग्रहः । वर्षप्रतिबन्ध इत्यर्थः । सीतां कृष्टभुवम् । 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' इत्यमरः । वृषा वासव इव । 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः । कदाभ्युपपत्स्यते कदानुग्रहीष्यति न वेद्मि । अत्र वाक्यार्थः कर्म । तदवग्रहक्षतामित्यत्रावग्रहक्षतामित्यनेनैव गतार्थत्वे तत्पदस्य वैयर्थ्यापत्तेस्तदिति भिन्नं पदं वेद्मीत्यस्य कर्मेति युक्तमुत्पश्यामः ॥६१॥

हिन्दी—प्रार्थना करने पर भी सर्वथा दुर्लभ वह देव, तप के कारण अत्यन्त कृश शरीरवाली तथा सखियों के द्वारा अश्रुयुक्त आँखों से देखी गई इस मेरी सखी को वर्षा रोकने से अत्यन्तपीड़ित तथा जोती हुई जमीन के लिए इन्द्र के समान, कब अनुगृहीत करेगा, इसको अभी तक हम लोग नहीं जान पाई हैं ।

अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया ।
अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥६२॥

अन्वयः—इङ्गितया तया इति अगूढसद्भावं निवेदितः नैष्ठिकसुन्दरः अव्यञ्जितहर्षलक्षणः (सन्) अयि ! इदम् एवम् (वा) परिहासः इति उमाम् अपृच्छत ।

संजी०—अगूढेति ॥ इङ्गितज्ञया पार्वतीहृदयाभिज्ञया । 'इङ्गितं हृद्गतो भावः' इति सज्जनः तथा गौरीसख्येत्येवमगूढसद्भावं प्रकाशितसदभिप्रायं यथा तथा निवेदितो ज्ञापितो निष्ठा मरणमवधिर्यस्य स नैष्ठिको यावज्जीवब्रह्मचारी सुन्दरो विलासी । नैष्ठिकश्चासौ सुन्दरश्चेति तथोक्तः । द्वयोरन्यतरस्य विशेषणत्वविवक्षायां विशेषणसमासः । किन्तु नैष्ठिकत्वविशेषणेन कामित्वविरोध । अथवा देवस्यालौकिकमहिमत्वादुभयं तात्त्विकमिति न विरोधः । अव्यञ्जितं हर्षलक्षणं मुखरागादि हर्षलिङ्गं यस्य तथाभूतः सन् । अयि गौरि । अयीति कोमलामन्त्रणे । इदं त्वत्सखीभाषितमेवम् । सत्यं किमित्यर्थः । परिहासः केलिर्वा । 'द्रवकेलिपरीहासाः' इत्यमरः । इत्येवमुमामपृच्छत्पृष्टवान् ॥६२॥

हिन्दी—पार्वती के हृद्गत भावों तथा उसके संकेतों को जानने वाली उसकी सहेली के द्वारा इस प्रकार उसके सद्भाव को प्रकाशित कर लेने पर नैष्ठिकता से

परिपूर्ण उस ब्रह्मचारी ने हर्ष का कोई लक्षण व्यक्त न कर उमा से पूछा, 'अयि उमे ! क्या यह ऐसा ही है जैसा कि यह कह रही है अथवा तुम लोगों का परिहास है। ठीक-ठीक कहो।

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम्।
कथंचिदद्रेस्तनया मिताक्षरं चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥६३॥

अन्वयः—अथ अद्रेः तनया मुकुलीकृताङ्गुलौ अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकाम् समर्पयन्ती कथञ्चित् चिरव्यवस्थापितवाक् मिताक्षरम् अभाषत।

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरमद्रेस्तनया पार्वती मुकुलीकृताङ्गुलौ संपुटीकृताङ्गुलौ। अग्रश्चासौ हस्तश्चेति समानाधिकरणसमासः। 'हस्ताग्राग्रहस्तयोर्गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्' इति वामनः। तस्मिन्नग्रहस्ते स्फटिकानामक्षमालिकां जपमालिकामर्पयन्त्यामुञ्चती कथंचिन्महता कष्टेन चिरव्यवस्थापितवाक् चिरेण स्वीकृतवाक्। एतेन लज्जोपरोधो व्यज्यते। मिताक्षरं परिमितवर्णं यथातथाभाषत बभाषे ॥६३॥

हिन्दी—इसके बाद हिमालयपुत्री पार्वती अपनी अंगुलियों को सिकोड़ कर हाथ के अग्रभाग में स्फटिक की अक्षमाला ग्रहण करती हुई किसी प्रकार अपने वाणी को व्यवस्थित कर संयत शब्दों में इस प्रकार बोली—

किमुवाचेत्याह—

यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥

अन्वयः—हे वेदविदांवर त्वया यथा श्रुतम्। अयं जनः उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः इदं तपः तदवाप्तिसाधनं किल। मनोरथानाम् अगतिः न विद्यते।

संजी०—यथेति ॥ हे वेदविदां वर वैदिकश्रेष्ठ, त्वया यथा श्रुतं सम्यक्श्रुतम्। श्रुतार्थमेवाह—अयं जनः। स्वयमित्यर्थः। उच्चैःपदस्य शिवलाभरूपोन्नतस्थानस्य लङ्घन आक्रमणे उत्सुकः। किमत्रायुक्तमित्यत्राह—इदं तपस्तदवाप्तेस्तस्योच्चैःपदस्याप्तेः प्राप्तेः साधनं किल। किलेत्यलीके। अतितुच्छत्वादसाधकमेवेत्यर्थः। तर्हि त्यज्यतामित्याशङ्क्य दुराशा मां न मुञ्चतीत्याशयेनाह—मनोरथानां कामानामगतिरविषयो न विद्यते। न हि स्वशक्तिपर्यालोचनया कामाः प्रवर्तन्त इति भावः ॥६४॥

हिन्दी—हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारिन्, तुमने जैसा सुना है वह वैसा ही है। यह जन अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त करने को उत्सुक है। यह तप उसी उच्चपद की प्राप्ति का साधन है। मनोरथों के लिए कुछ भी अगम्य नहीं।

अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तसे ।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे॥६५॥

अन्वयः—अथ वर्णी आह ! महेश्वरः विदितः त्वं पुनः एव तदर्थिनी वर्तसे अमङ्गलाभ्यासरतिं तं च विचिन्त्य तव अनुवृत्तिं कर्त्तुं न उत्सहे ।

संजी०-अथेति ॥ अथ वर्णी ब्रह्मचारी । 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' इत्यमरः । आह । उवाचेत्यर्थः । 'आहेति भूतार्थे लट्प्रयोगो भ्रान्तिमूलः' इत्याह वामनः । किमित्याह—महेश्वरो महादेवो विदितः । मया ज्ञायत इत्यर्थः । बुद्ध्यर्थत्वाद्वर्तमाने क्तप्रत्ययः तद्योगात्षष्ठी च । येन त्वं प्राग्भग्नमनोरथा कृतेति भावः । पुनरेव त्वं तमीश्वरमर्थयसे तदर्थिन्येव तत्कामैव प्रवर्तसे । तत्प्रभावमनुभूयापीति भावः । अनुसरणे को दोषस्तत्राह—अमङ्गलाभ्यसेऽमङ्गलाचारे रतिर्यस्य तं यथोक्तमीश्वरं विचिन्त्य विचार्य तवानुवृत्तिमनुसरणं कर्तुं नोत्सहे । नानुमन्तुं शक्नोमीत्यर्थः ॥६५॥

हिन्दी--इसके बाद ब्रह्मचारी कहने लगे–महेश्वर को तो मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ और फिर तुम उन्हीं की इच्छा भी करती हो (जिसने काम को जलाकर तुम्हारे मनोरथों को नष्ट कर दिया । फिर भी तुम उसे ही अपना पति बनाना चाहती हो, वह भी सकाम भावना से) । मैं तो उन महेश्वर की अमङ्गल आचरण में रति देखकर तुम्हें उनके अनुसरण करने की राय नहीं दे सकता ।

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः ।
करेण शंभोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥६६॥

अन्वयः—हे अवस्तुनिर्बन्धपरे ! आमुक्त विवाहकौतुकः अयं ते करः वलयीकृताहिना शंभोः करेण तत्प्रथमावलम्बनम् कथं नु सहिष्यते ?

संजी०—अवस्त्विति । अवस्तुनि तुच्छवस्तुनि निर्बन्धोऽभिनिवेशः परं प्रधानं यस्यास्तस्याः संबुद्धिरवस्तुनिर्बन्धपरे पार्वति, आमुक्तमासञ्जितं विवाहे यत्कौतुकं हस्तसूत्रं तद्यस्य स तेऽयं करः । 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः । वलयीकृताहिना भूषणीकृतसर्पेण शंभोर्महादेवस्य करेण करणभूतेन । तदेव प्रथमं तत्प्रथमम् । अपरिचितत्वादतिभयंकरमिति भावः । तच्च तदवलम्बनं ग्रहणं चेति कथं नु सहिष्यते । न कथंचिदपि सहिष्यत इत्यर्थः । अग्रतो यद्भावितद्दूरेऽवतिष्ठतां प्रथमं करग्रह एव दुःसह इति भावः ॥६६॥

हिन्दी--हे तुच्छ वस्तुओं के ग्रहण करने में आग्रहशीले ! पार्वति ! भला जब वैवाहिक माङ्गलिक रक्षासूत्र से युक्त इस तुम्हारे हाथ को पाणिग्रहण काल में जब

शङ्कर जी अपने सर्पकङ्कण वाले हाथों से पकड़ेंगे तो उसे वह किस प्रकार सहन कर सकेगा ?

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ॥६७॥

अन्वयः—त्वमेव स्वयं तावत् परिचिन्तय यत् कलहंसलक्षणं वधूदुकूलं शोणितबिन्दुवर्षि गजाजिनं च एते कदाचित् योगम् अर्हतः यदि ।

संजी०—त्वमेवेति ॥ हे गौरि, त्वमेव स्वयमात्मना । तावदिति मात्रार्थे । यावन्मात्रं विचारणीयं तावन्मात्रमित्यर्थः । इदमेवोदाहृतं च गणव्याख्याने । परिचिन्तय पर्यालोचय । किमिति । कलहंसलक्षणं कलहंसचिह्नम् । 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः । वध्वा नवोढाया दुकूलं वधूदुकूलम् । वधूः स्नुषा नवोढा स्त्री' इति विश्वः । तथा शोणितबिन्दून्वर्षतीति यथोक्तम् । आर्द्रमित्यर्थः । गजाजिनं च कृत्तिवासश्च । तत्पिनाकिन इत्यशयः । एते कदाचिज्जात्वपि योगं संगतिमर्हतो यद्यर्हतः किम् । एतत्त्वमेव चिन्तयेति पूर्वेणान्वयः । पाणिग्रहणकाले वधूवरयोर्वस्त्रान्तग्रन्थिः क्रियते । कृत्तिवाससा पाणिपीडने तु दुकूलधारिण्यास्तव कथं संघटिष्यत इति भावः ॥६७॥

हिन्दी—भला तुम्हीं कुछ क्षण के लिए विचार करो कि नववधू के कलहंस चिह्न से अंकित क्षौमवस्त्र (उत्तरीय) और रक्त की बूँदें टपकाने वाला गजाजिन (शङ्कर जी का विशेष वस्त्र), ये दोनों कभी भी गठबन्धन के योग्य हो सकते हैं ?

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः परोऽपि को नाम तवानुमन्यते ।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ॥६८॥

अन्वयः—चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः तव पादयोः अलक्तकांकानि पदानि विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु परः अपि कः नाम अनुमन्यते ।

संजी०—चतुष्केति ॥ चतुष्के गृहविशेषे यः पुष्पप्रकरस्तत्रावकीर्णयोर्न्यस्तयोः । कुसुमास्तृतदिव्यभवनभूसंचारोचितयोरित्यर्थः । तव पादयोरलक्तकाङ्कानि लाक्षारञ्जितानि पदानि पादाकाराणि पादन्यासचिह्नानि । 'पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयोः । पादतच्चिह्नयोः' इति विश्वः । विकीर्णा विक्षिप्ताः केशाः शवशिरोरुहा यासु तासु विकीर्णकेशासु । 'अतत्स्थं तत्र दृष्टं च' इति वचनात् । 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति विकल्पान्न ङीष् । परेतभूमिषु प्रेतभूमिषु । श्मशानेष्वित्यर्थः । परोऽपि शत्रुरपि को नामानुमन्यते । न कोऽपीत्यर्थः । नामेति कुत्सायाम् । पिनाकपाणिग्रहणे तस्य परेतभूसंचारित्वेन साहचर्यात्तवापि तत्र संचारोऽवश्यंभावीति भावः ॥६८॥

हिन्दी—अपने घर पर रहने के कारण हे पार्वति ! दिव्य भवन के प्रांगण में स्थित पुष्प समूहों पर विचरण करने वाले इन कोमल पैरों के महावर से बिखरी केशों वाली श्मशानभूमि को रंगने के लिए भला कौन भलेमानुष सम्मति देगा ?

अयुक्तरूपं किमतः परं वद त्रिनेत्रवक्षः सुलभं तवापि यत् ।
स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे पदं चिताभस्मरजः करिष्यति ।।६९।।

अन्वयः—अतः परम् अयुक्तरूपं किम् ? वद ? यत् त्रिनेत्रवक्षः सुलभं चिताभस्मरजः तव अपि हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये पदं करिष्यति ?

संजी०—अयुक्तेति ।। त्रिनेत्रवक्षः । त्र्यम्बकालिङ्गनमित्यर्थः । तव तत्संबन्धितया सुलभमपि सुप्रापं च । भवतीति शेषः । तवेति शेषे षष्ठी । 'न लोकाव्यय—' इत्यादिना कृद्योगलक्षणषष्ठ्या निषेधात् । अतः परमस्मात्रिनेत्रवक्षोलाभादन्यदयुक्तरूपमत्यन्तायुक्तं किं वद । न किंचिदित्यर्थः । 'प्रशंसायां रूपप्' इति रूपप्प्रत्ययः । कुतः । यद्यस्मात्कारणाद्धरिचन्दनास्पदे हरिचन्दनस्यास्पदे स्थानभूतेऽस्मिन्स्तनद्वये चिताभस्म श्मशानभस्म तदेव रजश्चूर्णं कर्तृ । पदं करिष्यति पदं निधास्यति । भर्तुर्भवस्य भस्माङ्गरागादिति भावः ।।६९।।

हिन्दी—हे पार्वति ! इससे बढ़कर अयुक्तरूप क्या हो सकता है ? इसे तुम्हीं कहो–जिनके वक्षःस्थल का सुलभ चिता का भस्म कण तुम्हारे भी हरिचन्दन लगाये जाने वाले इस कुच-युगल पर अपना स्थान बनावेगा ?

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया ।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ।।७०।।

अन्वय—इयं च ते पुरतः अन्या विडम्बना यत् ऊढया वारण राजहार्यया त्वया अधिष्ठितं वृद्धोक्षं विलोक्य महाजनः स्मेर मुखः भविष्यति ।

संजी०—इयमिति ।। इयं च ते तव पुरत आदावेवान्या विडम्बना । परिहास इत्यर्थः । का सेत्यत्राह—ऊढया परिणीतया । वहेः कर्मणि क्तः । वारणराजहार्यया त्वयाधिष्ठितमारूढं वृद्धमुक्षाणं वृद्धोक्षम् । 'अचतुर–' इत्यादिना निपातः । विलोक्य महाजनः साधुजनः स्मेरमुखः स्मितमुखो भविष्यत्युपहसिष्यति यत् । इयमिति पूर्वेण संबन्धः । स्मेरेति 'नमिकम्पिस्म्यजस–' इत्यादिना रप्रत्ययः ।।७०।।

हिन्दी - इतना ही नहीं, यह एक तुम्हारी हँसी होगी कि गजराज के ऊपर चढ़कर चलने योग्य तुम्हें शंकर के वृद्ध बैल पर चढ़कर चलते हुए देखकर सज्जन लोगों का मुख हँसी से युक्त हो जायगा ।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः ।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ।७१।

अन्वयः--पिनाकिनः समागमप्रार्थनया संप्रति कलावतः सा कान्तिमती कला अस्य लोकस्य कान्तिमती नेत्रकौमुदी त्वं च इति द्वयम् अपि शोचनीयतां गतम् ।

संजी०--द्वयमिति ।। पिनाकिन ईश्वरस्य समागमप्रार्थनया प्राप्तिकामनया । क्रियमाणयेति शेषः । संप्रति द्वयं शोचनीयतां शोच्यत्वं गतम् । किं तदाह सा प्रागेव हरशिरोगता । अत्र सेति प्रसिद्धार्थत्वान्न यच्छब्दापेक्षा । तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'प्रक्रान्तप्रसिद्धानुभूतार्थविषयस्तच्छब्दो यदुपादानं नापेक्षते' इति । कान्तिमती । नित्ययोगे मतुप् । कलावतश्चन्द्रस्य कला षोडशो भागश्चास्य लोकस्य नेत्रकौमुदी । नेत्रानन्दिनीत्यर्थः । त्वं च कान्तिमतीत्वनेत्रकौमुदीत्वविशेषणयोरुभयत्राप्यन्वयः । प्रागेकैव शोच्या । संप्रति तु त्वमप्यपरेति द्वयं शोच्यमिति पिण्डितार्थः । शोच्यत्वं च निकृष्टाश्रयणादिति भावः ।।७१।।

हिन्दी—इस नरमुण्डधारी (भयंकर वेशवाले) शिव के समागम की प्रार्थना करने के कारण इस समय सुन्दर कलाओं से युक्त वह चन्द्रमा की कला (जो शंकर के शिर पर है) और इस लोक की नेत्रकौमुदी तुम—ये दोनों ही शोचनीय अवस्था को पहुँच गई हैं ।

'कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम् ।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः ।।'

इति लोकानामाभाषणम् । तत्र किंचिदपि नास्तीत्याह—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ।७२।

अन्वयः--(अस्य कपालिनः) वपुः विरूपाक्षम् अलक्ष्यजन्मता, वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम् । हे बालमृगाक्षि ! यद् वरेषु मृग्यते तत् किम् व्यस्तम् अपि त्रिलोचने अस्ति ?

संजी०—वपुरिति ।। वपुस्तावदस्य विरूपाणि विकृतरूपाण्यक्षीणि नेत्राणि यस्य तद्विरूपाक्षम् । 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति षच्प्रत्ययः । वैरूप्यं च त्रिनेत्रत्वादिति क्षीरस्वामी । अतो न सौन्दर्यवार्तापीत्यर्थः । अलक्ष्यमज्ञातं जन्म यस्य तस्य भावस्तत्ता । कुलमपि न ज्ञायत इत्यर्थः । 'अलक्षिता जनिः' इति पाठे जनिरुत्पत्तिरलक्षिता न ज्ञाता । 'जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' इत्यमरः । वसु वित्तं दिगम्बरत्वेनैव निवेदितम् । नास्तीति ज्ञापितमित्यर्थः । यदि वित्तं भवति तदा कथं दिगम्बरो भवति ।

अतो ज्ञेयं निर्धनोऽयमिति । किं बहुना हे बालमृगाक्षि पार्वति, वरेषु वोढृषु। 'वरौ जामातृवोढारौ' इति विश्वः । यद्रूपवित्तादिकं मृग्यते कन्यातद्बन्धुभिरन्विष्यते तत्त्रिलोचने त्र्यम्बके व्यस्तम् । एकमपि समस्तं नाभूदिति भावः । अस्ति किम् । नास्त्येवेत्यर्थः ॥७२॥

हिन्दी—उन कपाली का शरीर तो पहले विकृत आँखों वाला है, फिर उसके जन्म के संबन्ध में भी कुछ निश्चित पता नहीं और धन सम्बन्धी बात तो उसकी दिगम्बरता ने ही प्रकट कर दी । हे बालमृग के समान चञ्चल नेत्रों वाली ! वर के सम्बन्ध में जो कुछ भी ढूँढ़ा जाता है उन सभी गुणों का एकत्र मिलना तो दूर। क्या उसमें से एक भी उनमें है ?

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा ।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥७३॥

अन्वयः—हे गौरि ! अस्मात् असदीप्सितात् मनः निवर्त्तय । तद्विधः क्व । पुण्यलक्षणा त्वम् च क्व ? साधुजनेन श्मशानशूलस्य यूपसत्क्रिया न अपेक्षते ।

संजी०—निवर्तयेति ॥ अस्मादसदीप्सितादनिष्टमनोरथान्मनो निवर्तय निवारय । सा पूर्वोक्ता विधा प्रकारो यस्य स तथोक्तः । अमङ्गलशील इत्यर्थः । क्व । महदन्तरमित्यर्थः । पुण्यलक्षणा प्रशस्तभाग्यचिह्ना त्वं च क्व । अतो न तवायमर्ह इत्यर्थः । तथाहि । साधुजनेन । 'साधुर्वार्धुषिके चारौ सज्जने चाभिधेयवत्' इति विश्वः । श्मशानशूलस्य श्मशानभूमिनिखातस्य बध्यशङ्कोर्वैदिकी वेदोक्ता । यूपो नाम पशुबन्धनसाधनभूतः संस्कृतदारुविशेषस्तस्य सत्क्रिया प्रोक्षणाभ्युक्षणादिसंस्कारो यूपसत्क्रिया नापेक्ष्यते नेष्यते । यथा श्मशानशूले यूपसत्क्रिया न क्रियते तथा त्वमपि तस्मै न घटस इति तात्पर्यार्थः ॥७३॥

हिन्दी—हे गौरि ! अपने इस अनिष्टकारी मनोरथ से मन को लौटा लो । भला उस प्रकार का विरूपाक्ष अमंगल कपाली कहाँ ? और इस प्रकार की पुण्यलक्षणों वाली तुम कहाँ ? भला तुम्हीं बताओ श्मशान के शूल से सज्जन लोग कहीं यज्ञ-स्तम्भ का पुण्य-कार्य करते हैं ।

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया ।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥७४॥

अन्वयः—इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि सति प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया तया उपान्तलोहिते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतं तिर्यक् आहिते ।

संजी०—इतीति ।। इत्येवप्रकारेण द्विजातौ द्विजे प्रतिकूलवादिनि सति प्रवेपमानेन चञ्चलेनाधरेणाधरोष्ठेन लक्ष्योऽनुमेयः कोपः क्रोधो यस्यास्तथोक्तया तया पार्वत्योपान्तलोहिते प्रान्तरक्ते विलोचने विकुञ्चिते कुटिलिते भ्रूलते यस्मिंस्तत्तथा । सभ्रूभङ्गमित्यर्थः । तिर्यक्साच्याहिते निहिते । अनादरात्तिर्यगैक्ष्यतेत्यर्थः ।।७४।।

हिन्दी—इस प्रकार प्रतिकूल बोलने वाले उस ब्राह्मण पर कम्पित अधरों के द्वारा स्पष्ट रूप से अपने कोप को प्रकट करती हुई पार्वती ने (भौंहों) भ्रूलता को सिकोड़ कर लाल कोने वाली आँखों से तिरछे देखा ।

उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम् ।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।७५।

अन्वयः—(सा) एवम् उवाच । च । नूनं परमार्थतः हरं न वेत्सि । यतः माम् एवम् आत्थ । मन्दा अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकम् महात्मनां चरितं द्विषन्ति ।

संजी०—उवाचेति ।। अथैनं ब्रह्मचारिणमुवाच च । किमिति । परमार्थतस्तत्त्वतो हरं न वेत्सि न जानासि नूनम् । कुतः । यतो मामेवमुक्तया रीत्यात्थ ब्रवीषि । 'ब्रुवः पञ्चानामादितः—' इति रूपसिद्धिः । अज्ञानादेवायं शिवद्वेषस्तवेत्याशयेनाह—मन्दा मूढाः । 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः' इत्यमरः । लोकसामान्यमितरजनसाधारणं न भवतीत्यलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं दुर्बोधकारणकं महात्मनां चरितम् । द्विषन्ति हेत्वपरिज्ञानाद्दूषयन्ति । विद्वांसस्तु कोऽप्यत्र हेतुरस्तीति बहु मन्यन्त इत्यर्थः ।।७५।।

हिन्दी—तदनन्तर पार्वती ने उस ब्रह्मचारी से कहा, 'तुम निश्चय ही परमार्थरूप से उन शंकर भगवान् के स्वरूप को नहीं जानते, इसीलिए मुझसे ऐसा कह रहे हो। तुम्हारे जैसे मूढ लोग ही महात्माओं के असाधारण और अकल्पनीय कारण वाले चरितों की निन्दा किया करते हैं ।

संप्रति 'अमङ्गलाभ्यासरतिम्' (५।६५) इत्याद्युक्तं दूषणजातम् 'विपत्प्रतीकारपरेण' इत्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः परिहर्तुमारभते—

विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा ।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः ।।७६।।

अन्वयः—विपत्प्रतीकारपरेण वा भूतिसमुत्सुकेन मङ्गलं निषेव्यते । जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः (तस्य हरस्य) एभिः आशोपहतात्मवृत्तिभिः किम् ?

संजी०—विपदिति ।। विपत्प्रतीकारपरेण । अनर्थपरिहारार्थिनेत्यर्थः । 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घः । भूरिसमुत्सुकेनैश्वर्यकामेन वा

मङ्गलं गन्धमाल्यादिकं निषेव्यते। शरणे रक्षणे साधुः शरण्यः। 'तत्र साधुः' इति यत्प्रत्ययः। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। जगतः शरण्यस्तस्य जगच्छरण्यस्य निराशिषो निरभिलाषस्य सतः शिवस्य। 'आशीरुरगदंष्ट्रायां विप्रवाक्याभिलाषयोः' इति शाश्वतः। आशया तृष्णयोपहता दूषितात्मवृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्येषां तैरेभिर्मङ्गलैः किम्। वृथेत्यर्थः। पूर्वं मङ्गलमित्येकवचनस्य जात्यभिप्रायत्वादेभिरिति बहुवचनेन परामर्शो न विरुध्यते। इष्टावाप्त्यनिष्टपरिहारार्थिनो हि मङ्गलाचारनिर्बन्धः। तदुभयासंसृष्टस्य तु यथाकथंचिदास्ताम्। को दोष इत्यर्थः। एतेन 'अमङ्गलाभ्यासरतिम्' (५।६५) इत्युक्तं प्रत्युक्तम् ॥७६॥

हिन्दी—विपत्ति के प्रतीकार करने में तत्पर या ऐश्वर्य के लिए समुत्सुक, इन्हीं दो प्रकार के व्यक्तियों द्वारा मङ्गलाचार का सेवन किया जाता है पर जो जगच्छरण्य है (अर्थात् सारे जगत् को अपनी शरण में रख सकता है) और निराकांक्ष हैं ऐसे रहने वाले उन हर को आशाओं के द्वारा दूषित स्वरूप वाले मङ्गलाचरणों से क्या लेना-देना ?

अकिंचनः सन्प्रभवः स संपदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥७७॥

अन्वयः—सः अकिञ्चनः सन् संपदां प्रभवः। पितृसद्मगोचरः सन् त्रिलोकनाथः, सः भीमरूपः शिवः इति उदीर्यते। पिनाकिनः याथार्थ्यविदः न सन्ति।

संजी०—अकिंचनेति ॥ स हरः। न विद्यते किंचन द्रव्यं यस्य सोऽकिंचनो दरिद्रः सन् संपदां प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम्। पितृसद्मगोचरः श्मशानाश्रयः सन् त्रयाणां लोकानां नाथः। 'तद्धितार्थ-' इत्यादिनोत्तरपदसमासः। स देवो भीमरूपो भयंकराकारः सन् शिवः सौम्यरूप इत्युदीर्यत उच्यते। अतः पिनाकिनो हरस्य यथाभूतोऽर्थो यथार्थस्तस्य भावो याथार्थ्यं तत्त्वं तस्य विदो न सन्ति। लोकोत्तरमहिम्नो निर्लेपस्य यथाकथंचिदवस्थानं न दोषायेति भावः। एतेन 'अवस्तुनिर्बन्धपरे' (५।६६) इति परिहृतं वेदितव्यम् ॥७७॥

हिन्दी—वे शंकर दरिद्र होने पर भी संपत्तियों के कारण हैं (अथवा उत्पत्ति स्थान हैं), श्मशान में रहते हुए भी तीनों लोकों के स्वामी हैं, उनका भयंकर रूप है, पर वे 'शिव' इस कल्याणकारी नाम से पुकारे जाते हैं। इस प्रकार उन पिनाकी को परमार्थतः समझने वाला कोई नहीं।

देवस्य लौकिकमलौकिकं च प्रसाधनं नास्तीत्याशयेनाह—

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥

अन्वयः—विश्वमूर्तेः वपुः न अवधार्यते विभूषणोद्भासि वा पिनद्धभोगि । गजाजिनालम्बि वा दुकूलधारि । कपालि वा अथवा इन्दुशेखरं स्यात् ।

संजी०—विभूषणेति ॥ विश्वं मूर्तिर्यस्येति विश्वमूर्तरष्टमूर्तेः शिवस्य वपुः शरीरं भूषणैरुद्भासत इति भूषणोद्भासि स्यात् । पिनद्धभोग्याभुक्तभुजंगमं वा स्यात् । पिनद्धेति नह्यतेरपिपूर्वात्कर्मणि क्तः । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यकारलोपः । गजाजिनालम्बि स्यात् । अथवा दुकूलधारि स्यात् । कपालमस्यास्तीति कपालि ब्रह्मशिरःकपालशेखरं वा स्यात् । इन्दुशेखरं वा स्यात् । नावधार्यते न निर्धार्यते । सर्वं संभवतीत्यर्थः । एतेन 'त्वमेव तावत्' (५ । ६७) इति श्लोकोक्तं प्रत्युक्तमिति ज्ञेयम् ॥७८॥

हिन्दी—उन विश्वमूर्त्ति भगवान् सदाशिव का शरीर कैसा है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । अलंकारों से वह शोभित हो रहा है, अथवा सर्पों को धारण करने से वह भयंकर है, गजचर्म से युक्त है वा सुन्दर क्षौमवस्त्रधारी है; नरमुण्डधारण किये हैं, अथवा उनके शिर पर चन्द्रमा है ।

'अयुक्तरूपं किमतःपरं वद' (५।६९) इति श्लोकोक्तं प्रत्याह—

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्म रजोविशुद्धये ।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ।७९।

अन्वयः—तदङ्ग संसर्गम् अवाप्य चिताभस्मरजः अपि ध्रुवं विशुद्धये कल्पते । तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं रजः अम्बरौकसां मौलिभिः विलिप्यते ।

संजी०—तदिति ॥ तस्य शिवस्याङ्गं तस्य संसर्गमवाप्यासाद्य चिताभस्मैव रजोविशुद्धये कल्पते । अलं पर्याप्नोतीत्यर्थः । अलमर्थयोगात् 'नमःस्वस्तिस्वाहा–' इत्यादिना चतुर्थी । ध्रुवं शोधकत्वम् । प्रमाणसिद्धमित्यर्थः । प्रमाणमेवाह –तथाहि । प्रसिद्धमेवेत्यर्थः । नृत्ये ताण्डवे योऽभिनयोऽर्थव्यञ्जकचेष्टाविशेषः स एव क्रिया तया निमित्तेन च्युतं पतितम् । चिताभस्मरज इति शेषः । अम्बरौकसां देवानां मौलिभिर्विलिप्यते ध्रियते । अशुद्धं चेत्कथमिन्द्रादिभिर्ध्रियेतेत्यर्थापत्तिरनुमानं वा प्रमाणमित्यर्थः ॥७९॥

हिन्दी—उन भगवान् शंकर के अंगसंसर्ग को पाकर वह चिताभस्म भी निश्चय ही पवित्र बन जाता है । क्योंकि जब वे रौद्र रूप धारण कर अभिनय की क्रिया करने लगते हैं तो उनके अंग से गिरे हुए उस चिता-भस्म को देवलोग भी अपने शिरों पर धारण करते हैं ।

यदुक्तम् 'दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु' (५।७२), 'इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना' (५।७०) इत्यादि च तंत्रोत्तरमाह—

असंपदस्तस्य वृषेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा ।
करोति पादावुपगम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली ॥८०॥

अन्वयः—प्रभिन्नः दिग्वारणवाहनः वृषाः वृषेण गच्छतः असंपदः तस्य पादौ मौलिना उपगम्य (तौ) विनिद्रमन्दाररजोरुणांगुली करोति ।

संजी०—असंपद इति ॥ प्रभिन्नो मदस्रावी दिग्वारणो दिग्गजो वाहनं यस्य सः । ऐरावतेनोढ इत्यर्थः । वृषा देवेन्द्रोऽसंपदो दरिद्रस्य वृषेण गच्छतो वृषभारूढस्य तस्येश्वरस्य पादौ मौलिना मुकुटेनोपगम्य । प्रणम्येत्यर्थः । विनिद्राणां विकसितानां मन्दाराणां कल्पतरुकुसुमानां रजोभिः परागैररुणा अङ्गुलयो ययोस्तौ तथोक्तौ करोति । दिग्गजारोहिणामिन्द्रादीनामपि वन्द्यस्येन्दुमौलेः किं संपदा वृषारोहणे वा को दोष इत्यर्थः ॥८०॥

हिन्दी—दिशाओं के हाथियों को जिसने पराजित कर दिया है। अथवा जिसके गण्डस्थल से मद चू रहा है, ऐसे मदोन्मत्त ऐरावत पर चढ़कर चलने वाले देवेन्द्र भी बैल पर चढ़कर चलने वाले उन दरिद्र के चरणों के पास अपने मुकुट के द्वारा जाकर (अपने शिर को उनके पैरों पर गिरा कर) अपने शिर पर धारण किये गये मन्दार पुष्पों के पराग से उनके चरणों की अंगुलियों को रक्तवर्ण कर देते हैं।

यदुक्तं 'वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता' (५।७२) इति तत्रोत्तरमाह—

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् ।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ।८१।

अन्वयः—दोषं विवक्षता अपि च्युतात्मना त्वया ईशं प्रति एकं साधु भाषितम् यम् आत्मभुवः अपि आमनन्ति सः लक्ष्यप्रभवः कथं भविष्यति ?

संजी०—विवक्षतेति ॥ च्युतात्मना नष्टस्वभावेनातएव दोषं दूषणं विवक्षता वक्तुमिच्छतापि त्वयेशं प्रत्येकम् 'अलक्ष्यजन्मता' इत्येतदेकम् । वच इत्यर्थः । साधु भाषितं सम्यगुक्तम् । कुतः । यमीश्वरमात्मभुवोऽपि ब्रह्मणोऽपि। 'ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः' इत्यमरः । कारणमामनन्त्युदाहरन्ति । विद्वांस इति शेषः । 'पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्–' इत्यादिना मनादेशः । स ईश्वरः कथं लक्ष्यप्रभवो लक्ष्यजन्मा भविष्यति । अनादिनिधनस्य भगवतः कारणशङ्काकलङ्कश्च नान्विष्यत इत्यर्थः ॥८१॥

हिन्दी—शिव में दोषोद्घाटन की इच्छा रखते हुए भी च्युतात्मा तुमने उस ईश्वर के विषय में एक बड़ी अच्छी बात जो यह कह दी कि विद्वान् लोग उसे ब्रह्मा

का भी कारण घोषित करते हैं, भला वह लक्ष्यप्रभवं—लक्ष्यजन्मा कैसे हो सकता है ? (इसलिये तुमने ठीक ही कहा कि वह अलक्ष्यजन्मा है।)

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥८२॥

अन्वयः—हे ब्रह्मचारिन् ! विवादेन अलम् । त्वया स यथा श्रुतः अशेषम् तावद् अस्तु । मम मनः अत्र भावैकरसं स्थितम् । कामवृत्तिः वचनीयम् न ईक्षते ।

संजी०—अलमिति ॥ अथवा विवादेन कलहेनालम् । त्वया यथा येन प्रकारेण स ईश्वरः श्रुतोऽशेषं कार्त्स्न्येन तथाविधस्तावत्प्रकार एवास्तु । मम मनस्त्वत्रेश्वरे भावः शृंगार एकोऽद्वितीयो रस आस्वाद्यो यस्य तत्तथा स्थितम् । तथाहि । कामवृत्तिः स्वेच्छाव्यवहारी वचनीयमस्थानसङ्गापवादं नेक्षते न विचारयति । न हि स्वेच्छासंचारिणो लोकापवादाद्बिभ्यतीति भावः ॥८२॥

हिन्दी—अथवा हे ब्रह्मचारिन् ! विवाद करना व्यर्थ है। जैसा तुमने सुना है, सब कुछ वैसा ही है। मेरा मन तो उन शंकर के सम्बन्ध में उनके प्रेम को आस्वाद्य समझकर संलग्न हैं। जो स्वेच्छा से चलने वाले हैं—वे दूसरे क्या कह रहे हैं इस पर विचार नहीं करते (मैं स्वेच्छा से अपनी राह पर चल रही हूँ, तुम्हारी एक भी नहीं सुनूँगी)।

निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥८३॥

अन्वयः—हे आलि स्फुरितोत्तराधरः अयं वटुः पुनः किमपि विवक्षुः वर्त्तते (तस्मात्) निवार्यताम् । (यतः) यः महतः अपभाषते केवलं सः (एव) न (अपि तु) यः तस्मात् शृणोति सः अपि पापभाक् भवति ।

संजी०—निवार्यतामिति ॥ हे आलि सखि । 'आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः । स्फुरितोत्तराधरः स्फुरणभूयिष्ठोष्ठोऽयं बटुर्माणवकः पुनः किमपि विवक्षुर्वक्तुमिच्छुः । ब्रुवः सन्नन्तादुप्रत्ययः । निवार्यताम् । तर्हि वक्तुमेव कथं न ददासीत्याह—तथाहि । यो महतः पूज्यानपभाषतेऽपवदति न केवलं स पापभाग्भवति । किन्तु तस्मादपभाषमाणात्पुरुषाद्यः शृणोति सोऽपि पापभाक् । भवतीति शेषः । अत्र स्मृतिः—'गुरोः प्राप्तः परीवादो न श्रोतव्यः कथंचन । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः' ॥इति॥८३॥

हिन्दी—हे सखि ! फड़कते हुए ओंठो वाला यह ब्रह्मचारी फिर भी कुछ कहना चाह रहा है अतः ऐसा करने से इसे शीघ्र रोको। क्योंकि जो बड़े लोगों की निन्दा करते हैं केवल वही नहीं, अपितु जो उस निन्दा को सुनते हैं। वे भी पाप के भागी होते हैं।

संप्रति गन्तव्यपक्षमाश्रयते--

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥८४॥

अन्वयः—अथवा इतः गमिष्यामि इति वादिनी स्तनभिन्नवल्कला बाला चचाल। वृषराजकेतनः च स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितः तां समाललम्बे।

संजी०—इत इति॥ अथवेतोऽन्यत्र गमिष्यामीति वादिनी वदन्ती स्तनाभ्यां भिन्नवल्कला रयवशात्कुचस्रस्तचीरा बाला पार्वती चचाल। वृषराजकेतनो वृषभध्वजश्च स्वरूपमास्थाय निजरूपमाश्रित्यकृतस्मितः सन् तां पार्वतीं समाललम्बे जग्राह ॥८४॥

हिन्दी—'अथवा यहाँ से मैं ही अन्यत्र चली जा रही हूँ' ऐसा कहने वाली एवं स्तन के रगड़ से विघटित अवयवों वाले वल्कलवस्त्र को धारण करने वाली पार्वती वहाँ से उठकर चल पड़ी। उधर वृषभध्वज शंकर जी ने भी अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर मुस्कराते हुए उसको पकड़ लिया।

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतीकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥८५॥

अन्वय—तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टिः निक्षेपणाय उद्धृतं पदं उद्वहन्ती शैलाधिराजतनया मार्गाचलव्यतिकराकुलिता न ययौ न तस्थौ।

संजी०—तमिति॥ तं देवं वीक्ष्य वेपथुमती कम्पवती सरसाङ्गयष्टिः स्विन्नगात्री। महादेवदर्शनेन देव्याः सात्विकभावोदय उक्तः। निक्षेपणायान्यत्र विन्यासायोद्धृतमुत्क्षिप्तं पदमङ्घ्रिमुद्वहन्ती शैलाधिराजतनया पार्वती मार्गेऽचलस्तस्य व्यतिकरेण समाहत्या। अवरोधनेनेति यावत्। आकुलिता संभ्रमिता सिन्धुर्नदीव। 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः। न ययौ न तस्थौ लज्जयेति भावः। वसन्ततिलकावृत्तमेतत् ॥८५॥

हिन्दी—उन शंकरजी को देखकर कम्पन और स्वेद से युक्त अंगयष्टिवाली, तथा आगे रखने के लिए पैर उठाकर उसे वहन करने वाली गिरिराजपुत्री पार्वती मार्ग में पड़े हुए पर्वत के द्वारा गति रोक लिए जाने के कारण व्याकुल नदी के समान न आगे बढ़ सकी और न तो ठहर ही सकी (दोनों के मध्य अवस्था वाली हो गई)।

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥८६॥

अन्वयः—हे अवनतांगि, अद्य प्रभृति त्वया तपोभिः क्रीतः तव दासः अस्मि चन्द्रमौलौ इति वादिनि सा अह्नाय नियमजं क्लमम् उत्ससर्ज । हि क्लेशः फलेन पुनः नवतां विधत्ते ।

संजी०—अद्येति ॥ चन्द्रमौलौ शिवे । हे अवनताङ्गि पार्वति, अद्य प्रभृति । अस्माद्दिनादारभ्येत्यर्थः । प्रभृतियोगादद्येति सप्तम्यर्थवाचिना पञ्चम्यर्थो लक्ष्यते । तव तपोभिः क्रीतः । 'दासृ दाने' । दासत आत्मानं ददातीति दासोऽस्मीति वादिनि वदति सति । सा देव्यह्नाय सपदि । 'स्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय द्राङ्मङ्क्षु सपदि द्रुतम्' इत्यमरः । नियमजं तपोजन्यं क्लमं क्लेशमुत्ससर्ज । फलप्राप्त्या क्लेशं विसस्मारेत्यर्थः । तथाहि क्लेशः फलेन फलसिद्धया पुनर्नवतां विधत्ते पूर्ववदेवाक्लिष्टतामापादयतीत्यर्थः । सफलः क्लेशो न क्लेश इति भावः ॥८६॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये तपःफलोदयो
नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

हिन्दी—'हे विनम्र अंगों वाली पार्वती, आज से लेकर तुम्हारे तप द्वारा क्रीत मैं तुम्हारा दास रहूँगा' । चन्द्रशेखर के ऐसा कहने पर पार्वती ने शीघ्र ही तपोजन्य अपनी थकावट एवं क्लेश आदि को दूर कर दिया—क्योंकि फल प्राप्ति हो जाने पर क्लेश फिर अपना नया स्वरूप (पहले की अपेक्षा एक दूसरा) धारण कर लेता है (फल के प्राप्त हो जाने पर किसी प्रकार का कष्ट नहीं रह जाता) ।

इस प्रकार कालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के पञ्चम सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥५॥

— ❀ —

षष्ठः सर्गः

अथ विश्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम् ।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति ।। १ ।।

अन्वयः——अथ गौरी विश्वात्मने मिथः सखीं 'भूभृतां नाथः मे दाता प्रमाणीक्रियताम्' इति संदिदेश ।

संजी०—अथेति ।। अथ देवदेवानुग्रहानन्तरं गौरी पार्वती विश्वात्मा स्वरूपं यस्येति । विश्वस्यात्मेति वा । विश्वात्मने शिवाय मिथो रहसि । 'मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि' इत्यमरः । सखीं संदिदेशातिससर्ज । क्रियामात्रयोगेऽपि संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । किमिति । भूभृतां नाथो हिमवान्मे मम दाता सन् । प्रमाणीक्रियतामिति । दातृत्वेन प्रमाणीक्रियतामित्यर्थः । प्रार्थनायां लोट् । पित्रा दीयमानायाः परिग्रहो मम महाननुग्रह इति भावः ।।१।।

हिन्दी—इसके पश्चात् पार्वती ने एकान्त में अपनी सखी से 'मुझे देने वाले मेरे पिता हैं अतः उन्ही से प्रार्थना कीजिये' इस प्रकार का संदेश भिजवाया ।

तया व्याहृतसंदेशा सा बभौ निभृता प्रिये ।
चूतयष्टिरिवाभ्यासे मधौ परभृतोन्मुखी ।। २ ।।

अन्वयः—तया व्याहृतसंदेशा प्रिये निभृता सा मधौनिभृता परमृतोन्मुखी चूतयष्टिः इव बभौ ।

संजी०—तयेति ।। तया सख्या । सखीमुखेनेत्यर्थः । व्याहृतसंदेशोक्तवाचिका प्रिये हरविषये निभृता निश्चला । परमासक्तेत्यर्थः । सा गौरी । मधौ वसन्ते निभृता स्थिरा परभृतया कोकिलयोन्मुखी मुखरा परभृतोन्मुखी । मुखशब्देनाभिभाषणव्यापारो लक्ष्यते । तथा च परभृतामुखेन व्याहरन्तीत्यर्थः । परभृतेति क्रियाशब्दविवक्षायाम् 'जातेरस्त्री—' इति ङीष्प्रत्ययो न भवति । तयेत्युपमेयस्य व्यस्तत्वादुपमानवाचि परभृताशब्दस्य समासः सोढव्यः । अथवा भृद्भरणम् । संपदादित्वात्क्विप् । परैर्भृद्यस्यास्तया परभृतेति व्यासेन व्याख्येयम् । पदमञ्जरीकारस्तु परैर्भ्रियत इति कर्मणि क्विपमाह । चूतयष्टिश्चूतशाखेवाभ्यासेऽन्तिके बभौ । 'सदेशाभ्याससविधसमर्यादसवेशवत् । उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम् । इत्यमरः ।।२।।

हिन्दी—सखियों के मुख से इस प्रकार संदेश भिजवाकर पार्वती शिव के विषय में इस प्रकार स्थिर (निश्चल) हो गई, जिस प्रकार आम्रवृक्ष की शाखा कोकिल के द्वारा संदेश भिजवा कर अपने प्रियतम वसन्त के विषय में निश्चल हो कर शोभा पाती है।

स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम्।
ऋषीञ्ज्योतिर्मयान्सप्त सस्मार स्मरशासनः ॥ ३ ॥

अन्वयः—स स्मरशासनः तथा इति प्रतिज्ञाय उमां कथमपि विसृज्य ज्योतिर्मयान् सप्त ऋषीन् सस्मार।

संजी०—स इति ॥ स प्रकृतः। शास्तीति शासनः। बहुलग्रहणात्कर्तरि ल्युट्। स्मरस्य शासन ईश्वरस्तथेति प्रतिज्ञाय। तथा करिष्यामीत्युक्त्वेत्यर्थः। उमां कथमपि कृच्छ्रेण विसृज्य। तत्र गाढानुरागत्वादिति भावः। ज्योतिर्मयांस्तेजोरूपान् सप्तर्षीनङ्गिरःप्रभृतीन्सस्मार स्मृतवान् ॥३॥

हिन्दी—उन शङ्कर जी ने 'तथास्तु' (ऐसा ही करूँगा) इस प्रकार कह कर किसी-किसी प्रकार पार्वती को दुःख से त्याग कर ज्योतिःस्वरूप सप्तर्षियों का मन से स्मरण किया।

ते प्रभामण्डलैर्व्योम द्योतयन्तस्तपोधनाः।
सारुन्धतीकाः सपदि प्रादुरासन्पुरः प्रभोः ॥ ४ ॥

अन्वयः—ते तपोधनाः प्रभामण्डलैः व्योम द्योतयन्तः सा अरुन्धतीकाः सन्तः सपदि प्रभोः पुरः प्रादुरासन्।

संजी०—त इति ॥ ते तप एव धनं येषां ते तपोधनाः सप्तर्षयः प्रभामण्डलैस्तेजःपुञ्जैर्व्योमाकाशं द्योतयन्तः प्रकाशयन्तः। अरुन्धत्या सह वर्तन्त इति सारुन्धतीकाः सन्तः। 'नद्यृतश्च' इति कप्। सपदि प्रभोरीश्वरस्य पुरः पुरोभागे प्रादुरासन्प्रत्यक्षा बभूवुः ॥४॥

हिन्दी—वे महातपस्वी सप्तर्षिगण अपने प्रभामण्डल से आकाश को प्रकाशित करते हुए अरुन्धती के साथ सद्यः शिवजी के सामने प्रकट हो गये।

इतः परं षड्भिः श्लोकैस्तानेव मुनीन्वर्णयति—

आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्किरवीचिषु।
व्योमगङ्गाप्रवाहेषु दिङ्नागमदगन्धिषु ॥५॥

अन्वयः—तीरमन्दारकुसुमोत्करवीचिषु दिङ्नागमदगन्धिषु व्योमगङ्गा प्रवाहेषु आप्लुताः ते प्रादुरासन्।

संजी०—आप्लुता इति ॥ उत्किरन्ति विक्षिपन्तीत्युत्किराः। 'इगुपध-' इत्यादिना कप्रत्ययः। तीरे ये मन्दाराः कल्पवृक्षास्तेषां कुसुमानामुत्किरा

वीचयस्तरंगा येषां तेषु दिङ्नागानां दिग्गजानां मदगन्धो येष्विति तथोक्तेषु व्योमगङ्गाप्रवाहेष्वाकाशगङ्गास्रोत:स्वाप्लुता: स्नाता: ॥५॥

हिन्दी—तीर पर के कल्पवृक्षों के गिरे हुए फूलों को अपनी लहरों से उछालने वाली तथा दिग्गजों के मदजल से सुगन्धित ऐसी आकाशगङ्गा में वे ऋषिगण स्नान किए हुए प्रगट हुए।

मुक्तायज्ञोपवीतानि बिभ्रतो हैमवल्कला:।
रत्नाक्षसूत्रा: प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिता: ॥६॥

अन्वय:—मुक्तायज्ञोपवीतानि बिभ्रत: हैमवल्कला: रत्नाक्षसूत्रा: प्रव्रज्याम् आश्रिता: कल्पवृक्षा इव स्थिता: ते प्रादुरासन्।

संजी०—मुक्तेति ॥ मुक्तानां मौक्तिकानां यज्ञोपवीतानि। मुक्तामयानीत्यर्थ:। बिभ्रतो दधाना:। हेममयानि वल्कलानि येषां ते हैमवल्कला: रत्नमयान्यक्षसूत्राणि येषां ते रत्नाक्षसूत्रा:। प्रव्रज्यां प्रव्रजनम्। 'व्रजयजोर्भावे क्यप्' इति क्यप्। आश्रिता: कल्पवृक्षा इव स्थिता:। अत्र चतुर्थाश्रमवाचिना प्रव्रज्याशब्देन वानप्रस्थाश्रमो लक्ष्यते। 'जहु: परिग्रहव्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विन:' (६।३४) इति सपत्नीकत्वाभिधानात् 'सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतोऽपि सन्' इति वानप्रस्थस्योभयथा स्मरणात् ॥६॥

हिन्दी—वे सप्तर्षिगण मुक्तामय मोती के समान यज्ञोपवीतधारण किए हुए सुवर्णमय सदृश (पीत) वल्कल पहने हुए तथा रत्नमय अक्षमाला हाथ में लिए हुए संन्यास व्रत में स्थित कल्पवृक्षों के समान (शङ्कर के सामने) उपस्थित हुए।

अध:प्रस्थापिताश्वेन समावर्जितकेतुना।
सहस्ररश्मिना साक्षात्सप्रणाममुदीक्षिता: ॥७॥

अन्वय:—अध: प्रस्थापिताश्वेन समावर्जितकेतुना सहस्ररश्मिना साक्षात् सप्रणामम् उदीक्षिता: ते प्रादुरासन्।

संजी०—अध इति ॥ अध:प्रस्थापिताश्वेन। सूर्यमण्डलोपरिवर्तित्वात्सप्तर्षिमण्डलस्येति भाव:। समावर्जितकेतुना तन्मण्डलाघातशंकया नामितध्वजेन सहस्ररश्मिना सूर्येण साक्षात्स्वयमेव सप्रणाममुदीक्षिता:। गमनाभ्यनुज्ञादानपर्यन्तमित्यर्थ:। भगवत: सूर्यस्याप्युपास्या इति भाव: ॥७॥

हिन्दी—नीचे चलने वाले अपने अश्वों को स्थिर करते हुए, तथा सप्तर्षि मण्डलाघात की आशङ्का से ध्वजा को कुछ नीचे की ओर झुकाते हुए सहस्ररश्मि के द्वारा प्रणामपूर्वक देखे जाते हुए सप्तर्षिगण उत्पन्न हुए।

आसक्तबाहुलतया सार्धमुद्धृतया भुवा ।
महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि ॥८॥

अन्वयः—प्रलयापदि आसक्तबाहुलतया उद्धृतया भुवासार्धम् महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ता ते प्रादुरासन् ।

संजी०—आसक्तेति ॥ पुनः किंविधाः । प्रलयापदि कल्पान्तसंकट आसक्तबाहुलतया । दंष्ट्रायामिति शेषः । उद्धृतया दंष्ट्रयेति शेषः । भुवा सार्धं धरण्या सह महावराहदंष्ट्रायां विश्रान्ताः । महाप्रलयेऽप्यविनाशिन इत्यर्थः ॥८॥

हिन्दी—प्रलयकालीन विपत्ति में भी वराह के दाँतों पर विश्राम करने वाली सभय पृथ्वी के साथ उस पर आनन्द से बैठने वाले सप्तर्षिगण प्रकट हुए ।

सर्गशेषप्रणयनाद्विश्वयोनेरनन्तरम् ।
पुरातनाः पुराविद्भिर्धातार इति कीर्तिताः ॥९॥

अन्वयः—विश्वयोनेः अनन्तरं सर्गशेषप्रणयनात् पुराविद्भिः पुरातनाः धातार इति कीर्त्तिताः ते प्रादुरासन् ।

संजी०—सर्गेति ॥ विश्वयोनेर्ब्रह्मणोऽनन्तरं सर्गशेषस्य प्रणयनात् । ब्रह्मसृष्टावशिष्टसृष्टेः करणाद्धेतोरित्यर्थः । पुराविद्भिः पुराणवेदिभिर्व्यासादिभिः पुरातना धातार इति कीर्तिताः । विश्वयोनेरिति संबन्धमात्रे षष्ठी । तस्यानन्तरमिति भाष्ये दर्शनात् । अपादानत्वविवक्षायां तु पञ्चमी । अयमदःशब्दो (?) यथाशब्दावृत्तादनन्तरस्येति शाबरभाष्ये दर्शनात् । तथा 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यत्र 'अथ वेदाध्ययनादनन्तरम्' इत्याचार्याः । कविश्च 'पुराणपत्रापगमादनन्तरम्' इति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् ॥९॥

हिन्दी—ब्रह्मा के बाद शेष सृष्टि की रचना के कारण व्यासादि ऋषियों ने पुराणों में पुरातन विधाता के नाम से कहा है, ऐसे सप्तर्षिगण प्रकट हुए ।

प्राक्तनानां विशुद्धानां परिपाकमुपेयुषाम् ।
तपसामुपभुञ्जानाः फलान्यपि तपस्विनः ॥१०॥

अन्वयः—प्राक्तनानां विशुद्धानां परिपाकम् उपेयुषां तपसां फलानि उपभुञ्जानाः अपि तपस्विनः ते प्रादुरासन् ।

संजी०—प्राक्तननामिति ॥ प्राक्तनानां जन्मान्तरभवानां विशुद्धानां निर्मलानां परिपाकं फलदानोन्मुखत्वमुपेयुषां गतानां तपसां फलान्युपभुञ्जाना अपि तपस्विनस्तपोनिष्ठाः । प्रारब्धभोगिनो निस्पृहाश्चेति भावः । कुलकम् ॥१०॥

हिन्दी—पूर्वजन्म की, की गई तपस्या के फल को भोगते हुए भी तपोनिष्ठ सप्तर्षि समूह शङ्कर के सम्मुख उपस्थित हुए ।

तेषां मध्यगता साध्वी पत्युः पादार्पितेक्षणा ।
साक्षादिव तपःसिद्धिर्बभासे बह्वरुन्धती ॥११॥

अन्वयः—तेषां मध्यगता साध्वी पत्युः पादार्पितेक्षणा अरुन्धती साक्षात् तपः सिद्धिः इव बहु बभासे ।

संजी०—तेषामिति ॥ तेषामृषीणां मध्यगता साध्वी पतिव्रता । अतएव पत्युर्वसिष्ठस्य पादयोरर्पितेक्षणा निविष्टदृष्टिररुन्धती साक्षात्प्रत्यक्षा तपःसिद्धिरिव तेषामेवेति शेषः । तेषां मध्यगतेति लिंगवचनादिसाम्यादियमुपमा । बहु भूयिष्ठं बभासे भाति स्म ॥११॥

हिन्दी—उन सप्तर्षियों के मध्य रहने वाली पतिव्रता अरुन्धती पति के चरणों की ओर देखती हुई, बहुत दिनों से की गई तपस्या की साक्षात् मूर्तिमती तपःसिद्धि के समान शोभित हो रही थी ।

तामगौरवभेदेन मुनींश्चापश्यदीश्वरः ।
स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम् ॥१२॥

अन्वयः—ईश्वरः तां मुनीन् च अगौरवभेदेन अपश्यत् । हि यतः स्त्रीपुमान् इति एषा अनास्था । किन्तु सतां वृत्तं महितं भवति ।

संजी०—तामिति ॥ ईश्वरो भगवांस्तामरुन्धतीं मुनींश्चागौरवभेदेन समानप्रतिपत्त्यापश्यद् दृष्टवान् । न चायमविवेक इत्याह-हि यस्मात्स्त्री पुमांश्चेत्येषानास्था स्त्रीपुंसभेदो न विवक्षितः । किंतु सतां साधूनां वृत्तं चरित्रमेव महितं पूज्यम् । 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः' इति भावः ॥१२॥

हिन्दी—शङ्कर ने अरुन्धती एवं उन सप्तर्षियों को एक समान दृष्टि से देखा । स्त्री और पुरुष के भेद में उनकी आस्था नहीं थी । क्योंकि साधुओं के चरित्र ही पूजा योग्य होते हैं ।

तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थमादरः ।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥१३॥

अन्वयः—तद् दर्शनात् शंभोः दारार्थम् आदरः भूयान् अभूत् धर्म्याणां क्रियाणां सत्पत्न्यः मूलकारणं खलु ।

संजी०—तदिति ॥ तद्दर्शनादरुन्धतीदर्शनाच्छंभोर्दारार्थं परिग्रहार्थमादरो भूयान्बहुतरोऽभूत् । ननु दाराः कुत्रोपयुज्यन्त इत्यत्राह—धर्म्याणां धर्मादनपेतानाम् । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः । क्रियमाणानामिज्या-

दीनां सत्यः पतिव्रताः पत्न्यः सत्पत्न्यः 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इति ङीप् नकारश्च। मूलकारणं खलु ॥१३॥

हिन्दी--अरुन्धती को देखने से शङ्कर के हृदय में स्त्री जाति के प्रति अत्यन्त आदर का भाव उत्पन्न हुआ, क्योंकि धार्मिक क्रियाओं में पतिव्रता स्त्री ही मुख्य साधन होती हैं।

धर्मेणापि पदं शर्वे कारिते पार्वतीं प्रति।
पूर्वापराधभीतस्य कामस्योच्छ्वसितं मनः ॥१४॥

अन्वयः--धर्मेण अपि शर्वे पार्वतीं प्रति पदं कारिते सति पूर्वापराधभीतस्य कामस्य मनः उच्छ्वसितम्।

संजी०—धर्मेणेति ॥ धर्मेण दारसंजिघृक्षालक्षणेनापि कर्त्रा। शर्वे ईश्वरे पार्वतीं प्रति पदं कारिते सति। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इति शर्वस्याणिकर्तुः कर्मत्वम्। पूर्वापराधभीतस्य कामस्य मन उच्छ्वसितम्। पुनरुज्जीवनावकाशो भवतीति सप्रत्याशमभूदित्यर्थः ॥१४॥

हिन्दी--धर्म दृष्टि से भी जब सदाशिव के मन में पार्वती के प्रति गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश की इच्छा हुई, तब प्रथम अपराध से डरे हुये कामदेव के मन में कुछ ढाढ़स उत्पन्न हुआ।

अथ ते मुनयः सर्वे मानयित्वा जगद्गुरुम्।
इदमूचुरनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः ॥१५॥

अन्वयः—अथ अनूचानाः प्रीतिकण्टकितत्वचः ते सर्वे मुनयः जगद्गुरुं मानयित्वा इदम् ऊचुः।

संजी०--अथेति ॥ अथानूचानाः सांगवेदप्रवक्तारः। 'अनूचानः प्रवचने सांगेऽधीतीगुरोस्तु यः' इत्यमरः। उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति निपातः। प्रीत्या कण्टकिताः पुलकितास्त्वचो येषां ते तथोक्ताः। ते सर्वे मुनयो जगद्गुरुं हरं मानयित्वा पूजयित्वेदं वक्ष्यमाणमूचुः ॥१५॥

हिन्दी - साङ्गवेद में निष्णात तथा प्रेम के कारण रोमाञ्चित शरीरवाले उन सप्तर्षियों ने शङ्कर की पूजा कर उनसे ऐसा कहा।

यद्ब्रह्म सम्यगाम्नातं यदग्नौ विधिना हुतम्।
यच्च तप्तं तपस्तस्य विपक्वं फलमद्य नः ॥१६॥

अन्वयः—ब्रह्म सम्यग् आम्नातं यत्, अग्नौ विधिना हुतं यत् तपः तप्तं यत् तस्य फलम् अद्य नः विपक्वम्।

संजी० –यदिति ॥ ब्रह्म वेदः। 'वेदस्तत्वं तपो ब्रह्म' इत्यमरः। सम्यंगियमपूर्वकमाम्नातमधीतमिति यत्। अग्नौ विधिना हुतमिति यत्। तपश्चा-

न्द्रायणादिकं तप्तमिति च यत्तस्याध्ययनेज्यातपोरूपस्य । आश्रमत्रयसाध्यस्य कृत्स्नस्यापि कर्मण इत्यर्थः । समुदायाभिप्रायकमेकवचनमन्यथावृत्त्यान्वयप्रसंगात् । न च नपुंसकैकवद्भावः, अनपुंसकेति नियमात् । फलं कार्यमद्य नोऽस्माकं विपक्वम् । सुनिष्पन्नमित्यर्थः । कर्मणि क्तः । 'पचो वः' इति निष्ठातस्य वत्वम् ॥१६॥

हिन्दी—आज तक हम लोगों ने जो वेदाध्ययन किया, अग्नि में विधिपूर्वक हवन किया और जो तप किया उन सबका परिपक्व फल आज हम लोगों को प्राप्त हो गया।

तदेव फलमाह—

यदध्यक्षेण जगतां वयमारोपितास्त्वया ।
मनोरथस्याविषयं मनोविषयमात्मनः ॥१७॥

अन्वयः—यत् जगताम् अध्यक्षेण त्वया वयम् मनोरथस्य अविषयम् आत्मनः मनोविषयम् आरोपिताः ।

संजी० यदिति ॥ यद्यस्मात्कारणाज्जगतामध्यक्षेणाधिपेन त्वया वयं मनोरथस्याभिलाषस्याविषयमगोचरमात्मनः स्वस्य मनोविषयं मनोदेशमारोपिताः प्रापिताः । तस्माद्विपक्वं फलमिति पूर्वेण सम्बन्धः । सकलजगदन्वेष्टव्यस्य भगवतोऽपि वयमन्वेष्या भवाम इति परमोत्कृष्टा वयमिति भावः ॥१७॥

हिन्दी—हे प्रभो ! समस्त जगत् के अधिष्ठाता होते हुये भी आप ने जो मनोरथ के अविषय अपने मन से हम लोगों को अपने मन का विषय बना कर स्मरण किया इससे हमलोग कृतार्थ हो गये ।

तदेवोपपादयति—

यस्य चेतसि वर्तेथाः स तावत्कृतिनां वरः ।
किं पुनर्ब्रह्मयोनेर्यस्तव चेतसि वर्तते ॥१८॥

अन्वयः—यस्य चेतसि वर्त्तेथाः स तावत् कृतिनां वरः अस्ति । ब्रह्मयोनेः तव चेतसि यः वर्त्तते स किं पुनः ।

संजी०—यस्येति ॥ यस्य जनस्य चेतसि वर्तेथाः । येन स्मर्यस इत्यर्थः । स तावत्स एव कृतिनां कृतकृत्यानां वरः श्रेष्ठः । ब्रह्मणो वेदस्य वेधसो वा योनेः कारणस्य । यद्वा वेदप्रमाणकस्य तव चेतसि यो वर्तते । त्वया स्मर्यंत इत्यर्थः ! किं पुनः । स कृतिनां वर इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥१८॥

हिन्दी—जिसके चित्त में आप स्वयं निवास करते हैं, वही कृतकृत्यों में श्रेष्ठ हो जाता है फिर आपके चित्त में जो बसता है उसके विषय में क्या कहा जाय ।

सत्यमर्काच्च सोमाच्च परमध्यास्महे पदम् ।
अद्य तूच्चैस्तरं ताभ्यां स्मरणानुग्रहात्तव ॥१६॥

अन्वयः—अर्कात् सोमात् च परं पदम् अध्यास्महे सत्यम् । अद्य तु तव स्मरणानुग्रहात् ताभ्याम् उच्चैस्तरं पदम् अध्यास्महे ।

संजी०—सत्यमिति ॥ अर्कात्सूर्याच्च सोमाच्चन्द्राच्च परमुच्चैः पदं स्थानमध्यास्महे तिष्ठामः । वयमिति शेषः । सत्यम् । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम् । अद्य तु तव कर्तुः । स्मरणमेवानुग्रहः प्रसादस्तस्माद्धेतोः । ताभ्यामर्केन्दुभ्यामुच्चैस्तरमत्युच्चं पदम् । अध्यास्महे इति सम्बन्धः । उच्चैस्तरमिति द्रव्यप्रकर्षत्वान्नामुप्रत्ययः ॥१९॥

हिन्दी—हे प्रभो ! यद्यपि हम लोग सर्वथा सूर्य और चन्द्र से भी उच्च स्थानों में रहते हैं, यह बात सत्य है लेकिन आज आप के स्मरण से और भी उच्चतर स्थान में चढ़ गये ।

त्वत्संभावितमात्मानं बहु मन्यामहे वयम् ।
प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ॥२०॥

अन्वयः—वयं त्वत्संभावितम् आत्मानं बहु मन्यामहे । उत्तमादरः स्वगुणेषु प्रायः प्रत्ययम् आधत्ते ।

संजी०—त्वदिति ॥ वयं त्वया संभावितं सत्कृतं त्वत्संभावितमात्मानमात्मस्वरूपं बह्वधिकं यथा तथा मन्यामहे । तथाहि । उत्तमादरः सत्पुरुषकर्तृकः सत्कारः स्वगुणेषु विषये प्रायेण भूम्ना प्रत्ययं विश्वासमाधत्ते जनयति । सर्वस्यापि महाजनपरिग्रह एव पूज्यताहेतुरित्यर्थः ॥२०॥

हिन्दी—हे प्रभो ! आप से आदर प्राप्त किये जाने के कारण हम लोगों को अपने ऊपर बड़ी प्रसन्नता हो रही है । क्योंकि बड़ों के सम्मान से अपने गुणों में विश्वास होता है ।

या नः प्रीतिर्विरूपाक्ष त्वदनुध्यानसंभवा ।
सा किमावेद्यते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥२१॥

अन्वयः—हे विरूपाक्ष ! नः त्वदनुध्यानसंभवा या प्रीतिः सा तुभ्यं किम् आवेद्यते । त्वं देहिनाम् अन्तरात्मा असि ।

संजी०—येति ॥ हे विरूपाक्ष, त्वदनुध्यानसंभवा त्वत्कर्तृकस्मरणजन्या नोऽस्माकं या प्रीतिः सा प्रीतिस्तुभ्यं किमावेद्यते किमर्थं निवेद्यते । तथाहि । देहिनां प्राणिनामन्तरात्मान्तर्याम्यसि । सर्वसाक्षिणा त्वयास्मत्प्रीतिरनावेदितापि ज्ञायत एव यतस्ततो न बुद्धबोधनं संभवतीति भावः ॥२१॥

हिन्दी—हे त्रिलोचन ! आप के स्मरण करने से जो हम लोगों के हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे किस तरह आप से कहें । आप तो अन्तर्यामी हैं ही अतः सब कुछ जानते हैं ।

साक्षाद्दृष्टोऽसि न पुनर्विद्मस्त्वां वयमञ्जसा ।
प्रसीद कथयात्मानं न धियां पथि वर्तसे ॥२२॥

अन्वयः—हे देव ! साक्षाद् दृष्टः असि । अञ्जसा पुनः त्वां वयं न विद्मः । अतः प्रसीद । आत्मानं कथय । धियां पथि न वर्त्तसे ।

संजी०--साक्षादिति ॥ हे देव, साक्षात्प्रत्यक्षेण दृष्टोऽसि । अञ्जसा पुनस्तत्त्वतस्तु त्वां वयं न विद्मः । दृश्यमानस्य रूपस्यातात्त्विकत्वादिति भावः । अतः प्रसीदानुगृहाण । आत्मानं निजस्वरूपं कथय । न चाकथितं तत्सुबोधमित्याह--धियां बुद्धीनां पथि न वर्तसे । अतस्त्वयैव त्वद्रूपं कथनीयमित्यर्थः ॥२२॥

हिन्दी--हे देव ! यद्यपि आप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहे हो पर तत्त्वतः हम लोग आप को समझ नहीं पा रहे हैं । हे महेश्वर, प्रसन्न होकर आप स्वयं अपने को बताइये । क्योंकि आप बुद्धि से सर्वथा परे हैं ।

तात्त्विकं रूपं तावदास्तां, न दृश्यमानमपि रूपं तत्त्वतो रूपयितुं शक्यमित्याह--

किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन बिभर्षि तत् ।
अथ विश्वस्य संहर्ता भागः कतम एष ते ॥२३॥

अन्वयः—हे देव ! एष ते भागः किम् ? येन व्यक्तं सृजसि सः उत येन तत् बिभर्षि सः अथ यः विश्वस्य संहर्त्ता सः कतमः ।

संजी०--किमिति । हे देव, एष दृश्यमानस्ते भागो मूर्तिः किं येन भागेन व्यक्तं प्रपञ्चं सृजसि सः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्सर्वत्र तच्छब्दोऽध्याहार्यः । उत येन भागेन तद्व्यक्तं बिभर्षि पालयसि स वा । अथ यो भागस्तस्य विश्वस्य संहर्ता स वा । किमादयः संदेहे । कतमः । ब्रह्मविष्णुमहेश्वरेष्वयं कतमो भागस्तदुच्यतामित्यर्थः ॥२३॥

हिन्दी--हे देव ! जिस मूर्ति को हम अपने सामने प्रत्यक्ष देख रहे हैं क्या वह मूर्ति सृष्टि करने वाली हैं वा पालन करने वाली है अथवा संहार करने वाली हैं—तीनों में यह कौन है ?

ननु हर इत्येवं निश्चयात्कथमयं संशयस्तत्राह--

अथवा सुमहत्येषा प्रार्थना देव तिष्ठतु ।
चिन्तितोपस्थितांस्तावच्छाधि नः करवाम किम् ॥२४॥

अन्वयः—अथवा हे देवः सुमहती एषा प्रार्थना तिष्ठतु। चिन्तितोपस्थितान् नः तावत् शाधि। किं करवाम।

संजी०—अथवेति॥ अथवा हे देव, सुमहती। गुह्यतमत्वादतिदुर्लभेत्यर्थः। एषा प्रार्थना निजरूपनिरूपणप्रार्थना तिष्ठतु। किन्तु चिन्तितेन चिन्तिता एवोपस्थिताश्चिन्तितोपस्थितास्तान्नोऽस्मांस्तावच्छाध्याज्ञापय किं करवाम। प्रार्थनायां लोट्। अलमप्रस्तुतेन, प्रस्तुते तावन्नियुङ्क्ष्वेत्यर्थः।२४।

हिन्दी—अथवा हे महादेव! यह दुर्लभ प्रार्थना यहीं रहने दीजिये, इसका अवसर नहीं है। कृपया आप बताइये कि आप ने किस निमित्त हम लोगों का स्मरण किया है? क्या आज्ञा है? हम लोग क्या करें?

अथ मौलिगतस्येन्दोर्विशदैर्दशनांशुभिः।
उपचिन्वन्प्रभां तन्वीं प्रत्याह परमेश्वरः॥२५॥

अन्वयः—अथ परमेश्वरः मौलिगतस्य इन्दोः तन्वीं प्रभां विशदैः दशनांशुभिः उपचिन्वन् प्रत्याह—

संजी०—अथेति॥ अथ परमेश्वरो मौलिगतस्येन्दोस्तन्वीमल्पाम्। कलामात्रत्वादिति भावः। प्रभां कान्तिं विशदैः शुभ्रैर्दशनांशुभिरुपचिन्वन्वर्धयन् प्रत्याह। प्रत्युवाचेत्यर्थः॥२५॥

हिन्दी—तदनन्तर मन्द हास के कारण विकसित अपने स्वच्छ दाँतों की प्रभा से शिरःस्थित बालचन्द्रमा की दुर्बल प्रभा को और विकसित करते हुये महेश्वर ने उन सप्तर्षियों से कहा—

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्तयः।
ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्थंभूतोऽस्मि सूचितः॥२६॥

अन्वयः—हे मुनयः कश्चित् मे प्रवृत्तयः यथा स्वार्था न तथा वः विदितम्। अष्टाभिः मूर्त्तिभिः इत्थम्भूतः सूचितः अस्मि।

संजी०—विदितमिति॥ हे मुनयः, काश्चिदपि मे प्रवृत्तयो व्यापाराः स्वार्था न भवन्ति यथा तथा वो युष्माकं विदितम्। वाक्यार्थः कर्म। बुद्ध्यर्थत्वाद्वर्तमाने क्तः तद्योगात्षष्ठी। प्रवृत्तिपारार्थ्ये प्रमाणमाह—अष्टाभिर्मूर्तिभिरित्थंभूतं इमं प्रकारं परार्थप्रवृत्तिरूपं प्राप्तः। 'भू प्राप्तौ' इति धातोः कर्तरि क्तः। सूचितो ज्ञापितोऽस्मि। मत्स्वमूर्तिचेष्टया स्वपारार्थ्यमनुमेयमित्यर्थः॥२६॥

हिन्दी—हे मुनिगण! आप लोग यह जानते ही हैं कि हमारी कोई भी प्रवृत्ति स्वार्थ के लिये नहीं होती। यह बात हमारी आठों मूर्तियों से स्पष्ट रूप से सूचित होती है।

सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः ।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः ॥२७॥

अन्वयः---स अहम् 'तृष्णातुरैः चातकैः वृष्टिं विद्युत्वान् इव' अरिविप्रकृतैः देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः अस्मि ।

संजी०---सोऽहमिति ॥ स परार्थवृत्तिरहं तृष्णातुरैश्चातकैर्वृष्टिं विद्युत्वान्मेघ इवारिविप्रकृतैः शत्रुपीडितैर्देवैः प्रसूतिं पुत्रोत्पादनं प्रति याचितः । याचते दुहादित्वादप्रधाने कर्मणि क्तः ॥२७॥

हिन्दी---जिस प्रकार प्यासे चातक मेघ से वृष्टि की याचना करते हैं उसी तरह शत्रु से पीड़ित देवता लोग मुझसे पुत्रोत्पत्ति चाहते हैं ।

अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने ।
उत्पत्तये हविर्भोक्तुर्यजमान इवारणिम् ॥२८॥

अन्वयः---अतः आत्मजन्मने पार्वतीं यजमानः हविर्भोक्तुः उत्पत्तये अरणिम् आहर्तुम् इच्छामि ।

संजी०---अत इति ॥ अतः सुरप्रार्थितत्वाद्धेतोरात्मने पुत्राय । पुत्रमुत्पादयितुमित्यर्थः । 'क्रियार्थोपपदस्य-' इत्यादिना चतुर्थी । पार्वतीं यजमानो यष्टा । 'पूङ्यजोः शानन्' इति शानन्प्रत्ययः । हविर्भोक्तुरग्नेरुत्पत्तयेऽरणिमग्निमन्थनदारुविशेषमिव । 'निर्मन्थ्यदारुणि त्वरणिर्द्वयोः' इत्यमरः । आहर्तुं संग्रहीतुमिच्छामि ॥२८॥

हिन्दी--जिस प्रकार यजमान लोग आग पैदा करने के लिये अरणि की इच्छा करते हैं, उसी भाँति पुत्र पैदा करने के लिए मैं पार्वती के साथ विवाह की इच्छा करता हूँ ।

तामस्मदर्थे युष्माभिर्याचितव्यो हिमालयः ।
विक्रियायै न कल्पन्ते संबन्धाः सदनुष्ठिताः ॥२९॥

अन्वयः---अस्मदर्थे युष्माभिः तां हिमालयः याचितव्यः सदनुष्ठिताः सम्बन्धाः विक्रियायै न कल्पन्ते ।

संजी०---तामिति ॥ अस्मदर्थेऽस्मत्प्रयोजने निमित्ते सति युष्माभिस्तां पार्वतीं हिमालयो हिमवान्याचितव्यः । याचेर्दुहादित्वादप्रधाने कर्मणि तव्यप्रत्ययः । आवश्यकं चैतदित्याह--सद्भिः सत्पुरुषैरनुष्ठिताः संघटिताः संबन्धा यौनादयो विक्रियायै वैकल्योत्पादनाय न कल्पन्ते न पर्याप्नुवन्ति । न समर्था इत्यर्थः । अलमर्थयोगाच्चतुर्थी ॥२९॥

हिन्दी—इसलिये मेरी ओर से हिमालय से पार्वती के लिये आप लोग

प्रार्थना कीजिये। क्योंकि सज्जनों के साथ संघटित विवाहादि संबन्धों में कोई बाधा नहीं आती।

न चाहं लौल्यात्स्त्रियमिच्छामि किन्तु देवोपकाराय। यद्येवं निखिलदेवेषु विद्यमानेषु हिमगिरेः शिलाभूतस्य कन्यापरिणयेच्छा कथमित्युक्ते स एव मे श्लाघ्यसंबन्धोऽत्रभवान्हिमवानित्याह—

उन्नतेन स्थितिमता धुरमुद्वहता भुवः।
तेन योजितसंबन्धं वित्त मामप्यवञ्चितम् ॥३०॥

अन्वयः—उन्नतेन स्थितिमता भुवः धुरम् उद्वहता तेन योजितसम्बन्धं माम् अपि अवञ्चितं वित्त।

संजी०—उन्नतेनेति ॥ उन्नतेन प्रांशुना प्रसिद्धेन च स्थितिमता प्रतिष्ठावता भुवो धुरं भारमुद्वहता। निर्वाहकेणेत्यर्थः। तेन हिमवता योजितः संघटितः संबन्धो यौनसंबन्धो यस्य तं मामप्यवञ्चितमव्यामोहितं वित्त जानीत। 'विद ज्ञाने' इति धातोर्लोट् ॥३०॥

हिन्दी—उन्नत, स्थिर और सारी पृथ्वी को धारण करने वाले हिमालय से यदि हमारा संबन्ध हो जाय तो मुझको व्यामोह से रहित (विज्ञ) समझिये।

तर्हि स किं वाच्य इत्याशंक्याह—

एवं वाच्यः स कन्यार्थमिति वो नोपदिश्यते।
भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ति हि साधवः ॥३१॥

अन्वय—'कन्यार्थं स एवं वाच्यः' इति वः न उपदिश्यते। हि साधवः भवत्प्रणीतम् आचारम् आमनन्ति।

संजी०—एवमिति ॥ **कन्यार्थं कन्याप्रदानाय स हिमवानेवं वाच्य इति वो युष्मभ्यं नोपदिश्यते। कुतः। हि यस्मात्साधवो विद्वांसो भवद्भिः प्रणीतं स्मृतिरूपेण निबद्धमाचारमामनन्त्युपदिशन्ति। न हि स्वयमुपदेष्टारः परोपदेशमपेक्षन्त इत्यर्थः ॥३१॥**

हिन्दी—आप लोग कन्या के लिए हिमालय से जाकर किस प्रकार बातचीत करें, इसका उपदेश मुझे आप लोगों को नहीं करना है क्योंकि बड़े-बड़े विद्वान् लोग भी आप द्वारा बनाये गये आचारों की शिक्षा दूसरों को दिया करते हैं।

आर्याप्यरुन्धती तत्र व्यापारं कर्तुमर्हति।
प्रायेणैवंविधे कार्ये पुरंध्रीणां प्रगल्भता ॥३२॥

अन्वय—आर्या अरुन्धती अपि तत्र व्यापारं कर्त्तुम् अर्हति। प्रायेण एवं विधे कार्ये पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता भवति।

संजी०--आर्येति ।। आर्या पूज्यारुन्धत्यपि तत्र विवाहकृत्ये व्यापारं साहाय्यं कर्तुमर्हति । तथाहि । प्रायेण प्राचुर्येणैवंविधे कार्ये विवाहादिकार्ये । दुर्घट इत्यर्थः । पुरंध्रीणां कुटुम्बिनीनाम् । 'स्यात्तु कुटुम्बिनी । पुरंध्री' इत्यमरः । प्रगल्भता चातुर्यम् । स्त्रीप्रधानेषु कृत्येषु स्त्रीणामेव घटनापाटवमिति भावः ।।३२।।

हिन्दी--इस कार्य में अरुन्धती भी आप लोगों की सहायता कर सकती है, क्योंकि ऐसे कार्यों में कुटुम्बिनियों की चतुरता प्रशंसनीय होती है ।

तत्प्रयातौषधिप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम् ।
महाकोशीप्रपातेऽस्मिन्संगमः पुनरेव नः ।।३३।।

अन्वय--तद् ओषधिप्रस्थं हिमवत्पुरं प्रयात । अस्मिन् महाकोशी प्रपाते एव नः पुनः संगमः भवतु ।

संजी०--तदिति ।। तत्तस्मात्कारणादोषधिप्रस्थं नाम हिमवत्पुरं हिमवन्नगरं सिद्धये कार्यसिद्ध्यर्थं प्रयात गच्छत । अस्मिन्पुरोवर्तिनि । महाकोशी नाम तत्रत्या काचिन्नदी तस्याः प्रपाते भृगावेव । सा नदी यत्र पतति तस्मिन्नित्यर्थः । 'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरः । नोऽस्माकं पुनः संगमः । अस्त्विति शेषः । भवत्समागमं प्रतिपालयन्नहमिहैव निवत्स्यामीत्यर्थः ।।३३।।

हिन्दी--अब आप लोग कार्यसिद्धि के लिए हिमालय के ओषधिप्रस्थ नामक स्थान में जाइये । पुनः जहाँ महाकोशी नदी गिरती है वहीं मुझसे आप लोग मिलें ।

तस्मिन्संयमिनामाद्ये जाते परिणयोन्मुखे ।
जहुः परिग्रहव्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विनः ।।३४।।

अन्वय--संयमिनाम् आद्ये तस्मिन् परिणयोन्मुखे जाते सति प्राजापत्याः तपस्विनः परिग्रहव्रीडां जहुः ।

संजी०--तस्मिन्निति ।। संयमिनां योगिनामाद्ये तस्मिन्नीश्वरे परिणयोन्मुखे विवाहोत्सुके जाते सति प्रजापतेरिमे प्राजापत्याः । ब्रह्मपुत्रा इत्यर्थः । तपस्विनो मुनयः परिग्रहैः पत्नीमिर्व्रीडाम् । गार्हस्थ्यनिमित्तामित्यर्थः । 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः । जहुस्तत्यजुः जहातेर्लिटि रूपम् । न हि समानगुणदोषेषु व्रीडागमोऽस्तीति भावः ।।३४।।

हिन्दी--संयमियों में श्रेष्ठ उन महादेव को विवाह के लिए उत्सुक देख सप्तर्षियों ने स्त्रियों के विषय में अपनी लज्जा त्याग दी ।

ततः परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम् ।
भगवानपि संप्राप्तः प्रथमोद्दिष्टमास्पदम् ।।३५।।

अन्वय--ततः मुनिमण्डलम् 'परमम्' इति उक्त्वा प्रतस्थे भगवान् अपि प्रथमोद्दिष्टम् आस्पदं संप्राप्तः ।

संजी०--तत इति ।। ततोऽनन्तरं मुनिमण्डलं मुनिसमूहः परममित्युक्त्वा ओमित्युक्त्वा । अनुमन्येत्यर्थः । अव्ययमेतत् । 'ओमेवं परमं मतम्' इत्यमरः । प्रतस्थे । भगवानीश्वरोऽपि प्रथमोद्दिष्टं पूर्वसंकेतितमास्पदं स्थानं महाकोशीप्रपातं संप्राप्तः ।।३५।।

हिन्दी--इसके बाद 'ॐ' ऐसा कहकर सप्तर्षि मुनियों का मण्डल वहाँ से प्रस्थान किया । उधर भगवान् शंकर भी पूर्व संकेतित स्थान पर चले गये ।

ते चाकाशमसिश्यामसुत्पत्य परमर्षयः ।
आसेदुरोषधिप्रस्थं मनसा समरंहसः ।।३६।।

अन्वय--मनसा समरंहसः ते परमर्षयश्च असिश्यामम् आकाशम् उत्पत्य ओषधिप्रस्थम् आसेदुः ।

संजी०--त इति ।। मनसा समरंहसो मनस्तुल्यवेगास्ते परमर्षयश्च । पूर्वश्लोकोक्तेश्वरसमुच्चयार्थश्चकारः । असिवच्छ्यामं नीलमाकाशं खं प्रत्युत्पत्यौषधिप्रस्थं हिमवत्पुरमासेदुः । सद्यः प्रापुरित्यर्थः ।।३६।।

हिन्दी--मन के समान वेगवाले वे सप्तर्षि खड्ग के समान श्यामवर्ण वाले आकाशमार्ग में उड़कर ओषधिप्रस्थ नामक हिमालय के नगर में पहुँच गये ।

इतः परं दशभिः श्लोकैरोषधिप्रस्थमेव वर्णयति--

अलकामतिवाह्येव वसतिं वसुसंपदाम् ।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ।।३७।।

अन्वय--वसुसंपदाम् वसतिम् अलकाम् अतिवाह्य इव स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वा इव उपनिवेशितम् ओषधिप्रस्थम् आसेदुः ।

संजी०--अलकामिति ।। वसुसंपदां धनसमृद्धीनां वसतिं स्थानमलकां कुबेरनगरीमतिवाह्य । परिच्छिद्येति यावत् । उपनिवेशितमिव स्थितम् । तथा स्वर्गस्याभिष्यन्दोऽतिरेकः । अतिरिक्तजन इति यावत् । तस्य वमनं निःसारणं कृत्वोपनिवेशितमिव स्थितम् । उभयत्रापि कौटिल्यः--'भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवादेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत्' इति । अलकामरावत्यतिशयितसमृद्धिकमित्यर्थः ।।३७।।

हिन्दी--अलका नगरी से भी बढ़कर धनसंपत्ति का स्थानभूत वह समृद्धिशाली ओषधिप्रस्थ नगर एक दूसरा ही स्वर्ग था ।

गङ्गास्रोतःपरिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि ।
बृहन्मणिशिलासालं गुप्तावपि मनोहरम् ॥३८॥

अन्वय--गङ्गास्रोतः परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि बृहम्मणिशिलासालं गुप्तौ अपि मनोहरम् । ओषधिप्रस्थम् आसेदुः ।

संजी०--गङ्गेति ॥ गङ्गायाः स्रोतोभिः प्रवाहैः परिक्षिप्तं परिवेष्टितम् । तैरेव सपरिखमित्यर्थः । वप्रश्चयः । प्राकारचैत्यमिति यावत् । 'स्याच्चयो वप्रमस्त्रियाम्' इत्यमरः । तस्यान्तर्मध्ये ज्वलिताः प्रकाशमाना ओषधयो यस्य तत्तथोक्तम् । ज्वलितौषधित्वाद्रात्रिषु संचारिणां दीपनिरपेक्षमित्यर्थः । बृहद्विपुलो मणिशिलानां माणिक्यानां सालः प्राकारो यस्य तत्तथोक्तम् । 'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः । अतएव गुप्तावपि संवरणेऽपि मनोहरम् । अकृत्रिमदुर्गसंवरणमिति भावः ॥३८॥

हिन्दी--वह ओषधिप्रस्थ नगर गंगा के प्रवाहों से चारो ओर घिरा हुआ था । मध्यभाग में जाज्वल्यमान ओषधियाँ थीं, इतना ही नहीं, बड़ी-बड़ी मणि की शिलाओं से रचित प्राकारों से वह मनोहर और सुरक्षित भी था ।

जितसिंहभया नागा यत्राश्वा बिलयोनयः ।
यक्षाः किंपुरुषाः पौरा योषितो वनदेवताः ॥३९॥

अन्वय--यत्र नागाः जितसिंहभया अश्वाः विलयोनयः यक्षाः किं पुरुषाः पौरा वनदेवताः योषितः सन्ति ।

संजी०--जितेति ॥ यत्र पुरे नागा गजा जितं सिंहेभ्यो भयं यैस्ते तथोक्ताः सिंहाधिकबला इत्यर्थः । नाथस्तु--'पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तम्' (१।६) इत्येतद्विरोधभयात् 'वीतवीतभयाः' इति पपाठ । तथा न भेतव्यं । तत्र वनगजानां सिंहहतत्वाभिधानात् । अत्र त्वोषधिप्रस्थगजानां हिमवन्महिम्ना सिंहातिरेकसंभवेनाविरोधादिति । 'वीतवीतभयाः इति पाठे वीतं विगतं वीतात्पादाङ्कुशकर्मभ्यां भयं येषां ते तथोक्ताः । स्वभावविनीता इत्यर्थः । 'पादकर्मयुतं प्रोक्तं यातमंकुशवारणम् ।' उभयं वीतमाख्यातम्' इति यादवः । अश्वा बिलयोनयो बिलसंभवाः । अन्यत्र तु न तथेति वैचित्र्यम् । उक्तं च-- 'अमृताद्वाष्पतो वह्नेर्वेदेभ्योऽण्डाच्च गर्भतः । साम्नो हयानामुत्पत्तिः सप्तधा परिकीर्तिता ॥' इति । यक्षाः प्रसिद्धाः । किंपुरुषाः किंनराश्च पौराः पुरजनाः । वनदेवता एव योषितः । न तु मानुष्य इत्यर्थः ॥३९॥

हिन्दी—वहाँ के हाथी, सिंहों के द्वारा भयभीत नहीं होते थे । बिल संभव घोड़े थे । यक्ष, किन्नर उस नगर के निवासी तथा वनदेवता की तरह दिव्य स्त्रियाँ थीं ।

शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम् ।
अनुगर्जितसंदिग्धाः करणैर्मुरजस्वनाः ॥४०॥

अन्वय—यत्र शिखरासक्तमेघानाम्, वेश्मनाम् अनुगर्जितसंदिग्धाः मुरजस्वनाः करणैः व्यज्यन्ते ।

संजी०--शिखरेति ॥ यत्र पुरे शिखरेष्वासक्ता मेघा येषां वेश्मनां सम्बन्धिनः । अनुगर्जितानि प्रतिगर्जितानि तैः संदिग्धा मुरजस्वनाः करणैस्तालव्यवस्थापकैस्ताडनविशेषैः । तदुक्तं राजकंदर्पेण--'नृत्यवादित्रगीतानां प्रयोगवशमेदिनाम् । संस्थानं ताडनं रोधः करणानि प्रचक्षते ॥' इति । व्यज्यन्ते स्फुटीक्रियन्ते ॥४०॥

हिन्दी—जिनके शिखरों पर मेघों ने आश्रय लिया है, ऐसे घरों के भीतर होने वाली मेघ की गर्जना के समान मृदंग की ध्वनि ताल और लय से पहचानी जाती थी ।

यत्र कल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकैः ।
गृहयंत्रपताकाश्रीरपौरादरनिर्मिता ॥४१॥

अन्वयः—यत्र विलोलविटपांशुकैः कल्पद्रुमैः एव अपौरादरनिर्मिता गृहयन्त्रपताकाश्रीः भवति ।

संजी०--यत्रेति ॥ यत्र नगरे विलोलानि चञ्चलानि विटपेष्वंशुकानि येषां तैः कल्पद्रुमैरेवापौरादरेण पौरादरं विनैव निर्मिताः । अयत्नसिद्धेत्यर्थः । गृहेषु यानि यन्त्राण्याधारदारूणि तेषु पताकास्तासां श्रीः । संभवतीति शेषः । तत्र लम्बाम्बराः कल्पतरव एव वैजयन्तीति संभाव्यन्त इत्यर्थः ॥४१॥

हिन्दी--जहाँ पर शाखाओं में हिलते हुए वस्त्ररूपी पल्लव से युक्त कल्पवृक्ष ही पुरवासियों के द्वारा बिना रचे गये अतएव स्वतः सिद्ध पताका-दण्ड की शोभा को प्राप्त करते हैं ।

यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु ।
ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम् ॥४२॥

अन्वय--यत्र नक्तं स्फटिकहर्म्येषु आपानभूमिषु ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि उपहारतां प्राप्नुवन्ति ।

संजी०--यत्रेति ॥ यत्र पुरे नक्तं रात्रौ स्फटिकहर्म्येष्वापानभूमिषु पानगोष्ठीप्रदेशेषु ज्योतिषां नक्षत्रणां प्रतिबिम्बान्युपहारतां पुष्पोपहारत्वं मौक्तिकोपहारत्वं वा प्राप्नुवन्ति ॥४२॥

हिन्दी--जिस नगर के स्फटिक मणिरचित मदिरालय रात्रि के नक्षत्रों से प्रतिबिम्बित होने के कारण फूलों की सजावट जैसे प्रतीत हो रहे थे ।

यत्रौषधिप्रकाशेन नक्तं दर्शितसंचराः ।
अनभिज्ञास्तमिस्राणां दुर्दिनेष्वभिसारिकाः ॥४३॥

अन्वय--यत्र दुर्दिनेषु नक्तं ओषधिप्रकाशेन दर्शितसञ्चराः अभिसारिकाः तमिस्राणाम् अनभिज्ञा भवन्ति ।

संजी०--यत्रेति ॥ यत्र पुरे दुर्दिनेषु मेघाच्छन्नदिवसेषु नक्तमोषधीनां तृणज्योतिषां प्रकाशेन संचरन्त एभिरिति संचराः पन्थानः । 'गोचरसंचर-' इत्यादिना घप्रत्ययान्तो निपातः । दर्शितसंचराः प्रकाशितमार्गा अभिसारिकाः कान्तार्थिन्यः । 'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका' इत्यमरः । तमिस्राणां तमसाम् । कृद्योगात्कर्मणि षष्ठी । अनभिज्ञाः । तमांसि नाभिजानन्तीत्यर्थः ॥४३॥

हिन्दी--जहाँ पर दुर्दिन (मेघाच्छन्न) रात्रियों में ओषधियों के प्रकाश से प्रकाशित मार्ग अभिसारिकाओं को अन्धकार का अनुभव नहीं होने देते थे ।

यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात् ।
रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः ॥४४॥

अन्वयः—यस्मिन् वयः यौवनान्तम् । कुसुमायुधात् (अन्यः) अन्तकः न । रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा एव संज्ञाविपर्ययः ।

संजी०--यौवनान्तमिति ॥ यस्मिन्पुरे वयो यौवनान्तं यौवनावधिकम् । सर्वेऽप्यजरा इत्यर्थः । तथा कुसुमायुधात्कामात् । अन्य इति शेषः । अन्तको मृत्युर्न । अस्तीति शेषः । विरहिणां तादृग्दुःखोत्पादकत्वादन्तकत्वोपचारः । कामं विना मृत्युर्नास्तीत्यर्थः । अतएव तत्कार्यभूतमरणाभाव इत्याशयेनाह—रतीति । रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा सुप्तिरेव संज्ञाविपर्ययश्चेतनापगमः । न तु दीर्घनिद्रारूप इत्यर्थः । अत्रत्याः सर्वेऽजरामरा इति श्लोकतात्पर्यार्थः । अन्तयत्यन्तं करोतीत्यन्तकः । अन्तयतेस्तत्करोतीति ण्यन्ताद्यत्प्रत्ययः ॥४४॥

हिन्दी--जिस नगर में लोगों को अवस्था की अवधि सर्वदा युवावस्था तक ही थी अर्थात् लोग अजर थे । काम के अतिरिक्त और कोई मृत्यु का कारण नहीं होता था अर्थात् सभी लोग अमर थे किन्तु दुःख था तो केवल एक ही कि उन्हें काम-विरहवेदना पीड़ा देती थी । लोग कभी चेतनाशून्य नहीं होते थे, अर्थात् दीर्घ निद्रा में लीन नहीं होते थे । हाँ, रति के खेद के कारण आने वाली निद्रा चेतनाशून्य अवश्य बना देती थी ।

भ्रूभेदिभिः सकम्पोष्ठैर्ललिताङ्गुलितर्जनैः ।
यत्र कोपैः कृताः स्त्रीणामाप्रसादार्थिनः प्रियाः ॥४५॥

अन्वयः--यत्र प्रियाः भ्रूभेदिभिः सकम्पोष्ठैः ललिताङ्गुलितर्जनैः स्त्रीणां कोपैः आप्रसादात् अर्थिनः कृताः ।

संजी०—भ्रूमेदिभिरिति ॥ यत्र पुरे प्रिया युवानो भ्रूमेदिभिर्भ्रूभङ्गवद्भिः सकम्पा ओष्ठा येषु तैर्ललितान्यङ्गुलितर्जनानि येषु तैः स्त्रीणां कोपैर्मानाख्यै- राप्रसादार्थिन आप्रसादं प्रसादपर्यन्तमर्थिनो याचकाः कृताः । न तु शत्रु कोपैरिति भावः ॥४५॥

हिन्दी--जहाँ पर मानिनी स्त्रियाँ अपनी कुटिल भौंहों से, कम्पित ओष्ठों से और सुन्दर अङ्गुलियों के तर्जन से कोप प्रगट करती हुई अपने प्रणयिजनों को तब तक याचक बनाये रखती थीं जब तक वे प्रसन्न नहीं होती थीं ।

संतानकतरुच्छायासुप्तविद्याधराध्वगम् ।
यस्य चोपवनं बाह्यं गन्धवद्गन्धमादनम् ॥४६॥

अन्वयः--सन्तानकतरुच्छाया सुप्तविद्याधराध्वगं गन्धवद् गन्धमादनं यस्य बाह्यम् उपवनम् अस्ति ।

संजी०--संतानकेति ॥ किंचेति चार्थः । संतानकतरोश्छायासु सुप्ता विद्याधरा देवताविशेषास्त एवाध्वगा यस्मिस्तत्तथोक्तं गन्धवद्गन्धाढ्यं गन्धमादनो नाम गिरिर्यस्य पुरस्य बहिर्भवं बाह्यमुपवनमारामः । संतानक- तरुच्छायेत्यत्र पूर्वपदार्थबाहुल्यसंभवेऽपि 'शलभच्छायम्', 'इक्षुच्छायम्' इति- वत्समर्थच्छायानिष्पत्तेस्तदपेक्षाभावात् 'छाया बाहुल्ये' इति नपुंसकत्वं नास्तीत्यनुसंधेयम् । अत्र 'गन्धवद्गन्धमादनम्' इत्यागन्तुकः पाठः । प्राचीन- पाठस्तु 'सुगन्धिर्गन्धमादनः' इति पुंलिङ्गान्तः । अतएव क्षीरस्वामिना 'गन्धमादनमन्ये च' इत्यत्र गन्धेन मादयतीति गन्धमादन इति व्याख्याय प्रयोगे च पुंलिङ्गता दृश्यत इत्याशयेनोक्तं 'सुगन्धिर्गन्धमादनः' इति कालि- दास इति ॥४६॥

हिन्दी--उस नगर के बाहर का सुगन्धित उपवन गन्धमादन पर्वत था जिसमें रहने वाले कल्पवृक्षों की छाया में विद्याधर पथिक सोते रहते थे ।

अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम् ।
स्वर्गाभिसंधिसुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे ॥४७॥

अन्वयः—अथ ते दिव्या मुनयः हैमवतं पुरं प्रेक्ष्य स्वर्गाभिसन्धिसुकृतं वञ्च- नाम् इव मेनिरे ।

संजी०--अथेति ॥ अथ ते दिवि भवा दिव्या मुनयो हिमवत इदं हैमवतं पुरं प्रेक्ष्य स्वर्गाभिसंधिना स्वर्गोद्देशेन यत्सुकृतं ज्योतिष्टोमाद्यनुष्ठानं

तत्स्वर्गाभिसंधिसुकृतं वञ्चनां प्रतारणामिव मेनिरे। हिमवन्नगरमवेक्ष्य स्वर्गस्य पुण्यफलत्वं वदता वेदेन वयं विप्रलब्धा इत्यर्थः। स्वर्गादतिरमणीयमिति भावः ॥४७॥

हिन्दी—सप्तर्षियों ने हिमालय के ओषधिप्रस्थ नामक उस नगर को देखकर 'हम लोग इस नगर में न रहकर जो स्वर्ग में अपने पुण्य का फल भोग रहे हैं', ऐसा सोचकर अपने को वञ्चित समझा।

ते सद्मनि गिरेर्वेगादुन्मुखद्वाःस्थवीक्षिताः।
अवतेरुर्जटाभारैर्लिखितानलनिश्चलैः ॥४८॥

अन्वयः—लिखितानलनिश्चलैः जटाभारैः उपलक्षिताः ते उन्मुखद्वाः स्थवीक्षिताः सन्तः गिरेः सद्मनि वेगाद् अवतेरुः।

संजी०—त इति ॥ लिखितानलनिश्चलैः। चित्रगतज्वलननिष्पन्दैरिति वेगप्रकर्षोक्तिः। जटाभारैरुपलक्षितास्ते मुनयः। द्वारि तिष्ठन्तीति द्वाःस्था द्वारपालकाः 'प्रतीहारे द्वारपालद्वाःस्थद्वाःस्थितदर्शकाः' इत्यमरः। उन्मुखैरूर्ध्वमुखैर्द्वाःस्थैर्वीक्षिताः सन्तः। न तु विनिवारिता इत्यर्थः। गिरेर्हिमवतः सद्मनि वेगादवतेरुरवतीर्णवन्तः ॥४८॥

हिन्दी—चित्रगत अग्नि के समान निश्चल जटाभारों से दिखाई पड़ने वाले उन महामुनियों ने द्वारस्थित प्रतीहारी लोगों के द्वारा ऊपर की ओर देखे जाते हुए हिमालय के घर में प्रवेश किया।

गगनादवतीर्णा सा यथावृद्धपुरस्सरा।
तोयान्तर्भास्करालीव रेजे मुनिपरम्परा ॥४९॥

अन्वयः—गगनाद् अवतीर्णा यथावृद्धपुरः सरा सा मुनिपरम्परा तोयान्तः भास्करालो इव रेजे।

संजी०—गगनादिति ॥ गगनादवतीर्णावरूढा यथावृद्धं वृद्धानुक्रमेण स्थिताः पुरःसरा अग्रेसरा यस्यां सा तथोक्ता। अनुपसर्जनाधिकारान्न ङीप्। सा मुनिपरम्परा मुनिपङ्क्तिस्तोयान्तस्तोयाभ्यन्तरे भास्करालो प्रतिबिम्बितार्कपङ्क्तिरिव रेजे। एतेन मुनीनां तेजस्वित्वेऽपि सुखसंदर्शनं सूचयति। भास्कराणां भूयिष्ठत्वसंभावनार्थं तोयान्तरित्युक्तम्। अतएव बहुत्वसिद्धिश्च ॥४९॥

हिन्दी—वृद्धों के क्रमानुसार क्रमशः आकाश से उतरती हुई वह मुनिपम्परा जल में प्रतिबिंबित होने वाली सूर्यपङ्क्ति के समान शोभित हो रही थी।

तानर्घ्यानर्घ्यमादाय दूरात्प्रत्युद्ययौ गिरिः ।
नमयन्सारगुरुभिः पादन्यासैर्वसुन्धराम् ॥५०॥

अन्वयः—गिरिः अर्घ्यम् आदाय सारगुरुभिः पादन्यासैः वसुन्धरां नमयन् अर्घ्यान् तान् दूरात् प्रत्युद्ययौ ।

संजी०—तानिति ॥ गिरिर्हिमवानर्घ्यमर्घार्थं जलमादाय सारगुरुभिरन्तःसारदुर्भरैः पादन्यासैर्वसुंधरां नमयन्नधः प्रापयन् । अर्घमर्हन्तीत्यर्घ्यान्पूज्यान् । दण्डादित्वाद्यप्रत्ययः । तान्मुनीन्दूरात्प्रत्युद्ययौ ॥५०॥

हिन्दी—अर्घ्य-पाद्यादि पूजनोपचार लेकर पद-विन्यास की गुरुता से पृथ्वी को दबाते हुए वह हिमालय उन सप्तर्षियों के पास पहुँचे ।

संप्रति हिमवन्तमेव जंगमस्थावररूपद्वयसाधारणैर्विशिनष्टि—

धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः ।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति ॥५१॥

अन्वयः—धातुताम्राधरः प्रांशुः देवदारुबृहद्भुजः प्रकृत्या एव शिलोरस्कः अतः हिमवान् इति सुव्यक्तः अभूत् ।

संजी०—धात्विति ॥ धातुवत्ताम्रोऽधरो यस्य स तथोक्तः । अन्यत्र धातुरेव ताम्रोऽधरो यस्य । प्रांशुरुन्नतः । उभयत्रापि समानम् । देवदारुवद्बृहन्तौ भुजौ यस्य स तथोक्तः । देवदारव एव बृहन्तौ भुजौ यस्येत्यन्यत्र । प्रकृत्या स्वभावेनैव शिलावदुरो यस्य स शिलोरस्कः । शिलैवेत्यन्यत्र । 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' इति कप् । अतो हिमवानिति सुव्यक्तः । वर्तमाने क्तः । सत्यं स एवायं हिमवानिति तद्धर्मप्रत्यभिज्ञानादवधारित इत्यर्थः ॥५१॥

हिन्दी—गैरिक धातु के कारण रक्त अधरों वाले देवदारु वृक्षों से विशाल भुजाओं वाले और स्वाभाविक शिलाओं से विशाल वक्षःस्थल वाले हिमालय प्रत्यक्ष प्रकट हुए ।

विधिप्रयुक्तसत्कारैः स्वयं मार्गस्य दर्शकः ।
स तैराक्रमयामास शुद्धान्तं शुद्धकर्मभिः ॥५२॥

अन्वयः—स विधिप्रयुक्तसत्कारैः शुद्धकर्मभिः तैः स्वयम् मार्गस्य दर्शकः सन् शुद्धान्तम् आक्रमयामास ।

संजी०—विधीति ॥ स हिमवान्विधिना शास्त्रेण प्रयुक्तसत्कारैः कृतार्चनैः शुद्धकर्मभिरदुष्टचरितैः । शुद्धान्तप्रवेशार्हैरित्यर्थः । तैर्मुनिभिः स्वयं मार्गस्य दर्शयतीति दर्शको दर्शयिता सन् । पश्यतेर्ण्यन्तादणप्रत्ययः । शुद्धान्त-

मन्तःपुरमाक्रमयामास। प्रवेशयामासेत्यर्थः। अत्र क्रमेरगत्यर्थत्वात् 'गति-बुद्धि-' इत्यादिना तैरित्यस्य न कर्मत्वम् ॥५२॥

हिन्दी--हिमालय ने विधिपूर्वक उन मुनियों का सत्कार कर, पुनः उन पुण्यकर्मा मुनियों को स्वयं मार्ग दिखाते हुए अपने अन्तःपुर में प्रवेश करवाया।

तत्र वेत्रासनासीनान्कृतासनपरिग्रहः।
इत्युवाचेश्वरान्वाचं प्राञ्जलिभूर्धरेश्वरः ॥५३॥

अन्वयः--तत्र वेत्रासनासीनान् ईश्वरान् भूधरेश्वरः कृतासनपरिग्रहः प्राञ्जलिः सन् इति उवाच।

संजी०—तत्रेति ॥ वेत्रं लताविशेषः। तत्र शुद्धान्ते वेत्रासनासीनान्वेत्रमयविष्टरोपविष्टानीश्वरान्प्रभून्मुनीन्भूधरेश्वरो हिमवान्कृतासनपरिग्रहः। उपविष्टः सन्नित्यर्थः। प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः सन्। इत्येवं वाचमुवाच ॥५३॥

हिन्दी--अन्तःपुर में उन सप्तर्षियों को बेंत के आसन पर बैठाकर हिमालय ने हाथ जोड़ते हुए उन महामुनियों से इस प्रकार कहा।

अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम्।
अतर्कितोपपन्नं वो दर्शनं प्रतिभाति मे ॥५४॥

अन्वयः—अतर्कितोपपन्नं वः दर्शनं अपमेघोदयं वर्षं अदृष्टकुसुमं फलं प्रतिभाति।

संजी०—अपेति ॥ अतर्कितोपपन्नमविचारितमेवोपगतम्। अत्यन्तासंभावितमित्यर्थः। वो युष्माकं दर्शनमपमेघोदयं वर्षमनभ्रा वृष्टिस्तथाऽदृष्टं कुसुमं यस्य तत्तथोक्तं फलं च तन्मे प्रतिभाति। अतिदुर्लभलाभः संवृत्त इत्यर्थः। अत्र मेघोदयकुसुमरूपकारणयोरभावेऽपि वर्षफलरूपकार्ययोरुदयाभिधानाद्विभावना। मुनिदर्शनस्य विशिष्टवृत्तित्वेन च रूपणाद्रूपकालंकारश्चेत्युभयोः संसृष्टिः ॥५४॥

हिन्दी—आप लोगों का अकस्मात् होने वाला यह दर्शन बिना मेघ के होने वाले वर्षा की तरह, बिना कुसुम के फल की ही तरह मुझको मालूम हो रहा है।

मूढं बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम्।
भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भवदनुग्रहात् ॥५५॥

अन्वयः—भवदनुग्रहात् आत्मानं मूढं बुद्धम् इव आयसं हैमीभूतम् इव भूमेः दिवम् आरूढम् इव मन्ये।

संजी० —मूढमिति ।। भवदनुग्रहादात्मानं मां मूढं बुद्धि विना कृतं बुद्धमिव मूढो भूत्वा यो बुद्धवांस्तमिव । कर्तरि क्तः । आयसमयोविकारं हैमीभूतम् । आयसत्वं विहाय सौवर्णत्वं प्राप्तमिवेत्यर्थः । भूमेर्भूलोकाद्दिवं स्वर्गमारूढमिव मन्ये । ज्ञानरूपस्थानान्यद्य मे परमुत्कृष्यन्त इति भावः।।५५।।

हिन्दी—हे महर्षियो ! मैं आप लोगों के अनुग्रह से ज्ञानरहित होकर सर्वज्ञ के समान, लोहमय को सुवर्ण के समान तथा पृथ्वी में रहता हुआ स्वर्गीय देवताओं के समान अपने को धन्य समझता हूँ ।

अद्यप्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये ।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ।।५६।।

अन्वयः—अद्य प्रभृति भूतानां शुद्धये अधिगम्यः अस्मि । हि यद् अर्हद्भिः अध्यासितं तत् तीर्थं प्रचक्षते ।

संजी० —अद्येति ।। अद्यप्रभृतीत आरभ्य भूतानां प्राणिनां शुद्धयेऽधिगम्योऽस्मि । शुद्धयर्थिनां तीर्थभूतोऽस्मीत्यर्थः । भवदागमनादिति शेषः । हि यस्मात् । यदर्हद्भिः सद्भिरध्यासितमधिष्ठितम् । जुष्टमिति यावत् । तत्तीर्थं प्रचक्षते । 'निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ' इत्यमरः ।।५६।।

हिन्दी—मैं आज से अपने को प्राणियों की शुद्धि का हेतुभूत तीर्थस्थान मानने लगा हूँ । क्योंकि जहाँ आप जैसे पूज्य महर्षि अधिष्ठित रहते हैं वह स्थान तीर्थभूत हो जाता है ।

अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः ।
मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन धौतपादाम्भसा च वः ।।५७।।

अन्वयः—हे द्विजोत्तमाः मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन वः धौतपादाम्भसा च द्वयेन एव आत्मानं पूतम् अवैमि ।

संजी०—अवैमीति ।। हे द्विजोत्तमाः. आत्मानं मां द्वयेनैव पूतं शुद्धमवैम्यवगच्छामि । केन । द्वयेन । मूर्ध्नि गङ्गाप्रपातेन मन्दाकिनीपातेन, वो युष्माकं धौतयोः क्षालितयोः पादयोरम्भसा च । गङ्गाजलवत्पादाम्भसः पावनत्वमित्यौपम्यं गम्यते । तच्च 'प्रस्तुताप्रस्तुतयोः' इति दीपकालंकारः । 'प्रेयः प्रियतराख्यानम्' इति लक्षणात्प्रेयोलंकार इति केचित् ।।५७।।

हिन्दी—हे द्विजोत्तमगण ! शिर पर गङ्गा के गिरने से एवं आप लोगों के धोये हुये चरणों के जल से—इस प्रकार दोनों प्रकार से मैं अपने को पवित्र मानता हूँ ।

जङ्गमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणाङ्कितम् ।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः ।।५८।।

अन्वयः—हे मुनयः द्विरूपम् अपि मे वपुः जङ्गमं वः प्रैष्यभावे स्थावरं (वः) चरणाङ्कितम् अतः विभक्तानुग्रहं मन्ये ।

संजी०—जङ्गममिति ।। हे मुनयः, द्विरूपं जंगमस्थावरात्मकत्वाद्द्विप्रकारकमपि मे वपुर्विभक्तानुग्रहं विभज्य कृतप्रसादं मन्ये । कुतः । जङ्गमं वपुर्वो युष्माकं प्रैष्यभावे कैंकर्ये । स्थितमिति शेषः । 'प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु वृद्धिर्वक्तव्या' इति वृद्धिः । 'नियोज्यकिंकरप्रैष्यभुजिष्यपरिचारकः' इत्यमरः । स्थावरं वपुश्चरणाङ्कितम् । अयमेव हि महाननुग्रहो दासजनस्य यत्कर्मसु नियोजनं मूर्धनि पादन्यासश्चेति तात्पर्यार्थः ।।५८।।

हिन्दी—हे महर्षियो ! आप लोगों ने मेरे दोनों प्रकार के शरीर पर अनुग्रह किया । जङ्गम शरीर पर दास भाव से तथा स्थावर शरीर पर अपने पवित्र चरणो के रखने से ।

भवत्संभावनोत्थाय परितोषाय मूर्च्छते ।
अपि व्याप्तदिगन्तानि नाङ्गानि प्रभवन्ति मे ।।५९।।

अन्वयः—व्याप्तदिगन्तानि अपि मे अङ्गानि भवत्संभावनोत्थाय मूर्च्छते परितोषाय न प्रभवन्ति ।

संजी०—भवदिति ।। व्याप्ता दिगन्ता यैस्तानि व्याप्तदिगन्तानि । महान्त्यपीत्यर्थः । मे ममाङ्गानि भवत्संभावनोत्थाय युष्मदनुग्रहजन्याय मूर्च्छते व्याप्नुवते परितोषाय न प्रभवन्ति न पर्याप्नुवन्ति । अलमर्थयोगाच्चतुर्थी । यथा महत्स्वपि मद्गात्रेषु न माति तथा मे हर्षो वर्धत इत्यर्थः ।।५९।।

हिन्दी—समस्त दिगन्तों को व्याप्त करने वाले मेरे इतने बड़े अङ्गों में आप लोगों के आगमन से जन्य हर्ष समा नहीं रहा है ।

न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः ।
अन्तर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ।।६०।।

अन्वयः—भास्वतां वः दर्शनेन केवलं दरीसंस्थं तमः न अपास्तम् । किन्तु मे अन्तर्गतं रजसः परं तमः अपि अपास्तम् ।

संजी०—नेति ।। भास्वतां तेजस्विनां विवस्वतां च वो युष्माकं दर्शनेन केवलं दरीसंस्थं गुहागतं तमो ध्वान्तरूपमेव नापास्तम् । किन्तु मेऽन्तर्गतमन्तरात्मगतं रजसो रजोगुणात्परमनन्तरं तमोऽज्ञानरूपमप्यपास्तम् । रजस्तु पादन्यासैरेवापास्तमिति भावः । प्रसिद्धैर्भास्वद्भिर्बाह्यं तमोऽपास्यते; एभिस्त्वान्तरमपीति व्यतिरेको व्यज्यते ।।६०।।

हिन्दी—अत्यन्त तेजस्वी आप लोगों के दर्शन से केवल गुफाओं में रहने

वाला अन्धकार का ही नाश नहीं हुआ बल्कि हृदय में रहने वाला रजोगुण से परे रहने वाला भी अन्धकार नष्ट हो गया। भाव यह है कि भीतरी रज तो आप के चरण-न्यास से ही विनष्ट हो गया किन्तु बाहरी तम प्रकाश से नष्ट हो गया।

कर्तव्यं वो न पश्यामि स्याच्चेत्किं नोपपद्यते।
मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थानं भवतामिह ॥६१॥

अन्वयः—कर्तव्यं वः न पश्यामि, अथ स्यात् चेत् किं न उपपद्यते। मत्पावनाय एव भवताम् इह प्रस्थानं मन्ये।

संजी०—कर्तव्यमिति ॥ कर्तव्यं कार्यं वो युष्माकं न पश्यामि। निःस्पृहत्वादिति भावः। अथ स्याच्चेद्विद्येत यदि किं नोपपद्यते किं नाम न संभवति। सर्वं सुलभमेवेत्यर्थः। अथवा किमत्र प्रयोजनचिन्तयेत्याह--मत्पावनाय मच्छोधनायैव भवतामिह विषये प्रस्थानम्। इमं देशमुद्दिश्येदं प्रयाणमित्यर्थः। मन्ये तर्कयामि ॥६१॥

हिन्दी—निःस्पृह होने से मैं आप लोगों का कोई कार्य नहीं देख पा रहा हूँ और यदि ऐसा हो भी तो आप लोगों के तपोबल से ही सुलभ हैं। इसलिये मैं जानता हूँ कि आप लोगों का यह शुभागमन मात्र मुझको पवित्र करने के लिये ही हुआ है।

तथापि तावत्कस्मिंश्चिदाज्ञां मे दातुमर्हथ।
विनियोगप्रसादा हि किंकराः प्रभविष्णुषु ॥६२॥

अन्वयः—तथापि कस्मिंश्चिद् आज्ञां तावद् मे दातुम् अर्हथ हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु विनियोगप्रसादाः भवन्ति।

संजी०--तथापीति ॥ तथापि भवतां निःस्पृहत्वेऽपि कस्मिंश्चित्। कर्मणीति शेषः। आज्ञामिदं कुर्वित्यादेशं तावदिदानीं मे मह्यं दातुमर्हथ। मदनुग्रहबुद्ध्येति भावः। हि यस्मात्किंकरा भृत्याः। प्रभवन्तीति प्रभविष्णवस्तेषु प्रभुषु विषये। 'भुवश्च' इतीष्णुच्प्रत्ययः। विशेषेण नियोगो विनियोगः प्रेषणमेव प्रसादोऽनुग्रहो येषां ते तथोक्ताः। अन्यथा स्वस्वामिभावो निष्फल इति भावः ॥६२॥

हिन्दी--तो भी आप लोग किसी कार्य के लिये मुझे आज्ञा दीजिये क्योंकि सेवक पर मालिक की प्रसन्नता का लक्षण उसका आदेश है।

एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ॥६३॥

अन्वयः—एते वयम् अमी दाराः इयं कुलजीवितं कन्या, अत्र येन वः कार्यं भवति । ब्रूत । बाह्यवस्तुषु अनास्था ।

संजी०—एत इति ।। किं बहुना, एते वयममी दारा इयं कुलस्य जीवितं प्राणिभूतां परमप्रेमास्पदमित्यर्थः । कन्या । अत्रैषां मध्ये येन जनेन वः कार्यं प्रयोजनं ब्रूत । तमिति शेषः । येन सोऽपि दीयत इति भावः । रत्नहिरण्यादिकं तु न मे गण्यमित्याह—बाह्यवस्तुषु कनकरत्नादिष्वनास्थानादरः । प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि नञ्समास इष्यते । अदेयं न किंचिदस्तीति भावः ।।६३।।

हिन्दी—यह हम लोग हैं और यह हमारी पत्नी है, तथा इस समस्त कुल की प्राणभूता यह प्यारी कन्या है। इनमें से जिससे आप लोगों का कार्य सिद्ध हो, कहिये। क्योंकि बाहरी रत्नादि वस्तुओं में आप लोगों की कोई आस्था नहीं है।

इत्यूचिवांस्तमेवार्थं गुहामुखविसर्पिणा ।
द्विरिव प्रतिशब्देन व्याजहार हिमालयः ।।६४।।

अन्वयः—इति उचिवान् हिमालयः गुहामुखविसर्पिणा प्रतिशब्देन तम् एव अर्थम् द्विः व्याजहार च ।

संजी०—इतीति ।। इत्यूचिवानुक्तवान् । वचेः क्वसुप्रत्ययः । हिमालयो हिमवान्गुहानां मुखेषु विवरेषु विसर्पतीति तथोक्तेन प्रतिशब्देन तमेव पूर्वोक्तमेवार्थं द्विर्द्विवारम् । 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति सुच्प्रत्ययः । व्याजहार बभाषे ।।६४।।

हिन्दी—इस तरह हिमालय के कह लेने पर अपने स्थावर शरीर में व्याप्त प्रतिध्वनि से मानो उसने सचेतन शरीर के कहे गये उन्हीं अर्थों को पुनः दुहराया।

अथाङ्गिरसमग्रण्यमुदाहरणवस्तुषु ।
ऋषयो नोदयामासुः प्रत्युवाच स भूधरम् ।।६५।।

अन्वयः—अथ ऋषयः उदाहरणवस्तुषु अग्रण्यम् अङ्गिरसं नोदयामासुः । स भूधरं प्रत्युवाच ।

संजी०—अथेति ।। अथानन्तरमृषय उदाहरणानि कथाप्रसङ्गास्त एव वस्तून्यर्थास्तेषु अग्रं नयतीत्यग्रणीस्तमग्रण्यं प्रगल्भम् । 'सत्सूद्विष–' इत्यादिना क्विप् 'अग्रग्रामाभ्यां नयतेरिति वक्तव्यम्' इति णत्वम् । अङ्गिरसं नामर्षिं नोदयामासुः प्रतिवक्तुं प्रेरयामासुः । सोऽङ्गिरा भूधरं हिमवन्तं प्रत्युवाच ।।६५।।

हिन्दी—हिमालय की प्रार्थना के अनन्तर ऋषियों ने महेश्वर के संदेश को कहने के लिए वक्ताओं में प्रगल्भ अङ्गिरा नामक ऋषि को प्रेरित किया। तब उन्होंने हिमालय से कहा।

उपपन्नमिदं सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणां च सदृशी ते समुन्नतिः ॥६६॥

अन्वयः—इदं सर्वम् अतः परम् अपि त्वयि उपपन्नम्। ते मनसः शिखराणां च समुन्नतिः सदृशी।

संजी०—उपपन्नमिति ॥ इदम् 'एते वयममी दाराः' (३।६३) इत्याद्युक्तं सर्वमतः परमतोऽधिकमपि त्वय्युपपन्नं युज्यते। तथाहि। ते मनसः शिखराणां च समुन्नतिः सदृशी। शिखराणीव मनो महोन्नतमित्यर्थः। किं नाम दुष्करमुन्नतचित्तानामिति भावः। प्रस्तुताप्रस्तुतयोर्मनःशिखरयोरौपम्यस्य गम्यत्वाद्दीपकालंकारः ॥६६॥

हिन्दी—हे हिमालय! यह सब तो तुम्हारे लिए उचित ही है, इसके आगे भी तुम्हारे लिए सब योग्य है, जिस प्रकार तुम्हारे शिखर ऊँचे हैं उसी प्रकार तुम्हारा मन भी ऊँचा है।

स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः ॥६७॥

अन्वयः—स्थावरात्मानं त्वां विष्णुम् आहुः स्थाने। तथा हि ते कुक्षिः चराचराणां भूतानां आधारतां गतः अस्ति।

संजी०—स्थान इति ॥ त्वां स्थावरात्मानं स्थावररूपिणं विष्णुमाहुः। 'स्थावराणां हिमालयः' इति गीतावचनात्। स्थाने युक्तम्। युक्तार्थेऽव्ययमेतत्। 'युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इत्यमरः। तथा हि। ते तव कुक्षिश्चराचराणां जंगमस्थावररूपिणां भूतानां पृथिव्यादीनामाधारतां गतः। तवेव विष्णोः कुक्षिरेवंभूत इति भावः ॥६७॥

हिन्दी—तुमको लोग गीता के अनुसार विष्णु कहते हैं, यह उचित ही है। जिस प्रकार विष्णु की कुक्षि चराचर प्राणियों का आधारभूत है वैसे ही तुम्हारी भी विशाल कुक्षि (मध्यभाग) चराचर जगत् के लिए आधारभूत है।

गामधास्यत्कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः।
आ रसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत् ॥६८॥

अन्वयः—नागः मृणालमृदुभिः फणैः गाम् कथम् अधास्यत्। त्वम् आरसातलमूलाद् न अवालम्बिष्यथाः चेत्।

संजी०—नागमिति ।। नागः शेषाहिर्मृणालमृदुभिर्बिसकोमलैः फणैर्गां भुवं कथमधास्यद्धारयेत् । त्वमा रसातलमूलात्पातालपर्यन्तम् । विकल्पादसमासः । नावालम्बिष्यथाश्चेत्पादैर्नावलम्बथा यदि । त्वदवलम्बनादेव भुजगराजोऽपि भुवं बिभर्तीत्यर्थः । अत्र क्रियातिपत्त्यभावाल्लृङ्प्रयोगश्चिन्त्यः ।।६८।।

हिन्दी—यदि तुम रसातल की जड़ तक पृथ्वी को न थामे होते तो कमल-दण्ड के समान अपने कोमल फणों से शेषनाग इस पृथ्वी को किस प्रकार धारण कर सकते थे ।

अच्छिन्नामलसंतानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः ।
पुनन्ति लोकान्पुण्यत्वात्कीर्तयः सरितश्च ते ।।६९।।

अन्वयः—अच्छिन्नामलसन्तानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः ते कीर्त्तयः सरितश्च पुण्यत्वात् लोकान् पुनन्ति ।

संजी०—अच्छिन्नेति ।। अच्छिन्ना अविच्छिन्ना अमलाश्च संतानाः प्रबन्धाः प्रवाहाश्च यासां तास्तथोक्ताः समुद्रोर्मिभिरनिवारिताः पारगमनादन्तःप्रवेशाच्चेति भावः । ते तव कीर्तयः सरितश्च गङ्गादयः पुण्यत्वात्-पवित्रत्वाल्लोकान्पुनन्ति पावयन्ति । लोकपावनाः खलु पुण्यश्लोका इति भावः । केवलप्रकृतविषयस्तुल्ययोगितालंकारः ।।६९।।

हिन्दी—जिस तरह तुम से निकली हुई निर्मल प्रवाहवाली समुद्र की तरङ्गों से अनिवारित गङ्गादि नदियाँ संसार के पाप को नष्ट करती हैं, उसी तरह तुम्हारी कीर्ति भी जगत् के पाप को दूर करती है ।

यथैव श्लाघ्यते गङ्गा पादेन परमेष्ठिनः ।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ।।७०।।

अन्वयः—गङ्गा प्रभवेण परमेष्ठिनः पादेन यथा एव श्लाघ्यते तथा एव द्वितीयेन प्रभवेण उच्छिरसा त्वया श्लाघ्यते ।

संजी०—यथैवेति ।। गङ्गा भागीरथी । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवस्तेन कारणेन परमे तिष्ठतीति परमेष्ठिनो विष्णोः । परमे कित्प्रत्ययः । 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इत्यलुक् । '-परमेर्बार्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः' इति षत्वम् । पादेन चरणेन यथैव श्लाघ्यते प्रशस्यते तथैव द्वितीयेन प्रभवेणोच्छिरसा त्वया श्लाघ्यते । हरिचरणवत्तीर्थस्यापि तीर्थभूतस्त्वमिति भावः ।।७०।।

हिन्दी—जिस प्रकार गङ्गा विष्णु के चरण से निकलने के कारण अपने को पवित्र समझती है उसी तरह तुम्हारे शिर से निकल कर भी अपने को प्रशंसायोग्य समझती है ।

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरेः।
त्रिविक्रमोद्यतस्यासीत्स तु स्वाभाविकस्तव ॥७१॥

अन्वयः—तिर्यक् ऊर्ध्वम् अधस्तच्च व्यापकः महिमा हरेः त्रिविक्रमोद्यतस्य आसीत्। तव तु स व्यापकः महिमा स्वाभाविकः अस्ति।

संजी०—तिर्यगिति ॥ तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापकः। सर्वव्यापीत्यर्थः। महिमा महत्त्वं हरेर्विष्णोस्त्रिषु विक्रमेषूद्यतस्य सत आसीत्। त्रिविक्रमोद्यतस्यास्ति कदाचिदेव न तु सर्वदेत्यर्थः। तव तु व्यापको महिमा स्वाभाविकः। नित्यसिद्ध इत्यर्थः ॥७१॥

हिन्दी—तिरछे, ऊपर एवं नीचे व्याप्त होने वाली विष्णु की महिमा तो तब हुई जब वे अपने तीन पदों से पृथ्वी को नापने के लिए उद्यत हुए, वह भी सर्वदा नहीं किन्तु एक ही बार। किन्तु तुम्हारी सर्वव्यापकता की महिमा सर्वतः सार्वकालिक स्वभावसिद्ध है।

यज्ञभागभुजां मध्ये पदमातस्थुषा त्वया।
उच्चैर्हिरण्मयं शृङ्गं सुमेरोर्वितथीकृतम् ॥७२॥

अन्वयः—यज्ञभागभुजां मध्ये पदम् आतस्थुषा त्वया सुमेरोः हिरण्मयम् उच्चैः शृङ्गम् वितथीकृतम्।

संजी०—यज्ञेति ॥ यज्ञभागभुजामिन्द्रादीनां मध्ये पदमातस्थुषा निहितवता त्वयोच्चैरुन्नतं हिरण्यस्य विकारो हिरण्मयम्। 'दाण्डिनायनहास्तिनायन-' इत्यादिनिपातनात्साधुः। सुमेरोः शृङ्गं शिखरम्। प्राधान्यं च ध्वन्यते। 'शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। वितथीकृतं व्यर्थीकृतम्। तस्य यज्ञभागाभावादिति भावः। अस्य तु तत्सद्भावे प्रमाणम्—'हिमवतो हस्ती' इति श्रुतिः ॥७२॥

हिन्दी—यज्ञभाग ग्रहण करने वाले इन्द्रादि देवताओं के मध्य में पद ग्रहण कर तुमने सुमेरु पर्वत के सुवर्णमय शिखर को भी व्यर्थ कर दिया।

काठिन्यं स्थावरे काये भवता सर्वमर्पितम्।
इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः ॥७३॥

अन्वयः—भवता सर्वं काठिन्यं स्थावरे काये अर्पितम्। सताम् आराधनं ते इदं वपुः तु भक्तिनम्रम् अस्ति।

संजी०—काठिन्यमिति ॥ भवता सर्वं काठिन्यम्। अनम्रत्वमित्यर्थः। स्थावरे स्थिरे काये। शिलामय इत्यर्थः। अर्पितं न्यस्तम्। सतामर्हतामा-

राधनं पूजासाधनं त इदं वपुस्तु जङ्गममित्यर्थः । भक्तिनम्रम् । काठिन्यलेशोऽप्यत्र नास्त्यन्यथा नम्रत्वासंभवादित्यर्थः । तथा चासाधारण्यं ध्वन्यते ॥७३॥

हिन्दी--तुमने अपनी सारी कठोरता स्थावर शरीर को अर्पित कर दी है और यह जंगम शरीर भक्ति से नम्र और सज्जनों की आराधना की वस्तु है।

तदागमनकार्यं नः शृणु कार्यं तवैव तत्।
श्रेयसामुपदेशात्तु वयमत्रांशभागिनः ॥७४॥

अन्वयः--तद् नः आगमनकार्यं शृणु। तत् तव कार्यं एव। वयं तु श्रेयसाम् उपदेशात् अत्र अंशभागिनः स्मः ॥७४॥

संजी०—तदिति ॥ तत्तस्मान्नोऽस्माकमागमनस्य कार्यं प्रयोजनं शृणु। तत्कार्यं च तवैव न त्वस्माकमित्यवधारणार्थं एवकारः। वयं तु श्रेयसामुपदेशादत्र कार्येऽशभागिनः। त्वमेवात्र फलभाग्वयमुपदेष्टार इति भावः ॥७४॥

हिन्दी--हे गिरिराज, अब हम लोगों के आगमन का कारण सुनो। वस्तुतः यह कार्य तो तुम्हारा ही है। हम लोग तो केवल कल्याण के उपदेश मार्ग से उसके आंशिक रूप से फलभागी हैं।

कार्यमेवाह--

अणिमादिगुणोपेतमस्पृष्टपुरुषान्तरम्।
शब्दमीश्वर इत्युच्चैः सार्धचन्द्रं बिभर्ति यः ॥७५॥

अन्वयः--यः अणिमादिगुणोपेतम् अस्पृष्टपुरुषान्तरम् उच्चैः ईश्वर इति शब्दं सार्धचन्द्रं बिभर्ति ॥७५॥

संजी०--अणिमेति ॥ यः शंभुरणिमादिगुणोपेतमणिमादिभिरष्टभिर्गुणैर्वाच्यभूतैरुपेतम्। अष्टैश्वर्यवाचकमित्यर्थः। अतएवास्पृष्टं पुरुषान्तरं येन तं तथोक्तं पुरुषान्तरस्यानभिधायकम्। तस्यैवैवंगुणत्वादित्यर्थः। उच्चैः परममीश्वर इति शब्दम्। निरुपपदेश्वरशब्दमित्यर्थः। सार्धचन्द्रमर्धचन्द्रयुक्तम्। अर्धचन्द्रं चेत्यर्थः। बिभर्ति ॥७५॥

हिन्दी--जो अणिमादि गुणों से युक्त एवम् अन्य पुरुषों से अप्राप्य सर्वप्रसिद्ध ईश्वर इस नाम से पुकारे जाते हैं, साथ ही अर्धचन्द्र से युक्त भी हैं।

कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिरात्मभिः।
येनेदं ध्रियते विश्वं धुर्यैर्यानमिवाध्वनि ॥७६॥

अन्वयः—येन कलितान्योन्यसामर्थ्यैः पृथिव्यादिभिः आत्मभिः इदं विश्वं धुर्यैः अध्वनि यानम् इव ध्रियते ॥७६॥

संजी०—कलितेति ।। येन शंभुना कलितं धृतिसंग्रहादिस्वस्वगुणसंपादितमन्योन्यसामर्थ्यं परस्परसहकाररूपं यैस्तथोक्तैः । स्वस्वरूपसामर्थ्यमन्योन्याधेयमेवेति भावः । पृथिव्यादिभिरात्मभिः । अष्टाभिर्मूर्तिभिरित्यर्थः । इदं व्यक्तं विश्वं धुरं वहन्तीति धुर्यैरश्वैः । 'धुरो यड्ढकौ' इति यत्प्रत्ययः । अध्वनि यानं रथ इव ध्रियते ।।७६।।

हिन्दी—जो महेश्वर (धृति आदि) गुणों से व्याप्त परस्पर सहकारी सामर्थ्य वाले पृथ्वी आदि अपने अष्टमूर्तियों से इस समस्त जगत् को उसी प्रकार धारण करते हैं जिस प्रकार लौकिक मार्ग में घोड़े रथ आदि यानों को धारण करते हैं ।।७७।।

योगिनो यं विचिन्वन्ति क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनम् ।
अनावृत्तिभयं यस्य पदमाहुर्मनीषिणः ।।७७।।

अन्वयः—योगिनः क्षेत्रान्तरवर्तिनं यं विचिन्वन्ति मनीषिणः यस्य पदम् अनावृत्तिभयम् आहुः ।

संजी०—योगिन इति ।। योगिनोऽध्यात्मवेदिनः क्षेत्राभ्यन्तरवर्तिनं शरीरान्तश्चरं सर्वभूतान्तर्यामिणम् । परमात्मस्वरूपिणमित्यर्थः । 'क्षेत्रं पत्नीशरीरयोः' इत्यमरः । यं शंभुं विचिन्वन्ति मृगयन्ते । मनीषिणो विद्वांसो यस्य शंभोः पदं स्थानमविद्यमानमावृत्तेः पुनः संसारापत्तेर्भयं यत्र तत्तथाभूतमाहुः ।।७७।।

हिन्दी—योगी लोग जिन परमात्मा को अपने अन्तःकरण में खोजते हैं, महर्षिगण जिस (शम्भु पद) को जाकर पुनः न लौटने वाला भयरहित (मोक्ष) पद बतलाते हैं ।

स ते दुहितरं साक्षात्साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् ।
वृणुते वरदः शंभुरस्मत्संक्रामितैः पदैः ।।७८।।

अन्वयः—विश्वस्य कर्मणां साक्षी वरदः स शंभुः अस्मत्संक्रमितैः पदैः ते दुहितरं साक्षाद् वृणुते ।।७८।।

संजी०—स इति ।। विश्वस्य जगतः कर्मणां साक्षी द्रष्टा । 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इतीनिप्रत्ययः । वरानिष्टान्ददातीति वरदः । 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः । स पूर्वोक्तः शंभुरस्मत्संक्रामितैः पदैरस्मासु निवेशितैर्वाक्यैस्ते दुहितरं साक्षाद्वृणुते । अस्मन्मुखेन स्वयमेव याचत इत्यर्थः ।।७८।।

हिन्दी—जो संसार के सभी प्रकार के कर्मों के साक्षी हैं, वे वरदाता सदाशिव अपने अभिप्राय को हम लोगों के शब्दों द्वारा प्रगट करवा कर तुम्हारी कन्या पार्वती के साथ विवाह करना चाहते हैं ।।७८।।

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि ।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥७९॥

अन्वयः—तम् 'भारत्या अर्थम्' इव सुतया योक्तुम अर्हसि । हि सद्भर्तृप्रतिपादिता कन्या पितुः अशोच्या भवति ।

संजी०—तमिति ॥ तं शंभुं भारत्या वाचार्थमभिधेयमिव सुतया दुहित्रा योक्तुं संघटयितुमर्हसि । अत्र वागर्थयोरुपमानत्वसामर्थ्याच्छिव योनित्ययोगो विवक्षित इत्युक्तम् । 'वागर्थाविव संपृक्तौ' रघुवंशे, १।१) इत्यत्रापि । तथाहि सद्भर्त्रे प्रतिपादिता दत्ता कन्या पितुरशोच्या ॥७९॥

हिन्दी—जिस प्रकार वाणी को अर्थ के साथ संयुक्त किया जाता है उसी प्रकार तुम अपनी कन्या को महेश्वर से युक्त कर दो । क्योंकि उत्तम पति से अपनी लड़की का विवाह कर पिता चिन्ता से मुक्त हो जाता है ।

गुणान्तरमप्याह—

यावन्त्येतानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
मातरं कल्पयन्त्वेनामीशो हि जगतः पिता ॥८०॥

अन्वयः—स्थावराणि चराणि च यावन्ति एतानि भूतानि एनां मातरं कल्पयन्तु । हि ईशः जगतः पिता अस्ति ।

संजी०—यावन्तीति ॥ स्थावराणि चराणि च यावन्त्येतानि भूतानि । सन्तीति शेषः । सर्वाणि भूतानीत्यर्थः । एनां ते दुहितरं मातरं कल्पयन्तु । हि यस्मादीशो जगतः पिता । पितृदारेषु मातृभावो न्याय्य इति भावः ॥८०॥

हिन्दी—स्थावर एवं जङ्गम जितने भी इस जगत् के प्राणी हैं, वे सभी तुम्हारी कन्या को माता समझेंगे । क्योंकि शङ्कर उनके पिता हैं ।

प्रणम्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम् ।
चरणौ रञ्जयन्त्वस्याश्चूडामणिमरीचिभिः ॥८१॥

अन्वयः—विबुधा शितिकण्ठाय प्रणम्य तदनन्तरं अस्याः चरणौ चूडामणिमरीचिभिः रञ्जयन्तु ।

संजी०—प्रणम्येति ॥ विबुधा देवाः शितिकण्ठाय शिवाय प्रणम्य तदनन्तरं नीलकण्ठप्रणामानन्तरमस्याश्चरणौ चूडामणिमरीचिभी रञ्जयन्तु । ईश्वरपरिग्रहादखिलदेवतावन्द्या भवत्वित्यर्थः ॥८१॥

हिन्दी—देवता लोग पहले शङ्कर को प्रणाम कर तदनन्तर पार्वती के चरणो को अपनी चूडामणि मरीचियों से रञ्जित करें ।

उमा वधूर्भवान्दाता याचितार इमे वयम् ।
वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः ॥८२॥

अन्वयः—उमा वधूः । भवान् दाता । इमे वयं याचितारः । शम्भुः वरः । एषः विधिः । त्वत्कुलोद्भूतये अलं हि ।

संजी०—उमेति ॥ उमा वधूः । भवान्दाता । इमे वयं याचितारः प्रार्थकाः । शंभुर्वरो वोढा । एष विधिरेषा सामग्री त्वत्कुलस्योद्भूतय उच्छ्रायायालं पर्याप्तं हि । 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधा–' इत्यादिना चतुर्थी ॥८२॥

हिन्दी—उमा जैसी वधू तुम जैसे देने वाले, हम जैसे लोग माँगने वाले और शङ्कर जैसे वर, इससे बढ़कर तुम्हारे कुल का और कौन-सा कल्याणकारी कार्य होगा ।

अस्तोतुः स्तूयमानस्य वन्द्यस्यानन्यवन्दिनः ।
सुतासंबन्धविधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥८३॥

अन्वयः—अस्तोतुः स्तूयमानस्य वन्द्यस्य अनन्यवन्दिनः विश्वगुरोः सुतासम्बन्धविधिना गुरुः भव ।

संजी०—अस्तोतुरिति ॥ स्वयमन्यस्तोता न भवतीत्यस्तोतुः किंतु स्तूयमानस्य सर्वस्तुत्यस्य वन्द्यस्य जगद्वन्द्यस्य स्वयमन्यं न वन्दत इत्यनन्यवन्दिनो विश्वगुरोर्देवस्य सुतासंबन्धविधिना यौनसंबन्धाचरणेन गुरुर्भव । यो नान्यं स्तौति न वन्दते तस्यापि त्वं स्तुत्यो वन्द्यश्चेत्यहो तव भाग्यवत्तेत्यर्थः ॥८३॥

हिन्दी—जो स्वयं किसी की स्तुति नहीं करता, किन्तु सारा संसार जिनकी स्तुति करता है । जो स्वयं किसी की वन्दना नही करता किन्तु स्वयं विश्ववन्द्य है, ऐसे जगद्गुरु शङ्कर के साथ अपनी कन्या का विवाह कर उसके श्वशुर पद से गुरु पद ग्रहण करो ।

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥८४॥

अन्वयः—देवर्षौ एवंवादिनि सति पार्वती पितुः पार्श्वे अधोमुखी सती लीलाकमलपत्राणि गणयामास ।

संजी०—एवमिति ॥ देवर्षावङ्गिरस्येवंवादिनि सति पार्वती पितुः पार्श्वेऽधोमुखी सती । लज्जयेति शेषः । लीलाकमलपत्राणि गणयामास

संचख्यौ । लज्जावशात्कमलदलगणनाव्याजेन हर्षं जुगोपेत्यर्थः । अनेनावहित्थाख्यः संचारी भाव उक्तः । तदुक्तम्—'अवहित्था तु लज्जादेर्हर्षादाकारगोपनम्' इति ॥८४॥

हिन्दी—अङ्गिरा ऋषि के बोलने के समय नम्रमुखी पार्वती अपने पिता के पास बैठकर लज्जावश लीला कमल पत्रों को गिन रही थी।

शैलः संपूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत ।
प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ॥८५॥

अन्वयः—शैलः संपूर्णकामः अपि मेनामुखम् उदैक्षत । तथा हि प्रायेण कुटुम्बिनः कन्यार्थेषु गृहिणीनेत्राः भवन्ति ।

संजी०—शैल इति ॥ शैलो हिमवान्संपूर्णकामोऽपि । दातुं कृतनिश्चयोऽपीत्यर्थः । मेनामुखमुदैक्षत । उचितोत्तरजिज्ञासयेति भावः । तथाहि । प्रायेण कुटुम्बिनो गृहस्थाः कन्यार्थेषु कन्याप्रयोजनेषु गृहिण्येव नेत्रं कार्यज्ञानकारणं येषां ते तथोक्ताः । कलत्रप्रधानवृत्तय इत्यर्थः ॥८५॥

हिन्दी—अङ्गिरा ऋषि की बातें सुनकर अपनी कन्यादान की कामना पूर्ण होने पर भी हिमालय ने अपनी स्त्री मेना के मुख की ओर देखा । प्रायः गृहस्थ कन्यादान के विषय में अपनी स्त्री की सम्मति को प्रधानता देते हैं ।

मेने मेनापि तत्सर्वं पत्युः कार्यमभीप्सितम् ।
भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः ॥८६॥

अन्वयः—मेना अपि पत्युः तत् सर्वम् अभीप्सितं कार्यं मेने । तथा हि पतिव्रता भर्तुः इष्टे अव्यभिचारिण्यः भवन्ति ।

संजी०—मेन इति ॥ मेनापि पत्युर्हिमालयस्य तत्सर्वमभीप्सितं कार्यं मेनेऽङ्गीचकार । तथाहि । पतिरेव व्रतं यासां ता भर्तुरिष्टेऽभीप्सिते न विद्यते व्यभिचारो यासां ता अव्यभिचारिण्यो भवन्ति । भर्तृचित्ताभिप्रायज्ञा भवन्तीति भावः ॥८६॥

हिन्दी—मेना ने भी अपने पति के अनुकूल शङ्कर के साथ पार्वती के विवाह का अनुमोदन किया । क्योंकि सती स्त्रियाँ अपने पति के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करना चाहतीं ।

इदमत्रोत्तरं न्याय्यमिति बुद्ध्या विमृश्य सः ।
आददे वचसामन्ते मङ्गलालंकृतां सुताम् ॥८७॥

अन्वयः—सः वचसाम् अन्ते 'अत्र इदं न्यायम् उत्तरम्' इति बुद्धया विमृश्य मङ्गलालङ्कृतां सुताम् आददे ।

संजी०—इदमिति ।। स हिमवान्वचसामन्ते मुनिवाक्यावसानेऽत्र मुनिवाक्य इदमुत्तरश्लोके वक्ष्यमाणं दानमेव न्याय्यं न्यायादनपेतमुत्तरमिति बुद्ध्या चित्तेन विमृश्य विचिन्त्य मङ्गलं यथा तथालंकृतां मङ्गलालंकृतां सुतामाददे हस्ताभ्यां जग्राह ।।८७।।

हिन्दी—इस प्रकार सप्तर्षियों के कह लेने पर 'इस विषय में यही उत्तर समीचीन होगा' ऐसी बुद्धि से निश्चय कर हिमालय ने मङ्गल से अलङ्कृत अपनी कन्या पार्वती को सामने उपस्थित कर दिया ।

एहि विश्वात्मने वत्से भिक्षासि परिकल्पिता ।
अर्थिनो मुनयः प्राप्तं गृहमेधिफलं मया ।।८८।।

अन्वयः—हे वत्से ! एहि त्वं विश्वात्मने भिक्षा परिकल्पिता असि । मुनयः अर्थिनः । मया गृहमेधिफलं प्राप्तम् ।

संजी०—एहीति ।। हे वत्से पुत्रि, एह्यागच्छ । त्वं विश्वात्मने शिवाय भिक्षा परिकल्पितासि निश्चितासि । रत्नादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं भिक्षा तपस्विनः' इति वचनादिति भावः । अर्थिनो याचितारो मुनयः । मया गृहमेधिनो गृहस्थस्य फलं प्राप्तम् । इह परत्र च तारकतत्रात्पात्रे कन्यादानं गार्हस्थ्यस्य फलमित्यर्थः ।।८८।।

हिन्दी—हे वत्से ! इधर आओ । तुम शङ्कर के लिए भिक्षा रूप में निश्चित कर ली गई हो, ये सप्तर्षि तुम्हें माँगने के लिए ही आये हुए हैं, इस समय गृहस्थ होने का फल मुझे प्राप्त हो गया ।

एतावदुक्त्वा तनयामृषीनाह महीधरः ।
इयं नमति वः सर्वांस्त्रिलोचनवधूरिति ।।८९।।

अन्वयः—महीधरः 'तनयाम् एतावद् उक्त्वा' इयं त्रिलोचनवधूः वः सर्वान् नमति' इति ऋषीन् प्राह ।

संजी०—एतावदिति ।। महीधरो हिमवांस्तनयामेतावत्पूर्वोक्तमुक्त्वर्षीनाह—किमिति । इयं त्रिलोचनवधूस्त्र्यम्बकपत्नी वः सर्वान्नमतीति । त्रिलोचनवधूरिति सिद्धवदभिधानेनाविप्रतिपन्नं दानमिति सूचयति ।।८९।।

हिन्दी—हिमालय ने अपनी कन्या से इस प्रकार कहकर पुनः ऋषियों से कहा—'यह महेश्वर की भावी पत्नी आप सभी लोगों को प्रणाम करती है ।'

ईप्सितार्थक्रियोदारं तेऽभिनन्द्य गिरेर्वचः ।
आशीर्भिरेधयामासुः पुरःपाकाभिरम्बिकाम् ॥९०॥

अन्वयः—ते ईप्सितार्थक्रियोदारं गिरेः वचः अभिनन्द्य अम्बिकां पुरः पाकाभिः आशीर्भिः एधयामासुः ।

संजी०—ईप्सितार्थेति ॥ ते मुनयः । ईप्सितार्थक्रिययेष्टार्थकरणेनोदारं महत् । 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः । गिरेर्हिमवतो वचो वचनमभिनन्द्य साध्विति संस्तुत्याम्बिकामम्बाम् । पच्यत इति पाकः फलम् । पुरःपाकाभिः पुरस्कृतफलाभिराशीर्भिराशीर्वादैरेधयामासुः संवर्धयामासुः ॥९०॥

हिन्दी—उन सप्तर्षियों ने अपने मनोरथ के अनुकूल उदार गिरिराज की बात का 'बहुत अच्छा' इस प्रकार अभिनन्दन कर अम्बा पार्वती को पुरस्कृत फलों वाले आशीर्वादों से संवर्द्धित किया ।

तां प्रणामादरस्रस्तजाम्बूनदवतंसकाम् ।
अङ्कमारोपयामास लज्जमानामरुन्धती ॥९१॥

अन्वयः—प्रणामादरस्रस्त जाम्बूनदवतंसकाम् लज्जमानां ताम् अरुन्धती अङ्कम् आरोपयामास ।

संजी०—तामिति ॥ प्रणामादरेण नमस्कारासक्त्या स्रस्ते जाम्बूनदे सुवर्णविकारौ वतंसके कनककुण्डले यस्यास्तां लज्जमानां तामम्बिकामरुन्धत्यङ्कमारोपयामास । 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' इति पकारः ॥९१॥

हिन्दी—प्रणाम में आसक्त होने के कारण खिसक गये हैं सुवर्णमय कर्णफूल जिसके ऐसी लज्जावती पार्वती को अरुन्धती ने अपनी गोद में बिठा लिया ।

तन्मातरं चाश्रुमुखीं दुहितृस्नेहविक्लवाम् ।
वरस्यानन्यपूर्वस्य विशोकामकरोद्गुणैः ॥९२॥

अन्वयः—दुहितृस्नेहविक्लवाम् अश्रुमुखीं तन्मातरं च अनन्यपूर्वस्य वरस्य गुणैः विशोकाम् अकरोत् ।

संजी०—तदिति ॥ दुहितृस्नेहेन पुत्रिकाप्रेम्णा विक्लवां वियोक्ष्यत इति भीताम् । अत एवाश्रूणि मुखे यस्यास्तामश्रुमुखीं तस्या अम्बिकाया मातरं तन्मातरं मेनां च । अन्या पूर्वं यस्यास्ति सोऽन्यपूर्वः । 'सर्वनाम्नो वृत्तिविषये पुंवद्भावः' इति पूर्वपदस्य पुंवद्भावः । स न भवतीत्यनन्यपूर्वस्तस्यानन्यपूर्वस्य । सापत्न्यदुःखमकुर्वत इत्यर्थः । वरस्य वोढुर्गुणैर्मृत्युञ्जयत्वादिभिर्विशोकां निर्दुःखामकरोत् ॥९२॥

हिन्दी—अरुन्धती ने पुत्री के स्नेहवश वियोग से विकल एवं रोती हुई पार्वती की माता मेना को सापत्न्यादि दोषरहित वर के मृत्युञ्जयत्वादि गुणों का वर्णन कर उसे विशोक बनाया।

वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना।
ते त्र्यहादूर्ध्वमाख्याय चेरुश्चीरपरिग्रहाः ॥९३॥

अन्वयः—चीरपरिग्रहाः ते तत्क्षणं हरबन्धुना वैवाहिकीं तिथिं पृष्टाः सन्तः त्र्यहाद् ऊर्ध्वम् आख्याय चेरुः।

संजी०—वैवाहिकीमिति ॥ चीरपरिग्रहा वल्कलमात्रवसनास्ते तपस्विनस्तत्क्षणं तस्मिन्नेव क्षणे हरबन्धुना हिमवता वैवाहिकीं विवाहयोग्यां तिथिं पृष्टाः केत्यनुयुक्ताः सन्तः। त्रयाणामह्नां सामाहारस्त्र्यहः। 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति समासः 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्प्रत्ययः। द्विगुत्वादेकवचनम्। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति पुंलिङ्गता। तस्मात्त्र्यहादूर्ध्वमुपर्याख्याय चतुर्थेऽहनि विवाह इत्युक्त्वा चेरुश्चलिताः ॥९३॥

हिन्दी—हिमालय ने उसी समय जब विवाह की तिथि पूछी तब चीरधारी उन मुनियों ने चौथे दिन बताकर वहाँ से प्रस्थान किया।

ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः ॥९४॥

अन्वयः—ते हिमालयम् आमन्त्र्य पुनः शूलिनं प्राप्य सिद्धम् अर्थम् अस्मै निवेद्य च तद्विसृष्टाः खम् उद्ययुः।

संजी०—त इति ॥ ते मुनयो हिमालयमामन्त्र्य साधु यामेत्यापृच्छ्य पुनः शूलिनं हरं संकेतस्थानस्थं प्राप्य सिद्धं निष्पन्नमर्थं प्रयोजनमस्मै निवेद्य च ज्ञापयित्वा च तद्विसृष्टास्तेन शूलिना विसृष्टाः खमाकाशं प्रत्युद्ययुरुत्पेतुः। अत्र संक्षिप्तार्थाभिधानात्संक्षेपो नाम गुण उक्तम्। उदुक्तः—'संक्षिप्तार्थाभिधानं यत्संक्षेपः परिकीर्तितः' इति ॥९३॥

हिन्दी—वे सप्तर्षि हिमालय से विदा लेकर फिर शङ्कर से भेंट कर उनसे कार्य की सिद्धि की बात बतला कर उनकी आज्ञा ले आकाशमार्ग से ऊपर उड़ते हुए अपने स्थान को चले गये।

भगवान्पशुपतिस्त्र्यहमात्रविलम्बमपि सोढुं न शशाक तदौत्सुक्यादित्याह—

पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रादगमयदद्रिसुतासमागमोत्कः।
कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ॥९५॥

अन्वयः—अद्रिसुतासमागमनोत्कः पशुपतिः अपि तानि अहानि कृच्छ्रात् अगमयत्। अमी भावाः अवशं अपरं कं न विप्रकुर्युः यद् विभुं तम् अपि स्पृशन्ति।

संजी०—पशुपतिरिति॥ उत्कं मनो यस्य स उत्कः। 'उत्क उन्मनाः' इति निपातः। अद्रिसुतासमागमोत्कः पार्वतीपरिणयोत्सुकः पशुपतिरपि तानि। त्रीणीति शेषः। अहानि कृच्छ्रादगमयदयापयत्। कविराह—अमी भावा औत्सुक्यादयः संचारिणोऽवशमिन्द्रियपरतन्त्रमपरं पृथग्जनं कं न विप्रकुर्युर्न विकारं नयेयुः। यद्यस्माद्विभुं समर्थम्। जितेन्द्रियमिति यावत्। तं स्मरहरमपि स्पृशन्ति। विकुर्वन्तीत्यर्थः। अत्र विभुविकारसमर्थनादर्थादितरजनविकारः कैमुतिकन्यायादापततीत्यर्थापत्तिरलंकारः। तथा च सूत्रम्—'दण्डापूपिकयार्थान्तरपतनमर्थापत्तिः' इति। 'अर्थान्तरन्यास इति केचित्' तदुपेक्षणीयम्। युक्तिस्तु विस्तरभयान्नोच्यते। पुष्पिताग्रावृत्तम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति तल्लक्षणात्॥९५॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये उमाप्रदानो
नाम षष्ठः सर्गः॥६॥

हिन्दी—पार्वती से मिलने के लिये उत्सुक शङ्करजी ने उन तीन दिनों को बड़े कष्ट से बिताया, जब ये काम सम्बन्धी भाव जितेन्द्रिय शिव को विकल कर सकते हैं तो अजितेन्द्रिय अन्य मनुष्यों को क्यों नहीं विकल कर सकते?

इस प्रकार श्रीकालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के षष्ठ
सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी
व्याख्या पूर्ण हुई॥६॥

सप्तमः सर्गः

अथौषधीनामधिपस्य वृद्धौ तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम् ।
समेतबन्धुर्हिमवान्सुताया विवाहदीक्षाविधिमन्वतिष्ठत् ॥१॥

अन्वयः—अथ हिमवान् ओषधीनाम् अधिपस्य वृद्धौ तिथौ च जामित्रगुणान्वितायां समेतबन्धुः सन् सुतायाः विवाहदीक्षाविधिम् अन्वतिष्ठत् ।

संजी०—अथेति ॥ अथ त्र्यहानन्तरं हिमवानोषधीनामधिपस्य चन्द्रस्य वृद्धौ । शुक्लपक्ष इत्यर्थः । शुभकर्मस्वापूर्यमाणपक्षस्य प्राशस्त्यात् । तिथौ च जामित्रं लग्नात्सप्तमं स्थानं तस्य गुणः शुद्धिः सा च ग्रहराहित्यं तेनान्वितायां सत्याम् । यद्यपि जामित्रशुद्धिर्लग्नधर्मस्तथापि तद्द्वारा तिथेरपि तथा व्यपदेशे दोषः । समेतबन्धुर्युक्तबन्धुः सन् । सुताया दुहितुर्विवाहदीक्षा विवाहसंस्कारः सैव विधिः कर्म तमन्वतिष्ठत्कृतवान् ॥१॥

हिन्दी—इसके बाद सप्तर्षियों के आज्ञानुसार शुक्लपक्ष में लग्न से सप्तम स्थान से युक्त तिथि में हिमालय ने अपने बन्धु-बान्धवों को बुलाकर भगवान् शङ्कर के साथ पार्वती का विवाह संस्कार कर दिया ।

वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैर्गृहे गृहे व्यग्रपुरंध्रिवर्गम् ।
आसीत्पुरं सानुमतोऽनुरागादन्तःपुरं चैककुलोपमेयम् ॥२॥

अन्वयः—अनुरागात् गृहे गृहे वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैः व्यग्रपुरन्ध्रिवर्गम् सानुमतः पुरम् अन्तःपुरं च एककुलोपमेयं आसीत् ।

संजी०—वैवाहिकैरिति ॥ अनुरागात्प्रीतिवशात् । गृहे गृहे प्रतिगृहम् । वीप्सायां द्विर्भावः । विवाहः प्रयोजनमेषामिति वैवाहिकानि तैः । 'प्रयोजनम्' इति ठक् । कौतुकसंविधानैर्मङ्गलार्थसंपादनैर्व्यग्रो व्याकुलः पुरंध्रिवर्गः कुटुम्बिनीसंघो यस्मिंस्तत्तथोक्तं सानुमतोऽद्रेः पुरं बाह्यमोषधिप्रस्थमन्तःपुरमवरोधनं चैककुलेनैकगृहेण वोपमेयासीत् । 'सजातीयगणे गोत्रे गृहेऽपि कथितं कुलम्' इति विश्वः । सर्वेषामपि स्वगृह एवेदं शोभनं वर्तत इत्यभिमानोऽभूदित्यर्थः । एतेन हिमाद्रेः प्रजाराग उक्तः । अत्र सर्वं संपन्नमेवेत्यर्थः ॥२॥

हिन्दी—उस समय अनुराग के कारण वहाँ के घर-घर में विवाह सम्बन्धी माङ्गलिक तोरण-पताकादि सुसज्जित हो गये । उत्सव में व्यस्त हुई स्त्रियों से युक्त नागरिक जनों में एवं अन्तःपुरवासी जनों में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था ।

संतानकाकीर्णमहापथं तच्चीनांशुकैः कल्पितकेतुमालम् ।
भासोज्ज्वलत्काञ्चनतोरणानां स्थानान्तरं स्वर्ग इवाबभासे ॥३॥

अन्वयः—सन्तानकाकीर्णमहापथम् चीनांशुकैः कल्पितकेतुमालं काञ्चनतोरणानां भासा उज्ज्वलत् तत् स्थानान्तरं गतः स्वर्गं इव अवभासते ।

संजी०—संतानकैरिति ॥ संतानकैर्मन्दारकुसुमैराकीर्णा आस्तृता महापथा राजकीयपथा यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । चीनांशुकैः पट्टवस्त्रैः कल्पिता विरचिताः केतुमाला ध्वजपङ्क्तयो यस्य तत्तथोक्तम् । काञ्चनतोरणानां भासा प्रभयोज्वलद्दीप्यमानं तत्पुरं स्थानान्तरं मेरोरन्यत्र स्थितः स्वर्गं इवाबभासे । उत्प्रेक्षालंकारः ॥३॥

हिन्दी—राजमार्ग पर कल्पवृक्ष के पुष्पों से समाकीर्ण पट्टवस्त्रों द्वारा बनाए गये ध्वजों की माला एवं सुवर्णमय तोरण के कान्ति से जगमगाता हुआ वह ओषधिप्रस्थ नगर उस समय मेरु शिखर से लाकर अन्यत्र स्थापित किये गये स्वर्ग जैसा प्रतीत हो रहा था ।

एकैव सत्यामपि पुत्रपङ्क्तौ चिरस्य दृष्टेव मृतोत्थितेव ।
आसन्नपाणिग्रहणेति पित्रोरुमा विशेषोच्छ्वसितं बभूव ॥४॥

अन्वयः—पुत्रपङ्क्तौ सत्याम् अपि उमा एका एव चिरस्य दृष्टा इव मृतोत्थिता इव आसन्नपाणिग्रहणा इति पित्रोः विशेषोच्छ्वासितं बभूव ।

संजी०—एकैवेति ॥ पुत्राश्च दुहितरश्च पुत्राः । 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्' इत्येकशेषः । 'पुत्रौ पुत्राश्च दुहिता च' इत्यमरः । तेषां पङ्क्तौ सङ्घे सत्यामप्युमैकैव चिरस्य दृष्टेव चिरान्नष्टलब्धेव मृतोत्थितेव मृत्वा पुनरुत्पन्नेवासन्नपाणिग्रहणासन्नविवाहेति । भर्तृगृहं गमिष्यतीति हेतोरित्यर्थः । पित्रोर्मातापित्रोः । 'पिता मात्रा' इत्येकशेषः । विशेषेणोच्छ्वसितं प्राणभूता बभूव । पुमपत्यादप्यधिकप्रेमास्पदमभूदित्यर्थः ॥४॥

हिन्दी—अनेक सन्तानों के विद्यमान होने पर एकमात्र पार्वती को शीघ्र विवाह होने के कारण अथवा शीघ्र पतिगृह जाने के कारण उसके माता-पिता ने बड़े ध्यान से देखा तथा मर कर जीवित होने के समान उसमें विशेष स्नेह प्रदर्शित किया ।

अङ्काद्ययावङ्कमुदीरिताशीः सा मण्डनान्मण्डनमन्वभुङ्क्त ।
संबन्धिभिन्नोऽपि गिरेः कुलस्य स्नेहस्तदेकायतनं जगाम ॥५॥

अन्वयः—सा उदीरिताशीः सती अङ्कात् अङ्कं ययौ । मण्डनात् मण्डनम् अन्वभुङ्क्त । सम्बन्धिभिन्ना अपि गिरेः कुलस्य स्नेहः तदेकायतनं जगाम ।

संजी०--अङ्कादिति ।। सा पार्वत्युदीरिताशीः प्रयुक्ताशीर्वादा सत्यङ्कादङ्कमुत्सङ्गं ययौ। मण्डनान्मण्डनान्तरमन्यन्मण्डनमन्वभुङ्क्त। तदा सर्वे बन्धवः प्रत्येकमेव तामङ्कमारोप्य मण्डनं प्रायच्छन्नित्यर्थः। तच्च स्नेहनिबन्धनमेवेत्याह--संबन्धिभिन्नः स्वपुत्रादिभिर्भिन्नो विभक्तोऽपि गिरेः कुलस्य वंशस्य स्नेहस्तदेकायतनं सैवैकमायतनं स्थानं तज्जगाम। तदिति छेदेऽव्ययमेवार्थः। विधेयप्राधान्यान्नपुंसकत्वमिति। सर्वे बन्धवः स्वापत्येभ्योऽपि तस्याधिकं स्निह्यन्तीति तात्पर्यार्थः ।।५।।

हिन्दी--कुटुम्बियों का उसे आशीर्वाद तो प्राप्त हुआ ही, वह एक के बाद एक के गोद में भी बिठाई गई। मण्डनों से एक के बाद एक से अलङ्कृत की गई। उस समय सम्बन्धि वर्गों में प्रविभक्त हुआ। सब स्नेह मानो एकत्रित होकर पार्वती रूप एक आयतन में समाहित हो गया।

मैत्रे मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु।
तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः ।।६।।

अन्वयः—अथ मैत्रे मुहूर्ते उत्तरफल्गुनीषु शशलाञ्छनेन योगं गतासु तस्याः शरीरे याः पतिपुत्रवत्यः ताः बन्धुस्त्रियः प्रतिकर्म चक्रुः।

संजी०—मैत्र इति ।। अथ मैत्रे मित्रदैवत्ये मुहूर्ते। उदयमुहूर्तात्तृतीयमुहूर्त इत्यर्थः। 'आर्द्रः सार्द्रस्तथा मैत्रः शुभो वासव एव च' इति बृहस्पतिस्मरणात्। उत्तरफल्गुनीषु 'फल्गुनीनक्षत्रे। 'फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे' इत्येकस्मिन्नपि बहुवचनम्। शशलाञ्छनेन चन्द्रेण योगं गतासु सतीषु तस्याः पार्वत्याः शरीरे बन्धुस्त्रियः प्रतिकर्म प्रसाधनम्। 'प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः। चक्रुः। कीदृश्यः। या पतिपुत्रवत्यः। जीवद्भर्तृका जीवदपत्याश्चेत्यर्थः ।।६।।

हिन्दी—इसके बाद सूर्योदय से तीसरे मुहूर्त्त में जब उत्तराफल्गुनी से युक्त चन्द्रमा था तब पतिपुत्रवती हिमालय के कुल की सुहागिनी स्त्रियों ने पार्वती का श्रृंगार किया।

प्रतिकर्मप्रकारमेव प्रपञ्चयति—

सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिर्दूर्वाप्रवालैः प्रतिभिन्नशोभम्।
निर्नाभि कौशेयमुपात्तबाणमभ्यङ्गनेपथ्यमलंचकार ।।७।।

अन्वयः—सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिः दूर्वाप्रवालैः प्रतिभिन्नशोभं निर्नाभिकौशेयम् उपात्तबाणम् अभ्यंगनेपथ्यम् अलञ्चकार।

संजी०—सेति ।। सा गौरी गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिः श्वेतसर्षपप्रक्षेपवद्भिर्दूर्वाप्रवालैर्दूर्वाङ्कुरैः प्रतिभिन्नशोभं विशेषितशोभं निर्नाभ्यतिक्रान्त-

नाभि कौशेयं वस्त्रविशेषो यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । 'कौशेयं कृमिकोशोत्थम्' इत्यमरः । उपात्तबाणं गृहीतशरम् । 'शरः क्षत्रियया ग्राह्यः' इति मनुस्मरणात् । अभ्यङ्गनेपथ्यमभ्यङ्गवेशमलंचकार । अलंकारमप्यलंचकारेत्यर्थः ॥७॥

हिन्दी—पार्वती ने श्वेत सर्षपयुक्त, दूर्वांकुरों से विशेष रूप से सुशोभित एवम् नाभि का अतिक्रमण करने वाले रेशमी वस्त्र को बाण के साथ ही धारण कर मानो उससे अपने अलंकारों को भी अलंकृत किया ।

बभौ च संपर्कमुपेत्य बाला नवेव दीक्षाविधिसायकेन ।
करेण भानोर्बहुलावसाने संधुक्ष्यमाणेव शशाङ्करेखा ॥८॥

अन्वयः—बाला नवेन दीक्षाविधिसायकेन सम्पर्कम् उपेत्य बहुलावसाने भानोः करेण सन्धुक्ष्यमाणा शशांकरेखा इव बभौ ।

संजी०—बभाविति ॥ किंचेति चार्थः । बाला नवेव दीक्षाविधौ विवाहकृत्ये यः सायकस्तेन संपर्कमुपेत्य बहुलावसाने कृष्णपक्षात्यये । शुक्लपक्षादावित्यर्थः । भानोः करेण किरणेन संधुक्ष्यमाणोपचीयमाना । 'सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति' इत्यादिवचनात् । शशाङ्करेखेव बभौ ॥८॥

हिन्दी—वह पार्वती विवाह संस्कार के विधिभूत उस बाण के सम्बन्ध को प्राप्त कर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से बढ़ने वाली चन्द्रकला की तरह अधिक शोभित हुई ।

तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलामाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम् ।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ॥९॥

अन्वयः—लोध्रकल्केन हृतांगतैलाम् आश्यानकालेयकृतांगरागाम् अभिषेकयोग्यं वासः वसानां तां नार्यः चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ।

संजी०—तामिति ॥ लोध्रकल्केन लोध्रचूर्णेन हृतमङ्गतैलं यस्यास्ताम् । कृतोद्वर्तनामित्यर्थः । आश्यानमीषच्छुष्कं तेन कालेयेन गन्धद्रव्येण कृताङ्गरागाम् । कृतस्त्रैगध्यामित्यर्थः । 'अथ जायकम् । कालेयकं च कालानुसार्यं च' इत्यमरः । अभिषेकयोग्यं वासो वस्त्रं वसानां स्नानशाटीमाच्छादयन्तीं तां पार्वतीं नार्यश्चतुष्कं चतुःस्तम्भगृहं तदभिमुखं व्यनैषुः । स्नानगृहं निन्युरित्यर्थः ॥९॥

हिन्दी—सुहागिनी स्त्रियों ने पहले लोध्रचूर्ण मिश्रित तैल से पार्वती को उबटन लगाया । फिर शुष्क सुगन्धित द्रव्यों से उसे सुगन्धि से युक्त किया । तदनन्तर स्नानोपयुक्त साड़ी पहनाकर स्नानगृह में ले गईं ।

विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्नाबद्धमुक्ताफलभक्तिचित्रे ।
आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्यमेनां स्नपयांबभूवुः ॥१०॥

अन्वयः--विन्यस्तवैदूर्यशिलातले आबद्धमुक्ताफलभक्तिचित्रे अस्मिन् एनाम् आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्यं स्नापयाम्बभूवुः ।

संजी०-विन्यस्तेति ।। विन्यस्तं वैदूर्यशिलातलं मरकतशिलाप्रदेशो यस्मिस्तस्मिन्नाबद्धानां मुक्ताफलानां भक्तिभी रचनाभिश्चित्रेऽस्मिश्चतुष्क एनां पार्वतीमावर्जितानामानमितानामष्टापदकुम्भानां कनककलशानां तोयैः सतूर्यं मङ्गलवाद्ययुक्तं यथा तथा स्नपयांबभूवुः । अष्टसु लोहेषु पदं प्रतिष्ठा यत्येस्यष्टापदम् । 'अष्टनः संज्ञायाम्' इति दीर्घः । 'अष्टापदं स्यात्कनकम्' इति विश्वः ।।१०।।

हिन्दी—उन स्त्रियों ने मोती के तोरणों से चित्रित चतुःस्तम्भ मण्डप में मरकत मणि की शिला पर बिठाकर सोने के घड़ों से बजते हुए मांगलिक वाद्यों के बीच पार्वती को स्नान कराया ।

सा मङ्गलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा ।
निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे ।।११।।

अन्वयः--मंगलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा सा निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधा इव रेजे ।

संजी०—सेति ।। मङ्गलार्थस्नानेन विशुद्धगात्री निर्मलाङ्गी पत्युर्वरस्योद्गमनीयवस्त्रं धौतवस्त्रम् । 'धौतमुद्गमनीयं स्यात्' इति हलायुधः । 'तत्स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम् इत्यमरः । युगग्रहणं तु प्रायिकाभिप्रायम् । अत एवात्र क्षीरस्वामी—'युगं प्रायशो यल्लक्ष्यं तदेव' इति व्याख्याय 'गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा' इत्येतदेवोदाहृतवान् । गृहीतं पतिं प्रत्युद्गमनीयवस्त्रं यया सा । धौतवस्त्रमाच्छादितवतीत्यर्थः । सा पार्वती निर्वृत्तो निष्पन्नः पर्जन्यस्य जलेनाभिषेको यस्याः सा तथोक्ता । प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं काशं काशपुष्पं यस्याः सा तथोक्ता वसुधेव रेजे शुशुभे ।।११।।

हिन्दी -मंगल-स्नान करने से शुद्ध शरीरवाली तथा पति के यहाँ जाने के योग्य स्वच्छ कौशेयवस्त्र के जोड़े को धारण कर पार्वती इस प्रकार शोभित हुई जिस प्रकार वर्षा बीत जाने के बाद फूले हुए कास के पुष्पों से युक्त पृथ्वी शोभित होती है ।

तस्मात्प्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन ।
पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम् ।।१२।।

अन्वयः—सा तस्मात् प्रदेशात् वितानवन्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन युक्तं क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यं पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये ।

संजी०—यस्मादिति ॥ किंचेति चार्थः । तस्मात्प्रदेशात्स्नानप्रदेशाद्वितानवन्तमुल्लोचयुक्तम् । 'अस्त्री वितानमुल्लोचः' इत्यमरः । मणिस्तम्भचतुष्टयेन युक्तं क्लृप्तं सज्जमानमासनं यस्मिंस्तं कौतुकवेदिमध्यं पतिव्रताभिः परिगृह्य दोर्भ्यामालिङ्ग्य निन्ये नीता । प्रसाधनार्थमित्यर्थः ॥१२॥

हिन्दी—उस स्नान प्रदेश से, चँदोवे वाले, रत्न जटित चार स्तम्भों से युक्त मण्डप वाले और बिछाए गए आसनों वाले विवाह के वेदी के मध्य, पतिव्रता स्त्रियों ने (प्रसाधनार्थ) दोनों हाथों से पकड़े हुए पहुँचाया ।

तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीं क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः ।
भूतार्थशोभाह्रियमाणनेत्राः प्रसाधने संनिहितेऽपि नार्यः ॥१३॥

अन्वयः—नार्यः तां तन्वीं तत्र प्राङ्मुखीं निवेश्य पुरो निषण्णाः प्रसाधने सन्निहिते अपि भूतार्थ शोभाह्रियमाणनेत्राः (सत्यः) क्षणं व्यलम्बन्त ।

संजी०—तामिति ॥ नार्यः प्रसाधिकास्तां तन्वीं पार्वतीं तत्र वेदिमध्ये प्राङ्मुखीं निवेश्योपवेश्य पुरो निषण्णा अग्रे स्थिताः । प्रसाध्यतेऽनेनेति प्रसाधनेऽलंकारसाधनवर्गे संनिहितेऽपि भूतार्था सत्यरूपा । स्वाभाविकीति यावत् । या शोभा रामणीयकं तया ह्रियमाणान्याकृष्यमाणानि नेत्राणि यासां तास्तथोक्ताः क्षणं व्यलम्बन्त । स्वभावसुन्दर्याः किमस्याः प्रसाधनेनेति तूष्णीं तस्थुरित्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी—उस पतले शरीरवाली पार्वती को श्रृंगार मण्डप में ले जाकर पूर्वाभिमुख बिठाकर अलंकार पहनाने के लिए उनके आगे बैठी हुई अन्तःपुर की स्त्रियाँ श्रृंगार साधन के समीप होने पर भी पार्वती की स्वाभाविक सुन्दरता को क्षणभर एकटक देखती रहने के कारण कुछ विलम्ब से उन्हें अलंकार पहनाने में समर्थ हुईं ।

धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम् ।
पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना ॥१४॥

अन्वयः—काचिद् धूपोष्मणा आर्द्रभावं त्याजितम् अन्तःकुसुमं तदीयं केशान्तं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना उदारबन्धं पर्याक्षिपत् ।

संजी०—धूपेति ॥ काचित्प्रसाधिका धूपोष्मणा करणेनार्द्रभावमार्द्रत्वं त्याजितम् । पचादिषु पाठाद्द्विकर्मकत्वम् । त्यजतेर्ण्यन्तादप्रधाने कर्मणि क्तः । अन्तःकुसुममन्तर्निक्षिप्तकुसुमं तस्या इमं तदीयं केशान्तं केशपाशं दूर्वावता मध्ये मध्ये ग्रथितदूर्वेण पाण्डुमधूकदाम्ना हरितमधुद्रुमकुसुममाल्येन । 'मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ' इत्यमरः । उदारबन्धं यथा तथा पर्याक्षिपद्बबन्ध ॥१४॥

हिन्दी--किसी ने अगुरु, चन्दनादि के धूप से उसके गीले बालों को सुखाकर उसमें फूल गूँथा, फिर दूर्वा के हरे अंकुरों से युक्त सफेद मधूक की माला धीरे से उसमें बाँध दी ।

विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः ।
सा चक्रवाकाङ्कितसैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ ॥१५॥

अन्वयः—ताः अस्या अंगं विन्यस्तशुक्लागुरु गोरोचनापत्रविभक्तं चक्रुः सा चक्रवाकांकितसैकतायाः त्रिस्रोतसः कान्तिं अतीत्य तस्थौ ।

संजी०—विन्यस्तेति ॥ अस्या गौर्या अङ्गं गात्रं विन्यस्तं विरचितं शुक्लागुरु यस्मिंस्तद्गोरोचनायाः पत्रैः । पत्ररचनाभिर्विभक्तं विशेषितं चक्रुः । सा तथाभूता गौरी चक्रवाकैरङ्कितं सैकतं यस्यास्तस्यास्त्रिस्रोतसो गङ्गायाः कान्तिं शोभामतीत्यातिक्रम्य तस्थौ । अत्र गोरोचनाचक्रवाकयोः पीतत्वेन साम्यं, त्रिस्रोतसो धावल्यं तु प्रसिद्धत्वान्न स्वपदेनोपात्तम् ॥१५॥

हिन्दी—उन स्त्रियों ने पार्वती के शरीर में सफेद शुक्लागुरु निर्मित अंगराग लगाया, फिर गोरोचन से उसमें पत्र-रचना कीं, उस समय पार्वती ने लाल चक्रवाकों से युक्त सिकता (बालू का समूह) वाली शुक्लतर गंगा की कान्ति को भी मात कर दिया ।

लग्नद्विरेफं परिभूय पद्मं समेघलेखं शशिनश्च बिम्बम् ।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्यकथाप्रसङ्गम् ॥१६॥

अन्वयः—प्रसिद्धैः अलकैः तदाननश्रीः लग्नद्विरेफं पद्मं समेघलेखं शशिनः बिम्बं च परिभूय सादृश्य कथाप्रसंगं चिच्छेद ।

संजी०—लग्नेति ॥ प्रसिद्धैर्भूषितैः । 'प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ' इत्यमरः । अलकैरुपलक्षिता तस्या गौर्याः आननश्रीर्लग्नद्विरेफं पद्मं समेघलेखं मेघरेखा-युक्तं शशिनो बिम्बं च परिभूय तिरस्कृत्य सादृश्यमुपमा तस्य कथोक्ति-स्तस्याः प्रसङ्गं प्रसक्तिं सादृश्यं वाङ्मात्रप्रसक्तमपि चिच्छेदाभिनत् । प्रसक्तयोः पद्मचन्द्रयोः परिभूतत्वादन्यत्र चाप्रसङ्गादित्यर्थः । अत्र पूर्वार्ध-वाक्यार्थस्य सादृश्यकथाच्छेदं प्रति हेतुत्वेनोपन्यासात्काव्यलिङ्गमलंकारः । लक्षणं तूक्तम् ॥१६॥

हिन्दी—कोमल कुञ्चित एवं काले-काले केशों से युक्त उन पार्वती के मुख की शोभा ने लिपटे हुए भौंरों वाले कमल तथा मेघ सहित चन्द्रबिम्ब की शोभा तिरस्कृत कर अपने सौन्दर्य सादृश्य से सबको मात कर दिया ।

कर्णार्पितो लोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः ॥१७॥

अन्वयः—तस्याः कर्णार्पितः यवप्ररोहः लोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्त-गौरे कपोले परभागलाभात् चक्षूंषि बबन्ध ।

संजी०—कर्णेति ॥ तस्या गौर्याः कर्णेऽर्पितो निक्षिप्तो यवप्ररोहो यवाङ्कुरो लोध्रस्य वृक्षविशेषस्य कषायेण विलेपनेन रूक्षे विशदे । उद्वर्तिते इत्यर्थः । 'कषायो रसभेदे स्यादङ्गरागे विलेपने' इति विश्वः । गोरोचनायाः क्षेपेण विन्यासेन नितान्तगौरेऽत्यन्तारुणे । गौरः श्वेतेऽरुणे पीते' इति विश्वः । कपोले गण्डस्थले परभागलाभाद्वर्णोत्कर्षप्राप्तेश्चक्षूंषि । द्रष्टॄणामिति शेषः । बबन्ध जहार । आचकर्षेत्यर्थः । गोरोचनारुणे गण्डस्थले पाण्डुरो यवाङ्कुरो विजातीयवर्णसंनिधानाल्लब्धवर्णोत्कर्षः संश्चक्षुषोराकर्षकोऽभूदिति भावः ॥१७॥

हिन्दी—पार्वती के कानों में पहनाया गया यवांकुर लोध के विलेपन से सर्वथा विशद तथा गौरोचन से नितान्त अरुण उसके कपोलों पर लटकते हुए सर्वविध वर्णोत्कर्षता को प्राप्त कर देखने वालों की आँखों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था ।

रेखाविभक्तः सुविभक्तगात्र्याः किंचिन्मधूच्छिष्टविमृष्टरागः ।
कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः ॥१८॥

अन्वयः—सुविभक्तगात्र्याः रेखाविभक्तः किञ्चिन्मधूच्छिष्टविमृष्टरागः आसन्नलावण्यफलः अधरोष्ठ स्फुरितैः काम् अपि अभिख्याम् अपुष्यद् ।

संजी०—रेखेति ॥ सुविभक्तगात्र्याः सुसंश्लिष्टावयवायाः पार्वत्या रेखया मध्यगतया विभक्तः सुश्लिष्टः किंचिदीषन्मधूच्छिष्टेन सिक्थकेन विमृष्टो विशेषेण निर्मलीकृतो रागो यस्य स तथोक्तः । 'मधूच्छिष्टं तु सिक्थकम्' इति, 'निर्णिक्तं शोधितं मृष्टम्' इति चामरः । अन्यत्रोक्तम्—'अलौहित्यापगमायाधरेषु सिक्थकलेपः क्रियते' । आसन्नं संनिहितं लावण्यफलं सौन्दर्यप्रयोजनं मुखचुम्बनादिरूपं यस्य स तथोक्तोऽधरोष्ठः स्फुरितैर्भाविशुभशंसिभिः स्पन्दैः कामप्यनिर्वाच्यामभिख्यां शोभामपुष्यत्पुपोष । 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः ॥१८॥

हिन्दी—अत्यन्त मनोहर सुगठित शरीरवाली उस पार्वती के मध्य रेखा से विभक्त सिक्थक के कारण अत्यन्त निर्मल रागयुक्त व सन्निहित चुम्बनादि द्वारा अपने लावण्य के फल को प्राप्त करने वाले अधरोष्ठ अपने भविष्य की शोभा की सूचना देते हुए किसी अनिर्वचनीय शोभा को पुष्ट करने लगे ।

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम् ।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान ॥१९॥

अन्वयः--तस्याः चरणौ रञ्जयित्वा 'अनेन पत्युः शिरश्चन्द्रकलां स्पृश' इति परिहासपूर्वं कृताशीः सा तां माल्येन निर्वचनं जघान।

संजी०--पत्युरिति ॥ सख्या कर्त्र्या। चरणौ रञ्जयित्वा लाक्षारसाक्तौ कृत्वा। कृताशीरिति करोतिना समानकर्तृकत्वम्। अनेन चरणेन रञ्जने द्वयोरपि नियमाच्चरणावित्युक्त्वाप्यौचित्यात्ताडनविधावेकतरपरामर्श इत्याहुः। पत्युरीश्वरस्य शिरश्चन्द्रकलाम्। सुरतविशेष इति शेषः। स्पृश ताडयेति परिहासपूर्वं कृताशीः प्रयुक्ताशीर्वादा सा पार्वती तां सखीं माल्येन मालया। 'माल्यं मालास्रजौ' इत्यमरः। निर्वचनं यथा तथा। तूष्णीमित्यर्थः। जघान ताडयामास। निर्वचनमित्यनेन विहृताख्यः शृङ्गारानुभाव उक्तः। तदुक्तम्-'प्राप्तकालं तु यद्ब्रूयात्कुर्याद्वा विहृतं हि तत्' इति ॥१९॥

हिन्दी—किसी सखी ने पार्वती के चरणों को रंगकर 'अयि मानिनि! तुम अपने इन चरणों से शंकर के शिरःस्थ चन्द्रमा का स्पर्श करो' इस प्रकार का परिहासपूर्वक आशीर्वाद दिया। इस पर पार्वती ने मुख से कुछ न कह केवल माला से उसे मारा।

तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्ते प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य।
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मङ्गलमित्युपात्तम् ॥२०॥

अन्वयः--प्रसाधिकाभिः सुजातोत्पलपत्रकान्ते तस्या नयने निरीक्ष्य कालाञ्जनं चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या न उपात्तम् किन्तु मंगलम् इति उपात्तम्।

संजी०--तस्या इति ॥ प्रसाधिकाभिरलंकर्त्रीभिः सुजाते सम्यगुत्पन्ने उत्पलपत्रे इव कान्ते रम्ये तस्या नयने निरीक्ष्य कालाञ्जनमञ्जनविशेषश्चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या। शोभातिशयो भविष्यतीति बुद्ध्येत्यर्थः। नोपात्तं न गृहीतं किंतु मङ्गलं शुभमिति हेतोरुपात्तम्। निसर्गसुभगस्य किमाहार्यकाडम्बरेणेति भावः ॥ २० ॥

हिन्दी—अलंकार करने वाली स्त्रियों ने नीले कमल के समान विशाल एवं कृष्णवर्ण के पार्वती के नेत्रों में शोभा बढ़ाने के लिए काजल नहीं लगाया, किन्तु यह मंगलाचार है, इस बुद्धि से लगाया।

सा संभवद्भिः कुसुमैर्लतेव ज्योतिर्भिरुद्यद्भिरिव त्रियामा।
सरिद्विहंगैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे ॥२१॥

अन्वयः--आमुच्यमानाभरणा सा संभवद्भिः कुसुमैः लता इव उद्यद्भिः ज्योतिर्भिः त्रियामा इव लीयमानैः विहंगैः सरित् इव चकासे।

संजी०—सेति ॥ आमुच्यमानाभरणा निबध्यमानाभरणा सा गौरी संभवद्भिरुत्पद्यमानैः कुसुमैर्लतेव। अनेन पद्मरागेन्द्रनीलादीन्याभरणानि

सूचितानि लताकुसुमानां नानावर्णत्वात् । उद्यद्भिरुदयं गच्छद्भिर्ज्योतिर्भिरुडुभिस्त्रियामा रात्रिरिव। अनेन मौक्तिकानि कथितानि। लीयमानैराश्रयद्भिः । निषीदद्भिरित्यर्थः । विहंगैश्चक्रवाकैः सरिदिव । अनेन सुवर्णाभरणानि सूचितानि । विहंगाश्च तत्सूचनाय चक्रवाका अभिमताः । चकासे रेजे । अत्र लताकुसुमादीनां सहजसंबन्धिनामुपमानत्वेनोपादानादनाहार्यकमपि तस्याः सहजमिवाशोभतेति भावः ॥२१॥

हिन्दी--अलंकारों से अलंकृत वह पार्वती उत्पद्यमान कुसुमों से लता के समान उदीयमान नक्षत्रों से रात्रि के समान तथा अपने समीप बैठे हुए चक्रवाक, हंसादि पक्षियों से युक्त नदी के समान शोभित होने लगी ।

आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥२२॥

अन्वयः—(गौरी) शोभमानम् आत्मानम् आदेर्शबिम्बे आलोक्य स्तिमितायताक्षी (सती) हरोपयाने त्वरिता बभूव। हि स्त्रीणां वेषः प्रियालोकफलः (भवति) ।

संजी०--आत्मानमिति ॥ किंचेति चार्थः । गौरी शोभमानमात्मानं निजशरीरमादर्शबिम्बे दर्पणमण्डले । 'दर्पणे मुकुरादर्शौ' इत्यमरः । स्तिमितायताक्ष्यादरान्निश्चलायतलोचना सत्यालोक्य हरोपयाने हरप्राप्तौ त्वरिता व्यग्रा बभूव । स्त्रीणां वेषो नेपथ्यं प्रियस्य भर्तुरालोको दर्शनं फलं प्रयोजनं यस्य स तथोक्तो हि । अन्यथारण्यचन्द्रिका स्यादिति भावः । अनेन कालाक्षमत्वलक्षणमौत्सुक्यमुक्तमित्यनुसंधेयम् ॥२२॥

हिन्दी—पार्वती शोभित अपने शरीर को दर्पण में देखकर दीर्घ नेत्रों को निश्चल करती हुई शङ्कर के समीप जाने के लिए व्यग्र इसलिए हो गई, क्योंकि स्त्रियों का वेष प्रिय के दर्शन रूप प्रयोजन वाला होता है ।

अथाङ्गुलिभ्यां हरितालमार्द्रं माङ्गल्यमादाय मनःशिलां च ।
कर्णावसक्तामलदन्तपत्रं माता तदीयं मुखमुन्नमय्य ॥२३॥

अन्वयः—अथ माता मांगल्यम् हरितालं मनःशिलां च अंगुलीभ्याम् आदाय कर्णावसक्तामलदन्तपत्रं तदीयं मुखम् उन्नमय्य (विवाहदीक्षातिलकं चकार) ।

संजी०—अथेति ॥ अथ प्रसाधनानन्तरं माता मेनका माङ्गल्यं मङ्गलार्थमार्द्रं द्रवहरितालं वर्णद्रव्यविशेषं मनःशिलां धातुविशेषं चाङ्गुलिभ्यां तर्जनीमध्यमाभ्यामादाय कर्णयोरवसक्ते लग्ने अमले दन्तपत्रे यस्य तत्तथोक्तं तस्याः पार्वत्याः इदं तदीयं मुखमुन्नमय्य । 'विवाहदीक्षातिलकं चकार' (७।२४) इत्युत्तरश्लोकेनान्वयः ॥२३॥

हिन्दी—अलंकार पहना लेने के अनन्तर पार्वती की माता मेना ने हरिताल तथा मनःशिला से मिश्रित गीले कल्क अपनी दो अंगुलियों में लेकर विवाहदीक्षा में मंगल तिलक करने के लिए कानों में पहनाये गये कर्णफूल से युक्त उसके मुखों को ऊपर की ओर उठाकर तिलक लगाया।

उमास्तनोद्भेदमनु प्रवृद्धो मनोरथो यः प्रथमं बभूव।
तमेव मेना दुहितुः कथंचिद्विवाहदीक्षातिलकं चकार ॥२४॥

अन्वयः—उमास्तनोद्भेदम् अनुप्रवृद्धः यः मनोरथः प्रथमं बभूव, मेना दुहितुः तम् एव विवाहदीक्षातिलकं कथञ्चित् चकार।

संजी०—उमेति ॥ उमायाः स्तनोद्भेदमनु। स्तनोदयमारभ्येत्यर्थः। प्रवृद्धो वृद्धि गतः प्रागेवोत्पन्न इति भावः। यो मनोरथो वाञ्छा। 'वाञ्छा लिप्सा मनोरथः' इत्यमरः। प्रथमं मनोरथान्तरात्प्राक्। अयमेव प्रथमं मनोरथ इत्यर्थः। बभूव। मेना दुहितुस्तमेव मनोरथभूतमेव। तद्विषये तत्तोपचारः। विवाहदीक्षायां विवाहकृत्ये तिलकं कथंचित्कृच्छ्रेण चकार। आनन्दबाष्पान्धतयेति शेषः। विवाहानन्तरभावित्वादन्येषामयमेव प्रथमो मनोरथ इति भावः ॥ युग्मकम् ॥२४॥

हिन्दी—जब उमा के स्तन विकसित होकर धीरे-धीरे बढ़ने लगे थे तभी पार्वती की माता मेना के मन में विवाहदीक्षा तिलक लगाने की इच्छा हुई थी। आज उसी को सफल बनाने के लिए किसी-किसी प्रकार इस तिलक की प्रक्रिया को पूर्ण किया।

बबन्ध चास्राकुलदृष्टिरस्याः स्थानान्तरे कल्पितसंनिवेशाम्।
धात्र्यङ्गुलीभिः प्रतिसार्यमाणमूर्णामयं कौतुकहस्तसूत्रम् ॥२५॥

अन्वयः—अस्राकुलदृष्टिः सा अस्याः स्थानान्तरे कल्पितसन्निवेशं धात्र्यंगुलीभिः प्रतिसार्यमाणं ऊर्णामयं कौतुकहस्तसूत्रं च बबन्ध।

संजी०—बबन्धेति ॥ अस्याः पार्वत्या अस्रैरानन्दबाष्पैराकुलदृष्टिरत एव स्थानान्तरे कल्पितः संनिवेशो निक्षेपो यस्य तत्। स्वस्थानादन्यत्र स्थापितमित्यर्थः। अतएव धात्र्या उपमातुरङ्गुलीभिः प्रतिसार्यमाणं स्वस्थानं प्राप्यमाणमूर्णामयं मेषादिलोमनिर्मितम्। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यात्' इत्यमरः। कौतुकहस्तसूत्र मङ्गलहस्तसूत्रम्। 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः। बबन्ध च मेनेति शेषः। पूर्वोक्ततिलकक्रियासमुच्चयार्थश्चकारः ॥२५॥

हिन्दी—अश्रुपूर्ण नेत्रों के कारण व्याकुल हुई मेना के द्वारा स्थानान्तर में बाँधा जाने वाला ऊर्णामय वैवाहिक मंगलसूत्र धाई ने अपनी अंगुलियों में लेकर उसे यथास्थान बाँधा।

क्षीरोदवेलेव सफेनपुञ्जा पर्याप्तचन्द्रेव शरत्त्रियामा।
नवं नवक्षौमनिवासिनी सा भूयो बभौ दर्पणमादधाना ॥२६॥

अन्वयः—नवक्षौमनिवासिनी नवं दर्पणम् आदधाना सा सफेनपुञ्जा क्षीरोदवेला इव पर्याप्तचन्द्रा शरत् त्रियामा इव भूयः बभौ।

संजी०—क्षीरोदेति ॥ नवं नूतनं क्षौमं दुकूलं निवस्त आच्छादयतीति नवक्षौमनिवासिनी। वस्तेराच्छादनार्थाण्णिनिः। तथा नवं दर्पणमादधाना बिभ्रती सा गौरी सफेनपुञ्जा सडिण्डीरपङ्क्तिः। क्षीरमुदमुदकं यस्य स क्षीरोदः क्षीरसमुद्रः। 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' इत्युदादेशः। तस्य वेला तीरभूमिरिव। 'वेला काले च जलधेस्तीरनीरविकारयोः' इति विश्वः। पर्याप्तचन्द्रा पूर्णचन्द्राशरत्त्रियामा शरद्रात्रिरिव भूयो भूयिष्ठं बभौ चकासे ॥ २६ ॥

हिन्दी नवीन क्षौम वस्त्र धारण करने वाली पार्वती नवीन दर्पण हाथ में लिये फेनों से युक्त क्षीरसमुद्र की तीर भूमि के समान अथवा पूर्णचन्द्र से युक्त शरदकालीन रात्रि के समान शोभित होने लगी।

तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता।
अकारयत्कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥२७॥

अन्वयः—कारयितव्यदक्षा माता कुलप्रतिष्ठां ताम् अर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य सतीनां पादग्रहणं क्रमेण अकारयत्।

संजी०—तामिति ॥ कारयितव्येषु दक्षा कारयित्री। कर्मोपदेशकुशलेत्यर्थः। माता मेना प्रतितिष्ठत्यस्यामिति प्रतिष्ठा। 'आतश्चोपसर्गे' इति कः। स्त्रियां टाप्। कुलस्य प्रतिष्ठां कुलालम्बनभूताम्। स्थितिकारिणीमित्यर्थः। तां गौरीम्। अर्चिताभ्यः पूजिताभ्यः कुलदेवताभ्यो गृहदेवताभ्यः प्रणमय्य प्रणामं कारयित्वा। 'ल्यपि लघुपूर्वात्' इति णेरयादेशः। सतीनां पतिव्रतानां पादग्रहणं पादाभिवन्दनं क्रमेणाकारयत्कारयामास। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इत्यणि कर्तुः कर्मत्वम्। अन्यत्र च 'गतिबुद्धि—' इत्यादिना नमेरकर्मकत्वात् ॥२७॥

हिन्दी—कर्त्तव्यकार्यों में अत्यन्त दक्ष मेना ने अपने कुल की प्रतिष्ठाभूत उस पार्वती से प्रथम अपने कुल के देवताओं को प्रणाम करवाया, फिर सती स्त्रियों के चरणों का स्पर्श करवाया।

अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युरित्युच्यते ताभिरुमा स्म नम्रा।
तया तु तस्यार्धशरीरभाजा पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि ॥२८॥

अन्वयः—नम्रा उमा ताभिः 'पत्युः अखण्डितं प्रेम लभस्व' इति उच्यते स्म तस्य अर्धशरीरभाजा तया तु स्निग्धजनाशिषः अपि पश्चात् कृताः।

संजी०—अखण्डितमिति ॥ नम्रा प्रणतोमा ताभिः सतीभिः पत्युः शिवस्याखण्डितमक्षतं प्रेम लभस्व प्राप्नुहीत्युच्यते स्म अभिहिता। 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट्। तस्य हरस्य। अर्धं शरीरस्यार्धशरीरम्। 'अर्धं नपुंसकम्' इति समासः। तद्भजतीत्यर्धशरीरभाजा तया गौर्या तु स्निग्धजनाशिषो बन्धुजनाशीर्वादा अपि पश्चात्कृता अधरीकृताः। ततोऽप्यधिकफललाभादिति भावः ॥२८॥

हिन्दी—उस समय नम्रमुखी पार्वती को उन सतियों ने 'तुम पति का अखण्ड प्रेम प्राप्त करो' इस प्रकार आशीर्वाद दिया। किन्तु भगवान् शंकर के आधे शरीर को प्राप्त करने वाली उस पार्वती ने स्निग्धजनों के उस प्रकार के आशीष को भी नीचा कर दिखाया।

इच्छाविभूत्योरनुरूपमद्रिस्तस्याः कृती कृत्यमशेषयित्वा।
सभ्यः सभायां सुहृदास्थितायां तस्थौ वृषाङ्कागमनप्रतीक्षः ॥२९॥

अन्वयः—कृती सभ्यः अद्रिः इच्छाविभूत्योः अनुरूपं तस्याः कृत्यम् अशेषयित्वा सुहृदास्थितायां सभायां वृषांकागमनप्रतीक्षःतस्थौ।

संजी०—इच्छति ॥ कृती कुशलः। सभायां साधुः सभ्यः। 'सभाया य।' इति यप्रत्ययः। अद्रिर्हिमवानिच्छाविभूत्योरुत्साहैश्वर्ययोरनुरूपं सदृशं यथा तथा तस्याः पार्वत्याः कृत्यं कर्तव्यमशेषयित्वाऽशेषं निःशेषं कृत्वा। समाप्येत्यर्थः। अशेषशब्दात् 'तत्करोति' इति ण्यन्तात्क्त्वाप्रत्ययः। सुहृदास्थितायां बन्धुजनाक्रान्तायां सभायां संसदि वृषाङ्कस्य हरस्यागमनं प्रतीक्षत इति तथोक्तः सन्। 'कर्मण्यण्' इत्यण्। तस्थौ स्थितः ॥२९॥

हिन्दी—कृतज्ञ तथा सभ्य हिमालय अपनी इच्छा तथा ऐश्वर्य के अनुरूप पार्वती के विवाह के पहले की सारी क्रिया पूरी कर कुटुम्बियों से युक्त सभाभवन में बैठकर भगवान् शंकर के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

तावद्भवस्यापि कुबेरशैले तत्पूर्वपाणिग्रहणानुरूपम्।
प्रसाधनं मातृभिरादृताभिर्न्यस्तं पुरस्तात्पुरशासनस्य ॥३०॥

अन्वयः—तावत् कुबेरशैले तत्पूर्वपाणिग्रहणानुरूपं प्रसाधनम् आदृताभिः मातृभिः पुरशासनस्य भवस्य पुरस्ताद् न्यस्तम्।

संजी०—तावदिति ।। तावत् । यावद्गौरीप्रसाधनं क्रियते तत्काल एवेत्यर्थः । कुबेरशैले कैलासे । तदेव पूर्वं तत्पूर्वं तच्च तत्पाणिग्रहणं तस्यानुरूपं प्रसाधनमलंकारसामग्री आदृताभिः सादराभिः, कर्तरि क्तः । मातृभिर्ब्राह्मीप्रभृतिभिः सप्तमातृकाभिः । पुरं शास्तीति पुरशासनस्तस्य । कर्तरि ल्युट् । भवस्यापि पुरस्तादग्रे न्यस्तं निक्षिप्तम् ।।३०।।

हिन्दी--इधर जब पार्वती का श्रृङ्गार किया जा रहा था, उसी समय कैलास पर्वत पर विवाह से प्रथम पहनने योग्य समस्त मांगलिक वस्त्राभूषणादि सामग्री मातृगणों ने आदरपूर्वक लाकर शिवजी के सामने प्रस्तुत कर दिया ।

तद्गौरवान्मङ्गलमण्डनश्रीः सा पस्पृशे केवलमीश्वरेण ।
स एव वेषः परिणेतुरिष्टं भावान्तरं तस्य विभोः प्रपेदे ।।३१।।

अन्वयः—ईश्वरेण सा मंगलमण्डनश्रीः तद् गौरवात् केवलं पस्पृशे किन्तु तस्य विभोः स एव वेषः परिणेतुः इष्टं भावान्तरं प्रपेदे ।

संजी०--तदिति ।। ईश्वरेण शिवेन सा मङ्गलमण्डनश्रीः शुभप्रसाधनसंपत्तद्गौरवात्तासु मातृष्वादरात्केवलं पस्पृशे स्पृष्टैव न तु दध्र इत्यवधारणार्थः केवलशब्दः। 'केवलं चावधारणे' इति शाश्वतः। किंतु तस्य विभोर्देवस्य स एव वेषः स्वाभाविको भस्मकपालादिवेष एव परिणेतुर्लोक उद्वोढुरिष्टमपेक्षितं भावान्तरं रूपान्तरं प्रपेदे । अङ्गरागादिरूपतां प्रापेत्यर्थः ।।३१।।

हिन्दी--शंकर जी ने उस मांगलिक मण्डन श्रीभूत वस्त्राभूषणों को मातृगणों का आदर करने के लिए मात्र स्पर्श ही किया किन्तु उन्हें धारण नहीं किया । उस समय उनके स्वाभाविक भस्म, कपालादि वेष ही मांगलिक अलंकारों के रूप में परिणत हो गये ।

भावान्तरापत्तिमेवाह--

बभूव भस्मैव सिताङ्गरागः कपालमेवामलशेखरश्रीः ।
उपान्तभागेषु च रोचनाङ्को गजाजिनस्यैव दुकूलभावः ।।३२।।

अन्वयः—-भस्म एव सितांगरागः बभूव कपालम् एव अमल शेखरश्रीः बभूव गजाजिनस्य एव उपान्तभागेषु रोचनांकः दुकूलभावश्च बभूव ।

संजी०—बभूवेति ।। भस्मैव सिताङ्गरागः शुभ्रगन्धानुलेपनं बभूव । कपालमेवामलं शेखरं शिरोभूषणं तस्य श्रीः शोभा बभूव । गजाजिनस्यैवोपान्तभागेष्वञ्चलप्रदेशेषु रोचनैवाङ्को हंसादिचिह्नं यस्य स तथोक्तो दुकूलभावः पट्टांशुकत्वं च बभूव । भस्मादिकमेवाङ्गरागादिभावं प्राप्तमित्यर्थः ।।३२।।

हिन्दी—उस समय शंकर जी के अंग में अनुलिप्त भस्म ही श्वेतांग राग हो गया। कपाल ही स्वच्छ शिरोभूषण की श्री को धारण कर लिया। तथा गजचर्म ही गोरोचना से अंकित हंसादि मांगलिक चिह्नों से युक्त दुकूल का रूप धारण कर लिया।

शङ्खान्तरद्योति विलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिङ्गतारम्।
सांनिध्यपक्षे हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः॥३३॥

अन्वयः—शंखान्तरद्योति अन्तर्निविष्टामलपिंगतारं यद् विलोचनम् तत् एव हरितालमय्याः तिलकक्रिया याः सान्निध्य पक्षे जातम्।

संजी०—शङ्खेति॥ शङ्खान्तरे ललाटास्थिमध्ये द्योतत इति तथोक्तम्। 'शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि' इत्यमरः। अन्तर्निविष्टा मध्यगतामला पिङ्गा तारा कनीनिका यस्य तत्तथोक्तम्। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः। यद्विलोचनं तद्विलोचनमेव हरितालमय्या वर्णद्रव्यविशेषविकारस्य तिलकक्रियायास्तिलकरचनायाः संनिधिरेव सांनिध्यं तदेव पक्षः साध्यम्। 'पक्षः पार्श्वगरुत्साध्यसहायबलभित्तिषु' इति यादवः। तस्मिन्सांनिध्यपक्षे जातम्। प्रविष्टमित्यर्थः। अनेन ललाटलोचनमेव तस्य हरितालतिलकमभूदित्युक्तम्॥३४॥

हिन्दी—ललाट प्रान्त में जाज्वल्यमान, अपने भीतर स्वच्छ तथा पीले वर्ण की कनीनिका धारण किये उनका तृतीय नेत्र ही हरितालमयी तिलक क्रिया का सन्निधान प्राप्त किया।

यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां करिष्यतामाभरणान्तरत्वम्।
शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः॥३४॥

अन्वयः—यथा प्रदेशं आभरणान्तरत्वं करिष्यतां भुजगेश्वराणां शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे। फणरत्नशोभाः तथा एव तस्थुः।

संजी०—यथेति॥ यथाप्रदेशं प्रदेशान्कोष्ठादीननतिक्रम्याभरणान्तरत्वं कङ्कणाद्याभरणविशेषत्वं करिष्यतां संपादयिष्यतां भुजगेश्वराणां शरीरमात्रं शरीरमेव विकृतिं रूपान्तरं प्रपेदे। फणरत्नशोभास्तथैव तस्थुः। तासां तथैवोपादेयत्वादिति भावः॥३४॥

हिन्दी—शरीर भाग के अन्य प्रकोष्ठादि स्थानों में अलंकार संपादन के लिए सर्पराजों के शरीर ही विकृत होकर मांगलिक कंकणादि रूप में परिणत हो गये, यद्यपि उनके फणों में रहने वाले रत्नों की शोभा पहले जैसी ही चमक रही थी।

दिवापि निष्ठ्यूतमरीचिभासा बाल्यादनाविष्कृतलाञ्छनेन।
चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमौलेश्चूडामणेः किं ग्रहणं हरस्य॥३५॥

अन्वयः— दिवा अपि निष्ठ्यूतमरीचिभासा बाल्याद् अनाविष्कृत लाञ्छनेन चान्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नःमौलेः हरस्य चूडामणे ग्रहणं किम् ?

संजी०—दिवापीति ॥ दिवा दिनेऽपि निष्ठ्यूता उद्गीर्णा मरीचिभासः किरणकान्तयो यस्य तेन बाल्याद्यल्पतनुत्वादनाविष्कृतलाञ्छनेन। अदृश्यमानकलङ्केनेत्यर्थः। चन्द्रेण नित्यं सर्वदा प्रतिभिन्नमौलेः संगतमुकुटस्य हरस्य चूडामणेर्ग्रहणं स्वीकारः किं किमर्थम्। चन्द्रचूडामणेर्देवस्य किमन्यैश्चूडामणिभिरिति भावः ॥३५॥

हिन्दी—दिन में भी किरणकान्ति समूहों को उगलने वाले बाल्यावस्था के कारण निष्कलंक चन्द्र ही जब नित्य उनके मस्तकस्थ मुकुट का चूडामणि बन गया तब और चूडामणियों की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ?

इत्यद्भुतैकप्रभवः प्रभावात्प्रसिद्धनेपथ्यविधेर्विधाता।
आत्मानमासन्नगणोपनीते खड्गे निषक्तप्रतिमं ददर्श ॥३६॥

अन्वयः— इति प्रभावात् प्रसिद्धनेपथ्यविधेः विधाता अद्भुतैकप्रभवः सः आसन्नगणोपनीते खड्गे निषक्तप्रतिमम् आत्मानं ददर्श।

संजी०—इतीति ॥ इतीत्थं प्रभावात्सामर्थ्यात्प्रसिद्धस्य नेपथ्यविधेर्वेषसंविधानस्य विधाता निर्माता। अतएवाद्भुतानामाश्चर्याणामेकप्रभवो मुख्यनिधिः स देव आसन्नगणेन पार्श्वस्थवर्गेण। प्रमथगणेनेत्यर्थः। उपनीत आनीते खड्गे निषक्तप्रतिमं संक्रान्तप्रतिबिम्बमात्मानं ददर्श। वीरपुरुषाणामेष आचारः ॥३६॥

हिन्दी—इस तरह अपने प्रभाव से ही लोकप्रसिद्ध समस्त शरीराभूषणों के निर्माता अद्भुतता के एकमात्र जनक भगवान् शंकर ने आसन्न परिचारक गण से लाये गये खड्ग में प्रतिबिम्बित अपने शरीर को पुरुष रूप में अलंकृत देखा।

स गोपतिं नन्दिभुजावलम्बी शार्दूलचर्मान्तरितोरुपृष्ठम्।
तद्भक्तिसंक्षिप्तबृहत्प्रमाणमारुह्य कैलासमिव प्रतस्थे ॥३७॥

अन्वयः—स नन्दिभुजावलम्बी सन् शार्दूलचर्मान्तरितोरु पृष्ठं गोपतिं तद्भक्तिसंक्षिप्तबृहत्प्रमाणं कैलासम् इव गोपतिम् आरुह्य प्रतस्थे।

संजी०—स इति ॥ स देवो नन्दिभुजावलम्बी नन्दिकेश्वरभुजावलम्बनः सन्। शार्दूलचर्मणा व्याघ्रचर्मणान्तरितमाच्छादितमुरु विशालं पृष्ठं यस्य तं तथोक्तम्। 'शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे' इत्यमरः। तस्मिदेवे भक्त्या संक्षिप्तं संकोचितं बृहत्प्रमाणं यस्य तं गोपतिं वृषभं कैलासमिवारुह्य प्रतस्थे चचालः ॥ ३७ ॥

हिन्दी--तदनन्तर भगवान् शंकर ने नन्दिकेश्वर की भुजाओं के सहारे शार्दूल चर्माच्छादित भक्ति से अपने बृहत् प्रमाण वाले शरीर को संक्षिप्त कर लेने वाले कैलास के समान वृषभ की पीठ पर चढ़कर प्रस्थान किया ।

तं मातरो देवमनुव्रजन्त्यः स्ववाहनक्षोभचलावतंसाः ।
मुखैः प्रभामण्डलरेणुगौरैः पद्माकरं चक्रुरिवान्तरीक्षम् ॥३८॥

अन्वयः--तम् अनुव्रजन्त्यः स्ववाहनक्षोभचलावतंसाः मातरः प्रभामण्डल-रेणुगौरैः मुखैः अन्तरिक्षं पद्माकरं चक्रुः इव ।

संजी०--तमिति ॥ तं देवमनुव्रजन्त्योऽनुगच्छन्त्यः स्ववाहनानां क्षोभेण प्रकम्पेन चलावतंसाश्चलकुण्डला मातरः सप्तमातृकाः प्रभामण्डलान्येव रेणवः परागास्तैर्गौरैररुणैः । 'गौरोऽरुणे सिते पीते' इति यादवः । मुखैरन्तरीक्षमाकाशं पद्माकरमिव चक्रुः ॥३८॥

हिन्दी--उस समय शंकर के पीछे-पीछे चलने वाली सप्त मातृगणों ने स्व-स्व वाहनों के से हिलते हुए कर्णभूषणों से शोभित हो अपने प्रभामण्डल रूप परागयुक्त मुखों से आकाश को अनेक प्रकार के खिले हुए कमलों से युक्त सरोवर के सदृश बना दिया ।

तासां च पश्चात्कनकप्रभाणां काली कपालाभरणा चकासे ।
बलाकिनी नीलपयोदराजी दूरं पुरःक्षिप्तशतह्रदेव ॥३९॥

अन्वयः--कनकप्रभाणां तासां पश्चात् कपालाभरणा काली च बलाकिनी दूरं पुरःक्षिप्त शतह्रदा नीलपयोद राजिः इव चकासे ।

संजी०—तासामिति ॥ कनकप्रभाणां सुवर्णवर्णानां तासां मातॄणां पश्चात्कपालाभरणा । सितकपालालंकारेत्यर्थः । काली महाकाली देवी च । कृष्णवर्णत्वसूचनाय कालीसंज्ञयाभिधानम् । बलाकिनी बलाकावती । व्रीह्यादित्वादिनिः । दूरं यथा तथा पुरोऽग्रे क्षिप्ताः प्रसारिताः शतह्रदा विद्युतो यस्याः सा तथोक्ता नीलपयोदराजी कालमेघपङ्क्तिरिव चकासे ॥३९॥

हिन्दी--स्वर्णवर्णा उन सप्तमातृगणों के पीछे-पीछे कपालों का आभरण धारण किये भद्रकाली बलाका (बकपंक्ति) से युक्त दूर से आगे-आगे चमकती हुई विद्युत प्रभा वाली काली-काली मेघ पंक्तियों के समान शोभित होने लगी ।

ततो गणैः शूलभृतः पुरोगैरुदीरितो मङ्गलतूर्यघोषः ।
विमानशृङ्गाण्यवगाहमानः शशंस सेवावसरं सुरेभ्यः ॥४०॥

अन्वयः--ततः शूलभृतः पुरोगैः गणैः उदीरितः मङ्गलतूर्यघोषः विमानशृङ्गाणि अवगाहमानः सन् सुरेभ्यः सेवावसरं शशंस ।

संजी०--तत इति ।। ततोऽनन्तरं शूलभृतः शिवस्य पुरो गच्छन्तीति पुरोगैरग्रेसरैः । 'अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम्' इति गमेर्डप्रत्ययः । गणैः प्रमथैरुदीरित उत्पादितो मङ्गलतूर्यघोषो मङ्गलवाद्यध्वनिर्विमानशृङ्गाण्यवगाहमानः सन् । सुरेभ्यो विमानस्थेभ्यः सेवावसरं शशंस । सुराः प्रस्थानतूर्यध्वनिमाकर्ण्यायमेव नः सेवावसर इत्याजग्मुरित्यर्थः ।।४०।।

हिन्दी—प्रस्थान करते समय शिव के आगे-आगे चलने वाले गणों के द्वारा बजाये गये माङ्गलिक बाजों की ध्वनि जो बड़े-बड़े विमानों तक पहुँच रही थी, उसी ने देवताओं के लिए सेवा के अवसर सूचित किया ।

सुराणां सेवाप्रकारमेवाह—

उपाददे तस्य सहस्ररश्मिस्त्वष्ट्रा नवं निर्मितमातपत्रम् ।
स तद्दुकूलादविदूरमौलिर्बभौ पतद्गङ्ग इवोत्तमाङ्गे ।।४१।।

अन्वयः—तस्य सहस्ररश्मिः त्वष्ट्रा निर्मितं नवम् आतपत्रम् उपाददे । तद्दुकूलाद् अविदूरमौलिः स उत्तमाङ्गे पतद्गङ्गः इव बभौ ।

संजी०--उपाददे इति ।। तस्य हरस्य सहस्ररश्मिः सूर्यस्त्वष्ट्रा विश्वकर्मणा निर्मितं नवमातपत्रमुपाददे । धृतवानित्यर्थः । उत्प्रेक्षते—तद्दुकूलात्तस्यातपत्रस्य प्रान्तलम्बिनो दुकूलादविदूरमौलिः । तद्दुकूलस्यासन्नमौलिरित्यर्थः । स हर उत्तमाङ्गे शिरसि । 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः । पतन्ती गङ्गा यस्य स पतद्गङ्ग इव बभौ । तद्दुकूलादित्यत्र 'दूरान्तिकार्थैः षष्ठयन्यतरस्याम्' इति दूरार्थयोगे विकल्पेन पञ्चमी । नाथेनोक्तम् 'अन्यारात्–' इत्यत्राराच्छब्दस्यार्थग्रहणार्थत्वात्पञ्चमीति तदनाकरम् । किंचास्य शास्त्रोक्तविकल्पापवादत्वात् 'दूरं कामस्य' इत्यादिषष्ठीप्रयोगो दूरापास्तः स्यादित्युपेक्षणीयमेव ।।४१।।

हिन्दी--सूर्य ने विश्वकर्मा द्वारा विवाहार्थ बनाये गए नवीन छत्र धारण किया जो सिर के समीप लटकते हुए दुकूलपट् से उत्तमाङ्ग से गिरती हुई गङ्गा के समान प्रतीत हो रहा था ।

मूर्ते च गङ्गायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम् ।
समुद्रगारूपविपर्ययेऽपि सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे ।।४२।।

अन्वयः—गङ्गायमुने च तदानीं मूर्त्ते सचामरे समुद्रगा रूपविपर्यये अपि सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे देवम् असेविषाताम् ।

संजी०--मूर्ते इति ॥ गङ्गा च यमुना च गङ्गायमुने मूर्ते विग्रहधारिण्यौ सचामरे चामरसहिते सत्यौ। अतएव समुद्रगा नदी तस्या रूपं स्वरूपं तस्य विपर्ययेऽप्यभावेऽपि सह हंसपातेन हंसचारेण वर्तेते इति सहंसपाते इव। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः। 'वोपसर्जनस्य' इति सभावः। लक्ष्यमाणे दृश्यमाने सत्यौ तदानीं विवाहसमये देवमसेविषातामभजताम्। सेवतेर्लुङ्। गङ्गायमुने चामरग्राहिण्यौ देवमनुपतस्थतुरित्यर्थः ॥४२॥

हिन्दी--उस समय गङ्गा और यमुना नदियों ने समुद्रगामी अपने सरितारूप को त्यागकर मूर्तिमान मनोहर शरीर धारण कर चामर लिए चलायमान हंस के समान लक्षित होती हुई वह देवाधिदेव की सेवा करने लगीं।

तमभ्यगच्छत्प्रथमो विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात्।
जयेति वाचा महिमानमस्य संवर्धयन्तौ हविषेव वह्निम् ॥४३॥

अन्वयः--प्रथमः विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात् तम् अभ्यगच्छत्। 'जय' इति वाचा तस्य महिमानं हविषा वह्निम् इव संवर्धयन्तौ तौ अवर्त्तेताम् इति शेषः।

संजी०--तमिति ॥ प्रथम आद्यो विधाता चतुर्मुखस्तथा श्रीवत्सलक्ष्मा श्रीवत्साङ्कः पुरुषो विष्णुश्च साक्षात्तं देवमभ्यगच्छत्संमुखमाययौ। किं कुर्वन्तौ। जयेति वाचा जयशब्देनास्येश्वरस्य महिमानं महत्त्वं हविषा वह्निमिव संवर्धयन्तौ वृद्धिं गमयन्तौ ॥४३॥

हिन्दी—उस विवाहकाल में प्रथम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मदेव एवं श्रीवत्स का चिह्न धारण किए महाविष्णु उनके पास गए और 'जय-जय' इस प्रकार की वाणी कहकर उनके स्वाभाविक महत्त्व को घी से आग के समान बढ़ाते हुए उनकी सेवा करने लगे।

न चानुचितमेतदुक्तमित्याह--

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥४४॥

अन्वयः--सा एका मूर्त्तिः त्रिधा बिभिदे एषां प्रथमावरत्वम् सामान्यम्। कदाचिद् हरः विष्णोः आद्यः, कदाचित् हरिः तस्य आद्यः, कदाचित् वेधा तयोः आद्यः, कदाचित् तौ अपि धातुः आद्यौ।

संजी०-एकैवेति ॥ सैकैव मूर्तिस्त्रिधा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकत्वेन बिभिदे। औपाधिकोऽयं भेदो न वास्तविक इत्यर्थः। अतएवैषां त्रयाणां प्रथमावरयो-

भावः प्रथमावरत्वं ज्येष्ठकनिष्ठभावः। सामान्यं साधारणम्। इच्छया सर्वे ज्येष्ठा भवन्ति कनिष्ठाश्चेत्यर्थः। एतदेव विवृणोति—कदाचिद्धरो विष्णोराद्यः। कदाचिद्धरिस्तस्याद्यः। कदाचिद्वेधास्तयोर्हरिहरयोराद्यः। कदाचित्तौ हरिहरावपि धातुः स्रष्टुराद्यौ। एवमेतेषां पौर्वापर्यमनियतमिति दर्शितम्॥४४॥

हिन्दी—वह एक ही मूर्त्ति सृष्टि, स्थिति और प्रलय संबन्ध से ब्रह्मा-विष्णु और महेश—इन तीन रूपों में प्रविभक्त है। इनमें छोटे और बड़े का विचार विशेष न होकर सामान्यभाव से ही करना चाहिए। कभी शिव, विष्णु के जनक होते हैं कभी विष्णु शिव के जनक होते हैं और कभी उन दोनों के जनक ब्रह्मदेव होते हैं तो कभी वे दोनों ही ब्रह्मदेव के जनक होते हैं।

तं लोकपालाः पुरुहूतमुख्याः श्रीलक्षणोत्सर्गविनीतवेषाः।
दृष्टिप्रदाने कृतनन्दिसंज्ञास्तद्दर्शिताः प्राञ्जलयः प्रणेमुः॥४५॥

अन्वयः—श्रीलक्षणोत्सर्गविनीतवेषाः दृष्टिप्रदाने कृतनन्दिसंज्ञाः तद्दर्शिता पुरुहूतमुख्याः लोकपालाः प्राञ्जलयः (सन्तः) तं प्रणेमुः।

संजी०—तमिति॥ पुरुहूतमुख्या इन्द्रादयो लोकपालाः श्रीलक्षणानामैश्वर्यचिह्नानां छत्रचामरवाहनानामुत्सर्गेण त्यागेन विनीतवेषा अनुनीतवेषाः सन्तः। तथा दृष्टिप्रदाने दर्शननिमित्ते। दर्शनप्रदानार्थमित्यर्थः। कृता नन्दिनः प्रतिहारस्य संज्ञा संकेतो यैस्तादृशाः। मम दर्शनं दापयेति नन्दिनं प्रति कृतहस्तादिसूचना इत्यर्थः। 'संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना' इत्यमरः। तद्दर्शितास्तेन नन्दिना दर्शिता अयमिन्द्रः प्रणमत्ययं चन्द्र इत्याद्युक्तिपूर्वकं निवेदिताः प्राञ्जलयः कृताञ्जलयः सन्तः तं भवं प्रणेमुः प्रणताः॥ ४५॥

हिन्दी—अपने छत्र, चामरादि विशेष राजचिह्नों को त्याग कर विनीत वेष धारण किए इन्द्रादि प्रमुख लोकपाल सदाशिव के दर्शन द्वारा उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए नन्दी से पूछने पर उनके द्वारा दिखाए मार्ग से वहाँ जाकर हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया।

कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन।
आलोकमात्रेण सुरानशेषान्संभावयामास यथाप्रधानम्॥४६॥

अन्वयः—सः शतपत्रयोनिं मूर्ध्नः कम्पेन हरिं वाचा वृत्रहणं स्मितेन अशेषान् सुरान् आलोकमात्रेण यथाप्रधानं संभावयामास।

संजी०—कम्पेनेति॥ स देवः शतपत्रयोनिं चतुर्मुखं मूर्ध्नः कम्पेन तथा हरिं वाचा संभाषणेन वृत्रं हतवन्तं वृत्रहणमिन्द्रम्। 'ब्रह्मभ्रूणावृत्रेषु क्विप्'

इति क्विप्। स्मितेन मन्दहासेनाशेषान्सुरानालोकमात्रेण दृष्टिमात्रेणेत्थं यथा-प्रधानं यथार्हं संभावयामास ॥ ४६ ॥

हिन्दी--महेश्वर ने शिर हिलाकर ब्रह्मदेव का कुशलादि वाणी से, श्रीविष्णु का मन्दहास से, इन्द्र का तथा और समस्त देवताओं का अपने दृष्टि द्वारा यथायोग्य सम्मान किया।

तस्मै जयाशीः ससृजे पुरस्तात्सप्तर्षिभिस्तान्स्मितपूर्वमाह।
विवाहयज्ञे विततेऽत्र यूयमध्वर्यवः पूर्ववृता मयेति ॥४७॥

अन्वयः—सप्तर्षिभिः पुरस्तात् तस्मै जयाशीः ससृजे। स तान् 'वितते अत्र विवाहयज्ञे यूयं मया पूर्ववृता अध्वर्यवः' इति स्मितपूर्वम् आह।

संजी०—तस्मा इति ॥ तस्मै शिवाय सप्तर्षिभिः। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति समासः। पुरस्तादग्रे जयेत्याशीः ससृजे प्रयुक्ता। तान्सप्तर्षीन्स्मितपूर्व-माह—किमिति। वितते विस्तृतेऽत्र प्रवर्तिते विवाह एव यज्ञस्तस्मिन्यूयं मया पूर्वमेव वृताः प्रार्थिता अध्वर्यवो ऋत्विज इति। विशेषवाचिना सामान्य-मुक्तम् ॥ ४७ ॥

हिन्दी—सप्तर्षियों ने शिवजी के आगे आकर 'जय' शब्द से उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया। तब शिवजी ने मन्द-मन्द हँसते हुए उनसे कहा--मैंने आप लोगों को प्रारम्भ होने वाले इस विवाहयज्ञ में पहले से ऋत्विज पद के लिए वरण किया है।

विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः संगीयमानत्रिपुरावदानः।
अध्वानमध्वान्तविकारलङ्घ्यस्ततार ताराधिपखण्डधारी ॥४८॥

अन्वयः—विश्वावसु प्राग्रहरैः प्रवीणैः सङ्गीयमानत्रिपुरावदानः अध्वान्तविकार-लङ्घ्यः ताराधिपखण्डधारी अध्वानं ततार।

संजी०—विश्वावस्विति ॥ विश्वावसुर्नाम कश्चिद्गन्धर्वो देवगायकस्त-त्प्राग्रहरैस्तत्प्रमुखैः प्रवीणैः प्रकृष्टवीणैर्निपुणैर्वा। 'प्रवीणे निपुणाभिज्ञविज्ञ-निष्णातशिक्षिताः' इत्यमरः। त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम्। 'तद्धि-तार्थोत्तरपद-' इत्यादिना समाहारसमासः। 'पात्रादिभ्यः' प्रतिषेधो वक्तव्यः इति स्त्रीलिङ्गतानिषेधः। त्रिपुरस्य संबन्ध्यवदानं पूर्ववृत्तं कर्म विजयरूपं त्रिपुरावदानं तत्संगीयमानं स्तूयमानं यस्य स तथोक्तः। 'अवदानं कर्म वृत्तम्' इत्यमरः। ध्वान्तं तमः। मोह इति यावत्। तद्विकारेण रागादिना लङ्-घ्योऽभिभवनीयो न भवतीत्यध्वान्तविकारलङ्घ्यः। विवाहादिकं तु तस्य लीलेत्यर्थः। ताराधिपखण्डधारी चन्द्रशेखरशंभुरध्वानं मार्गं ततारात्य-गच्छत् ॥ ४८ ॥

हिन्दी—विश्वावसु प्रमुख वीणावादन के तत्त्वज्ञ गन्धर्वों द्वारा अपने द्वारा किए गए त्रिपुर वध आदि चरित्रों को सुनते हुए रास्ते में होने वाली थकावट से अभिभूत हुए बिना ही शिवजी ने मार्ग में गमन किया ।

खे खेलगामी तमुवाह वाहः सशब्दचामीकरकिंकिणीकः ।
तटाभिघातादिव लग्नपङ्के धुन्वन्मुहुः प्रोतघने विषाणे ॥४९॥

अन्वयः—खे खेलगामी सशब्दचामरकिङ्किणीकः वाहः प्रोतघने तटाभिघाताद् लग्नपङ्क इव विषाणे मुहुः धुन्वन् सन् तम् उवाह ।

संजी०—ख इति ॥ ख आकाशे खेलं सुन्दरं गच्छतीति खेलगामी । सशब्दाः शब्दायमानाश्चामीकरकिंकिण्यः काञ्चनक्षुद्रघण्टिका यस्य स तथोक्तः । 'किंकिणी क्षुद्रघण्टिका' इत्यमरः । 'नद्यृतश्च' इति क्यप् । बाह्यतेऽनेनेति वाहो वृषभः । करणे घञ् । प्रोतघने स्यूतमेघे अतएव तटाभिघाताद्रोधोभेदाल्लग्नपङ्के श्लिष्टकर्दमे इव स्थिते शृङ्गे विषाणे मुहुर्धुन्वंस्तं हरमुवाह वहति स्म ॥ ४९ ॥

हिन्दी—आकाश में क्रीड़ा करते हुए चलने वाला शब्दायमान सोने की किंकिणी (क्षुद्रघण्टिका) पहने श्री शंकरजी का वाहन आर्द्रमेघों के सींग में लगने से कीचड़ की आशंका से उसे इधर-उधर हिलाते हुए शंकरजी को लेकर चलने लगा ।

स प्रापदप्राप्तपराभियोगं नगेन्द्रगुप्तं नगरं मुहूर्तात् ।
पुरोविलग्नैर्हरदृष्टिपातैः सुवर्णसूत्रैरिव कृष्यमाणः ॥५०॥

अन्वयः—सः अप्राप्तपराभियोगं नगेन्द्रगुप्तं नगरं पुरोविलग्नैः हरदृष्टिपातैः सुवर्णसूत्रैः कृष्यमाणं इव मुहूर्तात् प्रापत् ।

संजी०—स इति ॥ स वाहोऽप्राप्तः पराभियोगः शत्रुसमाक्रान्तिर्यस्य तत्तथोक्तं नगेन्द्रेण हिमवता गुप्तं रक्षितं नगरमोषधिप्रस्थं पुरोऽग्रे विलग्नैः संक्रान्तैर्हरदृष्टिपातैः सुवर्णसूत्रैः कृष्यमाण इव मुहूर्तात्प्रापत् । अन्यथा कथं दूरस्याशुप्राप्तिः स्यादिति भावः । पुरः प्रसृता हरदृष्टयः पिङ्गलवर्णत्वात् सौवर्णानि वृषाकर्षणदामानीवालक्ष्यन्तेत्यर्थः ॥ ५० ॥

हिन्दी—इस प्रकार वह बैल कभी किसी के द्वारा आक्रान्त न होने वाले हिमालय के द्वारा सुरक्षित शंभु की दृष्टिरूपी सुवर्णसूत्र से आकर्षित ओषधिप्रस्थ नाम के नगर में शीघ्र ही पहुँच गया ।

तस्योपकण्ठे घननीलकण्ठः कुतूहलादुन्मुखपौरदृष्टः ।
स्वबाणचिह्नादवतीर्य मार्गादासन्नभूपृष्ठमियाय देवः ॥५१॥

अन्वयः—तस्य उपकण्ठे घननीलकण्ठः देवः कुतूहलाद् उन्मुखपौरदृष्टः सन् स्वबाणचिह्नाद् मार्गाद् अवतीर्य आसन्नभूपृष्ठम् इयाय ।

संजी०—तस्येति ।। तस्य पुरस्योपकण्ठेऽन्तिके घनो मेघ इव नीलः कण्ठो यस्य स घननीलकण्ठो देवः कुतूहलाद्दर्शनौत्सुक्यादुन्मुखैः पौरैर्दृष्टः सन् । स्वबाणचिह्नात्त्रिपुरविजयसमये स्वबाणाङ्कान्मार्गात्कुतश्चिदाकाशदेशादवतीर्यावरुह्यासन्नभूपृष्ठं निकटभूतलमियाय प्राप ।। ५१ ।।

हिन्दी—उस ओषधिप्रस्थ नगर के समीप घन के समान नीले कण्ठवाले भगवान् सदाशिव ऊपर मुख उठाये नगरवासियों द्वारा देखे जाते हुए त्रिपुर वधकाल में अपने बाणों से चिह्न किए गए आकाशमार्ग से आसन्न भू-पृष्ठ पर उतरे ।

तमृद्धिमद्बन्धुजनाधिरूढैर्वृन्दैर्गजानां गिरिचक्रवर्ती ।
प्रत्युज्जगामागमनप्रतीतः प्रफुल्लवृक्षैः कटकैरिव स्वैः ।।५२।।

अन्वयः—आगमनप्रतीतः गिरिचक्रवर्ती ऋद्धिमद्बन्धुजनाधिरूढैः गजानां वृन्दैः प्रफुल्लवृक्षैः स्वैः कटकैः इव तं प्रत्युज्जगाम ।

संजी०—तमिति ।। आगमनेन शिवागमनेन प्रतीतो हृष्टो गिरिचक्रवर्ती पर्वताधिराजो हिमवानृद्धिमता वस्त्रालंकारादिसमृद्धेन बन्धुजनेनाधिरूढैः । अनेन बन्धूनां समसाम्यं सूचितम् । गजानां वृन्दैः प्रफुल्ला विकसितकुसुमा वृक्षा येषु तैः स्वैः स्वकीयैः कटकैर्नितम्बैरिव तं हरं प्रत्युज्जगामाभिययौ । 'कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः ।। ५२ ।।

हिन्दी—शंभु के आगमन की सूचना पाते ही पर्वतराज हिमालय वस्त्राभूषणादि से सुसज्जित बन्धुजनों की सवारी से युक्त हस्तिसमूहों से एवं फूले हुए वृक्ष-रूपी अपनी सेनाओं से युक्त हो उनकी अगवानी में लग गया ।

वर्गावुभौ देवमहीधराणां द्वारे पुरस्योद्घटितापिधाने ।
समीयतुर्दूरविसर्पिघोषौ भिन्नैकसेतू पयसामिवौघौ ।।५३।।

अन्वयः—दूरविसर्पिघोषौ देवमहीधराणाम् उभौ वर्गौ उद्घाटितापिधाने पुरस्य द्वारे भिन्नैकसेतू पयसाम् ओघौ इव समीयतुः ।

संजी०—वर्गाविति ।। दूरविसर्पी दूरगामी घोषो ययोस्तौ देवाश्च महीधराश्च तेषां देवमहीधराणामुभौ वर्गावुद्घटितापिधानेऽपनीतकवाटे पुरस्य द्वारे भिन्नो दीर्ण एकसेतुः याभ्यां तौ भिन्नैकसेतू पयसामोघौ प्रवाहाविव समीयतुः संगतौ ।। ५३ ।।

हिन्दी—सुदूरगामी कोलाहल से युक्त महेन्द्र आदि देव एवं मेरु, हिमालयादि पर्वत इन दोनों का वर्ग समुदाय किवाड़ वाले नगर के द्वार पर बाँध के टूट जाने से दो जलराशियों के प्रवाह के समान परस्पर एक दूसरे से मिल गया।

ह्रीमानभूद्भूमिधरो हरेण त्रैलोक्यवन्द्येन कृतप्रणामः।
पूर्वं महिम्ना स हि तस्य दूरमावर्जितं नात्मशिरो विवेद ॥५४॥

अन्वयः—भूमिधरः त्रैलोक्यवन्द्येन हरेण कृतप्रणामः सन् ह्रीमान् अभूत् हि सः पूर्वं तस्य महिम्ना दूरम् आवर्जितम् आत्मशिरः न विवेद।

संजी०—ह्रीमानिति ॥ भूमिधरो हिमवान्। त्रयो लोकास्त्रैलोक्यम्। चातुर्वर्ण्यादित्वात्ष्यञ्प्रत्ययः। तस्य वन्द्येन नमस्कार्येण कृतप्रणामः सन्। 'ऋत्विक्पितृव्यश्वशुरमातुलानां यवीयसाम्। प्रवयाः प्रथमं कुर्यात्प्रत्युत्थायाभिवादनम्।' इति स्मरणात्। ह्रीमानभूत्। महादेवं प्रति—स्वयमल्पत्वात्संकोचं प्रापेत्यर्थः। ननु विदितेश्वरमहिम्नः स्वयं प्रागेव प्रणतस्य जामातुराचारमात्रस्वीकारे कः संकोच इति शङ्कां निरस्यति—पूर्वमिति ॥ हि यस्मात्स हिमवान्पूर्वं प्रागेव तस्येश्वरस्य महिम्ना सामर्थ्येन दूरमत्यन्तमावर्जितं नमितमात्मशिरो न विवेद। सत्यं स्वयं प्रणतत्वानुसंधानेन संकोचः। तदनुसंधानं त्वौत्सुक्यान्नास्तीति भावः ॥ ५४ ॥

हिन्दी—त्रैलोक्यवन्दनीय शंकर के द्वारा प्रणाम किए जाने पर हिमालय लज्जित हो गए। यद्यपि शंकर की महिमा से पहले ही दूर से उनका शिर प्रणाम के लिए झुक चुका था। परन्तु उन्हें इसका ध्यान ही न रहा।

स प्रीतियोगाद्विकसन्मुखश्रीर्जामातुरग्रेसरतामुपेत्य।
प्रावेशयन्मन्दिरमृद्धमेनमागुल्फकीर्णापणमार्गपुष्पम् ॥५५॥

अन्वयः—प्रीतियोगाद् विकसन् मुखश्रीः सः जामातुः अग्रेसरताम् उपेत्य एनम् आगुल्फकीर्णापणमार्गपुष्पं ऋद्धं मन्दिरम् प्रावेशयत्।

संजी०—स इति ॥ प्रीतियोगात्संतोषसंबन्धाद्विकसन्मुखश्रीर्विकसन्ती मुखश्रीर्यस्य स तथोक्तः स हिमवान्। जायां मिमीते जानातीति जामातुर्वरस्य। पृषोदरादित्वात्साधु। 'जामाता दुहितुः पतिः' इत्यमरः। अग्रेसरतां पुरोगामित्वमुपेत्यैनं देवमागुल्फं पादग्रन्थिपर्यन्तं कीर्णानि पर्यस्तान्यापणमार्गेषु पण्यवीथिकासु पुष्पाणि यस्मिंस्तदागुल्फकीर्णापणमार्गपुष्पम्। 'तद्ग्रन्थी घुटिके गुल्फौ' इत्यमरः। ऋद्धं समृद्धं मन्दिरं नगरम्। 'मन्दिरं नगरेऽगारे मन्दिरो मकरालये' इति विश्वः। प्रावेशयत् ॥ ५५ ॥

हिन्दी—प्रीति के कारण प्रसन्नमुख हिमालय ने अपने जामाता की अगवानी कर नीचे से ऊपर तक फूलों से आकीर्ण एवम् सुसज्जित किए गए आपणमार्ग से युक्त सुसमृद्ध औषधिप्रस्थ नामक नगर में उनका प्रवेश कराया।

तस्मिन्मुहूर्ते पुरसुन्दरीणामीशानसंदर्शनलालसानाम्।
प्रासादमालासु बभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥५६॥

अन्वयः—तस्मिन् मुहूर्ते ईशान संदर्शनलालसानाम्, पुरसुन्दरीणाम्, प्रासादमालासु इत्थं व्यक्तानि अकार्याणि विचेष्टितानि बभूवुः।

संजी०—तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्मुहूर्ते हरपुरप्रवेशसमय ईशानस्य संदर्शने लालसानां लोलुपानाम्। 'लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटश्च सः' इति यादवः। पुरसुन्दरीणां प्रासादमालास्वित्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण त्यक्तान्यकार्याणि विसृष्टकार्यान्तराणि विचेष्टितानि व्यापाराः। 'नपुंसके भावे क्तः' इति क्तः। बभूवुरासन् ॥ ५६ ॥

हिन्दी—उस समय शिव के दर्शन के लिए उत्सुक हुई अट्टालिकाओं पर विराजने वाली नगर की स्त्रियों के द्वारा किए गए वक्ष्यमाण प्रकार के अकार्य होने लगे।

तान्येवाह पञ्चभिः श्लोकैः—

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥५७॥

अन्वयः—आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिद् उद्वेष्टनवान्तमाल्यः करेण रुद्धः अपि केशपाशः तावद् बद्धुं न संभावित एव।

संजी०—आलोकमार्गमिति ॥ आलोकमार्गं दर्शनपथम्। गवाक्षमित्यर्थः। सहसा व्रजन्त्या गच्छन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनो द्रुतगतिवशादुन्मुक्तबन्धनोऽतएव वान्तमाल्य उद्गीर्णमाल्यश्च यः स उद्वेष्टनवान्तमाल्यः करेण रुद्धो गृहीतः। अपि च केशपाशः केशकलापः। 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः। तावदालोकनमार्गप्राप्तिपर्यन्तं बद्धम्। बन्धनायेत्यर्थः। न संभावितो न स्मृत एव ॥ ५७ ॥

हिन्दी—शंकरजी को देखने के लिए उतावली होकर मार्ग से चलने वाली किसी स्त्री के वेगवश केशपाश खुल गये। वह एक हाथ से वेणीबन्धन तथा दूसरे हाथ से केशपाश पकड़े दौड़ पड़ी।

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥५८॥

अन्वय:——काचित् प्रसाधिकाऽऽलम्बितं द्रवरागम् एव अग्रपादम् आक्षिप्य उत्सृष्टलीलागतिः सती आगवाक्षात् पदवीम् अलक्तकांकां ततान।

संजी०——प्रसाधिकेति ।। काचित्स्त्री प्रसाधिकयालंकर्त्र्यालम्बितं रञ्जनार्थं धृतं द्रवरागमेवार्द्रालक्तकमेव। अग्रश्चासौ पादश्चाग्रपदः। इति समानाधिकरणसमासः। 'हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदाभ्याम्' इति वामनः। तमाक्षिप्याकृष्योत्सृष्टलीलागतिस्त्यक्तमन्दगमना सती आगवाक्षाद्गवाक्षपर्यन्तम्। पदद्वयमेतत्। पदवीमलक्तकाङ्कां लाक्षारसचिह्नां चकार।। ५८ ।।

हिन्दी——कोई स्त्री अपनी दासी के द्वारा रंगे गए एक पैर को शीघ्रता से खींच कर तथा दूसरे को बिना रंगे ही छोड़कर शिव के दर्शन के लिए उतावली हो गवाक्ष पर्यन्त मार्ग में अलक्तक का चिह्न लगाती हुई दौड़ पड़ी।

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ।।५९।।

अन्वय:—अपरा दक्षिणं विलोचनम् अञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा सती तथा एवं शलाकां वहन्ती वातायनसन्निकर्षं ययौ।

संजी०——विलोचनमिति ।। अपरा स्त्री दक्षिणं विलोचनमञ्जनेन संभाव्यालङ्कृत्य तद्वञ्चितं तेनाञ्जनेन वर्जितं वामनेत्रं यस्याः सा तथोक्ता सती। तथैव तेनैव रूपेण शलाकामञ्जनकूर्चिकां वहन्ती बिभ्रती वातायनसंनिकर्षं गवाक्षसमीपं ययौ। दक्षिणग्रहणं संभ्रमाद् व्युत्क्रमद्योतानार्थम्। 'सव्यं हि पूर्वं मनुष्या अञ्जते' इति श्रुतेः।। ६० ।।

हिन्दी—कोई स्त्री दाहिनी आँख में अञ्जन लगा चुकी थी, अभी बाईं आँख में लगा भी न पाई थी कि इतने में शिवदर्शन की लालसा से उतावली हाथ में शलाका लिये ही वातायन के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई।

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ।।६०।।

अन्वय:—अन्या जालान्तरप्रेषितदृष्टिः सति प्रस्थानभिन्नां नीवीं न बबन्ध नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन वासः अवलम्ब्य तस्थौ।

संजी०——जालान्तरेति ।। अन्या स्त्री जालान्तरप्रेषितदृष्टिर्गवाक्षमध्यप्रसारितदृष्टिः सती प्रस्थानेन गमनेन भिन्नां त्रुटितां नीवीं वस्त्रग्रन्थिम्। 'नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि' इति विश्वः। न बबन्ध नावध्नात्,

किंतु नाभिं प्रविष्टाभरणानां कङ्कणानां प्रभा यस्य तेन । प्रभैव नाभेराव-रणमभूदिति भावः । हस्तेन वासोऽवलम्ब्य धृत्वा तस्थौ ॥ ६० ॥

हिन्दी—महेश्वर के दर्शन की उत्सुकता से गवाक्ष के मध्य में अपने नेत्रों को डाले कोई स्त्री उतावलेपन के कारण वेग से चलने के कारण छूटी हुई अपनी नीवी भी न बाँध सकीं । वह नाभिप्रदेश में कंकण की कान्ति समाविष्ट करने वाले अपने हाथ से अधोवस्त्र को पकड़े खड़ी रह गई ।

अर्धाचिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ॥६१॥

अन्वयः—सत्वरम् उत्थितायाः कस्याश्चिद् अर्धाञ्चिता रशना दुर्निमिते पदे पदे गलन्ती सती तदानीम् अङ्गुष्ठमूलार्पित सूत्रशेषा आसीत् ।

संजी०—अर्धाचितेति ॥ सत्वरं सवेगमुत्थितायाः कस्याश्चिदर्धमाचिता मणिभिर्गुम्फितर्धाचिता दुर्निमिते संभ्रमाद्दुःखेन निक्षिप्ते । 'डुमिञ् प्रक्षेपणे' इति धातोः कर्मणि क्तः । पदे पदे प्रतिपदम् । वीप्सायां द्विर्भावः । गलन्ती गलद्रत्ना सती रशना मेखला तदानीं तस्मिन्नवसरेऽङ्गुष्ठमूलेऽर्पितं लगितं सूत्रमेव शेषो यस्याः सा आसीत् ॥ ६१ ॥

हिन्दी—कोई अभी अपनी करधनी में आधे ही मणियों के दाने पिरो पाई थी कि शिव के दर्शन के लिए उतावली हो उठकर चल दी । उस समय दुःखपूर्वक पैरों के उठाते रहने से पग-पग पर मणियों के दाने के गिर जाने से गवाक्ष मार्ग तक उसके अंगूठे में लगा हुआ केवल सूत्र ही शेष बच गया ।

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥६२॥

अन्वयः—सान्द्रकुतूहलानां तासाम् आसवगन्धगर्भैः विलोलनेत्रभ्रमरैः मुखैः व्याप्तान्तरा गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इव आसन् ।

संजी०—तासामिति ॥ तदानीं सान्द्रकुतूहलानां तासां स्त्रीणामासव-गन्धो गर्भे येषां तैः विलोलानि नेत्राण्येव भ्रमरा येषु तैर्मुखैर्व्याप्तान्तराश्छ-न्नावकाशा गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् । कमलालंकृता इव स्थिता इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

हिन्दी—महेश्वर के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक उन स्त्रियों के मधुगन्धयुक्त तथा चञ्चलनेत्र भ्रमरयुक्त मुखों से परिपूर्ण गवाक्ष का अन्तर भाग सैकड़ों कमलों से अलंकृत जैसा दिखाई देने लगा ।

तावत्पताकाकुलमिन्दुमौलिरुत्तोरणं राजपथं प्रपेदे ।
प्रासादशृङ्गाणि दिवापि कुर्वञ्ज्योत्स्नाभिषेकद्विगुणद्युतीनि ॥६३॥

अन्वयः—तावद् इन्द्रमौलिः दिवा अपि प्रासादश्रृङ्गाणि ज्योत्स्नाभिषेकद्विगुणद्युतीनि कुर्वन् पताकाकुलम् उत्तोरणं राजपथं प्रपेदे ।

संजी०—**तावदिति ॥ तावत्तस्मिन्नवसर इन्दुमौलिरीश्वरो दिवापि प्रासादश्रृङ्गाणि ज्योत्स्नाया अभिषेकेण स्नपनेन द्विगुणद्युतीनि द्विरावृत्तकान्तीनि 'गुणस्त्वावृत्तिशब्दादिज्येन्द्रियामुख्यतन्तुषु' इति वैजयन्ति । कुर्वन्पताकाभिराकुलं व्याकीर्णमुत्तोरणमुच्छ्रिततोरणं राजपथं प्रपेदे ॥ ६३ ॥**

हिन्दी—पुर की स्त्रियाँ शंकर को देखने के लिए इस प्रकार लालायित हो ही रही थीं कि इतने में सदाशिव दिन में भी उन सुधानुलिप्त प्रासादशिखरों को अपने शिरःस्थ चन्द्र की चन्द्रिका से द्विगुणित रूप में प्रकाशित करते हुए अनेक पताकाओं एवं तोरणों से सुसज्जित राजमार्ग में आ पहुँचे ।

तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥६४॥

अन्वयः—एक दृश्यं तं नयनैः पिबन्त्या नार्यः विषयान्तराणि न जग्मुः तथा हि आसां शेषेन्द्रियवृत्तिः सर्वात्मना चक्षुः प्रविष्टा इव ।

संजी०—**तमिति ॥ एक एव दृश्यो दर्शनीयस्तमेकदृश्यं तमीश्वरं नयनैः पिबन्त्यः । अतितृष्णया पश्यन्त्य इत्यर्थः । 'ताः शंकरं दृष्टिभिरापिबन्त्यः' इति वा पाठः । नार्यो विषयान्तराणि ततोऽन्यान्विषयान् । शब्दादीनित्यर्थः । न जग्मुः । न विदुरित्यर्थः । तथाहि । आसां नारीणां शेषेन्द्रियवृत्तिः श्रोत्रादिप्रवृत्तिः सर्वात्मना स्वरूपकात्स्न्येन चक्षुः प्रविष्टेव । श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि स्वातन्त्र्येण ग्रहणाशक्तेश्चक्षुरेव प्रविश्य कौतुकात्स्वयमप्येनमुपलभन्ते किमु । अन्यथा स्वस्वविषयाधिगमः किं न स्यादिति भावः ॥ ६४ ॥**

हिन्दी—उस समय अपूर्व दर्शनीय उन शंकरजी को आँखों से अपलक रूप से देखती हुई वे स्त्रियाँ अन्य विषयान्तर में ध्यान नहीं दे रही थीं मानो उनके सारी इन्द्रियों की वृत्ति आँखों में ही प्रविष्ट हो गई हो ।

अथ पौराङ्गनावचनान्याह—

स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम् ।
या दास्यमप्यस्य लभेत नारी सा स्यात्कृतार्था किमुताङ्कशय्याम् ॥६५

अन्वयः—पेलवया अपि अपर्णया एदतर्थं दुश्चरं तपः तप्तम् इति स्थाने । या नारी अस्य दास्यम् अपि लभेत सा कृतार्था स्यात् या अङ्कशय्यां लभेत सा किमुत ।

संजी०—स्थान इति ॥ पेलवया कोमलयाप्यपर्णया पार्वत्यैतस्मै शिवायैतदर्थम् । 'अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता च' इति विशेष्यनिघ्नत्वम् । दुश्चरं तपस्तप्तं स्थाने युक्तम् । कुतः । या नार्यस्येश्वरस्य दास्यं दासीत्वमपि लभेत सा कृतार्था स्यात् । या अङ्क एव शय्या तामङ्कशय्यां लभेत सा किमुत । कृतार्थेति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ ६५ ॥

हिन्दी—प्रकृति से सर्वथा सुन्दर होते हुए भी इस पार्वती ने जो ऐसे वर के लिए इतना बड़ा दुश्चर तप किया वह उचित ही था क्योंकि जो स्त्री ऐसे वर की दासी होगी वह भी कृतकृत्य हो जाएगी फिर जो उसकी अङ्कशय्या प्राप्त करेगी उसके विषय में तो कहना ही क्या ?

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ॥६६॥

अन्वयः—स्पृहणीयशोभम् इदं द्वन्द्वं परस्परेण न अयोजयिष्यत् चेत् प्रजानां पत्युः अस्मिन् द्वये रूपविधान यत्नः विफलः अभविष्यत् ।

संजी०—परस्परेणेति ॥ स्पृहणीयशोभं सर्वैराशास्यमानसौन्दर्यमिदं द्वन्द्वं मिथुनम् । 'द्वन्द्वं रहस्य–' इति निपातः । परस्परेण नायोजयिष्यच्चेन्न योजयेद्यदि प्रजानां पत्युर्विधातुरस्मिन्द्वये द्वन्द्वे रूपविधाने सौन्दर्यनिर्माणे यत्नः प्रयासो विफलोऽभविष्यद्भवेत् । एतदनुरूपस्त्रीपुंसान्तराभावादिति भावः । 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' इति लृङ् ॥ ६६ ॥

हिन्दी—सराहने के योग्य शोभा वाले पार्वती और शंकर के इस जोड़े को यदि ब्रह्मदेव परस्पर युक्त नहीं करते तो इन दोनों के इतने सुन्दर रूप को बनाने का उनका प्रयत्न अवश्य निष्फल हो जाता ।

न नूनमारूढरुषा शरीरमनेन दग्धं कुसुमायुधस्य ।
व्रीडादमुं देवमुदीक्ष्य मन्ये संन्यस्तदेहः स्वयमेव कामः ॥६७॥

अन्वयः—आरूढरुषा अनेन कुसुमायुधस्य शरीरं न दग्धम् नूनम् किन्तु कामः अमुं देवम् उदीक्ष्य स्वयमेव संन्यस्तदेहः इति मन्ये ।

संजी०—नेति ॥ आरूढरुषा प्ररूढकोपेनानेन हरेण कुसुमायुधस्य कामस्य शरीरं न दग्धं नूनं किंतु कामोऽमुं देवमुदीक्ष्य दृष्ट्वा व्रीडात्सौन्दर्येण जितोऽस्मीति लज्जया स्वयमेव संन्यस्तदेहस्त्यक्तदेह इति मन्य इत्युत्प्रेक्षा । न स्वयं न्यस्ताकृतेः कोपः संभवतीति भावः ॥ ६७ ॥

हिन्दी—इन शंकर ने क्रोध कर काम के शरीर को भस्म नहीं किया यह बात निश्चित है, किन्तु उसी ने लज्जावश शिव की सुन्दरता देख योगाग्नि द्वारा अपना शरीर स्वयं भस्म कर लिया ।

काचित्कांचिदाह—

अनेन संबन्धमुपेत्य दिष्ट्या मनोरथप्रार्थितमीश्वरेण।
मूर्धानमालि क्षितिधारणोच्चमुच्चैस्तरं वक्ष्यति शैलराजः ॥६८॥

अन्वयः—हे आलि ! शैलराजः दिष्ट्या मनोरथप्रार्थितम् अनेन ईश्वरेण सम्बन्धम् उपेत्य क्षिति धारणीयं मूर्धानम् उच्चैस्तरं वक्ष्यति ।

संजी०—अनेनेति ॥ हे आलि सखि ! 'आलिः सखि वयस्या च' इत्यमरः । शैलराजो हिमवान् । दिष्ट्येत्यानन्देऽव्ययम् । मनोरथैः प्रार्थितमवरुद्धम् । अभिलाषविषयीकृतमित्यर्थः । 'प्रार्थना याञ्चावरोधयोः' इत्यभिधानात् । अनेनेश्वरेण संबन्धमुपेत्यावाप्य क्षितिधारणेनोच्चमुन्नतं मूर्धानमुच्चैस्तरमुन्नततरम् । उच्चैरित्यव्ययात्तरप्प्रत्ययः । मूर्ध्नो द्रव्यत्वान्नामुप्रत्ययान्तो निपातः । 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' इत्यादिनाऽद्रव्यप्रकर्षे तस्य विधानादिति । वक्ष्यति धारयिष्यति । वहतेर्लृट् ॥ ६८ ॥

हिन्दी—हे सखि ! यह हिमालय भाग्यवश अपने अभिलषित शंकर के सम्बन्ध को प्राप्त कर पृथ्वीधारण के योग्य अपने शिर को और भी अधिक उच्चतर करेगा।

इत्योषधिप्रस्थविलासिनीनां शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखास्त्रिनेत्रः ।
केयूरचूर्णीकृतलाजमुष्टिं हिमालयस्यालयमाससाद ॥६९॥

अन्वयः—त्रिनेत्रः इति ओषधिप्रस्थविलासिनीनाम् श्रोत्रसुखाः कथाः शृण्वन् केयूरचूर्णीकृतलाजमुष्टिं हिमालयस्य आलयम् आजगाम ।

संजी० —इतीति ॥ त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकः । त्रिनेत्रत्रिनयनशब्दयोः 'क्षुभ्नादिषु च' इति णत्वाभावः । इतीत्थमोषधिप्रस्थविलासिनीनां संबन्धिनीः श्रोत्रसुखाः श्रवणमधुराः कथा आलापाञ्शृण्वन्केयूरैरङ्गदैश्चूर्णीकृता लाजानां मुष्टयो यस्मिंस्तं तथोक्तम् । तत्रावकीर्णा आचारलाजा अन्तराल एवाङ्गदैश्चूर्णपेषं पिष्यन्त इति पुरंध्रीजनसंबन्धातिशयोक्तिः । हिमालयस्य हिमवत आलयं भवनमाससाद ॥ ६९ ॥

हिन्दी—इस तरह ओषधिप्रस्थनगर की स्त्रियों के श्रुतिमधुर कथाओं को सुनते हुए महेश्वर हिमालय के उस प्रकार के घर में पहुँच गये जहाँ आचारार्थ वर्षाये गये लाजा की मुष्टि भी भीड़ में लोगों की बिजायट से पिस कर चकनाचूर हो जाती थी ।

तत्रावतीर्याच्युतदत्तहस्तः शरद्घनाद्दीधितिमानिवोक्ष्णः ।
क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन कक्ष्यान्तराण्यद्रिपतेर्विवेश ॥७०॥

अन्वयः –तत्र अच्युतदत्तहस्तः शरद्घनात् दीधितिमान् इव उक्षणः अवतीर्य कमलासनेन पूर्वं क्रान्तानि अद्रिपतेः कक्ष्यान्तराणि विवेश ।

संजी०—तत्रेति ॥ तत्र हिमवदालयेऽच्युतेन विष्णुना दत्तहस्तो वितीर्ण-हस्तावलम्बः सन् । शरद्घनाच्छरन्मेघात् । शरद्विशेषणान्मेघस्य शुभ्रत्वं गम्यते । दीधितिमान्सूर्य इवोक्षणो वृषादवतीर्य कमलासनेन पूर्वमग्रे क्रान्तानि प्रविष्टान्यद्रिपतेः कक्ष्यान्तराणि गेहप्रकोष्ठान्तराणि विवेश । 'कक्ष्या कच्छे वरत्रायां काञ्च्यां गेहे प्रकोष्ठके' इति यादवः ॥ ७० ॥

हिन्दी –वहाँ शिव ने विष्णु के हाथ के सहारे शरत्काल के मेघ से उतरते हुए सूर्य के समान बैल से उतर कर पहले से ही ब्रह्मदेव द्वारा अधिष्ठित हिमालय के घर के कमरे में प्रवेश किया ।

तमन्वगिन्द्रप्रमुखाश्च देवाः सप्तर्षिपूर्वाः परमर्षयश्च ।
गणाश्च गिर्यालयमभ्यगच्छन्प्रशस्तमारम्भमिवोत्तमार्थाः ॥७१॥

अन्वयः—तम् अन्वग् इन्द्रप्रमुखा देवाः सप्तर्षिपूर्वाः परमर्षयः गणाश्च उत्तमार्थाः प्रशस्तम् आरम्भम् इव गिर्यालयम् अन्वगच्छन् ।

संजी०—तमिति ॥ तमीश्वरमन्वगनुपदम् । अव्ययमेतत् । 'अन्वगन्व-क्षमनुगेऽनुपदं क्लीबमव्ययम्' इत्यमरः । इन्द्रप्रमुखा देवाश्च सप्तर्षयः पूर्वे येषां ते सप्तर्षिपूर्वाः । 'न बहुव्रीहौ' इति सर्वनामसंज्ञाप्रतिषेधः । परमर्षयः सनकादिमहर्षयश्च । 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' इति तत्पुरुषः । गणाः प्रमथाश्चोत्तमार्था महाप्रयोजनाः प्रशस्तं प्रकृष्टम् । अमोघमित्यर्थः । आरभ्यत इत्यारम्भ उपायस्तमिव गिर्यालयं हिमवन्मन्दिरमभ्यगच्छन् । प्राविशन्नित्यर्थः ॥ ७१ ॥

हिन्दी—इसके बाद इन्द्रादि देवता पश्चात् सप्तर्षि, तत्पश्चात् परमर्षि एवं उनके भी पश्चात् गणों ने उस प्रकार हिमालय के घर में प्रवेश किया जिस प्रकार उत्तम आरम्भ के पीछे-पीछे अनेक उत्तम महान् प्रयोजन चलते हैं ।

तत्रेश्वरो विष्टरभाग्यथावत्सरत्नमर्घ्यं मधुमच्च गव्यम् ।
नवे दुकूले च नगोपनीतं प्रत्यग्रहीत्सर्वममन्त्रवर्जम् ॥७२॥

अन्वयः—तत्र ईश्वरः विष्टरभाग् यथावत् सरत्नम् अर्घ्यम् मधुमद् गव्यम् नवेदुकूले च इति सर्वं नगोपनीतम् अमंत्रवर्जं प्रत्यग्रहीत् ।

संजी०—तत्रेति ॥ तत्र हिमवदालय ईश्वरो विष्टरभागासनगतः । उपविष्ट इत्यर्थः । यथावद्यथार्हम् । विधिवदित्यर्थः । सरत्नं रत्नसहितमर्घ्यं-

मर्घार्थं जलम् । मधु क्षौद्रमस्मिन्नस्तीति मधुमत् । गवि भवं गव्यं दधि च । मधुपर्कमित्यर्थः । 'दधिमधुनी सर्पिर्वा मध्वलाभे' इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रात् । नवे दुकूले चेति सर्वं नगोपनीतं हिमवदानीतमर्घ्यादिकं मन्त्रान्वर्जयित्वा मन्त्रवर्जम् । ततो नञ्समासः । अमन्त्रवर्ज्यम् । मन्त्रान्न वर्जयित्वेत्यर्थः । 'द्वितीयायां च' इति णमुल्प्रत्यय इत्याह न्यासकारः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इत्यत्र । प्रत्यग्रहीत्स्वीकृतवान् ॥ ७२ ॥

हिन्दी—वहाँ आसन पर बैठे हुए शंकर ने विवाह की रीति के अनुसार हिमालय द्वारा दिये गये रत्नसहित अर्घ्य मधुयुक्त दधि तथा नये दो वस्त्र -ये सभी वस्तुयें मन्त्रपूर्वक ग्रहण किया ।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः ।
वेलासमीपं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥७३॥

अन्वयः—दुकूलवासाः सः विनीतैः अवरोधदक्षैः स्फुटफेनराजिः उदन्वान् इव चन्द्रपादैः वेलासमीपम् इव वधूसमीपं निन्ये ।

संजी०—दुकूलेति ॥ अथ दुकूलवासाः । दुकूलं वसान इत्यर्थः । स हरो विनीतैरनुद्धतैरवरोधेषु ये दक्षास्तैरवरोधदक्षैर्वधूसमीपं निन्ये नीतः । कथमिव । स्फुटा फेनानां राजिर्यस्य स उदकमस्यास्तीत्युदन्वान्समुद्रः । 'उदन्वानुदधौ च' इति निपातनात्साधुः । नवैरचिरोदितैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रकिरणैर्वेलासमीपमिव ॥ ७३ ॥

हिन्दी—इसके बाद स्वच्छ दुकूलधारी शंकर विनीत वर्षधरों के द्वारा पार्वती के पास इस प्रकार पहुँचाए गए जिस प्रकार चन्द्रकिरणों द्वारा सफेद फेनों वाला समुद्र अपनी वेला के समीप पहुँचा दिया जाता है ।

तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्लचक्षुःकुमुदः कुमार्या ।
प्रसन्नचेतःसलिलः शिवोऽभूत्संसृज्यमानः शरदेव लोकः ॥७४॥

अन्वयः—प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या तया कुमार्या शरदालोक इव संसृज्यमानः शिवः प्रफुल्लचक्षुः कुमुदः प्रसन्नचेतः सलिलः अभूत् ।

संजी०—तयेति ॥ आननं चन्द्र इवेत्युपमितसमासः । प्रवृद्धाननचन्द्रस्य कान्तिर्यस्यास्तया तथोक्तया तया कुमार्या, शरदा लोक इव संसृज्यमानः संगच्छमानः शिवश्चक्षूंषि कुमुदानीव तानि प्रफुल्लानि यस्य स तथोक्तः । चेतः सलिलमिव तत्प्रसन्नं यस्य स तथोक्तः प्रसन्नचेतःसलिलोऽभूत् । शरल्लोकयोरपि यथोचितं विशेषणानि योज्यानि ॥ ७४ ॥

हिन्दी--जिस प्रकार शरत्काल के आगमन से लोग प्रसन्न हो आते हैं, कुमुद खिल उठते हैं तथा सलिल स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार पूर्णचन्द्रमुखी पार्वती के संसर्ग से शिव के नेत्र प्रफुल्लित हो गए और उनका मन प्रसन्न हो गया।

तयोः समापत्तिषु कातराणि किंचिद्व्यवस्थापितसंहृतानि।
ह्रीयन्त्रणां तत्क्षणमन्वभूवन्नन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥७५॥

अन्वयः--तयोः समापत्तिषु कातराणि किञ्चिद्व्यवस्थापितसंहृतानि अन्योन्यलोलानि विलोचनानि तत्क्षणं ह्रीयन्त्रणाम् अन्वभवन्।

संजी०--तयोरिति ॥ तयोर्वधूवरयोः समापत्तिषु यदृच्छया संगतिषु कातराणि चकितानि 'अधीरे कातरः' इत्यमरः। द्रष्टुमसमर्थानीति भावः। किंचिदीषद्व्यवस्थापितानि स्थिरीकृतानि पश्चात्संहृतानि निवर्तितानि चेति व्यवस्थापितसंहृतानि।'पूर्वकाल-'इत्यादिना तत्पुरुषः। अन्योन्यस्मिँल्लोलानि सतृष्णानि। 'लोलश्चलसतृष्णयोः' इत्यमरः। विलोचनानि दृष्टयस्तत्क्षणं तस्मिन्क्षणे ह्रीयन्त्रणां ह्रिया निमितेन संकोचमन्वभूवन् ॥ ७५ ॥

हिन्दी--उन दोनों वधूवरों के यदृच्छया से मिल जाने वाले नेत्र कभी चकितावस्था में, कभी मिल जाने के पश्चात् अलग-अलग होने की अवस्था में, कभी एक दूसरे को देखने के लिए सतृष्णअवस्था को प्राप्त होकर भी कुछ क्षण के लिए लज्जा का अनुभव करने लग गए थे।

तस्याः करं शैलगुरूपनीतं जग्राह ताम्राङ्गुलिमष्टमूर्तिः।
उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य तच्छङ्किनः पूर्वमिव प्ररोहम् ॥७६॥

अन्वयः--अष्टमूर्त्तिः तच्छङ्किनः उमातनौ गूढतनोः स्मरस्य पूर्वं प्ररोहम् इव शैलगुरूपनीतं ताम्राङ्गुलिम्, तस्याः करं जग्राह।

संजी०--तस्या इति ॥ अष्टमूर्तिः शिवः। तस्मादीश्वराच्छङ्कत इति तच्छङ्किनः। तद्भीतस्येत्यर्थः। अत एवोमातनावुमाशरीरे गूढतनोर्गुप्तशरीरस्य स्मरस्य पूर्वं प्ररोहमिव प्रथमाङ्कुरमिव स्थितं शैलगुरूपनीतं शैलगुरुणा हिमवतोपनीतं प्रापितम्। अथवा शैलगुरुणा हिमवत्पुरोधसोपनीतं ताम्राङ्गुलिं रक्ताङ्गुलिं तस्याः पार्वत्याः करं जग्राह ॥ ७६ ॥

हिन्दी--तदनन्तर महादेव के भय से पार्वती के शरीर में छिपे हुए कामदेव के प्रथम अंकुर के समान हिमालय के आचार्य द्वारा प्रदत्त लाल-लाल अंगुलियों वाले पार्वती के हाथ को शंकर ने पकड़ा।

रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गुलिः पुंगवकेतुरासीत्।
वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य ॥७७॥

अन्वयः—उमायाः रोमोद्गमः प्रादुरभूत । पुङ्गवकेतुः स्विन्नाङ्गुलिः आसीत्। पाणिसमागमेन तयोः मनोभवस्य वृत्तिः समम् विभक्ता इव अभूत ।

संजी०—रोमोद्गम इति ॥ उमाया रोमोद्गमो रोमाञ्चः प्रादुरभूत्। पुमान्गौः पुंगवो वृषभः। 'गोरतद्धितलुकि' इति टच्। स केतुश्चिह्नं यस्य स पुंगवकेतुः शिवः स्विन्नाङ्गुलिरासीत्। अत्रोत्प्रेक्षते—पाणिसमागमेन पाण्योः संस्पर्शेन कर्त्रा। तयोर्वधूवरयोर्मनोभवस्य वृत्तिरवस्थितिः समं विभक्तेव। समीकृतेवेत्यर्थः। प्राक्सिद्धस्याप्यनुरागसाम्यस्य संप्रति तत्कार्यदर्शनात्पाणिसंस्पर्शकृतत्वमुत्प्रेक्षते। ननु 'कन्या प्रथमसंगमे स्विन्नकरणा भवति पुमांस्तु रोमाञ्चितो भवती' ति वात्स्यायनेन विपरीतमुक्तमिति चेन्नैष दोषः। एभिरनयोर्भावं परीक्षेतेति वाक्यशेष एभिरिति बहुवचनेन स्वेदरोमाञ्चग्रहणस्य सकलसात्त्विकोपलक्षणत्वावगमेनानियमावधारणात्। अत एव रघुवंशेऽन्यथाभिधानात्स्वोक्तिविरोध इत्यपास्तम्। तदेतद्रघुवंशसंजीविन्यां (७।२२) सुव्यक्तमवोचम्। सात्त्विकास्तु—

'स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू।
अश्रु वैस्वर्यमित्यष्टौ सात्त्विकाः परिकीर्तिताः॥' इति ॥ ७७ ॥

हिन्दी—पाणिग्रहण काल में पार्वती के शरीर में रोमांच हो गया तथा शंकर जी की अंगुलियाँ स्वेदयुक्त हो गईं। मानो उस समय कामदेव ने अपनी वृत्ति दोनों में समान रूप से विभक्त कर दी हो।

प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम्।
सांनिध्ययोगादनयोस्तदानीं किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥७८॥

अन्वयः—यत् प्रयुक्तपाणि ग्रहणम् अन्यद् वधूवरम् अनयोः सान्निध्ययोगात् कान्ति पुष्यति। तदानीं तस्य उभयस्य श्रीः किं कथ्यते।

संजी०—प्रयुक्तेति ॥ यद्यस्मात्कारणात्प्रयुक्तं पाणिग्रहणं यस्य तत्तथोक्तमन्यल्लौकिकम् वधूश्च वरश्च वधूवरम्। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः। तदानीं पाणिग्रहणकालेऽनयोरुमाशिवयोः सांनिध्ययोगात्संनिधिभावादग्र्यामुत्तमां कान्तिं शोभां पुष्यति पुष्णाति तस्योभयस्योमामहेश्वररूपस्य मिथुनस्य श्रीः किं कथ्यते। यत्प्रसादादन्यस्य शोभालाभस्तस्य शोभा किमु वक्तव्येत्यर्थः। 'विवाहसमये गौरीशिवौ वधूवरावनुप्रविशेताम्' इत्यागमः ॥ ७८ ॥

हिन्दी—जब विवाहकाल में पाणिग्रहण के लिए उपस्थित अन्य वधूवरों

की शोभा पार्वती और शंकर के स्मरणमात्र से वृद्धि को प्राप्त होती है तब जहाँ वे ही दोनों पाणिग्रहण कर रहे हों उसकी शोभा किस प्रकार वर्णन की जा सकती है।

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥७९॥

अन्वयः—तन्मिथुनम् उदर्चिषः कृशानोः प्रदक्षिण प्रक्रमणात् मेरोः उपान्तेषु वर्त्तमानम् अन्योन्यसंसक्तम् अहस्त्रियामम् इव चकासे।

संजी०—प्रदक्षिणेति ॥ तन्मिथुनमुदर्चिष उन्नतज्वालस्य कृशानोः कर्मणः प्रदक्षिणप्रक्रमणात्प्रदक्षिणीकरणाच्चकासे। किमिव। मेरोरुपान्तेषु परिसरेषु वर्तमानमावर्तमानम्। मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वदित्यर्थः। अन्योन्येन संसक्तं संगतम्। मिथुनस्याप्येतद्विशेषणम्। अहश्च त्रियामा चाहस्त्रियामं रात्रिदिवमिव। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः ॥७९॥

हिन्दी—पार्वती और शिव के जोड़े परस्पर मिलकर ऊपर की ओर जलने वाली अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय ऐसे मालूम पड़ रहे थे मानो मेरु के उपान्त भाग में एक दूसरे से मिले हुए रात और दिन घूम रहे हों।

तौ दंपती त्रिः परिणीय वह्निमन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ।
स कारयामास वधूं पुरोधास्तस्मिन्समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम् ॥८०॥

अन्वयः—सः पुरोधाः अन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ तौ दम्पती वह्निं त्रिः परिणीय समिद्धार्चिषि तस्मिन् वधूं लाजमोक्षं चकार।

संजी०—ताविति ॥ स पुरस्तादेव हितं विधत्त इति पुरोधाः पुरोहितोऽन्योन्यस्य संस्पर्शेन स्पर्शसुखेन निमीलिताक्षौ तौ जाया च पतिश्च दंपती कर्मभूतौ। जायाशब्दस्य दंभावो निपातितः। वह्निं त्रिस्त्रिवारम्। 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति सुच्। परिणीय परितो नीत्वा। प्रदक्षिणीकार्येत्यर्थः। नयतेर्द्विकर्मकाल्यप्। समिद्धार्चिषि दीप्तज्वाले तस्मिन्वह्नौ वधूं लाजमोक्षं लाजविसर्गं कारयामास। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इति विकल्पादणिकर्तुः कर्मत्वम् ॥८०॥

हिन्दी—पुरोहित ने परस्पर स्पर्शजन्य आनन्द से निमीलित नेत्र वाले उन दोनों दम्पतियों से अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा करवाई। फिर प्रज्वलित अग्नि में वधू के द्वारा लावा का हवन करवाया।

सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद्वदनं निनाय।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥८१॥

की शोभा पार्वती और शंकर के स्मरणमात्र से वृद्धि को प्राप्त होती है तब जहाँ वे ही दोनों पाणिग्रहण कर रहे हों उसकी शोभा किस प्रकार वर्णन की जा सकती है।

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥७९॥

अन्वयः—तन्मिथुनम् उदर्चिषः कृशानोः प्रदक्षिण प्रक्रमणात् मेरोः उपान्तेषु वर्त्तमानम् अन्योन्यसंसक्तम् अहस्त्रियामम् इव चकासे।

संजी०—प्रदक्षिणेति ॥ तन्मिथुनमुदर्चिष उन्नतज्वालस्य कृशानोः कर्मणः प्रदक्षिणप्रक्रमणात्प्रदक्षिणीकरणाच्चकासे। किमिव। मेरोरुपान्तेषु परिसरेषु वर्तमानमावर्तमानम्। मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वदित्यर्थः। अन्योन्येन संसक्तं संगतम्। मिथुनस्याप्येतद्विशेषणम्। अहश्च त्रियामा चाहस्त्रियामं रात्रिदिवमिव। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः ॥७९॥

हिन्दी—पार्वती और शिव के जोड़े परस्पर मिलकर ऊपर की ओर जलने वाली अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय ऐसे मालूम पड़ रहे थे मानो मेरु के उपान्त भाग में एक दूसरे से मिले हुए रात और दिन घूम रहे हों।

तौ दंपती त्रिः परिणीय वह्निमन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ।
स कारयामास वधूं पुरोधास्तस्मिन्समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम् ॥८०॥

अन्वयः—सः पुरोधाः अन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ तौ दम्पती वह्निं त्रिः परिणीय समिद्धार्चिषि तस्मिन् वधूं लाजमोक्षं चकार।

संजी०—ताविति ॥ स पुरस्तादेव हितं विधत्त इति पुरोधाः पुरोहितोऽन्योन्यस्य संस्पर्शेन स्पर्शसुखेन निमीलिताक्षौ तौ जाया च पतिश्च दंपती कर्मभूतौ। जायाशब्दस्य दंभावो निपातितः। वह्निं त्रिस्त्रिवारम्। 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' इति सुच्। परिणीय परितो नीत्वा। प्रदक्षिणीकार्येत्यर्थः। नयतेर्द्विकर्मकाल्ल्यप्। समिद्धार्चिषि दीप्तज्वाले तस्मिन्वह्नौ वधूं लाजमोक्षं लाजविसर्गं कारयामास। 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इति विकल्पादणिकर्तुः कर्मत्वम् ॥८०॥

हिन्दी—पुरोहित ने परस्पर स्पर्शजन्य आनन्द से निमीलित नेत्र वाले उन दोनों दम्पतियों से अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा करवाई। फिर प्रज्वलित अग्नि में वधू के द्वारा लावा का हवन करवाया।

सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद्वदनं निनाय।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥८१॥

अन्वयः—सा गुरूपदेशात् इष्टगन्धम् लाजधूमाञ्जलिं वदनं निनाय। कपोल-संसर्पिशिखः सः तस्याः मुहूर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।

संजी०—सेति॥ सा वधूर्गुरोः पुरोधस उपदेशाद्। इष्टः। घ्राणतर्पण इत्यर्थः। गन्धो यस्य तं लाजधूमाञ्जलिं वदनं निनाय। कपोलसंसर्पिणी शिखा यस्य स तथोक्तः स धूमस्तस्या गौर्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे। धूमस्य विसृमरत्वान्मुहूर्तग्रहणम्॥८१॥

हिन्दी—उस पार्वती ने लाजा होमजनित घ्राणों को तृप्त करने वाली सुगन्धित धूमाञ्जलि को पुरोहित की आज्ञा से मुख से पान किया। उस समय पार्वती के कपोल के ऊपर कान तक पहुँचनेवाला वह धूम क्षणमात्र के लिए उनका कर्णभूषण बन गया।

तदीषदार्द्रारुणगण्डलेखमुच्छ्वासिकालाञ्जनरागमक्ष्णोः।
वधूमुखं क्लान्तयवावतंसमाचारधूमग्रहणाद्बभूव॥८२॥

अन्वयः—तद् वधूमुखम् आचारधूमग्रहणात् ईषदार्द्रारुणगण्डलेखम् अक्ष्णोः उच्छ्वासिकालाञ्जनरागं क्लान्तयवावतंसं बभूव।

संजी०—तदिति॥ तद्वधूमुखमाचारधूमग्रहणादाचारप्राप्तधूमत्वादीषदार्द्रे स्विन्ने अरुणे च गण्डलेखे गण्डस्थले यस्य तत्तथोक्तम्। अक्ष्णोरुच्छ्वास्युद्गच्छन्कालाञ्जनस्य रागोऽञ्जनं यस्य तत्तथोक्तम्। क्लान्तो यवावतंसो यवाङ्कुरकर्णपूरो यस्य तत्तथाभूतं बभूव। 'लाजाञ्जलिं विसृज्य धूमाग्रं जिघ्रेत' इति प्रयोगवृत्तिकारः॥८२॥

हिन्दी—उस समय पार्वती का मुख उस आचारयुक्तधूम के ग्रहण करने के कारण कुछ सस्वेद तथा अरुण गण्डस्थल से युक्त हो गया, आँखों में लगे काजल फैल गये और कानों पर निहित यवांकुर मलिन हो गया।

वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से वह्निर्विवाहं प्रति कर्मसाक्षी।
शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति॥८३॥

अन्वयः—'हे वत्से, एष वह्निः तव विवाहं प्रतिकर्मसाक्षी। भर्त्रा शिवेन सह मुक्तविचारया त्वया धर्मचर्या कार्या इति द्विजः वधूं प्राह।

संजी०—वधूमिति॥ अथ वधूं द्विजः पुरोधाः प्राह। किमिति। हे वत्से, एष वह्निस्तव विवाहं प्रति। विवाहकर्मणीत्यर्थः। कर्मसाक्षी कर्मद्रष्टा। भर्त्रा शिवेन सह मुक्तविचारया निर्विचारया त्वया धर्मचर्या धर्माचरणं कार्या कर्तव्येति। अयं च प्राजापत्यविवाहो द्रष्टव्यः। यथाहाश्वलायनः—'सह धर्मं चरेदिति प्राजापत्यः' इति॥८३॥

हिन्दी—हे वत्से: यह अग्नि तुम्हारे और शंकर के विवाह कर्म का साक्षी है, अब तुम अपने पति शिव के साथ बिना विचारे धर्माचरण करना—ऐसा पुरोहित ने विवाह के समय पार्वती को उपदेश दिया।

आलोचनान्तं श्रवणे वितत्य पीतं गुरोस्तद्वचनं भवान्या।
निदाघकालोल्बणतापयेव माहेन्द्रमम्भः प्रथमं पृथिव्या ॥८४॥

अन्वयः—भवान्या आलोचनान्तं श्रवणे वितत्य तद् गुरोः वचनं निदाघकालोल्वणतापया पृथिव्या प्रथमं माहेन्द्रम् अम्भ इव पीतम्।

संजी०—आलोचनान्तमिति ॥ भवस्य पत्न्या भवान्या। 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्र–' इत्यादिना ङीष् आनुगागमश्च। आलोचनान्तं नेत्रान्तपर्यन्तम्। 'आङ् मर्यादाभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः। श्रवणे श्रोत्रे वितस्य विस्तार्य यत्पूर्वोक्तं गुरोर्याज्ञिकस्य वचनं 'सह धर्मं चर' इति वाक्यं निदाघकाले ग्रीष्मकाल उल्बणतापयोत्कटसंतापया पृथिव्या प्रथममाद्यं माहेन्द्रं पार्जन्यमम्भ इव पीतम्। अत्यादरेण शुश्रावेत्यर्थः ॥८४॥

हिन्दी—पार्वती ने पुरोहित के वचन को अपने कानों को नेत्र पर्यन्त फैलाकर इस प्रकार उत्सुक हो सुना जिस प्रकार ग्रीष्मकाल से संतप्त हुई पृथ्वी वर्षाकाल के प्रथम जल-विन्दुओं को सतृष्ण रूप से ग्रहण करती है।

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।
सा दृष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच ॥८५॥

अन्वयः—प्रियदर्शनेन ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना ह्रीसन्नकण्ठी कथमपि आननम् उन्नमय्य दृष्टः इति उवाच।

संजी०—ध्रुवेणेति ॥ प्रियं दर्शनं यस्य कर्मभूतस्य तेन प्रियदर्शनेन ध्रुवेण शाश्वतेन भर्त्रा ध्रुवस्य नक्षत्रविशेषस्य दर्शनाय। 'ध्रुवो भभेदे क्लीबं तु निश्चिते शाश्वते त्रिषु' इत्यमरः। प्रयुज्यमाना दृश्यतामिति प्रेर्यमाणा ह्रीसन्नकण्ठी ह्रिया हीनस्वरा सा वधूः कथमप्याननमुन्नमय्य दृष्ट इत्युवाच ॥८५॥

हिन्दी—अत्यन्त मनोहर स्वरूप वाले अविनाशी अपने पति सदाशिव के द्वारा ध्रुवदर्शन के लिए प्रेरित पार्वती ने लज्जित हो किसी-किसी प्रकार अपना मुख ऊपर उठाकर धीरे से 'देख लिया' ऐसा कहा।

इत्थं विधिज्ञेन पुरोहितेन प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ।
प्रणेमतुस्तौ पितरौ प्रजानां पद्मासनस्थाय पितामहाय ॥८६॥

अन्वयः—इत्थं विधिज्ञेन पुरोहितेन प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ प्रजानां पितरौ तौ पद्मासनस्थाय पितामहाय प्रणेमतुः।

संजी०—इत्थमिति ॥ इत्थमनेन प्रकारेण 'इदमस्थमुः' इति थमुप्रत्ययः। विधिज्ञेन विवाहप्रयोगज्ञेन। शास्त्रज्ञेनेत्यर्थः। पुरोहितेन हैमवतेन प्रयुक्तपाणिग्रहणोपचारौ कृतविवाहकर्माणौ प्रजानां पितरौ तावुमामहेश्वरौ पद्मासनस्थाय पद्मासनोपविष्टाय पितॄणां पित्रे पितामहाय ब्रह्मणे। 'पितामहो विरिञ्चौ स्यात्तातस्य जनकेऽपि च' इति विश्वः। पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः' इति निपातनात्साधुः। प्रणेमतुर्नमश्चक्रतुः। पितामहस्य पित्रोरपि पूज्यत्वादिति भावः ॥८६॥

हिन्दी—इस प्रकार शास्त्रज्ञ पुरोहित द्वारा विवाह संस्कार संपन्न हो जाने पर पार्वती और शंकर ने कमलासन पर बैठे ब्रह्मदेव को प्रणाम किया।

वधूर्विधात्रा प्रतिनन्द्यते स्म कल्याणि वीरप्रसवा भवेति।
वाचस्पतिः सन्नपि सोऽष्टमूर्तौ त्वाशास्यचिन्तास्तिमितो बभूव ॥८७॥

अन्वयः—वधूः विधात्रा 'हे कल्याणि वीरप्रसवा भव' इति प्रतिनन्द्यते स्म। सः वाचस्पतिः सन्नपि अष्टमूर्तौ तु आशास्यचिन्तास्तिमितो बभूव।

संजी०—वधूरिति ॥ वधूः कन्या विधात्रा ब्रह्मणा। हे कल्याणि शोभने, वीरः प्रसवोऽपत्यं यस्याः सा वीरप्रसवा वीरसूर्भवेति प्रतिनन्द्यते स्म। आशिषमुक्त्वेत्यर्थः। स विधाता वाचस्पतिर्वागीश्वरोऽपि सन्। कस्कादिषु पाठात्साधुः। अष्टमूर्तौ शिवे त्वाशास्यमाकाङ्क्ष्यं तत्र चिन्ता विचारस्तस्यां स्तिमितो मन्दो बभूव। तस्य निरीहस्याशास्याभावादाशिषि स्तिमितत्वमित्यर्थः ॥८७॥

हिन्दी ब्रह्मा ने पार्वती को 'हे कल्याणि! वीरप्रसविनी बनो' इस प्रकार का यद्यपि आशीर्वाद दिया किन्तु शंकर जी में किसी प्रकार की इच्छा का अभाव जान कर अपने आशीर्वाद के विषय में चिन्तित हो चुप से हो गये।

क्लृप्तोपचारां चतुरस्रवेदीं तावेत्य पश्चात्कनकासनस्थौ।
जायापती लौकिकमेषणीयमार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥८८॥

अन्वयः—तौ जायापती पश्चात् क्लृप्तोपचारां चतुरस्रवेदीम् एत्य कनकासनस्थौ सन्तौ लौकिकम् एषणीयम् आर्द्राक्षता रोपणम् अन्वभूताम्।

संजी०—क्लृप्तेति ॥ तौ जायापती वधूवरौ पश्चान्नमस्कारानन्तरं क्लृप्ता रचिता उपचाराः पुष्परचनादयो यस्यां तां चतुरस्रवेदीमेत्य प्राप्य कनकासनस्थौ सन्तौ लौकिकं लोके विदितम्। आचारप्राप्तमित्यर्थः। अतएवैषणीयमाशास्यम्। 'तथाहि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत्' इति शास्त्रादवश्यकर्तव्यमित्यर्थः। इषेरिच्छार्थादनीयर्प्रत्ययः। आर्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥८८॥

हिन्दी—इसके पश्चात् पुष्पादि शोभित चतुरस्रवेदी (चौकोरवेदी) के समीप आकर सुवर्णमय सिंहासन पर बैठे उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने लोगों के द्वारा किये गए आर्द्र अक्षत के टीके का अनुभव किया।

पत्रान्तलग्नैर्जलबिन्दुजालैराकृष्टमुक्ताफलजालशोभम् ।
तयोरुपर्यायतनालदण्डमाधत्त लक्ष्मीः कमलातपत्रम् ॥८९॥

अन्वयः—लक्ष्मीः पत्रान्तलग्नैः जलबिन्दुजालैः आकृष्ट मुक्ताफलजालशोभम् आयतनालदण्डं कमलातपत्रं तयोः उपरि आधत्त।

संजी०—पत्रान्तेति ॥ लक्ष्मीः श्रीदेवी पत्रान्तेषु दलप्रान्तेषु लग्नैर्जलबिन्दुजालैराकृष्टाहृता मुक्ताफलजालेन प्रान्तलम्बिना मुक्ताकलापेन या शोभा सा येन तत्तथोक्तमायतं दीर्घं नालमेव दण्डो यस्य तत्कमलमेवातपत्रं तयोरुपर्याधत्त दधौ ॥८९॥

हिन्दी—लक्ष्मी ने स्वयं पत्तों के अग्रभाग पर लटकते हुए जलविन्दुओं के समान मोतियों के झालर से सुशोभित, लम्वे नालदण्ड वाले कमलाकार श्वेतच्छत्र उन दोनों के ऊपर लगाया।

द्विधाप्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव ।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन ॥९०॥

अन्वयः—सरस्वती द्विधाप्रयुक्तेन वाङ्मयेन तन्मिथुनं नुनाव। संस्कारपूतेन वरेण्यं वरं सुखग्राह्यनिवन्धनेन वधूं नुनाव।

संजी०—द्विधेति ॥ अथ सरस्वती वाग्देवी द्विधा संस्कृतप्राकृतरूपेण द्वैविध्येन प्रयुक्तेनोच्चारितेन वाङ्मयेन शब्दजालेन तन्मिथुनं नुनाव तुष्टाव। 'नु स्तुतौ' इति धातोर्लिट्। केन कमित्येतयाह संस्कारेति ॥ संस्कारेण शास्त्रव्युत्पत्त्या पूतेन प्रकृतिप्रत्ययविभागशुद्धेन संस्कृतेनेत्यर्थः। वरेण्यं वरणीयम्। श्लाघ्यमित्यर्थः। वृणोतेरौणादिक एण्यप्रत्ययः। वरं वोढारं शिवम्। सुखेन ग्राह्यं सुबोधं निबन्धनं रचना यस्य तेन वाङ्मयेन। प्राकृतभाषयेत्यर्थः। वधूम्। नुनावेत्यनेन संबन्धः ॥९०॥

हिन्दी—मूर्तिमती सरस्वती ने संस्कृत तथा प्राकृत, दोनों प्रकार के वाङ्मय से शंकर-पार्वती दोनों वर-वधुओं की स्तुति की। संस्कार से पवित्र संस्कृत वाङ्मय से श्रेष्ठ वर की तथा सुखपूर्वक बोधगम्य निबन्ध स्तुति को रचना वाले प्राकृत वाङ्मय से पार्वती की स्तुति की।

तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम् ।
अपश्यतामप्सरसां मुहूर्तं प्रयोगमाद्यं ललिताङ्गहारम् ॥९१॥

अन्वयः—तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागं ललिताङ्गहारम् आद्यम् अप्सरसां प्रयोगं मुहूर्तम् अपश्यताम्।

संजी०—ताविति ॥ तौ दम्पती संधिषु मुखादिनिर्बहणान्तेषु पञ्चसंधिषु । तदुक्तं दशरूपके—'मुखं प्रतिमुखं गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः' इति । व्यञ्जितवृत्तिभेदं स्फुटीकृतकौशिक्यादिवृत्तिविशेषम् । रसानुगुण्येनेति शेषः । तदुक्तं भूपालेन—'कौशिकी स्यात्तु शृङ्गारे रसे वीरे तु सात्त्वती । रौद्रवीभत्सयोर्वृत्तिर्नियतारभटी पुनः ॥ शृङ्गारादिषु भावज्ञै रसेष्विष्टा तु भारती ॥' तथा । 'कौशिक्यारभटी चैव सात्त्वती भारती तथा । चतस्रो वृत्तयो ज्ञेयास्तासु नाट्यं प्रतिष्ठितम् ॥' इति । रसान्तरेषु शृङ्गारादिरसभेदेषु । 'शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः' इत्यमरः । 'शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः । बीभत्साद्भुतशान्ताख्या रसाः पूर्वैरुदाहृताः' इति । प्रतिबद्धरागं प्रतिनियमेन बद्धः प्रवर्तितो वसन्तललितादिरागो यस्मिंस्तम् । यस्मिन्रसे यो रागो विहितस्तदनुसारेण प्रयुक्तरागमित्यर्थः । यथाह कोहलः—'रौद्रेऽद्भुते तथा वीरे पुंरागेण प्रगीयते । शृङ्गारहास्यकरुणाः स्त्रीरागेण प्रकीर्तिताः ॥ भयानके च बीभत्से शान्ते गेयो नपुंसके ॥' इति । ललिताङ्गहारं मधुराङ्गविक्षेपम् । 'अङ्गहारोऽङ्गविक्षेपः' इत्यमरः । आदौ भवमाद्यम् । रूपकान्तरप्रकृतिभूतमित्यर्थः । तदुक्तम्—'आहुः प्रकरणादीनां नाटकं प्रकृतिं बुधाः' इति । अप्सरसामुर्वश्यादीनाम् । प्रयुज्यत इति प्रयोगो रूपकम् । नाटकमित्यर्थः । आद्यमिति विशेषणात् । तं मुहूर्तमपश्यतां दृष्टवन्तौ । 'पाघ्राध्मास्था–' इत्यादिना दृशेः पश्यादेशः ॥९१॥

हिन्दी—पार्वती और शंकर ने पञ्चसन्धियों में व्यञ्जित वृत्तिभेद वाले शृङ्गारादि रस विषयक राग से युक्त तथा अभिनय पूर्ण अप्सराओं के द्वारा सर्व प्रथम खेले गये नाटक को मुहूर्त्त भर (दो घड़ी) पर्यन्त देखा ।

देवास्तदन्ते हरमूढभार्यं किरीटबद्धाञ्जलयो निपत्य ।
शापावसाने प्रतिपन्नमूर्तेर्ययाचिरे पञ्चशरस्य सेवाम् ॥९२॥

अन्वयः—देवाः तदन्ते ऊढभार्यं हरं किरीटबद्धाञ्जलयः सन्तः निपत्य शापावसाने प्रतिपन्नमूर्त्तेः पञ्चशरस्य सेवां ययाचिरे ।

संजी०—देवा इति ॥ देवा इन्द्रादयस्तदन्ते तस्य प्रयोगदर्शनस्यान्तेऽवसान ऊढभार्यं परिणीतदारं हरं किरीटेषु बद्धा अञ्जलयो येषां ते तथोक्ताः सन्तः । निपत्य प्रणम्य शापावसाने प्रतिपन्नमूर्तेर्लब्धशरीरस्य । 'परिणेष्यति पार्वतीं यदा' (४।४२) इत्यादिना शापस्य पार्वतीपरिणयान्तत्वादित्यर्थः । पञ्चशरस्य कामस्य कर्तुः । सेवां ययाचिरे । पुनः समासादितशरीरस्य तस्य सेवा स्वीक्रियतामिति प्रार्थयामासुरित्यर्थः । 'दुह्याच्पच्–' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् ॥९२॥

हिन्दी—नाटक के अन्त में इन्द्रादि देवताओं ने भार्या से युक्त शंकर को किरीट पर हाथ जोड़ झुककर प्रणाम कर लेने के पश्चात् शाप के अन्त में शरीर धारण का कामदेव को भी अब सेवा का अवसर मिलना चाहिए, ऐसी प्रार्थना की।

तस्यानुमेने भगवान्विमन्युर्व्यापारमात्मन्यपि सायकानाम्।
कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ॥९३॥

अन्वयः—विमन्युः भगवान् आत्मनि अपि तस्य सायकानां व्यापारम् अनुमेने। तथा हि कार्यविद्भिः कालप्रयुक्ता भर्तृषु विज्ञापना सिद्धिम् एति खलु।

संजी०—तस्येति॥ विमन्युर्विगतक्रोधो भगवानीश्वर आत्मन्यपि तस्य कामस्य सायकानां व्यापारमनुमेने। तथाहि—कार्यविद्भिः कार्यज्ञैः। अथवा कालविद्भिः अवसरज्ञैः। काले योग्यावसरे प्रयुक्तानुष्ठिता भर्तृषु स्वामिषु विषये विज्ञापना सिद्धिमेति खलु। सफला भवतीत्यर्थः। अयमेवास्य स्मर-सेवास्वीकारो यदात्मन्यपि तत्सायकव्यापारमङ्गीकृतवानिति ॥९३॥

हिन्दी—विवाह के बाद प्रसन्नचित्त भगवान् सदाशिव ने देवताओं को अपने ऊपर भी कामदेव के द्वारा बाण प्रहार की अनुमति प्रदान कर दी। क्योंकि कार्य-सिद्धि करने की प्रक्रिया में दक्ष सेवकों द्वारा समय पर स्वामी से की गई प्रार्थना निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त कर लेती हैं।

अथ विबुधगणांस्तानिन्दुमौलिर्विसृज्य
क्षितिधरपतिकन्यामाददानः करेण।
कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं
क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात् ॥९४॥

अन्वयः—अथ इन्दुमौलिः तान् विबुधगणान् विसृज्य क्षितिधरपतिकन्यां करेण आददानः सन् कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारम् अगात्।

संजी०—अथेति॥ अथेन्दुमौलिरीश्वरस्तान्विबुधगणान्विसृज्य क्षितिधर-पतिकन्यां पार्वतीं करेणाददानः कनककलशयुक्तं मङ्गलार्थमन्तर्निहितहेममय-पूर्णकुम्भं भक्तयः पुष्पादिरचनास्तासां शोभया सनाथम्। सहितमित्यर्थः। क्षितिविरचितशय्यं क्षितौ स्थण्डिले विरचिता कल्पिता शय्या तल्पं यस्मिं-स्तत्तथोक्तं कौतुकागारमागाच्छय्यागृहं जगाम। अत्राश्वलायनः—'अत ऊर्ध्व-मक्षारालवणाशिनावधःशायिनौ ब्रह्मचारिणौ स्याताम्' इति। अत ऊर्ध्वं विवाहादूर्ध्वम्। आ त्रिरात्रादिति शेषः। 'त्रिरात्रं द्वादशरात्रं वा' इति वच-नात्। तथा कामशास्त्रेऽपि 'अथ परिणयरात्रौ प्रक्रमेणैव किंचित्तिसृषु च रजनीषु स्तब्धभावा दुनोति। त्रिदिनमिह न भिन्द्याद् ब्रह्मचर्यं न चास्या हृदयमननुरुध्य स्वेच्छया नर्म कुर्यात् ॥' इति ॥९४॥

हिन्दी--विवाहोपरान्त शंकर, इन्द्रादि देवताओं को विदा कर अपने हाथ से पार्वती को पकड़कर कनककलश से युक्त भक्तिपूर्वक पुष्पादिकों से सर्वथा सजाये गये तथा पृथ्वी पर विरचित शय्या वाले शयनगृह में ले गये।

नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं
वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचं कथंचि-
त्प्रमथमुखविकारैर्हासयामास गूढम् ॥९५॥

अन्वयः—तत्र ईशः नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्कृता क्षेपं वदनम् अपहरन्तीं शयनसखीभ्यः अपि कथञ्चित् दत्तवाचं गौरीम् प्रमथमुखविकारैः गूढं हासयामास।

संजी०—नवेति ॥ तत्र कौतुकागार ईश ईश्वरो नवपरिणयेन नवोद्वाहेन या लज्जा सा भूषणं यस्यास्तामत एव तेनेश्वरेण कृताक्षेपं कृताकर्षणम्। उन्नमितमिति यावत्। वदनमपहरन्तीं साचीकुर्वन्तीम्। अयं लज्जानुभावः। अनुभावान्तरमाह—शयनसखीभ्योऽपि शयने सहशायिनीभ्योऽपि। नर्मसहचरीभ्योऽपीत्यर्थः। कथंचित्कृच्छ्रेण दत्तवाचं दत्तोत्तरां गौरीं प्रमथा भृङ्गिरिटिप्रभृतयो हास्यरसादिदेवताः पशुपतेः पारिषदाः। यथाह भरतः—'शृङ्गारो विष्णुदैवत्यो हास्यः प्रमथदैवतः' इति। 'प्रमथाः स्युः पारिषदाः' इत्यमरः। तेषां मुखविकारैर्मुखविकृतिचेष्टितैर्गूढमप्रकाशं हासयामास। हासाद्युपायैर्लज्जामपाकर्तुं प्रवृत्त इत्यर्थः। यथाह गोनर्दः—'हासेन मधुना नम्रवचसा लज्जितां प्रियाम्। विलुप्तलज्जां कुर्वीत निपुणैश्च सखीजनैः॥' इति ॥९५॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनी-
समाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महा-
काव्ये उमापरिणयो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

हिन्दी--नवविवाहिता होने से लज्जारूप आभूषण धारण करने वाली, शंकर के द्वारा वस्त्र खींचने पर मुँह चुरा लेने वाली, शयन के विषयमें पूछने वाली, सखियों के प्रश्नों का किसी-किसी प्रकार रुक-रुककर उत्तर देने वाली पार्वती को शंकर ने अपने प्रमथादि गणों से विविध प्रकार की मुखाकृतियाँ बनवा कर चुपके-चुपके हँसाया।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के सप्तम सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

॥ श्रीः ॥

कुमारसंभवम्

संजीविन्या समेतम्



अष्टमः सर्गः ।



शिरसा शकलं शशाङ्कमूर्तेर्भसितं बिभ्रतमङ्गकेन भूरि ।
गरलं च गलेन चिन्तयामो हरमर्धाङ्गहराद्रिराजकन्यम् ॥

टीका सप्तसु मल्लिनाथकृतिना संजीविनीसंज्ञिका
या सर्गेषु कुमारसंभवमहाकाव्यस्य चक्रे पुरा ।
सैवैतद्व्यवशिष्टदिक्प्रमिततत्सर्गेषु विद्वन्मुदे
सीतारामकवीश्वरेण हि यथाप्रज्ञं समापूर्यते ॥

नवपरिणीतगिरिजारहःकेलिमपि विवर्णयिषुस्तत्रभवान्कालिदासोऽष्टमं सर्गमारभते—

पाणिपीडनविधेरनन्तरं शैलराजदुहितुर्हरं प्रति ।
भावसाध्वसपरिग्रहादभूत्कामदोहदमनोहरं वपुः ॥ १ ॥

अन्वयः—पाणिनिपीडनविधेः अनन्तरं भावसाध्वसपरिग्रहात् शैलराजदुहितुः वपुः हरं प्रति कामदोहदमनोहरम् अभूत् ।

संजी०—पाणिपीडनविधेरिति ॥ पाणिपीडनं नाम षोडशविधेषु संस्कारेषु कश्चित्संस्कारविशेषः । पीडयति यस्मिन्निति पीडनम् । 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट् । पाणेः करतलस्य पीडनं ग्रहणम् । विवाह इत्यर्थः । पाणेरिति कृद्योगलक्षणा कर्मणि षष्ठी । तस्य विधेर्विधानात् । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः । अनन्तरं पश्चात् । भावसाध्वसयोः कामेच्छातिभययोः परिग्रहात् । परिग्रहं ग्रहणं कृत्वेत्यर्थः । ल्यब्लोपे पञ्चमी । मुग्धत्वादुभे अप्यवलम्ब्येति भावः । 'भावः स्वभावेऽभिप्राये चेच्छासत्तात्मजन्मसु' इति विश्वः ।

स्थिताया इति शेषः। इयं च मुग्धाभेदो नवोढा। तदुक्तं भानुमिश्रैः--'लज्जाभयपराधीनरतिर्नवोढा' इति। शैलराजस्य हिमालयस्य दुहितुः कन्यायाः पार्वत्याः वपुरङ्गम्। हरं शिवं प्रति। लक्षयित्वेत्यर्थः।'लक्षणेत्थं-' इति प्रतेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। तद्योगे 'कर्मप्रवचनीययुक्ते' इति द्वितीया। कामे यद्दोहदमभिलाषः। इच्छेति यावत्। 'अथ दोहदम्। इच्छा काङ्क्षा' इत्यमरः। कामविषयकोऽभिलाष इत्यर्थः। तेन निमित्तेन मनोहरं रुचिरमभूत्। अतिमनोहराण्यपि कामिनीवपूंषि स्वकामेच्छयैव रोचकानि भवन्तीति भावः। सर्गेऽस्मिन् रथोद्धतावृत्तम्। 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति लक्षणात्। रसश्च प्रायः संभोगश्रृंगार एव ॥१॥

हिन्दी—विवाह की क्रिया पूरी होने के पश्चात् कामेच्छा एवं मुग्धा होने से काम की जानकारी न होने से उत्पन्न अति भय के ग्रहण के कारण पार्वती का शरीर शिव जी को लक्षित कर काम विषयक अभिलाषा से अत्यन्त लावण्ययुक्त हो गया ॥१॥

विमर्श--नववधू पार्वती तथा शिव की रतिलीला का वर्णन करने की कामना से कविकुलगुरु कालिदास ने इस सर्ग की रचना की है। जिसमें प्रायः सर्वत्र संभोग श्रृङ्गार का रस लबालब भरा हुआ है। इस सर्ग में रथोद्धता छन्द है। अत्यन्त मनोहर भी कामिनियों का शरीर अपने में उठी हुई तीव्र कामवासना से पति के लिये अत्यन्त रुचिकर बन जाता है।

इदानीं लक्षणरीत्या नवोढात्वमेव दशभिः प्रपञ्चयति—

व्याहृता प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका।
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥२॥

अन्वयः—सा व्याहृता (सती) प्रतिवचः न संदधे। अवलम्बितांशुका गन्तुम् ऐच्छत्। पराङ्मुखी (सती) शयनं सेवते तथापि पिनाकिनः रतये (बभूव)।

संजी०--व्याहृतेत्यादि ॥ सा पार्वती व्याहृता प्रियेण पृष्टा सती प्रतिवचः प्रत्युत्तरं न संदधे। न दत्तवतीत्यर्थः। तथावलम्बितं करेण धृतमंशुकं वस्त्रं यस्यास्तथोक्ता सती गन्तुमैच्छत्। तथा पराङ्मुखी परिवर्तितवदना सती शयनं पर्यङ्कं सेवते स्म सिषेवे। तथापि तस्यां प्रतिकूलवर्तिन्यामपि सत्यां पिनाकिनो हरस्य रतये प्रमोदाय बभूव। प्रियायाः प्रतिकूलव्यापारैरपि प्रियः प्रसन्न एवाभूदित्यर्थः। तस्य मुग्धास्वभावावबोधकुशलत्वादिति भावः ॥२॥

हिन्दी—यद्यपि शङ्कर जी के द्वारा कुछ पूछे जाने पर पार्वती जी उसका उत्तर नहीं देती थीं। उनके द्वारा वस्त्राञ्चल पकड़ लेने पर वहाँ से हटना चाहती थीं। किं बहुना सोने के समय शय्या पर अपना मुँह फेर कर सोती थीं। फिर भी शङ्कर जी का रतिभाव पार्वती की इस प्रतिकूलता में और भी बढ़ता जा रहा था।

विमर्श—मुग्धाभाव के विशेषज्ञ होने के कारण प्रियतमा का प्रतिकूल व्यापार भी प्रिय की प्रसन्नता का कारण बन जाता है।

कैतवेन शयिते कुतूहलात्पार्वती प्रति मुखं निपातितम्।
चक्षुरुन्मिषति सस्मितं प्रिये विद्युताहतमिव न्यमीलयत्॥३॥

अन्वयः—पार्वती प्रिये कुतुहलात् कैतवेन शयिते मुखं प्रतिनिपातितम्। चक्षुः सस्मितम् (यथा स्यात्तथा) उन्मिषति विद्युता आहतम् इव न्यमीलयत्।

संजी०—कैतवेनेति॥ पार्वती कर्त्री। प्रिये हरे कुतूहलात्कैतवेन मिथ्यैव शयिते सुप्ते सति। किमियं कुर्यादित्यभिप्रायेणेति भावः। मुखं प्रेयोमुखं प्रति लक्ष्यीकृत्य निपातितं निक्षिप्तम्। किमयं स्वपिति जागर्ति वेत्यभिप्रायादिति भावः। चक्षुः स्वनेत्रं कर्म। अथ च प्रिया इत्याकाङ्क्षावशात्पुनरपि संबध्यते। सस्मितं समन्दहासं यथा स्यात्तथोन्मिषत्युज्जाग्रति सति विद्युताहत मिव प्रतिहतमिवेत्युत्प्रेक्षा। न्यमीलयत्। मुद्रयति स्मेत्यर्थः॥३॥

हिन्दी—पार्वती जी की एकान्त चेष्टाओं को जानने की इच्छा से जब शङ्कर जी नींद के बहाने शय्या पर सो जाते थे तो उस समय पार्वती उनके मुँह की ओर एकटक लगाकर अपने नेत्रों से देखने लगती थीं। फिर ज्यों ही वे मुस्कराते हुये अपनी आँखें खोलते उसी समय पार्वती अपनी आँखें सहसा इस प्रकार बन्द कर लेती थीं जैसे बिजली की चकाचौंध से अपने आप आँखें बन्द हो जाती हैं।

नाभिदेशनिहितः सकम्पया शंकरस्य रुरुधे तया करः।
तद्दुकूलमथ चाभवत्स्वयं दूरमुच्छ्वसितनीविबन्धनम्॥४॥

अन्वयः—नाभिदेशनिहितः शंकरस्य करः तया सकम्पया रुरुधे अथ च तदनुकूलम् स्वयं दूरं उच्छ्वसितनीविबन्धनम् अभवत्।

संजी०—नाभिदेश इति॥ नाभिदेशे निहितः स्थापितः। नीवीमोचनार्थमिति भावः। शंकरस्य करस्तया पार्वत्या सकम्पया सत्या रुरुधे प्रतिरुद्धः। कर्मणि लिट्। अथ च तद्दुकूलं तस्यादुकूलं वस्त्रं कर्तृ। स्वयमात्मना।

नतु प्रेरकनियोगात् दूरमतिशयितमुच्छ्वसितमुद्घाटितं नीव्या बन्धनं यस्य तथोक्तमभवत् । सात्त्विकभावादिति भावः ॥४॥

हिन्दी—जब नीवीबन्ध (साडी की गाँठ) खोलने की इच्छा से शङ्कर जी अपना हाथ पार्वती के नाभिस्थल पर ले जाने लगते तभी पार्वती सकम्प हो उठती थीं और उनका हाथ रोक लेती थीं। किन्तु पता नहीं किस प्रकार वह नीवीबन्ध शङ्कर जी के अनुकूल होकर अपने आप ढीला पड़ने लग जाता था।

एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति ।
सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ॥५॥

अन्वयः—सा (पार्वती) आलि ! रहसि निगृहीतसाध्वसम् शंकरः सेव्यताम् इति सखीभिः उपदिष्टम्, प्रियेप्रमुखवर्त्तिनि (सति) व्याकुला न अस्मरत् ।

संजी०—एवमिति ॥ सा पार्वती कर्त्री । हे आलि हे सखि पार्वति, त्वया रहसि निगृहीतं त्यक्तं साध्वसं भयं यस्मिन्कर्मणि तथा यथा शंकरः सेव्यतामित्येवंभूतं सखीभिः कर्त्रीभिः । 'न लोक-' इति षष्ठीनिषेधः । उपदिष्टमुपदेशम् । भावे निष्ठा । प्रिये प्रमुखवर्तिनि सत्याकुला संभ्रान्ता सती नास्मरत् ॥५॥

हिन्दी—यद्यपि सखियाँ पार्वती जी को उपदेश दिया करती थीं कि हे सखि: तुम एकान्त में बिना किसी हिचक के शंकर की सेवा करना। किन्तु ज्यों ही शंकर जी उनके सामने आ जाते थे उसी समय वे व्याकुल हो जाती थीं और उन्हें सखियों का वह उपदेश भी भूल जाया करता था।

अप्यवस्तुनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम् ।
वीक्षितेन परिवीक्ष्य पार्वती मूर्धकम्पमयमुत्तरं ददौ ॥६॥

अन्वयः—पार्वती अनङ्गशासनम्, कथाप्रवृत्तये अवस्तुनि अपि प्रश्नतत्परं परिवीक्ष्य वीक्षितेन मूर्धकम्पमयं उत्तरम् ददौ ।

संजी०—अपीति ॥ पार्वत्यनङ्गशासनं प्रियं कथायां संभाषणे प्रवृत्तये । लज्जावशान्मां प्रति मौनमाश्रिताया अस्याः संभाषणे कथमपि प्रवृत्त्यर्थमित्यर्थः । अवस्तुन्यप्यलभ्यपदार्थेऽपि प्रश्नतत्परं परिवीक्ष्य ज्ञात्वा । हृच्चक्षुषावेक्षणमिहापेक्षितम् । वीक्षितेन प्रियसंमुखमवलोकनेन मूर्ध्नः कम्पस्तन्मयं तद्रूपम् । नहि किंचिन्मयापेक्षितमित्यभिलाषव्यञ्जकमिति भावः उत्तरं ददौ ॥६॥

हिन्दी—शंकर जी जब पार्वती का मौन तोड़वाने के लिये एवं उन्हें बातों में अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये जब कभी अलभ्य वस्तुओं के विषय में प्रश्न

करते थे तो उन्हे ऐसा करते देख वह मुँह से कुछ न बोला अपनी टेढी चितवन से उनकी ओर मात्र शिर हिला कर, नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिये — ऐसा व्यक्त कर मानो उसका उत्तर दे दिया करती थीं।

शूलिनः करतलद्वये सा संनिरुध्यन नयने हृतांशुका।
तस्य पश्यति ललाटलोचने मोघयत्नविधुरा रहस्यभूत् ॥७॥

अन्वय--रहसि हृतांशुका करतलद्वयेन शूलिनः नयने संनिरुध्य सा (पार्वती) तस्य ललाटलोचने पश्यति (सति) मोघयत्नविधुरा अभूत्।

संजी०--शूलिन इति ॥ रहसि हृतांशुका। रतार्थमिति भावः। अतएव करतलयोर्द्वयेन शूलिनः प्रियस्य नयने। द्वे इति शेषः। संनिरुध्यावृत्यं स्थिता पार्वती। तस्य ललाटलोचने तृतीये नेत्रे पश्यति सति। मोघो निष्फलो यतो यस्या अतएव विधुरा दुःखिता। ततो विशेषणसमासः। अभूत् ॥७॥

हिन्दी--शंकर जी जब कभी सुरतारम्भ में पार्वती को विवस्त्र कर देते थे तो वह अपनी दोनों हथेलियों से उनकी आँखों पर परदा डाल देती थीं, किन्तु जब वे उसी समय अपनी ललाटस्थ तीसरी आँखें खोल देते थे तो वे अपने प्रयत्न में विफल होकर विवश हो जाती थीं।

चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं खिन्नहस्तसदयोपगूहनम्।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ॥८॥

अन्वय—चुम्बनेषु अधरदानवर्जितम्, खिन्नहस्तसदयोपगूहनं (अपि) क्लिष्टमन्मथम्, (अपि) दुर्लभप्रतिकृतम्, वधूरतं प्रभोः प्रियम् अभूत्।

संजी०—चुम्बनेष्विति ॥ चुम्बनेष्वधरदानेनाधरोष्ठखण्डनेन। 'दो अवखण्डने'। भावे ल्युट्। वर्जितं रहितमपि यथा स्विन्नहस्तं मन्दप्रचारितकरम्। स्तनयोरिति शेषः। गम्यमानार्थत्वादप्रयोगः। 'पाणिः' इति पाठे भिन्नं पदम्। तदा खिन्नपाण्यपीति योजनीयम्। सदयमगाढं यदुपगूहनमालिङ्गनं तद्यस्मिंस्तादृशमपि। अतएव क्लिष्टः परितोषाभावात्खिन्नो मन्मथः कामो यस्मिंस्तत्तथोक्तमपि। तथा दुर्लभं प्रतिकृतं प्रतीकारो यस्य। रसाभासभियेति भावः। प्रतिकृतमिति भावे निष्ठा। तथोक्तमपि वधूरतं प्रियासुरतं प्रभोः प्रियस्य प्रियं प्रीतिजनकम्। 'इगुपध-' इति कः। अभूदिति शेषः ॥८॥

हिन्दी—जब शंकर जी चुम्बन लेना चाहते थे तब पार्वती अपना अधर ही नहीं देती थीं, जब वे गाढ़ आलिङ्गन करना चाहते थे, तब वे स्तनों पर हाथ

रखकर उनके आलिंगन को प्रगाढ़ नहीं होने देती थीं। इस प्रकार परितोष के अभाव में यद्यपि शंकर जी की इच्छा पूर्ण नहीं होती थी, कि बहुना उसका प्रतीकार करने में भी वे समर्थं नहीं थे, तथापि इस प्रकार संभोग के कष्टसाध्य होने पर भी वे अपनी प्रियतमा के व्यवहारों से प्रसन्न ही रहते थे।

यन्मुखग्रहणमक्षताधरं दानमव्रणपदं नखस्य यत्।
यद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत् ॥९॥

अन्वय—पार्वती प्रियस्य अक्षताधरं यत् मुखग्रहणम् अव्रणपदं यत् नखस्य दानं सदयं यच्च रतम् तद् विषहते स्म इतरत् न विषहते स्म।

संजी०—यदिति ॥ पार्वती प्रियस्य प्रियकर्तृकम्। 'कर्तृकर्मणोः–' इति कर्तरि षष्ठी। अक्षताधरमदष्टाधरोष्ठं यन्मुखस्य ग्रहणं चुम्बनार्थं करेणादानम्। तथाऽव्रणपदमदत्तचिह्नं यन्नखस्य दानम्। इह कर्मणः शेषत्वविवक्षायां षष्ठी। अन्यथा 'नलोक–' इति तन्निषेधः प्रसज्जेत। तथा सदयं स्पर्शमात्रविरामं यच्चरतम्। मध्यान्तयोस्तृतीयान्तेन संबन्धः। 'नलोक–' इति कृद्योगलक्षणायाः षष्ठ्या बाधात्। तद्विषहते स्म सोढवती। 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट्। परिनिविभ्यः' इति षत्वम्। इतरत्कठोरमुखग्रहणादि न विषहते स्मेत्यर्थः ॥९॥

हिन्दी—रतिकाल में शंकर जी द्वारा अक्षत अधरयुक्त मुखग्रहण स्तनों पर व्रणरहित नखक्षत्त एवम् दयापूर्वक की गई उनकी रतिक्रीडा को पार्वती चुपचाप सहन कर लेती थीं, पर इसके विपरीत चुम्बन में क्षत अधर स्तन पर व्रणयुक्त (नख क्षत तथा निर्दय रति) क्रिया में घबरा उठती थीं।

रात्रिवृत्तमनुयोक्तुमुद्यतं सा प्रभातसमये सखीजनम्।
नाकरोदपकुतूहलं ह्रिया शंसितुं तु हृदयेन तत्वरे ॥१०॥

अन्वय—प्रभातसमये रात्रिवृत्तम् अनुयोक्तुम् उद्यतम् सखीजनं सा ह्रिया अपकुतूहलं न अकरोत् हृदयेनरत शंसितुं तत्वरे।

संजी०—रात्रिवृत्तमिति ॥ प्रभातसमये रात्रिवृत्तं नैशं वृत्तान्तम्। 'वाच्यवद्वर्तने वृत्तं चरित्रच्छन्दसोरपि' इति विश्वः। अनुयोक्तुं प्रष्टुम्। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः। उद्यतं सखीजनं सा पार्वती ह्रिया हेतुभूतयाऽपकुतूहलं शमितजिज्ञासाकौतुकं नाकरोत्। नोत्तरयांचक्र इत्यर्थः अथ च हृदयेन मनसा तु कर्तृणा शंसितुमुत्तरं कर्तुं तत्वरे त्वरितम्। भावे लिट् ॥१०॥

हिन्दी—प्रातःकाल में रात्रि का वृत्तान्त जानने की इच्छा से जब सखियाँ उनसे पूछने लगतीं तो वे लज्जा के मारे कुछ न कह सकने के कारण उनका कुतूहल मिटाने में असमर्थ हो जाती थी, फिर भी हृदय से कहने के लिये तो अपनी त्वरा प्रदर्शित कर ही देती थीं।

दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः।
प्रेक्ष्य बिम्बमुपबिम्बमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया ॥११॥

अन्वयः—च दर्पणे परिभोगदर्शिनी, पृष्ठतः निषेदुषः प्रणयिनः बिम्बम् आत्मनः उपबिम्बं प्रेक्ष्य लज्जया कानि कानि न चकार।

संजी०—दर्पण इति ॥ किंचेति चार्थः। दर्पणे परिभोगदर्शिनी संभोगचिह्नावलोकिनी सा पार्वती। पृष्ठतो निषेदुषः स्थितवतः प्रणयिनो हरस्य बिम्ब मुखमण्डलम्। 'बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु' इत्यमरः। आत्मन उपबिम्बं बिम्बसमीपे। 'अव्ययं विभक्ति-' इति समीपार्थेऽव्ययीभावः। पतितं प्रेक्ष्य लज्जया कानि-कानि चेष्टाविशेषचमत्कृतानि न चकार। अपि तु सर्वाणि चकारैवेत्यर्थः ॥११॥

हिन्दी—जब कभी पार्वती दर्पण में प्रिय द्वारा किये गये संभोग-चिह्नों (दन्तक्षत, नखक्षत) को देखने लगतीं उसी समय चुपके से पीछे आकर खड़े हो जाने वाले शंकर के भी विम्ब (छाया) को दर्पण में पड़े अपने प्रतिबिम्ब (छाया) के समीप देख वे लज्जा से पानी पानी हो जाती थीं और कौन कौन सी चमत्कृतियुक्त चेष्टा नहीं करने लगती थीं।

नीलकण्ठपरिभुक्तयौवनां तां विलोक्य जननी समाश्वसत्।
भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातुरस्यति शुचं वधूजनः ॥१२॥

अन्वयः—जननी ताम् नीलकण्ठपरिभुक्तयौवनं विलोक्य समाश्वसत्। हि वधूजनः मातुः मानसीं शुचं भर्तृवल्लभतया अस्यति।

संजी०—नीलकण्ठेति ॥ जननी मेना। तां पार्वतीं नीलकण्ठेन शिवेन परिभुक्तं यौवनं यस्यास्तथोक्तां विलोक्य समाश्वसदाश्वासं प्राप। हृष्टवतीति यावत्। तथाहि। वधूजनो मातुर्मानसीं मनसिजां शुचं शोकं भर्तृवल्लभतया भर्तृप्रीतिपात्रतयास्यति क्षिपति। 'असु क्षेपणे' लट्। आत्मजासु पतिप्रसाद एव मातॄणां मुदो हेतुरिति भावः ॥१२॥

हिन्दी—पार्वती जी की माता मेना अपनी कन्या की यौवनावस्था को शंकर जी के द्वारा भोगा जाता देख कर अत्यन्त आश्वस्त हो गईं। क्योंकि कन्या वधू

बनने के बाद पति की प्रियता प्राप्त करके ही अपनी माता के मानसिक दुःख को दूर करने में समर्थ होती है।

विमर्श—कन्याओं में उनके पति की प्रसन्नता से ही माता का दुःख दूर होता है।

वासराणि कतिचित्कथंचन स्थाणुना रतमकारि चानया।
ज्ञातमन्मथरसा शनैः शनैः सा मुमोच रतिदुःखशीलताम् ॥१३॥

अन्वयः—कानिचिद् वासराणि स्थाणुना अनया कथंचन रतम् अकारि। च सा शनैः शनैः ज्ञातमन्मथरसा रतिदुःखशीलतां मुमोच।

संजी०—वासराणीति ॥ कतिचिद्वासराणि दिवसान्। 'वा तु क्लीबे दिवसवासरौ' इत्यमरः। 'कालाध्वनोः–' इति द्वितीया। स्थाणुना शिवेन। 'स्थाणू रुद्र उमापतिः' इत्यमरः। अनया पार्वत्या सह कथंचन बलेन रतं सुरतमकारि कृतम्। तदनुकूलरसोत्पत्त्यभावादिति भावः। अथ च सा शनैः शनैर्ज्ञातो मन्मथरसो यथा तथा सती रतौ या दुःखशीलता दुरवगाह्यस्वभावता तां मुमोच। स्वयमप्यनुरज्यति स्मेत्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी—इस प्रकार कुछ दिनों तक तो शङ्कर जी ने पार्वती के साथ ज्यों-त्यों कर बलात्कारपूर्वक संभोग सुख का आनन्द लिया। किन्तु धीरे-धीरे जब उन्हें भी रतिरस का सुख प्राप्त होने लगा तो उन्होंने रतिक्रीड़ा में होने वाले दुःख के अनुभव का परित्याग कर दिया।

तदेवाह—

सस्वजे प्रियमुरोनिपीडनं प्रार्थितं मुखमनेन नाहरत्।
मेखलाप्रणयलोलतां गतं हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा ॥१४॥

अन्वयः—सा पार्वती उरोनिपीडनं (यथा स्यात्तथा) प्रियं सस्वजे। अनेन प्रार्थितं मुखं न अहरत्। मेखलाप्रणयलोलताम् गतम् अस्य हस्तम् शिथिलं रुरोध।

संजी०—सस्वज इति ॥ सा पार्वती। उरसो निपीडनं यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा प्रियं सस्वज अलिङ्गितवती। तथानेन प्रियेण प्रार्थितम्। चुम्बनार्थमित्यर्थः। मुखं नाहरन्नावक्रयत्। परंतु मेखलया काञ्च्या सह यः प्रणयः स्नेहस्तत्र या लोलता। जिघृक्षया मन्दप्रसरणमित्यर्थः। तां गतं प्राप्तमस्य प्रियस्य हस्तं पाणिं शिथिलं मन्दं यथा तथा रुरोध। न तु प्रागिवेति भावः ॥ १४ ॥

हिन्दी—रतिसुख का रस मिलने पर अब वह पार्वती स्वयं ही अपने स्तनों से शिव का प्रगाढ़ आलिङ्गन करने लगीं। चुम्बनोत्सुक शङ्कर जी को देख अपना मुख पराङ्मुख नहीं करतीं। मेखला हटाने के लिये चञ्चल उनके हाथों को केवल दिखावे के लिये शिथिल हाथों से रोकने का प्रयत्न करती दिखाई देती थीं।

भावसूचितमदृष्टविप्रियं दार्ढ्यभाक्क्षणवियोगकातरम् ।
कैश्चिदेव दिवसैस्तथा तयोः प्रेम गूढमितरेतराश्रयम् ॥१५॥

अन्वयः—भावसूचितम् अदृष्टविप्रियं तथा दार्ढ्यभाक्क्षणवियोगकातरम् गूढं तयोः प्रेम कैश्चित् एव दिवसैः इतरेतराश्रयम् (अभूत्) ।

संजी०—भावेति ॥ भावेन स्वगतत्वाभिव्यञ्जकचेष्टाविशेषेण सूचितं ज्ञापितम् । 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इति मेदिनी । तथा न दृष्टं विप्रियमौदासीन्यं यत्र । तथा दार्ढ्यं दृढत्वं भजति तथोक्तम् । तथा क्षणवियोगेऽपि कातरम् । तदसहिष्णिवत्यर्थः । गूढं सखीजनानभिज्ञेयं तयोः शिवपार्वत्योः प्रेम स्नेहः । 'प्रेम स्नेहोऽथ दोहदम्' इत्यमरः । कैश्चिदेव दिवसैरितरेतराश्रयं परस्परनिष्ठम् । अभूदिति शेषः ॥ १५ ॥

हिन्दी—कुछ ही दिनों में स्वगत भाव की अभिव्यञ्जना करता हुआ, उदासीनता से रहित, अतएव दृढ़ता को प्राप्त हुआ क्षणमात्र के वियोग से अनमना हो जाने वाला उन दोनों का प्रगाढ़ स्नेह हो गया कि एक दूसरे के बिना छटपटाने लगते थे ।

प्रेम्णः परस्पराश्रयत्वमेव प्रपञ्चयति—

तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम् ।
सागरादनपगा हि जाह्नवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक् ॥१६॥

अन्वयः—वधूः आत्मसदृशम् तं वरं अनु यथा अरज्यत । वरः (अपि) तां तथैव (अरज्यत) हि (यथा) जाह्नवी सागरात् अनपगा (अस्ति) सः अपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक् (अस्ति) ।

संजी०—तमिति ॥ वधूः पार्वती । आत्मसदृशं तं वरं शिवमनु लक्षयित्वा यथा येन प्रकारेणारज्यत । 'रञ्ज रागे' दैवादिकाल्लङ् । वरः शिवस्तां वधूमनु तथैवारज्यत । हि यथा जाह्नवी सागरात्समुद्रादनपगाऽनिवर्तमाना । अस्तीति शेषः । सोऽपि समुद्रोऽपि तस्या जाह्नव्या मुखसंबन्धिनी रस एकां केवलां वृत्तिं भजतीति तथोक्तः । अस्तीति शेषः । उपमालंकारः ॥ १६ ॥

हिन्दी—नववधू पार्वती, अपने सर्वथा अनुकूल उस प्रियतम के अनुराग में, जैसे-जैसे घुलमिलकर अनुरक्त हो रही थीं, सदाशिव भी वैसे-वैसे उनमें अनुराग करते दिखाई देने लगे । जिस प्रकार श्रीगङ्गा जी समुद्र में मिलकर वहाँ से लौटने का नाम नहीं लेती और समुद्र भी उनके मुख-रस (मुँहाने का पानी) को अपना जीवन बना लेता है ।

शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः शंकरस्य रहसि प्रपन्नया ।
शिक्षितं युवतिनैपुणं तया यत्तदेव गुरुदक्षिणीकृतम् ॥१७॥

अन्वयः—निधुवनोपदेशिनः शंकरस्य शिष्यतां प्रपन्नया तया रहसि यत् युवतिनैपुणं शिक्षितम् तत् एव गुरुदक्षिणीकृतम् ।

संजी०—शिष्यतामिति ॥ निधुवनोपदेशिनः सुरतोपदेष्टुः शंकरस्य शिष्यतामुपदेश्यतां प्रपन्नया प्राप्तया तया पार्वत्या रहसि यद्युवतिषु त्रिजगद्विलासिनीषु मध्ये नैपुणं कौशलं शिक्षितमधीतम् । तदेव नैपुणशिक्षणमेव गुरुदक्षिणीकृतं गुरोरदक्षिणा दक्षिणा यथा संपद्यते तथा कृतम् । अभूततद्भावे च्विः । 'अस्य च्वौ' इतीकारः । शिवोपयोगित्वेन तत्कृतसुरतारम्भानुगुणसुरतकौशलमेव दक्षिणात्वेन परिणतमिति भावः । इह वाक्यार्थवृत्तिनिदर्शनालंकारः—'वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना' इत्युक्तत्वात् ॥ १७ ॥

हिन्दी—पार्वती जी ने एकान्त में रतिकला की शिक्षा देने वाले उन शिव जी से शिष्यता प्राप्त कर युवतिजनोचित जो दक्षता प्राप्त की थी, संभोग काल में उन सबका व्यवहार करके मानो उन्होंने गुरुदक्षिणा के रूप में वह सब समर्पित कर चुकता कर दिया ।

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुतहस्तपल्लवा ।
शीतलेन निरवापयत्क्षणं मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः ॥१८॥

अन्वयः—अम्बिका दष्टमुक्तम् अधरोष्ठम् वेदनाविधुतहस्तपल्लवा शीतलेन शूलिनः मौलिचन्द्रशकलेन क्षणं निरवापयत् ।

संजी०—दष्टमुक्तमिति ॥ अम्बिका पार्वती पूर्वं दष्टं पश्चान्मुक्तमधरोष्ठं वेदनया पीडया विधुतौ कम्पितौ हस्तौ पाणी एव पल्लवौ यथा तथोक्ता सती शीतलेन शूलिनः शिवस्य मौलौ यच्चन्द्रस्य शकलं कलारूपं तेन कृत्वा क्षणं निरवापयत् । सुखयति स्मेत्यर्थः ॥ १८ ॥

हिन्दी—जब कभी शंकर जी चुम्बन लेते समय पार्वती के होंठों को काट लेते तो वह पीड़ा के कारण अपने हाथों को झटकती हुई उनके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा के ऊपर अपने होंठों को रखकर उसकी शीतलता से अपनी सारी वेदना दूर कर लेती थीं ।

प्रियानुरागव्यञ्जकचेष्टामाह—

चुम्बनादलकचूर्णदूषितं शंकरोऽपि नयनं ललाटजम् ।
उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने ॥१९॥

अन्वयः--चुम्बनात् अलकचूर्णदूषितं ललाटजं नयनम् उच्छ्वसत् कमलगन्धये पार्वतीवदनगन्धवाहिने ददौ ।

संजी०—चुम्बनादिति ॥ चुम्बनाद्धेतोरलकचूर्णेन केशप्रसाधनचूर्णविशेषेण दूषितमवरुद्धं ललाटजं ललाटे जातम् । 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डप्रत्ययः । अलुको वैभाषिकत्वान्नालुक् । नयनं नेत्रम् । उच्छ्वसत्कमलगन्धये विकसत्कमलसुगन्धये । पद्मिनीत्वादिति भावः । 'उपमानाच्च' इतीकारः । 'गन्धो गन्धक आमोदे' इति विश्वः । पार्वत्या वदनमेव गन्धवाही पवनस्तस्मै । 'गन्धवाहानिलाशुगाः' इति कोशनिर्दिष्टगन्धवाहशब्दस्य गन्धं वहतीति योगालम्बनेन गन्धवाहिशब्देनापि वायुत्वप्रतीतिः । रूढचालम्बने त्वण्प्रत्ययान्तस्यैव पवनत्वप्रतीतौ शक्तिमत्त्वादवाचकपददोषप्रसङ्ग इति बोध्यम् । ददौ । तत्राधो रजो निवर्तयितुं स्थापितवानित्यर्थः ॥ १९ ॥

हिन्दी--इधर चुम्बन लेते समय पार्वती के बालों में लगा हुआ सुगन्धयुक्त द्रव्य का चूर्ण झड़कर शङ्कर जी के ललाटस्थ नेत्रों को जब पीड़ित कर देता था तो वे भी फूंक से उसे दूर करने के लिये फूले हुए कमल के गन्ध से युक्त पार्वती के मुख कमल पर उसे रख देते, जिससे निकली वायु के द्वारा आंखों में गिरा हुआ कण दूर हो जाता और उनकी वेदना शान्त हो जाती थी ।

एवमिन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनादनुगृहीतमन्मथः ।
शैलराजभवने सहोमया मासमात्रमवसद् वृषध्वजः ॥२०॥

अन्वयः—एवम् इन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनात् अनुगृहीतमन्मथः वृषध्वजः शैलराजभवने उमया सह मासमात्रम् अवसत् ।

संजी०--एवमिति ॥ एवमिन्द्रियाणि सुखयतीतीन्द्रियसुखः । सुखशब्दात्करोत्यर्थकणिजन्तात्पचाद्यच् । णिज्लोपश्च । तस्य वर्त्मनः सेवनादाचरणाद्धेतोरनुगृहीतः प्रसादितो मन्मथो येन । स्ववपुर्योजनादिति भावः । अत्र 'परिणेष्यति पार्वतीं' यदा वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति' (४।४२) इति चतुर्थसर्गोक्तमनुसंधेयम् । तथोक्तो वृषध्वजो हरः शैलराजभवने हिमालयगृह उभया पार्वत्या सह मासमात्रं त्रिंशद्दिनात्मकः कालो मासस्तमेवावसत् । 'कालाध्वनोः-' इति द्वितीया । 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' इत्यमरः ॥२०॥

हिन्दी—इस प्रकार इन्द्रियों के सुख के मार्ग का सेवन करते रहने से शंकर जी ने मानो कामदेव को भी कृतकृत्य कर दिया और वे पार्वती के साथ हिमालय के घर में मात्र एक महीने तक ही रहे ।

सोऽनुमान्य हिमवन्तमात्मभूरात्मजाविरहदुःखखेदितम् ।
तत्र तत्र विजहार संपतन्नप्रमेयगतिना ककुद्मता ॥२१॥

अन्वयः—सः आत्मभूः आत्मजाविरहदुःखखेदितं हिमवन्तम् अनुमान्य अप्रमेयगतिना ककुद्मता तत्र तत्र संपतन् विजहार।

संजी०—स इति ॥ स आत्मभूः शिवः। आत्मजायाः पार्वत्या विरहदुःखेन खेदितं हिमवन्तमनुमान्य तत आज्ञां गृहीत्वा। अप्रमेयवत्स्वेव स्थानेषु वर्तत इत्यपरिच्छेद्या गतिर्गमनव्यापारो यस्य तथाभूतेन ककुद्मता नन्दिना तत्र तत्र पर्वते संपतन्संचरमाणे विजहार विहारं कृतवान्। इह 'संचरन्' इति पाठोऽसाधुः। 'समस्तृतीयायुक्तात्' इति नित्यमात्मनेपदनियमाच्छतुर्दौर्लभ्यात्। अनन्तमार्गपदं शेषयित्वा सकर्मकत्वादप्रसङ्ग इति केचित्समर्थयन्ते ॥ २१ ॥

हिन्दी—इसके बाद अपनी कन्या की विदाई के विरहदुःख से दुःखी हिमालय की आज्ञा ले वे अप्रतिहत गतिवाले नन्दी पर सवार हो इधर-उधर घूमते-फिरते जहाँ-तहाँ पार्वती के साथ विहार करने लगे।

मेरुमेत्य मरुदाशुगोक्षकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतान्कृती।
हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरानन्वभूत् सुरतमर्दनक्षमान् ॥२२॥

अन्वयः—मरुदाशुगोक्षकः कृती मेरुम् एत्य पार्वतीस्तनपुरस्कृतान् सुरतमर्दनक्षमान् हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरान् अन्वभूत्।

संजी०—मेरुमिति ॥ मरुदिवाशु गच्छतीति मरुदाशुग उक्षा वृषभो यस्य सः। 'शेषाद्विभाषा' इति कप्। कृती कुशलो हरः। मेरुं सुमेरुम्। 'मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रिः' इत्यमरः। एत्यागत्य पार्वत्याः स्तनाभ्यां पुरस्कृतान् पूजितानाश्रयत्वेन स्वीकारात्। अल्पीयसां महत्स्वीकार एव पूजात्वेन परिणमतीति भावः। महतामल्पीयःस्वीकारे को हेतुरित्याशङ्क्य विशेषयति—सुरतेषु यानि मर्दनानि तेषु क्षमान्सहिष्णून्। हेम्नः पल्लवानां विभङ्गाः खण्डास्तेषां संस्तरानास्तरणान्यन्वभूत्। तत्र सुप्त्वा विजहारेत्यर्थः। अल्पीयसामपि सहिष्णुत्वं हेम्नो विकारत्वात्। अल्पीयस्त्वं तु पदो लवः पल्लव इति श्लिष्टार्थमहिम्ना समर्थ्यते ॥ २२ ॥

हिन्दी—तदनन्तर वायु के समान वेगवान् नन्दी बैल पर सवार हुये शंकर जी सुमेरु पहाड़ पर आ गये और वहाँ उन्होने पार्वती के स्तनों को आश्रय देने वाले सुरतमर्दन में सक्षम हेमपल्लव के खण्डों से आच्छादित शय्या का अनुभव किया।

विमर्श—ऐसे बिस्तर पर सोकर पार्वती के साथ रमण किया।

पद्मनाभचरणाङ्कितारमसु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रुषो नवाः।
मन्दरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदनपद्मषट्पदः ॥२३॥

अन्वयः--हरः पद्मनाभचरणाङ्किताश्मसु नवा अमृतविप्रुषः प्राप्तवत्सु मन्दरस्य कटकेषु च पार्वतीवदनषट्पदः (सन्) अवसत् ।

संजी०—पद्मनाभेति ॥ हरः । पद्मनाभो हरिः । 'पद्मनाभो मधुरिपुः' इत्यमरः । तस्य चरणाभ्यामङ्किताश्चिह्निता अश्मानो येषाम् । एतेन हरेरपि विहारयोग्यत्वं ध्वन्यते । तथा नवा अमृतविप्रुषोऽमृतबिन्दून् । 'पृषन्ति बिन्दुपृषताः पुमांसो विप्रुषः स्त्रियाम्' इत्यमरः । प्राप्तवत्सु । समुद्रमन्थन-साधनत्वादस्येति भावः । मन्दरस्य च कटकेषु नितम्बेषु । कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः । पार्वत्या वदनरूपे पद्मे षट्पदो भ्रमरः सन् । अवसद्वासमकरोत् ॥ २३ ॥

हिन्दी--तदनन्तर विष्णु के चरण चिह्नों से युक्त चट्टान वाले एवं समुद्रमन्थन के समय उड़े हुये छोटे छोटे अमृत कणों को प्राप्त करने वाले मन्दराचल के ढाल पर पार्वती के कमल जैसे मुख के भ्रमर रूप भगवान् शङ्कर ने डेरा डाला ।

रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तदृढबाहुबन्धनः ।
एकपिङ्गलगिरौ जगद्गुरुर्निर्विवेश विशदाः शशिप्रभाः ॥२४॥

अन्वयः--जगद्गुरुः एकपिङ्गलगिरौ रावणध्वनितभीतया तया पार्वत्या कण्ठ-सक्तदृढबाहुबन्धनः (सन्) विशदाः शशिप्रभाः निर्विवेश ।

संजी०—रावणेति ॥ जगतां गुरुर्नियन्ता । उत्पत्त्यादित्रिविधकर्मणां गुणभेदेन कारकत्वादिति भावः । शिवः । एकपिङ्गलस्य कुबेरस्य । 'यक्षैक-पिङ्गैलविलश्रीदपुण्यजनेश्वराः' इत्यमरः । गिरौ कैलासे रावणस्य प्रसिद्ध-राक्षसस्य ध्वनितार्त्तिसहनादाद्भीतया तया पार्वत्या कण्ठे सक्तं सज्जितं दृढं बाहुबन्धनं यस्य स तथोक्तः सन् विशदाः स्वच्छाः । शारदिका इति भावः । शशिनः प्रभाः कौमुदीर्निर्विवेशोपभुक्तवान् ॥ २४ ॥

हिन्दी--वहाँ से चलकर जगद्गुरु भगवान् शङ्कर कुबेर की राजधानी कैलाश (अलकापुरी) पर पहुँचे । जहाँ उसे उठाते समय रावण की भयंकर गर्जना से भय-भीत पार्वती अपनी भुजाओं को शङ्कर के गले में दृढ़तापूर्वक डालकर स्वयम् उसमें लिपट गई थीं । वहाँ रह कर उन्होने विशद (अत्यन्त स्वच्छ) चन्द्रिका का उपभोग किया ।

तस्य जातु मलयस्थलीरते धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम् ।
आचचाम सलवङ्गकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः ॥२५॥

अन्वयः--जातु तस्य मलयस्थलीरते (सति) धूतचन्दनलतः सलवङ्गकेसरः दक्षिणानिलः चाटुकार इव प्रियाक्लमम् आचचाम ।

संजी०- तस्येति ।। जातु कदाचित् । तस्य तत्कर्तृके । मलयस्थलीषु रतं सुरतं तत्र सति । धूताः कम्पिताश्चन्दनानां चन्दनवृक्षाणां लताः शाखा येन स तथोक्तः । लवङ्गानां केसरैः किञ्जल्कैः सह वर्तते तथोक्तः । दक्षिणानिलो मलयपवनः । चाटुकार इव मधुरभाषीव । प्रियायाः क्लमं खेदमाचचाम । हृतवानित्यर्थः ।।२५।।

हिन्दी--इसके बाद वे इधर उधर घूमते हुए मलयाचल पर्वत पर गये जहाँ चन्दनलताओं को हिलाने वाले तथा लवङ्ग की परागों से भरे दक्षिण दिशा की वायु ने रतिक्रीडा से परिश्रान्त पार्वती की थकान को उसी प्रकार दूर किया जैसे कोई चाटुकार अपनी मीठी मीठी बातों से स्वामी के मन को बहलाता हैं ।

हेमतामरसताडितप्रिया तत्कराम्बुविनिमीलितेक्षणा ।
सा व्यगाहत तरङ्गिणीमुमा मीनपङ्क्तिपुनरुक्तमेखला ।।२६।।

अन्वयः—सा उमा हेमतामरसताडितप्रिया तत्कराम्बुविनिमीलितेक्षणा (तथा) मीनपङ्क्तिपुनरुक्तमेखला तरङ्गिणीम् व्यगाहत ।

संजी०--हेमेति ।। सोमा पार्वती हेम्नस्तामरसेन रक्तोत्पलेन तटोत्पन्नेन ताडितः प्रियो यया सा । परिहासविधित्सयेति भावः । तथा तस्य प्रियस्य कराम्बुना हस्ताक्षिप्तजलेन विनिमीलिते ईक्षणे नेत्रे यया । तथा मीनपङ्क्त्या पुनरुक्ता मेखला रशना यस्यास्तथोक्ता सती । तरङ्गिणीं नदीं व्यगाहत विजगाहे । जलक्रीडां चकारेत्यर्थः । 'तरङ्गिणी शैवलिनी' इत्यमरः ।।२६।।

हिन्दी--वह पार्वती जलक्रीडा के समय अपने प्रियतम शङ्कर जी को (आकाशगङ्गा में) खिले हुए सुवर्णमय कमलों से ताडित करती थीं । उधर शङ्कर जो भी अपने हाथों से इतना जल उलीचते थे कि पार्वती की आँखें बन्द हो जाती थीं । इतना ही नहीं उस समय उनके कटिभाग के चारों ओर घूमती हुई मछलियों की लड़ी दूसरी करधनी को धारण की हुई प्रतीत होती थी । इस प्रकार वे आकाशगङ्गा में स्नान करती थीं ।

तां पुलोमतनयालकोचितैः पारिजातकुसुमैः प्रसाधयन् ।
नन्दने चिरमयुग्मलोचनः सस्पृहं सुरवधूभिरीक्षितः ।।२७।।

अन्वयः--अयुग्मलोचनः नन्दने पुलोमतनयालकोचितैः पारिजातकुसुमैः ताम् प्रसाधयन् सुरवधूभिः सस्पृहं ईक्षितः चिरम् (अवसत्) ।

संजी०--तामिति ।। अयुग्मानि विषमाणि । त्रीणीति यावत् । लोचनानि यस्य स तथोक्तः शिवो नन्दन इन्द्रोद्याने पुलोमतनया शची । 'पुलोमजा

शचीन्द्राणी' इत्यमरः। तस्या अलकेषु केशेषूचितैः पारिजातकुसुमैः कल्पवृक्षपुष्पैस्तां पार्वतीं प्रसाधयन्भूषयन्। तथा सुरवधूभिर्देवाङ्गनाभिः सस्पृहमीक्षितः सन्। चिरमवसदिति शेषः ॥२७॥

हिन्दी—इसके बाद नन्दन वन में पहुँच कर त्रिनेत्र शङ्कर जी बहुत काल तक जिन पारिजात के कुसुमों से इन्द्राणी के बाल सजाये जाते थे उन्हीं पारिजात के पुष्पों से पार्वती जी का बाल सँवारते हुये वहीं निवास करने लगे। उस समय उनकी इस प्रसाधन कला की दक्षता को देवाङ्गनायें बड़े चाव से देखा करती थीं।

इत्यभौममनुभूय शंकरः पार्थिवं च दयितासखः सुखम्।
लोहितायति कदाचिदातपे गन्धमादनवनं व्यगाहत ॥२८॥

अन्वयः—शंकरः इति अभौमम् पार्थिवं च सुखं दयितासखः सन् अनुभूय आतपे लोहितायति (सति) कदाचिद् गन्धमादनवनं व्यगाहत।

संजी०--इतीति ॥ शंकरः इत्येवमभौमं स्वर्गीयं तथा पार्थिवं भौमं च सुखम्। दयितासखः सन्ननुभूय। कदाचित्समय आतपे सूर्ये लोहितायति रक्तवर्णे जायमाने सति। 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति क्यष्। गन्धमादनस्य गिरेर्वनं व्यगाहत। तत्र क्रीडितुं जगामेत्यर्थः ॥२८॥

हिन्दी—इस प्रकार अपनी प्रियतमा पार्वती के साथ स्वर्गीय तथा सांसारिक सुख भोग करते हुये शङ्कर जी एक दिन सायंकाल होते होते गन्धमादन वन में जा पहुँचे।

तत्र काञ्चनशिलातलाश्रयो नेत्रगम्यमवलोक्य भास्करम्।
दक्षिणेतरभुजव्यपाश्रयां व्याजहार सहधर्मचारिणीम् ॥२९॥

अन्वयः—तत्र (स हरः) भास्करं नेत्रगम्यम् अवलोक्य काञ्चनशिलातलाश्रयः दक्षिणेतरभुजव्यपाश्रयां सहधर्मचारिणीं व्याजहार।

संजी०--तत्रेति ॥ तत्र गन्धमादनवने स हरो भास्करं सूर्यं नेत्रगम्यं नेत्रप्राप्यम्। नेत्रावलोक्यमिति यावत्। अवलोक्य विचार्य। काञ्चनं सौवर्णं शिलातलमाश्रयो यस्य तथोक्तः सन्। दक्षिणेतरो भुजो वामभुजस्तत्र व्यपाश्रयः संबन्धो यस्यास्ताम्। तत्र स्थितामित्यर्थः। सहधर्मचारिणीं पत्नीं पार्वतीं व्याजहारोक्तवान्। 'व्याहार उक्तिर्लपितम्' इत्यमरः ॥२९॥

हिन्दी—वहाँ वे सूर्यास्त में थोड़ा काल शेष देख एक सोने की चट्टान पर बैठ गये। तदनन्तर अपने वायें बाहु के सहारे बैठी हुई धर्मपत्नी पार्वती से बोले—

पद्मकान्तिमरुणत्रिभागयोः संक्रमय्य तव नेत्रयोरिव ।
संक्षये जगदिव प्रजेश्वरः संहरत्यहरसावहर्पतिः ॥३०॥

अन्वयः—(हे प्रिये) असौ अहर्पतिः अरुणत्रिभागयोः तव नेत्रयोः इव पद्मकान्तिं संक्रमय्य संक्षये प्रजेश्वरः जगद् इव अहः संहरति ।

संजी०—पद्मेति ॥ हे प्रिये, असौ पुरोवर्त्यहर्पतिः सूर्यः । अरुणौ त्रिभागौ तृतीयांशौ ययोस्तयोस्तव नेत्रयोरिव पद्मकान्तिं कमलशोभां संक्रमय्य तुलयित्वा । कमलप्रतिनिधित्वेन रात्रौ तव नेत्रकमल एव स्थास्यत इति विचार्येति भावः । संक्षये प्रलये प्रजेश्वरो ब्रह्मा जगदिव । अहो दिनं संहरति । स्वस्यास्तंगतत्वादिति भावः । अत्र गम्योत्प्रेक्षा ॥३०॥

हिन्दी—हे प्रिये ! देखो यह सूर्य इस समय तृतीयांश अरुण हैं जिसमें ऐसे तुम्हारे दोनों नेत्रों में कमल की कान्ति को संक्रमित कर धीरे धीरे दिन को इस प्रकार समेटता जा रहा है जिस प्रकार प्रलय काल में प्रजापति ब्रह्मदेब संसार को समेट लेते हैं ।

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति ।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी ॥३१॥

अन्वयः—अवनते विवस्वति मरीचिभिः सीकरव्यतिक्रमम् दूरयति (सति) अमी तव पितुः निर्जंराः इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां व्रजन्ति ।

संजी०—सीकरेति ॥ हे प्रिये, अवनते नम्रीभूते । अस्तंगत इति यावत् । विवस्वति सूर्ये मरीचिभिः स्वकिरणैः सह सीकराणां जलकणानाम् । 'सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः' इत्यमरः । व्यतिकरं संबन्धं दूरयति दूरं कुर्वति सति । अमी पुरोवर्तिनस्तव पितुर्हिमालयस्य निर्झराः प्रवाहा इन्द्रचापेन यः परिवेषः परिधिः । 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः । तेन शून्यास्तेषां भावस्तत्ता तां व्रजन्ति । गच्छन्तीत्यर्थः । निर्झरकणपतितसायंतनकिरणैरुद्भासमानेन्द्रचापपरिधिगतसूर्यस्यास्तंगतत्वाद्विलीना इति भावः ॥३१॥

हिन्दी—हे प्रिये ! देखों ज्यों ज्यों यह सूर्य ढलता हुआ नीचे की ओर गिरता जा रहा है त्यों त्यों हिमालय के इन झरनों के फुहारों पर पड़कर इन्द्रधनुष की रचना करने वाली उसकी किरणें भी दूर होती जा रही हैं, जिससे इन झरनों का इन्द्रधनुष जैसा दृश्य भी विलुप्त होता जा रहा है ।

दष्टातामरसकेसरस्रजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः ।
निघ्नयोः सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम् ।।३२।।

अन्वयः—दष्टतामरसकेसरस्रजोः विपरिवृत्तकण्ठयोः निघ्नयोः क्रन्दतोः (तथा) सरसि (स्थितयोः) चक्रवाकयोः अल्पम् अन्तरम् अनल्पतां गतम् ।

संजी०—दष्टेति ।। हे प्रिये, दष्टा तामरससंबन्धिनां केसराणां स्रग्याभ्यां तयोः । तथा विपरिवृत्तौ परस्परपराङ्मुखीभूतौ कण्ठौ ययोः । यथा निघ्नयोः परस्पराधीनयोः । 'अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः । अतएव क्रन्दतो रुदतोः । तथा सरसि स्थितयोश्चक्रवाकयोरल्पमन्तरं वियोगोऽनल्पतामतिशयिततां गतम् । प्राप्तमित्यर्थः ।।३२।।

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! कमल पराग के समूहों को दाँतों में दवाये हुए परस्पर पराङ्मुखकण्ठ वाले तथा एक दूसरे के प्रेमाधीन रहने वाले तालाव में स्थित ये चक्रवाक मिथुन संध्या के कारण रोते हुए परस्पर अलग हो रहे हैं । यद्यपि इस तालाव के आर पार का अन्तर बहुत कम है । किन्तु इन बेचारों के लिए यह बहुत बड़ा वन गया है ।

स्थानमाह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकीविटपभङ्गवासितम् ।
आविभातचरणाय गृह्णते वारि वारिरुहबद्धषट्पदम् ।।३३।।

अन्वयः—दन्तिनः सल्लकीविटपभङ्गवासितं आह्निकं स्थानम् अपास्य आविभात चरणाय वारिरुहवद्धषट्पदम् वारि गृह्णते ।

संजी०—स्थानमिति ।। हे प्रिये, दन्तिनो गजाः सल्लकीविटपा वृक्षविशेषास्तेषां भङ्गैः खण्डैर्वासितं सुगन्धितमाह्निकं दैनं स्थानमपास्य त्यक्त्वा । विभातमारभ्येत्याविभातं यच्चरणमाचरणम् । सांध्यं कृत्यमिति यावत् । तस्मै तत्कर्तुम् । वारिरुहेषु कमलेषु बद्धाः षट्पदा भ्रमरा यत्र तादृशं वारि जलं गृह्णते । करेणाददत इत्यर्थः । गम्योत्प्रेक्षा ।।३३।।

हिन्दी—हे प्रिये, देखो-शाल वृक्ष के टूट जाने से उसके द्वारा निकलने वाले गन्ध से सुवासित अपने आवासों को छोड़कर ये हाथियाँ प्रातः काल से ले कर अब तक पर्याप्त भोजन के पश्चात् सायङ्कालिक कृत्य करने के लिए वन्द हो गये हैं भौरे जिसमें ऐसे तालाव के जल को अपनो सूँड़ों से ऊपर उठाकर पी रहे हैं ।

पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता ।
लब्धया प्रतिमया सरोम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम् ।।३४।।

अन्वयः—हे मितकथे ! पश्चिमदिगन्तलम्बिना विवस्वता लब्धया प्रतिमया सरोऽम्भसां सेतुबन्धनम् इव निर्मितं पश्य ।

संजी०—पश्येति ।। हे मितकथे मिताः परिमिताः कथा यस्यास्तत्संबोधनं हे मितभाषिणि प्रिये, पश्चिमं दिगन्तं लम्बते तथोक्तेन विवस्वता सूर्येण लब्धया प्रतिमया प्रतिबिम्बेन कृत्वा सरः संबन्धिनामम्भसां तापनीयं सौवर्णं सेतोर्बन्धनमिव निर्मितम् । कृतमित्यर्थः । इति त्वं पश्य । तरङ्गितसरो जलेषु पतितमतएवाविरलतया सहस्रधा विभक्तं स्वप्रतिबिम्बमेव सूर्यनिर्मितः सेतुरिवेत्युत्प्रेक्षा । 'तपनीयं शातकुम्भम्' इत्यमरः । ततः 'तस्य विकारः' इत्यण् ।।३४।।

हिन्दी—हे मितभाषिणि प्रिये ! पश्चिम दिशा की ओर लटकते हुए इस सूर्य ने अपने प्रतिबिम्ब (छाया) के द्वारा इस तालाब के जल पर सुवर्णमय सेतु के बाँध जैसा बना रखा है इसे देखो ।

विमर्श तालाब का जल तरङ्ग युक्त है । जिससे उसमें पड़ने वाली सूर्य की परछाई सहस्रधा प्रविभक्त हो सुवर्णमय सेतु जैसी दिखाई पड़ रही है ।

उत्तरन्ति विनिकीर्य पल्वलं गाढपङ्कमतिवाहितातपाः ।
दंष्ट्रिणो वनवराहयूथपा दष्टभङ्गुरबिसाङ्कुरा इव ।।३५।।

अन्वयः—गाढपङ्कम् पल्वलम् विनीकीर्य अतिवाहिता तपाः दंष्ट्रिणः वनवराह-यूथपाः दष्टभङ्गुरबिसाङ्कुरा इव उत्तरन्ति ।

संजी०—उत्तरन्तीति ।। हे प्रिये, गाढः पङ्को यत्र तादृशं पल्वलमल्पसरः । 'वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः । विनिकीर्य । स्वाधिवासेन विक्षिप्तं कृत्वेत्यर्थः । अतिवाहितोऽतिक्रान्त आतपो घर्मो यैः । तथा दंष्ट्रिणः प्रशस्त-दंष्ट्रायुक्ताः । वनवराहाणामारण्यकसूकराणां यूथं पान्ति रक्षन्ति ते वनवराह-यूथपाः । महान्तो वराहा इत्यर्थः । दष्टा भङ्गुरा भङ्गशीला बिसाङ्कुरः मृणालतन्तवो यैस्ते तथोक्ता इव । उत्तरन्ति निःसरन्ति । अर्थात्सरस इत्यर्थः । अत्र बहिर्दृश्येषु दंष्ट्राङ्कुरेषु बिसाङ्कुरत्वोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षालंकारः ।।३५।।

हिन्दी—हे प्रिये देखो, अत्यन्त कीचड़ युक्त छोटे-छोटे गढों में लोट पोट कर दिन भर की गर्मी बिताने के बाद बड़े-बड़े दाढ़ों वाले इन जङ्गली महावराहों के दोनों ओर से निकले हुए दाढ़ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो इनके द्वारा चबाये जा रहे कमलों के डंठल के टुकड़े जबड़े में अटक गये हो ।

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलः ।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिबतीव बर्हिणः ॥३६॥

अन्वयः—हे पीवरोरु ! वृक्षशिखरे कृतास्पदः एषः वर्हिणः जातरूपरसगौर-मण्डलम् अहरत्ययातपं पिवति इव हीयमानम् ।

संजी०—एष इति ॥ हे पीवरोरु, वृक्षशिखरे कृतमास्पदं स्थितिर्येन । तत्र स्थित इत्यर्थः । एष पुरोवर्ती बर्हिणो मयूरः । 'मयूरो बर्हिणो बर्ही' इप्यमरः । कर्ता । जातरूपस्य सुवर्णस्य । 'चामीकरं जातरूपम्' इत्यमरः । यो रसो जलं तद्वद्गौरं पीतं मण्डलं बर्हसमूहो यस्य तादृशम् । अह्नो दिवसस्यात्ययः संध्या तस्या आतपं पिबतीवेत्युत्प्रेक्षा । यतो हीयमानम् । अन्यथा कथमस्य हानिः स्यादिति भावः ॥३६॥

हिन्दी--हे पीवरोरु ! वृक्ष के शिखर पर बैठे हुये इस मोर को देखो इसके पूँछ में सोने के पानी से वनी जैसी गोल गोल सुनहरी चन्द्रिकायें ऐसी प्रतीत हो रहीं है मानो वे सायङ्कालिक समस्त धूपों को पीती चली जा रही है जिसके कारण धूप क्रमशःकम होती जा रही है ।

पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकतः ।
खं हृतातपजलं विवस्वता भाति किंचिदिव शेषवत्सरः ॥३७॥

अन्वयः—विवस्वता हृतातपजलं खं पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिः एकतः व्यक्तपङ्कम् इव जातं (सत्) किञ्चित् शेषवत्सरः इव भाति ।

संजी०--पूर्वेति ॥ विस्वता हृतं शोषितमातपो जलमिव यस्य तादृशं खं व्योम । पूर्वभागे यास्तिमिरप्रवृत्तयस्तमः प्रसारास्ताभिः कृत्वा । एकत एकत्र भागे व्यक्तः पङ्को यत्र तदिव जातं सत् । किंचिच्छेषवदीषज्जलशेषि सर इव भाति । अस्तंगचछदर्कात्पातपे किंचिज्जलशेषोत्प्रेक्षणपूर्वक उपमा-लंकारः ॥३७॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! आकाश में पूर्व की ओर अँधेरा बढ़ता जा रहा है इससे प्रतीत होता है कि सूर्य ने आकाश रूपी तालाब के उस भाग का धूप रूपी सारा-जल पी लिया है इस कारण अब वहाँ केवल कीचड़ ही शेष रह गया है और पश्चिम दिशा में अब भी कुछ उजाला दिखाई दे रहा है मानो अभी वहाँ धूप रूपी जल शेष है ।

आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः ।
आश्रमाः प्रविशदग्र्यधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः ॥३८॥

अन्वयः—उटजाङ्गणम् आविशद्भिः मृगैः मूलसेकसरसैः वृक्षकैः प्रविशदग्र्य-धेनवः उदीरिताग्नयः आश्रयाः श्रियं बिभ्रति ।

संजी०—आविशद्भिरिति ॥ उटजस्य पर्णशालाया अङ्गणम् । 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । आविशद्भिः प्रविशद्भिर्मृगैः । तथा मूलेषु यः सेकः सेचनं तेन सरसा आर्द्रास्तथोक्तैर्वृक्षकैरल्पवृक्षैश्चोपलक्षिताः । तथा प्रविशन्त्योऽग्र्याः श्रेष्ठा धेनवो येषु । तथोदीरिता उद्दीपिताः । सायंहोमार्थमिति भावः । अग्नयो गार्हपत्यादयो येषु तथोक्ता आश्रमाः ऋषीणां वासस्थानानि । श्रियं बिभ्रति शोभन्त इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! इन महर्षियों के आश्रमों को देखो जो पर्णशाला के प्राङ्गण में हरिणों के प्रवेश से जड़ से सीचे गये लहलहाते पौधों से जङ्गल से लौट कर प्रवेश करने वाली श्रेष्ठ गायों से एवं सायङ्कालीन हवन के लिए उद्दीप्त अग्नि की ज्वालाओं से अत्यन्त श्री संपन्न हो रहे हैं ।

बद्धकोशमपि तिष्ठति क्षणं सावशेषविवरं कुशेशयम् ।
षट्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम् ॥३९॥

अन्वयः—बद्धकोशम् अपि कुशेशयं वसतिं ग्रहीष्यते षट्पदाय प्रीतिपूर्वम् अन्तरं दातुम् इव क्षणं सावशेषविवरं तिष्ठति ।

संजी०—बद्धेति ॥ बद्धकोशं मुकुलितमपि कुशेशयं कमलं कर्तृ । वसतिं ग्रहीष्यते षट्पदाय भ्रमराय प्रीतिपूर्वमन्तरमवकाशम् । 'अन्तरमवकाशावधि' इत्यमरः । दातुमिवेत्युत्प्रेक्षा । क्षणं सावशेषं विवरं छिद्रं यस्य तथा तिष्ठति ॥३९॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो, यद्यपि इस समय कमल संकुचित होने लगे हैं किन्तु उनका मुख अब भी थोड़ा सा खुला हुआ है, मानो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे बाहर रह जाने वाले भौंरो को प्रेमपूर्वक अपने भीतर स्थान देने के लिए ही द्वार खोले क्षणभर के लिये प्रतीक्षा कर रहे हों ।

दूरमग्रपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरुणेन भानुना ।
भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका ॥४०॥

अन्वयः—वारुणी दिक् दूरम् अग्रपरिमेयरश्मिना अरुणेन भानुना केसरवता बन्धुजीवतिलकेन मण्डिता कन्यका इव भाति ।

संजी०—दूरमिति ॥ हे प्रिये, वारुणी दिक्पश्चिमदिक् । दूरमग्रे परिमेया अल्पत्वात्परिमातुं शक्या रश्मयः किरणा यस्य तादृशेनारुणेन भानुना । केसरवता किञ्जल्कवता बन्धुजीवं बन्धुजीवाख्यवृक्षपुष्पं तदेव तिलकं तेन मण्डिता कन्यकेव । भाति ॥४०॥

हिन्दी—हे प्रिये ! देखो, यह पश्चिम दिशा बहुत दूर से स्वल्पकिरणों वालों लाल सूर्य को धारण किये ऐसी प्रतीत हो रही है मानो मस्तक में परागयुक्त बन्धुजीव के फूल का तिलक लगाये कोई कन्या शोभित हो रही हो ।

सामभिः सहचराः सहस्रशः स्यन्दनाश्वहृदयंगमस्वनैः ।
भानुमग्निपरिकीर्णतेजसं संस्तुवन्ति किरणोष्मपायिनः ॥४१॥

अन्वयः--किरणोष्मपायिनः सहस्रशः सहचराः अग्निपरिकीर्णतेजसं भानुं स्यन्दनाश्वहृदयंगमैः स्वनैः सामभिः संस्तुवन्ति ।

संजी०—सामभिरिति ॥ किरणोष्मपायिनः किरणानामूष्माणमेव पिबन्तीति तथोक्ताः । सहस्रशः सहचरा बालखिल्यादय ऋषयः । अग्नौ परिकीर्णं निक्षिप्तं तेजो येन तं भानुं सूर्यम् । स्यन्दनस्य रथस्य संबन्धिनो येऽश्वास्तेषां हृदयंगमा मनोहराः स्वना येषां तैः सामभिः सामवेदैः संस्तुवन्ति । स्तुतिं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥४१॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! सूर्य की उष्ण मरीचि का पान करने वाले ये सहस्रों की संख्या वाले बालखिल्यादि महर्षिगण अपना तेज अग्नि को समर्पित कर देने वाले नारायण की स्तुति उनके रथ में जुते घोड़ों को प्रिय लगने वाले सामगान के स्तोत्रों से कर रहे हैं । जिससे वे अपना तेज अग्नि से लौटा लें ।

सोऽयमानतशिरोधरैर्हयैः कर्णचामरविघट्टितेक्षणैः ।
अस्तमेति युगभुग्नकेसरैः संनिधाय दिवसं महोदधौ ॥४२॥

अन्वयः—सः अयं दिवसं महोदधौ संनिधाय आनतशिरोधरैः कर्णचामरविघट्टितेक्षणैः युगभुग्नकेसरैः हयैः अस्तम् एति ।

संजी०—सोऽयमिति ॥ सोऽयं सूर्यो दिवसं महोदधौ संनिधाय संस्थाप्य । आनता नम्रीभूता शिरोधरा ग्रीवा येषां तैः । अतएव कर्णयोश्चामरैर्विघट्टिते मुकुलिते ईक्षणे येषां तैः । युगेन स्कन्धधार्यकाष्ठेन भुग्ना मृदिताः केसराः स्कन्धरोमाणि येषां तथोक्तैर्हयैरश्वैः कृत्वा । अस्तमस्ताचलमेति गच्छति । 'अस्तस्तु चरमः क्ष्माभृत्' इत्यमरः ॥४२॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! यह सूर्य दिन को समुद्र में रख कर नीचे की ओर चलने से झुकी गरदन वाले कनौतियों को चँवर की तरह आँखों पर झुलाने वाले तथा जूये पर बिखरे केसरों (गरदन की वालों) वाले इन अश्वों के साथ अस्ताचल की ओर उतरते जा रहे हैं ।

खं प्रसुप्तमिव संस्थिते रवौ तेजसो महत ईदृशी गतिः ।
तत्प्रकाशयति यावदुद्गतं मीलनाय खलु तावतश्च्युतम् ॥४३॥

अन्वयः--खम् रवौ संस्थिते प्रसुप्तम् इव (भवति) महतः तेजसः ईदृशी गतिः (अस्ति) उद्गतम् (सत्) तत् यावत् प्रकाशयति च्युतम् तावत् मीलनाय (भवति) खलु ।

संजी०—खमिति ॥ हे प्रिये, खं व्योम रवौ संस्थितेऽस्तंगते सति प्रसुप्तमिव भवति । युक्तमेवेत्याह--महतस्तेजस ईदृशी वक्ष्यमाणा गतिरस्ति । सा केत्याह--तत्तेजः कर्तृ । उद्गतमुदितं सत् । यावत् । स्थानमित्यर्थः । प्रकाशयति । च्युतं भ्रष्टमस्तमितं तदिति यावत् । तावतः स्थानस्य मीलनाय संकोचनाय भवति खलु । यत्र तेजस्तिष्ठति तत्प्रकाशते । यतो गच्छति तन्न प्रकाशत इति भावः । उत्प्रेक्षालंकारः ॥४३॥

हिन्दी—सूर्य के अस्त होने के साथ ही सारा आकाशमण्डल प्रकाशहीन हो जाने से सोता-सा जान पड़ता है । तेजस्वियों की गति ही ऐसी होती है । वे जहाँ उदीयमान होते हैं वहाँ प्रकाश करते हैं और जहाँ से परिच्युत होते हैं उस स्थान को अन्धकार से संकुचित कर देते हैं ।

संध्ययाप्यनुगतं रवेर्वपुर्वन्द्यमस्तशिखरे समर्पितम् ।
येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमापदि ॥४४॥

अन्वयः--सन्ध्यया अपि अस्तशिखरे समर्पितम् वन्द्यम् रवेः वपुः अनुगतम् । पूर्वम् उदये येन पुरस्कृता आपदि तम् कथम् न अनुयास्यति ।

संजी०—संध्ययेति ॥ संध्ययापि कर्त्र्या । अस्तशिखरे समर्पितं निहितं वन्द्यं पूज्यं रवेर्वपुर्मण्डलं कर्म । अनुगतमन्वगामि । योग्यमेवैतदित्याह—पूर्वमुदये प्रातःसमये येन पुरस्कृताग्रे कृता संमानिता च । उदये प्रागेव संध्यागम इति प्रसिद्धम् । आपदि विपत्समये । अस्तमय इति यावत् । तं सूर्यं कथं नानुयास्यति । अपि तु यास्यत्येवेत्यर्थः । सतीधर्म एष एवेति भावः ॥४४॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो, यह सन्ध्या अस्ताचल की ओर निहितः प्रशस्त एवं वन्दनीय सूर्यमण्डल का अनुसरण कर रही है । उसका यह अनुगमन उचित ही है क्योंकि प्रातःकाल सूर्योदय होते-होते उसने उनका स्वागत किया था फिर भला वह उनके पतन के समय क्यों न उनका अनुसरण कर पीछे-पीछे चले ।

रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिलकेशि भान्त्यमूः ।
द्रक्ष्यसि त्वमिति संध्ययानया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः ॥४५॥

अन्वयः—कुटिलकेशि ! अमूः रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः भान्ति । त्वं द्रक्ष्यसि इति अनया सन्ध्यया वर्त्तिकाभिः साधुः मण्डिताः इव ।

संजी०--रक्तेति ॥ हे कुटिलकेशि प्रिये, अमूः पुरोगताः । रक्ताश्च पीताश्च कपिशाश्च तथोक्ताः । नानावर्णा इत्यर्थः । पयोमुचां कोटयोऽश्रयः । 'स्यात्कोटिरश्रौ चापाग्रे संख्याभेदप्रकर्षयोः' इति विश्वः । भान्ति । तास्त्वं

द्रक्ष्यसीति हेतोरनया संध्यया कर्त्र्या। वर्तिकाभिश्चित्रशलाकाभिः साधु यथा तथा मण्डिता इव भूषिताः किम्वित्युत्प्रेक्षा ॥४५॥

हिन्दी—हे घुंघुराले बालों वाली प्रिये देखो! सामने आकाश में बिखरी हुई लाल, पीली तथा भूरी बादलों की रेखायें कितनी सुन्दर प्रतीत हो रही हैं। इन्हे देख कर मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि इस सन्ध्या-सुन्दरी ने इन्हें यह समझकर कूची से रंग दिया है कि तुम अवश्य देखोगी।

सिंहकेसरसटासु भूभृतां पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च।
पश्य धातुशिखरेषु भानुना संविभक्तमिव सांध्यमातपम् ॥४६॥

अन्वयः—भूभृताम् सिंहकेसरसटासु पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु धातु शिखरेषु च भानुना संविभक्तम् इव सान्ध्यम् आतपं पश्य।

संजी० सिंहेति ॥ हे प्रिये, भूभृतां पर्वतानां संबन्धिनां सिंहानां केसराः किञ्जल्का इव याः सटाः स्कन्धकेशास्तासु। पल्लवानां प्रसवो येषु तेषु। द्रुमेषु च। तथा धातुयुक्तेषु शिखरेषु च। भानुना संविभक्त सम्यग्विभज्य दत्तमिव सांध्यमातपं पश्य। केसरादीनामात्मसदृशत्वात्सुहृद्भूततया सूर्योऽस्तगमनसमय आसन्नमृत्युः पुरुष आत्मधनमिव धनीभूतं तात्कालिकमातपं तेभ्यो दत्वास्तं गच्छतीति भावः ॥४६॥

हिन्दी—हे प्रिये! इन पहाड़ी सिंहों के गरदन पर होने वाले लाल-लाल बालों, वृक्षों में उत्पन्न हुए लाल-लाल कोपलों तथा गेरू की लाल-लाल चोटियों में मालूम पड़ता है कि सूर्य ने अपने सायङ्कालीन आतप को प्रदान कर दिया है जिससे ये रक्तवर्ण के दिखाई पड़ रहे हैं।

अद्रिराजतनये तपस्विनः पावनाम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः।
ब्रह्म गूढमभिसंध्यमादृताः शुद्धये विधिविदो गृणन्त्यमी ॥४७॥

अन्वयः—हे अद्रिराजतनये! विधिविदः तपस्विनः अमी अभिसंध्यम् पावनाम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः शुद्धये आहृताः गूढं ब्रह्म गृणन्ति।

संजी०—अद्रीति ॥ हे अद्रिराजतनये, विधिविदस्तपस्विनोऽमी ब्राह्मणाः। अभिसंध्यं संध्यामभिव्याप्य। पावनं पवित्रं यदम्बु तेन विहिताञ्जलिक्रियार्घ्यदानं यैस्तथोक्ताः। भूत्वेति शेषः। शुद्धय आत्मशुद्धिं कर्तुमादृता आदरयुक्ताश्च सन्तः। गूढं रहस्यभूतं ब्रह्म गायत्रीं गृणन्ति। जपन्तीत्यर्थः ॥४७॥

हिन्दी—हे पार्वती देखो! सभी प्रकार के यज्ञक्रियाओं के मर्मज्ञ ये तपस्वी पवित्र जल से सूर्य को सायङ्कालीन अर्घ्य दे कर अपनी आत्मशुद्धि के लिए अत्यन्त आदर के साथ रहस्यपूर्ण गायत्री मन्त्र का जप कर रहे हैं।

तन्मुहूर्तमनुमन्तुमर्हसि प्रस्तुताय नियमाय मामपि ।
त्वां विनोदनिपुणः सखीजनो वल्गुवादिनि विनोदयिष्यति ॥४८॥

अन्वयः—वल्गुवादिनि तत् प्रस्तुताय नियमाय माम् अपि मुहूर्त्तम् अनुमन्तुम् अर्हसि (तथा) त्वाम् विनोदनिपुणः सखीजनः विनोदयिष्यति ।

संजी०—तदिति । हे वल्गुवादिनि मिष्टभाषिणि, तत्तस्मात्कारणात्प्रस्तुताय सांध्याय नियमाय विधये नियमं कर्तुं मामपि मुहूर्तं क्षणमात्रमनुमन्तुं त्वं गच्छेत्यनुमननं कर्तुमर्हसि । तथा त्वां विनोदे विनोदकरणे निपुणः कुशलः सखीजनो विनोदयिष्यति ॥४८॥

हिन्दी—अतः हे मधुरबोलने वाली प्रियतमे ! तुम मुझे भी प्रस्तुत नित्यकालीन सन्ध्यावन्दन रूप नियम के लिए आज्ञा दो, तब तक मन बहलाने की क्रिया में चतुर ये तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा मन बहलावेगी ।

निर्विभुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्तुरवधीरणापरा ।
शैलराजतनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम् ॥४९॥

अन्वयः—ततः शैलराजतनया दशनच्छदम् निर्विभुज्य भर्तुः वाचि अवधीरणापरा समीपगां विजयां (सखी) अहेतुकम् आललाप ।

संजी०—निर्विभुज्येति ॥ ततोऽनन्तरं शैलराजतनया पार्वती दशनच्छदमोष्ठं निर्विभुज्य वक्रीकृत्य भर्तुर्वाच्यवधीरणापरा तिरस्कृतिसक्ता । श्रुतमप्यशृण्वतीत्यर्थः । समीपगां विजयानाम्नीं सखीम् । अहेतुकं निष्कारणमाललाप । आलापं कृतवतीत्यर्थः ॥४९॥

हिन्दी—शङ्कर जी की यह बात सुन कर पार्वती ने अनिच्छापूर्वक अपना मुँह बिचका लिया फिर उनके वचनों को तिरस्कृत करती हुई वहीं बैठी अपनी विजया नामक सखी से अर्थहीन गप करने लगी ।

ईश्वरोऽपि दिवसात्ययोचितं मन्त्रपूर्वमनुतस्थिवान्विधिम् ।
पार्वतीमवचनामसूयया प्रत्युपेत्य पुनराह सस्मितम् ॥५०॥

अन्वयः—दिवसात्ययोचितम् विधिम् मन्त्रपूर्वं अनुतस्थिवान् ईश्वरः अपि असूयया अवचनाम् पार्वतीं प्रति उपेत्य पुनः सस्मितम् आह ।

संजी०—ईश्वर इति ॥ दिवसात्यये सायंकाल उचितं विधिं मन्त्रपूर्वं यथा तथानुतस्थिवान्कृतवानीश्वरोऽप्यसूयया मां त्यक्त्वा गत इत्यभिप्रायगर्भितयेर्ष्ययावचनामभाषमाणाम् । 'वच परिभाषणे' । कर्तरि ल्युः । पार्वतीं प्रत्युपेत्य समीपमागत्य पुनः सस्मितं यथा तथाहोक्तवान् ॥५०॥

हिन्दी—उधर सायङ्कालीन विधि को मन्त्रों के साथ संपादन कर भगवान् सदाशिव ईर्ष्या से मौन धारण करने वाली अत एव अवचना पार्वती के पास आकर पुनः मन्द-मन्द मुसकुराते हुए बोले।

मुञ्च कोपमनिमित्तकोपने संध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्यया।
किं न वेत्सि सहधर्मचारिणं चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः ॥५१॥

अन्वयः—अनिमित्तकोपने कोपं मुञ्च। यतः अस्मि संध्यया प्रणमितः। न अन्यया। आत्मनः सहधर्मचारिणीम् चक्रवाकसमावृत्तिं किं न वेत्सि।

संजी०—मुञ्चेति॥ हे अनिमित्तकोपनेऽकारणकोपने, कोपं क्रोधं मुञ्च। यतोऽस्म्यहं संध्यया कर्त्र्या। प्रणमितो नान्यया। अहं संध्यावशं गतो नान्यवशं गतः। अतः कोपं मा कुर्वित्यर्थः। अथ च। आत्मनः सहधर्मचारिणं माम्। संध्यां कर्तुं गच्छन्तमिति शेषः। चक्रवाकेन समा वृत्तिर्यस्य तं किं न वेत्सि। इदानीमुभयोः प्रियाविरहखिन्नत्वादिति भावः॥५१॥

हिन्दी—शंकर जी बोले—हे अकारणक्रोध करने वाली प्रियतमे! क्रोध का त्याग करो। मैं केवल सन्ध्या के वशीभूत हूँ। अन्य के नहीं। मैं अपनी सहधर्मचारिणी तुम्हारे साथ ही धर्म का आचरण करने वाला हूँ। क्या तुम चकवे के समान अपना सच्चा प्रेमी मुझे नहीं समझती? जो परस्पर विरहित होने पर खिन्न हो जाते हैं।

निर्मितेषु पितृषु स्वयंभुवा या तनुः सुतनु पूर्वमुज्झिता।
सेयमस्तमुदयं च सेवते तेन मानिनि ममात्र गौरवम् ॥५२॥

अन्वयः—हे सुतनु! स्वयंभुवा निर्मितेषु पितृषु या तनुः पूर्वम् उज्झिता सा इयम् अस्तम् उदयम् च सेवते। तेन मानिनि मम अत्र गौरवम् अस्ति।

संजी०—निर्मितेष्विति॥ हे सुतनु, स्वयंभुवा ब्रह्मणा निर्मितेषु कल्पितेषु पितृषु तनुः सूक्ष्मा या संध्या पूर्वमुज्झिता सेयं संध्यास्तमुदयं च सेवते। तेन कारणेन हे मानिनि, ममात्र गौरवमादरः। अस्तीत्यर्थः॥५२॥

हिन्दी—हे सुन्दरि देखो! ब्रह्मदेव ने पितरों की रचना कर लेने के उपरान्त अपने जिस सूक्ष्म सन्ध्यारूप शरीर का त्याग किया, वहीं सन्ध्या उदय एवं अस्त भाव को प्राप्त होती है। हे मानिनि, इसीलिए मेरा उसमें से विशेष आदर है।

तामिमां तिमिरवृद्धिपीडितां शैलराजतनयेऽधुना स्थिताम्।
एकतस्तटतमालमालिनीं पश्य धातुरसनिम्नगामिव ॥५३॥

अन्वयः—शैलराजतनये ताम् इमाम् अधुना एकतः तिमिरवृद्धिपीड़िताम् (अत एव) तटतमामालिनीम् धातुरसनिम्नगाम् इव स्थितां पश्य।

संजी०—तामिति ॥ हे शैलराजतनये प्रिये, तामिमां संध्यामधुनैकतः पूर्वत्र तिमिरवृद्धिपीडितामतएव तटे तमालानां माला यस्यास्तथोक्तां धातूनां गैरिकादीनां रसस्य निम्नगां नदीमिव स्थितां पश्य । उपमालंकारः । मालिनीत्यत्र 'व्रीह्यादिभ्यश्च' इतीनिः ॥५३॥

हिन्दी—हे शैलराजपुत्रि देखो, इस समय एक ओर अन्धकार से बढ़ती हुई यह संध्या ऐसी लग रही है जैसे तमाल वृक्षों से एक ओर घिरी हुई कोई गेरू की धारा हो ।

सान्ध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा बिभर्ति दिक् ।
साम्परायवसुधासशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुज्झितम् ॥५४॥

अन्वयः—अपरा दिक् अस्तमितशेषं सान्ध्यम् रक्तलेखं सांपराय वसुधासशोणितम् तिर्यग् उज्झितम् मण्लाग्रम् इव आतपम् बिभर्त्ति ।

संजी०—सांध्यमिति ॥ अपरा प्रतीची दिक् । अस्तमितं शेषं च सांध्यम् । तथा रक्तालेखा पंक्तिर्यस्य । तथा सांपराया सांग्रामिकी या वसुधा तत्र सशोणितं सरक्तमतएव तिर्यगुज्झितं त्यक्तं मण्डलस्याग्रमिव स्थितमातपं बिभर्ति ॥५४॥

हिन्दी—पश्चिम दिशा में अस्त होने से बची हुई सायंकालिक लालिमायुक्त धूप की पतली एवं टेढ़ी रेखा ऐसी प्रतीत हो रही है मानो युद्धभूमि में लोहू से भरी हुई कोई तिरछी टूटी-फूटी तलवार का अग्र भाग दिखाई दे रही हो ।

यामिनीदिवससंधिसंभवे तेजसि व्यवहिते सुमेरुणा ।
एतदन्धतमसं निरंकुशं दिक्षु दीर्घनयने विजृम्भते ॥५५॥

अन्वयः—हे दीर्घनयने ! यामिनीदिवससंभवे तेजसि सुमेरुणा व्यवहिते (सति) निरङ्कुशम् एतत् अन्धतमसम् दिक्षु विजृम्भते ।

संजी०—यामिनीति ॥ हे दीर्घनयने प्रिये, यामिनीदिवसयोः संधौ संध्यायां संभवति तथोक्ते सांध्ये तेजसि सुमेरुणा व्यवहितेऽन्तर्हिते सति निरङ्कुशं निरर्गलमेतत्पुरोवर्त्यन्धतमसं गाढं तमो दिक्षु विजृम्भते प्रसरति । संध्यापि विलीनेत्यर्थः ॥५५॥

हिन्दी—हे विशालनयनों वाली प्रिये देखो, सूर्यास्त के समय रात तथा दिन का मेल कराने वाली इस संध्या का सारा प्रकाश सुमेरु पहाड़ से व्यवधान हो जाने के कारण रुक गया है जिससे यह अन्धकार मनमाने रूप से दिशाओं में चारों तरफ से फैल रहा है ।

नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।
लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ।।५६।।

अन्वयः—निशि तिमिरौघवेष्टितः एवः लोकः गर्भवास इव वर्त्तते ईक्षणगतिः ऊर्ध्वं न तथा अधः च अपि न, अभितः पुरतः न पृष्ठतः (अपि) न ।

संजी०—नोर्ध्वमिति ।। निशि तिमिरौघेण वेष्टित एष लोको गर्भवास इव वर्तते । गर्भस्थित इव प्रतिभासमानत्वादिति भावः । यत ईक्षणानां लोकनेत्राणां गतिः प्रसर ऊर्ध्वं न । तथाधोऽपि न । तथाभितो वामदक्षिणोऽपि न । तथा पुरतो न । पृष्ठतश्च न । गर्भस्थितवज्जनैः कुत्रापि नावलोक्यत इत्यर्थः । ततो निशावृत्तौ गर्भवृत्तित्वोत्प्रेक्षा ।।५६।।

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! इस रात्रि के समय अन्धकार से घिरा हुआ सारा संसार ऐसा लग रहा है मानो गर्भवास में झिल्ली से घिरा हुआ कोई बालक हो, जिसे न ऊपर दिखाई दे रहा है न नीचे, न आस-पास और न सामने ही ।

शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत् ।
सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ्महत्त्वमसतां हृतान्तरम् ।।५७।।

अन्वयः—शुद्धम् आविलम् अवस्थितम् चलम् वक्रम् आर्जवगुणान्वितम् च यत् (तत्) सर्वम् एव तमसा समीकृतम् । असताम् महत्त्वं धिक् । यतः हृतान्तरम् ।

संजी०—शुद्धमिति ।। शुद्धं निर्मलमाविलं मलिनमवस्थितं स्थिरं चलं चरिष्णु वक्रं कुटिलमार्जवगुणेनर्जुत्वगुणेनान्वितं सरलं च यत् । तत्सर्वमेव तमसा समीकृतम् । तमोव्याप्त्या पृथगभासमानत्वादिति भावः । तथाहि । असतां कादाचित्कमपि महत्त्वं धिक् । यतो हृतान्तरं समीकृतसदसद्गुणम् । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ।।५७।।

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! इस अन्धकार ने तो उजली, मैली, अचल, चल, टेढ़ी तथा सीधी विभिन्न गुणों से युक्त सभी वस्तुओं को एक समान कर दिया है । दुष्टों की इस प्रकार की महत्ता को धिक्कार है जो अच्छे-बुरों का अन्तर ही मिटा देती है ।

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये ।
पुण्डरीकमुखि पूर्वदिङ्मुखं कैतकैरिव रजोभिराहतम् ।।५८।।

अन्वयः—हे पुण्डरीकमुखि ! नूनम् यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसः निषिद्धये उन्नमति । केतकैः रजोभिः इव आहतम् पूर्वदिङ्मुखं पश्य ।

संजी०--नूनमिति ।। हे पुण्डरीकमुखि कमलमुखि प्रिये, नूनं यज्वनां द्विजानां पतिश्चन्द्रः शार्वरस्य शर्वरीसंबन्धिनस्तमसो निषिद्धये निवृत्ताय उन्नमत्युदेति । अतएव कैतकैः केतकसंबन्धिभी रजोभिरिवाहतं व्याप्तं पूर्वदिशो मुखम् । पश्येति शेषः ।।५८।।

हिन्दी--हे कमलनेत्रे देखो ! मालूम पड़ रहा है कि चन्द्रदेव अब इस रात्रि का अन्धकार दूर करने के लिए धीरे-धीरे पूर्व दिशा में निकले चले आ रहे हैं। धीरे-धीरे फैलता हुआ उनका यह प्रकाश केतकी के पराग जैसा प्रतीत हो रहा है।

मन्दरान्तरितमूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका ।
त्वं मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः ।।५९।।

अन्वयः--सतारका निशा मन्दरान्तरितमूर्त्तिना शशभृता प्रिय सखीसमागता त्वम् पृष्ठतः वचनानि श्रोष्यता मया इव लक्ष्यते ।

संजी०--मन्दरेति ।। सतारका सनक्षत्रा निशा रात्रिर्मन्दरेण गिरिणान्तरिता मूर्तिर्यस्य तेन शशभृता चन्द्रेण प्रियसखीभिः समागता मिलिता त्वं पृष्ठतः स्थित्वा वचनानि श्रोष्यता मयेव लक्ष्यते । उपमालंकारः ।।५९।।

हिन्दी--हे प्रिये देखो, तारे निकल आये हैं किन्तु चन्द्रमा अभी मन्दराचल के पीछे ही है अतः तारों तथा चन्द्रमा के बीच की यह रात उसी प्रकार दिखाई पड़ रही है जैसे सामने बैठी हुई सखियों तथा छिप कर तुम लोगों की बात सुनने के लिए पीछे खड़े मेरे बीच में तुम सुशोभित होती हो ।

रुद्धनिर्गमनमा दिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम् ।
एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिग्रहस्यमिव रात्रिनोदितम् ।।६०।।

अन्वयः—आदिनक्षयात् रुद्धनिर्गमनम् पूर्वदृष्टतनु एतत् चन्द्रमण्डलम् रात्रिनोदितम् चन्द्रिकास्मितम् दिग्रहस्यम् उद्गिरति इव ।

संजी०--रुद्धमिति ।। आ दिनक्षयाद्दिनक्षयं मर्यादीकृत्य रुद्धनिर्गमनं रुद्धोदयम् । अथ च । पूर्वस्यां दृष्टा तनुर्यस्य । 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इति पूर्वशब्दस्य पुंवद्भावः । एतच्चन्द्रमण्डलं कर्तृ । रात्र्या नोदितं कथयितुं प्रेरितं सत् । चन्द्रिकैव स्मितं यस्मिन्कर्मणि यथा तथा दिशः पूर्वस्या रहस्यमुद्गिरतीव वमतीव । यथा सेर्ष्या काचित्केनचिद्द्वारा सपत्नीरहस्यं कथयति तथा रात्रिरूपा स्त्री दिग्रूपायाः स्त्रियो रहस्यं तदवयवप्रदर्शनं प्रकटयति त्वं पश्येत्यभिप्रायः । उत्प्रेक्षालंकारः ।।६०।।

हिन्दी--प्रातःकाल से दिनक्षयपर्यन्त न दिखाई पड़ने वाला यह चन्द्रमा अब

पूर्वदिशा में मूर्तिमान् हो उठा है, मानो रात्रि की प्रेरणा से चाँदनी के बहाने मुसकुराते हुए सपत्नीरूप पूर्व दिशा का सारा रहस्य खोल रहा हो।

विमर्श—जैसे ईर्ष्यावश कोई सपत्नी किसी के द्वारा अपनी सपत्नी का रहस्य प्रकट करवाती है। उसी प्रकार ईर्ष्या से भरी यह रात्रि भी चन्द्रमा के द्वारा सपत्नी रूप दिशा के रहस्यों को प्रगट करा रही है।

पश्य पक्वफलिनीफलत्विषा बिम्बलाञ्छितवियत्सरोम्भसा।
विप्रकृष्टविवरं हिमांशुना चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते ॥६१॥

अन्वयः—पक्वफलिनीफलत्विषा विम्बलाञ्छितवियत्सरोऽम्भसा हिमांशुना चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते विप्रकृष्टविवरम् पश्य।

संजी०—पश्येति ॥ पक्वा या फलिनी तस्या फलं तस्य त्विडिव त्विड् यस्य। तथा बिम्बेन लाञ्छितं योजितं वियत्सरोऽम्भश्च येन। उभयत्रापि दृश्यमानेनेत्यर्थः। हिमांशुना चन्द्रेण कर्त्रा। चक्रवाकयोर्मिथुनं तीरस्थं विडम्ब्यते प्रतार्यते। यतो विप्रकृष्टं न जातं विवरमन्तरमुभयोस्तारतम्यं यस्य। त्वं पश्य। सरःप्रतिबिम्बितचन्द्रमण्डलं फलिनीफलभ्रान्त्या जिघृक्षुतारुर्त्तकमुद्दिश्य गच्छन्मिथुनं वस्तुतस्तु तत्र फलिनीफललाभाभावान्न्यस्तशस्त्रेण भूयत इति भावः। 'फलिन्यग्निशिखायां च फलिन्याम्' इति मेदिनी ॥६१॥

हिन्दी—हे प्रिये ! पके हुए प्रियङ्गु फल की कान्ति के समान कान्ति वाले आकाश में विम्ब रूप से तथा तालाब में उसी प्रकार की परछाईं के पड़ने से प्रतिबिम्ब रूप विम्ब प्रतिरूप से इस प्रकार उभयत्रापि दृश्यमान यह चन्द्रमा तालाब के तट पर रहने वाले इन चक्रवाक मिथुनों को ठग रहा है तो उसके तालाब में स्थित प्रतिविम्ब को प्रियङ्गु फल की भ्रान्ति से पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं किन्तु उनके हाथ लगता नहीं। इस प्रकार दोनों प्रकार के चन्द्रों में अन्तर न होने से उनका तारतम्य देखो।

शक्यमोषधिपतेर्नवोदयाः कर्णपूररचनाकृते तव।
अप्रगल्भयवसूचिकोमलाश्छेत्तुमग्रनखसंपुटैः कराः ॥६२॥

अन्वयः—नवोदयाः अप्रगल्भ यवसूचिकोमलाः ओषधिपततेः कराः कर्णपूररचनाकृते तव अग्रनख संपुटैः छेत्तूं शक्यम्।

संजी०—शक्यमिति ॥ हे प्रिये, नव उदयो येषाम्। तथाऽप्रगल्भा नूतना ये यवास्तेषां सूचयोऽङ्कुरास्तद्वत्कोमलाः। ओषधीनां पत्युश्चन्द्रस्य कराः किरणाः कर्णपूरस्य रचनाकृते रचनायै तवाग्राणि ये नखसंपुटास्तैः। तेषामतितैक्ष्ण्यादिति भावः। छेत्तुं द्विधाकर्तुं शक्यम्। शक्तैर्भूयत इत्यर्थः।

शक्नोतेः 'ऋहलो-' इति भावे ण्यत् । यवाङ्कुरवत्कोमलांश्चन्द्रकरानुत्तार्य त्वया कर्णपूरं कर्तुमुत्साहः क्रियतामिति भावः ।। ६२ ।।

हिन्दी--हे प्रिये ! चन्द्रमा की अत्यन्त कोमल यवाङ्कुर के समान नवीन निकलने वाली इन किरणों को यदि तुम चाहो तो अपने कर्णफूल बनाने के लिए नाखूनों के संपुट से तोड़ सकती हो ।

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ।।६३।।

अन्वय--शशी कुड्मलीकृतसरोजलोचनम् रजनीमुखम् अङ्गुलीभिः इव मरीचिभिः इव तिमिरम् संनिगृह्य चुम्बति इव ।

संजी०—अङ्गुलीभिरिति ।। शशी चन्द्रः । कुड्मलीकृते मीलिते सरोजे एव लोचने यस्य तत्तथोक्तं रजन्या मुखं वदनम् । अङ्गुलीभिरिव मरीचिभिः किरणैः केशसंचयमिव तिमिरं तमः संनिगृह्य हठाद् गृहीत्वा चुम्बतीव । अन्योऽपि कश्चिच्चुम्बन्केशसंचयं संनिगृह्णाति । चुम्बनसमये केशसंनिग्रहे यः कोऽपि रसोद्बोधः स तद्वेद्यैकवेद्य इत्यर्थः । समासोक्तिरलंकारः ।। ६३ ।।

हिन्दी--(चन्द्रमा की किरणों के फैलने से अन्धकार नष्ट हो रहा है, तालावों के कमल संकुचित हो रहे हैं) चन्द्रमारूपी नायक रात्रिरूपी नायिका के मुख पर बिखरे हुए बालरूपी अन्धकार को अङ्गुलीरूपी किरणों से हटा कर उसका चुम्बन ले रहा है जिससे आनन्दविभोर हो जाने के कारण उसके कमल के समान नेत्र अपने आप संकुचित हो गये हैं । हे प्रिये इसे देखो ।

पश्य पार्वति नवेन्दुरश्मिभिर्भिन्नसान्द्रतिमिरं नभस्तलम् ।
लक्ष्यते द्विरदभोगदूषितं सप्रसादमिव मानसं सरः ।।६४।।

अन्वयः--पार्वति नवेन्दुरश्मिभिः भिन्नसान्द्रतिमिरं नभस्तलं द्विरदभोगदूषितम् सप्रसादम् मानसं सरः इव लक्ष्यते पश्य ।

संजी०—पश्येति ।। हे पार्वति, नवस्येन्दो रश्मिभिर्भिन्नं सान्द्रं सघनं तिमिरं यस्य तन्नभस्तलं द्विरदभोगेन दूषितं मलिनं प्राक्पुनश्च कालान्तरेण सप्रसादं निर्मलमानसं सर इव लक्ष्यते । त्वं पश्य । जलस्य नीलत्वादिति भावः ।। ६४ ।।

हिन्दी—हे पार्वती नवोदित चन्द्रमा की किरणों से घने अँधेरे के मिट जाने के कारण इस निर्मल आकाश को देखो । जो प्रथम हाथियों के जलक्रीड़ा से मटमैला पश्चात् उनके चले जाने पर निर्मल जल वाले तालाब के समान दिखाई पड़ रहा है । इसे देखो ।

रक्तभावमपहाय चन्द्रमा जात एष परिशुद्धमण्डलः ।
विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ॥६५॥

अन्वयः—एकः चन्द्रमा रक्तभावम् अपहाय परिशुद्धमण्डलः जातः । निर्मलप्रकृतिषु कालदोषजा विक्रिया स्थिरोदया न (भवति) खलु ।

संजी०—रक्तभावमिति ॥ हे प्रिये, एष चन्द्रमा रक्तभावं रक्तिमानमपहाय मुक्त्वा परिशुद्धं विशदं मण्डलं यस्य तथोक्तो जातः । तथाहि । निर्मलप्रकृतिषु वस्तुषु कालदोषेण जाता विक्रिया विकारः स्थिर उदय उत्पत्तिर्यस्यास्तादृशी न भवति खलु । सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ॥ ६५ ॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो, अब यह चन्द्रमा धीरे-धीरे अपनी लालिमा त्यागकर उजला होता जा रहा है । क्योंकि निर्मल अन्तःकरणवालों में समय के फेर से यदि कोई विक्रिया आ भी जाती है तो वह स्थिर हो कर बहुत दिनों तक टिकती है ।

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः ।
नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः ॥६६॥

अन्वयः—शशिनः प्रभा उन्नतेषु स्थिता (वर्त्तते) निशातमः निम्नसंश्रयपरम् (तथाहि) गुणदोषयो गतिः वेधसा आत्मसदृशी प्रकल्पिता हि नूनम् ।

संजी०—उन्नतेष्विति ॥ हे प्रिये, शशिनः प्रभा चन्द्रिकोन्नतेषु स्थलेषु स्थिता वर्तते । तथा निशातमः कर्तृ । निम्नेषु नीचेषु संश्रयो यस्य तत्तथोक्तं वर्तते । तथाहि । गुणदोषयोर्गतिर्वेधसा विधिना । आत्मना नीचेनोच्चेन च सदृशी प्रकल्पिता रचिता हि नूनम् । नीचात्मा नीचस्थ एव भवति । उच्चात्मा उच्चस्थ एवेत्यर्थः ॥ ६६ ॥

हिन्दी—पार्वती देखो, चन्द्रमा की कान्ति ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर स्थिर हो गयी है । किन्तु पृथ्वी के नीचे वाले भागों में अब भी अन्धकार विद्यमान है । वस्तुतः ब्रह्मा ने गुण और दोष की स्थिति ही ऐसी बनाई है कि गुण उच्च स्थान को ग्रहण करता है और दोष नीचे की ओर स्थित रहता है ।

चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः ।
मेखलातरुषु निद्रितानमून्बोधयत्यसमये शिखण्डिनः ॥६७॥

अन्वयः—गिरिः मेखलातरुषु निद्रितान् अमून् शिखण्डिनः चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिः चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिः असमये बोधयति ।

संजी०—चन्द्रेति ॥ गिरिर्मेखलासु नितम्बेषु ये तरवस्तेषु निद्रितान्सु-

प्तानमूञ्शिखण्डिनो मयूरान्। चन्द्रस्य पादैर्जनिता प्रवृत्तिर्निर्गमनं येषां तैश्चन्द्रकान्तस्य ये जलबिन्दवस्तैः कृत्वाऽसमये बोधयति जागरयति। 'मेखला खड्गबन्धे स्यात्काञ्चीशैलनितम्बयोः' इति मेदिनी ॥ ६७ ॥

हिन्दी--यह पहाड़ ढाल पर उगे हुए वृक्षों के नीचे सोये हुए इन मयूरों को चन्द्रमा की किरणों के पड़ने के कारण चन्द्रकान्त मणियों से हुए जलबिन्दुओं की वर्षा के द्वारा उन्हें असमय में ही जगा देता है।

कल्पवृक्षशिखरेषु संप्रति प्रस्फुरद्भिरिव पश्य सुन्दरि।
हारयष्टिरचनामिवांशुभिः कर्तुमागतकुतूहलः शशी ॥६८॥

अन्वयः--सुन्दरि संप्रति शशी प्रस्फुरद्भिः अंशुभिः हारयष्टिरचना कर्त्तुं इव आगतकुतूहलः कल्वृक्षशिखरेषु वर्त्तते। इव किम्। पश्य।

संजी०—कल्पेति ॥ हे सुन्दरि, संप्रति शशी चन्द्रः प्रस्फुरद्भिरंशुभिः कृत्वा हारयष्टिरचनां कर्तुमिवागतं कुतूहलं यस्य तथोक्तः सन्। कल्पवृक्षयुक्तेषु शिखरेषु। वर्तत इति शेषः। इव किम्। त्वं पश्य। यथा कश्चिन्नीलपट्टसूत्रेण मुक्ताहारं विरलतया योजयति तथायं चन्द्रोऽपि वृक्षपत्रान्तरालगतस्वीयकिरणमुक्ताफलैर्वृक्षपत्रच्छायरूपिणा नीलेन पट्टसूत्रेण च हारयष्टिं कर्तुमिवेहागत इति भावः ॥ ६८ ॥

हिन्दी—हे सुन्दरि देखो! इस समय यह चन्द्रमा चमकती हुई किरण रूपी करों से कल्पवृक्ष के पुष्पों की हार रचना करने के लिए कुतूहलवश उसी की चोटियों पर स्थित हो गया है।

उन्नतावनतभाववत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तहस्तिनः ॥६९॥

अन्वयः—गिरेः उन्नतावनतभाववत्तया सतिमिरा इयम् चन्द्रिका बहुविधाभिः भक्तिभिः अर्पिता मत्तहस्तिनः भूतिः इव भाति।

संजी०—उन्नतेति ॥ हे प्रिये, गिरेरुन्नतावनतभाववत्तया सतिमिरेयं चन्द्रिका बहुविधाभिर्भक्तिभी रचनाभिरर्पिता मत्तहस्तिनो भूतिः संपदिव भाति। उपमालंकारः ॥ ६९ ॥

हिन्दी—ऊँचा-नीचा होने के कारण कहीं चाँदनी और कहीं अन्धकारयुक्त होने के कारण यह पहाड़ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो किसी मतवाले हाथी के शरीर पर अनेक प्रकार की रचना की संपत्ति प्रगट हो रही हो।

एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दवं वोढुमक्षममिव प्रभारसम् ।
मुक्तषट्पदविरावमञ्जसा भिद्यते कुमुदमा निबन्धनात् ॥७०॥

अन्वयः--उच्छ्वसितपीतम् ऐन्दवम् प्रभारसम् वोढुम् अक्षमम् इव एतत् कुमुद मुक्तषट्पदविरावम् अञ्जसा आ निबन्धनात् भिद्यते ।

संजी० - एतदिति ॥ उच्छ्वसितं यथा तथा पीतमैन्दवं चान्द्रं प्रभारसं वोढुमक्षममिवैतत्कुमुदम् । मुक्तः षट्पदानां भ्रमराणां विरावः शब्दो येन तत्तथोक्तं सत् । अञ्जसा झटिति । 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्वाय' इत्यमरः । आ निबन्धनान्निरवशेषबन्धनाद्भिद्यते । सकर्मकाणामपि कर्माविवक्षयाऽकर्मकत्वात्कर्मकर्तरि लट् । अन्योऽपि बहुमात्रादिरसं पिबन्भिन्नोदरो भवति तद्वत् ॥ ७० ॥

हिन्दी—देखो कुमुद खिल रहे हैं और उनके संपुटों से भ्रमरों के गुञ्जार स्पष्ट सुनाई पड़ रहे हैं । जिनसे प्रतीत हो रहा है कि इन कुमुदों ने साँस ले-लेकर चाँदनी का इतना रस पी लिया है कि उसे पचा न सकने के कारण इनके पेट फटे जा रहे हैं और भौंरो के गुञ्जार के बहाने ये पीड़ा से कराह रहे हैं ।

पश्य कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूपसंशयम् ।
मारुते चलति चण्डिके बलाद्व्यज्यते विपरिवृत्तमंशुकम् ॥७१॥

अन्वयः—चण्डिके कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूप संशयम् अंशुकम् मारुते चलति (सति) विपरिवृत्तम् बलाद् व्यज्यते त्वं पश्य ।

संजी०—पश्येति ॥ हे चण्डिके, कल्पतरौ लम्बि लम्बायमानत्वेन वर्तमानं शुद्धया ज्योत्स्नया चन्द्रकान्त्या जनितो रूपस्य संशयः संदेहो यत्र । उभयोरपि शुक्लत्वादिति भावः । एतादृशमंशुकं वस्त्रं मारुते चलति सति विपरिवृत्तं सद्बलाद्व्यज्यते । व्यक्तत्वेन ज्ञायत इत्यर्थः । त्वं पश्य ॥ ७१ ॥

हिन्दी —हे चण्डिके ! इन कल्पवृक्षों में लटकते हुए इन कपड़ों तथा उन पर पड़ने वाली निर्मल चाँदनी को देखो ! दोनों एक समान होने के कारण पहचानने में संदेह पैदा कर रहे हैं । इसका भेद तो तब ज्ञात होता है जब वायु के चलते से बलात् वे कपड़े हिलने लगते हैं ।

शक्यमङ्गुलिभिरुत्थितैरधः शाखिनां पतितपुष्पपेशलैः ।
पत्रजर्जरशशिप्रभालवैरेभिरुत्कचयितुं तवालकान् ॥७२॥

अन्वयः --अधः पतितपुष्पपेशलैः अङ्गुलिभिः उत्थितैः एभिः शाखिनाम् पत्रजर्जर शशिप्रभालवैः तव अलकान् उत्कचयितु शक्यम् ।

संजी०—शक्यमिति ।। हे प्रिये, अधः पतितपुष्पवत्पेशलैः सुन्दरैः। तथाङ्गुलिभिरुत्थितैरुत्थापितैरेभिः पुरोवर्तिभिः शाखिनां संबन्धिभिः पत्रैर्जर्जरिता ये शशिनः प्रभाया लवा अंशास्तैस्तवालकानुत्कचयितुमुद्ग्रथितुं शक्यम्। शक्येन भूयतामित्यर्थः। काचित्तव सखी पुष्पप्रतिनिधित्वेन वृक्षाधःपतितजर्जरीभूतचन्द्रकान्तिशकलैः केशानुद्ग्रथयत्विति भावः ।।७२।।

हिन्दी—जर्जर पत्तों से छनकर आने वाली चन्द्रिका के छोटे-छोटे ये अंश वृक्षों से गिरे मनोहर फूल जैसे प्रतीत हो रहे हैं, अतः यदि तुम चाहो तो इन्हीं को अंगुलियों से उठा कर तुम्हारी कोई सखी तुम्हारे बालों में गूँथ देवे।

एष चारुमुखि योग्यतारया युज्यते तरलबिम्बया शशी।
साध्वसादुपगतप्रकम्पया कन्ययेव नवदीक्षया वरः ।।७३।।

अन्वयः—चारुमुखि ! एषः शशी वरः नवदीक्षया अतएव साध्वसाद् उपगतप्रकम्पया कन्यया इव तरलबिम्बया योग्यतारया युज्यते (त्वं पश्य)।

संजी०—एष इति ।। हे चारुमुखि, एष शशी। वरः परिणेता नवदीक्षया नवपरिणीतयात एव साध्वसाद्भयादुपगतः प्रकम्पो यस्यास्तया कन्ययेव। तरलबिम्बया चपलमण्डलया योग्यतारया सदृशतारकया युज्यते युनक्ति। त्वं पश्य ।। ७३ ।।

हिन्दी—हे चन्द्रमुखि देखो, यह चन्द्रमा रूप वर नवीन परिणय की दीक्षा लेकर अभी आया है और संभोग के भय से काँपती हुई कन्या के समान चञ्चल मण्डलवाली अपनी सदृश ताराख्पी वधू से संयुक्त होना चाहता है।

पाकभिन्नशरकाण्डगौरयोरुल्लसत्प्रकृतिजप्रसादयोः ।
रोहतीव तव गण्डलेखयोश्चन्द्रबिम्बनिहिताक्षिण चन्द्रिका ।।७४।।

अन्वयः—चन्द्रबिम्बनिहिता तव अक्षिण चन्द्रिका पाकभिन्न शरकाण्डगौरयोः उल्लसत्प्रकृतिजप्रसादयोः गण्डलेखयोः रोहति इव।

संजी०—पाकमिति ।। हे प्रिये, चन्द्रबिम्बेन निहिता स्थापिता तवाक्षिण नेत्रे या चन्द्रिका सा। पाके भिन्नो यः शरकाण्डस्तृणविशेषस्तद्वद्गौरयोः। तथोल्लसन्प्रकृतिजः स्वभावजः प्रसादः प्रसन्नता ययोस्तयोस्तव गण्डलेखयोरुपरि रोहतीव। आरोहणं करोतीवेत्युत्प्रेक्षा ।। ७४ ।।

हिन्दी—चन्द्रबिम्ब के द्वारा स्थापित की गयी तुम्हारी आँखों में रहने वाली चाँदनी पके हुए सरकण्डे के समान गोरे-गोरे तथा स्वाभाविक प्रसन्नता से खिले हुए तुम्हारे गालो पर मानो चढ़ती-सी जान पड़ती है।

लोहितार्कमणिभाजनार्पितं कल्पवृक्षमधु बिभ्रति स्वयम् ।
त्वामियं स्थितिमतीमुपागता गन्धमादनवनाधिदेवता ॥७५॥

अन्वय--लोहितार्कमणिभाजनार्पितम् कल्पवृक्षमधु विभ्रति इयं गन्धमादन-बनाधिदेवता स्थितिमतीम् त्वाम् स्वयम् उपागता (इति त्वं पश्य)

संजी०—लोहितेति ॥ लोहिता रक्ता येऽर्कमणयस्तेषां भाजनं पात्रं तत्रार्पितं स्थापितं कल्पवृक्षाणां मधु मकरन्दस्तद्बिभ्रतीयं गन्धमादनवनस्याधिदेवता स्थितिमतीं स्थिरां त्वामुद्दिश्य स्वयमुपागता । त्वं पश्य । तुभ्यं मदिरां दातुमागच्छतीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

हिन्दी—हे प्रिये देखो ! लालसूर्यमणि के भाजन में स्थापित कल्पवृक्ष की मदिरा लिए यह गन्धमादन वन की अधिष्ठातृ देवता तुम्हें यहाँ बैठी देखकर तुम्हारे स्वागत के लिए स्वयं पधारी है ।

आर्द्रकेसरसुगन्धि ते मुखं मत्तरक्तनयनं स्वभावतः ।
अत्र लब्धवसतिर्गुणान्तरं किं विलासिनि मदः करिष्यति ॥७६॥

अन्वयः--विलासिनी अत्र लब्धवसतिः मदः किं गुणान्तरं करिष्यति ते मुखं स्वभावतः आर्द्रकेसरसुगन्धि मत्तरक्तनयनम् अस्ति ।

संजी०—आर्द्रेति ॥ हे विलासिनि, अत्र लब्धा वसतिर्निवासो येन तथोक्तो मदः किं कीदृशं गुणान्तरमन्यं गुणं करिष्यति । अपि तु नेत्यर्थः । यतस्ते तव मुखं स्वभावतः स्वभावेनैवार्द्रकेशरवत्सुगन्धि । तथा मत्ते रक्ते नयने यस्य तथोक्तं चास्ति । ये ये मदगुणास्ते ते मदात्प्रागेव वर्तन्ते । अतः किमनेन मदेन कर्तव्यमिति भावः ॥ ७६ ॥

हिन्दी—हे विलासिनि ! भला यहाँ से उत्पन्न होने वाला यह मद्य तुम्हारे में कौन सा गुणान्तर प्रगट कर सकता है जब कि तुम्हारा मुख स्वभावतः केशर के गन्ध के समान सुगन्धि से परिपूर्ण है तथा आँखे स्वभावतः रक्तवर्ण की है ।

मान्यभक्तिरथवा सखीजनः सेव्यतामिदमनङ्गदीपनम् ।
इत्युदारमभिधाय शंकरस्तामपाययत पानमम्बिकाम् ॥७७॥

अन्वयः--अथवा मान्यभक्तिः सखीजनः अनङ्गदीपनम् इदम् सेव्यताम् इति उदारम् अभिधाय शंकरः ताम् अम्बिकाम् पानम् अपाययत् ।

संजी०—मान्यभक्तिरिति ॥ हे प्रिये, अथवा मान्या भक्तिर्भावो यस्य तादृशः सखीजनोऽनङ्गस्य कामस्य दीपनमिदं मधु सेव्यतामित्युदारमभिधाय शंकरस्तामम्बिकां पार्वतीं पानं मदिरामपाययत ॥ ७७ ॥

हिन्दी—अथवा हे प्रिये ! सखी जनो का आग्रह तो मान ही लेना चाहिये इसलिये काम वासना को उद्दीप्त करने वाली इस मदिरा को पीलो। इस प्रकार मधुर वाणी कहते हुए शङ्कर ने पार्वती को वह मदिरा स्वयं पिला दी।

पार्वती तदुपयोगसंभवा विक्रियामपि सतां मनोहराम् ।
अप्रतर्क्यविधियोगनिर्मितामाम्रतेव सहकारतां ययौ ॥७८॥

अन्वयः—पार्वती तदुपयोगसंभवाम् विक्रियाम् अपि सतां मनोहरां आम्रता अप्रतर्क्य विधियोगनिर्मितां सहकारताम् इव ययौ।

संजी०—पार्वतीति ॥ पार्वती कर्त्री। तदुपयोगसंभवां मद्यपानजन्यां विक्रियामपि सतां मनोहराम्। आम्रताम्रत्वमप्रतर्क्यो दुर्ज्ञेयो यो विधियोगोऽनुष्ठानयोगस्तेन निर्मितां सहकारतामतिसौरभत्वमिव ययौ। प्रापेत्यर्थः। 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः। आम्रमेवानुष्ठानविशेषेण यथा सहकारं भवति तद्वद्विक्रियापि मनोहराभूदिति भावः ॥ ७८ ॥

हिन्दी—उस मदिरा का प्रयोग करने के कारण पार्वती जी का स्वाभाविक सौन्दर्य विकृत हो जाने पर भी उसी प्रकार और भी मनोहर हो उठा वसन्त ऋतु में ब्रह्मदेव की कृपा होने पर जैसे आम का पेड़ अपनी पहली शोभा छोड़कर भी सुगन्धि से युक्त हो सहकार संज्ञा को धारण कर लेता है।

तत्क्षणं विपरिवर्तितह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः ।
सा बभूव वशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च ॥७९॥

अन्वयः—तत्क्षणम् सा सुवदना विपरिवर्त्तितह्रियोः इद्धरागयोः शयनं नेष्यतोः शूलिनः मदस्य च (इति) द्वयोः वशवर्त्तिनी बभूव।

संजी०—तत्क्षणमिति ॥ तत्क्षणं मदिरापानानन्तरसमय एव सा सुवदना पार्वती विपरिवर्तिता नष्टा ह्रीर्ययोरत एवेद्धः प्रवृद्धो रागो ययोरत एव शयनं नेष्यतोः। सुरतार्थमिति भावः। शूलिनः शिवस्य मदस्य चेत्यनयोर्द्वयोर्वशवर्तिनी वशंगता बभूव ॥ ७९ ॥

हिन्दी—उस मदिरा के पान करते ही वह सुमुखी पार्वती लज्जा को नष्ट कर देने वाले और राग (काम वासना) को बढ़ाने वाले तथा सुरत के लिए उत्सुकता पैदा कर शयन पर ले जाने वाले सदाशिव और मद इन दोनों के वशीभूत हो गई।

घूर्णमाननयनं स्खलत्कथं स्वेदबिन्दु मदकारणस्मितम् ।
आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पपौ ॥८०॥

अन्वयः—घूर्णमाननयनम् स्खलत्कथम् स्वेदविन्दु मदकारण स्मितम् उमामुखं ईश्वरः तावत् चिरं चक्षुषा पपौ आननेन तु न ।

संजी० - घूर्णेति ॥ घूर्णमाने नयने यत्र । तथा स्खलन्ती कथा वाग्यत्र । तथा स्वेदस्य बिन्दवो यत्र । मदरूपिणा कारणेन स्मितं मन्दहासश्च यत्र । तदुमायाः पार्वत्या मुखमीश्वरः शिवस्तावत्प्रथमं चिरं चक्षुषा पपौ सादरं ददर्श । आननेन तु न पपावित्यर्थः ॥ ८० ॥

हिन्दी—घूर्णमान नेत्रों से युक्त लड़खड़ाती वाणी का प्रयोग करने वाले स्वेद-बिन्दु से परिपूर्ण मद के कारण अनायास हँसी वाले ऐसे पार्वती के मुख को भगवान् शंकर बहुत देर तक अपनी आँखों से टकटकी लगा कर देखते रहे किन्तु मुख से चुम्बन नहीं किया ।

तां विलम्बितपनीयमेखलामुद्वहञ्जघनभारदुर्वहाम् ।
ध्यानसंभृतविभूतिरीश्वरः प्राविशन्मणिशिलागृहं रहः ॥८१॥

अन्वयः—ध्यानसंभृतविभूतिः ईश्वरः विलम्बितपनीयमेखलां जघनभारदुर्वहां तां (पार्वतीम्) उद्वहन् मणिशिलागृहं प्राविशत् ।

संजी०—तामिति ॥ ध्यानेन संभृता संपादिता विभूतिरुपभोगसाधन-संपत्तिर्येन स ईश्वरो विलम्बिनी तपनीयस्य सुवर्णस्य मेखला काञ्ची यस्या-स्ताम् । तथा जघनभारेण दुर्वहां दुःखेन वोढुं शक्याम् । वहतेः 'ईषद्दुः-सुषु कृच्छ्राकृच्छार्थेषु' इति खल् । तां पार्वतीमुद्वहन्सन् । रह एकान्ते मणि-शिलानां गृहं प्राविशत् ॥ ८१ ॥

हिन्दी—ध्यान मात्र से ही समस्त विभूतियों को उपस्थित कर देने वाले भगवान् सदाशिव सोने की करधनी में लटकाने वाली स्थूल जघनों के बोझ से दुःख पूर्वक ढोई जाने वाली अत्यन्त सुकुमार पार्वती को लेकर मणि शिलानिर्मित और सर्वथा एकान्त गृह में पहुँचे ।

तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनम् ।
अध्यशेत शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः ॥८२॥

अन्वयः—तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिन चारुदर्शनं शयनं रोहिणीपतिः शारदाभ्रम् इव प्रियासखः अध्यशेत ।

संजी०—तत्रेति ॥ तत्र मणिशिलागृहं स हरो हंस इव धवलं उत्तरच्छदः शयनोपरितनं वस्त्रं यस्य । तथा जाह्नवीपुलिनवच्चारुदर्शनं यस्य तच्छयनं पल्यङ्कम् । रोहिणीपतिश्चन्द्रः शारदं शरत्कालिकमभ्रं मेघमिव । प्रियासखः

सन्। पार्वतीसहित इत्यर्थः। अध्यशेताशिश्रियत्। 'अधिशीङ्–' इति कर्मत्वम् ॥८२॥

हिन्दी—जिस प्रकार चन्द्रमा शरत्कालीन उज्ज्वल बादलों के बीच रोहिणी के साथ विश्राम करता है उसी प्रकार हंस के समान धवल चादरों से ढके तथा गङ्गा बालुकामय तट के समान मनोहर प्रतीत होने वाले पलंग पर शङ्कर जी ने अपनी प्रियतमा पार्वती के साथ शयन किया।

क्लिष्टकेशमवलुप्तचन्दनं व्यत्ययार्पितनखं समत्सरम्।
तस्य तच्छिदुरमेखलागुणं पार्वतीरतमभून्न तृप्तये ॥८३॥

अन्वयः—क्लिष्टकेशम् अवलुप्तचन्दनं व्यत्ययार्पितनखं समत्सरम् छिदुरमेखलागुणं तत् पार्वतीरतं तस्य तृप्तये न अभूत्।

संजी०—क्लिष्टेति॥ क्लिष्टा विक्लृप्ताः केशा यत्र। अवलुप्तं चन्दनं यत्र। व्यत्ययेनास्थानप्रयोज्यत्वेनार्पिता नखा यत्र। तथा समत्सरं सप्रणयकलहम्। तथा छिदुरो भङ्गशीलो मेखलागुणः काञ्चीसूत्रं यत्र। एतादृशं तत्पार्वतीरतं तस्य शिवस्य तृप्तये नाभूत्। कामोत्सवस्योद्वेलत्वादिति भावः ॥८३॥

हिन्दी—उस समय पार्वती के साथ शङ्कर जी ने ऐसा संभोग किया कि उनके केश बिखर गये स्तनों पर लगे हुए चन्दन मिट गये, नखचिह्न अपने समुचित स्थानों पर न हो कर विपरीत स्थानों में हो गये। इतना ही नहीं प्रणयकलह बढ़ गया कि मेखला सूत्र के टूट जाने से मणियों की बेड़िया जहाँ तहाँ बिखर उठी, किन्तु तब भी पार्वती के साथ उनकी रमणेच्छा तृप्त नहीं हुई।

केवलं प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पङ्क्तिषु।
तेन तत्प्रतिगृहीतवक्षसा नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् ॥८४॥

अन्वयः—ज्योतिषां पङ्क्तिषु अवनतासु केवलम् प्रियतमादयालुना तेन तत्प्रतिगृहीतवक्षसा नेत्रनिमीलनकुतूहलं कृतम्।

संजी०—केवलमिति॥ ज्योतिषां नक्षत्राणां पंक्तिष्ववनतासु सतीषु। रजन्यां प्रभातकल्पायां सत्यामित्यर्थः। केवलं प्रियतमायां दयालुना। न तु क्षीणशक्तिनेत्यर्थः। तेन शिवेन तया पार्वत्या प्रतिगृहीतमालिङ्गितं वक्षो यस्य तथोक्तेन सता नेत्रमीलनस्य। निद्राया इत्यभिप्रेतोऽर्थः। कुतूहलं कृतम्। सुप्तमित्यर्थः ॥८४॥

हिन्दी—इस प्रकार संभोग करते करते जब नक्षत्र पङ्क्ति का प्रकाश कम होने लगा (अर्थात् प्रातः काल की बेला हो गई) तब मात्र अपनी प्रियतमा पर दया

करने के लिए न कि हार कर शङ्कर जी ने पार्वती की छाती को आलिङ्गन कर नेत्र मूँद कर सोने का कुतूहल किया।

स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः शातकुम्भकमलाकरैः समम्।
मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किंनरैरुषसि गीतमङ्गलः ॥८५॥

अन्वयः—बुधस्तवोचितः सः उषसि मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किन्नरैः गीत-मङ्गलः शातकुम्भकमलाकरैः समं व्यबुध्यत।

संजी०—स इति॥ बुधानां बुधकर्तृके स्तव उचितः स शिव उषसि प्रभाते मूर्च्छनयोच्चारणस्वरारोहावरोहेण। तदनुसारेणेत्यर्थः। परिगृहीताः कैशिका वीणातन्तवो यैस्तैः किंनरैः किंपुरुषैर्गीतं मंगलं यस्य तथोक्तः सन्। शातकुम्भस्य सुवर्णस्य यानि कमलानि तेषामाकराः समूहास्तैः समं सह व्बुध्यत। जजागारेत्यर्थः। 'खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्' इति कोशप्रामाण्या-दाकरशब्दस्य खनिवाचकत्वे सत्यपि परिणतार्थपक्षपातेन समूहवाचकत्वमपि सोढव्यम्। दृश्यमानार्थे बाधस्य वक्तुमशक्यत्वात्॥८५॥

हिन्दी—इसके पश्चात् बुद्धिमानों के द्वारा स्तुति करने योग्य शङ्कर जी ने उषाकाल में गन्धर्वों के द्वारा वीणा का तार पकड़कर मङ्गल गान किये जाने पर सुवर्णमय कमलों के साथ ही अपनी निद्रा का त्याग किया।

तौ क्षणं शिथिलितोपगूहनौ दंपती चलितमानसोर्मयः।
पद्मभेदपिशुनाः सिषेविरे गन्धमादनवान्तमारुतः॥८६॥

अन्वयः—क्षणम् शिथिलितोपगूहनौ तौ दम्पती चलितमानसोर्मयः पद्मभेद-पिशुनाः गन्धमादनवनान्तमारुतः सिषेविरे।

संजी०—ताविति॥ क्षणं शिथिलितं विरामगोचरीकृतमुपगूहनमाश्लेषो याश्यां तौ दंपती स्त्रीपुंसौ गौरीहरौ कर्मभूतौ। चलिताश्चालिता मानसस्य सरस थर्मयस्तरंगा यैः। एतेन शैत्योक्तिः। तथा पद्मानां भेदस्य प्रफुल्लतायाः पिशुनाः सूचकाः अनेन सौगन्ध्योक्तिः। गन्धमादनवनान्तस्य लारुताः पवनाः सिषेविरे। सेवितवन्त इत्यर्थः॥८६॥

हिन्दी—उस समय क्षण मात्र के लिए परस्पर आलिङ्गन को शिथिलित करने वाले उन दोनों दम्पतियों कों की मान सरोवर में लहरों को पैदा करने वाली कमलों के उद्भिन्नता (विकास) की सूचना देने वाली तथा गन्धमान वन के भीतर चलने वाली हवाओं ने सेवा की।

ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः ।
वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत् ॥८७॥

अन्वयः—ऊरुमूलनखमार्गराजिभिः हृतविलोचनः हरः तत्क्षणं प्रशिथिलस्य वाससः संयमं कुर्वतीम् प्रियाम् अवारयत् ।

संजी०—ऊर्विति ॥ ऊरुमूले या नखमार्गाणां नखक्षतानां राजयः पंक्तयस्ताभिः कर्त्रीभिः हृते स्वविलोकनवशीकृते विलोचने यस्य तथोक्तो हरस्तत्क्षणं प्रभातसमये प्रकर्षेण शिथिलस्य वाससः संयमं बन्धनं कुर्वतीं प्रियतमां पार्वतीमवारयद् बन्धनं मा कुर्विति निवारयांचक्रे । नखक्षतविलोकनवशंवादत्वादिति भावः ॥८७॥

हिन्दी—उस समय वस्त्र के हट जाने से पार्वती की जाँघों पर किये गये संभोग कालीन नखचिह्नों की पङ्क्तियों को चाव से देखने वाले शंकर जी ने जाँघ पर से हटे अपने वस्त्रों को ठीक करने वाली पार्वती को ऐसा करने से रोक दिया ।

स प्रजागरकषायलोचनं गाढदन्तपरिताडिताधरम् ।
आकुलालकमरंस्त रागवान्प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम् ॥८८॥

अन्वयः—रागवान् सः प्रजागर कषाय लोचनम् गाढदन्तपरिताडिताधरम् आकुलालकम् भिन्नतिलकम् प्रियामुखं प्रेक्ष्य अरंस्त ।

संजी०—स इति ॥ रागवान्स हरः प्रजागरेण रात्रिजागरेण कषाये म्लाने लोचने यत्र । तथा गाढं यथा दन्तैः परिताडितोऽधरो यत्र । तथाकुला विरला अलकाः केशा यत्र । तथा भिन्नं तिलकं यत्र । एतादृशं प्रियाया मुखं प्रेक्ष्यारंस्त प्रससाद । आत्मनः कर्तृत्वादिति भावः ॥८८॥

हिन्दी—अनुराग में भरे हुए शंकर जी रात भर जागने के कारण लाल-लाल नेत्रों से युक्त गाढ़ दन्त क्षत से पीड़ित अधरों वाले बिखरे केशों वाले तथा मिटे हुए तिलक वाले प्रियतमा पार्वती के मुख को देख देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे ।

तेन भिन्नविषमोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलम् ।
निर्मलेऽपि शयनं निशात्यये नोज्झितं चरणरागलाञ्छितम् ॥८९॥

अन्वयः—निशात्यये निर्मले अपि तेन भिन्नविषमोत्तरच्छदम् मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलम् चरणरागलाञ्छितम् शयनम् न उज्झितम् ।

संजी०—तेनेति ॥ निशात्यये प्रभाते निर्मलेऽपि प्रकटेऽपि सति तेन हरेण भिन्नोऽत एव विषम उत्तरच्छद उपरितनं वस्त्रं यत्र । तथा मध्ये पिण्डिता एकत्रीभूता विसूत्रा सूत्ररहिता मेखला काञ्ची यत्र । तथा चरणारागेण याव-

केन लाञ्छितं रक्तीकृतं च शयनं नोज्झितं न त्यक्तम्। सुखार्णवमग्नत्वादिति भावः ॥८९॥

हिन्दी—जब दिन का प्रकाश अत्यन्त निर्मल हो गया उस समय भी शंकर जी ने सिकुड़े चादरों वाले, सूत्र के टूट जाने से एक जगह सिमट कर पड़ी हुई मोती की मेखला के लड़ियों से युक्त तथा अलक्तक के धब्बों से चिह्नित अपनी शय्या का त्याग नहीं किया।

स प्रियामुखरसं दिवानिशं हर्षवृद्धिजननं सिषेविषुः।
दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदनात् ॥९०॥

अन्वय—हर्षवृद्धिजननं प्रियामुखरसं दिवानिशं सिषेविषुः सः विजयानिवेदनात् दर्शनप्रणयिनाम् अदृश्यताम् आजगाम।

संजी०—स इति ॥ हर्षवृद्धेर्जननमुत्पादकं प्रियामुखरसं दिवानिशं सिषेविषुः सेवितुमिच्छति तथोक्तः स शिवो विजयया पार्वतीसख्या यन्निवेदनं स्वागमज्ञापनं तस्मात्। तद्द्वारेत्यर्थः। दर्शने प्रणयिनामभिलाषवतामप्तदृश्यतामदर्शनदातृत्वमाजगाम प्राप। सर्वं त्यक्त्वा तल्लय एव जात इति भावः ॥९०॥

हिन्दी—आनन्द बढ़ाने वाले प्रियतमा के अधर रस का दिन रात पान करने की इच्छा करने वाले शंकर जी इतने कामासक्त हो गए कि विजय के द्वारा बारम्बार निवेदन किए जाने पर भी दर्शन की इच्छा से आए हुए अपने भक्तों को दर्शन न देकर घर में अदृश्य होकर बैठे ही रहते थे।

समदिवसनिशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभोः
शतमगमदृतूनां साग्रमेका निशेव।
न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव
ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः ॥९१॥

अन्वयः—तत्र समदिवसनिशीथं सङ्गिनः तत्र शंभोः साग्रम् ऋतूनां शतम् एका निशा इव अगमत्। सुरतसुखेभ्यः तु समुद्रान्तर्गतः ज्वलन इव सजलौघैः छिन्नतृष्णः न बभूव।

संजी०—समदिवसेति ॥ तत्र गन्धमादनगिरौ समाः प्रत्येकं समसंख्याका ये दिवसा दिनानि तेषां निशीथमर्धरात्रम्। तमभिव्याप्येत्यर्थः। सङ्गिनः सङ्गवतः। न तु विषमदिन इत्यर्थः। शंभोः शिवसंबन्धि साग्रं किंचित्साधिकसंख्यमृतूनां शतमेका निशेव तत्तुल्यत्वेनागमद्व्यतीतम्। तथापि सुरतसुखेभ्यस्तु छिन्नतृष्णस्तृप्तो न बभूव। ततो न विररामेत्यर्थः। ज्वलन इव यथा

समुद्रान्तर्गतो ज्वलनो वाडवानलस्तज्जलौघैस्तृप्तो न भवति प्रत्यहं ज्वालयत्येव तद्वत्। मालिनीवृत्तम्—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति लक्षणात् ॥९१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीताराम-
कविविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्य उमा-
सुरतवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ।

हिन्दी—इस प्रकार शंकर जी ने रात-दिन समान रूप से पार्वती के साथ संभोग करते हुए सैकड़ों वर्षों को एक रात की भाँति बिता दिया, किन्तु तब भी उनकी पार्वती के साथ संभोग सुख की तृष्णा पूर्ण न हुई। जिस प्रकार निरन्तर समुद्र के जल के भीतर रहने पर भी वड़वाग्नि की प्यास निरन्तर जल पीते रहने पर भी नहीं बुझती।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के अष्टम सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

अथ नवमः सर्गः

तथाविधेऽनङ्गरसप्रसङ्गे मुखारविन्दे मधुपः प्रियायाः ।
संभोगवेश्म प्रविशन्तमन्तर्ददर्श पारावतमेकमीशः ॥१॥

अन्वय--प्रियायाः मुखारविन्दे मधुपः स ईशः तथाविधे अनङ्ग सप्रसङ्गे संभोगवेश्मान्तः प्रविशन्तम् एवं पारावतं ददर्श ।

संजी०—तथाविध इति ॥ प्रियायाः पार्वत्याः संबन्धिनि मुखारविन्दे वदनकमले मधुपो भ्रमरभूत ईशः शिवस्तथाविधे पूर्वोक्तप्रकारेऽनप्रसङ्गे कामरसावसरे संभोगस्य वेश्म गृहमन्तः प्रविशन्तमेकं पारावतं कपोतं ददर्श दृष्टवान् । सर्गेऽस्मिन्वृत्तमुपजातिः ॥ १ ॥

हिन्दी--एक बार जिस समय पार्वती के मुखकमल पर भौंरे के समान आसक्त शंकर जी ने जब संभोग गृह के भीतर घुसते हुए एक कबूतर को देखा ।

सुकान्तकान्तामणितानुकारं कूजन्तमाघूर्णितरक्तनेत्रम् ।
प्रस्फारितोन्नम्रविनम्रकण्ठं मुहुर्मुहुर्न्यञ्चितचारुपुच्छम् ॥२॥

अन्वयः--सुकान्तकान्तामणितानुकारम (यथा स्यात्तथा) कूजन्तं आघूर्णि रक्तनेत्रं प्रस्फारितोन्नम्रविनम्र कण्ठं मुहुर्मुहुः न्यञ्चित चारुपुच्छम् (पारावतं ददर्श) ।

संजी०--सुकान्तेति ॥ कथंभूतं पारावतम् । सुकान्तमतिमनोहरं यत्कान्तामणितं रमणीरतिकूजितम् । 'मणितं रतिकूजितम्' इत्यमरः । तस्यानुकारोऽनुकरणं यत्र यस्मिन्कर्मणि तद् यथा तथा कूजन्तं शब्दायमानम् । तथाघूर्णिते रक्तनेत्रे येन तथोक्तम् । तथा प्रस्फारितो विस्तारित उन्नम्र उच्चैस्तया विनम्रः कण्ठो यस्य तम् । तथा मुहुर्मुहुर्वारंवारं न्यञ्चितः संकुचितश्चारुः पुच्छः पश्चाद्भागो येन तथोक्तमित्यर्थः । 'पुच्छः पश्चात्प्रदेशे स्यात्' इति विश्वः ॥२॥

हिन्दी--वह कबूतर संभोग काल में रमणियों के मुँह से निकलने वाली कराह के समान कभी को पाड़ कर कभी ऊँचे कर तथा कभी नीचे कर बड़ा मधुर शब्द कर रहा था उसकी लाल-लाल आँखें यत्र तत्र नाचती सी जान पड़ती थी और वह अपनी पूँछ को बारम्बार सिकोड़ता रहता था ।

विश्रृङ्खलं पक्षतियुग्ममीषद्दधानमानन्दगतिं मदेन ।
शुभ्रांशुवर्णं जटिलाग्रपादमितस्ततो मण्डलकैश्चरन्तम् ॥३॥

अन्वयः—विश्रृङ्खलम् पक्षतियुगम् ईषत् मदेन आनन्दगतिं दधानं शुभ्रांशुवर्णं मण्डलकैः इतः ततः चरन्तम् (तं ददर्श)।

संजी०—विश्रृङ्खलमिति ॥ पुनः कथंभूतम् । विश्रृङ्खलं विगतश्रृंखलाकम् । अनेन विशेषणेन कदाचित्कस्यापि बन्धनाभावस्य द्योतनात्स्वेच्छाविहारित्वं ध्वन्यते । 'श्रृङ्खला पुंस्कटीवस्त्रबन्धेऽपि निगडेऽपि च' इति विश्वः । पक्षत्योः पक्षमूलयोर्युग्मं द्वयम् । 'पक्षात्तिः' इति तिप्रत्ययः । तथेषन्मदेन हेतुनानन्दगतिं च दधानम् । तथा शुभ्रांशोश्चन्द्रस्य वर्ण इव वर्णो यस्य तम् । 'विधुः सुधांशुः शुभ्रांशुः' इत्यमरः । तथा जटिलौ जटायुक्तावग्रपादौ यस्य तम् । 'जटिलस्तु जटायुक्तः' इति विश्वः । तथा मण्डलकैर्मण्डलाकारगतिविशेषैरितस्ततश्चरन्तं भ्रममाणम् । तं कपोतं ददर्शेति संबन्धः । 'मण्डलके' इति पाठे सुरतमण्डप इति व्याख्येयम् । त्रिभिरेतद्विशेषकम् ॥३॥

हिन्दी—सफेद किरणों के समान उज्ज्वल वर्ण वाला वह कबूतर सर्वथा स्वच्छन्द विहार करने वाले दो पङ्खों एवं किञ्चित्मद से आनन्द की गति को धारण किये हुये उसी घर में मण्डलाकार घूम रहा था ।

रतिद्वितीयेन मनोभवेन ह्रदात्सुधायाः प्रविगाह्यमानात् ।
तं वीक्ष्य फेनस्य चयं नवोत्थमिवाभ्यनन्दत्क्षणमिन्दुमौलिः ॥४॥

अन्वयः—रतिद्वितीयेन मनोभवेन प्रविगाह्यमानात् सुधाया ह्रदात् नवोत्थं फेनस्य चयम् इव स्थितम् तं कपोतं वीक्ष्य इन्दुमौलिः क्षणं अभ्यनन्दत् ।

संजी०—रतीति ॥ रत्या सपत्न्या द्वितीयेन । रतिसहायेनेत्यर्थः । मनोभवेन कर्त्रा । प्रविगाह्यमानादवलोड्यमानात्सुधाया ह्रदान्नवमुत्थमुत्पन्नं फेनस्य चयमिव स्थितं तं कपोतं वीक्ष्येन्दुमौलिः शिवः क्षणमभ्यनन्ददस्तौषीत् । कपोतरूपे वस्तुनि धवलिमरूपधर्मेण गम्यमानेन फेनचयरूपवस्तूत्प्रेक्षालंकारः ॥४॥

हिन्दी—रति के साथ कामदेव के स्नान करने से अमृतकुण्ड में नवीन उठे हुये फेनों की राशि के समान उस महोज्ज्वल कबूतर को देखकर शंकर जी क्षणभर के लिये उसकी प्रशंसा करने लगे ।

तस्याकृतिं कामपि वीक्ष्य दिव्यामन्तर्भवश्छद्मविहंगमाग्निम् ।
विचिन्तयन्संविविदे स देवो भ्रूभङ्गभीमश्च रुषा बभूव ॥५॥

अन्वयः—अन्तर्भवः स देवः दिव्याम् काम् अपि आकृतिं वीक्ष्य छद्मविहङ्गम् अग्निं विचिन्तयन् संविविदे रुषा भ्रूभङ्ग भीमः च बभूव ।

संजी०—तस्येति ॥ अन्तर्भवतीत्यन्तर्भवः । सर्वान्तर्व्यापीत्यर्थः । स देवो हरः । दिव्यां भव्यां कामपि लोकोत्तरां तस्य पारावतस्याकृतिं वीक्ष्य छद्मना कैतवेन विहंगं कपोतस्वरूपधारिणमग्निं विचिन्तयन्वितर्कयन्संविविदे विजज्ञे । निश्चयात्मकबुद्ध्याग्निरेवायमिति बुबुध इत्यर्थः । 'समो गम्यृच्छि–' इत्यादिनात्मनेपदम् । रुषा भ्रुवोर्भङ्गेन भीमो भयंकरश्च बभूव । असामयिकागमनकारित्वादिति भावः ॥५॥

हिन्दी—सर्वान्तर्यामी भगवान् शिवने उसकी दिव्य एवं अनिर्वचनीय आकृति देख कर वितर्क करते हुये छद्मवेष में कबूतर का रूप धारण किये अग्नि को पहचान लिया फिर तो क्रोध से टेढ़ी भौहें कर अत्यन्त भयङ्कर हो उठे ।

स्वरूपमास्थाय ततो हुताशस्त्रसन्वलत्कम्पकृताञ्जलिः सन् ।
प्रवेपमानो नितरां स्मरारिमिदं वचो व्यक्तमथाभ्युवाच ॥६॥

अन्वयः—ततः हुताशः त्रसन् स्वरूपम् अस्थाय अथ वलत्कम्प कृताञ्जलिः नितरां प्रवेपमानः सन् स्मरारिम् व्यक्तम् इदं वचः अभ्युवाच ।

संजी०—स्वरूपमिति ॥ ततोऽनन्तरं हुताशोऽग्निस्त्रसन्बिभ्यन् सन् । 'वा भ्राश–' इत्यादिना वैकल्पिकत्वान्न श्यन् । स्वरूपमाग्नेयं रूपमास्थायाश्रित्य । अथ स्वरूपाश्रयणानन्तरम् । वलन्नुद्भवन्कम्पो यथा तथा कृतो बद्धोऽञ्जलिर्येन तथा नितरां प्रवेपमानः कम्पमानश्च सन् । स्मरारिं शिवं व्यक्तं स्फुटमिदं वक्ष्यमाणं वचोऽभ्युवाचोक्तवान् । 'दुह्याच्–' इत्यादिना ब्रुवो द्विकर्मकत्वम् ॥६॥

हिन्दी—उनके इस भयानक रूप को देखते ही भयभीत हुये अग्नि ने अपना स्वरूप धारण कर लिया और हिलते हुये हाथों से किसी प्रकार अञ्जलि बाँधे भय से थरथर काँपते हुये सच्ची बात प्रकट करने लिये शंकर जी से इस प्रकार बोले ।

असि त्वमेको जगतामधीशः स्वर्गौकसां त्वं विपदो निहंसि ।
ततः सुरेन्द्रप्रमुखाः प्रभो त्वामुपासते दैत्यवरैर्विधूताः ॥७॥

अन्वयः—प्रभो त्वम् एकः जगताम् अधीशः असि । स्वर्गौकसां विपदः त्वं निहंसि । ततः सुरेन्द्रप्रमुखाः त्वम् उपासते यतः दैत्यवरैः विधूताः ।

संजी०—असीति ॥ हे प्रभो, त्वमेको जगतामधीशोऽसि । त्वत्सदृशो जगतां पालयिता न कोऽप्यन्योऽस्तीत्यर्थः । अत एव स्वर्गौकसामिन्द्रादीनां

विपदस्त्वं निर्हंसि दूरीकरोषि । ततः कारणात्सुरेन्द्रप्रमुखा देवास्त्वामुपासते । यतो दैत्यवरैर्विधूतास्तिरस्कृताः ॥७॥

हिन्दी—हे प्रभु एक मात्र आप ही इस संसार के स्वामी हैं और स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की विपत्तियाँ भी आप ही दूर किया करते हैं, इसी कारण इन्द्रादि देवगण आप की उपासना करते हैं कि वे इस समय दैत्यगणों से तिरस्कृत हैं ।

त्वया प्रियाप्रेमवशंवदेन शतं व्यतीये सुरतादृतूनाम् ।
रहःस्थितेन त्वदवीक्षणार्तो दैन्यं परं प्राप सुरैः सुरेन्द्रः ॥८॥

अन्वयः—प्रियाप्रेमवशंवदेन त्वया रहः स्थितेन सुरताद् ऋतूनां शतं व्यतीये । अथ च सुरेन्द्रः त्वदविक्षणार्त्तः सुरैः सह परं दैन्यं प्रापः ।

संजी०—त्वयेति । हे प्रभो, प्रियायाः पार्वत्याः प्रेम्णा हेतुना वशंवदेन वशीभूतेन । 'प्रियवशे वदः खच्' इति खच् । 'अरुर्द्विषत्-' इत्यादिना मुम् । तेन त्वया रहःस्थितेन सता सुरताद्धेतोर्ऋतूनां शतं व्यतीतम् । इणः कर्मणि लिट् । अथ च सुरेन्द्रस्त्वदवीक्षणेन तवानवलोकनेनार्तः पीडितः सन्सुरैः सह परमत्यन्तं दैन्यं प्राप। त्वद्विरहासहत्वादिति भावः ॥८॥

हिन्दी—किन्तु आप ने अपनी प्रियतमा के वशीभूत हो एकान्त में निवास कर रति करने के कारण सैकड़ो वर्ष बिता दिये हैं । इधर इन्द्रादि सभी देवता आप के दर्शन न होने से देवताओं के साथ अत्यन्त दीनदशा को प्राप्त हो गये हैं ।

त्वदीयसेवावसरप्रतीक्षैरभ्यर्थितः शक्रमुखैः सुरैस्त्वाम् ।
उपागतोऽन्वेष्टुमहं विहंगरूपेण विद्वन्समयोचितेन ॥९॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! त्वदीयसेवावसरप्रतीक्षैः शक्रमुखैः सुरैः अभ्यर्थितः अहम् त्वम् अन्वेष्टुम् समयोचितेन विहङ्गरूपेण उपागतः ।

संजी०-त्वदीयेति ॥ हे विद्वन्, त्वदीया त्वत्कर्मिका या सेवा तस्या अवसरस्य प्रतीक्षा येषां तैः शक्रमुखैरिन्द्रादिभिः सुरैरभ्यर्थितोऽहं त्वामन्वेष्टुं मृगयितुं समयोचितेन विहंगरूपेण पारावतरूपेण । 'जिह्मेति यन्नैव कुतोऽपि तिर्यक्कश्चित्तिरश्चस्त्रपते न तेन' इति (नैषधीयचरिते ३।४२) श्रीहर्षोक्तेरिति भावः । उपागतोऽस्मि ॥९॥

हिन्दी—हे विद्वन् आप की सेवा के अवसर की प्रतिक्षा करते हुये उन इन्द्रादि-देवों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मैं आप का पता लगाने के लिये समयोचित विहङ्ग का रूप धारण कर आप के पास आया हूँ ।

इति प्रभो चेतसि संप्रधार्य तन्नोपराधं भगवन्क्षमस्व ।
पराभिभूता वद किं क्षमन्ते कालातिपातं शरणार्थिनोऽमी ॥१०॥

अन्वयः—हे प्रभो हे भगवन् तत्, इति चेतसि संप्रधार्य नः अपराधं क्षमस्व । पराभिभूताः अमी शरणार्थिनः कालातिपातं किं क्षमन्ते इति (त्वमेव) वद ।

संजी०—इतीति ॥ हे प्रभो हे भगवन्, तत्तस्मात्कारणात् । इति चेतसि संप्रधार्य संविचार्य नोऽस्माकमपराधं क्षमस्व । असमय इन्द्रप्रेरितस्य तवापराधः कथं सोढव्य इति चेत्तत्राह—परेति । परैरभिभूता अत एव शरणार्थिनो रक्षितारं याचमानाः । 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । अमी इन्द्रादयः कालातिपातं कालविलम्बं किं कथं क्षमन्ते ? आर्तैः कालविलम्बो न न सह्यत इति भावः । 'प्रतीक्षते जातु न कालमार्तः' इति न्यायात् । वद । कथयेत्यर्थः ॥१०॥

हिन्दी—अतः हे प्रभो ! हे भगवान् ! मेरी इस बात को भलीभाँति अपने चित्त में विचार कर अपराध क्षमा करें। क्योंकि शत्रुओं से हार कर आप की शरण में आये ये देवगण इतना विलम्ब भला किस प्रकार सहन कर सकते हैं, इसे आप ही बतावें ।

प्रभो प्रसीदाशु सृजात्मपुत्रं यं प्राप्य सेनान्यमसौ सुरेन्द्रः ।
स्वर्लोकलक्ष्मीप्रभुतामवाप्य जगत्त्रयं पाति तव प्रसादात् ॥११॥

अन्वयः—प्रभो ! प्रसीद । आत्मपुत्रम् आशु सृज । यं सेनान्यं प्राप्य असौ सुरेन्द्रः तव प्रसादात् स्वर्लोकलक्ष्मीप्रभुताम् अवाप्य जगत् भयं पाति ।

संजी०—प्रभो इति ॥ हे प्रभो, प्रसीद प्रसन्नो भव । आत्मपुत्रमाशु सृज । यमात्मपुत्रं सेनान्यं प्राप्यासौ सुरेन्द्रस्तव प्रसादात्स्वर्लोकलक्ष्म्याः प्रभुतामवाप्य जगत्त्रयं पाति रक्षिष्यति । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ॥११॥

हिन्दी—हे प्रभो आप प्रसन्न हों और शीघ्र ही अपना एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करें जिसे ये इन्द्र अपना सेनापति बनाकर देवलोक की लक्ष्मी की प्रभुता प्राप्त कर फिर तीनों लोकों की रक्षा कर सकें ।

स शंकरस्तामिति जातवेदोविज्ञापनामर्थवतीं निशम्य ।
अभूत्प्रसन्नः परितोषयन्ति गीर्भिर्गिरीशा रुचिराभिरीशम् ॥१२॥

अन्वयः—स शंकरः इति अर्थवतीं तां जातवेदोविज्ञापनां निशम्य प्रसन्नः अभूत् । गिरीशाः रुचिराभिः गीर्भिः ईशम् परितोषयन्ति ।

संजी०—स इति ॥ स शंकर इतीत्येवंभूतामर्थवतीं सार्थकाम् । योग्यामिति यावत् । तां जातवेदसोऽग्नेर्विज्ञापनां प्रार्थनां निशम्य श्रुत्वा प्रसन्नोऽभूत् । तथाहि । गिरीशा वाग्मिनः पुरुषा रुचिराभिर्गीर्भिरीशं स्वामिनं परितोषयन्ति । प्रसादयन्तीत्यर्थः ॥१२॥

हिन्दी—वे शंकर जी अग्निदेव की इस यथार्थ प्रार्थना को सुनकर परम प्रसन्न हो गये। वाकपटु विद्वान् अपनी रुचिरा वाणी से अवश्य ही प्रभुओं को प्रसन्न कर लेते हैं।

प्रसन्नचेता मदनान्तकारः स तारकारेर्जयिनो भवाय ।
शक्रस्य सेनाधिपतेर्जयाय व्यचिन्तयच्चेतसि भावि किंचित् ॥१३॥

अन्वयः—प्रसन्नचेताः सः मदनान्तकारः जयिनः जयाय सेनाधिपतेः तारकारेः भवाय भावि किञ्चित् चेतसि व्यचिन्तयत् ।

संजी० —प्रसन्नेति ॥ प्रसन्नचेताः स मदनान्तकारो हरो जयिनो जयशीलस्य तथा जयाय शत्रुपराजयार्थं शक्रस्य सेनाधिपतेस्तारकारेस्तारकशत्रोः । अपत्यस्येत्यर्थः । भवाय जन्मने । तत्कर्तुमित्यर्थः । भावि भविष्यत्किंचिच्चेतसि व्यचिन्तयत् । विचचारेत्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी—सर्वदा प्रसन्न रहने वाले तथा कामदेव का अन्त कर देने वाले शंकर जी ने विजयशील इन्द्र को युद्ध में जिताने के लिये तथा सेनाधिपति बन कर तारकासुररूपी शत्रु का बध करने के लिये अपने द्वारा भावी पुत्र को उत्पन्न करने के विषय में फिर कुछ देर तक विचार करने लगे।

युगान्तकालाग्निमिवाविषह्यं परिच्युतं मन्मथरङ्गभङ्गात् ।
रतान्तरेतः स हिरण्यरेतस्यथोर्ध्वरेतास्तदमोघमाधात् ॥१४॥

अन्वयः—अथ स युगान्तकालाग्निम् इव अविषह्यं मन्मथरङ्गभङ्गात् परिच्युतम् अमोघं तत् रतान्तरेतः हिरण्यरेतसि आधात् । (यतः) उर्ध्वरेताः ।

संजी० —युगान्तेति ॥ अथ स शिवः । युगान्तकालस्याग्निमिवाविषह्यं सोढुमशक्यं मन्मथरङ्गस्य कामक्रीडाया भङ्गाद्धेतोः परिच्युतं भ्रष्टं तथामोघं सफलं तत्प्रसिद्धं रतान्तस्य सुरतान्तस्य रेतो वीर्यं हिरण्यरेतसि वह्नावाधान्निदधे । यत ऊर्ध्वरेताः । ऊर्ध्वगामिवीर्य इत्यर्थः ॥१४॥

हिन्दी—इसके अनन्तर उन शिव जी ने युगान्तकाल की अग्नि के समान अविषय काम क्रीडा के भङ्ग हो जाने से गिरे हुये उस अमोव रेतान्तरेत को अग्नि में स्थापित कर दिया। क्योंकि ऊध्वरेता हैं उनका कीर्य ऊपर हो जाता है नीचे नहीं।

अथोष्णबाष्पानिलदूषितान्तं विशुद्धमादर्शमिवात्मदेहम् ।
बभार भूम्ना सहसा पुराररेतः परिक्षेपकुवर्णमग्निः ॥१५॥

अन्वयः—अथ अग्निः विशुद्धं आत्मदेहं उष्णबाष्पानिलदूषितान्तम् आदर्शम् इव सहसा भूम्ना पुराररेतः परिक्षेपकुवर्णं बभार ।

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरमग्निर्विशुद्धमात्मदेहमुष्णबाष्पानिलेन मुखनिःश्वासेन दूषितं म्लानीकृतमन्तर्मध्यं यस्य तमादर्शमिव सहसा भूम्ना बाहुल्येन पुरारेः शिवसंबन्धिनो रेतसः परिक्षेपस्तेन कुवर्णं कुत्सितवर्णं बभार धृतवान् ॥१५॥

हिन्दी—इसके अनन्तर अग्नि ने विशुद्ध अपने शरीर को शंकर जी के परिक्षिप्त वीर्य से मलीन बनाकर इस प्रकार धारण किया जैसे अपने श्वास से प्र दूषित अतएव मलीन आदर्श (शीशे) को कोई धारण करता है ।

त्वं सर्वभक्षो भव भीमकर्मा कुष्ठाभिभूतोऽनल धूमगर्भः ।
इत्थं शशापाद्रिसुता हुताशं रुष्टा रतानन्दसुखस्य भङ्गात् ॥१६॥

अन्वयः—रतान्तसुखस्य भङ्गात् रुष्टा अद्रिसुता 'हे अनल ! त्वं सर्वभक्षः भीमकर्मा कुष्ठाभिभूतः भव' इत्थं हुताशं शशाप ।

संजी०—त्वमिति ॥ रतानन्दः सुरतानन्दस्तत्र यत्सुखं तस्य भङ्गादन्तरायाद्धेतो रुष्टाद्रिसुता पार्वती । हे अनल, त्वं सर्वं मेध्यममेध्यं वा भक्षति तथोक्तः । तथा भीमं भयानकं कर्म यस्य । तथा कुष्ठेनाभिभूतः पराभिभूतः । तथा धूमो गर्भे मध्ये यस्य तथोक्तश्च भव । इत्थं हुताशमग्निं शशाप । शपति स्मेत्यर्थः । अत्र ज्ञीप्स्यमानत्वाभावात् 'श्लाघह्नुङ्स्थ—' इति न संप्रदानत्वम् ॥१६॥

हिन्दी—इस प्रकार अपने संभोग सुख से वञ्चित पार्वती ने क्रोधवश 'हे अनल ! तुम सर्वभक्षी (मेध्यामेध्य वस्तु के खाने वाले) भयानक कर्म करने वाले तथा कुष्ठ रोग से अभिभूत हो जाओ' इस प्रकार का अग्नि को शाप दिया ।

दक्षस्य शापेन शशी क्षयीव प्लुष्टो हिमेनेव सरोजकोशः ।
वहन्विरूपं वपुरुग्ररेतश्चयेन वह्निः किल निर्जगाम ॥१७॥

अन्वयः—वह्निः दक्षस्य शापेन क्षयी शशी इव हिमेनप्लुष्टः सरोज कोशः इव वपुः उग्ररेतश्चयेन विरूपं वहन् निर्जगाम किल ।

संजी०—दक्षस्येति ॥ वह्निरग्निर्दक्षस्य शापेन हेतुना क्षयी क्षयरोगवाञ्शशी चन्द्र इव । तथा हिमेन शीतेन प्लुष्टो दग्धः । 'प्लुष दाहे' । कर्मणि

निष्ठा। सरोजकोश इव। वपुः स्वशरीरमुग्रस्य शिवस्य। 'उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः' इत्यमरः। रेतश्चयेन वीर्यसंघातेन। 'शुक्रं तेजोरेतसी च' इत्यमरः। हेतुभूतेन विरूपं भ्रष्टशोभमेतादृशं वह्निर्जगाम संभोगवेश्मतो निःसृतवान्। किलेति प्रसिद्धे ॥१७॥

हिन्दी—दक्ष के शाप से क्षय रोग ग्रस्त चन्द्रमा के समान अग्निदेव का रूप शंकर जी के उस वीर्य को ग्रहण करते ही ऐसा बिरूप हो गया जैसे पाल के मार जाने से कमल कोश विरूप हो जाता है फिर तो अग्नि उसी विरूप शरीर को धारण किये उस घर से बाहर निकले।

स पावकालोकरुषा विलक्षां स्मरत्रपास्मेरविनम्रवक्त्राम्।
विनोदयामास गिरींद्रपुत्रीं शृङ्गारगर्भैर्मधुरैर्वचोभिः ॥१८॥

अन्वयः—पावकालोकरुषा विलक्षाम् तथा स्मरत्रपास्मेरविनम्रवक्त्राम् गिरीन्द्रपुत्रीं सः शृङ्गारनर्भैः मधुरैः वचोभिः विनोदया स।

संजी०—स इति ॥ पावकस्य वह्नेरालोकेन या रुट् क्रोधस्तया हेतुना विलक्षां विरूपो विकृतिमापन्नो लक्षो लक्षणं चिह्नं शरीरशोभा यस्यास्ताम्। तथा स्मरत्रपाभ्यां कामलज्जाभ्यां स्मेरं सस्मितं विनम्रं नतं च वक्त्रं यस्यास्तथोक्तां गिरीन्द्रपुत्रीं पार्वतीं स हरः शृङ्गारगर्भैरत एव मधुरैर्वचोभिर्विनोदयामास। प्रसादितवानित्यर्थः ॥१८॥

हिन्दी—तदनन्तर संभोग काल में उपस्थित अग्निदेव को देखते ही क्रोभ से जलीकट, काम जन्यलज्जा से मन्द मन्द हँसती हुई किन्तु विनम्रमुखी पार्वती जी के मन को शङ्कर जी शृङ्गारपूर्ण मीठी मीठी उक्तियों से बहलाने लगे।

हरो विकीर्णं घनघर्मतोयैर्नेत्राञ्जनाङ्कं हृदयप्रियायाः।
द्वितीयकौपीनचलाञ्चलेनाहरन्मुखेन्दोरकलङ्किनोऽस्याः ॥१९॥

अन्वयः—हरः हृदयप्रियायाः अकलङ्किनः मुखेन्दोः घनघर्मतोयैः विकीर्णं नेत्राञ्जनाङ्कं द्वितीयकौपीनचलाञ्चलेन अहरत्।

संजी०—हर इति ॥ हरो हृदयस्य प्रियाया अस्याः पार्वत्या अकलङ्किनो मुखेन्दोः संबन्धिनं तथा घनानि यानि घर्मतोयानि प्रस्वेदजलानि तैर्विकीर्णं व्याप्तं नेत्रयोरञ्जनमेवाङ्कः कलङ्कस्तं द्वितीयं यत्कौपीनं योगिनः स्कन्धलम्बि वस्त्रम्। कौपीनं स्यादधोवस्त्र योगिनः स्कन्धलम्बि च' इति मेदनी। तस्य चलं यदञ्चलं प्रान्तस्तेनाहरद्धृतवान्। अकलङ्कस्य कलङ्कानौचित्यादिति भावः ॥१९॥

हिन्दी—शङ्कर जी ने अपनो प्राणप्रिया पार्वती के सर्वथा निष्कलङ्क मुखेन्दु के ऊपर पसीने से फैले हुये काले-काले अञ्जन के धब्बों को अपने द्वितीय कौपीन के छोर से पोंछकर दूर कर दिया।

मन्देन खिन्नाङ्गुलिना करेण कम्प्रेण तस्या वदनारविन्दात् ।
परामृशन्घर्मजलं जहार हरः सहेलं व्यजनानिलेन ॥२०॥

अन्वयः—हरः मन्देन खिन्नाङ्गुलिना कम्प्रेण करेण तस्याः वदनारविन्दात् घर्मजलं परामृशन् सहेलं (यथा तथा) व्यजनानिलेन जहार।

संजी०—मन्देनेति ॥ हरः शिवः। मन्देन लघुप्रचारेण। तथा खिन्ना अलसप्रयोगेणोदासीना अङ्गुलयो यस्य तेन। तथा कम्प्रेण कम्पशीलेन। 'नमिकम्पिस्म्यजसकम—' इति रः। करेण कृत्वा तस्याः पार्वत्या वदनारविन्दाद्धर्मस्य घर्मरूपं वा जलं परामृशन्विश्लेषयन्सहेलं सक्रीडं यथा तथा व्यजनस्यानिलेन कृत्वा जहार ॥२०॥

हिन्दी—शङ्कर जी ने शिथिलित अङ्गुलियों वाले काँपते हुए अपने हाथों से पार्वती के मुख कमल पर होने वाली पसीनों की बूँदों को धीरे-धीरे हटाते हुए क्रीडा-पूर्वक पङ्खे की हवा से सुखा दिया।

रतिश्लथं तत्कबरीकलापमंसावसक्तं विगलत्प्रसूनम् ।
स पारिजातोद्भवपुष्पमय्या स्रजा बबन्धामृतमूर्तिमौलिः ॥२१॥

अन्वयः—अमृतमूर्तिमौलिः सः रतिश्लथम् अंसावसक्तं विगलत्प्रसूनं तत्कबरी-कलापं परिजातोद्भवपुष्पमय्या स्रजा बबन्ध।

संजी०—रतिश्लथमिति ॥ अमृतमूर्तिश्चन्द्रो मौलौ यस्य स हरो देवः। रतौ श्लथं शिथिलबन्धनमत एवांसयोः स्कन्धयोरवसक्तं लग्नमत एव विगलन्त्यधःपातुकानि प्रसूनानि यस्य तं तस्याः कबरीकलापं कचभारं पारिजातोद्भवपुष्पमय्या पारिजातोद्भवानि कल्पवृक्षजानि यानि पुष्पाणि तत्प्रचुरया स्रजा मालया बबन्ध। 'तत्प्रकृतवचने—' इति प्राचुर्ये मयट्। ततः 'टिड्ढा—' इति ङीप् ॥२१॥

हिन्दी—चन्द्रशेखर ने रतिकाल में ढीले पड़ जाने से कंधों पर लटके हुए तथा विगलित फूलों वाले पार्वती के कच कलापों को पारिजात पुष्पों की माला से बाँध दिया।

कपोलपाल्यां मृगनाभिचित्रपत्रावलीमिन्दुमुखः सुमुख्याः ।
स्मरस्य सिद्धस्य जगद्विमोहमन्त्राक्षरश्रेणिमिवोल्लिलेख ॥२२॥

अन्वयः—इन्दुमुखः सुमुख्याः कपोलपाल्याम् मृगनाभिचित्रपत्रावलीं सिद्धस्य स्मरस्य जगद्विमोहमन्त्राक्षरश्रेणिम् इव उल्लिलेख ।

संजी०—कपोलपाल्यामिति ॥ इन्दुमुखो हरः सुमुख्याः पार्वत्याः संबन्धिन्यां कपोलपाल्यां मृगनाभ्याः कस्तूर्या या चित्रा पत्रावली पत्ररचना तां सिद्धस्य स्मरस्य कामस्य जगन्ति विमुह्यन्ति यैस्तेषां मन्त्राणां यान्यक्षराणि वर्णास्तेषां श्रेणिं पङ्क्तिमिवोल्लिलेख लिखितवान् । अत्र पत्ररचनारूपे वस्तुन्यक्षरश्रेणिरूपणाद्वस्तूत्प्रेक्षालंकारः ॥२२॥

हिन्दी—चन्द्रमा के समान मुख वाले सदाशिव ने सुमुखी पार्वती के कपोल-पालियों पर कस्तूरी रस से विभिन्न प्रकारों के चित्रावलियों की रचना इस प्रकार अंकित कर दी मानो कामदेव के मोहन मन्त्र के अक्षरों की पंक्तियाँ हों ।

रथस्य कर्णावभि तन्मुखस्य ताटङ्कचक्रद्वितयं न्यधात्सः ।
जगज्जिगीषुर्विषमेषुरेष ध्रुवं यमारोहति पुष्पचापः ॥२३॥

अन्वयः—सः कर्णौ अभि तन्मुखस्य रथस्य ताटङ्कचक्रद्वितयं न्यधात् । (यतः) विषमेषुः एषः पुष्पचापः जगज्जिगीषुः यम् आरोहति ध्रुवम् ।

संजी०—रथस्येति ॥ स हरः । कर्णावभि कर्णसंमुखे तन्मुखस्य पार्वती-मुखरूपस्य रथस्य संबन्धि ताटङ्करूपं चक्रद्वितयं चक्रद्वयं न्यधात् । यतो विष-मेषुरेष पुष्पचापः कामो जगज्जिगीषुस्त्रिभुवनविजयेच्छुः सन् यमारोहति ध्रुवं निश्चितम् । मुखरूपिणं रथमारुह्य जगन्ति विजेतुमिच्छति काम इति भावः ॥२३॥

हिन्दी—शंकर जी ने पार्वती के मुखरूपी रथ में जोते जाने वाले दो पहियों के समान उनके कान के सामने दो कर्णफूल पहना दिए, निश्चय ही विषम बाणों वाला तथा फूल की धनुष वाला कामदेव जगत् जीतने की इच्छा से उस मुखरूपी रथ पर सवार होने वाला है ।

तस्याः स कण्ठे पिहितस्तनाग्रां न्यधत्त मुक्ताफलहारवल्लीम् ।
या प्राप मेरुद्वितयस्य मूर्ध्नि स्थितस्य गाङ्गौघयुगस्य लक्ष्मीम् ॥२४॥

अन्वयः—स तस्याः कण्ठे पिहितस्तनाग्राम् मुक्ताफलहारवल्ली न्यधत्त । या मेरुद्वितयस्य मूर्ध्नि स्थितस्य गांगौघयुगस्य लक्ष्मीं प्राप ।

संजी० — तस्या इति ।। स हरस्तस्याः कण्ठे । पिहिते स्वरप्रसारेणावृते स्तनाग्रे चूचुके यया तथोक्तां मुक्ताफलहार एव वल्ली तां न्यधत्त निदधे । या मुक्ताफलहारवल्ली मेरुद्वितयस्य मूर्ध्नि स्थितस्य गङ्गाया ओघयोः प्रवाहयोर्युगस्य लक्ष्मीं शोभां प्राप । तद्वच्छुशुभ इत्यर्थः । अभूतोपमा ।।२४।।

हिन्दी—शंकर जी ने पार्वती के गले में उनके स्तनाग्रभाग (चूचुक) को ढक लेने वाली मोतियों की माला पहना दी । इस प्रकार उनके स्तन की दोनों घुण्डियों को छूकर नीचे की ओर लटकती हुई वह माला दो सुमेरु पहाड़ की दो चोटियों से गङ्गा की दो धारा की शोभा धारण कर रही थीं ।

नखव्रणश्रेणिवरे बबन्ध नितम्बबिम्बे रशनाकलापम् ।
चलस्वचेतोमृगबन्धनाय मनोभुवः पाशमिव स्मरारिः ।।२५।।

अन्वयः — स्मरारिः नखव्रणश्रेणिवरे तस्या नितम्बबिम्बे रशनाकलापम् चलस्व चेतोमृगबन्धनाय मनोभुवः पाशम् इव बबन्ध ।

संजी० — नखेति ।। स्मरारिर्हरः । नखव्रणश्रेणिभिरात्मप्रयुक्ताभिर्वरे मनोहरे तस्या नितम्बबिम्बे रशनाकलापम् । चलं स्वं चेत एव मृगस्तस्य बन्धनाय मनोभुवः संबन्धिनं पाशमिव बबन्ध । मनोभूरस्यात्मनश्चेतोमृगस्य रशनाकलापरूपजालेन बन्धनं करिष्यत्यतो हरः स्वयमेव तत्र तं निदधावित्यर्थः । नहि कामलुब्धक आत्मनीनं गणयतीति भावः ।।२५।।

हिन्दी—शंकर जी ने नखक्षत की श्रेणियों से मनोहर दिखाई पड़ने वाले पार्वती के नितम्ब पर करधनी पहना दी । मानो कामदेव ने अपने भागते हुए मनरूपी मृग को बाँधने के लिए वहाँ फन्दा डाल रखा हो ।

भालेक्षणाग्नौ स्वयमञ्जनं स भङ्क्त्वा दृशोः साधु निवेश्य तस्याः ।
नवोत्पलाक्ष्याः पुलकोपगूढे कण्ठे विनीलेऽङ्गुलिमुज्जघर्ष ।।२६।।

अन्वयः—सः भालेक्षणाग्नौ अञ्जनम् स्वयम् भङ्क्त्वा नवोत्पलाक्ष्याः तस्याः दृशोः साधु निवेश्य पुलकोपगूढे विनीले कण्ठे अंगुलिम् उज्जघर्ष ।

संजी०—भालेक्षण इति ।। स हरः । भाले यदीक्षणं नेत्रं तदेवाग्निः । दीपकरूप इत्यर्थः । तत्राञ्जनं स्वयं भङ्क्त्वा पातयित्वा । अथ च नवोत्पलाक्ष्यास्तस्याः पार्वत्या दृशोः साधु निवेश्य सम्यगञ्जयित्वा । अथ च पुलकै रोमाञ्चै रुपगूढे व्याप्ते विनीले श्यामले कण्ठे । स्वीय इति शेषः । अङ्गुलिमुज्जघर्ष घृष्टवान् । यथान्योऽपि दीपकोपर्यङ्गुल्यैव कज्जलं पातयित्वा स्वस्त्रीनेत्रयोर्निवेश्य कुत्रचिदङ्गुलिमुद्धर्षति तद्वत् । अङ्गुलिलग्नकज्जलनिवारणार्थमिति भावः । स्वभावोक्तिरलंकारः ।।२६।।

हिन्दी—शंकर जी ने अपने ललाटस्थ तृतीय नेत्ररूपी अग्नि (दीपक) में स्वयं काजल पारकर नये कमल जैसे पार्वती के दोनों नेत्रों में भली प्रकार लगाकर पुनः अंगुलियों को काजल की कालिमा पोंछने के लिए रोमांचित हुए अपने गीले कण्ठ में रगड़ दिया।

अलक्तकं पादसरोरुहाग्रे सरोरुहाक्ष्याः किल संनिवेश्य।
स्वमौलिगङ्गासलिलेन हस्तारुणत्वमक्षालयदिन्दुचूडः ॥२७॥

अन्वयः—इन्दुचूडः सरोरुहाक्ष्याः पादसरोरुहाग्रे अलक्तकं संनिवेश्य किल स्वमौलिगङ्गासलिलेन हस्तारुणत्वम् अक्षालयत्।

संजी०—अलक्तकमिति ॥ इन्दुचुडो हरः सरोरुहाक्ष्याः पार्वत्याः पादसरोरुहाग्रेऽलक्तकं संनिवेश्यानुलिप्य। करेणेति शेषः। स्वस्य मौलौ यद्गङ्गासलिलं तेन कृत्वा हस्तस्यारुणत्वमक्षालयन्ममार्ज ॥२७॥

हिन्दी—फिर चन्द्रशेखर शिव ने कमलनयना पार्वती के चरण कमलों में भली प्रकार महावर लगाकर हाथों में लगी अरुणाई को अपने सिर पर बहने वाली गङ्गा के जल से धो लिया।

भस्मानुलिप्ते वपुषि स्वकीये सहेलमादर्शतलं विमृज्य।
नेपथ्यलक्ष्म्याः परिभावनार्थमदर्शयज्जीवितवल्लभां सः ॥२८॥

अन्वयः—स आदर्शतलम् भस्मानुलिप्ते स्वकीये वपुषि विमृज्य नेपथ्यलक्ष्म्याः परिभावनार्थम् सहेलम् (यथा स्यात्तथा) जीवितवल्लभां अदर्शयत्।

संजी०—भस्मेति ॥ स हरः। आदर्शतलं भस्मनानुलिप्ते स्वकीये वपुषि विमृज्य शुद्धं कृत्वा नेपथ्यानामाकल्पवेषाणां लक्ष्म्याः शोभायाः परिभावनार्थमवलोकनार्थं सहेलं यथा तथा जीवितवल्लभां प्रियामदर्शयत् ॥२८॥

हिन्दी—पुनः शंकर जी ने भस्मानुलिप्त स्वकीय शरीर में रगड़कर स्वच्छ किये गए दर्पण को शरीर की सजावट देखने के लिए प्रियतमा के सामने प्रस्तुत कर दिया।

प्रियेण दत्ते मणिदर्पणे सा संभोगचिह्नं स्ववपुर्विभाव्य।
त्रपावती तत्र घनानुरागं रोमाञ्चदम्भेन बहिर्बभार ॥२९॥

अन्वयः—प्रियेण दत्ते मणिदर्पणे संभोगचिह्नं स्ववपुर्विभाव्य त्रपावती सा तत्र घनानुरागं रोमाञ्चदम्भेन वहिः बभार।

संजी०--प्रियेणेति ।। प्रियेण हरेण दत्ते मणीनां दर्पण आदर्शे संभोगस्य चिह्नानि नखक्षतादीनि यत्र तथोक्तं स्वं वपुर्विभाव्यावलोक्य। भावनात्र विलोकनपरिणता ज्ञेया। त्रपावती सलज्जा। एतानि चिह्नानि विलोक्यान्यः किं वदिष्यतीति विचारजनितया लज्जयान्धेत्यर्थः। सा पार्वती तत्र हरे घनमनुरागं प्रेम रोमाञ्चानां दम्भेन कैतवेन बहिर्बहिः स्थितत्ववैशिष्टय-पूर्वकं बभार धृतवती। अन्तरस्या योऽनुरागोऽभूत्स एव बही रोमाञ्चत्वेन परिणत इति भावः ।।२९।।

हिन्दी--शंकर जी द्वारा सामने रखे गये मणिदर्पण में अपने शरीर पर अंकित संभोगचिह्नों को देखकर लज्जायुक्त हो उसमें अपना प्रगाढ़ अनुराग मानो रोमांच के बहाने से बाहर प्रगट कर दिया।

नेपथ्यलक्ष्मीं दयितोपक्लृप्तां सस्मेरमादर्शतले विलोक्य।
अमंस्त सौभाग्यवतीषु धुर्यामात्मानमुद्धूतविलक्षभावा ।।३०।।

अन्वयः--सा आदर्शतले दयितोपक्लृप्तां नेपथ्यलक्ष्मीम् सस्मेरम् (यथा स्यात्तथा) विलोक्य उद्धूत विलक्षभावा आत्मानम् सौभाग्यवतीषु धुर्याम् अमंस्त।

संजी०--नेपथ्येति ।। सा पार्वती। आदर्शतले दयितेन हरेणोपक्लृप्तां रचितां नेपथ्यलक्ष्मीमाभूषणमण्डनं सस्मेरं सस्मितम्। अत्र स्मितस्यानु-रागव्यञ्जकत्वम्। यथा तथा विलोक्योद्धूतस्त्यक्तो विलक्षभावः पूर्वसंजात-वैलक्ष्यं यथा। प्रसन्नेत्यर्थः। तथोक्ता सती। आत्मानं सौभाग्यवतीषु सतीषु मध्ये धुर्यमग्रगण्याममंस्त मेने। प्रियकृतनेपथ्यलक्ष्म्या अन्यदुर्लभत्वा-दिति भावः ।।३०।।

हिन्दी—अपने प्रियतम सदाशिव द्वारा किए गए शृङ्गार की शोभा को उस दर्पण में देख कर पार्वती जी मुस्करा उठी। उस समय उनका सारा क्रोध न जाने कहाँ चला गया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने को सौभाग्यवतियों में सर्वश्रेष्ठ समझा।

अन्तः प्रविश्यावसरेऽथ तत्र स्निग्धे वयस्ये विजया जया च।
सुसंपदोपाचरतां कलानामङ्के स्थितां तां शशिखण्डमौलेः ।।३१।।

अन्वयः—अथ तत्र अवसरे विजया जया च (उभे) स्निग्धे वयस्ये अन्तः प्रविश्य तत्र शशिखण्डमौलेः अङ्के: स्थिताम् ताम् कलानां सुसंपदा उपाचरताम्।

संजी०—अन्तरिति ।। अथानन्तरं तत्रावसरे समये विजया जया चेत्युभे स्निग्धे सार्द्रचित्ते वयस्ये सख्यौ। 'आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः। अन्तः

प्रविश्य तत्र शशिनः खण्डं मौलौ यस्य तथोक्तस्य हरस्य संबन्धिन्यङ्के स्थितां तां पार्वतीं कलानां भूषणकरणचातुरीविशेषाणां सुसंपदा शोभनया संपदा। शोभयेत्यर्थः। उपाचरताम्। अलंचक्रतुरित्यर्थः। उपाचरतामिति लङः प्रथमपुरुषस्य द्विवचनम् ॥३१॥

हिन्दी—इसी बीच उचित अवसर जानकर पार्वती जी की प्रिय सखियाँ जिनका नाम जया और विजया था, अन्तःपुर में प्रविष्ट हो शंकर जी की गोद में बैठी पार्वती को अपनी निपुण श्रृङ्गार रचना से सुसज्जित करने लगीं।

व्यधुर्बहिर्मङ्गलगानमुच्चैर्वैतालिकाश्चित्रचरित्रचारु ।
जगुश्च गन्धर्वगणाः सशङ्खस्वनं प्रमोदाय पिनाकपाणेः ॥३२॥

अन्वयः—बहिः वैतालिकाः चित्रचरित्रचारु मङ्गलगानम् उच्चैः व्यधुः। गन्धर्वगणाः च पिनाकपाणेः प्रमोदाय सशंखस्वनं जगुः।

संजी०—व्यधुरिति ॥ बहिःप्रदेशे वैतालिका बन्दिनश्चित्रेण चरित्रेण चारु मनोहरं मङ्गलरूपं गानम्। गीतमित्यर्थः। उच्चैरुच्चस्वरेण व्यधुश्चक्रुः। तथा गन्धर्वगणाश्च पिनाकपाणेर्हरस्य प्रमोदायानन्दाय। 'प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः। सशङ्खस्वनं पञ्चाजन्यशब्दसहितं यथा तथा जगुः। गायन्ति स्मेत्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी—तदनन्तर बाहर खड़े वन्दियों ने विचित्र चरित्रों से परिपूर्ण मङ्गलगान बड़े ऊँचे शब्दों में किया, गन्धर्वगणों ने सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए शङ्ख शब्द से युक्त गान किया।

ततः स्वसेवावसरे सुराणां गणांस्तदालोकनतत्पराणाम् ।
द्वारि प्रविश्य प्रणतोऽथ नन्दी निवेदयामास कृताञ्जलिः सन् ॥३३॥

अन्वयः—ततः स्वसेवावसरे तदालोकनतत्पराणां सुराणाम् गणान् नन्दी प्रणतः अथ द्वारि प्रविश्य कृताञ्जलिः सन् निवेदयामास।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं स्वस्य स्वकर्तृकायाः सेवाया अवसरे समये तस्य हरस्य यदालोकनं तत्र तत्पराणामासक्तानां सुराणां गणान्कर्मभूतान्। नन्दी कर्ता। प्रणतो नम्रीभूतः सन् द्वारि प्रविश्य। न त्वन्तरेवेत्यर्थः। कृताञ्जलिः सन्। निवेदयामास। देवा भवदवलोकनसमुत्सुकाः सन्तीति हरं बोधयामासेत्यर्थः ॥३३॥

हिन्दी—ठीक इसी समय अपनी सेवा का उचित अवसर जानकर शिव जी के दर्शन के लिए उपस्थित देवगणों की सूचना नन्दी ने प्रणाम कर अन्तःपुर में प्रविष्ट

हो हाथ जोड़कर दी। अर्थात् सभी देवता आपके दर्शन की उत्सुकता लिए बाहर खड़े हैं ऐसा, निवेदन किया।

महेश्वरो मानसराजहंसीं करे दधानस्तनयां हिमाद्रेः।
संभोगलीलालयतः सहेलं हरो बहिस्तानभि निर्जगाम ॥३४॥

अन्वयः—महेश्वरः हरः मानसराजहंसीम् हिमाद्रेः तनयाम् करे दधानः संभोगलीलालयतः बहिः तानभि सहेलम् (यथा स्यात्तथा) निर्जगाम।

संजी०--महेश्वर इति ॥ महानीश्वरः समर्थो हरो मानसस्य मनोरूपस्य सरसो राजहंसीं हिमाद्रेस्तनयां पार्वतीं करे दधानः सन्। संभोगलीलाया आलयतो मन्दिरात्। 'निकाय्यनिलयालयाः' इत्यमरः। बहिस्तान्सुरानभि सहेलं सलीलं यथा तथा निर्जगाम। निश्चक्रामेत्यर्थः ॥३४॥

हिन्दी--यह सुनकर महेश्वर अपने मानस की राजहंसी के समान पार्वती को अपने हाथ से पकड़े देवताओं के सामने लीलापूर्वक संभोग भवन के बाहर निकले।

क्रमान्महेन्द्रप्रमुखाः प्रणेमुः शिरोनिबद्धाञ्जलयो महेशम्।
प्रालेयशैलाधिपतेस्तनूजां देवीं च लोकत्रयमातरं ते ॥३५॥

अन्वयः--महेन्द्रप्रमुखाः ते शिरोनिबद्धाञ्जलयः महेशं प्रालेयशैलाधिपतेः तनूजां लोकत्रयमातरं देवीम् च क्रमात् प्रणेमुः।

संजी०—क्रमादिति ॥ महेन्द्रप्रमुखास्ते देवाः शिरःसु निबद्धा अञ्जलयो यैस्तथोक्ताः सन्तो महेशं हरम्। तथा प्रालेयो हिमानीरूपो यः शैलाधिपतिः पर्वतराजो हिमालयस्तस्य तनूजां कन्यां लोकत्रयस्य मातरं जननीं देवीं पार्वतीं च क्रमात्प्रणेमुः। नमश्चक्रुरित्यर्थः। 'उपसर्गादसमासेऽपि' इति णत्वम् ॥३५॥

हिन्दी--उन्हें देखते ही इन्द्रादि प्रमुख देवताओं ने शिर पर अञ्जलि बाँधकर क्रमशः बारी-बारी से प्रथम महेश्वर को, उसके बाद हिमालयकन्या, त्रिलोकमाता देवी पार्वती जी को प्रणाम किया।

यथागतं तान्विबुधान्विसृज्य प्रसाद्य मानक्रियया प्रतस्थे।
स नन्दिना दत्तभुजोऽधिरुह्य वृषं वृषाङ्कः सह शैलपुत्र्या ॥३६॥

अन्वयः--स वृषांकः तान् विबुधान् मानक्रियया: प्रसाद्य यथागतम् विसृज्य नन्दिना दत्तभुजः शैलपुत्र्याः सह वृषम् अधिसह्य प्रतस्थे।

संजी—यथागतमिति ॥ स वृषाङ्को हरस्तान्विबुधानिन्द्रादीन्मानक्रियया। संमानविधानेनेत्यर्थः। प्रसाद्य प्रसन्नान्कृत्वा। तथा यथागतं विसृज्य च।

नन्दिना दत्तो भुजो यस्मै तथोक्तः सन् । शैलपुत्र्या पार्वत्या सह वृषमधिरुह्यास्थाय प्रतस्थे । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् । 'साकं सार्धं समं सह' इत्यमरः ॥३६॥

हिन्दी--इसके पश्चात् शंकर जी ने ससम्मान प्रसन्न कर वे जहाँ से आये थे, वहाँ के लिए उन्हें विदा कर नन्दी के हाथ का सहारा लेते हुए पार्वती जी के साथ बैल पर सवार हो स्वयं भी वहाँ से प्रस्थान किया ।

मनोऽतिवेगेन ककुद्मता स प्रतिष्ठमानो गगनाध्वनोऽन्तः ।
वैमानिकैः साञ्जलिभिर्ववन्दे विहारहेलागतिभिर्गिरीशः ॥३७॥

अन्वयः--मनोऽतिवेगेन ककुद्मता गगनाध्वनः अन्तः प्रतिष्ठमानः गिरीशः विहारहेलागतिभिः वैमानिकैः साञ्जालिभिः ववन्दे ।

संजी०—मन इति ॥ मनसोऽप्यत्यन्तं वेगो गतिर्जवो यस्य तेन ककुद्मता वृषेण गगनरूपिणोऽध्वनो मार्गस्यान्तर्मध्ये प्रतिष्ठते चलतीति प्रतिष्ठमानः स गिरीशो हरो विहारार्थं हेलया क्रीडया गतिर्येषां तैः । यदृच्छया संचरमाणैरित्यर्थः । वैमानिकैर्विमानैश्चरन्तीति वैमानिकाः । 'चरति' इति ठक् । 'ठस्येकः' इतीकादेशः । 'किङिति च' इत्यादिवृद्धिः । तथोक्तैः । देवैरित्यर्थः । साञ्जलिभिः सद्भिर्ववन्दे नमस्कृतः । कर्मणि लिट् ॥३७॥

हिन्दी--मन से भी तीव्र वेग वाले बैल पर बैठकर जिस समय शंकर जी आकाशमार्ग से चल रहे थे उस समय विमान में बैठकर लीलापूर्वक चलने वाले देवताओं ने हाथ जोड़-जोड़कर उनका अभिवादन किया ।

स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी ।
तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गो मरुत्सिषेवे गिरिजागिरीशौ ॥३८॥

अन्वयः—तौ गिरिजागिरीशौ स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी पारिजातप्रसवप्रसङ्गः मरुत् सिषेवे ।

संजी०—स्वर्वाहिनीति ॥ तौ गिरिजागिरीशौ गौरीहरौ । कर्मभूतावित्यर्थः । स्वर्वाहिन्या मन्दाकिन्याः संबन्धिनि वारिणि विहारं संचारं चरत्याचरति । करोतीति यावत् । मन्दाकिनीशीकरवाहीत्यर्थः । अनेन शैत्योक्तिः । तथा रतान्ते यो नारीणां संबन्धी श्रमः खेदस्तस्य शान्ति करोति । अनेन मान्द्योक्तिः । तथा पारिजातस्य कल्पवृक्षस्य संबन्धिनां प्रसवानां पुष्पाणां प्रसङ्गः संबन्धो यस्य । अनेन सौगन्ध्योक्तिः । शैत्यमान्द्यसौगन्ध्यरूपगुणत्रयविशिष्टो मरुत्समीरणः । कर्तृभूत इत्यर्थः । सिषेवे आराधयामासेत्यर्थः ॥३८॥

हिन्दी--उस समय आकाशगङ्गा के जलकणों को स्पर्श कर चलने वाले रतिकाल में परिश्रान्त स्त्रियों की समस्त थकावट को दूर करने वाले परिजातपुष्पों से सुवासित वायु देवता ने उन पार्वती परमेश्वर की सेवा की ।

पिनाकिनापि स्फटिकाचलेन्द्रः कैलासनामा कलिताम्बरांशः ।
धृतार्धसोमोऽद्भुतभोगिभोगो विभूतिधारी स्व इव प्रपेदे ॥३९॥

अन्वयः--पिनाकिनापि कलिताम्बरांशः धृतार्धसोमः अद्भुतभोगिभोगः विभूतिधारी कैलाशनामा स्फटिकाचलेन्द्रः स्वः इव प्रपेदे ।

संजी० --पिनाकिनेति ॥ पिनाकिनापि हरेणापि कलितः स्वमहत्त्वेनावृतोऽम्बरांश आकाशप्रान्तदेशो येन तथोक्तः । द्वितीयपक्षे कलिता वेष्टिता अम्बरस्यांशा दिग्रूपा येन । दिगम्बर इत्यर्थः । तथा अर्धो यः सोमश्चन्द्रः सोऽस्यास्तीत्यर्धसोमो हरः स धृतो येन । कैलासवासी हि भगवान्गिरीश इति भावः । द्वितीयपक्षे धृतोऽर्धः कलारूपश्चन्द्रो येन । चन्द्रशेखरो हि भगवान्गिरीश इति भावः । भोगिन्यश्च भोगिनश्च भोगिनः । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः । भोगिनः कामुका इत्यर्थः । तेषां तत्कर्तृको यो भोगः संभोगः सोऽद्भुत आश्चर्यकारी यत्र । द्वितीयपक्षेऽद्भुता भोगिनां सर्पाणां भोगा देहा यत्र । सर्पभूषणो हि भगवानिति भावः । तथा विभूतिं धरतीति विभूतिधारी । संपद्वानित्यर्थः । द्वितीयपक्षे विभूतिं भस्म धरतीति तथा । भस्मोद्धूलनकारी हि भगवान्गिरीश इति भावः । तथा कैलासनामा स्फटिकानामचलेन्द्रो गिरीन्द्रः । कर्मभूत इत्यर्थ. । स्व इवात्मेव प्रपेदे प्राप्तः । कर्मणि लिट् । पूर्णोपमालंकारः ॥३९॥

हिन्दी—इस प्रकार चलते-चलते शङ्कर जी स्वस्वरूपधारी स्फटिक पर्वत के समान कैलास पर्वत पर पहुँचे । जिस प्रकार शंकर जी अम्बर भाग से विभूषित (दिगम्बर) अर्धसोम को धारण करने वाले, अद्भुत सर्पों के शरीर को धारण करने वाले विभूति से युक्त हैं, उसी प्रकार कैलास भी अपने महत्त्व से आकाश में व्याप्त अर्धसोम (शंकर जी) धारण करनेवाला कामिजनों के अद्भुत भोग से युक्त और जगत की समस्त संपदाओं को धारण करने वाला है ।

विलोक्य यत्र स्फटिकस्य भित्तौ सिद्धाङ्गनाः स्वं प्रतिबिम्बमारात् ।
भ्रान्त्या परस्या विमुखीभवन्ति प्रियेषु मानग्रहिला नमत्सु ॥४०॥

अन्वयः—यत्र स्फटिकस्य भित्तौ आरात् स्वं प्रतिबिम्बम् विलोक्य परस्याः भ्रान्त्या मानग्रहिलाः सिद्धाङ्गनाः प्रियेषु नमत्सु अपि विमुखीभवन्ति ।

संजी०--विलोक्येति ॥ यत्र कैलासे स्फटिकस्य भित्तावारात्समीपम् । 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः । पतितं स्वं स्वकीयं प्रतिबिम्बं विलोक्य परस्याः सपत्न्या भ्रान्त्या भ्रमेण मानग्रहिला माने प्रणयकलहे ग्रहिला आग्रहवत्यः । तुन्दादेराकृतिगणत्वाश्रयणादिलच् । सिद्धाङ्गनाः प्रियेषु नमत्स्वपि सत्सु विमुखीभवन्ति । पराङ्मुख्यो भवन्तीत्यर्थः ॥४०॥

हिन्दी--उस कैलास पर्वत के चतुर्दिक् रहने वाली स्फटिक भित्तियों के पास पड़े हुये अपने प्रतिविम्ब को देखकर उसमें सपत्नी की भ्रान्ति कर मान से रूठी सिद्धाङ्गनायें प्रियतम के पादप्रणत होने पर भी अपना मान नहीं छोड़ती ।

सुबिम्बितस्य स्फटिकांशुगुप्तेश्चन्द्रस्य चिह्नप्रकरः करोति ।
गौर्यार्पितस्येव रसेन यत्र कस्तूरिकायाः शकलस्य लीलाम् ॥४१॥

अन्वयः— यत्र सुबिम्बितस्य स्फटिकांशुगुप्तेः चन्द्रस्य चिह्नप्रकरः गौर्या रसेन अर्पितस्य कस्तूरिकाया शकलस्य लीलां करोति ।

संजी०--सुबिम्बितस्येति ॥ यत्र स्फटिकाचलेन्द्रे सुबिम्बितस्य प्रतिबिम्बितस्यात एव स्फटिकांशुभिः । शुभ्रैरित्यर्थः । गुप्तिः प्रतिबिम्बगोपनं यस्य । उभयोः शुक्लत्वात्पृथगभासमानस्येत्यर्थः । तथोक्तस्य चन्द्रस्य संबन्धी चिह्नप्रकरः कलङ्कसचयः । 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः । गौर्या पार्वत्यार्पितस्य निहितस्य कस्तूरिकायाः शकलस्य खण्डस्य । संचय इवेत्युत्प्रेक्षा । लीलां क्रीडाम् । शोभामिति यावत् । करोति । निदर्शनाभेदः । स चोपमयोत्प्रेक्षया वा संकीर्यत इति सन्देहसंकरोऽत्रालंकारः । यदि गौर्यार्पितं तर्ह्युपमा यदि नार्पित तर्ह्युत्प्रेक्षेत्यवधेयम् ॥४१॥

हिन्दी -- उस स्फाटिकात्मक कैलास पर्वत में प्रतिविम्बित चन्द्रमा का उज्ज्वल अंश उसी में घुल-मिल जाता है, किन्तु स्पष्ट दिखाई पड़ने वाली उसकी कलङ्क की छाया ऐसी शोभित होती है मानो पार्वती ने जल में पीस कर कस्तूरी की पिण्डी उसमें लगा दी हो ।

यदीयभित्तौ प्रतिबिम्बिताङ्गमात्मानमालोक्य रुषा करीन्द्राः ।
मत्तान्यकुम्भिभ्रमतोऽतिभीमदन्ताभिघातव्यसनं वहन्ति ॥४२॥

अन्वयः—करीन्द्राः यदीयभित्तौ आत्मानं प्रतिबिम्बितांग आलोक्य मत्तान्यकुम्भिभ्रमतः रुषा अतिभीमदन्ताभिघातव्यसनं वहन्ति ।

संजी०-यदीयेति ॥ करीन्द्रा आत्मानं शरीरम् । स्वीयमिति शेषः । यदीयभित्तौ प्रतिबिम्बिताङ्गं प्रतिबिम्बितावयवमालोक्य विलोक्य मत्ता येऽन्ये

कुम्भिनो दन्तिनस्तेषां भ्रमतो भ्रमाज्जनितया रुषा क्रोधेन।'प्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः।.अतिभीमा ये दन्तास्तेषां योऽभिघात आघातस्तेन यद्व्यसनं दुःखं दन्तजर्जरितत्वलक्षणं वहन्ति प्राप्नुवन्ति। भ्रमात्मकं ज्ञानं दुःखावहं भवतीति भावः ॥४२॥

हिन्दी—जिसके दीवारों पर प्रतिविम्बित अपनी छाया देख-देख कर उसमें दूसरे मतवाले हाथी का भ्रम करने वाले मतवाले हाथी क्रोध में भर कर उस पर अपने भयंकर दाँतों की चोट कर उसके प्रतिघातजन्य दुःख का अनुभव करते हैं।

निशासु यत्र प्रतिबिम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु।
दृष्ट्वा रतान्तच्युततारहारमुक्ताभ्रमं बिभ्रति सिद्धवध्वः ॥४३॥

अन्वयः—यत्र स्फटिकालयेषु प्रतिविम्बितानि ताराकुलानि निशासु दृष्ट्वा सिद्धवध्वः रतान्तच्युततारहारमुक्ताभ्रमं बिभ्रति।

संजी०—निशास्विति॥ यत्र स्फटिकाचले स्फटिकालयेषु प्रतिबिम्बितानि ताराकुलानि नक्षत्रकुलानि निशासु दृष्ट्वा सिद्धवध्वः किंनरनार्यो रतान्ते च्युतो भ्रष्टस्तारोऽत्युच्चैर्यो हारो मुक्ताहारः। 'तारोऽत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु' इत्यमरः। तस्य या मुक्ता मौक्तिकानि तासां भ्रमं बिभ्रति। स्फटिकालयप्रतिबिम्बितमुक्तासदृशनक्षत्रकुलमभिवीक्ष्य सुरतान्तकालीनहारभ्रंशोन्मुक्ताफलभ्रान्तिमत्यः सिद्धवध्वो भवन्तीति भावः ॥४३॥

हिन्दी—जहाँ स्फटिकमणि से बने महलों में पड़ती हुई नक्षत्रों की छाया रात में पड़ी हुई देख कर सिद्धों की स्त्रियाँ संभोग के समय टूट कर बिखरे हुये मोतियों के हार के दाने का भ्रम करने लगती हैं।

नभश्चरीमण्डनदर्पणश्रीः सुधानिधिर्मूर्धनि यस्य तिष्ठन्।
अनर्घ्यचूडामणितामुपैति शैलाधिनाथस्य शिवालयस्य ॥४४॥

अन्वयः—नभश्चरीमण्डनदर्पणश्रीः सुधानिधिः यस्य मूर्धनि तिष्ठन् शिवालयस्य शैलाधिनाथस्य अनर्घ्यचूडामणिताम् उपैति।

संजी०—नभश्चरीति॥ नभसि चरतीति नभश्चरी। आकाशचारिणीत्यर्थः। 'चरेष्टः' इति टप्रत्यये टित्वात् 'टिड्ढाणञ्—' इति ङीप्। तथोक्ता मण्डनस्य विलासस्य यो दर्पण आदर्शस्तस्य श्रीरिव श्रीर्यस्य तथोक्तः। अत्र श्रीशब्दस्य रूढत्वेन शोभेतिसंज्ञावाचकत्वात् 'संज्ञापूरण्योश्च' इति पुंवद्भावो न। सुधानिधिश्चन्द्रो यस्य कैलासस्य मूर्धनि शृङ्गे तिष्ठन्। शिवालयस्य शिवाः कल्याणकारिण आलया गृहा यत्र तस्य। शैलानामधिनाथस्य पत्युर्हि-

मालयस्यानर्घ्यो यश्चूडामणिस्तत्तामुपैति । हिमालयशिखरस्य कैलासशिखरात्किंचिदधिकत्वम् । यदा कैलासमूर्धनि चन्द्रस्तदा हिमालयस्य मूर्ध्नोऽधः किंचिद्वर्तत इति भावः ॥४४॥

हिन्दी—अप्सराओं के श्रृङ्गार दर्पण की शोभा धारण करने वाला यह चन्द्रमा जब कैलास पर्वत की चोटी पर पहुँच जाता है तो वह भगवान् शिव के निवासभूत पर्वतराज हिमालय का अनमोल चूडामणि जैसा प्रतीत होता है ।

समीयिवांसो रहसि स्मरार्ता रिरंसवो यत्र सुराः प्रियाभिः ।
एकाकिनोऽपि प्रतिबिम्बभाजो विभान्ति भूयोभिरिवान्विताः स्वैः ४५

अन्वयः—यत्र सुराः स्मरार्त्ताः रिरंसवः प्रियाभिः (सह) एकाकिनः अपि रहसि समीयिवांसः भूयोभिः स्वैः अन्विताः इव विभान्ति । यतः प्रतिविम्बभाजः ।

संजी०—समीयिवांस इति ।। यत्र सुराः स्मरार्ता अत एव रिरंसवो रन्तुमिच्छन्तः । रमतेः सन्नन्तात् 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युप्रत्ययः । तथोक्ताः । अत एव प्रियाभिः सहैकाकिनोऽपि प्रत्येकमेकसंख्याका अपि रहसि समीयिवांसः प्राप्नुवन्तो भूयोभिः स्वैर्देहैरन्विता इव विभान्ति । यतः प्रतिबिम्बभाजः । प्रतिबिम्बवशादेक एवानेकधा दृश्यत एवेति युक्तमेवेति भावः ॥४५॥

हिन्दी—कामवासना से व्याकुल देवगण अपनी-अपनी देवियों के साथ एकान्त में विहार करने की अभिलाषा से जब यहाँ आते हैं तो अकेले होने पर भी उसमें पड़ने वाली अपनी छाया के अनेक रूपों को देखकर वे इस भ्रम पड़ जाते हैं कि उनके अनेकों रूप हो गये हैं ।

देवोऽपि गौर्या सह चन्द्रमौलिर्यदृच्छया स्फाटिकशैलश्रृङ्गे ।
श्रृङ्गारचेष्टाभिरनारताभिर्मनोहराभिर्व्यहरच्चिराय ॥४६॥

अन्वयः—चन्द्रमौलिः देवः अपि स्फटिकशैलश्रृङ्गे गौर्या सह यदृच्छयामनोहराभिः अनारताभिः श्रृङ्गारचेष्टाभिः चिराय व्यहरत् ।

संजी०—देवोऽपीति ॥ चन्द्रमौलिर्देवोऽपि हरोऽपि स्फाटिकशैलः कैलासस्तस्य श्रृङ्गे शिखरे । 'श्रृङ्गं प्रभुत्वे शिखरे' इति मेदिनी । गौर्या पार्वत्या सह यदृच्छया स्वेच्छया । यथाकाममित्यर्थः । मनोहराभिरत एवानारताभिर्निरन्तरं भवन्तीभिः श्रृङ्गारचेष्टाभिश्चिराय व्यहरद्विजहार ॥४६॥

हिन्दी—भगवान् शंकर भी उस कैलास पर्वत के स्फटिकमय शिखर पर अपनी प्रिया पार्वती के साथ बहुत दिनों तक निरन्तर मनोनुकूल अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से विहार करने लगे ।

देवस्य तस्य स्मरसूदनस्य हस्तं समालिङ्ग्य सुविभ्रमश्रीः ।
सा नन्दिना वेत्रभृतोपदिष्टमार्गा पुरोगेण कलं चचाल ॥४७॥

अन्वयः—सुविभ्रमश्रीः स्मरसूदनस्य तस्य देवस्य हस्तं समालिङ्ग्य वेत्रभृता पुरोगेण नन्दिना उपदिष्टमार्गा कलम् चचाल ।

संजी०—देवस्येति ॥ सुविभ्रमश्रीः शोभना विभ्रमस्य विलासस्य श्रीर्यस्याः सा पार्वती । स्मरसूदनस्य स्मरविनाशकस्य तस्य देवस्य हरस्य हस्तं समालिङ्ग्य । अवलम्ब्येत्यर्थः । वेत्रभृता यष्टिधारकेण तथा पुरोगेणाग्रगामिना नन्दिना गणेनोपदिष्टमार्गतो गमनं विधेयमिति प्रदर्शितमार्गा सती कलं मधुरं यथा तथा चचाल । मन्थरां गतिमकार्षीदित्यर्थः ॥४७॥

हिन्दी—सुन्दर हावभावादि शृङ्गार चेष्टाओं से सुशोभित पार्वती शङ्कर जी के हाथ का आलिङ्गन करती हुई आगे चलने वाले वेत्रधारी नन्दी के द्वारा बताये हुये मार्ग से बहुत धीरे-धीरे चलती थीं ।

चलच्छिखाग्रो विकटाङ्गभङ्गः सुदन्तुरः शुक्लसुतीक्ष्णतुण्डः ।
भ्रुवोपदिष्टः स तु शंकरेण तस्या विनोदाय ननर्त भृङ्गी ॥४८॥

अन्वयः—चलच्छिखाग्रः विकटाङ्गभङ्गः सुदन्तुरः शुक्लसुतीक्ष्णतुण्डः सः भृङ्गी तस्या विनोदाय शंकरेण भ्रुवा उपदिष्टः सन् ननर्त्त ।

संजी०—चलदिति ॥ चलन्ति शिखाग्राणि चूडाग्राणि यस्य । 'शिखा शाखा बर्हिचूडालाङ्गलिक्यग्रमात्रके । चूडामात्रे शिखायां च ज्वालायां प्रपदेऽपि च ।' इति मेदिनी । तथा विकटाः कराला अंगभंगा नृत्यचेष्टाविशेषा यस्य । 'विकटो वज्रवाराह्यां त्रिषु रुचिरकालयोः' इति मेदिनी । तथा सुदन्तुर उन्नतः । 'दन्तुरस्तून्नते त्रिषु' इति मेदिनी । 'दन्त उन्नत उरच्' इत्युरच्प्रत्ययः । शुक्लं शुभ्रं सुतीक्ष्णं सुतरां तिग्मं तुण्डं मुखं यस्य । एतादृशः स प्रसिद्धो भृङ्गी गणविशेषस्तु । तस्या भवान्या विनोदायानन्दाय शंकरेण भ्रुवोपदिष्टः प्रेरितः सन्ननर्त ॥४८॥

हिन्दी—शिखा को हिलाते हुये विकट रूप से अंगों का संचालन करते हुये दन्तुर (बड़े-बड़े दाँतों वाले) तथा स्वच्छ एवं तेज दाँतों वाले भृङ्गी शंकर जी के भौहों का संकेत पाकर पार्वती का मन बहलाने के लिये अपना नृत्य दिखाते हैं ।

कण्ठस्थलीलोलकपालमाला दंष्ट्राकरालाननमभ्यनृत्यत् ।
प्रीतेन तेन प्रभुणा नियुक्ता काली कलत्रस्य मुदे प्रियस्य ॥४९॥

अन्वयः—कण्ठस्थलीलोलकपालमाला, दंष्ट्राकरालाननम् बिभ्रती काली प्रियस्य कलत्रस्य मुदे तेन प्रभुणा प्रीतेन नियुक्ता अभ्यनृत्यत् ।

संजी० – कण्ठस्थलीति ।। कण्ठस्य स्थल्यां लोला कपालानां नृकपालानां माला यस्याः तथा दंष्ट्राभिः करालं भयानकमाननं बिभ्रती काली कालिका। 'काली तु कालिकाक्षीरकीटेषु परिकीर्तिता' इति मेदिनी। प्रियस्य कलत्रस्य पार्वत्या मुदे प्रीत्यै तेन प्रभुणा हरेण प्रीतेन सता नियुक्ता प्रेरिता सती। अभ्यनृत्यन्ननर्त। नृत्यतेर्दैवादिकात्कर्तरि लङ् ।।४९।।

हिन्दी—इधर गले में झूलती हुई खोपड़ियों की माला धारण किये बड़े बड़े दाँतों से भयानक मुख धारण किये हुये काली अपने प्रियतम की पत्नी पार्वती को आनन्दित करने के लिये शंकर की प्रेरणा से नृत्य करने लगी।

भयंकरौ तौ विकटं नदन्तौ विलोक्य बाला भयविह्वलाङ्गी।
सरागमुत्सङ्गमनङ्गशत्रोर्गाढं प्रसह्य स्वयमालिलिङ्ग ।।५०।।

अन्वयः—विकटं नदन्तौ भयङ्करौ तौ विलोक्य भयविह्वलाङ्गी बाला प्रसह्य स्वयं अनङ्गशत्रोः उत्संगम् सरागं गाढम् आलिलिङ्ग।

संजी०– भयंकराविति ।। विकटं करालं यथा तथा नदन्तौ शब्दायमानौ। अत एव भयंकरौ तौ कालीभृंगिणौ विलोक्य भयेन विह्वलमङ्गं यस्याः सा बाला पार्वती प्रसह्य बलात्कारेण स्वयमात्मनैवानंगशत्रोर्हरस्योत्संगं सरागं सानुरागं यथा तथा। 'सरङ्गम्' इति पाठे भावे नलोपश्चिन्त्यः। गाढमालिलिङ्ग। अन्योऽपि भीतः सन्कंचिदालिङ्गति तद्वदिति भावः ।।५०।।

हिन्दी—उन दोनों को (भृङ्गी तथा कालिका) को भयंकर शब्द करते देखकर भयभीत हुई बाला पार्वती ने बलपूर्वक स्वयं शंकर जी की गोद में जाकर रागयुक्त हो प्रगाढ रूप से आलिङ्गन किया।

उत्तुङ्गपीनस्तनपिण्डपीडं ससंभ्रमं तत्परिरम्भमीशः।
प्रपद्य सद्यः पुलकोपगूढः स्मरेण रूढप्रमदो ममाद ।।५१।।

अन्वयः ईशः रूढप्रमदः उत्तुङ्गपीनस्तनपिण्डपीडम् ससंभ्रमम् तत् परिरम्भं प्रपद्य स्मरेण सद्यः पुलकोपगूढः ममाद।

संजी०—उत्तुङ्गेति ।। ईशो हरो रूढोपर्यारूढा प्रमदा पार्वती यस्यात एवोत्तुङ्गमुच्चैः पीनं पुष्टं यत्स्तनपिण्डम्। उभयोरतिस्थूलतया परस्परसंयुक्तत्वात्पिण्डीभूतमिति भावः। तेन कृत्वा पीडा यत्र। तथा ससंभ्रमं सभयं तस्यास्तत्कर्तृकं परिरम्भमाश्लेषं प्रपद्य प्राप्य स्मरेण कामेन हेतुना सद्यः सहसा पुलकैरुपगूढः सन्ममाद मत्तो बभूव ।।५१।।

हिन्दी—शंकर भी मतवाली पार्वती के आलिंगन के समय ऊँचे, मोटे तथा परस्पर सटे हुये होने से पिण्डीभूत पार्वती के स्तन के दबाव एवं भयभीत होकर उनके द्वारा किये गये स्वयं आलिंगन को प्राप्त कर कामदेव से रोमाञ्चित हो मतवाले हो गये ।

इति गिरितनुजाविलासलीलाविविधविभङ्गिभिरेव तोषितः सन् ।
अमृतकरशिरोमणिर्गिरीन्द्रे कृतवसतिर्वशिभिर्गणैर्ननन्द ॥५२॥

अन्वयः—गिरीन्द्रे कृतवसतिः अमृतकरशिरोमणिः एष इति गिरितनुजाविलासलीला विविधविभङ्गिभिः तोषितः सन् वशिभिः गणैः (सह) ननन्द ।

संजी०—इतीति ॥ गिरीन्द्रे कैलासे कृता वसतिर्येन तथामृतकरश्चन्द्रः शिरसि मणिरिव यस्य स एष हर इत्येवंभूतैर्गिरितनुजायाः पार्वत्याः संबन्धिनी या विलासलीला सकामचेष्टा क्रीडा तस्या विविधा नानाविधा या विभङ्ग्यो रचनास्ताभिस्तोषितः प्रीतः सन् । वशिभिः स्ववशंगतैर्गणैर्नन्दिप्रभृतिभिः सह ननन्द जहर्ष । तेषां हर्षोऽनयोरलौकिकक्रीडादर्शनादिति भावोऽनुसंधेयः । पुष्पिताग्रावृत्तम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति तल्लक्षणात् ॥५२॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसंतीगर्भसंभवश्रीसीता-
रामकविविरचितया सजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कैलासगमनो नाम नवमः सर्गः ॥

हिन्दी—इस प्रकार कैलास पर्वत पर निवास करते हुये अमृत किरणों वाले चन्द्रमा को शिर पर धारण किये भगवान् सदाशिव पार्वती जी को विलासपूर्ण लीला के अनेक भङ्गियों से संतुष्ट होकर अपने जितेन्द्रिय गणों के साथ परम-प्रसन्न हुये ।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के नवम सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

दशमः सर्गः ।



आससाद सुनासीरं सदसि त्रिदशैः सह ।
एष त्रैयम्बकं तीव्रं वहन्वह्निर्महन्महः ॥१॥

अन्वयः—एषः वह्निः तीव्रम् महत् त्रैयम्बकम् महः वहन् त्रिदशैः सह सदसि सुनासीरम् आससाद ।

संजी०—आससादेति ॥ एषः वह्निः तीव्रं दुःसहं महत्त्रैयम्बकं शैवम् । त्र्यम्बकशब्दात् इदमर्थकेऽणि 'न य्वाभ्याम्' इत्यैजादेशः । महो वीर्यं वहन् । त्रिदशैर्देवैः सह सदसि सभायां स्थितं सुनासीरं महेन्द्रमाससाद प्राप । 'वृद्धश्रवाः सुनासीरः' इत्यमरः ॥१॥

हिन्दी—तदनन्तर अग्निदेव भगवान् शिव के उस तीक्ष्ण तथा तेजस्वी वीर्य को लिये हुये वहाँ पहुँचे जहाँ देवताओं के साथ सभा में इन्द्रदेव बैठे हुये थे ।

सहस्रेण दृशामीशः कुत्सिताङ्गं च सादरम् ।
दुर्दर्शनं ददर्शाग्निं धूम्रधूमितमण्डलम् ॥२॥

अन्वय—कुत्सिताङ्गम् दुर्दर्शनम् धूम्रधूमितमण्डलम् अग्निम् ईशः दृशां सहस्रेण सादरं ददर्श ।

संजी०—सहेति ॥ कुत्सिताङ्गमत एव दुर्दर्शनं धूम्रं धूम्रवर्णं धूमितं संजातधूमम् । तारकादित्वादितच् । मण्डलं यस्य तमग्निमीशो महेन्द्रो दृशां सहस्रेण सादरं यथा तथा ददर्श दृष्टवान् ॥२॥

हिन्दी—इन्द्र ने कुत्सित अंगों वाले अतएव विवर्ण धूयें से धूमिल वर्ण वाले अग्निदेव को बड़े आदर के साथ अपने सहस्रों नेत्रों से देखा ।

दृष्ट्वा तथाविधं वह्निमिन्द्रः क्षुब्धेन चेतसा ।
व्यचिन्तयच्चिरं किंचित्कन्दर्पद्वेषिरोषजम् ॥३॥

अन्वयः— इन्द्रः वह्निम् तथाविधं दृष्ट्वा क्षुब्धेन चेतसा कन्दर्पद्वेषिरोषजम् किञ्चित् चिरम् व्यचिन्तयत् ।

संजी०--दृष्ट्वेति ।। इन्द्रो वह्निं तथाविधं दृष्ट्वा क्षुब्धेन संचलितेन चेतसा कन्दर्पद्वेषिणो हरस्य रोषाज्जातं किंचिदपराधलक्षणं चिरं व्यचिन्तयत् ।।३।।

हिन्दी--उन्होंने अग्नि को इस प्रकार मलीन देखकर व्याकुल चित्त हो शंकर जी के क्रोध से इनकी यह दशा हुई होगी-कुछ इसी प्रकार का विचार देर तक किया ।

स विलक्ष्यमुखैर्देवैर्वीक्ष्यमाणः क्षणं क्षणम् ।
उपाविशत्सुरेन्द्रेणादिष्टं सादरमासनम् ।।४।।

अन्वयः--स विलक्ष्यमुखैः देवैः क्षणं क्षणं वीक्षमाणः (सन्) सुरेन्द्रेण सादरम् आदिष्टम् आसनम् उपाविशत् ।

संजी०--स इति ।। सोऽग्निर्विलक्ष्यमुखैर्म्लानमुखैर्देवैः क्षणं क्षणं प्रतिक्षणं वीक्ष्यमाणो दृश्यमानः सन् । सुरेन्द्रेण सादरमादिष्टमासनमुपाविशत् ।।४।।

हिन्दी--उन अग्निदेव को उस समय देवता लोग क्षण-क्षण अपने मलीन मुखों से देख रहे थे । इसके पश्चात् अग्निदेव इन्द्र के द्वारा आदरपूर्वक दिये गए आसन पर बैठ गए ।

हव्यवाह त्वयासादि दुर्दशेयं दशा कुतः ।
इति पृष्टः सुरेन्द्रेण स निःश्वस्य वचोऽवदत् ।।५।।

अन्वयः--स हे हव्यवाह ! त्वया दुर्दशा इयं दशा कुतः आसादि । इति सुरेन्द्रेण पृष्टः (सन्) निःश्वस्य वचः अवदत् ।

संजी०--हव्यवाहेति ।। सोऽग्निः । हे हव्यवाह, त्वया दुर्दशेयं दशावस्था कुतो हेतोरासादि प्रापीति सुरेन्द्रेण पृष्टः सन्निःश्वस्य निःश्वासं कृत्वा वचो वक्ष्यमाणमवदत् ।।५।।

हिन्दी--तदनन्तर उन इन्द्रदेव ने अग्नि से पूछा--हे अग्निदेवः तुमने दुर्दशा की इस अवस्था किस प्रकार प्राप्त की । इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर अग्नि-देव बोले ।

अथ युग्मेनाह--

अनतिक्रमणीयात्ते शासनात्सुरनायक ।
पारावतं वपुः प्राप्य वेपमानोऽतिसाध्वसात् ।।६।।
अभिगौरि रतासक्तं जगामाहं महेश्वरम् ।
कालस्येव स्मरारातेः स्वं रूपमहमासदम् ।।७।।

अन्वयः—हे सुरनायक ! अहम् पारावतं वपुः प्राप्य अनतिक्रमणीयात् ते शासनात् अभिगौरि रतासक्तं महेश्वरं जगाम ।

(अथ) अतिसाध्वसात् वेपमानः अहम् कालस्य इव स्मरारातेः तम् रूपम् आसदम् ।

संजी—अनतीति । अभिगौरीति ॥ हे सुरनायक, अहं पारावतं कापोतं वपुः प्राप्यानतिक्रमणीयादनुल्लङ्घनीयात्ते तव शासनाद्धेतोरभिगौरि गौर्यामित्यभिगौरि । 'अव्ययं विभक्ति-' इत्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । रतासक्तं महेश्वरं जगाम प्राप । जगामेति लिट उत्तमपुरुषैकवचनम् । अथ चातिसाध्वसाद्वेपमानः कम्पमानोऽहं कालस्येव । तद्वद्भयानकस्येत्यर्थः । स्मरारातेर्हरस्य । पुर इति शेषः । स्वं रूपमाग्नेयं स्वरूपमासदं प्रापम् । लङ उत्तमपुरुषैकवचनम् ॥७॥

हे देवराज ! मैं कबूतर का रूप धारण कर आपकी अनुल्लङ्घनीय आज्ञा से गौरी के साथ संभोग करने वाले महेश्वर के पास जा पहुँचा, किन्तु अत्यन्त भय से काँपता हुआ, मैंने काल के समान भयंकर शंकर के सामने जाते ही पुनः अपने अग्नि स्वरूप को धारण कर लिया ।

दृष्ट्वा छद्मविहङ्गं मां सुज्ञो विज्ञाय जम्भभित् ।
ज्वलद्भालानले होतुं कोपनो मामन्यत ॥८॥

अन्वयः—(हे) जम्भभित् सुज्ञः माम् दृष्ट्वा छद्मविहङ्गम् विज्ञाय कोपनः माम् ज्वलद्भालानले होतुं अमन्यत ।

संजी०—दृष्ट्वेति ॥ हे जम्भभिदिन्द्र, सुज्ञो हरो मां दृष्ट्वा । अथ च छद्मना विहंगं विज्ञाय ज्ञात्वा । दर्शनमात्रादेव तु कापट्यानवगम एव किं तु विलम्ब्रोपस्थिततया । अतो ज्ञानदर्शनयोर्भिन्नकालीनत्वात्पृथग्व्यपदेशः । अतो ल्यब्द्वयस्य मननक्रियापेक्षया पूर्वत्वेनान्वयः । कोपनः क्रोधनः सन् । 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च' इति युच् । मां ज्वलति भालस्थेऽनलेऽग्नौ होतुं दग्धुममन्यत मेने । मननमत्र विचारणं तद्भवनफलकमिति । अहमेनमग्नौ धक्ष्यामीति विचचारेत्यर्थः ॥८॥

हिन्दी—हे जम्भाराते, शिव जी ने देखते ही कपटवेष में पक्षी का रूप धारण किये मुझे पहचान लिया । फिर तो क्रुद्ध होकर अपने ललाट में धधकती हुई अग्नि में झोंक कर भस्म कर देने का विचार किया ।

वचोभिर्मधुरैः सार्थैर्विनम्रेण मया स्तुतः ।
प्रीतिमानभवद्देवः स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ।।९।।

अन्वयः––मया विनम्रेण सार्थैः मधुरैः वचोभिः स्तुतः देवः प्रीतिमान् अभवत् । स्तोत्रं कस्य तुष्टये न ।

संजी०––वचोभिरिति ।। मया विनम्रेण सता सार्थैः साभिप्रायार्थैरत एव मधुरैर्मनोहरैर्वचोभिः करणैः । स्तुत ईडितो देवो हरः प्रीतिमानभवत् । मदुपरि प्रससादेत्यर्थः । तथाहि । स्तोत्रं स्तुतिः । 'स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः' इत्यमरः । कस्य तुष्टये संतोषाय न भवति । अपि तु सर्वस्यापीत्यर्थः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः ।।९।।

हिन्दी—जब मैंने विनम्रता से भावयुक्त मधुर शब्दों में उनकी स्तुति की तो वे प्रसन्न हो गये, क्योंकि अपनी प्रशंसा सबको अच्छी लगती है ।

शरण्यः सकलत्राता मामत्रायत शंकरः ।
क्रोधाग्नेर्ज्वलतो ग्रासात्त्रासतो दुर्निवारतः ।।१०।।

अन्वयः––शरण्यः सकलत्राता शंकरः ज्वलतः दुर्निवारतः क्रोधाग्नेः ग्रासात् त्रासतः माम् अत्रायत ।

संजी०––शरण्य इति ।। शरण्यः शरणे साधुः । 'तत्र साधुः' । इति यत्प्रत्ययः । अत एव सकलत्राता सर्वेषां रक्षिता । एवंभूतः शंकरो हरो ज्वलतो दीप्यमानस्य दुर्निवारतो दुःखेन निवारयितुं शक्यस्य क्रोधाग्नेः क्रोधाग्निकर्तृकाद्ग्रासाद्यस्त्रासो भयं तस्मान्मामत्रायत ररक्ष । 'त्रैङ् पालने' लङ् ।।१०।।

हिन्दी––शरणागत की रक्षा करने वाले तथा संपूर्ण लोकों के रक्षक भगवान् शिव ने अपनी जलती हुई असह्य क्रोधाग्नि में आहुति बनाने के भय से मेरी रक्षा कर दी ।

परिहृत्य परीरम्भरभसं दुहितुर्गिरेः ।
कामकेलिरसोत्सेकाद् व्रीडया विरराम सः ।।११।।

अन्वयः—स गिरेः दुहितुः परिरम्भरभसं परिहृत्य व्रीडया कामकेलिरसोत्सेकात् विरराम ।

संजी०––परिहृत्येति ।। स हरो गिरेर्दुहितुः पार्वत्याः संबन्धिनं परीरम्भरभसं परिहृत्योत्सृज्य व्रीडया हेतुभूतया कामस्य केले रसस्योत्सेकान्मानसस्यासक्तेर्विरराम विरतोऽभूत् । 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम् ।।११।।

हिन्दी--तदनन्तर वे पार्वती जी द्वारा किए गए आलिङ्गनपाश से अपने को मुक्त कर लज्जित हो संभोग रस की मानसिक आसक्ति से विरत हो गये।

रङ्गभङ्गच्युतं रेतस्तदामोघं सुदुर्वहम्।
त्रिजगद्दाहकं सद्यो मद्विग्रहमधि न्यधात् ॥१२॥

अन्वयः—तदा (स हरः) रसभङ्गच्युतम् अमोघं त्रिजगद्दाहकं सुदुर्वहं रेतः मद्विग्रहं अधि सद्यः न्यधात्।

संजी०--रङ्गेति॥ तदा स हरो रङ्गस्य कामकेलेर्भङ्गादन्तरायात्। अस्य हेतोः क्रोधाभिव्यञ्जकत्वे न दोषः। च्युतं पतितममोघं सफलं त्रिजगद्दाहकमत एव सुदुर्वहं सुतरां दुःखेन वोढुं शक्यं रेतः शुक्रं मद्विग्रहमधि। मम शरीर इत्यर्थः। सद्यो न्यधात्। 'अधिमद्विग्रहम्' इति वक्तव्ये मद्विग्रहमधीत्युक्तं महाकविप्रयोगान्न दोषाय ॥१२॥

हिन्दी--शंकर जी ने बीच में ही रतिक्रिया के भंग हो जाने से गिरे हुए अमोघ त्रिलोकी को जलाने में समर्थ और सुदुर्वह अपने वीर्य को मेरे शरीर में सद्यः स्थापित कर दिया।

दुर्विषह्येण तेनाहं तेजसा दहनात्मना।
निर्दग्धमात्मनो देहं दुर्वहं वोढुमक्षमः ॥१३॥

अन्वयः—दह्यात्मना दुर्विषह्येण तेन तेजसा निर्दग्धं दुर्वहम् आत्मनः देहं वोढुम् अहम् अक्षमः।

संजी०—दुर्विषह्येणेति॥ दहनात्मनाग्निरूपेणात एव दुर्विषह्येण दुःखेन वोढुं शक्येन। 'शकिसहोश्च' इति यत्। तेन तेजसा वीर्येण निर्दग्धमत एव दुर्वहमात्मनो देहं वोढुमहमक्षमोऽस्मि। यथाहं क्षमः स्यां तथैव त्वयाशु विधेयमिति व्यज्यते ॥१३॥

हिन्दी—उस ज्वलनात्मक अविषह्य तेज से मैं इतना जला जा रहा हूँ कि अब यह शरीर दुर्वह हो गया है। मुझ में इसे ढोने की शक्ति भी नहीं रह गई है।

रौद्रेण दह्यमानस्य महसातिमहीयसा।
मम प्राणपरित्राणप्रगुणो भव वासव ॥१४॥

अन्वयः—हे वासव! अतिमहीयसा रौद्रेण महसा दह्यमानस्य मम प्राणपरित्राणप्रगुणः भवः।

संजी०--रौद्रेणेति॥ हे वासव इन्द्र, अतिमहीयसा रौद्रेण शांभवेन महसा तेजसा दह्यमानस्य मम प्राणानां परित्राणेन प्रगुणो विख्यातो भव। मम प्राणत्राणे भवतो महद्यशो भविष्यतीति भावः ॥१४॥

इसलिए हे वासव ! इस शंकर के अत्यन्त महा भयानक तेज से भस्म होने वाले मुझ अग्नि के प्राणों की रक्षा करने का यश प्राप्त कीजिये ।

इति श्रुत्वा वचो वह्नेः परितापोपशान्तये ।
हेतुं विचिन्तयामास मनसा विबुधेश्वरः ॥१५॥

अन्वयः—विबुधेश्वरः वह्नेः इति वचः श्रुत्वा परितापोपशान्तये मनसा हेतुं विचिन्तयामास ।

संजी०—इतीति ॥ विबुधानामीश्वरो महेन्द्रो वह्नेरितीत्येवंभूतं वचः श्रुत्वा परितापस्योपशान्तये । अर्थात्तस्यैवेत्यर्थः । मनसा हेतुं निदानं विचिन्तयामास । केनोपायेनास्य तापोपशान्तिर्भवेदिति विचारयामासेत्यर्थः ॥१५॥

हिन्दी—अग्नि की इस प्रकार की बात सुनकर देवताओं के स्वामी इन्द्र उसके परिताप को शान्त करने का उपाय अपने मन में सोचने लगे ।

तेजोदग्धानि गात्राणि पाणिनास्य परामृशन् ।
किंचित्कृपीटयोनिं तं दिवस्पतिरभाषत ॥१६॥

अन्वयः—दिवस्पतिः कृपीटयोनिं तं तेजोदग्धानि अस्य गात्राणि पाणिना परामृशन् किञ्चिद् अभाषत ।

संजी०—तेज इति ॥ दिवस्पतिरिन्द्रस्तं कृपीटयोनिमग्निं कर्मभूतं तेजसा शांभवेन धाम्ना दग्धानि प्लुष्टान्यस्याग्नेर्गात्राणि पाणिना परामृशन्स्पृशन्सन् । किंचिद्वक्ष्यमाणमभाषतोवाच । भाषतेर्द्विकर्मकत्वं हि ब्रूअर्थनिबद्धत्वात् । 'अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा' इति वार्तिकात् । 'कृपीटयोनिर्ज्वलनः' इत्यमरः । 'शतमन्युर्दिवस्पतिः' इति च ॥१६॥

हिन्दी—फिर इन्द्र ने कृपीटयोनि उन अग्निदेव के महेश्वर के तेज से जलते हुए अंगों पर हाथ फेरते हुए कहा—

अथेन्द्रोऽग्निं सप्तभिः स्तौति—

प्रीतः स्वाहास्वधाहन्तकारैः प्रीणयसे स्वयम् ।
देवान्पितॄन्मनुष्यांस्त्वमेकस्तेषां मुखं यतः ॥१७॥

अन्वयः—(भो अग्ने) त्वं प्रीतः (सन्) स्वाहास्वधाहन्तकारैः देवान् पितॄन् मनुष्यान् च स्वयं प्रीणयसे यतः (त्वम्) एकः (एव) तेषां मुखम् असि ।

संजी०—प्रीत इति ॥ भो अग्ने, त्वं प्रीतः सन् । स्वाहाकारः स्वधाकारो

हन्तकार एतैः शब्दैः कृत्वा होतृभिः प्रक्षिप्तेन । हविषेति शेषः । देवानिन्द्रादीन्पितॄन्मनुष्यांश्च स्वयं प्रीणयसे प्रसादयसि । कथमेतान्प्रसादयामीत्याह-- यत एक एव त्वं तेषां देवादीनां मुखमसि ॥१७॥

हिन्दी--हे अग्ने ! तुम स्वाहा, स्वधा तथा हन्तकार शब्दों से होताओं के द्वारा दी गई हवि से देवता, पितर और मनुष्यों को स्वयं तृप्त करते हो, क्योंकि केवल एक तुम्हीं ही उन सबके मुख हो ।

त्वयि जुह्वति होतारो हवींषि ध्वस्तकल्मषाः ।
भुञ्जन्ति स्वर्गमेकस्त्वं स्वर्गप्राप्तौ हि कारणम् ॥१८॥

अन्वयः--होतारः हवींषि त्वयि जुह्वति ध्वस्तकल्मषाः स्वर्गं भुञ्जन्ति । हि त्वम् एकः स्वर्गप्राप्तौ कारणम् ।

संजी०—त्वयीति ॥ होतारो हवींषि त्वयि जुह्वति । अत एव ध्वस्तकल्मषाः स्रस्तपापाः सन्तः स्वर्गं भुञ्जन्ति । हि यतस्त्वमेक एव स्वर्गप्राप्तौ कारणम् । 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्' इत्यादिश्रुत्युक्तयागफलस्वर्गप्राप्तौ यागस्य त्वदायत्ततया कारणत्वोक्तेरिति भावः ॥१८॥

हिन्दी—होता लोग तुम्हीं में हवि की आहुति प्रदान करते हैं । इसलिए निष्पाप होकर वे स्वर्ग का भोग करते हैं । क्योंकि स्वर्गप्राप्ति में मात्र तुम्हीं एक कारण हो ।

हवींषि मन्त्रपूतानि हुताश त्वयि जुह्वतः ।
तपस्विनस्तपः सिद्धिं यान्ति त्वं तपसां प्रभुः ॥१९॥

अन्वयः—(भो) हुताश तपस्विनः मन्त्रपूतानि हवींषि त्वयि जुह्वतः तपः सिद्धिं यान्ति । त्वं तपसां प्रभुः ।

संजी०—हवींषीति ॥ भो हुताश, तपस्विनो मन्त्रपूतानि हवींषि त्वयि जुह्वतः सन्तः । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुम्निषेधः । तपःसिद्धिं यान्ति प्राप्नुवन्ति । यतस्त्वं तपसां प्रभुः ॥१९॥

हिन्दी—हे अग्निदेवः तपस्वी लोग मन्त्र द्वारा पवित्र की गई हवि की आहुति तुम्हीं में प्रदान करते रहने के कारण अपनी तपस्या की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि तुम्हीं तप के एकमात्र देवता हो ।

निधत्से हुतमर्काय स पर्जन्योऽभिवर्षति ।
ततोऽन्नानि प्रजास्तेभ्यस्तेनासि जगतः पिता ॥२०॥

अन्वयः--(त्वम्) अर्काय हुतं निधत्से, अतः सः पर्जन्यः (सन्) अभिवर्षति। ततः अन्नानि (उत्पद्यन्ते) तेभ्यः प्रजाः (जायन्ते) तेन जगतः पिता (असि)।

संजी०--निधत्स इति ॥ भो अग्ने, त्वमर्काय देवान्तःपातिने सूर्याय हुतं हविर्निधत्से निधानरूपतया ददासि। अतः सोऽर्कः पर्जन्यः सन्नभिवर्षति। ततो वर्षणादन्नान्युत्पद्यन्ते। तेभ्योऽन्नेभ्यः प्रजा जायन्ते। तेन कारणेन जगतः पितासि। पातीति पितेति व्युत्पत्त्या साधारणरक्षकस्यापि पितृत्वम्। न केवलं जनकस्यैवेति भावः। अत एवोक्तं नीतौ—'अन्नदाता भयत्राता यश्च कन्यां प्रयच्छति। जनिता चोपनेता च पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥२०॥

हिन्दी—हे अग्नेः तुम सूर्य के निमित्त दी गई आहुति को धरोहर की भाँति धारण कर उनके पास पहुँचा देते हो जिससे सूर्य उसे बादल बनाकर वर्षा करते हैं। इसी वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है जिससे प्रजाओं की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार एकमात्र तुम्हीं इस संसार के पिता हो।

अन्तश्चरोऽसि भूतानां तानि त्वत्तो भवन्ति च।
ततो जीवितभूतस्त्वं जगतः प्राणदोऽसि च ॥२१॥

अन्वयः--त्वम् भूतानाम् अन्तश्चरः असि, तानि च त्वत्तः भवन्ति। ततः त्वं जीवितभूतः जगतः प्राणदः च असि।

संजी०—अन्तरिति ॥ भो अग्ने, त्वं भूतानां प्राणिनामन्तश्चरोऽन्तर्व्याप्यसि। तानि भूतानि च त्वत्तो भवन्त्युत्पद्यन्ते। तत उभयकारणतस्त्वं जीवितानि प्राणितानि भूतानि येन तथोक्तो जगतः प्राणदश्चासि। अग्नेरन्तराधेयतयैव प्राणिनां जीवनमतो जीवितभूतत्वम्। अग्नेरेव जगदुत्पादकतया प्राणदत्वं चार्थातिसिद्धम्। उत्तरवाक्यद्वयस्य पूर्ववाक्यद्वयान्तर्गतत्वात्पृथक्त्वेन ग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न। अन्तर्व्यापित्वजीवितभूतत्वयोः साहचर्यप्रयुक्तं न सामानाधिकरण्यम्। यस्य यत्र यत्रान्तर्भावित्वं तस्य तत्र तत्र जीवितभूतत्वमिति नियमाभावात्। न च वह्निसंबन्धावच्छिन्नत्वेन तयोः सामानाधिकरण्यमिति वाच्यम्। वह्निसंबन्धावच्छिन्नत्वमन्तर्व्याप्ते तप्तायःपिण्डे, न तत्र जीवितभूतत्वम्। अतो वह्निसंबन्धावच्छिन्नत्वेनापि समानाधिकरणतानियमः कर्तुं न शक्यते। उत्पादकत्वप्राणदत्वयोः साहचर्यनियमाभावात्। कुलालस्य सत्यप्युत्पादकत्वे प्राणदत्वं नास्ति। घटमुत्पादयतोऽपि कुलालस्य न जीवनदातृत्वशक्तिरित्यलं विवादेन। अतिगहनोऽयं विवादः। 'जगतः' इति षष्ठी प्राणान्वयान्नतु दानान्वयात्। अन्यथा 'कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी प्रसज्येतेति। ननु जगत इत्यस्य प्राणा-

न्वये केवलसंबन्धवाचकत्वेन तस्य नित्यसंप्रदानविवक्षा केन निरस्यते। एवं च संप्रदानान्तरं मृग्यं स्यात्। अथवा जगत्संबन्धिनां प्राणानां दानं जगत्संप्रदानकमेवेत्यर्थात्संप्रदानसिद्धिः ॥२१॥

हिन्दी––तुम्हीं प्राणियों के भीतर निवास करते हो, और सभी प्राणी तुम्हीं से उत्पन्न होते हैं, इसलिए तुम सबके जीवन हो और प्राणदाता भी।

जगतः सकलस्यास्य त्वमेकोऽस्युपकारकृत्।
कार्योपपादने तत्र त्वत्तोऽन्यः कः प्रगल्भते ॥२२॥

अन्वयः—त्वम् एकः अस्य सकलस्य जगतः उपकारकृत् तत्र कार्योपपादने त्वत्तः अन्यः कः प्रगल्भते।

संजी०––जगत इति ॥ भो अग्ने, त्वमेक एवास्य सकलस्य जगत उपकारकृद्धितकृदसि। अत एवास्माकं तत्र कार्योपपादने त्वत्तोऽन्यः। 'अन्यारात्–' इति पञ्चमी। कः प्रगल्भते समर्थो भवेत्। न कोऽपीत्यर्थ ॥२२॥

हिन्दी—इस संपूर्ण जगत् के एकमात्र तुम्हीं उपकारक हो। अतः हमारे उन-उन कार्यों के पूरा करने में तुम्हें छोड़कर और कौन समर्थ हो सकता है?

अमीषां सुरसंघानां त्वमेकोऽर्थसमर्थने।
विपत्तिरपि संश्लाघ्योपकारव्रतिनोऽनल ॥२३॥

अन्वयः––(भो) अनल! अमीषां सुरसंघानाम् अर्थसमर्थने त्वम् एकः एव असि। उपकारव्रतिनः बिपत्तः संश्लाघ्यः।

संजी०—अमीषामिति ॥ भो अनल, अमीषां सुरसंघानां देवसमूहानामस्मदादीनामर्थसमर्थने कार्यसाधने विषये त्वमेक एव समर्थोऽसि एवंविधोऽप्यहं विपन्नः किं करोमीत्याह—विपत्तिरिति। उपकारेषु परहितेषु व्रतिनो नियमवतः पुरुषस्य विपत्तिरपि सम्यक्श्लाघ्या भवति। अतो विपन्नोऽपि स्तूयस इति भावः ॥२३॥

हिन्दी––हे अग्निदेव! तुम हम सरीखे देवताओं के काम को पूर्ण करने में अकेले ही समर्थ हो, मैं भी विपन्न पड़ा हूं। तुम्हारी सहायता किस प्रकार कर सकता हूँ। उपकार का व्रत लेने वालों को ऐसी विपत्ति भी प्रशंसा के योग्य होती है।

संप्रत्युपायमुपदिशति––

देवी भागीरथी पूर्वं भक्त्यास्माभिः प्रतोषिता।
निमज्जतस्तवोदीर्णं तापं निर्वापयिष्यति ॥२४॥

अन्वयः--पूर्वम् अस्माभिः भक्त्या प्रतोषिता भागीरथी देवी निमज्जतः तव उदीर्णम् तापः निर्वापयिष्यति ।

संजी०--देवीति ॥ पूर्वमस्माभिर्भक्त्या प्रतोषिता भागीरथी देवी निमज्जतः स्नानं कुर्वतस्तवोदीर्णमत्युल्बणं तापं निर्वापयिष्यति । प्रशमयिष्यतीत्यर्थः ॥२४॥

हिन्दी—पूर्वकाल में हम लोगों ने अपनी भक्ति से देवी गङ्गा को प्रसन्न कर लिया है । अतः उसमें डुबकी लगाते ही वह तुम्हारे इस जाज्वल्यमान ताप को अवश्य शान्त कर देगी ।

गङ्गा तद् गच्छ मा कार्षीर्विलम्बं हव्यवाहन ।
कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारिता ॥२५॥

अन्वयः--(भो) हव्यवाहन तत् गंगां गच्छ विलम्बं मा कुरु (तथाहि) अवश्यकार्येषु सिद्धये कार्येषु क्षिप्रकारिता ।

संजी०—गङ्गामिति ॥ भो हव्यवाहन, तत्तस्माद्गङ्गां देवीं गच्छ याहि । विलम्बं मा कार्षीर्मा कुरु । 'न माङ्योगे' इत्यडागमनिषेधः । तथाहि अवश्यकार्येष्ववश्यकर्तव्येषु कार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारितानलसतत्वम् । उचितेति शेषः । तस्मात्त्वया शीघ्रमेव गन्तव्यमिति भावः ॥२५॥

हिन्दी--इसलिए हे अग्निदेव ! अब विलम्ब मत करो । शीघ्र ही गङ्गा के पास जाओ । क्योंकि आवश्यक कार्य की सफलता के लिए उस कार्य में शीघ्रता बहुत आवश्यक होती है ।

ननु शक्तेनापि मया दुर्वाह्यं शैवं तेजो गङ्गा कथं धरिष्यतीत्याशङ्क्याह—

शंभोरम्भोमयी मूर्तिः सैव देवी सुरापगा ।
त्वत्तः स्मरद्विषो बीजं दुर्धरं धारयिष्यति ॥२६॥

अन्वयः— शम्भोः अम्भोमयी मूर्त्तिः देवी सा सुरापगा एव दुर्धरं स्मरद्विषः बीजं त्वत्तः (आदाय) धारयिष्यति ।

संजी०--शंभोरिति ॥ भो अग्ने, शंभोरम्भोमयी जलमयी मूर्तिर्देवी सा सुरापगैव गङ्गैव दुर्धरं स्मरद्विषो हरस्य बीजं तेजस्त्वत्त आदाय धारयिष्यति । धरिष्यतीत्यर्थः । 'शुक्रं तेजोरेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि च' इत्यमरः ॥२६॥

हिन्दी---भगवान् सदाशिव की साक्षात् जलमयी मूर्ति देवी गंङ्गा शिव के इस दुर्द्धर्ष वीर्य को तुमसे लेकर स्वयमेव धारण कर लेंगी।

इत्युदीर्य सुनासीरो विरराम स चानलः।
तद्विसृष्टस्तमापृच्छ्य प्रतस्थे स्वर्धुनीमभि ॥२७॥

अन्वयः---इति उदीर्य सुनासीरः विरराम। स अनलः च तद्विसृष्टः तम् आपृच्छ्य स्वर्धुनीम् अभिप्रतस्थे।

संजी०---इतीति ॥ इत्येवंभूतमुदीर्योक्त्वा सुनासीर इन्द्रो विरराम। तूष्णीं तस्थावित्यर्थः। विररामेति 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्। 'वृद्धश्रवाः सुनासीरः' इत्यमरः। सोऽनलश्चाग्निस्तु तद्विसृष्टस्तेन सुनासीरेण विसृष्टस्त्यक्तः। गन्तुमनुमत इत्यर्थः। तादृशः सन्। तमिन्द्रमापृच्छ्याहं गच्छामीत्याज्ञामादाय स्वर्धुनीं गङ्गामभि प्रतस्थे प्रस्थितवान् ॥२७॥

हिन्दी---इस प्रकार कहकर इन्द्रदेव चुप हो गए। उधर अग्निदेव उनसे विदा होकर उनकी आज्ञा ले गंगा की ओर चल पड़े।

हिरण्यरेतसा तेन देवी स्वर्गतरंगिणी।
तीर्णाध्वना प्रपेदे सा निःशेषक्लेशनाशिनी ॥२८॥

अन्वयः---तेन तीर्णाध्वना हिरण्यरेतसा निःशेषक्लेशनाशिनी सा स्वर्ग तरंगिणी देवी प्रपेदे।

संजी०---हिरण्येति ॥ तेन प्रस्थितेन तीर्णाध्वनावगाहितमार्गेण हिरण्यरेतसा वह्निना निःशेषक्लेशनाशिनी निःशेषा ये क्लेशाः पञ्च क्लेशास्तेषां नाशिनी। मुक्तिदायिनीत्यर्थ। सा प्रसिद्धा स्वर्गतरङ्गिणी स्वर्णदी देवी प्रपेदे प्राप्ता। कर्मणि लिट् ॥२८॥

हिन्दी---अग्निदेव समस्त मार्ग को पार करते हुए समस्त दुःखों को नष्ट करने वाली गंगादेवी के पास पहुंचे।

अथ त्रिभिस्तामेव विशिनष्टि---

स्वर्गारोहणनिःश्रेणिर्मोक्षमार्गाधिदेवता।
उदारदुरितोद्गारहारिणी दुर्गतारणी ॥२९॥

अन्वय---स्वर्गारोहणनिःश्रेणिः मोक्षमार्गाधिदेवता उदारदुरितोद्गार हारिणी दुर्गतारिणी।

संजी०---स्वर्गेति ॥ स्वर्गे यदारोहणं तस्य निःश्रेणिः सोपानपङ्क्तिः

अस्यां स्नानमात्रेणैव स्वर्गमारोहन्तीत्यर्थः। पुनश्च मोक्षमार्गस्य मुक्तिपथस्याधिदेवता। यां प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुवन्तीत्यर्थः। पुनश्चोदाराणामुच्चैस्तराणां दुरीतानां पापानामुद्गारस्य समूहस्य हारिणी। विनाशिनीत्यर्थः पुनश्च तरन्त्यनया सा तारणी। दुर्गस्य संसाररूपस्य तारणी। संसारार्णवमनया तरन्तीत्यर्थः। तारणीति णिजन्तात्तरतेः 'करणाधिकरणयोश्च' इति करणे ल्युट्। अतः 'टिड्ढा–' इति ङीप्। 'तारिणी' इति पाठे तारयति लोकान्सा तारिणी। दुर्गात्तारिणी। अत्र णिनौ कृते 'ऋन्नेभ्यः–' इति ङीप् ॥२९॥

हिन्दी––वह गंगा स्वर्गारोहण की सोपान हैं, मोक्षमार्ग की अधिष्ठातृ देवी हैं, ऊँचे से ऊँचे पाप समूहों को विनष्ट करने वाली हैं कि बहुना संसार रूप समुद्र से पार करने वाली हैं।

महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी।
सरागान्वयनिर्वाणकारिणी धर्मधारिणी ॥३०॥

अन्वयः—महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी सरागान्वयनिर्वाणकारिणी धर्मधारिणी।

संजी०––महेश्वरेति ॥ पुनश्च महेश्वरस्य जटाजूटे वासिनी वासवती। पुनश्च पापनाशिनी। अत्रापि तारणीवत्प्रत्ययव्यवस्था। पुनश्च सरागस्य विषयलिप्सोरन्वयस्य वंशस्यापि निर्वाणकारिणी मोक्षकारिणी। किं पुनर्विमुक्तानामित्यर्थः। धर्मं धारयति धर्मधारिणी। आत्मसंबन्धेन जन्तून्धर्मवतः कुर्वन्तीत्यर्थः ॥३०॥

हिन्दी––वह महेश्वर के जटाजूटों में निवास करने वाली हैं, पापों को दूर करने वाली हैं, विषयीजनों के वंशजों को मोक्ष देने वाली हैं, तथा धर्म को धारण करने वाली हैं।

विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकादुपागता।
त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम् ॥३१॥

अन्वयः—विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकाद् उपागता त्रिभिः स्रोतोभिः भुवनत्रयम् अश्रान्तं पुनाना।

संजी०––विष्णिवति ॥ पुनश्च विष्णुपादोदकादुद्भूतोत्पन्ना विष्णुपादोदकमेवास्या जन्महेतुरित्यर्थः। विष्णुपादोदकमेवोद्भूतं प्रादुर्भूतं रूपं यस्याः सेति वा। पुनश्च ब्रह्मलोकादुपागतेहागता। पुनश्च त्रिभिः स्रोतोभिः प्रवाहैर्भुवनत्रयं स्वर्गमृत्युपाताललक्षणमश्रान्तं निष्परिश्रमं यथा भवति तथा

पुनाना। पवित्रीकुर्वाणेत्यर्थः। अतः एव त्रिस्रोता इति नाम दधतीत्यर्थः। 'पूञ् पवने'। शानच् श्नाप्रत्ययश्च ॥३१॥

हिन्दी—वह भगवान् विष्णु के चरण धोने से उत्पन्न होकर ब्रह्मलोक से इस लोक में उतरी हुई हैं, तथा अपनी तीन धाराओं से तीनों लोकों को निरन्तर पवित्र करती रहती हैं, ऐसा करते उन्हें थकावट कभी नहीं आती।

जातवेदसमायान्तमूर्मिहस्तैः समुत्थितैः।
आजुहावार्थसिद्ध्यै तं सुप्रसादधरेव सा ॥३२॥

अन्वयः—सुप्रसादधरा सा आयान्तं तं जातवेदसं अर्थसिद्ध्यै समुत्थितैः ऊर्मिहस्तैः इव आजुहाव।

संजी०—जातवेदसमिति ॥ सुतरामतिशयितो यः प्रसादस्तस्य धरा धारिणी सा गङ्गा आयान्तमागच्छन्तं तं जातवेदसमग्निमर्थसिद्ध्या अर्थसिद्धिं कर्तुं समुत्थितैरुच्चलितैरूर्मय एव हस्तास्तैः कृत्वाजुहावेव। अन्योऽपि हस्तसंकेतेन कंचिदाह्वयति। पुनः पुनरूर्मिसमुत्थानं तत्कर्तृकमाह्वानमिवेत्युत्प्रेक्षा। आङ्पूर्वा ह्वयतेः कर्तरि लिट् ॥३२॥

हिन्दी—प्रसन्न मन वाली उन गङ्गा ने आते हुए अग्निदेव को देख कर कार्य सिद्धि के लिए अपने में उठता हुआ तरंग रूपी हाथों से स्वयं उन्हें बुलाया।

संमिलद्भिर्मरालैः सा कलं कूजद्भिरुन्मदैः।
ददे श्रेयांसि दुःखानि निहन्मीति तमभ्यधात् ॥३३॥

अन्वयः—समिलद्भिः उन्मदैः कलं कूजद्भिः मरालैः सा तम् अभ्यधात्। इति श्रेयांसि ददे दुःखानि निहन्मि।

संजी०—संमिलद्भिरिति ॥ संमिलद्भिः सम्यङ्मिलन्त्येकीभवन्तीति तथोक्तैः। तथोन्मदैरुन्मत्तैरत एव कलं मधुरं यथा भवति तथा कूजद्भिः शब्दायमानैर्मरालैर्हंसैर्युक्ता सा देवी गङ्गा तमग्निमित्यभ्यधादुवाच। किमिति तत्। भो अग्ने, तुभ्यं श्रेयांसि ददे। दुःखानि निहन्मि। आत्मशक्त्याभिधाने जलरूपतयाऽशक्तापि स्वकीयतीरगतहंसनिनादेन वदति स्मेति भावः ॥३३॥

हिन्दी—वह गंगा अपने तट पर परस्पर एक हुए उन्मत्त होने के कारण मधुर बोलने वाले हंसों के शब्द के बहाने मानो अग्नि से कह रही थी कि हे अग्ने, मैं तुम्हारे लिए कल्याण प्रदान करूँगी और तुम्हारे दुःखों का भी विनाश करूँगी।

कल्लोलैरुद्गतैरर्वाचीनं तटमभिद्रुतैः।
प्रीतेव तमभीयाय स्वधुनी जातवेदसम् ॥३४॥

अन्वयः—स्वर्धुनी प्रीता उद्गतैः अर्वाचीनं तटम् अभिद्रुतैः कल्लोलैः तं जातवेदसं अभीयाय इव (संमुखीबभूव)।

संजी०—कल्लोलैरिति ॥ स्वर्धुनी गङ्गा प्रीता सती। उद्गतैरानन्दादुद्वेलैरत एवार्वाचीनमर्वाग्भवं तटमभिद्रुतैः पलायितैः कल्लोलैः कृत्वा तं जातवेदसमभीयायेव संमुखीबभूवेत्र ॥३४॥

हिन्दी—उस समय वह गंगा प्रसन्न होकर मानो अपने में उठती हुई किनारे की ओर जोर से भागती हुई लहरों के द्वारा उन अग्निदेव का स्वागत करने के लिए सामने आती जैसी प्रतीत होती थी।

अथाभ्युपेतस्तापार्तो निममज्जानलः किल।
विपदा परिभूताः किं व्यवस्यन्ति विलम्बितुम् ॥३५॥

अन्वयः—अथ तापार्त्तः अभ्युपेतः अनलः किल निममज्ज। विपदा परिभूताः विलम्बितुं किं व्यवस्यन्ति ?

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरं तापेन हरतेजोजन्मनार्तः पीडितोऽत एवाभ्युपेतः संमुखमुपगतोऽनलोऽग्निः। किलेति प्रसिद्धे। निममज्ज निमग्नोऽभूत्। ननु झटित्येव किं मग्न इत्यर्थान्तरं न्यस्यति—विपदापदा परिभूता जिताः पुरुषा विलम्बितुमापत्प्रतीकारविलम्बभविष्णुतां सोढुं किं व्यवस्यन्त्युद्युञ्जते। अपि तु नेत्यर्थः। 'प्रतीक्षते जातु न कालमार्तिः' इति न्यायादिति भावः ॥३५॥

हिन्दी—तदनन्तर उस वीर्य के तेज से जलते हुए अग्निदेव ने वहाँ पहुँचते ही गंगा में डुबकी लगा दी। विपत्ति के मारे हुए लोग भला किस प्रकार विलम्ब सहन कर सकते हैं।

गंगावारिणि कल्याणकारिणि श्रमहारिणि।
स मग्नो निर्वृतिं प्राप पुण्यभारिणि तारिणि ॥३६॥

अन्वयः—सः कल्याणकारिणी श्रमहारिणि पुण्यभारिणि तारिणि गंगावारिणि मग्नः निर्वृतिं प्राप।

संजी०—गङ्गेति ॥ सोऽग्निः। कल्याणकारिण्यनेकमङ्गलविधायिनि श्रमहारिणि परिश्रमहारके। पुण्यं भारयति जनैः संग्राहयति तस्मिन्पुण्यभारिणि येन जनाः पुण्यभारवन्तो भवन्तीति भावः। तारिणि भवार्णवतारिणि गङ्गावारिणि गाङ्गेयजले मग्नः स्नातः सन् निर्वृतिं सुखं प्राप। तापार्तानां वारिणिमज्जनमेव सुखैकहेतुरिति भावः ॥३६॥

हिन्दी—अग्निदेव कल्याण करने वाले, थकावट दूर करने वाले, मनुष्यों को

स्वयं पुण्यप्रदान करने वाले सबको तारने वाले गंगाजल में डुबकी लगाते ही सर्वथा सुखी हो गये।

तत्र माहेश्वरं धाम संचक्राम हविर्भुजः।
गंगायामुत्तरंगायामन्तस्तापविपद्धृति ॥३७॥

अन्वयः—माहेश्वरंधाम हविर्भुज अन्तस्ताप विपद्धृति उत्तराङ्गायां तत्र गङ्गायां संचक्राम।

संजी०—तत्रेति ॥ माहेश्वरं शैवं धाम तेजो हविर्भुजोऽग्नेः सकाशात्तत्र गङ्गायां संचक्राम संक्रान्तम्। लग्नमिति यावत्। अत एव किंभूतायां गङ्गायाम्। अन्तर्मध्ये ताप एव विपत्तां धरति तथोक्तायामत एवोल्ललिता अतिवेलास्तरंगाः कल्लोला यस्यास्तथोक्ता तस्याम्। विशेषणद्वयार्थस्य पूर्ववाक्यानन्तरभावितया पृथग्वाक्यत्वेन व्यपदेशे कर्तव्ये विशेषणतया वाक्यात्पूर्वोत्पादनं यत्तद्रूज्यतया व्यवस्थितम्। न तु चित्तपरितोषाय। धामसंक्रमणात्प्राग्विपद्धरणासंभवात्। 'धृता' इति पञ्चम्यन्तपाठे हविर्भुजो विशेषणम्। उत्तरंगत्वेन जलप्रकृतिविलसितं च स्वीकर्तव्यम् ॥३७॥

हिन्दी—तदनन्तर महेश्वर सम्बन्धी वह तेजस्वी वीर्य अग्नि से निकल कर गंगा के मध्य में तापरूप विपत्ति को धारण करता हुआ ऊँची-ऊँची तरंगों से युक्त कर उन्हीं में संक्रान्त हो गया।

कृशानुरेतसो रेतस्यादृते सरिता तया।
निश्चक्राम ततः सौख्यं हव्यवाहो वहन्बहु ॥३८॥

अन्वयः—तया सरिता कृशानुरेतसः रेतसि आदृते हव्यवाहः बहुसौख्यं वहन् ततः निश्चक्राम।

संजी०—कृशान्विति ॥ तया सरिता गङ्गया कृशानुरेतसो हरस्य रेतसि धामनि। 'कृशानुरेताः सर्वज्ञः' इत्यमरः। आदृते। आदरपूर्वकं गृहीते सतीत्यर्थः। हव्यवाहोऽग्निः। णिजन्तात्पचाद्यच्। बहु सौख्यं वहन्सन्। ततो गङ्गातो निश्चक्राम बहिर्निःसृतः ॥३८॥

हिन्दी—इस प्रकार उन गंगा जी के द्वारा शंकर जी के वीर्य को आदरपूर्वक धारण कर लेने पर अग्निदेव परम सुखी हो वहाँ से बाहर निकल आये।

सुधासारैरिवाम्भोभिरभिषिक्तो हुताशनः।
यथागतं जगामाथ परां निर्वृतिमादधत् ॥३९॥

अन्वयः—अथ सुधासारैः इव अम्भोभिः अभिषिक्तः परां निर्वृत्तिम् आदधत् हुताशनः यथागतं जगाम ।

संजी०—सुधासारैरिति ।। अथानन्तरम् । सुधासारैरिवामृतमयैरिवाम्भोभिर्जलैरभिषिक्तः स्नातोऽत एव परामत्युत्कृष्टां निर्वृतिं सुखमादधद्बिभ्रद्धुताशनोऽग्निर्यथागतमागतमनतिक्रम्य जगाम गतवान् ।।३९।।

हिन्दी—इसके अनन्तर अमृत के समान गंगाजल से स्नान कर अत्यन्त सुखी हो अग्निदेव जहाँ से आये थे वहीं चले गये ।

सा सुदुर्विषहं गंगा धाम कामजितो महत् ।
आदधाना परीतापमवाप व्योमवाहिनी ।।४०।।

अन्वयः—व्योमवाहिनी सा गंगा कामजितः महत् सुदुर्विषहं धाम आदधाना परीतापम् अवाप ।

संजी०—सेति ।। व्योम्नि वाहः प्रवाहोऽस्ति यस्यास्तथोक्ता सा गङ्गा कामजितो महेश्वरस्य महत्सुदुर्विषहम् । 'ईषद्दुःसुषु—' इति कृच्छ्रार्थे खल् । धाम तेज आदधाना सती परीतापं संतापम् । 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घः । अवाप । प्राप्तवतीत्यर्थः ।।४०।।

हिन्दी—व्योमवाहिनी वह गंगा कामशत्रु महादेव जी के उस दुर्विषह्य तेज को धारण कर अत्यन्त उत्तप्त हो उठीं ।

बहिरार्ता युगान्ताग्नेस्तप्तानीव शिखाशतैः ।
हित्वोष्णानि जलान्यस्या निर्जग्मुर्जलजन्तवः ।।४१।।

अन्वयः—जलजन्तवः भर्त्ताः युगान्ताग्नेः शिखाशतैः तप्तानि इव उष्णानि अस्याः जलानि हित्वा बहिः निर्ययुः ।

संजी०—बहिरिति ।। जलजन्तवो यादांस्यार्ताः सन्तो युगान्ताग्ने प्रलयकालीनानलस्य शिखाशतैः प्रकरणाच्छिवधाम्न एव तप्तान्यत एवोष्णान्यस्या गङ्गाया जलानि हित्वा परित्यज्य बहिर्निर्जग्मुः । निर्गतवन्त इत्यर्थः । यानि महेश्वरधामशिखाशतानि तान्यत्युग्रसंतापरूपसाधारणधर्मेण गम्यमानेन प्रलयकालानलसंबन्धीनीवेत्युत्प्रेक्षा । 'अर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' इत्यमरः । हित्वेति 'ओहाङ् त्यागे' इत्यस्य ।।४१।।

हिन्दी—गंगा के जल में रहने वाले समस्त प्राणी आर्त्त होकर प्रलयाग्नि की सैकड़ों ज्वाला से जलते हुए के समान अत्यन्त उष्ण उस गंगा जल को छोड़ बाहर की ओर निकल आये ।

तेजसा तेन रौद्रेण तप्तानि सलिलान्यपि ।
समुदञ्चन्ति चण्डानि दुर्धराणि बभार सा ॥४२॥

अन्वयः—सा रौद्रेय तेन तेजसा तप्तानि समुदञ्चन्ति चण्डानि दुर्धराणि सलिलानि बभार ।

संजी०—तेजसेति ॥ सा गङ्गा रौद्रेण तेन तेजसा तप्तान्यत एव समुदञ्चन्ति । अतितापवशादुत्प्लुत्य बहिर्निःसरन्तीत्यर्थः । अत एव चण्डानि प्रचण्डस्वरूपाण्यत एव दुर्धराण्यपि सलिलानि बभार धृतवती । तेजसो रुद्रसंबन्धित्वादिति भावः ॥४२॥

हिन्दी—उस समय गंगा जी उस महाभयानक रुद्र के वीर्य से उष्ण एवं उबल-उबलकर बाहर निकलते हुए प्रचण्ड एवं दुर्द्धर्ष जल को अपने में ही धारण किये रहीं ।

जगच्चक्षुषि चण्डांशौ किंचिदभ्युदयोन्मुखे ।
जग्मुः षट् कृत्तिका माघे मासि स्नातुं सुरापगाम् ॥४३॥

अन्वयः—माघे मासि जगच्चक्षुषि चण्डांशौ किञ्चिद् अभ्युदयोन्मुखे षट् कृत्तिका स्नातुं सुरापगां जग्मुः ।

संजी०—जगदिति ॥ माघे माघसंज्ञके मासि । 'पद्दन-' इति मासशब्दस्य हलन्तमासादेशः ।' जगच्चक्षुषि जगन्नेत्रभूते चण्डांशौ सूर्ये किंचिदभ्युदयोन्मुखे । शैलान्तर्हितेन तेजसा दिशः किंचित्प्रकाशयतीत्यर्थः । षट् कृत्तिकाः स्नातुं सुरापगां मन्दाकिनीं जग्मुः प्रापुः ॥४३॥

हिन्दी—माघ के महीने में जब संसार के नेत्रभूत तथा तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्यदेव निकल रहे थे उस समय छओं कृत्तिकायें गंगा में स्नान करने के लिए आई ।

अथ चतुर्भिः सुरापगां विशिनष्टि—

शुभ्रैरभ्रंकषैरूर्मिशतैः स्वर्गनिवासिनाम् ।
कथयन्तीमिवालोकावगाहाचमनादिकम् ॥४४॥

अन्वयः—आलोकावगाहाचमनादिकं कुर्वतां स्वर्गनिवासिनाम् अभ्रङ्कषैः शुभ्रैः ऊर्मिशतैः कथयन्तीम् इव ।

संजी०—शुभ्रैरिति ॥ आलोको दर्शनमवगाहः स्नानमाचमनं चेत्यादीनि यस्य तादृशं कर्म कुर्वतां स्वर्गनिवासिनामभ्रंकषैरुत्प्लुत्याकाशस्पृग्भिः शुभ्रैरूर्मिशतैस्तरङ्गशतैरात्मदुःखं कथयन्तीभिवेत्युत्प्रेक्षा । अस्मिञ्श्लोके पदद्वयाध्याहारदोषः स्फुट एव । क्रियाकारकयोः परस्परनित्यसंबन्धादाक्षेपलक्ष-

णन्यायेन केचित्समादधते । उत्प्लुतानि यानि तरङ्गशतानि तानि कथनसंज्ञानानीवेति भावः। यथान्योऽप्यात्मव्याधिहेतुकं कंचिददनीयं पदार्थं कंचिदपि पुरुषं दर्शयित्वास्वाद्य च तत्पदार्थदोषं कथयति तथेयमपीति बोद्धव्यम्। अभ्रंकषैरिति 'सर्वकूलाभ्रकरीषेषु' इत्यभ्रोपपदकात्कषेः खश् ॥४४॥

हिन्दी—उस समय दर्शन, स्नान तथा आचमनादि क्रिया करने वाले स्वर्ग निवासियों से मानो गंगा ऊपर उछलती ऊँची-ऊँची उजली-उजली लहरों से आत्म-दुःख प्रकट करती हुई जान पड़ती थी।

वि० जैसे कोई पुरुष अपनी व्याधि के कारणभूत भोज्य पदार्थों को किसी अन्य पुरुष को दिखा कर पुनः उसे खा कर उसके दोषों को कहता है, उसी प्रकार गंगा भी देवताओं को शंकर के वीर्यरूप तेज को प्रगट दिखाकर उसका दोष बता रही थीं।

सुस्नातानां मुनीन्द्राणां बलिकर्मोचितैरलम् ।
बहिः पुष्पोत्करैः कीर्णतीरां दूर्वाक्षतान्वितैः ॥४५॥

अन्वयः—सुस्नातानां मुनीन्द्राणां बलिकर्मोचितैः दूर्वाक्षतान्वितैः पुष्पोत्करैः वहिः अलं कीर्णतीराम् ।

संजी०—सुस्नातानामिति ॥ सुस्नातानां मुनीन्द्राणां सप्तर्षीणां बलिकर्मणि पूजाविधावुचितानि योग्यानि तैः। तथा दूर्वाभिरक्षतैश्चान्वितैर्युक्तैः पुष्पोत्करैः कुसुमसमूहैर्बहिः कीर्णतीरां व्याप्तसैकताम्। 'लाजाः पुंभूम्नि चाक्षताः' इत्यमरः। अलंशब्दोऽत्रात्यर्थवाचकः। स च कीर्णतीरामित्यतः प्रागन्वयितव्यः ॥४५॥

हिन्दी—उन कृत्तिकाओं ने भली प्रकार से स्नान किये सप्तर्षियों के द्वारा पूजा कर्म में निवेदित दूर्वा एवं अक्षतयुक्त पुष्प समूहों से बाहर बालुकामय स्थान में व्याप्त तटों वाली गंगा को देखा।

ब्रह्मध्यानपरैर्योगपरैर्ब्रह्मासनस्थितैः ।
योगनिद्रागतैर्योगपट्टबन्धैरुपाश्रिताम् ॥४६॥

अन्वयः—ब्रह्मासनस्थितैः ब्रह्मध्यानपरैः योगनिद्रागतैः योगपट्टबन्धैः योगपरैः उपश्रिताम् (गङ्गां जग्मुः) ।

संजी०—ब्रह्मेति ॥ ब्रह्मासने स्थितैः। तथा ब्रह्मणो ध्याने परैः सक्तैः। तथा योग एव निद्रा तां गतैः। तथा योगपट्टस्य बन्धो बन्धनं येषां तैः। योग-

पट्टं बध्नद्भिरित्यर्थः। एवं विधैर्योगपरैर्योगिभिरुपाश्रितां सेविताम्। 'उभौ जानू ऊर्ध्वंतमौ सकटचुपसुवाससा। बद्धौ च कृत्वा सततं ध्यायेत्परमनन्यधीः॥' इति योगलक्षणम् ॥४६॥

हिन्दी--जहाँ किनारे पर पद्मासन से स्थित ब्रह्मध्यानपरायण ब्रह्मचारी लोग तथा योगरूपी निद्रा में लीन योगपट्ट बाँधे हुए योगी लोग उपासना में लगे हुये थे।

पादाङ्गुष्ठाग्रभूमिस्थैः सूर्यसंबद्धदृष्टिभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपसेविताम् ॥४७॥

अन्वयः--पादाङ्गुष्ठाग्रभूमिस्थैः सूर्यसंबद्धदृष्टिभिः परंब्रह्म गृणद्भिः ब्रह्मर्षिभिः उपसेविताम्।

संजी०—पादेति ॥ पादसंबन्धिनोऽङ्गुष्ठस्याग्रेणैव। समग्रपादेनेत्यर्थः। भूमिस्थैः। पृथिव्यां स्थितैरित्यर्थः। तथा सूर्ये संबद्धदृष्टिभिरन्वितविलोचनैः। तथा परं ब्रह्मगृणद्भिर्जपद्भिर्ब्रह्मर्षिभिः सप्तर्षिभिरुपसेवितामुपाश्रिताम्॥४७॥

हिन्दी--जहाँ पैर के अंगूठे पर खड़े होकर सूर्य की ओर दृष्टि लगाये सप्तर्षि लोग गायत्री का जप कर रहे थे।

अथ दिव्यां नदीं देवीमभ्यनन्दन्विलोक्य ताः।
कं नभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी ॥४८॥

अन्वयः--अथ ताः दिव्यां तां नदीं देवीं विलोक्य अभ्यनन्दन् एषा पीयूषवाहिनी दृष्टा कं न अभिनन्दयति।

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरं ताः कृत्तिकाः दिव्यां स्वर्गीयां नदीं देवीं गङ्गां विलोक्याभ्यनन्दन्। आनन्दिता बभूवुरित्यर्थः। एतद्युक्तमेवेत्याह—एषा पीयूषवाहिनी गङ्गा दृष्टा दर्शनगोचरीभूता सती कं पुरुषं नाभिनन्दयति। अपि तु सर्वमेवेत्यर्थः। 'किम्' इति पाठे किं कुतः कारणान्नाभिनन्दयति मोदयति। अपि तु मोदयत्येवेत्यर्थः। अत एतदालोकन आनन्दो युक्त इति भावः ॥४८॥

हिन्दी--इस प्रकार की उस पवित्र गङ्गा नदी को देखकर कृत्तिकायें प्रसन्न हो उठीं। भला ऐसी अमृतवाहिनी गङ्गा देख लिये जाने पर किसके प्रसन्नता का कारण नहीं बनेगी।

चन्द्रचूडामणिर्देवो यामुद्वहति मूर्धनि।
यस्या विलोकनं पुण्यं श्रद्दधुस्तां मुदा हृदि ॥४९॥

अन्वयः—चन्द्रचूडामणिः देवः यां मूर्धनि उद्वहति यस्याः विलोकनं पुण्यं तां हृदि मुदा आदधुः ।

संजी०—चन्द्रेति ।। चन्द्रश्चूडामणिभूतो यस्य स देवो हरो मूर्धनि यामुद्वहति । यस्या विकोकनं पुण्यं पुण्यकारि । गङ्गां ता हृदि मनसि मुदा प्रीत्या श्रद्दधुः । श्रद्धितां चक्रुरित्यर्थः । गुणवत्सु श्रद्धाया औचित्यादिति भावः ।।४९।।

हिन्दी—जिस गंगा को स्वयं भगवान् शंकर अपने शिर पर धारण करते हैं, तथा जिनके दर्शन मात्र से पुण्य प्राप्त होता है, ऐसी गंगा को देखते ही कृत्तिकाओं के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई ।

दिव्यां विष्णुपदीं देवीं निर्वाणपददेशिनीम् ।
निर्धूतकल्मषां मूर्ध्ना सुप्रह्वास्ता ववन्दिरे ।।५०।।

अन्वयः—निर्वाणपददेशिनीं निर्धूतकलमषां दिव्यां विष्णुपदीं देवीं सुप्रह्वाः ताः ववन्दिरे ।

संजी०—दिव्यामिति ।। निर्वाणपदस्य मोक्षपदस्य देशिनीं दात्रीम् । तथा निर्धूतकलमषां दूरीकृतजनकिल्बिषां दिव्यां स्वर्गीयाम् । 'द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्' इति दिवो यत् । विष्णोः पदीं चरणसंबन्धिनीम् । 'गङ्गा विष्णुपदी' इत्यमरः । देवीं गङ्गां ताः कृत्तिकाः सुतरां प्रह्वा नताः सत्यो मूर्ध्ना ववन्दिरे प्रणेमुः ।।५०।।

हिन्दी—मोक्ष प्रदान करने वाली, पापों को नष्ट करने वाली, दिव्य विष्णु के पद से उत्पन्न हुई उन गंगा को कृत्तिकाओं ने सिर झुका कर प्रणाम किया ।

सौभाग्यैः खलु सुप्रापां मोक्षप्रतिभुवं सतीम् ।
भक्त्यात्र तुष्टुवुस्तां ताः श्रद्दधाना दिवो धुनीम् ।।५१।।

अन्वयः—अत्र ताः श्रद्दधानाः सौभाग्यैः सुप्रापां मोक्षप्रतिभुवं सतीं तां दिवः धुनिं भक्त्या तुष्टवुः खलु ।

संजी०—सौभाग्यैरिति ।। अत्र ताः कृत्तिकाः श्रद्दधानाः सत्यः सौभाग्यैः शोभनभाग्यैः सुखेन प्राप्तुं शक्यां मोक्षस्य प्रतिभुवं लग्नकां सतीं पतिव्रतां तां दिवो धुनीं गङ्गां भक्त्या निमित्तेन तुष्टुवुः । भक्तिनिमित्तं स्तवनमित्यर्थः ।।५१।।

हिन्दी—इसके अनन्तर उन कृत्तिकाओं ने सौभाग्य से प्राप्त होने वाली मोक्ष की साक्षात् मूर्त्ति तथा पतिव्रता उन गंगा को देखकर श्रद्धापूर्वक अत्यन्त भक्ति से गंगा जी की स्तुति की ।

मुक्तिस्त्रीसङ्गदूत्यज्ञैस्तत्र ता विमलैर्जलैः ।
प्रक्षालितमलाः सस्नुः सुस्नातास्तपसान्विताः ॥५२॥

अन्वयः—ताः मुक्तिस्त्रीसंगदूत्यज्ञैः विमलैः जलैः प्रक्षालितमलाः तत्र सस्नुः सुस्नाताः तपसान्विताः ।

संजी०—मुक्तीरिति ॥ ताः कृत्तिकाः विमलैर्विगतमलैः । तथा मुक्तिर्मोक्षः सैव स्त्री तस्याः सङ्गः संबन्धः । प्राप्तिरिति यावत् । तत्र यद्दूत्यं दूतीभावः कर्म वा । तस्य ज्ञैः । ज्ञातृभिरित्यर्थः । येषां स्पर्शमात्रेण मुक्तिर्भवतीति भावः । तथाभूतैर्जलैः कृत्वा प्रक्षालितमला निर्वर्तितकल्मषाः सत्यस्तत्र गङ्गायां सस्नुः । स्नानं चक्रुरित्यर्थः । मलापकर्षस्नानानन्तरं शुद्धस्नानं क्रियत इति भावः । किंभूताः ? सुस्नाताः सुशोभनं विध्युक्तप्रकारकं स्नातं स्नानं यासां ताः । भावे निष्ठा । विध्युक्तप्रकारेण स्नानकर्त्र्य इत्यर्थः । पुनः किंभूताः । तपसान्विताः तपस्विन्य इत्यर्थः । 'ष्णा शौचे' कर्तरि लिट् ॥५२॥

हिन्दी—दूती कार्य के रहस्यज्ञ तथा सर्वथा स्वच्छ गंगाजल से मलापकर्षण स्नान करने के पश्चात् विधिपूर्वक स्नान-क्रिया संपादन कीं । इस प्रकार सुस्नात हो तपस्विनी वन गईं ।

स्नात्वा तत्र सुलभ्यायां भाग्यैः परिपचेलिमैः ।
चरितार्थं स्वमात्मानं बहु ता मेनिरे मुदा ॥५३॥

अन्वयः—परिपचेलिमैः भाग्यैः सुलभ्यायां तत्र स्नात्वा ताः स्वयम् आत्मानं मुदा बहु चरितार्थं मेनिरे ।

संजीवनी—स्नात्वेति ॥ परिपचेलिमैः परिपक्वैः । 'तव्यत्तव्यानीयरः' इत्यत्र केलिमर उपसंख्यानात्पचतेः केलिमर् । भाग्यैर्दिष्टैर्निमित्तभूतैः सुलभ्यायां सुखेन लब्धुं शक्यायाम् । 'पोरदुपधात्' इति यत् । तथाभूतायां तत्र गङ्गायां स्नात्वा ताः कृत्तिकाः स्वं स्वकीयमात्मानं मुदा प्रीत्या बहु यथा तथा चरितार्थं पुरुषार्थकारिणं मेनिरेऽमन्यत । 'मनु अवबोधने' । कर्तरि लिट् ॥५३॥

हिन्दी—जिन गंगा में पिछले जन्म के सञ्चित सौभाग्यों द्वारा ही स्नान का अवसर प्राप्त होता है, उन गंगा जी में आनन्द के साथ स्नान कर उन कृत्तिकाओं ने अपने को धन्य समझा ।

कृशानुरेतसो रेतस्तासामभिकलेवरम् ।
अमोघं संचचाराथ सद्यो गङ्गावगाहनात् ॥५४॥

अन्वयः—अथ गंगावगाहनात् अमोघम् कृशानुरेतसः रेतः सद्यः तासाम् अभिकलेवरं संचचार।

संजी०—कृशानुरेतस इति ॥ अथानन्तरं गङ्गावगाहनाद्धेतोरमोघं सफलं कृशानुरेतसो हरस्य रेतो वीर्यं सद्यस्तत्कालं तासां कृत्तिकानामभिकलेवरं कलेवरे शरीर इत्यभिकलेवरम्। शरीरमध्य इत्यर्थः। संचचार संचक्राम। लग्नमिति यावत्। अत्र तृतीयायोगाभावात्सम: परतोऽपि चरतेर्नात्मनेपदम्। 'समस्तृतीयायुक्तात्' इति सौत्रनियमात् ॥५४॥

हिन्दी—गंगा में स्नान कर लेने के पश्चात् अमोघ भगवान् शंकर का वह वीर्य गंगा जी से निकल कर उन कृत्तिकाओं के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

रौद्रं सुदुर्धरं धाम दधाना दहनात्मकम्।
परितापमवापुस्ता मग्ना इव विषाम्बुधौ ॥५५॥

अन्वयः—दहनात्मकं सुदुर्धरं रौद्रं धाम दधाना ताः विषाम्बुधौ मग्नाः इव परितापम् अवापुः।

संजी०—रौद्रमिति ॥ दहनात्मकमग्निरूपमत एव सुतरां दुर्धरं दुःखेन धर्तुं शक्यं रौद्रं शैवं धाम तेजो दधानास्ताः कृत्तिका विषाम्बुधौ मग्ना इवेत्युत्प्रेक्षा। परितापमवापुः। विषाम्बुधिमग्नत्वे यादृशः परितापो भवति तादृशो रौद्रतेजोधारणे जात इति भावः ॥५५॥

हिन्दी—शंकर जी के अग्नि जैसे उस असह्य तथा भयानक वीर्य को धारण करते ही वे कृत्तिकायें इस प्रकार जल उठीं मानो उन्होंने विष के समुद्र में स्नान कर परिताप प्राप्त किया हो।

अक्षमा दुर्वहं वोढुमम्बुनो बहिरातुराः।
अग्निं ज्वलन्तमन्तस्ता दधाना इव निर्ययुः ॥५६॥

अन्वयः—दुर्वहं वोढुम् अक्षमा आतुराः ताः अन्तः ज्वलन्तम् अग्निम् इव दधानाः अम्बुनः बहिर्निर्ययुः।

संजी०—अक्षमा इति ॥ दुर्वहं दुर्धरं तद्धाम् वोढुमक्षमा अत एवातुरा व्याकुलास्ताः कृत्तिकाः। अन्तर्मध्ये ज्वलन्तमग्निमिव दधानाः सत्योऽम्बुनो जलाद्बहिर्निर्ययुः। निर्जग्मुरित्यर्थः। अत्र धामन्यग्नित्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा ॥५६॥

हिन्दी—उस दुर्धर्ष वीर्य को धारण करने में असमर्थ होने से अत्यन्त व्याकुल हुईं वे कृत्तिकायें अपने भीतर जलती आग-सी लिये जल के बाहर निकल आईं।

अमोघं शांभवं बीजं सद्यो नद्योज्झितं महत् ।
तासामभ्युदरं दीप्तं स्थितं गर्भत्वमागमत् ॥५७॥

अन्वयः—नद्याः सद्याः उज्झितं तासाम् अभ्युदरं दीप्तं स्थितं अमोघं महत् शाम्भवं बीजं गर्भत्वम् अगमत् ।

संजी०—**अमोघमिति ॥ नद्या गङ्गया सद्य उज्झितमत एव तासां कृत्तिकानामभ्युदरं दीप्तं सत्स्थितममोघं सफलं महच्छांभवं बीजं गर्भत्वमागमत् । गर्भीभूतमित्यर्थः ॥५७॥**

हिन्दी—गंगा से सद्यः निकला हुआ कृत्तिकाओं के पेट में प्रविष्ट हुआ जाज्वल्यमान अमोघ वह शंकर जी का वीर्य वहीं स्थित होकर गर्भ के रूप में परिणत हो गया ।

सुज्ञा विज्ञाय ता गर्भभूतं तद्वोढुमक्षमाः ।
विषादमदधुः सद्यो गाढं भर्तृभिया ह्रिया ॥५८॥

अन्वयः—सुज्ञाः गर्भभूतं तत् विज्ञाय वोढुम् अक्षमाः ताः भर्तृभिया ह्रिया सद्यः गाढं विषादम् आदधुः ।

संजी०—**सुज्ञा इति ॥ सुज्ञाश्चतुरा अत एव गर्भभूतं तद्वीर्यं विज्ञायापि वोढुमक्षमा असमर्थाः । तस्यातिशयप्रज्वलितत्वादिति भावः । ताः कृत्तिका भर्तुर्भिया भयेन । यदि न धारिष्यामस्तदानुचितं नो चेच्छरीरदाह इति भयेनेत्यर्थः । ह्रिया लज्जया । एवंविधा इमाः । याभिर्भर्तृवीर्यमपि न धृतिमिति लोकप्रवादजन्मनेत्यर्थः । सद्यो गाढं विषादं खेदमदधुर्धृतवत्यः ॥५८॥**

हिन्दी—उन चतुर कृत्तिकाओं ने जब यह जान लिया कि वह तो गर्भ बन गया है, तब उसे धारण करने में असमर्थ हो वे अपने-अपने पतियों के भय से तथा लोकलज्जा के भय से अत्यन्त दुःखी हो गईं ।

ततः शरवणे सार्धं भयेन व्रीडया च ताः ।
तद्गर्भजातमुत्सृज्य स्वान्गृहानभिनिर्ययुः ॥५९॥

अन्वयः—ततः ताः तद्गर्भजातं भयेन व्रीडया च सार्धं शरवणे उत्सृज्य स्वान् गृहान् अभिनिर्ययुः ।

संजी०—**तत इति ॥ ततोऽनन्तरं ताः कृत्तिकास्तद्गर्भजातं गर्भसामान्यम् । 'जातिर्जातं च सामान्यम्' इत्यमरः । भयेन व्रीडया च सार्धं सह शरवणे । 'प्रनिरन्तः शरेक्षु–' इत्यादिना शरशब्दात्परवननकारस्य णत्वम् । 'शरः स्तुते जने बाणे' इति मेदिनी । उत्सृज्य परित्यज्य स्वान्गृहानभिनिर्ययुर्गतवत्यः । गृहाः पुंसि च भूम्नयेव' इत्यमरः ॥५९॥**

हिन्दी--तदनन्तर उन्होंने उस गर्भ को भय एवं लज्जा के साथ ही सरपत के वन में छोड़ दिया और अपने-अपने घरों को लौट आईं ।

ताभिस्तत्रामृतकरकलाकोमलं भासमानं
तद्विक्षिप्तं क्षणमभिनभोगर्भमभ्युज्जिहानैः ।
स्वैस्तेजोभिर्दिनपतिशतस्पर्धमानैरमानै-
र्वक्त्रैः षड्भिः स्मरहरगुरुस्पर्धयेवाजनीव ॥६०॥

अन्वयः--ताभिः तत्र विक्षिप्तं अमृतकरकलाकोमलं क्षणं भासमानं तत् अभिनभोगर्भम् अभ्युज्जिहानैः दिनपतिशतस्पर्धमानैः अमानैः स्वैः तेजोभिः षड्भिः वक्त्रैः स्मरहरगुरुस्पर्धया इव अजनि ।

संजी० —ताभिरिति ॥ ताभिः कृत्तिकाभिस्तत्र शरवणे विक्षिप्तं त्यक्तम् । तथामृतकरकलावच्चन्द्रकलेव कोमलं मृदु यथा तथा क्षणं भासमानं तद्गर्भजातं कर्तृ । अभिनभोगर्भं नभोगर्भं आकाशमध्य इत्यभिनभोगर्भम् । 'गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ' इति मेदिनी । अभ्युज्जिहानैरभ्युज्जिहते संमुखमुदयन्ते तानि तैः । 'ओहाङ् गतौ' इत्यतः शानच् । तथा दिनपतिशतं सूर्यशतं स्पर्धन्ते तानि तैः । ततोऽप्यधिकैरित्यर्थः । तथाऽमानैरसंख्यैः स्वैस्तेजोभिः । तथा षड्भिर्वक्त्रैश्च युक्तं स्मरहरगुरोर्ब्रह्मणः स्पर्धयेर्ष्ययेव । तव चत्वारि मम षडित्यतस्त्वत्तोऽप्यहमधिकोऽस्मीत्येवंभूतवाग्वादावसरफलकयेत्यर्थः । अजनि । परिप्राप्तमभूदित्यर्थः । 'दीपजन-' इत्यादिना च्लेश्चिण् । 'जनिवध्योश्च' इति वृद्धिनिषेधः । अत्र तेजसां षण्णां वक्त्राणां चोत्पादने ब्रह्मस्पर्धाया अहेतुत्वेऽपि तद्धेतुत्वेन कल्पनाद्धेतूत्प्रेक्षालंकारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम्— 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद्गुरू चेत्' इति लक्षणात् ॥६०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीताराम-
कविविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालि-
दासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये कुमारोत्पत्तिर्नाम
दशमः सर्गः ।

हिन्दी—तदनन्तर उन कृत्तिकाओं के द्वारा वहाँ त्याग हुआ चन्द्रमा की किरणों के समान कोमल अत्यन्त उद्दीप्त वह गर्भ आकाश के मध्य भाग में संस्थित सैकड़ों सूर्य के प्रकाश से स्पर्धा करता हुआ अप्रमेय तेजों से युक्त हो अपने छः मुखों से मानो चार मुख वाले ब्रह्मदेव को भी चुनौती देता हुआ बालक के रूप में उत्पन्न हो गया ।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के दशम सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

एकादशः सर्गः

अभ्यर्थ्यमाना विबुधैः समग्रैः प्रह्वैः सुरेन्द्रप्रमुखैरुपेत्य ।
तं पाययामास सुधातिपूर्णं सुरापगा स्वं स्तनमाशु मूर्ता ॥१॥

अन्वयः—सुरेन्द्रप्रमुखौ समग्रैः विबुधैः उपेत्य प्रह्वैः (सद्भिः) अभ्यर्थ्यमाना सुरापगा आशु मूर्ता (सती) तम् सुधातिपूर्णं स्वं तनं पाययामास ।

संजी०—अभ्यर्थ्येति ॥ सुरेन्द्रप्रमुखैरिन्द्रादिभिः समग्रैः समस्तैर्विबुधैर्देवैरुपेत्य समीपमागत्य प्रह्वैर्नम्रैः सद्भिरभ्यर्थ्यमाना याच्यमाना सुरापगा मन्दाकिनी । आशु शीघ्रं मूर्ता मूर्तिमती सती । तं कुमारं सुधया दुग्धामृतेनातिपूर्णं बहुसृतं स्वमात्मीयं स्तनं पाययामास पानं कारितवती । सर्गेऽस्मिन्वृत्तमुपजातिः ॥ १ ॥

हिन्दी—इन्द्रादि प्रमुख देवताओं के साथ सभी देवताओं ने आकर विनम्र हो जब गंगा जी से प्रार्थना की तो उन्होंने मूर्तिमान् स्त्री का रूप धारण कर शीघ्रता से उपस्थित हो उस बालक को अपना अमृत से भरा हुआ स्तनपान कराया ।

पिबन्स तस्याः स्तनयोः सुधौघं क्षणंक्षणं साधु समेधमानः ।
प्रापाकृतिं कामपि षड्भिरेत्य निषेव्यमाणः खलु कृत्तिकाभिः ॥२॥

अन्वयः—स तस्याः स्तनयोः सुधौघम् पिबन् क्षणं क्षणं साधु समेधमानः षड्भिः कृत्तिकाभिः एत्य निषेव्यमाणः काम् अपि आकृतिं प्राप खलु ।

संजी०—पिबन्निति ॥ स कुमारस्तस्या मन्दाकिन्याः स्तनयोः संबन्धिनं सुधौघं दुग्धामृतसमूहं पिबन् । अत एव क्षणंक्षणं प्रतिक्षणं साधु यथा स्यात्तथा समेधमानः सम्यग्वर्धमानः षड्भिः कृत्तिकाभिरेत्य निषेव्यमाणः श्रियमाणश्च सन् । कामपि लोकोत्तरामाकृतिं प्राप्तवान् । खलु वाक्यालंकारे । 'खलु स्याद्वाक्यभूषायाम्' इति विश्वः ॥ २ ॥

हिन्दी—वह बालक गंगा जी के स्तन से निकली हुई अमृतधारा का पान कर पल-पल में बड़े वेग से बढ़ने लगा । तदनन्तर जब छओं कृत्तिकायें आकर उसकी सेवा करने लगीं तो वह एक अनिर्वचनीय स्वरूप वाला हो गया ।

भागीरथीपावककृत्तिकानामानन्दबाष्पाकुललोचनानाम् ।
तं नन्दनं दिव्यमुपात्तुमासीत्परस्परं प्रौढतरो विवादः ॥३॥

अन्वयः—आनन्दबाष्पाकुललोचनानां भागीरथीपावककृत्तिकानां दिव्यं तं नन्दनम् उपात्तुं परस्परं प्रौढतरः विवादः आसीत् ।

संजी०—भागीरथीति ।। आनन्दबाष्पैराकुललोचनानां व्याप्तनेत्राणाम् । पावकश्च कृत्तिकाश्च पावककृत्तिकाः । भागीरथ्या गङ्गया सहिता याः पावककृत्तिकास्तासां संबन्धी दिव्यं लोकोत्तरस्वरूपं तं नन्दनं पुत्रमुपात्तुं ग्रहीतुं परस्परमन्योन्यं प्रौढतरोऽतिशयितो विवादः कलह आसीत् । ममायं ममायमिति प्रवादपूर्वकः कलिर्बभूवेत्यर्थः ।। ३ ।।

हिन्दी—आनन्दाश्रु से परिपूर्ण नेत्रों वाली भागीरथी अग्निदेव तथा कृत्तिकाओं में उस दिव्य बालक को अपना पुत्र बनाने के लिये आपस में बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया ।

अत्रान्तरे पर्वतराजपुत्र्या समं शिवः स्वैरविहारहेतोः ।
नभो विमानेन विगाहमानो मनोतिवेगेन जगाम तत्र ।।४।।

अन्वयः—अत्र अन्तरे शिवः पर्वतराजपुत्र्या समं स्वैरविहारहेतोः मनोऽतिवेगेन विमानेन नभः विगाहमानः तत्र जगाम ।

संजी०—अत्रान्तर इति ।। अत्रान्तरे कलहावसरे शिवः पर्वतराजपुत्र्या पार्वत्या समं सह स्वैरविहारो यथेच्छविहारस्तस्माद्धेतोः कारणान्मनोतिवेगेन चेतसोऽप्यतिशयजवेन विमानेन नमोऽन्तरिक्षं विगाहमानोऽवलोडयंस्तत्र कलहस्थाने जगाम प्राप ।। ४ ।।

हिन्दी—इसी बीच सदाशिव पार्वती के साथ स्वेच्छया विहार करने की इच्छा से मन से भी शीघ्र गतिवाले विमान पर बैठकर आकाशमार्ग से उड़ते हुये वहाँ आ पहुँचे ।

निसर्गवात्सल्यवशाद्विवृद्धचेतःप्रमोदौ गलदश्रुनेत्रौ ।
अपश्यतां तं गिरिजागिरीशौ षडाननं षड्दिनजातमात्रम् ।।५।।

अन्वयः—गिरिजागिरीशौ निसर्गवात्सल्यवशाद् विवृद्धचेतःप्रमोदौ गलदश्रुनेत्रौ षड्दिनजातमात्रं षडाननं तम् अपश्यताम् ।

संजी०—निसर्गेति ।। गिरिजागिरीशौ निसर्गेण स्वभावेन यद्वात्सल्यं दयावत्त्वं तस्य वशाद्धेतोर्विवृद्धः प्रवृद्धश्चेतसः प्रमोदो हर्षो ययोस्तथाभूतौ । अत एव गलदश्रुणी प्रवहद्बाष्पे नेत्रे ययोस्तथाभूतौ सन्तौ । षड्दिनानि । जन्मदिनादारभ्येत्यर्थः । जातानि व्यतीतानि यस्य स षड्दिनजातः स एव षड्दिनजातमात्रस्तं षडाननं षण्मुखं तं कुमारमपश्यतां दृष्टवन्तौ ।।५।।

हिन्दी--गिरिजा और गिरीश ने जब मात्र छ:दिन के उस बालक को देखा तब स्वाभाविक पुत्रप्रेम की वत्सलता के कारण उनके हृदय में आनन्द का उद्रेक बढ़ने लगा तथा आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी।

अथाह देवी शशिखण्डमौलिं कोऽयं शिशुर्दिव्यवपुः पुरस्तात्।
कस्याथवा धन्यतमस्य पुंसो मातास्य का भाग्यवतीषु धुर्या ॥६॥

अन्वय:--अथ देवी पुरस्तात् क: अयम् अथवा कस्य धन्यतमस्यपुंस: दिव्यवपु: शिशु: अस्य माता का (या) भाग्यवतीषु धुर्या (इति वच:) शशिखण्डमौलिम् आह।

संजी०—अथेति॥ अथ दर्शनानन्तरं देवी भवानी। पुरस्तादयं कः। अथवा कस्य धन्यतमस्य पुंसो दिव्यवपुरादितेयसदृशविग्रहः शिशुर्बालः। पुत्र इति यावत्। अस्य शिशोर्माता जननी का या भाग्यवतीषु धुर्याग्रगण्या। 'धुरो यड्ढकौ' इति यक्। एतन्मातृत्वादिति भावः। इत्येवं प्रश्नभूतं वचः शशिखण्डमौलिं हरमाहोक्तवती। आहेति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। तथा चोक्तम्—'अव्ययानामनन्तत्वाद्गणनाय न शक्यते। महाकविप्रयोगेषु यदि सिद्धात्परं च तत्॥' इति॥६॥

हिन्दी--तब पार्वती जी ने सामने पड़े हुये उस बालक को देखकर यह कौन है ? अथवा किस सौभाग्यशाली पिता का यह दिव्य शरीरधारी लड़का है ? इसकी माता कौन है, जो समस्त सौभाग्यशालिनी स्त्रियो में श्रेष्ठ है, इस प्रकार शंकरजी से पूछा।

स्वर्गापगासावनलोऽयमेताः षट् कृत्तिकाः किं कलहायमानाः।
पुत्रो ममायं न तवायमित्थं मिथ्येति वैलक्ष्यमुदाहरन्ति ॥७॥

अन्वय:--असौ स्वर्गापगा अयम् अनल: एता: षट् कृत्तिका: कलहायमाना: (सत्य:) अयं पुत्र: मम तव न इत्थं मिथ्या वैलक्ष्यं किम् उदाहरन्ति ?

संजी०—स्वर्गापगेति॥ किं च। असौ स्वर्गापगा गङ्गा। अयमनलोऽग्निः। एताः षट् कृत्तिकाः कलहायमानाः कलहं कुर्वाणाः सत्यः। 'शब्दवैरकलह–' इत्यादिना करोत्यर्थे क्यङ्। अयं पुत्रो मम मत्संबन्धी। इति गङ्गावाक्यम्। अयं तव न किं तु मम। इत्यग्निवाक्यम्। इत्थं मिथ्योभयोर्युवयोर्मध्ये न कस्यापि किं त्वस्माकमिति सत्यम्। इति कृत्तिकावाक्यम्। इति परस्परं वैलक्ष्यं विलक्षणं यथा तथा किं किमर्थमुदाहरन्ति विवदन्ते॥७॥

हिन्दी—ये गंगा जो, यह अग्निदेव तथा ये छओं कृत्तिकायें आपस में कलह करती हुई— यह मेरा पुत्र है, नहीं ऐसी बात नहीं गंगा, तुम्हारी नहीं मेरा है, यह अग्निदेव, का नहीं, तुम झूठ बोलते हो, यह मेरा पुत्र है, ऐसी कृत्तिकायें इस प्रकार परस्पर विलक्षण बातें क्यों कर रही है ?

एतेषु कस्येदमपत्यमीशाखिलत्रिलोकीतिलकायमानम् ।
अन्यस्य कस्याप्यथ देवदैत्यगन्धर्वसिद्धोरगराक्षसेषु ॥८॥

अन्वयः—हे ईश ! एतेषु कस्य इदम् अपत्यम् अखिलत्रिलोकी तिलकायमानम्, अथ देवदैत्यगन्धर्वसिद्धोरगराक्षसेषु अन्यस्य कस्य अपि (इति कथय) ।

संजी०—एतेष्विति ॥ हे ईश, एतेषु स्वर्गापगादिषु मध्ये कस्येदमपत्यं पुत्रः । किंभूतम् । अखिला या त्रिलोकी तत्र तिलकायमानं तिलक इवाचरत् । 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इत्याचारार्थे क्यङ् । तत आत्मनेपदित्वाच्छानच् । अथाथवा । सिद्धा देवविशेषाः । उरगाः सर्पाः । राक्षसा निशाचराः । देवदैत्यगन्धर्वसहिता ये सिद्धोरगराक्षसास्तेषु मध्येऽन्यतमस्य कस्यापीति वदेत्यर्थः ॥८॥

हिन्दी—हे प्रभो ! इन सभी में यह किसका लड़का है जो समस्त त्रिलोकी में सर्वश्रेष्ठ है । अथवा यह उक्त तीनों में किसी का न होकर देव, दैत्य, गन्धर्व सिद्ध, उरग एवं राक्षसों में से किसी एक का पुत्र है ?

श्रुत्वेति वाक्यं हृदयप्रियायाः कौतूहलिन्या विमलस्मितश्रीः ।
सान्द्रप्रमोदोदयसौख्यहेतुभूतं वचोऽवोचत चन्द्रचूडः ॥९॥

अन्वयः—चन्द्रचूडः कौतूहलिन्याः हृदयप्रियायाः इति वाक्यं श्रुत्वा विमलस्मितश्रीः सान्द्रप्रमोदोदयसौख्यभूतं वचः अवोचत् ।

संजी० – श्रुत्वेतीति । चन्द्रचूडो हरः कौतूहलिन्याः श्रवणे कौतुकवत्या हृदयप्रियायाः पार्वत्या इति पूर्वोक्तं वाक्यं वचः । 'वच परिभाषणे' । 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत् । श्रुत्वा विमला स्मितश्रीर्यस्य । किंचिद्विहस्येत्यर्थः । सान्द्रः सघनः । बहुरिति यावत् । यः प्रमोदो हर्षः । 'प्रमोदामोदसंमदाः इत्यमरः । तस्योदय उत्पत्तिस्तेन यत्सौख्यं तस्य हेतुभूतम् । तज्जनकमित्यर्थः । वचो वचनमवोचतोक्तवान् ॥९॥

हिन्दी—उस बालक के प्रति जिज्ञासायुक्त कुतूहल से भरी पार्वती की बात सुनकर विमलस्मितयुक्त शंकर जी अत्यन्त हर्ष उत्पन्न करने वाली तथा पार्वती को सुख देने वाली बाणी बोले ।

जगत्त्रयीनन्दन एष वीरः प्रवीरमातुस्तव नन्दनोऽस्ति ।
कल्याणि कल्याणकरः सुराणां त्वत्तोऽपरस्याः कथमेष सर्गः ॥१०॥

अन्वयः— (हे) कल्याणि ! जगत्त्रयीनन्दनः एषः वीरः प्रवीरमातुः तव नन्दनः अस्ति । सुराणां कल्याणकरः एष सर्गः त्वत्तः अपरस्याः कथं स्यात् ?

संजी०--जगत्त्रयीति ।। हे प्रिये; जगत्त्रय्या नन्दन आनन्दकारकः। नन्द्यादित्वात् 'नन्दिग्रहि–' इति ल्युः। वीरः पराक्रम्येष पुरोवर्ती शिशुः प्रवीरमातुः प्रकृष्टवीरजनन्यास्तव नन्दनः पुत्रोऽस्ति। ममैवायं नन्दनः इत्यत्र किं मानमित्याशङ्क्याह–हे कल्याणि, सुराणामिन्द्रादीनां कल्याणकरः शर्मकार्येष पुरोवर्ती सर्गः सृष्टिः। पुत्र इति यावत्। त्वत्तोऽपरस्यास्त्वदन्यस्याः स्त्रियाः कथं केन प्रकारेण स्यात्। तारकविनाशजनितकल्याणकरत्वे त्वज्जनितस्यैव शक्तिः। अतस्तवैवायं पुत्र इति भावः ।।१०।।

हिन्दी—हे कल्याणि! तीनों लोकों को आनन्दित करने वाला यह वीर बालक तुम्हारा ही पुत्र है क्योंकि तुम वीरमाता हो। देवताओं का कल्याण करने वाले ऐसे वीर बालक का जन्म भला तुम्हारे सिवा और कौन माता दे सकती है?

देवि त्वमेवास्य निदानमास्से सर्गे जगन्मङ्गलगानहेतोः।
सत्यं त्वमेवेति विचारयस्व रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ।।११।।

अन्वयः--हे देवि! जगन्मङ्गलगानहेतोः अस्य सर्गे त्वम् एव निदानम् आस्से। त्वम् एव इति सत्यं विचारयस्व। रत्नं रत्नाकरे एव युज्यते।

संजी०–देवीति ।। हे देवि प्रिये,जगतां मङ्गलानि मङ्गलकर्माणि गानानि गीतानि मङ्गलप्रबन्धरूपाणीति यावत्। तेषां हेतोः कारणस्यास्य शिशोः सर्गे सृष्टौ। उत्पत्ताविति यावत्। त्वमेव निदानमादिकारणमास्स उपविशसि। असीत्यर्थः। 'निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः। 'आस उपवेशने'। लटो मध्यमपुरुषैकवचनम्। नन्वहमेव कारणमित्यत्र किं मानमित्यत्र दृष्टान्तेन दर्शयति--त्वमेवेति सत्यम्। विचारयस्व। किमिति तत् रत्नं रत्नाकरे समुद्र एव। अथ च रत्नखनावेव युज्यते युक्तं भवति। 'खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्' इति। 'रत्नाकरो जलनिधिः' इति चामरः ।।११।।

हिन्दी--हे देवि! समस्त जगत् के मंगलकर्म रूप गाये जानेवाले (प्रबन्धगीत) गीतों के कारणभूत इस बालक की उत्पत्ति में तुम्हीं निदान हो, भला तुम्हीं इस बात को भलीभाँति सत्यरूप से विचार करो कि रत्न की उत्पत्ति रत्नाकर के सिवा और कहाँ से संभव है?

अथ युग्मेनाह—

अतः शृणुष्वावहितेन वृत्तं बीजं यदग्नौ निहितं मया तत्।
संक्रान्तमन्तस्त्रिदशापगायां ततोऽवगाहे सति कृत्तिकासु ।।१२।।

गर्भत्वमाप्तं तदमोघमेतत्ताभिः शरस्तम्बमधि न्यधायि ।
बभूव तत्रायमभूतपूर्वो महोत्सवोऽशेषचराचरस्य ॥१३॥

अन्वयः—अतः अवहितेन वृत्तं शृणुष्व । (तथा हि) मया यद् बीजम् अग्नौ निहितम्, तत् त्रिदशापगायाम् अन्तः अवगाहे सति संक्रान्तम् । ततः कृत्तिकासु गर्भत्वम् आप्तम् । ताभिः अमोघं तत् एतत् अधि शरस्तम्बं न्यधायि, तत्र अशेषचराचरस्य अभूतपूर्वः महोत्सवः अयं बभूव ।

संजी०—अत इति । गर्भत्वमिति ॥ हे प्रिये, अतः कारणात् । अवहितेनावधानेन । सावधानतयेति यावत् । भावे निष्ठा । वृत्तं वृत्तान्तं शृणुष्व शृणु । तथाहि । मया यद्वीजं वीर्यमग्नौ निहितं स्थापितं तद्बीजं त्रिदशापगायां गङ्गायामन्तर्मध्ये अवगाहे स्नाने सति संक्रान्तं लग्नम् । ततो गङ्गातः कृत्तिकासु च संक्रान्तं सद्गर्भत्वमाप्तं गर्भीभूतम् । अथ च ताभिः कृत्तिकाभिरमोघं तदेतच्छरस्तम्बमध्यधिशरस्तम्बम् । अधेर्व्यत्ययः प्रामादिक एव । न्यधायि निहितम् । धाञः कर्मणि लुङ् । तत्र शरस्तम्बेऽशेपचराचरस्य समस्तस्थावरजंगमस्य जगतोऽभूतपूर्वः पूर्वं भूतो भूतपूर्वस्तादृङ्नभवतीत्यभूतपूर्वो महोत्सवो महानुत्सवोऽयं शिशुर्बभूव । जन्यजनकयोरभेदविवक्षयायुर्घृतमितिवन्महोत्सवोऽयमिति प्रयोगः ॥ १२-१३ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! सावधानी से इस कथा को सुनो, मैंने जिस बीज को अग्नि में स्थापित किया था, अग्नि ने उसी बीज को स्नानकर गंगा में संक्रान्त कर दिया फिर वही वीर्य गंगा से कृत्तिकाओं में संलग्न होकर गर्भ बन गया । तब उन कृत्तिकाओं ने उस गर्भ को सरपत के वन में छोड़ दिया, वहीं समस्त चराचर प्राणियों के अभूतपूर्व महोत्सव रूप इस बालक का जन्म हुआ ।

अशेषविश्वप्रियदर्शनेन धुर्या त्वमेतेन सुपुत्रिणीनाम् ।
अलं विलम्ब्याचलराजपुत्रि स्वपुत्रमुत्सङ्गतले निधेहि ॥१४॥

अन्वयः—हे अचलराजपुत्रि ! अशेषविश्वप्रियदर्शनेन एतेन त्वं सुपुत्रीणां धुर्या अलं स्वपुत्रम् उत्सङ्गतले निधेहि ।

संजी०—अशेषेति ॥ हे प्रिये, अशेषविश्वस्य समस्तजगतः प्रियं प्रीतिकारकम् । 'इगुपध-' इत्यादिना कः । तथाभूतं दर्शनं यस्य तथोक्तेनैतेन । अत्रान्वादेश एतच्छब्दस्य नित्यमेनादेशनियमात्कथमेनाभावः साधुः । सत्यम् अत्रान्वादेश एव नास्ति । तत्र किंचिद्विधानोद्युक्त्याश्रयीभूतस्य पुनरुपादानाश्रयीभूतस्य च भेदाभाववत्त्वेन विवक्षितत्वात् । प्रकृते तु तदन्यथात्वादन्वा-

देशाभावेनैनादेशाभावसिद्धिरित्यलम्। त्वं सुपुत्रिणीनां शोभनपुत्रवतीनां धुर्याग्रगण्या। श्रेष्ठतमेति यावत्। असीति शेषः। हे अचलराजपुत्रि, विलम्ब्य विलम्बं कृत्वालम्। विलम्बो न कर्तव्य इत्यर्थः। किं तु स्वपुत्रमात्मतनूजमुत्सङ्गतलेऽङ्कतले निधेहि स्थापय॥ १४॥

हिन्दी—हे पर्वतराजपुत्रि ! समस्त संसार को प्रिय लगने वाले इस बालक से तुम सत्पुत्रों को जन्म देने वाली सभी माताओं में तुम सर्वश्रेष्ठ माता बन गई हो। अतः विलम्ब मत करो, अपने इस पुत्र को अपनी गोद में उठा लो।

अथ युग्मेनाह—

अथेति वादिन्यमृतांशुमौलौ शैलेन्द्रपुत्री रभसेन सद्यः।
सान्द्रप्रमोदेन सुपीनगात्री धात्री समस्तस्य चराचरस्य॥१५॥

किरीटबद्धाञ्जलिभिर्नभःस्थैर्नमस्कृता सत्वरनाकिलोकैः।
विमानतोऽवातरदात्मजं तं ग्रहीतुमुत्कण्ठितमानसाभूत्॥१६॥

अन्वयः—अथ अमृतांशुमौलौ इति वादिनि समस्तस्य चराचरस्य धात्री (तथा) सान्द्रप्रमोदेन सुपीनगात्री शैलेन्द्रपुत्री नभःस्थैः सत्वरनाकिलोकैः किरीटबद्धाञ्जलिभिः नमस्कृता सद्यः रभसेन विमानतः अवातरत् आत्मजं ग्रहीतुम् उत्कण्ठितमानसा च अभूत्।

संजी०—अथेति किरीटेति॥ अथामृतांशुश्चन्द्रो मौलौ यस्य तथाभूते हरे। इति पूर्वोक्तप्रकारेण वादिनि भाषमाणे सति। समस्तस्य सकलस्य चराचरस्य जगतो धात्री परिपोषिका। 'ऋन्नेभ्यः—' इति ङीप्। तथा सान्द्रः सघनो यः प्रमोद आनन्दस्तेन सुतरां पीनं प्रफुल्लत्वात्पुष्टं गात्रं यस्यास्तथाभूता शैलेन्द्रस्य हिमालयस्य पुत्री कन्या पार्वती नभःस्थैः। तत्काल आकाशमाश्रयद्भिरित्यर्थः। तथा सत्वरैश्च नाकिलोकैरिन्द्रादिलोकैः किरीटेषु बद्धा अञ्जलयो यैस्तथाभूतैः सद्भिर्नमस्कृता वन्दिता सती सद्यो रभसेन वेगेन विमानात्। पञ्चम्यास्तसिल्। अवातरदुत्ततार। अथ च तमात्मजं कुमारं ग्रहीतुमुत्कण्ठितमानसा चाभूत्। अहमेनं गृह्णामीति मनस्यैच्छदित्यर्थः॥१५-१६॥

हिन्दी—इस प्रकार भगवान् शंकर के कहने पर चराचर जगत् की धात्री आनन्दातिरेक से फूले न समाने के कारण पीनगात्री आकाशस्थित देवगणों से शीघ्रतापूर्वक मुकुट पर लगये गये अञ्जलि को जोड़कर प्रणाम की जाती हुई वह पार्वती बड़ी शीघ्रता से विमान से उतर पड़ी और उस बालक को लेने के लिए मन उत्कण्ठित हो गई।

स्वर्गापगापावककृत्तिकादीन्कृताञ्जलीनानमतोऽपि भूयः।
हित्वोत्सुका तं सुतमाससाद पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षात् ॥१७॥

अन्वयः—स्वर्गापगापावककृत्तिकादीन् कृताञ्जलीनत भूयः आनमत अपि हित्वा तं सुतम् अससाद (तथा हि) पुत्रोत्सवे हर्षात् का न माद्यति।

संजी०—स्वर्गेति॥ पुत्रोत्सव उत्सुकोत्कण्ठिता पार्वती। स्वर्गापगा गङ्गा तया सहिता याः पावककृत्तिकास्ता आदयो येषां तान्। अत्रादिशब्देने-न्द्रादयो ग्राह्याः। स्वर्गापगा च पावकश्च कृत्तिकाश्चेति द्वन्द्वसमासेऽल्पाच्तर-त्वात्पावकशब्दस्य पूर्वनिपातः प्रसज्येतेति पूर्वरीतिरादृता। तान् कृताञ्जली-नत एव भूयोऽतिशयमानमतो नमस्कुर्वतोऽपि हित्वा परित्यज्य तं सुतमास-साद प्राप। तथाहि--हर्षादानन्दवशात्का न माद्यत्युन्मत्ता भवति। पुत्रोत्स-वेन सर्वासामुन्मत्तत्वं भवतीति भावः॥१७॥

हिन्दी—गङ्गाजी, अग्नि तथा कृत्तिकाओं के द्वारा हाथ जोड़कर बारम्बार प्रणाम किये जाने पर भी पार्वती ने उधर ध्यान नहीं दिया और सीधे बच्चे के पास चली गयीं। भला कौन ऐसी माता होगी जो पुत्रोत्सव काल में हर्ष से पागल न होती होगी—

प्रमोदबाष्पाकुललोचना सा न तं ददर्श क्षणमग्रतोऽपि।
परिस्पृशन्ती करकुड्मलेन सुखान्तरं प्राप किमप्यपूर्वम् ॥१८॥

अन्वयः—सा अग्रतः अपि तं क्षणं न ददर्श यत् प्रमोद्वाष्पाकुललोचना। करकुड्मलेन परिस्पृशन्ती किमपि अपूर्वं सुखान्तरं प्राप।

संजी०—प्रमोदेति॥ सा पार्वती। अग्रतः स्थितमपि तं पुत्रं क्षणं न ददर्श। यतः प्रमोदबाष्पैरानन्दाश्रुभिराकुले व्याप्तत्वाद्दर्शनाशक्ते लोचने यस्याः। आनन्दाश्रुभिरन्धीभूतेत्यर्थः। अथ च कर एव कुड्मलं कलिका तेन परिस्पृशन्ती सती किमपि लोकोत्तरमपूर्वम्। अभूतपूर्वमित्यर्थः। शाकपार्थि-वादीनामुत्तरपदलोपः। सुखान्तरम्। अन्यत्सुखमित्यर्थः। अन्तरशब्दोऽत्रो-पमानाभावद्योतकः। प्राप प्राप्तवती॥१८॥

हिन्दी—पार्वती ने अपने आगे स्थित भी उस बालक को क्षण मात्र नहीं देखा क्योंकि उनकी आँखे आनन्दाश्रु से भर गयी थी। फिर अपने कली जैसे कोमल हाथों से उसे सहलाती हुई किसी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगी।

सुविस्मयानन्दविकस्वरायाः शिशुर्गलद्बाष्पतरंगितायाः।
विवृद्धवात्सल्यरसोत्तराया देव्या दृशोर्गोचरतां जगाम ॥१९॥

अन्वयः—शिशुः सुविस्मयानन्दविकस्वरायाः गलद्बाष्पतरङ्गितायाः विवृद्धवात्सल्यरसोत्तरायाः देव्याः दृशोः गोचरतां जगाम ।

संजी०—सुविस्मयेति ।। शिशुः कर्ता । सुतरां यौ विस्मयानन्दावाश्चर्यहर्षौ ताभ्यां विकस्वरायाः प्रफुल्लीभूतायाः । तथा गलद्बाष्पैस्तरंगितायाः संजाततरंगायाः । तारकादित्वादितच् । वपुषि गलद्भिर्बाष्पजलैरुद्भूतप्रवाहकल्लोलकलितायाः इत्यर्थः । तथा विवृद्धं यद्वात्सल्यं दयावत्त्वम् । पुत्रत्वादिति भावः । तत्र यो रसः प्रीतिः स उत्तरः प्रधानं यस्यास्तथाभूताया देव्याः पार्वत्याः संबन्धिनोर्दृशोर्विलोचनयोर्गोचरतां विषयतां जगाम प्राप । बाष्पनिर्मुक्ताभ्यां लोचनाभ्यां देवी तमपश्यदित्यर्थः ।।१९।।

हिन्दी—पार्वती जी को वह बालक उनके नेत्रों से तब दिखाई पड़ा जब आश्चर्य और आनन्द के कारण उनके प्रफुल्लित नेत्रों से फूट कर अश्रुधारा लहराने लगी, और हृदय में अलौकिक वात्सल्य रस की भावना जाग उठी ।

तमीक्षमाणा क्षणमीक्षणानां सहस्रमाप्तुं विनिमेषमैच्छत् ।
सा नन्दनालोकनमङ्गलेषु क्षणंक्षणं तृप्यति कस्य चेतः ।।२०।।

अन्वयः—तं क्षणम् ईक्षमाणा सा विनिमेषं ईक्षणानां सहस्रम् आप्तुम् ऐच्छत्, नन्दना लोकनमङ्गलेषु क्षणं कस्य चेतः तृप्यति ।

संजी०—तमिति ।। तं बालं क्षणमीक्षमाणावलोकमाना सा देवी विनिमेषं निर्गतनिमेषमीक्षणानां नेत्राणां सहस्रमाप्तुं मम सहस्रं नेत्राणि भवन्त्वित्यैच्छदियेष । द्वाभ्यां विलोचनाभ्यामाकण्ठदर्शनजननाभावादिति भावः । तथाहि—नन्दनस्यालोकनान्येव मङ्गलानि तेषु विषये क्षणंक्षणम् । प्रतिक्षणमित्यर्थः । 'नित्यवीप्सयोः' इति वीप्सायां द्विर्भावः । कस्य चेतस्तृप्यति तृप्तिं प्राप्नोति । अपि तु न कस्यापीत्यर्थः ।।२०।।

हिन्दी—प्रतिक्षण उस बालक को एकटक देखते हुए पार्वती ने अपने मन में सहस्रों नेत्रों की कामना करने लगीं । भला पुत्रालोकन के माङ्गलिक अवसर पर किस माता का हृदय तृप्त होता है ?

विनम्रदेवासुरपृष्ठगाभ्यामादाय तं पाणिसरोरुहाभ्याम् ।
नवोदयं पार्वणचन्द्रचारुं गौरी स्वमुत्सङ्गतलं निनाय ।।२१।।

अन्वयः—गौरी नवोदयं पार्वणचन्द्रचारुं तं विनम्रदेवासुरपृष्ठगाभ्यां पाणिसरोरुहाभ्याम् आदाय उत्सङ्गतलं निनाय ।

संजी०—विनम्रेति ॥ गौरी पार्वती । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् । नवोदयं नूतनोद्भवम् । तत्कालजातमित्यर्थः । अत एव पार्वणः पर्वणि भवः । 'तत्र भवः' इत्यण् । स चासौ चन्द्रश्च तद्वच्चारु मनोहरम् । चन्द्रोऽपि नवोदय इति ज्ञेयम् । तथाभूतं तं तनूजं पुत्रम् । कर्मभूतमित्यर्थः । आदाननयने उभे अपि प्रत्ययस्य कर्मत्वं विवेचनीयम् । विनम्राः पादप्रणता ये देवासुरास्तेषां पृष्ठेषु गच्छतः संचरतस्ताभ्याम् । अनेन तेभ्योऽभयदानमुद्रा कृतेति व्यज्यते । पाणिसरोरुहाभ्यां करकमलाभ्यामादाय गृहीत्वा स्वमात्मीयमुत्सङ्गतलं निनाय प्रापयामास । हस्ताभ्यामुत्थाप्य स्वाङ्क आरोपितवतीत्यर्थः ॥२१॥

हिन्दी—फिर पार्वती ने नवीन उदीयमान पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान रमणीय उस बालक को देवता एवं असुरों की पीठ पर फेरे जाने वाले अपने कमल के समान कोमल हाथों से उठाकर अपनी गोद में रख लिया ।

स्वमङ्कमारोप्य सुधानिधानमिवात्मनो नन्दनमिन्दुवक्त्रा ।
तमेकमेषां जगदेकवीरं बभूव पूज्या धुरि पुत्रिणीनाम् ॥२२॥

अन्वयः—इन्दुवक्त्रा एव एकं जगदेकवीरं तम् आत्मनः नन्दनं सुधानिधानम् इव स्वम् अङ्कम् आरोप्य पुत्रिणीनां धुरि पूज्या बभूव ।

संजी०—स्वमिति ॥ इन्दुवक्त्रा चन्द्रमुख्येषा पार्वती । एकमद्वितीयं जगदेकवीरं जगत्स्वेकवीरं तमात्मनो नन्दनं पुत्रं सुधानिधानममृतपात्रमिव स्वमात्मीयमङ्कमारोप्य संस्थाप्य पुत्रिणीनां पुत्रवतीनां धुर्यग्रभागे पूज्या पूजयितुं योग्या बभूव । एतत्पुत्रस्य सर्वासामपि पुत्रेभ्योऽधिकत्वादग्रपूज्यत्वमुचितमेवेति भावः ॥२२॥

हिन्दी—चन्द्रमुखी पार्वती ने अकेले संसार के एकमात्र वीर उस बालक को अमृत के खजाने की तरह अपनी गोद में रख कर समस्त लोकों की माताओं में पूज्य बन गयी ।

निसर्गवात्सल्यरसौघसिक्ता सान्द्रप्रमोदामृतपूरपूर्णा ।
तमेकपुत्रं जगदेकमाताभ्युत्सङ्गिनं प्रस्नविणी बभूव ॥२३॥

अन्वयः—निसर्गवात्सल्यरसौघसिक्ता सान्द्रप्रमोदामृतपूरपूर्णा जगदेकमाता । उत्सङ्गिनं तम् एकपुत्रम् अभिप्रस्नविणी बभूव ।

संजी०—निसर्गेति ॥ निसर्गेण स्वभावेन । न तूपाधिनेत्यर्थः । यो वात्सल्यरसो दयावत्त्वरसस्तस्यौघेन सिक्ता प्लाविता । तत्रातिवात्सल्यवतीत्यर्थः । तथा सान्द्रप्रमोदोऽतिशयहर्षः स एवामृतं पीयूषं तस्य पूरेण प्रवाहेण पूर्णा

भृता जगतामेकाऽद्वितीया माता परिपोषिका देव्युत्सङ्गिनमधिश्रितोत्सङ्गं तमेकपुत्रमभिसंमुखं प्रस्नविणी दुग्धस्रावववती बभूव। पुत्रं दृष्ट्वा मातुः स्तनाभ्यां पयः पततीति युक्तमिति भावः ॥२३॥

हिन्दी—स्वभाविक वात्सल्य रस के प्रवाह से आप्तलवावित अतिशय हर्ष रूप अमृत के प्रवाह से परिपूर्ण अद्वितीय माता उन पार्वती जी ने जब सर्वश्रेष्ठ उस बालक को अपनी गोद में रखा उसी समय बालक के सामने उनके स्तनों से दूध की धारा फूट पड़ी।

अशेषलोकत्रयमातुरस्याः षाण्मातुरः स्तन्यसुधामधासीत्।
सुरस्रवन्त्याः किल कृत्तिकाभिर्मुहुर्मुहुः सस्पृहमीक्ष्यमाणः ॥२४॥

अन्वय—षाण्मातुरः सुरस्रवन्त्या कृत्तिकाभिः सस्पृहम् मुहुर्मुहुः ईक्षमाणः अशेषलोकमयमातुः अस्याः स्तन्यसुधाम् अधासीत् (किल)।

संजी०--अशेषेति॥ षाण्मातुरः षण्णां मातॄणामपत्यं षाण्मातुरः कार्तिकेयः। अत्र षण्मातृशब्दात् 'मातुरुत्सङ्ख्या–' इत्यादिनाण् मातृशब्दस्योदादेशश्च। 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः' इत्यमरः। सुरस्रवन्त्या देवनद्याः। गङ्गाया इत्यर्थः। 'स्रवन्ती निमग्नगापगा' इत्यमरः। तथा कृत्तिकाभिश्च सस्पृहं सेच्छं यथा तथा। 'इच्छा काङ्क्षा स्पृहेहा तृट्' इत्यमरः। अस्मदीयपयोधररस्रवदमृतपातायमिदानीमेतदीयस्तनपयः पिबन्पुनरप्यस्मदीयपयोधरपयोऽपि स्मेरेदेवंभूतेच्छासहितमित्यर्थः। मुहुर्मुहुरनुवेलमीक्ष्यमाणोऽवलोक्यमानः सन्नशेषं सकर्बं यल्लोकत्रयं तस्य मातुः पोषिण्या अस्या देव्याः स्तन्या स्तनेभवा। 'शरीरावयवाद्यत्' इति यत्। सा चासौ सुधा च तामधासीत्पपौ। 'धेट् पाने' कर्तरि लुङ्। 'विभाषा घ्राधेट्–' इति सिज्लुग्न ॥२४॥

हिन्दी—कार्त्तिकय जी को उस समय गंगा एवं कृत्तिकाओं ने अभिलाषा पूर्ण दृष्टि से देखा जब वे त्रिलोकमाता पार्वती के दुग्धामृत का पान करने लगे। अभिलाषा पूर्बक देखने का कारण यह कि हम लोगों ने इस जो स्तन पान कराया, कदाचित् इस स्तन्यसुधा के पान के अन्तर यह उसे स्मरण करेगा या नहीं।

सुखाश्रुपूर्णेन मृगाङ्कमौलेः कलत्रमेकेन मुखाम्बुजेन।
तस्यैकनालोद्गतपञ्चपद्मलक्ष्मीं क्रमात्षड्वदनीं चुचुम्ब ॥२५॥

अन्वयः–मृगाङ्कमौलिः कलत्रम् एकनालोदगतपञ्चापद्मलक्ष्मीम् तस्य षड्वदनीम् सुखाश्रुपूर्णेन एकेन मुखाम्बुजेन क्रमात् चुचुम्ब।

संजी०—सुखेति । मृगाङ्कमौलेर्हरस्य कलत्रं भार्या । 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' इत्यमरः । एकनाल एककाण्ड उद्गतान्युदितानि यानि पञ्चपद्मानि तेषां लक्ष्मीरिव शोभेव लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तथाभूतां तस्य कुमारस्य षण्णां वदनानां समाहारं षड्वदनीम् । 'द्विगोः' इति ङीप् । इह संख्यासादृश्यमन्तरा न विरोधः । मुखाश्रूपूर्णेनानन्दाश्रुजलपरिपूरितेनैकेन मुखाम्बुजेन वदनकमलेन क्रमाद्यथाक्रमं चुचुम्ब स्पृष्टवती । अतिशयप्रेमवशादिति भावः ।।२५।।

हिन्दी—शङ्करप्रिया पार्वती एक नाल में उत्पन्न पाँच कमलों की लक्ष्मी के समान उस बालक के छओं मुखों को आनन्दाश्रु से परिपूर्ण अपने एक ही मुख-कमल से बारी-बारी चूमने लगी ।

हैमी फलं हेमगिरेर्लतेव विकस्वरं नाकनदीव पद्मम् ।
पूर्वं दिङ्नूतनमिन्दुमाभाचं पार्वती नन्दनमादधाना ।।२६।।

अन्वयः—तम् नन्दनम् अदधाना पार्वती फलं (दधाना) हिमगिरेः हैमी लता इव विकस्वरम् पद्मम् (दधाना) नाकनदी इव नूतनम् इन्दुम् पूर्वा दिग् इव अभात् ।

संजी०—हैमीति । तं नन्दनं तनयमादधाना सा पार्वती । फलं दधाना हेमगिरेः सुमेरोः संबन्धिनीं । तदुत्पन्नेत्यर्थः । हैमी हेमविकारा । विकारार्थकेऽणि 'टिड्ढा–' इति ङीप् । लतेव । विकस्वरं प्रफुल्लं पद्मं कमलं दधाना नाकनदीव गङ्गेव । नूतनं नवोदयमिन्दुं दधाना पूर्वा पूर्वसंज्ञिका दिगिव । आभाच्छुशुभे । अत्र मालोपमालंकारः ।।२६।।

हिन्दी—उस अपने पुत्र को गोद लिये पार्वती उस समय फल से युक्त हिमालय में उत्पन्न स्वर्णलता के समान, खिले हुए कमलों को धारण करने वाली गङ्गा के समान तथा नवीन उदीयमान चन्द्रमण्डल को धारण करने वाली पूर्व दिशा के समान शोभित हो रही थीं ।

प्रीतात्मना सा प्रयतेन दत्तहस्तावलम्बा शशिशेखरेण ।
कुमारमुत्सङ्गतले दधाना विमानमभ्रंलिहमारुरोह ।।२७।।

अन्वय—कुमारम् उत्सङ्गतले दधाना सा प्रीतात्मना प्रयतेन (तथा भूतेन शङ्करेण शशिशेखरेण दत्तहस्तावलम्वा अभ्रंलिहन् विमानम् आरुरोह ।

संजी० प्रीतेति ।। कुमारं पुत्रमुत्सङ्गतले दधाना बिभ्रती सा देवी प्रीतात्मना प्रसन्नीभूतमनसा प्रयतेन सावधानेन । न तु संभ्रमितेन । 'नयवर्त्मगाः प्रभवतां हि धियः' इति न्यायादिति भावः । तथाभूतेन शशिशेखरेण

शिवेन दत्तहस्तावलम्बा सती । अत्यतिप्रेमभरादिति भावः । अभ्रंलिहमाकाशस्पृक् । 'वहाभ्रे लिहः' इति खश् । विमानमारुरोहारूढा ॥२७॥

हिन्दी--उस समय बालक को गोद में धारण की हुई पार्वती अत्यन्त प्रसन्न मन से सावधानी पूर्वक शंकर जी के हाथों का सहारा ले कर गगनचुम्बी विमान पर सवार हो गयी।

महेश्वरोऽपि प्रमदप्ररूढरोमोद्गमो भूधरनन्दनायाः ।
अङ्कादुपादत्त तदङ्कतः सा तस्यास्तु सोऽप्यात्मजवत्सलत्वात् ॥२८॥

अन्वयः—प्रमदप्ररूढरोमोद्गमः महेश्वरः अपि आत्मजवत्सलत्वात् भूधरनन्दनायाः अङ्कात् (तम्) उपादत्त। अथ तदङ्कतः सा उपादत्त स अपि तस्या (अङ्कतः उपादत्त)।

संजी०--महेश्वर इति ॥ प्रमदेनानन्देन प्ररूढा रोमोद्गमा यस्य तथाभूतो महेश्वरोऽप्यात्मजे पुत्रे वत्सलत्वाद्दयावत्त्वाद्धेतोर्भूधरनन्दनायाः पार्वत्या अङ्कादुत्सङ्गतस्तं पुत्रमुपादत्ताग्रहीत् । अथ च तदङ्कतो हरोत्सङ्गात्सा देव्युपादत्त । अथ च सोऽपि हरोऽपि तस्या देव्या अङ्कादुपादत्त । इत्यनुवेलमन्योन्यग्रहणं चक्रतुरित्यर्थः ॥२८॥

हिन्दी—पुत्र-प्रेम से रोमाञ्चित हुए महेश्वर पुत्रवत्सलता के कारण पार्वती की गोद से उस बालक को अपनी गोद में ले लेते। इसके अनन्तर पार्वती शङ्कर से अपनी गोद में लिया करतीं, फिर शङ्कर जी उनकी गोद से अपनी गोद में रख लिया करते थे।

दधानया नेत्रसुधैकसत्रं पुत्रं पवित्रं सुतया तयाद्रेः ।
संश्लिष्यमाणः शशिखण्डधारी विमानवेगेन गृहाञ्जगाम ॥२९॥

अन्वयः—शशिखण्डधारी नेत्रसुधैकसत्रम् (तथा) पवित्रं पुत्रं दधानया तया अद्रेः सुतया संश्लिष्यमाणः विमानवेगेन गृहान् जगाम।

संजी०—दधानयेति ॥ शशिखण्डधारी महेश्वरः । सुधाया अमृतस्यैकं केवलं सत्रं सदादानम् । 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने धनेऽपि च' इत्यमरः । नेत्रयोः संबन्धि सुधैकसत्रं येन । नेत्रयोरमृतवत्सुखदातारमित्यर्थः । तथा पवित्रं पूतम् ।'पुवः संज्ञायाम्' इति इत्रच्प्रत्ययः । तथाभूतं पुत्रं सुतं दधानया बिभ्रत्या तयाद्रेर्हिमालयस्य सुतया कन्यया पार्वत्या कर्त्र्या । संश्लिष्यमाणः स्नेहवशादालिङ्ग्यमानः सन्विमानस्य वेगेन गृहाञ्जगाम प्रययौ । 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः ॥२९॥

हिन्दी—नेत्रों को अमृत के समान सुख देने वाले उस पवित्र पुत्र को गोद में लिये पार्वती से आलिङ्गित महादेव अत्यन्त तीव्रगामी विमान पर बैठ कर अपने घर (कैलास पर्वत) लौट आये।

अधिष्ठितः स्फाटिकशैलशृंगे तुङ्गे निजं धाम निकामरम्यम्।
महोत्सवाय प्रमथप्रमुख्यान्पृथून्गणाञ्शंभुरथादिदेश ॥३०॥

अन्वयः—अथ शंभुः तुङ्गे स्फटिकशैलशृङ्गे निकामरम्यं निजं धाम अधिष्ठितः महोत्सवाय पृथून् प्रमथप्रमुख्यान् गणान् आदिदेश।

संजी०—अधिष्ठित इति॥ अथानन्तरं शंभुर्महेश्वरस्तुङ्गे उन्नते स्फटिकमयः स्फटिको यः शैलः कैलासस्तस्य शृङ्गे शिखरे। 'शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। निकामरम्यमतिमनोहरं निजं स्वीयम्। 'स्वके नित्ये निजं त्रिषु' इत्यमरः। अधिष्ठितः सन्। 'अधिशीङ्–' इत्यादिनाधारस्य कर्मसंज्ञा। महोत्सवाय महोत्सवं कर्तुम्। 'तुमर्थाच्च' इति चतुर्थी। पृथून्महतः प्रमथप्रमुख्यान्प्रमथादीन्गणानादिदेशाज्ञापयामास ॥३०॥

हिन्दी—इसके पश्चात् कैलास की स्फटिकमय चोटी पर बने हुए अपने सुन्दर महल में बैठकर शंकर जी ने पुत्रजन्म महोत्सव के लिए बड़े-बड़े प्रमथ प्रमुख गणों को आज्ञा दी।

पृथुप्रमोदः प्रगुणो गणानां गणः समग्रो वृषवाहनस्य।
गिरीन्द्रपुत्र्यास्तनयस्य जन्मन्यथोत्सवं संववृते विधातुम् ॥३१॥

अन्वयः—अथ पृथुप्रमोदः प्रमुखः समग्रः गणानां गणः वृषवाहनस्य गिरीन्द्रपुत्र्याः तनयस्य जन्मनि उत्सवं विधातुं संववृते।

संजी०—पृथ्विति॥ अथानन्तरं पृथुर्महान्प्रमोदो हर्षो यस्य। तथा प्रकृष्टा गुणा यस्यैवंविधः समग्रः संपूर्णो गणानां गणः प्रमथादीनां समूहो वृषवाहनस्य महेश्वरस्य गिरीन्द्रपुत्र्याः पार्वत्याश्च तनयस्य जन्मन्युत्सवं विधातुं कर्तुं संववृते संवृत्तः। उद्युक्त इति यावत् ॥३१॥

हिन्दी—तब अत्यन्त आनन्द में मग्न सभी गुणी गणों ने एक साथ मिल कर शंकर तथा पार्वती जी के पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में महान् महोत्सव मनाना आरम्भ किया।

इतः परं सप्तभिरुत्सवानेवाह—

स्फुरन्मरीचिच्छुरिताम्बराणि संतानशाखिप्रसवाञ्चितानि।
उच्चिक्षिपुः काञ्चनतोरणानि गणा वराणि स्फटिकालयेषु ॥३२॥

अन्वयः—गणः स्फटिकालयेषु स्फुरन्मरीचिच्छुरिताम्बराणि सन्तानशाखिप्रसवाञ्चितानि वराणि काञ्चनतोरणानि उच्चिक्षिपुः ।

संजी०—स्फुरदिति ॥ गणाः प्रमथाः स्फटिकालयेषु स्फटिकगृहेषु स्फुरन्त्यो भासमाना या मरीचयः किरणास्ताभिश्छुरितं मिश्रीकृतमम्बरं यैस्तानि। संतानशाखिनां देववृक्षाणां प्रसवानि पत्राणि तैरञ्चितानि निर्मितानि वराणि श्रेष्ठानि काञ्चनस्य विकारः काञ्चनं स्वर्णसूत्रं तदाधेयीभूतानि तोरणानि मालाविशेषानुच्चिक्षिपुरुच्चैश्चिक्षिपुः । बबन्धुरित्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी—तदनन्तर उन गणों ने स्फटिकमणि से बने हुये भवनों पर चमकती हुई किरणों से आकाश को चित्रित करने वाली कल्पवृक्षों से उत्पन्न पत्तों एवं फूलों से बनी हुई उत्तम सुनहरी बन्दनवार लटका दी ।

दिक्षु प्रसर्पंस्तदधीश्वराणामथामराणामिव मध्यलोके ।
महोत्सवं शंसितुमाहतोऽन्यैर्दध्वान धीरः पटहः पटीयान् ॥३३॥

अन्वयः—अथ दिक्षु प्रसर्पन् तदधीश्वराणाम् अमराणां पटीयान् धीरः पटहः अन्यैः आहतः (सन्) मध्यलोके महोत्सवं शंसितुम् इव दध्वान ।

संजी०—**दिक्ष्विति** ॥ अथ तोरणोत्क्षेपानन्तरम् । दिक्षु दशसु दिशासु प्रसर्पन्प्रसिद्धो भवन् । आत्मनिनादेनेति शेषः । गम्यमानार्थत्वादप्रयोगः । तासां दिशामधीश्वराणां दिक्पालानाममराणां देवानामिन्द्रादीनां संबन्धी पटीयान्समर्थः । घोरनिनाद इति शेषः । धीरो गम्भीरः पटहोऽन्यैर्भृत्यभूतैरमरैराहतस्ताडितः सन् मध्यश्चासौ लोकश्च मध्यलोकः, भूलोक इत्यर्थः । तस्मिन् महोत्सवम् । अत्रापि भवत्पुत्रजन्मनास्माकं महानुत्सवो जात इति शंसितुमिव कथयितुमिव । दध्वान ध्वनिं चकार । ध्वनिकरणे महोत्सवज्ञापनस्य फलत्वाभावेऽपि फलत्वकल्पनात्फलोत्प्रेक्षा ॥३३॥

हिन्दी—इसके बाद तत्तद् दिशाओं में फैलने वाले तत्तद्दिशाओं के अधीश्वर इन्द्रादि दिक्पालों तथा देवताओं के लोकों में भी महान् गम्भीर पटह प्रणाद अन्य-अन्य देवताओं द्वारा किये जाने लगे ।

मानो वह पटह प्रणाद सूचित कर रहा था कि यहाँ दिक्पालों तथा देवताओं के लोकों में भी शंकर जीं के पुत्रजन्म का उत्सव भूलोक के समान ही मनाया जा रहा है ।

महोत्सवे तत्र समागतानां गन्धर्वविद्याधरसुन्दरीणाम् ।
संभावितानां गिरिराजपुत्र्या गृहेऽभवन्मङ्गलगीतकानि ॥३४॥

अन्वयः—तत्र महोत्सवे समागतानां गृहे गिरिराजपुत्र्याः संभावितानां गन्धर्व-विद्याधरसुन्दरीणां मङ्गलगीतकानि अभवन् ।

संजी०—महेति ।। तत्र महोत्सवे समागतानां प्राप्तानामत एव गृहे गिरिराजपुत्र्या भवान्या संभावितानां पूजितानाम् । सत्कृतानामित्यर्थः । गन्धर्वा विद्याधराश्च देवविशेषास्तेषां सुन्दरीणां स्त्रीणां स्त्रीकर्तृकाणि मंगल-गीतकानि मंगलप्रयोजनगीतान्यभवन् जातानीत्यर्थः ।।३४।।

हिन्दी—पार्वती जी ने उस पुत्रोत्सव में पधारी हुई गन्धर्व एवं विद्याधर की स्त्रियों का बहुत आदरपूर्वक सम्मान किया और उन लोगों ने भी प्रसन्न हो कर मङ्गलगान किया ।

सुमंगलोपायनपात्रहस्तास्तं मातरो मातृवदभ्युपेताः ।
निधाय दूर्वाक्षतकानि मूर्ध्नि निन्युः स्वमङ्कं गिरिजातनूजम् ।।३५।।

अन्वयः—सुमंगलोपायनपात्रहस्ताः अभ्युपेताः मातरः मूर्ध्नि दूर्वाक्षतकानि निधाय तं गिरिजातनूजं मातृवत् स्वम् अंकं निन्युः ।

संजी०—सुमङ्गलेति ।। सुमंगलानि यान्युपायनान्युपदासामग्र्यस्तेषां पात्रं तत्सहिता हस्ता यासामेवंभूताः सत्योऽभ्युपेताः प्राप्ता मातरो ब्राह्माद्याः । सप्तेति शेषः । 'ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः ।।' इत्यमरः । मूर्ध्नि शिरसि दूर्वाक्षतकानि निधाय सस्थाप्य तं गिरिजातनूजं कुमारं मातृवत्पार्वतीवत्तत्तुल्यं यथा तथा स्वं स्वीयमङ्कं निन्युः । स्वाङ्के स्थापयामासुरित्यर्थः । मातृवदित्यनेन तासा-मप्यत्र महत्प्रेमास्तीति दर्शितम् ।।३५।।

हिन्दी—सुमंगलोपहार युक्त पात्रों को अपने-अपने हाथों में लेकर आई हुई ब्राह्मी आदि मातृगणों ने बालक के शिर पर दूब तथा अक्षत का तिलक लगा-कर माता की तरह उस गिरिराजपुत्री के पुत्र को अपनी-अपनी गोदों में धारण किया ।

ध्वनत्सु तूर्येषु सुमन्द्रमङ्क्यालिग्योर्ध्वकेष्वप्सरसो रसेन ।
सुसंधिबन्धं ननृतुः सुवृत्तगीतानुगं भावरसानुविद्धम् ।।३६।।

अन्वय—अंक्यालिङ्ग्योर्ध्वकेषु तूर्येषु सुमन्द्रं ध्वनत्सु अप्सरसः रसेन सुसन्धि-बन्धम् सुवृत्तगीतानुगं भावरसानुविद्धं ननृतुः ।

संजी०—ध्वनत्स्विति ।। अङ्क्यालिङ्गयोर्ध्वकेष्वेतत्संज्ञकेषु तूर्येषु वाद्येषु सुतरां मन्द्रं गम्भीरं यथा तथा । 'कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे' इत्यमरः । ध्वनत्सु

शब्दायमानेषु सत्सु । अप्सरसो रम्भादिका रसेन स्नेहेन शोभना मधुराः संधयः स्वरसंध्यादयो येषु तथाभूता बन्धाः गीतप्रबन्धाः यत्र यस्मिन्कर्मणि । सुवृत्तानि शोभनच्छन्दांसि गीतान्यनुगानि यत्र यस्मिन्कर्मणि। भावा रत्यादयो रसाः शृंगारादयस्तैरनुविद्धं व्याप्तं यत्र यस्मिन्कर्मणि यथा तथा ननृतुर्गात्राणि विचिक्षिपुः ।।३६।।

हिन्दी - उस समय अङ्ग्य आलिङ्ग तथा ऊर्ध्वक नाम की अनेक तुरहियाँ बजने लगीं । अप्सरायें स्नेहपूर्वक उत्तम स्वर से युक्त भाव रस से भरी सुन्दर छन्दों वाले गीतों के अनुसार रत्यादि भाव तथा शृङ्गारादि रसों को प्रकट करती हुई नृत्य करने लगीं ।

वाता ववुः सौख्यकराः प्रसेदुराशा विधूमो हुतभुग्दिदीपे ।
जलान्यभूवन्विमलानि तत्रोत्सवेऽन्तरिक्षं प्रससाद सद्यः ।।३७।।

अन्वयः—तत्र उत्सवे वाताः सौख्यकरा ववुः, आशाः प्रसेदुः, हुतभुक् विधूमः दिदीपे, जलानि विमलानि अभूवन्, अन्तरिक्षं सद्यः प्रससाद ।

संजी०—वाता इति ।। तत्रोत्सवे । वाताः पवनाः सौख्यकरा ववुश्चेलुः । आशा दिशः प्रसेदुर्निर्मला बभूवुः । हुतभुगग्निर्विधूमो निर्धूमः सन्दिदीपे ज्वलति स्म । 'दीपी दीप्तौ' इति लिट् । जलानि विमलान्यभूवन् । अन्तरिक्षं व्योम सद्यः प्रससाद स्वच्छमभूत् । 'भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्' इति न्यायादिति भावः ।।३७।।

हिन्दी—उस उत्सव काल में वायु सुखद चलने लगा, दिशायें प्रसन्न हो उठीं, अग्नि धूयें से रहित हो प्रदीप्त हो गया । सरित, सरोवरादि के जल निर्मल हो गये । कि बहुना आकाश भी उस काल में प्रसन्न दिखाई पड़ने लगा ।

गम्भीरशंखध्वनिमिश्रमुच्चैर्गृहोद्भवा दुन्दुभयः प्रणेदुः ।
दिवौकसां व्योम्नि विमानसंघा विमुच्य पुष्पप्रचयान्प्रसस्रुः ।।३८।।

अन्वयः—गृहोद्भवाः दुन्दुभयः गम्भीरशङ्खध्वनिमिश्रम् उच्चैः प्रणेदुः दिवौकसाम् विमानसंघाः व्योम्निपुष्पप्रचयान् विमुच्य प्रसस्रुः ।

संजी०—गम्भीरेति । गृहोद्भवा महेश्वरनिकेतनीया दुन्दुभयो गम्भीरो मन्द्रो यः शङ्खध्वनिः पाञ्चजन्यशब्दस्तेन मिश्रं यथा स्यात्तथोच्चैः प्रणेदुः । 'उपसर्गादसमासेऽपि' इति णत्वम् । अथ च दिवौकसां देवानां विमानसंघा व्योम्नि पुष्पप्रचयान्विमुच्य विकीर्य प्रसस्रुः । प्रतस्थिर इत्यर्थः ।।३८।।

हिन्दी—सभी घरों में छोटे-छोटे नगाड़े गम्भीर शङ्खध्वनि के साथ जोर जोर से बजने लगे। देवता लोगों के विमान फूलों की वर्षा करते हुये स्थिर हो गये।

इत्थं महेशाद्रिसुतासुतस्य जन्मोत्सवे संमदयांचकार।
चराचरं विश्वमशेषमेतत्परं चकम्पे किल तारकश्रीः ॥३९॥

अन्वयः—महेशाद्रिसुतासुतस्य जन्मोत्सवे अशेषं चराचरम् एतद् विश्वं सम्मदयाञ्चकार परम् तारकश्रीः चकम्पे किल।

संजी०—इत्थमिति ॥ महेशो हरः। अद्रिसुता पार्वती तस्याः सुतस्य पुत्रस्येत्थमेवंभूते जन्मोत्सवेऽशेषं समस्तं चराचरं स्थावरजंगममेतद्विश्वं जगत्संमदयांचकारोन्मत्तीचकार। उन्मादसाधनैरिति शेषः। परं केवलं तारकस्य तारेकासुरस्य श्रीर्लक्ष्मीश्चकम्पे। बिभायेत्यर्थः ॥३९॥

हिन्दी—शंकर तथा पार्वती जी के पुत्रजन्मोत्सव काल में उन्माद के साधनों से समस्त चराचरात्मक जगत् आनन्द से पागल हो उठा, केवल तारकासुर की राज्यलक्ष्मी काँपने लगीं।

ततः कुमारः समुदां निदानैः स बाललीलाचरितैर्विचित्रैः।
गिरीशगौर्योर्हृदयं जहार मुदे न हृद्या किमु बालकेलिः ॥४०॥

अन्वयः—ततः स कुमारः विचित्रैः समुदां निदानैः बाललीलाचरितैः गिरीश गौर्यो हृदयं जहार। हृद्या बालकेलि मुदे न किमु।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं स कुमारो विचित्रैरनेकरूपैरत एव समुदां सुतरां प्रीतीनां निदानैरादिकारणैः। 'निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः। बाललीलाचरितैः शिशुक्रीडाचरित्रैर्गिरीशगौर्योः शिवपार्वत्योः। अभ्यर्हितत्वाद्बह्वचोऽपि पूर्वनिपातः। हृदयं मनो जहार। प्रसादयामासेत्यर्थः। हृद्या मनोहरा बालकेलिर्मुदे न किमु भवतीति। किंतु भवत्येवेत्यर्थः ॥४०॥

हिन्दी—इस प्रकार उस बालक ने अनोखी एवं हर्ष उत्पन्न करने वाली अपनी बाललीलाओं से शंकर तथा पार्वती के मन को मोहित कर लिया। भला बच्चों की बालक्रीड़ा किसके मन को मुग्ध नहीं करती ?

महेश्वरः शैलसुता च हर्षात्सतर्षमेकेन मुखेन गाढम्।
अजातदन्तानि मुखानि सूनोर्मनोहराणि क्रमतश्चुचुम्ब ॥४१॥

अन्वयः—महेश्वरः शैलसुता च हर्षात् सतर्षम् (तथा) अजातदन्तानि मनोहराणि सूनोः मुखानि एकेन मुखेन गाढं क्रमतः चुचुम्ब।

संजी०--महेश्वर इति ।। महेश्वरो हरः शैलसुता पार्वती च हर्षाद्धेतोः सतर्षं सतृष्णं यथा तथाजातदन्तान्यनुद्भूतदशनानि मनोहराणि सूनोः कुमारस्य मुखान्येकेन मुखेन गाढं दृढं यथा तथा क्रमतो यथाक्रमं चुचुम्ब पस्पर्श। अत्र कर्तृद्वयस्य पार्थक्येन क्रियान्वयो विधेयः। अन्यथा द्विवचनापत्तिरिति विवेचनीयम् ।।४१।।

हिन्दी—पार्वती और शंकर जी प्रसन्नता के साथ लालायित होकर दाँतों से रहित बालक के मुख को अपने एक ही मुख से बारम्बार प्रगाढ़ रूप में बारी-बारी से चूमते थे।

क्वचित्स्खलद्भिः क्वचिदस्खलद्भिः क्वचित्प्रकम्पैः क्वचिदप्रकम्पैः।
बालः स लीलाचलनप्रयोगैस्तयोर्मुदं वर्धयति स्म पित्रोः ।।४२।।

अन्वयः—स बालः क्वचित् स्खलद्भिः क्वचित् (प्रदेशे) अस्खलद्भिः क्वचित् प्रकम्पैः क्वचित् अप्रकम्पैः लीलाचलनप्रयोगैः तयोः पित्रो मुदं वर्धयति स्म।

संजी०—क्वचिदिति ।। स बालः कुमारः क्वचित्प्रदेशे स्खलद्भिः पतद्भिः क्वचित्प्रदेशेऽस्खलद्भिः क्वचित्प्रदेशे प्रकम्पैः प्रकृष्टकम्पैः क्वचित्प्रदेशेऽप्रकम्पैर्लीलया ये चलनप्रयोगास्तैर्निमित्तभूतैस्तयोः पित्रोर्जननीजनकयोः। माता च पिता च पितरौ तयोः पित्रोः। 'पिता मात्रा' इत्येकशेषः। मुदं प्रीतिं वर्धयति स्म। 'कन्दलयांचकार' इत्यपि पाठः। अर्थः स एव ।।४२।।

हिन्दी—वह बालक कभी लड़खड़ाते हुए, कभी ठीक से चलते हुए, कभी काँपते हुए और कभी बिना काँपे खड़े होकर अपनी चालों से माता-पिता का आनन्द बढ़ाने लगा।

अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुर्गृहांगणक्रीडनधूलिधूम्रः ।
मुहुर्वदन्किंचिदलक्षितार्थं मुदं तयोरंकगतस्ततान ।।४३।।

अन्वयः--गृहांगणक्रीडन धूलिधूम्रः अंकगतः अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुः अलक्षितार्थं मुहुः किञ्चिद् वदन् तयोः मुदं ततान।

संजी०—अहेत्विति ।। गृहांगणे यत्क्रीडनं तेन निमित्तेन धूलिभी रजोभिर्धूम्रो धूसरः सन्नङ्कगतः उत्सङ्गं प्राप्तः कुमारः। अहेतुरकारणो यो हासो हसितं तेनच्छुरितो मिश्रित आननेन्दुर्मुखचन्द्रो यस्य। अलक्षितार्थमव्यक्तार्थं मुहुः किंचिद्वदंस्तयोर्मुदं प्रीतिं ततान चकार ।।४३।।

हिन्दी—घर के आँगन में खेलते रहने से धूलिधूसरित कभी गोद में बैठ कर कभी अकारण हँसी से शोभित होते हुए अपने चन्द्रमुख से, कभी अस्पष्टाक्षरों से बारम्बार तोतली अपनी वाणी से माता पिता के आनन्द को बढ़ाता रहता था।

गृह्णन्विषाणे हरवाहनस्य स्पृशन्नुमाकेसरिणं सलीलम् ।
स भृङ्गिगणः सूक्ष्मतरं शिखाग्रं कर्षन्बभूव प्रमदाय पित्रोः ॥४४॥

अन्वयः—स हरवाहनस्य विषाणे गृह्णन् तथा उमाकेशरिणं स्पृशन् भृंगिगणः सूक्ष्मतरं शिखाग्रं कर्षन् पित्रोः प्रमोदाय बभूव ।

संजी०—गृह्णन्निति ॥ स कुमारः । हरवाहनस्य वृषस्य विषाणे शृङ्गे गृह्णन् । कराभ्यामिति शेषः । तथोमाकेसरिणं पार्वतीसिंहं सलीलमप्रयासं यथा तथा स्पृशन् । तथा भृङ्गिगणो गणस्य सूक्ष्मतरं शिखाग्रं कर्षन् । पित्रोर्जननीजनकयोः प्रमदाय हर्षाय बभूव । क्रियाग्रहणात्संप्रदानत्वम् ॥४४॥

हिन्दी—वह कभी शिवजी के बैल का सींग पकड़ लेता, कभी पार्वती के सिंह को सहलाने लगता और कभी भृंगी नामक गण के पतली चोटी के अग्रभाग को पकड़ कर खींचने लगता । इस प्रकार उसकी प्रत्येक लीलायें माता पिता के प्रमोद का कारण बनती थीं ।

एको नव द्वौ दश पञ्च सप्तेत्यजीगणन्नात्ममुखं प्रसार्य ।
महेशकण्ठोरगदन्तपंक्तिं तदङ्कगः शैशवमौग्ध्यमैशिः ॥४५॥

अन्वयः—तदङ्कगः ऐशिः आत्ममुखं प्रसार्य महेशकण्ठोरगदन्तपंक्तिम् एको नव द्वौ दश पञ्च सप्त इति शैशवमौग्ध्यम् अजीगणत् ।

संजी०—एक इति ॥ तस्य पितुरङ्कग उत्सङ्गगत ऐशिः । ईशस्यापत्यमित्यर्थः । 'अत इञ्' इत्यपत्यार्थ इञ् । आत्ममुखं प्रसार्य महेशस्य ये कण्ठोरगाः कण्ठगता सर्पास्तेषां दन्तपङ्क्तिम् । एको नव द्वौ दश पञ्च सप्तेत्यजीगणत्संख्यातवान् । यतः शैशवमौग्ध्यं बालत्वनिमित्तमूढतां दधानः । अजीगणदिति गणयतेर्लुङ् । 'ई च गणः' इत्यभ्यासाकारस्येकारः ॥४५॥

हिन्दी—कभी वह बालक पिता की गोद में बैठ कर अपना मुँह फैलाकर सदा शिव के कण्ठ में पड़े हुए साँपों की दाँतों की पंक्तियों को एक नव दो दश पाँच और सात इस क्रम से गणना करने लगता और इस प्रकार वालत्वनिमित्तक अपनी मूढता प्रगट करने लगता ।

कपर्दिकण्ठान्तकपालदाम्नोऽङ्गुलिं प्रवेश्याननकोटरेषु ।
दन्तानुपात्तुं रभसी बभूव मुक्ताफलभ्रान्तिकरः कुमारः ॥४६॥

अन्वयः—कुमारः कपर्दिकण्ठान्तकपालदाम्नः आननकोटरेषु अंगुलिं प्रवेश्य मुक्ताफलभ्रान्तिकरः दन्तान् उपात्तुं रभसो बभूव ।

संजी०—कपर्दीति ॥ कुमारः कार्तिकेयः कपर्दिकण्ठान्ते शिवकण्ठमध्ये स्थितस्य कपालदाम्नो नृकरोटीस्रज आननकोटरेषु वदनकूपेषु। कोटरो नागरे कूपे पुष्करिण्युच्चवाटके' इति मेदिनी। अङ्गुलिं प्रवेश्य दन्तानुपात्तुं ग्रहीतुं रभसी रभसो वेगोऽस्यास्तीति तथोक्तः। 'रभसो वेगहर्षयोः' इति मेदिनी। बभूव। एतान्वेगेन गृह्णामीत्यैच्छदित्यर्थः। यतो मुक्ताफलभ्रान्तिकरो मौक्तिकभ्रमकारी ॥४६॥

हिन्दी—वह कुमार कभी-कभी शंकर जी के गले में पड़ी मुण्डमाला के मुखों में अपनी अंगुलियाँ डालकर उनके दाँतों को उखाड़ लेने का शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करता क्योंकि उसे उसमें मोती का भ्रम होता था।

शंभोः शिरोऽन्तःसरितस्तरंगान्विगाह्य गाढं शिशिरान्रसेन।
स जातजाड्यं निजपाणिपद्ममतापयद्भालविलोचनाग्नौ ॥४७॥

अन्वयः—सः शिशिरान् शंभोः शिरोऽन्तः सरितः तरंगान् रसेन गाढं विगाह्य जातजाड्यं निजपाणिपद्मं भालविलोचनाग्नौ अतापयत्।

संजी०—शंभोरिति ॥ स कुमारः। शिशिराञ्छीतलाञ्छंभोः संबन्धिनः शिरसोऽन्तर्मध्ये स्थितायाः सरितो गङ्गायास्तरंगान्रसेन स्वादेन। स्वादोऽत्र त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वेन विवक्षितः।' रसो गन्धरसे जले। शृङ्गारादौ विषे वीर्ये तक्रादौ द्रव्यरागयोः। देहधातुप्रभेदे च पारदस्वादयोः पुमान्' इति मेदिनी। गाढं दृढम्। 'गाढबाढदृढानि च' इत्यमरः। विगाह्यावगाह्य। अत एव जातजाड्यं जातशीतकृतजडत्वं निजपाणिपद्मं स्वीयकरकमलं भाले यद्विलोचनं तत्र योऽग्निस्तत्रातापयत्। अन्योऽपि शीतजडं हस्तमग्नौ तापयति तद्वदिति भावः ॥४७॥

हिन्दी—कभी वह अत्यन्त शीत उत्पन्न करने वाले सदाशिव के शिरः प्रदेश में बहने वाली गंगा के तरंगों में यह शीत है वा गर्म है, इसका ज्ञान करने के लिए अपना हाथ डाल देता। किन्तु जब वह ठंढक से शून्य होने लगता तब शिव जी के मस्तक में जलती हुई नेत्राग्नि में सेंकने लगता था।

किंचित्कलं भङ्गुरकंधरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शंभोः।
प्रलम्बमानं किल कौतुकेन चिरं चुचुम्बे मुकुटेन्दुखण्डम् ॥४८॥

अन्वयः—किञ्चिद् भंगुरकन्धरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शंभोः प्रलम्बमानं कलं मुकुटेन्दुखण्डं कौतुकेन चिरं चुचुम्बे।

संजी०—किंचिदिति ॥ किंचिद्भङ्गुरा पतनशीला। 'भञ्जभासमिदो घुरच्' इति घुरच् 'चजोः' इति कुत्वम्। कंधरा ग्रीवा यस्य। बालत्वात्। स

कुमारो नमज्जटाजूटस्य धरस्तस्य शंभोर्हरस्य प्रलम्बमानमाश्रयमाणं कलं मधुरं मुकुटेन्दुखण्डं मुकुटचन्द्रशकलम्। 'भित्तं शकलखण्डे वा' इत्यमरः। कौतुकेनानन्देन चिरं बहुकालं चुचुम्बे। पस्पर्शेत्यर्थः ॥४८॥

हिन्दी—जब कभी शंकर जी के कन्धे नीचे की ओर झुक जाते थे जिसके कारण उनके जटाजूट लटक जाते तो वह कुमार उन जटाजूटों के साथ नीचे लटकने वाले मनोहर मुकुटस्थ चन्द्रमा को बड़े कुतूहल के साथ देर तक चूमता रहता था।

इत्थं शिशोः शैशवकेलिवृत्तैर्मनोभिरामैर्गिरिजागिरीशौ।
मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिशं नाविदतां कदाचित् ॥४९॥

अन्वयः—गिरिजागिरीशौ मनोऽभिरामैः इत्थं शिशोः शैशवकेलिवृत्तैः मनोविनोदैकरसप्रयुक्तौ कदाचिद् दिवानिशं न अविदताम्।

संजी०—इत्थमिति ॥ गिरिजागिरीशौ मनोभिरामैर्मनोरथैरित्थमेवंभूतैः शिशोः कुमारस्य शैशवस्य बालस्य याः केलयस्तासां वृत्तैश्चरित्रैः। 'वृत्तं पद्ये चरित्रे त्रिष्वतीते दृढनिस्तले' इत्यमरः। मनसो विनोदस्तत्र य एको रसः प्रीतिस्तत्र प्रसक्तावासक्तौ सन्तौ कदाचिदपि दिवानिशमहर्निशं नाविदतां नाबुध्येताम्। अगाधपुत्रोत्सवार्णवमग्नत्वादिति भावः ॥४९॥

हिन्दी—इस प्रकार पार्वती तथा परमेश्वर अत्यन्त मनोहर उस शिशु की बालक्रीड़ाओं के चरित्र से मनोविनोद रूप प्रीति में इतने आसक्त हो गये कि उन्हें रात दिन के बीतने की सुधि न रह गई।

इति बहुविधं बालक्रीडाविचित्रविचेष्टितं
ललितललितं सान्द्रानन्दं मनोहरमाचरन्।
अलभत परां बुद्धिं षष्ठे दिने नवयौवनं
स किल सकलं शास्त्रं शस्त्रं विवेद विभुर्यया ॥५०॥

अन्वयः—इति बहुविधं ललितललितं सान्द्रानन्दं मनोहरं बालक्रीडाविचित्रविचेष्टितम् आचरन् विभुः सः षष्ठे दिने परां बुद्धिं नवयौवनं च अलभत् यथा सकलं शस्त्रं शास्त्रं विवेद किल।

संजी०—इतीति ॥ इत्येवंभूतं बहुविधं नानाप्रकारकं ललितललितं ललितप्रकारमतिसुन्दरं सान्द्र आनन्दो येन मनोहरं बालक्रीडाया विचित्रं विचेष्टितं चेष्टाम्। चरित्रमिति यावत्। आचरन्विदधद्विभुः स कुमारः षष्ठे दिने परामुत्कृष्टां बुद्धिं धिषणां नवयौवनं तारुण्यं चालभत प्राप। यया

बुद्धया सकलं समस्तं शस्त्रम् । सकलानि शास्त्राणीत्यर्थः । शास्त्रम् । शास्त्राणीत्यर्थः । उभयत्रापि जातावेकवचनम् । विवेद ज्ञातवान् । किलेति प्रसिद्धौ । प्राचीनसत्संस्काराणां किमिवाशक्यमिति भावः । हरिणीच्छन्दः—'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात् ॥५०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीतारामकविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये कुमारोत्पत्तिर्नामैकादशः सर्गः ॥

हिन्दी—इस प्रकार अनेक प्रकार के अत्यन्त सुन्दर और मनोहर अपने बालक्रीड़ा के विचित्र चरित्रों को करता हुआ वह बालक जन्म से छठे दिन अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न बुद्धि तथा उत्कृष्ट नव जवानी को प्राप्त कर लिया । किं बहुना वह अपनी उत्कृष्ट बुद्धि से सम्पूर्ण शास्त्रों तथा शस्त्रों का निश्चित रूप से ज्ञाता हो गया ।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के एकादश सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

अथ द्वादशः सर्गः



अथ प्रपेदे त्रिदशैरशेषैः क्रूरासुरोपप्लवदुःखितात्मा ।
पुलोमपुत्रीदयितोऽन्धकारिं पत्रीव तृष्णातुरितः पयोदम् ॥१॥

अन्वयः—अथ क्रूरासुरोपप्लव दुःखितात्मा पुलोमपुत्रीदयितः अशेषैः त्रिदशैः पत्री पयोदम् इव अन्धकारिम् प्रपेदे ।

संजी०--अथेति ॥ अथानन्तरं क्रूरस्तीव्रो योऽसुरस्तारकसंज्ञकस्तस्य तत्कर्तृको य उपप्लव उपद्रवः स्वस्थानोच्चाटनादिकस्तेन दुःखितः क्लिष्ट आत्मा यस्य तथाभूतः पुलोमपुत्र्याः शच्या दयितः प्रिय इन्द्रोऽशेषैः समस्तैस्त्रिदशैरात्मभृत्यभूतवृन्दारकैः सह तृष्णातुरितस्तृष्णया तृषया कर्त्र्या । आतुरित आतुरीकृतः । 'तत्करोति' इति णिचि कृते 'णाविष्ठवत्' इति टिलोपः । ततः कर्तरि क्तः । पत्री चातकः पयोदमिव । अन्धकारिं हरं प्रपेदे प्राप । अत्र पूर्णोपमालंकारः । सर्गेऽस्मिन्वृत्तमुपजातिः ॥१॥

हिन्दी—इसके अनन्तर अत्यन्त क्रूर उस तारकासुर के उपद्रव से दुःखी होकर इन्द्रदेव सभी देवताओं को साथ लेकर भगवान् शंकर के समीप गये, जिस प्रकार प्यासा पक्षी बादल की शरण में जाता है ।

दृप्तारिसंत्रासखिलीकृतात्स कथंचिदम्भोदविहारमार्गात् ।
अवाततारामिगिरिं गिरीशगौरीपदन्यासविशुद्धमिन्द्रः ॥२॥

अन्वयः--स इन्द्रः दृप्तारिसंत्रासखिलीकृतात् अम्भोदविहारमार्गात् गिरीशगौरीपदन्यासविशुद्धं गिरिम् अभि कथञ्चित् अवाततार ।

संजी०—दृप्तेति ॥ स इन्द्रः । दृप्तोऽभिमानी योऽरिस्तारकस्तस्माद्यः संत्रासो भयं तेन खिलीकृताद्दुरवगाह्यमानीकृतादम्भोदानां मेघानां विहारो यत्र स चासौ मार्गश्च । आकाशमित्यर्थः । तस्मात् गिरीशसहिता या गौरी भवानी तस्याः पदे चरणे तयोर्न्यासो निधानं तेन विशुद्धं पवित्रं गिरिं कैलासमभि संमुखं कथंचित्केनापि प्रकारेण । कष्टेनेत्यर्थः । अवाततारोत्ततार । गिरीशगौरीति गिरीशस्याभ्यर्हितत्वाद्बह्वचोऽपि पूर्वनिपात इति वा ॥२॥

हिन्दी—वे इन्द्रदेव महाभयानक घमण्डी उस तारकासुर के भय से सभी मार्गों के दुरवगाह (चलने में असमर्थ) होने के कारण बादलों के मार्ग में छिपते हुए किसी प्रकार पार्वती तथा शंकर के पादविन्यास से परम पवित्र कैलाश पर्वत पर उतरे।

संक्रन्दनः स्यन्दनतोऽवतीर्य मेघात्मनो मातलिदत्तहस्तः।
पिनाकिनोऽथालयमुच्चचाल शुचौ पिपासाकुलितो यथाम्भः ॥३॥

अन्वयः—अथ संक्रन्दनः मातलिदत्तहस्तः मेघात्मनः स्यन्दनतः अवतीर्य शुचौ पिपासाकुलितः अम्भः यथा पिनाकिन- आलयम् आससाद।

संजी०—संक्रन्दन इति ॥ अथानन्परं संक्रन्दन इन्द्रः। 'संक्रन्दनो दुश्च्यवनः' इत्यमरः। मातलिना सारथिना दत्त आश्रयीकरणार्थमग्रेकृतो हस्तो यस्मैः सः। अवलम्बितमातलिहस्तः सन्नित्यर्थः। मेघात्मनो मेघस्वरूपधारिणः। मेघरूपादित्यर्थः। स्यन्दनतो रथात्। पञ्चम्यास्तसिल्। अवतीर्योत्तीर्य। शुचौ ग्रीष्मे पिपासया तृष्णया। तृषयेति यावत्। आकुलित आतुरः पुरुषोऽम्भो यथा जलमिव पिनाकिनो हरस्यालयं निलयमुच्चचाल। उद्दिश्य चलति स्मेत्यर्थः। 'निकाय्यनिलयालयाः' इत्यमरः। पिपासेति 'अ प्रत्ययात्' इत्यकारप्रत्यये टाप्। अत्रापि पूर्णोपमालंकारः। सामान्यधर्मस्त्वाकुलितत्वमित्याकुलितत्वे निमित्तभूतौ पिपासोपप्लवौ। अनयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावेन सादृश्यम् ॥३॥

हिन्दी—तदनन्तर इन्द्रदेव सहारे के लिए मातलि द्वारा दिये गये हाथ को पकड़े हुए अपने मेघ सदृश रथ से उतर कर भगवान् सदाशिव के आलय पर पहुँचे जिस प्रकार ग्रीष्म में प्यास का मारा हुआ पुरुष जल के पास पहुँचता है।

इतस्ततोऽथ प्रतिबिम्बभाजं विलोकमानः स्फटिकाद्रिभूमौ।
आत्मानमप्येकमनेकधा स व्रजन्विभोरास्पदमाससाद ॥४॥

अन्वयः—अथ व्रजन् सः स्फटिकाद्रिभूमौ इतस्ततः प्रतिबिम्बभाजम् एकम् अपि आत्मानम् अनेकधा विलोकमानः विभोः आस्पदम् आससाद।

संजी०—इतस्त इति ॥ अथानन्तरं व्रजन्गच्छन्स इन्द्रः स्फटिकाद्रिः कैलासस्तस्य भूमौ पृथिव्यामितस्ततो यत्र तत्र प्रतिबिम्बभाजं प्रतिबिम्बितमेकमप्यात्मानं शरीरमनेकधानेकसंख्यं विलोकमानः पश्यन्सन्। विभोर्महेश्वरस्यास्पदं स्थानमाससाद प्राप ॥४॥

हिन्दी—इन्द्रदेव चलते हुए स्फटिकमय कैलासपर्वत की भूमि में जहाँ-तहाँ पड़ी हुई अपनी अनेक परछाइयों को देख एक होते हुए भी अपने को अनेक समझते हुए विभुरूप शिव जी के निवास स्थान तक पहुँचे।

विचित्रचञ्चन्मणिभङ्गिसङ्गं सौवर्णदण्डं दधतातिचण्डम् ।
स नन्दिनाधिष्ठितमध्यतिष्ठत्सौधांगणद्वारमनंग शत्रोः ॥५॥

अन्वयः—सः विचित्रचञ्चन्मणिभङ्गिसंगम् अतिचण्डं सौवर्णदण्डं दधता नन्दिना अधिष्ठितम् अनङ्गशत्रोः सौधाङ्गणद्वारम् अध्यतिष्ठत् ।

संजी०—विचित्रमिति ॥ स इन्द्रः विचित्रा अनेकवर्णाश्चञ्चन्तो दीव्यमाना ये मणयो रत्नानि तेषां तत्कर्मिका या भङ्गयो रचनाविशेषास्तेषां सङ्गः संबन्धो यस्य । अनेकवर्णमणिखचितमित्यर्थः । तथातिचण्डमतिभीषणं सौवर्णदण्डं सुवर्णमयवेत्रं दधता बिभ्रता नन्दिना गणेनाधिष्ठितं द्वारपालतयाधिश्रितमनङ्गशत्रोः शिवस्य सौधस्य राजसदनसंबन्धिनोऽङ्गणस्याजिरस्य । 'अंगणं चत्वराजिरे' इत्यमरः । द्वारं प्रतीहारम् । 'स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः' इत्यमरः । अध्यतिष्ठदधितस्थौ । 'अधिशीङ्स्थासाम्—' इति कर्मत्वम् । अन्तः प्रवेशे भगवदाज्ञानुपालनं कुर्वन्द्वार एव तस्थावित्यर्थः ॥५॥

हिन्दी—इन्द्रदेव अनेकवर्ण की मणियों से जड़े हुए महाभयानक सुवर्णमय वेत्र धारण किये नन्दी जहाँ द्वारपाल बन कर पहरा दे रहे थे, ऐसे शिव के राजसदन के आँगन के द्वार पर जाकर खड़े हो गये ।

ततः स कक्षाहितहेमदण्डो नन्दी सुरेन्द्रं प्रतिपद्य सद्य ।
प्रतोषयामास सुगौरवेण गत्वा शशंस स्वयमीश्वरस्य ॥६॥

अन्वयः—ततः स नन्दी सुरेन्द्रम् सद्यः प्रतिपद्य सुगौरवेण प्रतोषयामास स्वयम् गत्वा कक्षाहितहेमदण्डः ईश्वरस्य शशंस ।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं स नन्दी गणः सुरेन्द्रमिन्द्रं सद्य आशु प्रतिपद्य समीपं प्राप्य सुतरां गौरवेणादरेण स्वागतादिना प्रतोषयामास संतोषितवान् । अथ च स्वयं गत्वा कक्षायां हर्म्यप्रकोष्ठे । 'कक्षा प्रकोष्ठे हर्म्यादेः काञ्च्यां मध्येभबन्धने' इत्यमरः । आहितः स्थापितो हेमदण्डः सुवर्णवेत्रो येन तथोक्तः सन् । ईश्वरस्य । ईश्वरमित्यर्थः । संबन्धविवक्षायां षष्ठी । शशंस कथयामास । ससुरो महेन्द्र आगत इति निवेदितवानित्यर्थः ॥६॥

हिन्दी—तदनन्तर नन्दीश्वर ने सुरेन्द्र के पास शीघ्रता से जाकर उनको स्वागतादि आदर से संतुष्ट किया । फिर अपने सुवर्णमय वेत्रदण्ड को काँख में दबा कर उनके आने की सूचना दी ।

भ्रूसंज्ञयानेन कृताभ्यनुज्ञः सुरेश्वरं तं जगदीश्वरेण ।
प्रवेशयामास सुरैः पुरोगः समं स नन्दी सदनं सदस्य ॥७॥

अन्वयः—अनेन जगदीश्वरेण भ्रूसंज्ञया कृताभ्यनुज्ञः सः नन्दी पुरोगः (सन्) तम् सुरेश्वरम् सद् अस्य सदनम् सुरैः समं प्रवेशयामास ।

संजी०—भ्रूसंज्ञयेति ।। अनेन जगतामीश्वरेण महेश्वरेण भ्रूसंज्ञया । भ्रुकुटीचमत्कृतिसंकेतेनेत्यर्थः । कृताभ्यनुज्ञः सुरेन्द्रागमनार्थं कृतानुशासनः स नन्दी गणः पुरोगोऽग्रगामी सन् । तं सुरेश्वरमिन्द्रं सच्छोभनमस्य महेश्वरस्य सदनं गृहं सुरैः समं प्रवेशयामास । प्रवेशितवानित्यर्थः ।।७।।

हिन्दी—जब भगवान् शंकर ने अपनी भौंहों के संकेत से इन्द्र को लाने की आज्ञा दी तब उनकी आज्ञा पा आगे आगे चलते हुए नन्दीश्वर ने शिवजी के मनोहर घर में देवताओं के साथ इन्द्र का प्रवेश करवाया ।

स चण्डिभृङ्गिप्रमुखैर्गरिष्ठैर्गणैरनेकैर्विविधस्वरूपैः ।
अधिष्ठितं संसदि रत्नमय्यां सहस्रनेत्रः शिवमालुलोके ।।८।।

अन्वयः—सः सहस्रनेत्रः गरिष्ठैः अनेकैः विविधस्वरूपैः चण्डि भृङ्गिप्रमुखैः गणैः रत्नमय्याम् संसदि अधिष्ठितम् शिवम् आलुलोके ।

संजी०—स इति ।। सहस्रनेत्र इन्द्रो गरिष्ठैरतिशयेन गुरुभिः । 'प्रियस्थिर–' इत्यादिना गुरुशब्दस्य गरादेशः । अनेकैर्बहुभिर्विविधस्वरूपैर्नानाकृतिभिश्चण्डिभृङ्गिप्रमुखैर्गणै रत्नमय्यां रत्नप्रचुरायाम् । प्राचुर्ये मयट् । 'टिड्ढा–' इति ङीप् । संसदि सभायामधिष्ठितमुपविष्टं शिवमालुलोके ददर्श । इह 'अधिशीङ्–' इत्याधारस्य कर्मत्वप्रसङ्गो दुर्निवारः । अतएव रत्नमयीं सभां तामिति प्रतिष्ठितमिति वा पठनीयम् । यथास्थितविन्यासे दूषणोद्धारं सुधियो विभावयन्त्विति ।। ८ ।।

हिन्दी—तदनन्तर उन सहस्रनेत्रों वाले इन्द्रदेव ने विविध स्वरूपधारण करने वाले बड़े-बड़े चण्डी, भृंगी आदि प्रमुख-प्रमुख गणों के साथ रत्नजटित सभाभवन में शिव जी को देखा ।

अथ त्रयोदशभिर्महेश्वरं विशिनष्टि—कपर्देत्यादिभिः ।।

कपर्दमुद्बद्धमहीनमूर्धरत्नांशुभिर्भासुरमुल्लसद्भिः ।
दधानमुच्चैस्तरमिद्धधातोः सुमेरुशृङ्गस्य समत्वमाप्तम् ।।९।।

अन्वयः—उदबद्धम् उल्लसद्भिः अहीनमूर्धरत्नांशुभिः भासुरम् उच्चैस्तरम् कपर्दम् दधानम् इन्द्रधातोः सुमेरुशृंगस्य समत्वम् आप्तम् ।

संजी०-तत्र कपर्दमिति ।। किंभूतं शिवम् । उद्बद्धं भुजंगमरज्जुभिर्दृढीकृतमुल्लसद्भिः शोभमानैरत एवाहीनामिनाः स्वामिनस्तेषां वासुकिप्रभृति-

महासर्पाणां मूर्धसु शिरःसु यानि रत्नानि मणयस्तेषामंशुभिर्मयूखैर्भासुरं दीप्यमानम्। 'भञ्जभास-' इति घुरच्। उच्चैस्तरं महान्तं कपर्दं जटाजूटं दधानं बिभ्रतम्। 'कपर्दोऽस्य जटाजूटः' इत्यमरः। अत एव पुनः किंभूतम्। इद्धाः प्रवृद्धा धातवो गैरिकादयो यत्र तथाभूतं यत्सुमेरोः स्वर्णाद्रेः शृङ्गं तस्य समत्वं सादृश्यमाप्तं प्राप्तम् ।। ९ ।।

हिन्दी—उस समय सर्पों से कसकर बाँधी हुई तथा शोभित होने वाले बड़े-बड़े वासुकि प्रमुख सर्पो के शिरःस्थित मणियों की किरणों से देदीप्यमान अपने ऊँचे जटा समूहों को धारण किए शंकर जी प्रचुर गैरिकादि धातुओं से संपन्न सुमेरु पहाड़ की चोटी की समता को प्राप्त कर रहे थे।

बिभ्राणमुत्तुङ्गतरंगमालां गंगो जटाजूटतटं भजन्तीम्।
गौरीं तदुत्सङ्गजुषं हसन्तीमिव स्वफेनैः शरदभ्रशुभ्रैः ।।१०।।

अन्वयः-उत्तुंगतरंगमालाम् जटाजूटतटम् भजन्तीम् शरदभ्रशुभ्रैः स्वदेनैः तदुत्संगजुषम् गौरीम् हसन्तीम् इव गंगां बिभ्राणम्।

संजी०—बिभ्राणमिति ।। पुनः किंभूतम्। उत्तुङ्गोन्नतगामिनी। उत्प्लवनरीतिगामिनीत्यर्थः। तथाभूता तरङ्गमाला कल्लोलपङ्क्तिर्यस्याः। जटाजूटस्य कपर्दस्य तटं समीपभागं भजन्तीम्। तत्र स्थितामित्यर्थः। तथा शरदभ्रवच्छरत्कालिकमेघवच्छुभ्रैर्विशदैः स्वफेनैस्तस्य हरस्योत्सङ्गं जुषते सेवते ताम्। हराङ्कस्थितामित्यर्थः। गौरीं पार्वतीं हसन्तीमिवोपहास्यं कुर्वतीमिव। सापत्न्यप्रयुक्तमनःसंतापं हास्येन स्फुटीकुर्वाणामिवेत्युत्प्रेक्षा। गङ्गां बिभ्राणं दधानम् ।। १० ।।

हिन्दी—ऊपर उठती हुई तरंगसमूहों वाली जटाजूट के पास रहने वाली शरत्कालीन बादल के समान अपने फेनों से शंकर जी की गोद में बैठी हुई पार्वती जी की हँसी जैसी उड़ाती हुई गंगा को धारण करने वाले शिव को इन्द्र ने देखा।

गंगातरंगप्रतिबिम्बितैः स्वैर्बहूभवन्तं शिरसा सुधांशुम्।
चलन्मरीचिप्रचयैस्तुषारगौरैर्हिमद्योतितमुद्वहन्तम् ।।११।।

अन्वयः—गंगातरंगप्रतिबिम्बितैः स्वैः बहूभवन्तम् सुधांशुम् शिरसा उद्वहन्तं तुषारगौरैः चलन्मरीचिप्रचयैः हिमद्योतितम्।

संजी०—गङ्गेति ।। पुनः किंभूतम्। गंगातरङ्गेषु जाह्नवीकल्लोलेषु प्रतिबिम्बितैः स्वैरात्मभिः। शरीरैरिति यावत्। बहूभवन्तमनेकीभवन्तं सुधांशुं चन्द्रं शिरसा मूर्ध्नोद्वहन्तं दधानम्। अत एव पुनः किंभूतम्। तुषारवत्तुहिनवद्गौरैः सितैः। 'गौरोऽरुणे सिते पीते' इति विश्वः। चलन्तः

प्रसरन्तो ये मरीचिप्रचयाः किरणसंघातास्तैर्हिमद्योतितम्। द्योतते शोभते स द्योती। शोभावानित्यर्थः। तस्य भावो द्योतिता। द्युतिरित्यर्थः। हिमवद्धिमसंघातवद्द्योतिता द्युतिर्यस्य तम्। पूर्वं धवलाङ्गमप्यनेकचन्द्रशोभाभिरधिकधवलीभूतमित्यर्थः ॥ ११ ॥

हिन्दी—गंगा के तरंगों में प्रतिबिम्बित होने से अनेक शरीरों से दिखाई पड़ने वाले चन्द्रमा को अपने सिर पर धारण किए हुए तथा बर्फ के समान स्वच्छ फैलती हुई किरणसमूहों से हिमालय के समस्त हिमसंघात के समान दिखाई पड़ने वाले शिव को देखा।

भालस्थले लोचनमेधमानधामाधरीभूतरवीन्दुनेत्रम्।
युगान्तकालोचितहव्यवाहं मीनध्वजप्लोषणमादधानम् ॥१२॥

अन्वयः—भालस्थले एधमानधामाधरीभूतरवीन्द्रनेत्रम् युगान्तकालोचितहव्यवाहम् मीनध्वजप्लोषणं लोचनम् आदधानम्।

संजी०-भालस्थल इति ॥ भालस्थले ललाटदेश एधमानं वर्धमानं यद्धाम तेजस्तेन निमित्तेनाधरीभूते परिभावमुपागते रवीन्दू एव नेत्रे यस्मात्। ताभ्यामधिकतेजस्कमित्यर्थः। यद्वा। एधमानधाम अधरीभूतं चेति पदद्वयम्। तत्रैवं व्याख्येयम्। एधमानं वर्धमानं धाम तेजो यस्य। वर्धिष्णुतेजस्कमित्यर्थः। तथोन्नतानतस्थानभेदेनाधरीभूते भालस्थनेत्रापेक्षया नीचैर्भूते रवीन्दू एव नेत्रे यस्य। तथा युगान्तकाले प्रलयकाल उचितं परिचितं हव्यवाहमग्निरूपम्। प्रलयकालिकानलरूपमित्यर्थः। अत एव मीनध्वजस्य कामस्य प्लोषणं दाहकम्। 'प्लुष दाहे'। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्तरि ल्युट्। एवंभूतं लोचनमादधानम्। बिभ्राणमित्यर्थः ॥ १२ ॥

हिन्दी—अपने मस्तक पर बढ़ते हुए तेज से चन्द्रमा और सूर्यरूपी दोनों नेत्रों को तिरस्कृत करते हुए युगान्त में होने वाले प्रलयकालीन अग्नि के समान कामदेव को जलाने वाले तृतीय नेत्र को धारण किए हुए शिव को इन्द्र ने देखा।

महार्हरत्नाञ्चितयोरुदारं स्फुरत्प्रभामण्डलयोः समन्तात्।
कर्णस्थिताभ्यां शशिभास्कराभ्यामुपासितं कुण्डलयोश्छलेन ॥१३॥

अन्वयः—महार्हरत्नाञ्चितयोः समन्ताद् उदारम् (यथा स्यात्तथा) स्फुरत्प्रभामण्डलयोः कुण्डलेयोः छलेन कर्णस्थिताभ्याम् शशिभास्कराभ्याम् उपासितम्।

संजी०—महेति ॥ पुनः किंभूतम्। महार्हाणि बहुमौल्यानि यानि रत्नानि मणयस्तैरञ्चितयोः खचितयोरत एव समन्तात्सर्वत उदारमधिकं यथा स्यात्तथा स्फुरत्प्रसरत्प्रभामण्डलं कान्तिवितानं ययोः तथाभूतयोः

कुण्डलयोः कर्णभूषणयोश्छलेन कैतवेन कर्णयोः श्रवणयोः स्थिताभ्यामुपविष्टाभ्यां शशिभास्कराभ्यां चन्द्रसूर्याभ्यामुपासितं सेवितम्। कुण्डलविषये कैतवात्सूर्याचन्द्रमसोरारोप्यमाणत्वात्ताद्रूप्यरूपकं कैतवापह्नुतिश्चेत्युभयोः संसृष्टिः ॥१३॥

हिन्दी--अत्यन्त कीमती रत्नों से जड़े हुए अपने प्रभामण्डल को चारों ओर प्रकाशित करने वाले दोनों कुण्डलों के बहाने मानो कान पर स्थित चन्द्रमा और सूर्य से उपासित शिव जी को इन्द्र ने देखा।

स्वबद्धया कण्ठिकयेव नीलमाणिक्यमय्या कुतुकेन गौर्याः।
नीलस्य कण्ठस्य परिस्फुरन्त्या कान्त्या महत्या सुविराजमानम्॥१४॥

अन्वयः--परिस्फुरन्त्या नीलस्य कण्ठस्य महत्या कान्त्या सुविराजमानम् कुतुकेन स्वबद्धया नीलमाणिक्यमय्याः गौर्याः कण्ठिकया इव।

संजी०—स्वबद्धयेति ॥ पुनः किंभूतम्। परिस्फुरन्त्या परितः प्रसरन्त्या नीलस्य श्यामस्य कण्ठस्यात्मगलस्य महत्या कान्त्या प्रभया सुतरां विराजमानं शोभमानम्। कयेवेत्युत्प्रेक्षते—कुतुकेन कौतुकेन स्वस्मिन्नात्मीयकण्ठे बद्धया निहितया नीलमाणिक्यमय्या नीलरत्नविशेषप्रचुरया गौर्याः कण्ठिकयेव कण्ठभूषयेव। 'कण्ठिका कण्ठभूषणम्' इति मेदिनी ॥१४॥

हिन्दी--चारों ओर प्रकाशित करने वाले अपने नीले कण्ठ की कान्ति से शंकर जी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो कभी-कभी खिलवाड़ में नीलम की बनी कण्ठी को बाँधे हुए पार्वती सुशोभित हो रही हों।

कालार्दितानां त्रिदशासुराणां चितारजोभिः परिपाण्डुरांगम्।
महन्महेभाजिनमुद्गताभ्रप्रालेयशैलश्रियमुद्वहन्तम् ॥१५॥

अन्वयः—कालार्दितानाम् त्रिदशासुराणां चितारजोभिः परिपाण्डुरांगम् महद्महेभाजिनम् दधानम् उद्गताभ्रप्रालेय शैलश्रियम् उद्वहन्तम्।

संजी० - कालेति ॥ पुनः किंभूतम्। कालेनावसानकालिकमृत्युनार्दितानां पीडितानम्। मृतानामिति यावत्। त्रिदशासुराणां देवदैत्यानां चिताया मृतमण्डपस्य रजोभिर्भस्मभिः परितः पाण्डुरं शुभ्रमङ्गं यस्य। विहितमृतमण्डपभस्मोद्धूलनमित्यर्थः। इह देवानाममरत्वाभावो दुर्घटः। तत्र ज्ञानाभावेन निहितपदस्य कवेः प्रमाद इत्याहुः। केचित्पुनः 'मनुजासुराणाम्' इति पाठान्तरं कल्पयन्ति। अथ यद्यपि कालार्दितानामिति विशेषणमुभयविशेष्यान्वयित्वेन द्वितीयविशेष्ये विवक्षितमप्यकालार्दितत्वविशेषणस्य व्यभिचारनियमने

नियमनान्निषिद्धं भवति। तथापि प्रथमविशेष्ये लोकोपकारकतापक्षेऽपि व्यभिचारितार्थासंभवेन विशेषणानुपयोगात्संभवप्रयुक्तप्रधानभूतद्वितीयविशेष्यसंबन्धेन प्रथमविशेष्यान्वयित्वनिरासः। एवं चोपकार्यमनुजसहचरितत्वेन लोकोपकारकतापक्षावलम्बेन च विवक्षितार्थस्याविवक्षितत्वात्। संहारकतापक्षे तु प्रायो गतिरन्वेषणीयेत्यलम्। तथा महत्परिणाहि महेभस्य महतो गजस्याजिनं चर्म परिदधानमिति पूर्वेण संबन्धः। अत एवोद्गतमुदितमभ्रं मेघो यत्र स चासौ प्रालेयशैलो हिमवांस्तस्य श्रियं शोभामुद्वहन्तं दधानम्। निदर्शनालंकारः ॥१५॥

हिन्दी--महाकाल की महिमा से मरे हुए देवताओं एवं राक्षसों की चिता का भस्मकणों को लपेटने से उज्ज्वल दिखाई पड़ने वाले शरीर पर अत्यन्त विशाल हाथी की खाल ओढ़े हुए शंकर जी ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो बादलों से घिरा हुआ विशाल हिमालय सुशोभित हो रहा हो।

पाणिस्थितब्रह्मकपालपात्रं वैकुण्ठभाजापि निषेव्यमाणम्।
नरास्थिखण्डाभरणं रणान्तमूलं त्रिशूलं कलयन्तमुच्चैः ॥१६॥

अन्वयः--पाणिस्थितब्रह्मकपालपात्रम् वैकुण्ठभाजा अपि निषेव्यमाणम् नरास्थिखण्डाभरणम् रणान्तमूलम् त्रिशूलं उच्चैः कलयन्तम्।

संजी०—पाणीति ॥ पुनः किंभूतम्। पाणौ स्थितं ब्रह्मकपालमेव पात्रं यस्य। पाणिना ब्रह्मकरोटीपात्रं बिभ्राणमित्यर्थः। पुनः किंभूतम्। वैकुण्ठभाजापि हरिणापि निषेव्यमाणम्। सेवनमत्र कादाचित्कं नत्विदानींतनमेव त्रयाणामभेदस्यैवेष्टार्थकरत्वात्। एकैव मूर्तिरिति सप्तमसर्गोक्तेरिति भावः। हरापेक्षया हरेरपि लघुत्वसंभावनया संभवत्येव कदाचित्सेवनम्। तथा नराणामस्थिखण्डान्येवाभरणानि यस्य। हिंसाकालसंलग्नस्वशूलत्रितयास्थिकमित्यर्थः। तथा रणे योऽन्तो रिपूणामवसानं तस्य मूलं कारणम्। 'मूलं कारणमूल्ययोः' इति मेदिनी। उच्चैर्महत्त्रिशूलमायुधविशेषं कलयन्तं दधानम् ॥१६॥

हिन्दी—अपने पाणि से ब्रह्मकपालरूपी पात्र को धारण करने वाले विष्णु से भी सुसेवित मनुष्यों के अस्थिसमूह के आभरण से सुशोभित, रण में शत्रुओं का संहार करने वाले महान् त्रिशूल को धारण किये हुए शंकर को इन्द्र ने देखा।

पुरातनीं ब्रह्मकपालमालां कण्ठे वहन्तं पुनराश्वसन्तीम्।
उद्गीतवेदां मुकुटेन्दुवर्षत्सुधाभरौघाप्लवलब्धसंज्ञाम् ॥१७॥

अन्वयः—मुकुटेन्दुवर्षत्सुधाभरौघोप्लव लब्धसंज्ञाम् आश्वसन्तीम् पुनः उद्गीत-वेदाम् पुरातनीम् ब्रह्मकपालमालां कण्ठे वहन्तम् ।

संजी०—पुरातनीमिति ।। पुनः किंभूतम् । मुकुटे य इन्दुश्चन्द्रस्तस्माद्वर्षन्गलन्यः सुधाभरौघोऽमृतसमूहप्रवाहस्तत्र य आप्लवः स्नानं तेन निमित्तेन लब्धसंज्ञां प्राप्तचेतनामत एवाश्वसन्तीमुज्जीवन्तीम् । अत एव पुनर्भूयोऽप्युद्गीतवेदां पठितश्रुतिकाम् । ब्रह्मत्वादिति भावः । पुरातनीं प्राक्तनीम् । 'सायंचिरम् —' इत्यादिना पुराव्ययाट्टयुतुटौ । टित्वान्ङीप् ब्रह्मकपालानां मालां स्रजं कण्ठे गले वहन्तम् । दधानमित्यर्थः ।।१७।।

हिन्दी—मुकुट में रहने वाले चन्द्रमा से झड़ते हुए अमृतप्रवाह से चेतना प्राप्त कर जीवित हो उठने वाली पुरानी ब्रह्मकपाला को जो वेदों का पाठ कर रही थी उसे अपने कण्ठ में धारण किये शंकर जी को इन्द्र ने देखा ।

सलीलमंकस्थितया गिरीन्द्रपुत्र्या नवाष्टापदवल्लिभासा ।
विराजमानं शरदभ्रखण्डं परिस्फुरन्त्याचिररोचिषेव ।।१८।।

अन्वयः—नवाष्टापदवल्लिभासा सलीलम् अंकस्थितया गिरीन्द्रपुत्र्या परिस्फुरन्त्या अचिररोचिषा शरदभ्रखण्डम् इव विराजमानम् ।

संजी०—सलीलमिति ।। पुनः किंभूतम् । नवं यदष्टापदं हेम । 'हेमन्यष्टापदं वरे' इति मेदिनी । तस्य वल्ली लता । 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः । प्रकृत्या तु वल्लीशब्दस्य ह्रस्वत्वमेव । 'कृदिकारादक्तिनः' इति दीर्घत्वम् । तस्या भा इव भा यस्याः । तद्वच्छोभमानयेत्यर्थः । तथा सलीलं सक्रीडमङ्कस्थितयाङ्कमारूढया गिरीन्द्रपुत्र्या हिमालयकन्यया परितः स्फुरन्त्या प्रसरन्त्याचिररोचिषा चलप्रभया विद्युता शरदभ्रस्य शरत्कालिकमेघस्य खण्डं शकलमिव विराजमानं शोभमानम् । महेश्वरस्य शुभ्रत्वं भस्मोद्धूलनादिति विवेचनीयम् । खण्डौपम्यं च शुभ्रत्वमात्रतात्पर्येण न विरुध्यते ।।१८।।

हिन्दी—सोने की नवीन लता के समान पार्वती जी को क्रीड़ापूर्वक अपनी गोद में बिठाये हुए थोड़ी देर तक अपने प्रकाश से प्रकाशित होने वाली बिजली से युक्त शरत्कालीन मेघमण्डल के समान विराजमान शंकर जी को इन्द्र ने देखा ।

दृप्तान्धकप्राणहरं पिनाकं महासुरस्त्रीविधवत्वहेतुम् ।
करेण गृह्णन्तमगृह्यमन्यैः पुरास्मरप्लोषणकेलिकारम् ।।१९।।

अन्वयः—दृप्तान्धक प्राणहरम् महासुरस्त्री विधवत्वहेतुम् पुरा स्मरप्लोषण केलिकारम् अन्यैः अगृह्यम् पिनाकम् करेण गृह्णन्तम् ।

संजी०—दृप्तेति ॥ दृप्तोऽभिमानी योऽन्धकोऽसुरस्तस्य प्राणानां हरमपहारकम् । तद्धननसाधनमित्यर्थः । तथा महासुरास्त्रिपुरादयस्तेषां याः स्त्रियस्तासां विधवत्वं वैधव्यम् । मृतभर्तृकत्वमिति यावत् । तस्य हेतुं कारणम् । महासुरविनाशकमित्यर्थः । तथा पुरा पूर्वं स्मरस्य कामस्य प्लोषणं दाहं केल्यानायासेन करोतीति तथा । अन्यैः शिवातिरिक्तैरगृह्यं गृहीतुमशक्यं पिनाकं धनुः करेण पाणिना गृह्णन्तं दधानम् ॥१९॥

हिन्दी—अत्यन्त अहङ्कारी अन्धकासुर के प्राणों का हरण करने वाले महान् से महान् असुरस्त्रियों के वैधव्य के कारण भूत तथा कामदेव को भस्म करने वाले पिनाक नामक धनुष को जो अन्यों से सर्वथा अग्राह्य है उसे अपने हाथ से धारण किये शंकर को इन्द्र ने देखा ।

भद्रासनं काञ्चनपादपीठं महार्हमाणिक्यविभङ्गिचित्रम् ।
अधिष्ठितं चन्द्रमरीचिगौरैरुद्वीज्यमानं चमरैर्गणाभ्याम् ॥२०॥

अन्वयः—महार्हमाणिक्यविभङ्गिचित्रम् भद्रासनम् काञ्चनपादपीठम् अधिष्ठितम् (पुनः) चन्द्रमरीचिगौरैः चमरैः गणाभ्याम् उद्वीज्यमानम् ।

संजी०—भद्रासनमिति ॥ महार्हाणां बहुमूल्यानां माणिक्यानां विभङ्गिभी रचनाभिश्चित्रं विचित्रम् । भद्रं शुभमासनं पट्टादिनिर्मितं यत्र तादृशम् । बध्नन्तमिति पदमध्याहार्यम् । भद्रासनमासनविशेषमिति केचिद्व्याचक्षते । तत्त्वध्याहारदोषाद्योगाभ्याससमयाभावेन तदसंभवाच्चोपेक्षणीयमिति । काञ्चनपादपीठं सौवर्णसिंहासनमधिष्ठितम् । तत्रोपविष्टमित्यर्थः । 'अधिशीङ्स्थासाम्-' इति कर्मत्वम् । पुनश्च । चन्द्रमरीचिवद्गौरैर्विशदैश्चमरैः कृत्वा गणाभ्यां कर्तृभ्यामुद्वीज्यमानं प्रेङ्ख्यमानम् । कर्तृद्वित्वे चमरबहुत्वं प्रतिक्षणनूतनग्रहणात्संगमनीयम् ॥२०॥

हिन्दी—अत्यन्त बहुमूल्य मणियों से रचे जाने के कारण अत्यन्त विचित्र दिखाई पड़ने वाले पट्टादि निर्मित श्रेष्ठ आसन से अलङ्कृत सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे हुये तथा दोनों ओर खड़े हुये दो गणों द्वारा चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान उज्ज्वल चमर डुलाये जाते हुये शिव को इन्द्र ने देखा ।

शस्त्रास्त्रविद्याभ्यसनैकसक्ते सविस्मयैरेत्य गणैः सुदृष्टे ।
नीराज्यमाने स्फटिकाचलेन सानन्दनिर्दिष्टदृशं कुमारे ॥२१॥

अन्वयः—शस्त्रास्त्रविद्याव्यसनैकसक्ते गणैः एत्य सविस्मयैः (सद्भिः) सुदृष्टे स्फटिकाचलेन नीराज्यमाने कुमारे सानन्द निर्दिष्टदृशम् ।

संजी०—शस्त्रास्त्रेति ।। शस्त्राणि धनुरादीनि । अस्त्राणि मोहनादीनि । तान्येव विद्यास्तासामभ्यसन एवैकं केवलं सक्तेऽनुरक्ते । तथा गणैः प्रमथप्रभृतिभिरेत्य तत्समीपं प्राप्य सविस्मयैः साश्चर्यैः सद्भिः सुतरां दृष्टे । साभिलाषमवलोकित इत्यर्थः । तथा स्फटिकाचलेन कैलासेन । जङ्गमात्मकेन सतेति शेषः । नीराज्यमाने । आर्तिक्येनेति शेषः । एवंभूते कुमारे पुत्रे सानन्दं सामोदं निर्दिष्टा संनिहिता दृग्दृष्टिर्येन तम् । सानन्दतया कुमारमवलोकयन्तमित्यर्थः ।।२१।।

हिन्दी—शस्त्र और अस्त्र विद्यारूप व्यसन में लगे हुये गणों के द्वारा बारम्बार आकर विस्मय पूर्वक देखे जाते हुये तथा कैलास पर्वत द्वारा आरती किये जाते हुये इस प्रकार कुमार कार्त्तिकेय पर अपनी आनन्दमयी दृष्टि जमाये हुये शिवजी को देखा।

तथाविधं शैलसुताधिनाथं पुलोमपुत्रीदयितो निरीक्ष्य ।
आसीत्क्षणं क्षोभपरो नु कस्य मनो न हि क्षुभ्यति धामधाम्नि ।२२।

अन्वयः—पुलोमपुत्रीदयितः तथाविधम् शैलसुताधिनाथम् निरीक्ष्य क्षणम् क्षोभपरः आसीत् । नु हि धामधाम्नि कस्य मनः न क्षुभ्यति ।

संजी०—तथाविधमिति ।। पुलोमपुत्री पुलोमजा । शचीति यावत् । 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः । तस्या दयितः प्रियः पुरंदरः । तथाविधं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं शैलसुतायाः पार्वत्या अधिनाथं महेश्वरं निरीक्ष्य क्षणं मुहूर्तं क्षोभे चित्तसंचलने पर आसक्तः संचलनेन व्याकुल आसीत् । ननु महेश्वरदर्शनेन कथं व्याकुल आसीदित्यर्थान्तरं न्यस्यति—हि यतः । धामधाम्नि तेजोराशौ कस्य मनश्चेतो न क्षुभ्यति क्षोभं प्राप्नोति । अपि तु सर्वस्यापीत्यर्थः ।।२२।।

हिन्दी—इन्द्रदेव का मन इस प्रकार के शिवजी को देखकर क्षणमात्र के लिये चञ्चल हो व्यग्र हो उठा । भला तेजों की राशि के देखे जाने पर किसका मन चञ्चल नहीं होता ।

विकस्वराम्भोजवनश्रिया तं दृशां सहस्रेण निरीक्षमाणः ।
रोमालिभिः स्वर्गपतिर्बभासे पुष्पोत्कराकीर्ण इवाम्रशाखी ।।२३।।

अन्वयः—स्वर्गपतिः विकस्वराम्भोजवनश्रिया दृशां सहस्रेण तम् निरीक्षमाणः (सन्) रोमालिभिः पुष्पोत्कराकीर्णः आम्रशाखी इव बभासे ।

संजी०—विकस्वरेति ।। स्वर्गपतिर्महेन्द्रः विकस्वराणां प्रफुल्लानामम्भोजानां कमलानां वनस्य श्रीरिव श्रीः शोभा यस्य तथाभूतेन दृशां नेत्राणां

सहस्रेण तं महेश्वरं निरीक्षमाणो विलोकमानः सन्। रोम्णामालिभिः समूहै-र्निमित्तैः पुष्पाणामुत्करेण समूहेनाकीर्णं आसमन्ताद्व्याप्त आम्रशाख्याम्र-वृक्ष इव बभासे शुशुभे। उपमालंकारः ॥२३॥

हिन्दी—इन्द्रदेव प्रफुल्लित कमलवन के समान शोभित होने वाले अपने सहस्रों नेत्रों से शिवजी को देखते हुये रोमाञ्चित होने से इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे मञ्जरियों से लदे हुये आम्र वृक्ष सुशोभित होता है।

दृष्ट्वा सहस्रेण दृशां महेशमभूत्कृतार्थोऽतितरां महेन्द्रः।
सर्वाङ्गजातं तदथो विरूपमिव प्रियाकोपकरं विवेद ॥२४॥

अन्वयः—दृशां सहस्रेण महेशं दृष्ट्वा महेन्द्रः अतितरां कृतार्थः अभूत्। अथ तत् सर्वाङ्गजातं विरूपं प्रियाकोपकरम् इव विवेद।

संजी०—दृष्ट्वेति॥ दृशां सहस्रेण महेशं शिवं दृष्ट्वा महेन्द्र इन्द्रोऽतितरामतिशयं कृतार्थः कृतकृत्योऽभूत्। अथोऽनन्तरं तत्सर्वाङ्गजातं सर्वेष्व-ङ्गेषु भूतं विरूपं रोमाञ्चजनितवैरूप्यं प्रियायाः शच्याः कोपकरं क्रोधवि-धायीव विवेद जज्ञे। सपत्नीसंबन्धजनितत्वशङ्काकुलत्वादिति भावः ॥२४॥

हिन्दी—इन्द्र अपनी हजारों आँखों से शंकर जी को देखकर अपने को बहुत ही सौभाग्यशाली समझने लगे और अपने शरीर पर होने वाले रोमाञ्च का कारण सपत्नी की आशङ्का से इन्द्राणी द्वारा किये गये कोप को मानने लगे।

ततः कुमारं कनकाद्रिसारं पुरंदरः प्रेक्ष्य धृतास्त्रशस्त्रम्।
महेश्वरोपान्तिकवर्तमानं शत्रोर्जयाशां मनसा बबन्ध ॥२५॥

अन्वयः—ततः पुरन्दरः कनकाद्रिसारम् धृतास्त्रशस्त्रम् महेश्वरोपान्तिकवर्त्त-मानम् कुमारं प्रेक्ष्य शत्रोः जयाशाम् मनसा बबन्ध।

संजी०—तत इति॥ ततोऽनन्तरम्। पुरंदर इन्द्रः कनकाद्रेः सुमेरोः सार इव सारो वीर्यं यस्य तम्। महाबलीयांसमित्यर्थः। अत एव धृतान्य-स्त्राणि शस्त्राणि च येन तथा महेश्वरस्य पितुरुपान्तिके समीपे वर्तमानं तिष्ठन्तं कुमारं प्रेक्ष्य विलोक्य शत्रोस्तारकस्य जय आशां मनसा बबन्ध धृतवान्। एवंभूतोऽयं कुमारो मच्छत्रूञ्जेष्यत्येवेति पुरंदरस्य प्रतीतिर-भूदित्यर्थः ॥२५॥

हिन्दी—इसके पश्चात् इन्द्रदेव सुमेरु पर्वत के समान बलवान् समस्त अस्त्र-शस्त्रों को धारण किये हुये महेश्वर के सन्निधान में बैठे हुये कुमार कार्त्तिकेय को देखकर अपने मन में शत्रु पर विजय की आशा करने लगे।

अथ युग्मेनाह--

श्रीनीलकण्ठ द्युपतिः पुरोऽस्ति त्वयि प्रणामावसरं प्रतीच्छन् ।
सहस्रनेत्रेऽत्र भव त्रिनेत्र दृष्टया प्रसादप्रगुणो महेश ।।२६।।

इति प्रबद्धाञ्जलिरेत्य नन्दी निधाय कक्षामभि हेमवेत्रम् ।
प्रसादपात्रं पुरतो भविष्णुरथ स्मरारातिमुवाच वाचम् ।।२७।।

अन्वयः--अथ नन्दी पुरतः प्रसादपात्रं भविष्णुः एत्य (तथा) कक्षाम् अभि-हेमवेत्रं निधाय प्रबद्धाञ्जलिः (सन्) स्मरारातिम् (भोः) श्रीनीलण्ठद्युपतिः त्वयि प्रणामावसरम् प्रतीच्छन् पुरः अस्ति । (अतः) हे त्रिनेत्रः ! महेशः अत्र सहस्रोनेत्रे दृष्ट्या प्रसादगुणः भव इति वाचम् उवाच ।

संजी० श्रीति । इतीति ।। अथ नन्दी गणः पुरतः सर्वेभ्योऽग्रगामितयेन्द्राधिष्ठितकक्षामारभ्य महेश्वराधिश्रितमन्दिरपर्यन्तमहंपूर्विकया । बहुविधगणसुरगणावृते मध्यगतदेशेऽहंपूर्विकावलम्बेनेति तात्पर्यार्थः । प्रसादस्येन्द्रागमनिवेदनामुदन्धेनान्धकारिणा दत्तपारितोषिकरूपस्य पात्रं योग्यो भविष्णुर्भवितुमिच्छुः सन्नेत्य । अन्तरिति शेषः । तथा कक्षां द्वारमभि समुखं हेमवेत्रं सौवर्णयष्टिकां निधाय संस्थाप्य । इयं वेत्रधारिणो रीतिर्वर्णिता । प्रबद्धाञ्जलिः सन्स्मरारातिं महेश्वरम् । भोः श्रीयुक्तनीलकण्ठ सपार्वतीकमहेश्वर । द्युपतिरिन्द्रस्त्वयि भवति प्रणामावसरं प्रणतिसमयं प्रतीच्छन्प्रतीक्षमाणः पुरोऽग्रेऽस्ति विद्यते । महेश्वरप्रणिनंसुः सन्बहिरास्त इत्यर्थः । अतो हे त्रिनेत्र भो महेश, अत्र पुरोवर्तिनि सहस्रनेत्र इन्द्रे दृष्टचा दर्शनेन प्रसादप्रगुणः प्रसादविधानानुकूलो भव । आत्मीयदर्शनरूपं प्रसादं तदुपरि कुर्वित्यर्थः । इत्येवंभूतां वाचमुवाचोक्तवान् ।।२६-२७।।

हिन्दी--उसी समय नन्दीश्वर शिवजी के प्रसाद का पात्र होने की इच्छा से काँख में सुवर्णमय वेत्र को रखकर हाथ जोड़ शिवजी से बोले--हे नीलकण्ठ ! ये इन्द्रदेव आप को प्रणाम करने का अवसर जोहते हुये कब से खड़े हैं, अतः हे त्रिलोचन, हे महेश्वर ! इस सहस्रनेत्र वाले इन्द्र पर भी प्रसन्न हो जाइये ।

पुरा सुरेन्द्रं सुरसंघसेव्यं त्रिलोकसेव्यस्त्रिपुरासुरारिः ।
प्रीत्या सुधासारनिधारिणेव ततोऽनुजग्राह विलोकनेन ।।२८।।

अन्वयः—ततः त्रिलोकसेव्यः त्रिपुरासुरारिः सुरसङ्घसेव्यम् सुरेन्द्रम् पुरा प्रीत्या सुधासारनिर्धारणा इव विलोकनेन अनुअग्राह ।

संजी० –पुरेति ।। ततोऽनन्तरं निवेदनानन्तरं त्रिलोकसेव्यस्त्रैलोक्यपूजनीयस्त्रिपुरासुरस्यारिः शत्रुर्महेश्वरः सुरसंघेन देवसमूहेन सेव्यं पूज्यं

सुरेन्द्रमिन्द्रं पुरा प्रथमं प्रीतया निमित्तेन सुधासारम्। अमृततुल्यमित्यर्थः। निधारयति नितरां धारां धारारूपं करोति। 'तत्करोति' इति करोत्यर्थे णिच्। सुधासारधारां वर्षतेत्यर्थः। एवंभूतेनेव विलोकनेन दर्शनेनानुजग्राह। तदुपर्यनुग्रहमकार्षीदित्यर्थः। स्वामिनां प्रसादपूर्वकमवलोकनमेव भृत्यानामुपरि महाननुग्रह इति भावः ॥२८॥

हिन्दी—नन्दीश्वर की बात सुनकर त्रिपुरासुर को मारने वाले सदाशिव ने देवताओं के उपास्य इन्द्र को पहले की तरह प्रसन्न होकर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से देखकर अनुगृहीत किया।

किरीटकोटिच्युतपारिजातपुष्पोत्करेणानमितेन मूर्ध्ना।
स्वर्गैकवन्द्यो जगदेकवन्द्यं तं देवदेवं प्रणनाम देवः ॥२९॥

अन्वयः—स्वर्गैकवन्द्यः देवः आनमितेन किरीटकोटिच्युतपरिजात पुष्पोत्करेण मूर्ध्ना जगदेकवन्द्यम् तम् देवदेवम् प्रणनाम।

संजी०—किरीटेति ॥ स्वर्ग एवैकं केवलं वन्द्यो नमस्करणीयो देव इन्द्रः। आनमितेनात एव किरीटकोट्याश्च्युतोऽधःपतितः पारिजातपुष्पाणां मन्दारकुसुमानामुत्करः समूहो यस्मात्तथाभूतेन मूर्ध्ना शिरसा जगतामेकमेव वन्द्यं नमस्करणीयम्। एतत्सदृशो जगतां वन्द्यतयान्यो न विद्यत इत्यर्थः। तं देवदेवं महेश्वरं प्रणनाम नमश्चक्रे ॥ २९ ॥

हिन्दी—स्वर्ग में एक मात्र वन्दनीय इन्द्रदेव ने अपने झुके हुये किरीट कोटि में संलग्न पारिजात के पुष्पसमूहों को गिराते हुये शिर से जगदैकवन्द्य उन देवाधिदेव को प्रणाम किया।

अनेकलोकैकनमस्क्रियार्हं महेश्वरं तं त्रिदशेश्वरः सः।
भक्त्या नमस्कृत्य कृतार्थतायाः पात्रं पवित्रं परमं बभूव ॥३०॥

अन्वयः—सः त्रिदशेश्वरः अनेकलोकैकनमस्क्रियार्हम् तम् महेश्वरं भक्त्या नमस्कृत्य परमं पवित्रं कृतार्थतायाः पात्रं बभूव।

संजी०—अनेकेति ॥ स त्रिदशेश्वर इन्द्रो भक्त्या। भक्तिपूर्वकमित्यर्थः। अनेके त्रयो ये लोकास्तेषामेक एव नमस्क्रियायामर्हं उचितस्तथोक्तं तं महेश्वरं नमस्कृत्य। 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' इत्युक्तेर्द्वितीया। परममत्यन्तं पवित्रं विशदं कृतार्थतायाः कृतकृत्यत्वस्य पात्रं स्थानं बभूव। महेन्द्रो महेश्वरं प्रणम्य कृतकृत्योऽभूदित्यर्थः ॥ ३० ॥

हिन्दी—देवराज इन्द्र अनेक लोकों से प्रणम्य उन महेश्वर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने को परम पवित्र तथा धन्यातिधन्य मानने लगे।

सुभक्तिभाजामधि पादपीठं प्रान्तक्षितिं नम्रतरैः शिरोभिः ।
ततः प्रणेमुः पुरतो गणानां गणाः सुराणां क्रमतः पुरारिम् ॥३१॥

अन्वयः—ततः सुभक्तिभाजाम् सुराणां गणाः गणानाम् पुरतः पादपीठम् प्रान्ता-क्षितिम् अधि नम्रतरैः शिरोभिः पुरारिम् क्रमतः प्रणेमुः ।

संजी०—सुभक्तीति ॥ ततोऽनन्तरम् । सुभक्ति भजन्ति तेषाम् । 'भजो ण्विः' इति ण्विः । सुराणामिन्द्रातिरिक्तानां सुराणां गणाः । गणानां प्रमथ-प्रभृतीनां पुरतोऽग्रे । अनेन मर्यादातिरिक्तकरणस्य दुर्विधेयत्वमुक्तम् । पाद-पीठस्य चरणाधारपीठविशेषस्य प्रान्तक्षितिसमीपभूमिस्तामध्यधिकृत्य । आधारभूतां कृत्वेत्यर्थः । अत्राधिशब्देनाधिकरणमाधारः । स चौपश्लेषिकः । अव्ययानामाकृतिगणत्वादधिशब्दोऽत्राधिकरणपर्यायोऽव्ययम् । अन्यथामन्त-त्वमन्वेषणीयम् । नम्रतरैः शिरोभिः पुरारिं महेश्वरं क्रमतः क्रमेण प्रणेमु-र्नमश्चक्रुः ॥ ३१ ॥

हिन्दी—इसके पश्चात् भक्तिभावना से भरे देवतागणों ने भी शिवगणों के सामने उनके सिंहासन के पास की भूमि में अपने शिरों को झुका-झुकाकर भगवान् शंकर को प्रणाम किया ।

गणोपनीते प्रभुणोपदिष्टः शुभासने हेममये पुरस्तात् ।
प्रापोपविश्य प्रमुदं सुरेन्द्रः प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य ॥३२॥

अन्वयः—सुरेन्द्रः गणोपनीते हेममये शुभासने प्रभुणा उपदिष्टः पुरस्तात् उपविश्य प्रमुदम् प्राप । हि प्रभुप्रसादः कस्य न मुदे ।

संजी०—गणेति ॥ सुरेन्द्रः गणेन केनचिदुपनीते । प्रभुशासनेनेति शेषः । तथा हेममये सुवर्णमये शुभासने प्रभुणा हरेणोपदिष्ट आरोढुमाज्ञप्तः सन् । पुरस्तात्प्रभोरग्रत एवोपविश्य स्थित्वा प्रकृष्टां मुदं हर्षं प्राप । तथा हि । प्रभुप्रसादः प्रभुकर्तृकोऽनुग्रहः कस्यानुगस्य मुदे प्रीत्यै न भवति । अपि तु सर्वस्यापीति काक्वा व्याख्येयम् ॥ ३२ ॥

हिन्दी—तब इन्द्रदेव गण द्वारा लाये हुये सोने के सिंहासन पर शिव की आज्ञा से उनके सामने बैठ कर परम प्रसन्नता का अनुभव करने लगे । भला स्वामी द्वारा की जाने वाली कृपा किसके आनन्द का कारण नहीं बनती ।

क्रमेण चान्येऽपि विलोकनेन संभाविताः सस्मितमीश्वरेण ।
उपाविशंस्तोषविशेषमाप्ता दृग्गोचरे तस्य सुराः समग्राः ३३॥

अन्वयः—ईश्वरेण क्रमेण अन्ये अपि च समग्राः सुराः सस्मितम् (यथा स्यात्तथा) विलोकनेन संभाविताः । तोषविशेषम् आप्ताः तस्य दृग्गोचरे उपाविशन् ।

संजी०–क्रमेणेति ।। ईश्वरेण महेश्वरेण क्रमेणानुक्रमतोऽन्येऽपि च समग्राः सुराः सस्मितं सप्रसादव्यञ्जकहासं यथातथा विलोकनेन संभाविता आदृता अत एव तोषविशेषं संतोषाधिक्यमाप्ताः प्राप्ताः सन्तस्तस्य प्रभोर्दृग्गोचरे दृष्टिविषय उपाविशंस्तस्थुः । यथा युगपदेव भगवान्सर्वानवलोकयेत्तथैव सर्वे तस्थुरित्यर्थः ।। ३३ ।।

हिन्दी--इसी प्रकार उन शंकरजी ने भी मुस्कुराते हुये अपनी कृपामयी दृष्टि से अन्य देवताओं का भी बारी-बारी से सम्मान किया । फिर अत्यन्त संतुष्ट हुये वे देवगण उनके दृष्टि के सामने वैठ गये ।

अथाह देवो बलवैरिमुख्यान्गीर्वाणवर्गान्करुणार्द्रचेताः ।
कृताञ्जलीकानसुराभिभूतान्ध्वस्तश्रियः श्रान्तमुखानवेक्ष्य ।।३४।।

अन्वयः--अथ देवः बलवैरिमुख्यान् गीर्वाणवर्गान् असुराभिभूतान् ध्वस्तश्रियः श्रान्तमुखान् कृताञ्जलीकान् अवेक्ष्य करुणार्द्रचेताः प्राह ।

संजी०--अथेति ।। अथ देवो हरो बलवैरीन्द्रः स मुख्यो येषु तथाभूतान् गीर्वाणवर्गान्देवसमूहान् । असुरेण तारकेणाभिभूताञ्जितानत एव ध्वस्तश्रियो नष्टलक्ष्मीकानत एव श्रान्तं खिन्नं मुखं येषाम् । नष्टमुखतेजस इत्यर्थः । अत एव कष्टनिवृत्त्यर्थं कृतोऽञ्जलिर्यैस्तानवेक्ष्य दृष्ट्वा करुणयार्द्रं स्निग्धं चेतो यस्य तथाभूतः सन्नाहोवाच ।। ३४ ।।

हिन्दी—तब शंकर जी ने इन्द्रप्रमुख समस्त देववर्गों को राक्षस से पराभूत श्री के विध्वस्त हो जाने से मलिन मुखों वाले हाथ जोड़े उन देवताओं को देखकर करुणा से आर्द्रचित्त हो देवताओं से कहा ।

अहो बतानन्तपराक्रमाणां दिवौकसो वीरवरायुधानाम् ।
हिमोदबिन्दुग्लपितस्य किं वः पद्मस्य दैन्यं दधते मुखानि ।।३५।।

अन्वयः—अहो दिवौकसः अनन्तपराक्रमाणां वीरवरायुधानाम् वः मुखानि हिमोदविन्दुग्लपितस्य पद्मस्य दैन्यम् किं दधते ।

संजी०—अहो इति ।। अहोशब्दोऽत्र हेशब्दर्थायः । हे दिवौकसो देवाः, अनन्तपराक्रमाणामपारविक्रमाणाम् । तथा वीरान्वृणतेऽभिलषन्ति । वीरहस्तजिगमिषाशालीनीत्यर्थः । एवंभूतान्यायुधानि येषां तथाभूतानां वो युष्माकं मुखानि हिमस्य यदुदमुदकं तस्य यो बिन्दुस्तेन ग्लपितस्य क्षीणहर्षीकृतस्य । 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' इत्युदादेशः । तथाभूतस्य पद्मस्य दैन्यं दीनतां किं कुतो दधते बिभ्रति । यूयं कुतः कारणतो भ्रष्टलक्ष्मीका इति प्रश्नाशयः ।। ३५ ।।

हिन्दी--हे देवगणो ! अनन्तपराक्रम संपन्न श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वीरोचित आयुधों को धारण करने वाले आप लोगों का मुख पाले से झुलसे हुए कमल के समान इस प्रकार की दीनता से युक्त क्यों दिखाई पड़ रहा है ?

स्वर्गौकसः स्वर्गपरिच्युताः किं स्वपुण्यराशौ सुमहत्तमेऽपि ।
चिह्नं चिरोढं न तु यूयमेते निजाधिपत्यस्य परित्यजध्वम् ।।३६।।

अन्वयः—हे स्वर्गौकसः स्वपुण्यराशौ सुमहत्तमे अपि किम् स्वर्गपरिच्युताः एते यूयं चिरोढं निजाधिपत्यस्य चिह्नं तु न परित्यजध्वम् ।

संजी०—स्वर्गौकस इति ।। हे स्वर्गौकसः, स्वपुण्यराशौ स्वर्गप्राप्तिनिमित्तपुण्यव्रजे सुतरां महत्तमेऽपि । अक्षयेऽपीत्यर्थः । किं कुतः स्वर्गपरिच्युताः स्वस्थानभ्रष्टाः । भ्रंशे किं कारणमिति प्रश्नाशयः । अथ चाश्वासयति--एते यूयं चिरोढं बहुकालमूढं निजाधिपत्यस्य स्वीयस्वामितायाश्चिह्नं छत्रचामरादि तु न परित्यजध्वं मा परित्यजत । विध्यर्थे लोट् । त्यजध्वमित्यात्मनेपदं चिन्त्यम् ।। ३६ ।।

हिन्दी—हे देवगणो ! इतने महान् पुण्यराशि के होते हुए भी स्वर्ग से परिभ्रष्ट आप लोगों को बहुत दिनों से धारण किये गये छत्र, चँवर आदि अपने आधिपत्य के चिह्नों का परित्याग तो भला नहीं लगता ।

दिवौकसो देवगृहं विहाय मनुष्यसाधारणतामवाप्ताः ।
यूयं कुतः कारणतश्चरध्वं महीतले मानभृतो महान्तः ।।३७।।

अन्वयः—हे दिवौकसः महान्तः मानभृतः यूयं कुतः कारणतः देवगृहं विहाय मनुष्यसाधारणताम् अवाप्ताः महीतले चरध्वम् ।

संजी०--दिवौकस इति ।। हे दिवौकसः, महान्तोऽत एव मानभृतो मनस्विनो यूयं कुतः कारणतः कारणाद्देवगृहं स्वर्गं विहाय परित्यज्य मनुष्यसाधारणतां मानवसाम्यमवाप्ताः सन्तो महीतले चरध्वम् । संप्रश्ने लोट् । अत्राप्यात्मनेपदं चिन्त्यम् ।। ३७ ।।

हिन्दी—हे देवताओं, महामनस्वी एवं महामानी होते हुए भी आप लोग अपने-अपने देवगृहों का परित्याग कर किस कारण से साधारण मनुष्यों के समान पृथ्वी पर इस प्रकार से भटकते फिर रहे हैं ?

अनन्यसाधारणसिद्धमुच्चैस्तद्दैवतं धाम निकामरम्यम् ।
कस्मादकस्मान्निरगाद्भवद्भ्यश्चिरार्जितं पुण्यमिवापचारात् ।३८।

अन्वयः—अनन्यसाधारणसिद्धम् निकामरम्यम् उच्चैः तद् दैवतम् धाम अकस्मात् कस्माद् भवद्भ्यः अपचारात् चिरार्जितम् पुण्यम् इव निरगात् ।

संजी०—अनन्येति ।। हे देवाः, अन्यसाधारणेनान्यदीयदेशतुल्यत्वेन सिद्धं साधितम् । रचितमित्यर्थः । तन्न भवतीति तथोक्तमत एव निकामं बहु रम्यं मनोहरमुच्चैर्महत्तत्प्रसिद्धं दैवतं धाम स्वर्गमकस्मात्सहसैव कस्माद्धेतोः । भवद्भ्योऽपचारात्पापाद्धेतोश्चिरार्जितं बहुकालेन संपादितं पुण्यमिव निरगान्निर्गतम् । 'तुह्यांपासून स्थल कसें जातें राहिलें' इति लोकोक्तिरीतिरनुसंधेया ।। ३८ ।।

हिन्दी—अन्यों के द्वारा निर्माण न होने वाला अत्यन्त रमणीय और ऊँचाई पर रहने वाला आप देवताओं के निवास के योग्य वह स्वर्गधाम अचानक आप लोगों के किस अपराध से बहुत दिनों से अर्जित पुण्य के समान अधिकार से बाहर हो गया ?

दिवौकसो वो हृदयस्य कस्मात्तथाविधं धैर्यमहार्यमार्याः ।

अगादगाधस्य जलाशयस्य ग्रीष्मातितापादिवशादिवाम्भः ।।३९।।

अन्वयः—हे दिवौकसः हे आर्याः तथाविधम् अहार्यम् वः हृदयस्य धैर्यम् कस्मात् ग्रीष्मातितापादिवशात् अगाधस्य जलाशयस्य अम्भ इव अगात् ।

संजी०—दिवौकस इति ।। हे दिवौकसो हे आर्याः, तथाविधं तादृशमहार्यमनिर्वचनीयं वो युष्माकं हृदयस्य मनसो धैर्यं कस्माद्धेतोर्ग्रीष्मेण योऽतितापादिः संतापादिस्तस्य वशाद्धेतोः । अगाधस्य जलाशयस्याम्भ इव । अगादनशत् । अन्यत्र शुष्यतीत्यर्थः । धैर्यं न हेयमिति भावः ।। ३९ ।।

हिन्दी—हे देवताओं हे आर्यों ! आप लोगों का उस प्रकार कभी न त्यागा जाने वाला हृदय का धैर्य ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त गर्मी के कारण गहरे तालाब के जल की भाँति कैसे सूख गया ?

संप्रति स्वयमेव भयनिमित्तं दर्शयति—

सुराः सुराधीशपुरःसराणां समीयुषां वः सममातुराणाम् ।

तद्ब्रूत लोकत्रयजित्वरात्किं महासुरात्तारकतो विरुद्धम् ।।४०।।

अन्वयः—हे सुराः तत् आतुराणां समं समीयुषाम् सुराधीशपुरः सराणाम् वः लोकत्रयजित्वरात् तारकतः महासुरात् विरुद्धम् किम् (इति) ब्रूत ।

संजी०—सुरा इति ।। हे सुराः, तत्तस्मादातुराणामत एव समं सह समीयुषामागतानां तथा सुराधीशपुरः सराणामिन्द्रप्रमुखानां यो युष्माकं लोकत्रयजित्वरात्त्रैलोक्यजेतुस्तारकतस्तारकसंज्ञकान्महासुराद्विरुद्धं वैरं किम् । स भवतां वैरी किमिति प्रश्नः । ब्रूत वदत ।। ४० ।।

हिन्दी—हे देवताओं, तो इस प्रकार व्याकुल होकर एक साथ उपस्थित आप सभी इन्द्रादि देवताओं की क्या तीनों लोकों को जीत लेने वाले तारकासुर से शत्रुता तो नहीं हो गई है ?

पराभवं तस्य महासुरस्य निषेद्धुमेकोऽहमलंभविष्णुः ।
दावानलप्लोषविपत्तिमन्यो महाम्बुदात्किं हरते वनानाम् ।।४१।।

अन्वयः—(भो देवाः) महासुरस्य तस्य पराभवं निषेद्धुम् अहम् एकः अलम्भविष्णुः (तथाहि) वनानाम् दावाम् दावानलप्लोषविपत्तिम् महाम्बुदात् अन्यः हरते किम् ।

संजी०—पराभवमिति ।। भो देवाः, तस्य महासुरस्य तारकस्य तत्कर्तृकम् । 'कर्तृकर्मणोः' इति कर्तरि षष्ठी । पराभवं पराजयम् । अर्थाद्यौष्माकीणमित्यर्थः । निषेद्धुं निवारयितुमहमेक एवालंभविष्णुः । समर्थोऽस्मीत्यर्थः । तथा हि । वनानां संबन्धिनीं दावानलस्य दावानलकर्तृको यः प्लोषो दाहः सह एव विपत्तिस्तां महाम्बुदान्महतो मेघादन्योऽपरः । 'अन्यारात्–' इत्यादिना पञ्चमी । हरते किम् । अपि तु नैवेति काक्वा व्याख्येयम् ।। ४१ ।।

हिन्दी—हे देवगणो, तो उस महान् असुर से किये जाने वाले आप लोगों के पराजय को रोकने की शक्ति एकमात्र मुझमें ही है, भला दावाग्नि से जलते जंगलों की आग को बुझाने की शक्ति महान् बादलों के अतिरिक्त और किसमें संभव है ।

इतीरिते मन्मथमर्दनेन सुराः सुरेन्द्रप्रमुखा मुखेषु ।
सान्द्रप्रमोदाश्रुतरङ्गितेषु दधुः श्रियं सत्वरमाश्वसन्तः ।।४२।।

अन्वयः—मन्मथमर्द्दनेन इति ईरिते सुरेन्द्रप्रमुखाः सुराः आश्वसन्तः सान्द्रप्रमोदाश्रुतरंगितेषु सत्वरम् श्रियं दधुः ।

संजी०—इतीति ।। मन्मथमर्दनेन महेश्वरेण इतीत्थमीरित उक्ते सति सुरेन्द्रप्रमुखाः सुरा देवा आश्वसन्तो विश्वसन्तः सन्तः । उज्जीवन्त इति यावत् । सान्द्राणि सघनानि यानि प्रमोदाश्रूण्यानन्दबाष्पाणि तैस्तरङ्गितेषु तरङ्गयुक्तेषु मुखेषु सत्वरं शीघ्रम् । महेश्वरवाक्यस्यात्यानन्दहेतुत्वाच्छैघ्रयम् । श्रियं शोभां दधुर्बभ्रुः ।। ४२ ।।

हिन्दी—शंकर जी द्वारा इतना कहे जाने पर इन्द्रादि देवताओं को कुछ धीरज हुआ और मानो वे जी उठे और वे अत्यधिक आनन्द के अश्रुओं से तरंगित (परिपूर्ण) अपने मुखों पर शीघ्रता से शोभा धारण करने लगे ।

ततो गिरीशस्य गिरां विरामे जगाद लब्धेऽवसरे सुरेन्द्रः ।
भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुवं फलाविष्टमहोदयाय ।।४३।।

अन्वयः—ततः गिरीशस्य गिराम् विरामे लब्धे अवसरे सुरेन्द्र जगाद (तथा) हि अवसरे प्रयुक्ता वाचः ध्रुवम् फलाविष्टमहोदयाय भवन्ति ।

संजी०—तत इति ।। ततोऽनन्तरं गिरीशस्य हरस्य गिरां वाचां विरामे सति लब्धे प्राप्तेऽवसरे समये सुरेन्द्र इन्द्रो जगादोवाच । तथा हि । अवसरे काले प्रयुक्ताः प्रेरिताः । उक्ता इति यावत् । वाचो गिरः फलेनाविष्टः पूर्णो यो महोदयो महर्द्धिस्तस्मै तदर्थं भवन्ति ध्रुवम् । क्रियाग्रहणात्संप्रदानत्वम् । तादर्थ्ये वा चतुर्थी ।। ४३ ।।

हिन्दी—तदनन्तर भगवान् शंकर के चुप हो जाने पर उचित अवसर जान कर इन्द्रदेव ने कहना प्रारम्भ किया । क्योंकि उचित अवसर पर कही गई बात सफल तथा महोदय (महान् उन्नति) का कारण होती है ।

ज्ञानप्रदीपेन तमोपहेनाविनश्वरेणास्खलितप्रभेण ।
भूतं भवद्भावि च यच्च किंचित्सर्वज्ञ सर्वं तव गोचरं तत् ।।४४।।

अन्वयः—(हे) सर्वज्ञ तमोपहेन अविनश्वरेण अस्खलितप्रभेण ज्ञानदीपेन भूतं भवत् भावि च यत् किञ्चित् च सर्वं तव गोचरम् तत् (अस्ति)

संजी०—ज्ञानेति ।। हे सर्वज्ञ, तमोपहेनाज्ञानहन्त्राविनश्वरेणाक्षयेणास्खलितप्रभेणास्खलितकान्तिना । अनेन विशेषणेनामन्दकान्तित्वं हि बोद्धव्यम् । अतो न पौनरुक्त्यम् । तथाभूतेन ज्ञानप्रदीपेनात्मज्ञानरूपदीपकेन भूतं व्यतीतं भवद्वर्तमानं भावि भविष्यच्च यत्किंचित्तत्सर्वमेव तव गोचरं ज्ञानविषयम् । अस्तीत्यर्थः । आत्मज्ञानेन त्रैकालिकस्यापि कर्मादिकस्य ज्ञातासीति भावः ।।४४।।

हिन्दी—हे सर्वज्ञ ! आप अज्ञान को नष्ट करने वाले अक्षय तथा सत्य प्रकाश वाले अपने ज्ञानप्रदीप से अतीत, वर्त्तमान एवं भविष्य अथवा सब कुछ का आप प्रत्यक्ष करने वाले हैं ।

दुर्वारदोरुद्यमदुःसहेन यत्तारकेणामरघस्मरेण ।
तदीशतामाप्तवता निरस्ता वयं दिवोऽमी वद किं न वेत्सि ।।४५।।

अन्वयः—दुर्वारदोरुद्यम दुःसहेन (अतएव) अमरघस्मरेण ईशताम् आप्तवती यत् तारकेण अमी वयम् दिवः निरस्ताः न वेत्सि किम् (अपि तु) वद ।

संजी०—दुर्वारेति ।। हे भगवन्, दुर्वारो दुर्धर्षणीयो यो दोरुद्यमो भुजदण्डबलं तेन कारणेन दुःसहेनात एवामराणां देवानां घस्मरेण वधकेन ।

'घस्मरो वधकेऽपि च' इति मेदिनी। 'सृघस्यदः क्मरच्' इति क्मरच्प्रत्ययः। ईशतां स्वर्गाधीशतामाप्तवता तारकेणामी वयं दिवः स्वर्गसकाशान्निरस्ता निष्क्रामितास्तन्न वेत्सि किम्। अपि तु वेत्स्येव। वद। वाक्यार्थः कर्म ॥४५॥

हिन्दी—हे ईश! अपनी कठोर अविषह्य भुजाओं के पराक्रम से देवताओं का विनाश करने वाला वह तारकासुर स्वर्ग का मालिक बनकर हम देवताओं को वहाँ से निकाल दिया है। क्या आप इस बात को नहीं जानते, इसे आप ही कहिये।

विधेरमोघं स वरप्रसादमासाद्य सद्यस्त्रिजगज्जिगीषुः।
सुरानशेषानहकप्रमुख्यान्दोर्दण्डचण्डो मनुते तृणाय ॥४६॥

अन्वयः—(हे भगवन्) सः विधेः अमोघम् वरप्रसादम् आसाद्य सद्यः दोर्दण्डचण्डः त्रिजगत् जिगीषुः (सन्) अहकप्रमुखान् अशेषान् सुरान् तृणाय मन्यते।

संजी०—विधेरिति॥ हे भगवन्, स तारको विधेर्ब्रह्मणः सकाशादमोघं सफलं वरप्रसादमभिलाषानुग्रहम्। 'वरोऽभिलषिते वरे' इति मेदिनी। आसाद्य प्राप्य सद्यः सहसैव दोर्दण्डाभ्यां भुजदण्डाभ्यां चण्डः प्रचण्डः। दुर्जय इति यावत्। अत एव त्रिजगतां जिगीषुर्जेता सन्। अहकप्रमुख्यानहं प्रमुखो ज्येष्ठो येषु तथाभूतानशेषान्सर्वान्सुरान्। तृणाय तृणं मनुते मन्यते। 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाप्राणिषु' इति चतुर्थी सविकरणग्रहणात्तनोतियोगे चिन्त्या ॥४६॥

हिन्दी—हे भगवन्, वह तारकासुर ब्रह्मदेव का अमोघ वरदान प्राप्त कर तीनों लोकों के जीतने की इच्छा से मुझे तथा अन्य बड़े-बड़े देवताओं को तिनके के समान तुच्छ समझता है। क्या आप यह बात नहीं जानते?

स्तुत्या पुरास्माभिरुपासितेन पितामहेनेति निरूपितं नः।
सेनापतिः संयति दैत्यमेतं पुरः स्मराराातिसुतो निहन्ति ॥४७॥

अन्वयः—(हे भगवन्) पुरा अस्माभिः स्तुत्वा उपासितेन नः पितामहेन हे देवाः संयति स्मराराातिसुतः सेनापतिः एनम् दैत्यम् पुरः निहन्ति इति निरूपितम्।

संजी०—स्तुत्येति॥ हे भगवन्, पुरा पूर्वमस्माभिः स्तुत्या श्लाघयोपासितेनानुकूलितेन पितामहेन ब्रह्मणा नोऽस्मान् 'हे देवाः, संयति संगरे स्मराराातिसुतः शांकरिः सेनापतिः सेनानीः सन्नेतं दैत्यं पुरोऽग्रे निहन्ति। निहनिष्यतीत्यर्थः। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्'। इति निरूपितं कथितम् ॥४७॥

'घस्मरो वधकेऽपि च' इति मेदिनी। 'सृघस्यदः क्मरच्' इति क्मरच्प्रत्ययः। ईशतां स्वर्गाधीशतामाप्तवता तारकेणामी वयं दिवः स्वर्गसकाशाद्यन्निरस्ता निष्क्रामितास्तन्न वेत्सि किम्। अपि तु वेत्स्येव। वद। वाक्यार्थः कर्म ॥४५॥

हिन्दी—हे ईश ! अपनी कठोर अविषह्य भुजाओं के पराक्रम से देवताओं का विनाश करने वाला वह तारकासुर स्वर्ग का मालिक बनकर हम देवताओं को वहाँ से निकाल दिया है। क्या आप इस बात को नहीं जानते, इसे आप ही कहिये।

विधेरमोघं स वरप्रसादमासाद्य सद्यस्त्रिजगज्जिगीषुः।
सुरानशेषानहकप्रमुख्यान्दोर्दण्डचण्डो मनुते तृणाय ॥४६॥

अन्वयः—(हे भगवन्) सः विधेः अमोघम् वरप्रसादम् आसाद्य सद्यः दोर्दण्डचण्डः त्रिजगत् जिगीषुः (सन्) अहकप्रमुखान् अशेषान् सुरान् तृणाय मन्यते।

संजी०—विधेरिति॥ हे भगवन्, स तारको विधेर्ब्रह्मणः सकाशादमोघं सफलं वरप्रसादमभिलाषानुग्रहम्। 'वरोऽभिलषिते वरे' इति मेदिनी। आसाद्य प्राप्य सद्यः सहसैव दोर्दण्डाभ्यां भुजदण्डाभ्यां चण्डः प्रचण्डः। दुर्जय इति यावत्। अत एव त्रिजगतां जिगीषुर्जेता सन्। अहकप्रमुख्यानहं प्रमुखो ज्येष्ठो येषु तथाभूतानशेषान्सर्वान्सुरान्। तृणाय तृणं मनुते मन्यते। 'मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाप्राणिषु' इति चतुर्थी सविकरणग्रहणात्तनोतियोगे चिन्त्या ॥४६॥

हिन्दी—हे भगवन्, वह तारकासुर ब्रह्मदेव का अमोघ वरदान प्राप्त कर तीनों लोकों के जीतने की इच्छा से मुझे तथा अन्य बड़े-बड़े देवताओं कों तिनके के समान तुच्छ समझता है। क्या आप यह बात नहीं जानते ?

स्तुत्या पुरास्माभिरुपासितेन पितामहेनेति निरूपितं नः।
सेनापतिः संयति दैत्यमेतं पुरः स्मराराितसुतो निहन्ति ॥४७॥

अन्वयः—(हे भगवन्) पुरा अस्माभिः स्तुत्वा उपासितेन नः पितामहेन हे देवाः संयति स्मराराितसुतः सेनापतिः एनम् दैत्यम् पुरः निहन्ति इति निरूपितम्।

संजी०—स्तुत्येति॥ हे भगवन्, पुरा पूर्वमस्माभिः स्तुत्या श्लाघयोपासितेनानुकूलितेन पितामहेन ब्रह्मणा नोऽस्मान् 'हे देवाः, संयति संगरे स्मराराितसुतः शांकरिः सेनापतिः सेनानीः सन्नेतं दैत्यं पुरोऽग्रे निहन्ति। निहनिष्यतीत्यर्थः। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्'। इति निरूपितं कथितम् ॥४७॥

हिन्दी--हे भगवन् ! पूर्वकाल में हम लोगों ने ब्रह्मदेव की स्तुति कर उन्हें उपासना द्वारा प्रसन्न किया। तब उन्होंने कहा—हे देवगणों युद्ध में इस तारकासुर का बध शंकर का लड़का सेनापति बनकर आगे चलकर भविष्य में करेगा।

अहो ततोऽनन्तरमद्ययावत्सुदुःसहां तस्य पराभवार्तिम् ।
विषेहिरे हन्त हृदन्तशल्यमाज्ञानिवेशं त्रिदिवौकसोऽमी ॥४८॥

अन्वयः--अहो ! ततः अनन्तरम् अद्य यावत् अमी त्रिदिवौकसः सुद्धः सहाम्, तस्य पराभवार्त्ति हृदन्तशल्यम् आज्ञानिवेशम् विषेहिरे हन्त !

संजी०--अहो इति ॥ अहो भगवन्, ततः पितामहनिरूपणादनन्तरमद्ययावदद्यपर्यन्तममी त्रिदिवौकसो देवाः सदुःसहाम्। 'ईषद्दुःसुषु-' इति खल्। तस्य तत्कर्तृकां पराभवेन निमित्तेनार्ति पीडां हृदन्ते मनोमध्ये शल्यं तद्वद्दुःसहमाज्ञाया अनुशासनस्य 'भारं वहत' इत्यादिकस्य निवेशं स्थापनं विषेहिरेऽसहन्त। हन्तेति दुःखे ॥४८॥

हिन्दी--ओह ! पितामह के ऐसे कहने के बाद तब से लेकर आज तक हम देवताओं से अत्यन्त दुःसह उस दैत्य से पराभव की पीड़ा तथा हृदय में चुभ जाने वाली उसकी आज्ञा का भार ढोते हुए सब कुछ सह रहे हैं, यह बड़े खेद की बात है।

निदाघधामक्लमविक्लवानां नवीनमम्भोदमिवौषधीनाम् ।
सुनन्दनं नन्दनमात्मनो नः सेनान्यमेतं स्वयमादिश त्वम् ॥४९॥

अन्वयः—त्वम् स्वयं निदाघधामक्लमविक्लवानाम् ओषधीनां सुनन्दनम् नवीनं अम्भोदं इव नः नन्दनं आत्मनः सेनान्यम् एतं (नन्दनं) आदिश।

संजी०--निदाघेति ॥ हे भगवन्, त्वं स्वयमेव निदाघे ग्रीष्मे यद्धाम सौरं तेजस्तेन यः क्लमः खेदो दाहलक्षणस्तेन विक्लवानां मलिनानामौषधीनां सुतरां नन्दनमानन्दकारिणं नवीनमाषाढीयमम्भोदमिव नोऽस्माकं नन्दनमानन्दकारिणं तथा सेनान्यं सेनाधिपतिमेतं पुरोवर्तिनमात्मनो नन्दनं पुत्रम्। नन्द्यादित्वाल्युः। युवोरित्यनादेशः। आदिशानुशाधि। प्रार्थनायां लोट्। अस्मत्कार्यं कर्तुमिति शेषः ॥४९॥

हिन्दी—हे प्रभो जिस प्रकार गर्मी के तपन से जलती हुई औषधियों का आषाढ़मासीय नवीन बादल ताप हरकर उसे हरा-भरा बना देता है उसी प्रकार हम लोगों को आनन्द देने वाले इस अपने बालक को हम लोगों की कार्यसिद्धि हेतु सेनापति बनने का आप आदेश प्रदान करें।

त्रैलोक्यलक्ष्मीहृदयैकशल्यं समूलमुत्खाय महासुरं तम् ।
अस्माकमेषां पुरतो भवन्सन्दुःखापहारं युधि यो विधत्ते ॥५०॥

अन्वयः—यः त्रैलोक्य लक्ष्मी हृदयैकशल्यम् तम् महासुरम् युधि 'एषाम् अस्माकं पुरतः भवन् (सन्) समूलम् उत्खाय दुःखापहारं विधत्ते ।

संजी० – त्रैलोक्येति ।। यो भवन्नन्दनस्त्रैलोक्यस्य लक्ष्म्या हृदय एकमद्वितीयं शल्यं तद्वद्दुर्धर्षं तं महासुरं तारकं युधि संगर एषामस्माकं पुरतोऽग्रे भवन्सन् । अग्रे भूत्वेत्यर्थः । समूलं सकुटुम्बपरिवारमुत्खाय निहत्य दुःखापहारं दुःखविनाशं विधत्ते कुरुते । त्वन्नन्दनं विनास्माकं दुःखसमूहः केन निवार्यंत इति भावः ।।५०।।

हिन्दी--यह आपका बालक युद्ध में हम लोगों का सेनापति बनकर तीनों लोकों के राज्यलक्ष्मी के हृदय में काँटे के समान चुभने वाले इस तारकासुर को समूल नष्ट कर हम लोगों के दुःख को दूर कर देने में समर्थ है ।

महाहवे नाथ तवास्य सूनोः शस्त्रैः शितैः कृत्तशिरोधराणम् ।
महासुराणां रमणीविलापैर्दिशो दशैता मुखरीभवन्तु ।।५१।।

अन्वयः--(हे नाथ) महाहवे अस्य तव सूनोः शितैः शस्त्रैः कृत्तशिरोधराणां महासुराणाम् रमणीविलापैः एता दश दिशः मुखरीभवन्तु ।

संजी०--महाहव इति ।। हे नाथ, महाहवे महति सङ्ग्रामेऽस्य पुरोवर्तिनस्तव सूनोः पुत्रस्य शितैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैः करवालादिभिः कृत्तशिरोधराणां कर्तितग्रीवाणां महासुराणां दैत्यानां तारकपक्षाश्रयिणां विलापैर्वैधव्यप्रयुक्तप्रलापैरेता दश दिशो मुखरीभवन्तु वावदूका भवन्तु । 'मुखरो वावदूकेऽपि' इति मेदिनी । 'खमुखकुञ्जेभ्यो रः' इति रप्रत्ययः ।।५१।।

हिन्दी—हे नाथ, उस महायुद्ध में पुरोवर्त्ती आपके इस पुत्र के तीखे शस्त्रों से कटे हुए शिरों वाले इन महान्-महान् असुरों की विधवा स्त्रियों के विलाप से दिशायें गूंज जावें ।

महारणक्षोणिपशूपहारीकृतेऽसुरे तत्र तवात्मजेन ।
बन्दिस्थितानां सुदृशां करोतु वेणिप्रमोक्षं सुरलोक एषः ।।५२।।

अन्वयः—तत्र असुरे तव आत्मजेन महारणक्षोणिपशूपहारीकृते एषः सुरलोकः वन्दिस्थितानाम् सुदृशाम् वेणीप्रमोक्षं करोतु ।

संजी०—महेति ।। हे भगवन्, तत्रासुरे तारके तवात्मजेन पुत्रेण महती या । रणक्षोणिः संग्रामभूमिस्तत्र ये पशवः क्रोष्ट्र्यादयस्तेषामुपहारीकृत उपदीकृते सति । 'उपहारश्चोपदायाम्' इति मेदिनी । एष सुरलोको बन्दिर्बन्धनागारं तत्र स्थितानां सुदृशां स्वरमणीनां वेणिप्रमोक्षं वेणीमोचनं करोतु ।।५२।।

हिन्दी—हे नाथ: इस युद्ध में जब आपका पुत्र इस तारकासुर को महारण में विचरण करने वाले पृथ्वी के शृगालादि पशुओं को बलि चढ़ा देगा तब ये देवतागण अपनी बन्दी बनी हुई सुन्दर स्त्रियों की वेणी का मोक्षण करने में समर्थ होंगे।

इत्थं सुरेन्द्रे वदति स्मरारिः सुरारिदुश्चेष्टितजातरोषः।
कृतानुकम्पस्त्रिदशेषु तेषु भूयोऽपि भूताधिपतिर्बभाषे ॥५३॥

अन्वयः—सुरेन्द्रे इत्थं वदति सुरारिदुश्चेष्टितजातरोषः स्मरारिः भूताधिपतिः तेषु कृतानुकम्पः भूयः अपि बभाषे।

संजी०—इत्थमिति ॥ सुरेन्द्रे महेन्द्र इत्थं वदति सति सुरारिस्तारकस्तस्य दुश्चेष्टितमपराधजनकश्चेष्टाविशेषस्तेन हेतुना जातरोष उत्पन्नामर्षः स्मरारिर्भूतानामधिपतिर्हरः। तेषु त्रिदशेषु कृतानुकम्पो विहितदयः सन्। 'कृपा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। भूयोऽपि पुनरपि बभाष उवाच ॥५३॥

हिन्दी—इन्द्र के इस प्रकार कह लेने पर भगवान् तारकासुर के द्वारा किये गये अत्याचारों पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, फिर उन देवताओं पर कृपा करते हुए उन्होंने कहा—

अहो अहो देवगणाः सुरेन्द्रमुख्याः शृणुध्वं वचनं ममैते।
विचेष्टते शंकर एष देवः कार्याय सज्जो भवतां सुताद्यैः ॥५४॥

अन्वयः—अहो! अहो! (हे) देवगणाः सुरेन्द्रमुख्याः एते मम वचनं शृणुध्वम्। एषः शंकरः देवः सुताद्यैः भवतां कार्याय सज्जः विचेष्टते।

संजी०—अहो इति ॥ अहो अहो इति संबोधने। संभ्रमे द्विरुक्तिः। हे देवगणाः, सुरेन्द्रमुख्याः पुरंदरप्रधाना एते यूयं मम वचनं शृणुध्वं शृणुत। तदेव सार्धद्वय्येनाह—एष शंकरो देवः सुताद्यैः पुत्रप्रभृतिभिः। पुत्रपौत्रादिभिरित्यर्थः। भवतां युष्माकं कार्याय। कार्यं कर्तुमित्यर्थः। 'क्रियार्थ-' इत्यादिना चतुर्थी। सज्जः सिद्धो विचेष्टते। वर्तत इत्यर्थः। मम पुत्रपौत्रजनकतायामपि भवत्कार्यमेव बीजमिति भावः ॥५४॥

हिन्दी—ओः ओः! हे इन्द्रादि प्रमुख ये देवता लोग हमारी बातों को सुने, अब मैं शंकर देवता अपने पुत्रादिकों के साथ आप लोगों का कार्य सिद्ध करने के लिए तैयार होकर बैठा हूँ।

पुरा मयाकारि गिरीन्द्रपुत्र्याः प्रतिग्रहोऽयं नियतात्मनापि।
तत्रैष हेतुः खलु तद्भवेन वीरेण यद्वध्यत एव शत्रुः ॥५५॥

अन्वयः--पुरा नियतात्मना अपि मया गिरीन्द्रपुत्र्याः अयम् प्रतिग्रहः अकारि, तत्र एषः हेतुः खलु यत् एषः शत्रुः तद् भवेन वीरेण वध्यते एव ।

संजी०—पुरेति ॥ हे देवाः, पुरा पूर्वं नियतात्मनापि योगिनापि मया गिरीन्द्रपुत्र्या अयं प्रतिग्रह आदानम् । परिणयनमित्यर्थः । यदकारि कृतः । तत्रैष हेतुर्निमित्तम् । खलु निश्चितम् । यद्यस्मादेष शत्रुस्तारकसंज्ञकस्तद्भवेन पार्वतीजन्मना वीरेण वध्यते हन्यते । अतस्तद्भवार्थं पार्वतीपरिग्रहः कृत इति भावः । अतोऽहं भवतामुपालम्भपात्रं नेति श्लोकतात्पर्यम् ॥५५॥

हिन्दी—पूर्व काल में आत्मसंयमद्वारा समाधि लगाकर मैंने पार्वती जी के साथ जो यह विवाह किया था वह केवल इसीलिये कि उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र इस तारकासुर जैसे शत्रु का वध कर सके ।

अत्रोपपन्नं तदमी नियुज्य कुमारमेनं पृतनापतित्वे ।
निघ्नन्तु शत्रुं सुरलोकमेष भुनक्तु भूयोऽपि सुरैः सहेन्द्रः ॥५६॥

अन्वयः—तत् अमी अत्र उपपन्नम् (तथाभूतम्) एनं कुमारम् पृतनापतित्वे नियुज्य शत्रुम् निघ्नन्तु एषः इन्द्रः सुरैः सह भूयः अपि सुरलोकं भुनक्तु ।

संजी०—अत्रेति ॥ तत्तस्मादमी भवन्तोऽत्र भवत्कार्य उपपन्नं युक्तम् । योग्यमित्यर्थः । तथाभूतमेनं कुमारं पृतनापतित्वे सैनापत्ये नियुज्य नियुक्तं कृत्वा शत्रुं तारकं निघ्नन्तु । एतत्साहाय्येन भवन्तस्तारकं मारयन्त्विति भावः । अत एष इन्द्रः सुरेन्द्रः सुरैः सह भूयोऽपि पुनरपि सुरलोकं स्वर्गं भुनक्तु पालयतु । आशिषि लोट् ॥५६॥

हिन्दी—इसलिए आप लोग अपने कार्य के योग्य इस कुमार को अपनी सेना का सेनापति बनाकर इस तारकासुर का वध कीजिये जिससे ये इन्द्रदेव सभी देवताओं के साथ पुनः स्वर्ग का पालन करें ।

इत्युदीर्य भगवांस्तमात्मजं घोरसंगरमहोत्सवोत्सुकम् ।
नन्दनं हि जहि देवविद्विषं संयतीति निजगाद शंकरः ॥५७॥

अन्वयः--शंकरः भगवान् इति उदीर्य घोरसङ्गरमहोत्सवोत्सुकं नन्दनम् तम् आत्मजं हे) पुत्र संयति देवविद्विषं जहि इति निजगाद ।

संजी०—इतीति ॥ शंकरः शंकरसंज्ञको भगवानिति पूर्वोक्तमुदीर्योच्चार्य घोरो भीमः । 'घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः । यः संगरः सङ्ग्रामः स एव महोत्सवो महानानन्दस्तत्रोत्सुकमुत्कण्ठितमत एव नन्दनमानन्दकरम् । 'नन्दिग्रहि-' इति ल्युः । तमात्मजं कुमारम् 'हे पुत्र, संयति सङ्ग्रामे देवा-

नामिन्द्रादीनां विद्विषं विशेषेण द्वेष्टारं तारकं जहि' । 'हन्तेर्जः' इति हनो जादेशः । इति निजगादोक्तवान्हि । रथोद्धतावृत्तम् ॥५७॥

हिन्दी—इसके बाद भगवान् शंकर ने भयंकर युद्ध रूपी महोत्सव के लिए उत्सुक आनन्द देने वाले अपने पुत्र कार्त्तिकेय से कहा, 'हे पुत्र अब तुम देवशत्रु विशेषकर इस तारकासुर का वध करो ।

शासनं पशुपतेः स कुमारः स्वीचकार शिरसावनतेन ।
सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेष एव परमः खलु धर्मः ॥५८॥

अन्वयः—सः कुमारः पशुपतेः शासनम् अवनतेन शिरसा स्वीचकार । सर्वथा एव पितृभक्तिरतानाम् खलु एष एव परमः धर्मः ।

संजी०—शासनमिति ॥ स कुमारः कार्तिकेयः पशुपतेः पितुर्हरस्य शासनमाज्ञामवनतेन नम्रीकृतेन शिरसा स्वीचकार । स्वीयां चकारेत्यर्थः । 'कृभ्वस्तियोगे' इति च्विः । 'अस्य च्वौ' इतीकारः । 'च्वौ च' इति दीर्घः । तथाहि । सर्वथैव सर्वप्रकारेणैव पितृभक्तौ जनकश्रद्धायां रतानां सक्तानां खल्वेष एव परमो धर्मः । यदाज्ञां झटित्येव स्वीकुर्वन्तीति । स्वागता-वृत्तम् ॥५८॥

हिन्दी—कुमार कार्त्तिकेय ने अपने पिता पशुपति की आज्ञा सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया क्योंकि पितृभक्त पुत्रों का धर्म ही यही है कि वे सर्वदा अपने पिता की आज्ञा का पालन करें ।

असुरयुद्धविधौ विबुधेश्वरे पशुपतौ वदतीति तमात्मजम् ।
गिरिजया मुमुदे सुतविक्रमे सति न नन्दति का खलु वीरसूः ॥५९॥

अन्वयः—विबुधेश्वरे पशुपतौ असुरयुद्ध विधौ तम् आत्मजम् इति वदति गिरजया मुमुदे । खलु सुतविक्रमे सति कः वीरसूः न नन्दति ।

संजी०—असुरेति ॥ विबुधेश्वरे सकलदेवस्वामिनि पशुपतौ हरे । असुरस्य तारकस्य यो युद्धविधिः सङ्ग्रामकरणं तत्र । उक्तमिति शेषः । तमात्मजं पुत्रमिति वदति सति । गिरिजया पार्वत्या मुमुदे प्रसेदे । तथा हि । खलु निश्चये । सुतविक्रमे पुत्रपराक्रमे सति का वीरसूर्वीरप्रसूतिः स्त्री न नन्दति । अपि तु सर्वापि नन्दतीत्यर्थः । पुत्रविषये पराक्रमसत्तैव परममुत्कारणं वीरसूनां भवतीति भावः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम्—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणम् ॥५९॥

हिन्दी—विबुधाधिपति शंकर जो अपने पुत्र कार्त्तिकेय को जब राक्षसों से युद्ध

करने की विधि बताने लगे तब पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं। क्योंकि ऐसी कौन वीरप्रसविनी माता होगी जो अपने पुत्र की वीरता पर प्रसन्न न हो।

सुपरिवृढः प्रौढं वीरं कुमारमुमापते-
र्बलवदमरारातिस्त्रीणां दृगञ्जनभञ्जनम्।
जगदभयदं सद्यः प्राप्य प्रमोदपरोऽभव-
दभिमतभिमते पूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति ॥६०॥

अन्वयः – सुरपरिवृढः प्रौढम् वीरम् बलवदमराराति स्त्रीणाम् दृगञ्जन भञ्जनं जगदभयदम् उमापतेः कुमारम् प्राप्य सद्यः प्रमोदपरः अभवत्। (तथा हि) अभिमते पूर्वे सति मुदा कः वा न माद्यति।

संजी०--सुरेति ॥ सुराणां परिवृढः परिशास्तेन्द्रः। 'वृहू हिंसायाम्'। कर्तरि क्तः। प्रौढमतिशयं वीरं पराक्रमशालिनं बलवान्योऽमरारातिस्तारकासुरस्तस्य स्त्रीणां दृगञ्जनस्य दृष्टिकज्जलस्य भञ्जनं भञ्जकम्। कर्तरि ल्युट्। मृतभर्तृकतया कज्जलधारणस्यानुचितत्वादिति भावः। अत एव जगद्भ्योऽभयदमभयदातारमुमापतेर्हरस्य कुमारं पुत्रं प्राप्य सद्यः सहसा प्रमोदे प्रकृष्टोन्मोदे। पर आसक्तोऽभवज्जातः। तथा हि। अभिमते मनोरथे पूर्णे सति मुदा प्रीतया निमित्तेन को वा न माद्यति। अपि तु सर्व एवोन्मत्तो भवतीत्यर्थः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः। इदं हरिणीच्छन्दः—'रसयुगहयैन्सौ म्नौ लो गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात् ॥५०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीतारामकवि-
विरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये कुमारसैनापत्यवर्णनं
नाम द्वादशः सर्गः ॥

हिन्दी—देवताओं पर शासन करने वाले इन्द्रदेव अतिशय पराक्रमशाली महावीर राक्षसपत्नियों की आँखों का काजल मिटाने वाले तथा संसार को अभय प्रदान करने वाले शिवजी के उस कुमार को प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये। क्योंकि अभिलाषा के पूर्ण हो जाने पर ऐसा कौन है जो आनन्द से मतवाला न हो जाय।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के द्वादश सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

करने की विधि बताने लगे तब पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं। क्योंकि ऐसी कौन वीरप्रसविनी माता होगी जो अपने पुत्र की वीरता पर प्रसन्न न हो।

सुपरिवृढः प्रौढं वीरं कुमारमुमापते-
र्बलवदमराराातिस्त्रीणां दृगञ्जनभञ्जनम्।
जगदभयदं सद्यः प्राप्य प्रमोदपरोऽभव-
द्भुवमभिमते पूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति ॥६०॥

अन्वयः - सुरपरिवृढः प्रौढम् वीरम् बलवदमराराति स्त्रीणाम् दृगञ्जन भञ्जनं जगदभयदम् उमापतेः कुमारम् प्राप्य सद्यः प्रमोदपरः अभवत्। (तथा हि) अभिमते पूर्वे सति मुदा कः वा न माद्यति।

संजी०--सुरेति॥ सुराणां परिवृढः परिशास्तेन्द्रः। 'वृहू हिंसायाम्'। कर्तरि क्तः। प्रौढमतिशयं वीरं पराक्रमशालिनं बलवान्योऽमराराातिस्तारकासुरस्तस्य स्त्रीणां दृगञ्जनस्य दृष्टिकज्जलस्य भञ्जनं भञ्जकम्। कर्तरि ल्युट्। मृतभर्तृकतया कज्जलधारणस्यानुचितत्वादिति भावः। अत एव जगद्भ्योऽभयदमभयदातारमुमापतेर्हरस्य कुमारं पुत्रं प्राप्य सद्यः सहसा प्रमोदे प्रकृष्टोन्मोदे। पर आसक्तोऽभवज्जातः। तथा हि। अभिमते मनोरथे पूर्णे सति मुदा प्रीतया निमित्तेन को वा न माद्यति। अपि तु सर्व एवोन्मत्तो भवतीत्यर्थः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलंकारः। इदं हरिणीच्छन्दः—'रसयुगहयैन्सौ म्नौ लो गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात्॥५०॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीतारामकवि-
विरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदास-
कृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये कुमारसैनापत्यवर्णनं
नाम द्वादशः सर्गः॥

हिन्दी—देवताओं पर शासन करने वाले इन्द्रदेव अतिशय पराक्रमशाली महावीर राक्षसपत्नियों की आँखों का काजल मिटाने वाले तथा संसार को अभय प्रदान करने वाले शिवजी के उस कुमार को प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये। क्योंकि अभिलाषा के पूर्ण हो जाने पर ऐसा कौन है जो आनन्द से मतवाला न हो जाय।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदासकृत कुमारसम्भव महाकाव्य के द्वादश सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीयकृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥ १२॥

त्रयोदशः सर्गः

प्रस्थानकालोचितचारुवेषः स स्वर्गिवर्गैरनुगम्यमानः ।
ततः कुमारः शिरसा नतेन त्रैलोक्यभर्तुः प्रणनाम पादौ ॥१॥

अन्वयः — ततः स कुमारः प्रस्थानकालोचितचारुवेषः स्वर्गिवर्गैः अनुगम्यमानः (सन्) नतेन शिरसा त्रैलोक्यभर्तुः पादौ प्रणनाम ।

संजी०—प्रस्थानेति ॥ ततोऽनन्तरं स कुमारः कार्तिकेयः प्रस्थानकाल उचितो योग्यश्चारुश्च वेषो यस्य । तथा स्वर्गिवर्गैरिन्द्रादिदेवगणैरनुगम्यमानः सन् । नतेन शिरसा त्रैलोक्यभर्तुः शिवस्य पादौ प्रणनाम नमश्चक्रे । 'उपसर्गादसमासेऽपि' इति णत्वम् ॥१॥

हिन्दी—इसके पश्चात उस कुमार ने प्रस्थानकालोचित मनोहर वेष धारण किये देवगणों से आगे स्थित हो सिर झुकाकर तीनों लोकों के स्वामी भगवान् शंकर के चरणों में प्रणाम किया ।

जहीन्द्रशत्रुं समरेऽमरेशपदं स्थिरत्वं नय वीर वत्स ।
इत्याशिषा तं प्रणमन्तमीशो मूर्धन्युपाघ्राय मुदाभ्यनन्दत् ॥२॥

अन्वयः—प्रणमन्तं तम् ईशः मुदा मूर्धनि उपाघ्राय (हे) वीर (हे) वत्स समरे इन्द्रशत्रुं जहि, अथ अमरेशपदम् स्थिरत्वम् नय । इति आशिषा अभ्यनन्दत् ।

संजी०—जहीति ॥ प्रणमन्तं नमस्कुर्वन्तं तं कुमारमीशो हरो मुदा प्रीत्या मूर्धन्युपाघ्राय गन्धमुपादाय 'हे वीर हे वत्स, समरे युधीन्द्रशत्रुं तारकं जहि मारय । अथामरेशपदमिन्द्रपदं स्वर्गं स्थिरत्वं स्थैर्यं नय प्रापय' । उपयत्राप्याशिषि लोट् । इत्येवंभूतयाशिषाशीर्वादेनाभ्यनन्ददस्तौषीत् ॥२॥

हिन्दी—शंकर जी ने प्रणाम करते हुए पुत्र के मस्तक को प्रसन्नता से सूँघ कर हे वीर ! हे मेरे प्यारे लाल ! तुम युद्ध में इन्द्र के शत्रु तारकासुर का बध करो और इन्द्र के पद को पुनः स्थिर करो ।

प्रह्वीभवन्नम्रतरेण मूर्ध्ना नमश्चकाराङ्घ्रियुगं स्वमातुः ।
तस्या प्रमोदाश्रुपयः प्रवृष्टिस्तस्याभवद्वीरवराभिषेकः ॥३॥

अन्वयः – सः कुमारः प्रह्वीभवन् सन् नम्रतरेण मूर्ध्ना स्वमातुः अङ्घ्रियुगम् नमश्चकार तस्याः प्रमोदाश्रुपयः प्रवृष्टिः तस्य वीरवराभिषेकः अभवत् ।

संजी०--प्रह्वीति ।। स कुमारः प्रह्वीभवन्नम्रीभवन्सन्नन्तरेण मूर्ध्ना। अत्र प्रह्वीभवन्नत्यनेनैव मूर्ध्नो नम्रत्वे सिद्धे पुनर्विशेषणोपादानं सामान्यतोऽन्येषामङ्गानां नम्रत्वोक्त्यपेक्षया मूर्ध्नि क्रियातिशयद्योतनार्थम्। पुनरुपादानेन तरब्ग्रहणलिङ्गाच्च। स्वमातुरङ्घ्रियुगं चरणद्वन्द्वं नमश्चकार। तास्याः पार्वत्याः संबन्धीनि यानि प्रमोदाश्रुपयांसि तेषां प्रवृष्टिर्वर्षणं तस्य कुमारस्य वीरेषु वरस्य श्रेयसः। सेनापतेरित्यर्थः। तस्याभिषेक इव योऽभिषेकः सोऽभवत्। तस्य यादृगभिषेको भवति स मात्राश्रुपयोवृष्टिरा शिरश्चरणनखपर्यन्तं प्लावयन्त्यभूदिति भावः ।।३।।

हिन्दी—तदनन्तर उस कुमार ने सिर झुकाकर अपनी माता पार्वती के दोनों चरणों में प्रणाम किया। उस समय माता की आँखों से झरने वाले आनन्दाश्रु के जलों की वृष्टि ने उस वीरवर का सेनापति के पद पर मानों अभिषेक कर दिया।

तमङ्कमारोप्य सुता हिमाद्रेराश्लिष्य गाढं सुतवत्सला सा।
शिरस्युपाघ्राय जगाद शत्रुं जित्वा कृतार्थीकुरु वीरसूं माम् ।।४।।

अन्वयः—सुतवत्सला सा हिमाद्रेः सुता तम् अंकम् आरोप्य गाढम् (यथा स्यात्तथा) आश्लिष्य (तथा) शिरसि उपाघ्राय (हे वत्स त्वम्) शत्रुम् जित्वा वीरसूं मां कृतार्थीकुरु (इति) जगाद।

संजी०--तमिति ।। सुते पुत्रे वत्सला कृपावती सा हिमाद्रेः सुता पार्वती तं पुत्रम्। अस्य ल्यबन्तत्रयेण संबन्धो विधेयः। अङ्कमुत्सङ्गम्। 'अङ्को रूपकभेदाङ्कचिह्ने रेखाजिभूषणे। रूपकाण्डान्तिकोत्सङ्गस्थानेऽङ्कं पापदुःखयोः' इति मेदिनी। आरोप्य संस्थाप्य। तथा गाढं दृढं यथा तथा। 'प्रगाढः कृच्छ्रदृढयोः' इति मेदिनी। प्रेति त्रित्वसंघातनिवेशनायैव। एवं विना तदलाभात्। आश्लिष्यालिङ्ग्य। तथा शिरस्युपाघ्राय च। 'हे वत्स, त्वं शत्रुं तारकं जित्वा वीरं सूते सा वीरसूस्तथोक्तां मां कृतार्थीकुरु' इति जगाद। एवंविधे महति कार्ये भवता प्रतिपादिते सति त्रैलोक्यं प्रसृतिशीलेन यशसा धवलीकृतं सत् 'एष यदीयः पुत्रः सा कृतार्थैव' इति जनो वर्णयिष्यतीत्यतो मत्कृतार्थत्वं सिद्धमेवेति भावः ।।४।।

हिन्दी--उस पुत्रवत्सला हिमालयपुत्री पार्वती ने अपने पुत्र कुमार को गोद में लेकर प्रगाढ़ आलिङ्गन करते हुए सिर सूँघा। फिर 'हे वत्स तुम शत्रु को जीत कर मुझे वीरप्रसविनी बना धन्यातिधन्य करो' इस प्रकार का आशीर्वाद दिया।

उद्दामदैत्येशविपत्तिहेतुः श्रद्धालुचेताः समरोत्सवस्य।
आपृच्छ्य भक्त्या गिरिजागिरीशौ ततः प्रतस्थेऽभिदिवं कुमारः ।।५।।

अन्वयः--ततः उद्दाम दैत्येशविपत्तिहेतुः समरोत्सवस्य श्रद्धालुचेताः कुमारः भक्त्या गिरिजागिरीशौ आपृच्छ्य दिवम् अभि प्रतस्थे ।

संजी०--उद्दामेति ।। ततोऽनन्तरमुद्दाम उद्भटो यो दैत्येशस्तारकस्तस्य विपत्तिर्मृत्युस्तस्या हेतुः कारणम् । तत्कर्तेत्यर्थः । तथा समरोत्सवस्य संग्रामरूपस्योत्सवस्य 'मह उद्धव उत्सवः' इत्यमरः । इयं कर्मणि षष्ठी । संबन्धमात्रविवक्षितत्वात् । इह षष्ठ्यन्तस्य वृत्तिगतेनापि श्रद्धाशब्देन नित्यसंबन्धवशात्संबन्धं कृत्वा कृद्योगलक्षणा षष्ठी समर्थनीया । केचित्तु 'समरोत्सवे सः' इति विषयलक्षणसप्तम्यन्तत्वमङ्गीकृत्य पठन्ति । तत्रापि समासवृत्तिगतस्य श्रद्धालुशब्दस्य संबन्धो दुर्घट इत्यलम् । श्रद्धालुर्भक्तिशीलं चेतो यस्य । सङ्ग्रामश्रद्धाधायक इत्यर्थः । एवंभूतः कुमारो भक्त्या भक्तिपूर्वकं गिरिजागिरीशौ पितरावापृच्छ्य मया गम्यत इत्युक्त्वेत्यर्थः । दिवमभि प्रतस्थे चचाल । 'समवप्रवि-' इत्यात्मनेपदम् ।।५।।

हिन्दी --इसके पश्चात् उच्छृङ्खल उस दैत्याधिपति तारकासुर के मृत्यु के कारणभूत, संग्रामरूपी उत्सव में चित्त से श्रद्धा रखने वाले कुमार कार्त्तिकेय ने बड़ी भक्ति के साथ माता पिता की आज्ञा लेकर देवलोक की ओर प्रस्थान किया ।

देवं महेशं गिरिजां च देवीं ततः प्रणम्य त्रिदिवौकसोऽपि ।
प्रदक्षिणीकृत्य च नाकनाथपूर्वाः समस्तास्तमथानुजग्मुः ।।६।।

अन्वयः--ततः नाकनाथपूर्वाः समस्ताः त्रिदिवौकसः अपि महेशं देवं गिरिजां देवीं च प्रणम्य अथ प्रदक्षिणी कृत्य च तम् अनुजग्मुः ।

संजी०—देवमिति ।। ततोऽनन्तरम् । नाकनाथपूर्वा इन्द्रप्रमुखाः समस्तास्त्रिदिवौकसो देवा अपि । पूर्वोक्तकुमारप्रस्थानसमुच्चायकोऽपिशब्दः । अपि संभावनाप्रश्नाशङ्कागर्हासमुच्चये' इति विश्वः । महेशं देवं गिरिजां देवीं च प्रणम्य । अथ प्रदक्षिणीकृत्य । प्रदक्षिणौ परिक्रमणवशात्सव्यभागस्थौ कृत्वेत्यर्थः । 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' इति गतिसंज्ञकतया 'कुगतिप्रादयः' इति समासत्वात् 'समासेऽनञ्पूर्वे-' इति क्त्वो ल्यबादेशः । तं कुमारमनु पश्चाज्जग्मुरित्यर्थः ।। ६ ।।

हिन्दी--तदनन्तर इन्द्रादि के सहित सभी देवगणों ने भगवान् शंकर और देवी पर्वती को प्रणाम कर पुनः उनकी प्रदक्षिणा कर कुमार के पीछे-पीछे यात्रा की ।

अथ व्रजद्भिस्त्रिदशैरशेषैः स्फुरत्प्रभाभासुरमण्डलैस्तैः ।
नभो बभासे परितो विकीर्णं दिवापि नक्षत्रगणैरिवोग्रैः ।।७।।

अन्वयः—अथ प्रणद्भिः स्फुरत्प्रभाभासुरमण्डलैः तैः अशेषैः त्रिदशैः विकीर्णम् नभः दिवा अपि उग्रैः नक्षत्रगणैः विकीर्णम् इव परितः बभासे ।

संजी०—अथेति ।। अथानन्तरं व्रजद्भिर्गच्छद्भिरत एव स्फुरत्प्रसरत्प्रभायाः कान्त्याः संबन्धि भासुरं दीप्यमानं मण्डलं चक्रवालं येषाम् । 'चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः । तैरशेषैः संपूर्णैस्त्रिदशैर्देवैर्विकीर्णं व्याप्तं नभोऽन्तरिक्षं दिवापि दिनेऽपि । उग्रैर्भासुरैर्नक्षत्रगणैर्विकीर्णमिव । बभासे । भासुरत्वरूपसाधारणाधर्मेण त्रिदशविकिरणविशिष्टे नभसि नक्षत्रविकिरणविशिष्टत्वोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षालंकारः । ननु 'उग्रः शूद्रासुते क्षत्राद्रुद्रे पुंसि त्रिषूत्कटे' इति कोशोक्त्योत्कटवाचिनोऽप्युग्रशब्दस्य कथं भासुरवाचकतेति चेत्, सत्यम् । अत्रौत्कट्यं केनचिद्धर्मेण विवक्षितं न तु तेजसैव । कान्त्या तापेन वा सौन्दर्यादिना वोत्कटोऽधिक इत्यर्थप्रणयनात्प्रकृते समाधेयम् ।।७।।

हिन्दी—चलते समय देदीप्यमानप्रभा से समुज्ज्वल मण्डल वाले उन समस्त देवताओं से परिव्याप्त आकाश दिन में ही चारों ओर उग्र प्रकाश करने वाले तारागणों से परिव्याप्त जैसा मालूम पड़ने लगा ।

रराज तेषां व्रजतां सुराणां मध्ये कुमारोऽधिककान्तिकान्तः ।
नक्षत्रताराग्रहमण्डलानामिव त्रियामारमणो नभोऽन्ते ।।८।।

अन्वयः—नभोऽन्ते व्रजतां तेषां सुराणां मध्ये कुमारः नक्षत्रताराग्रहमण्डलानां मध्ये त्रियामारमणः इव रराजयतः स अधिककान्तिकान्तः असीत् ।

संजी०—रराजेति ।। नभोऽन्तेऽन्तरिक्षमध्ये व्रजतां गच्छतां तेषां सुराणां मध्ये कुमारः कार्तिकेयः । अग्रेऽपि नभोन्त इत्यस्य संबन्धः कार्यः । नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि, ताराः सप्तविंशतिव्यतिरिक्ताः, ग्रहाः सूर्यादयो नव, तेषां मण्डलानां गोलानां मध्ये त्रियामारमणश्चन्द्र इव रराज । यतोऽधिककान्त्या कान्तो मनोहरः । नक्षत्राणां मध्ये यथा चन्द्र एव शोभते तथा देवानां मध्ये कुमार एव शुशुभ इत्यर्थः । पूर्णोपमालंकारः ।। ८ ।।

हिन्दी—आकाश प्रान्त में चलते हुए उन देवताओं के बीच में अपनी अनुपम कान्ति से अत्यन्त मनोहर लगने वाले कुमार कार्तिकेय ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो नक्षत्र, तारा एवं ग्रहों के बीच चन्द्रमा शोभित हो रहे हों ।

गिरीशगौरीतनयेन सार्धं पुलोमपुत्रीदयितादयस्ते ।
उत्तीर्य नक्षत्रपथं मुहूर्तात्प्रपेदिरे लोकमथात्मनीनम् ।।९।।

अन्वयः—अथ पुलोमपुत्रीदयितादयः ते गिरीशगौरीतनयेन सार्धं मुहूर्त्तात् नक्षत्रपदम् उत्तीर्य आतमनीनं लोकं प्रपेदिरे ।

संजी०--गिरीशेति ।। अथ पुलोमपुत्री शची तस्या दयित इन्द्रः स आदिर्येषां तथाभूतास्ते देवा गिरीशगौरीतनयेन । ननु गिरीशगौर्योरेकतरेण सिद्धिरिति चेत्, सत्यम् । उभयगतवीर्याश्रयीभूतत्वेन कुमारवीर्याधिक्यस्य द्योतनार्थमुभयोर्ग्रहणमिति समाधातव्यम् । सार्धं मुहूर्तात्क्षणमात्रेणैव नक्षत्र-पथमाकाशमुत्तीर्योल्लङ्घ्यात्मनीनमात्मने हितम् । 'तस्मै हितम्' इत्यधि-कारस्थेन 'आत्मन्विश्वजन-' इत्यादिना खः । तथाभूतं लोकं स्वर्गं प्रपेदिरे प्रापुः । 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः ।। ९ ।।

हिन्दी—इन्द्रादि सभी देवतागण उन कार्त्तिकेय के साथ थोड़ी ही देर में नक्षत्र-पथ को पार कर अपने लोक स्वर्ग में पहुँच गये ।

ते स्वर्गलोकं चिरकालदृष्टं महासुरत्रासवशंवदत्वात् ।
सद्यः प्रवेष्टुं न विषेहिरे तत्क्षणं व्यलम्बन्त सुराः समग्राः ।।१०।।

अन्वयः--ते समग्राः सुराः महासुरत्रासवशंवदत्वात् चिरकालदृष्टम् स्वर्गलोकम् सद्यः प्रवेष्टुम् न विषेहिरे तत्क्षणम् व्यलम्बन्त ।

संजी०—त इति ।। ते समग्राः सुरा महासुरात्तारकाद्यस्त्रासो भयं तस्य वशंवदत्वादधीनत्वाद्धेतोः चिरकालेन बहुसमयेन दृष्टं स्वर्गलोकं सद्यः सहसा प्रवेष्टुं न विषेहिरे न शेकुः । तर्हि किं तु क्षणं व्यलम्बन्त । कालं चिक्षिपुरि-त्यर्थः । अन्योऽपि सभये स्वगृहेऽपि सद्यः प्रवेष्टुं न शक्नोति किं तु विलम्बते तद्वदिति भावः ।। १० ।।

हिन्दी--वे सभी देवतागण उस महासुर तारक के वशीभूत हो जाने से बहुत दिनों से देखे गये अपने स्वर्ग में सहसा प्रवेश करने का साहस न कर सके, इसलिए थोड़ी देर तक बाहर ठहर गये ।

पुरो भव त्वं न पुरो भवामि नाहं पुरोगोऽस्मि पुरःसरस्त्वम् ।
इत्थं सुरास्तत्क्षणमेव भीताः स्वर्गं प्रवेष्टुं कलहं वितेनुः ।।११।।

अन्वयः---तत् क्षणमेव भीताः (अतः) स्वर्गं प्रवेष्टुं त्वं पुरः भव, अहं पुरः न भवामि, अहं पुरोगः न अस्मि, त्वम् पुर सरः भव इत्थं सुराः कलहं वितेनुः ।

संजी०--पुर इति ।। तत्क्षणम् । 'कालाध्वनो-' इति द्वितीया । प्रवेश-समय इत्यर्थः । भीता अतस्तारकावस्थानशङ्कया सभयाः सुरा स्वर्गं प्रवेष्टुम् 'त्वं पुरोऽग्रे भव । अहं पुरो न भवामि, किं तु त्वमेव भव । अहं पुरोगो नास्मि न भवामि । त्वं पुरः सरो भव' इत्यमेवंभूतं कलहं विग्रहं वितेनुः ।

चक्रुरित्यर्थः । अस्मीत्यहमर्थकमव्ययम् । सर्वेषां त्रिधाभूततया न कोऽप्यन्तः प्रवेष्टुं शशाक । किं न तु तत्रैव कलहायमानास्तस्थुरिति भावः ॥११॥

हिन्दी--तदनन्तर उस समय तारकासुर के भय से भयभीत सभी देवता परस्पर स्वर्ग में प्रवेश करने के लिए 'कोई कहता तुम आगे चलो, कोई कहता नहीं मैं आगे नहीं चलूँगा, कोई कहता मैं आगे चलने वाला नहीं हूँ, आगे चलने वाले तो तुम हो' इत्यादि बातों को कहकर परस्पर विवाद करने लगे ।

सुरालयालोकनकौतुकेन मुदा शुचिस्मेरविलोचनास्ते ।
दधुः कुमारस्य मुखारविन्दे दृष्टिं द्विषत्साध्वसकातरान्ताम् ॥१२॥

अन्वयः--सुरालयालोकनकौतुकेन शुचिस्मेरविलोचनाः ते द्विषत्साध्वसकातरां ताम् दृष्टिम् मुदा कुमारस्य मुखारविन्दे दधुः ।

संजी०--सुरालयेति ॥ सुरालयस्य स्वर्गस्य यदालोकनं तेन यत्कौतुकमानन्दस्तेन निमित्तेन शुचीनि शुद्धानि स्मेराणि समन्दहासानि च विलोचनानि येषां तथाभूतास्ते देवा द्विषत्साध्वसेन तारकशत्रुभयेन कातरान्तां भीतप्रान्ताम् । भयचिह्नतरलत्वादियुतामित्यर्थः । तथाभूतां दृष्टिं नेत्रं मुदा प्रीतया । प्रसादेनेति यावत् । उपलक्षिते कुमारस्य मुखारविन्दे वदनकमले दधुः । दुर्घटप्रवेशोपायोपदेशापेक्षयेति भावः । कुमारो बालोऽपि सन्न भीत इति मुदेति विशेषणेन व्यज्यते ॥ १२ ॥

हिन्दी स्वर्ग के देखने से उत्पन्न आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा से विशुद्ध मन्दहासयुक्त नेत्रों वाले उन देवताओं ने शत्रु के भय से कातर हुई अपनी दृष्टि कुमार के मुखकमल पर डाली ।

सहेलहासच्छुरिताननेन्दुस्ततः कुमारः पुरतो भविष्णुः ।
स तारकापातमपेक्षमाणो रणप्रवीरो हि सुरानवोचत् ॥१३॥

अन्वयः--ततः रणप्रवीरः तारकापातम् अपेक्षमाणः पुरतः भविष्णुः सः कुमारः सहेलहासच्छुरिताननेन्द्रः हि सुरान् अवोचत् ।

संजी०--सहेलेति ॥ ततो दृष्टिपातानन्तरं रणे प्रकृष्टं वीरोऽत एव तारकस्यापातं युद्धार्थमागमनमपेक्षते सोऽपेक्षमाणः । प्रतीच्छन्नित्यर्थः । अत एव पुरतोऽग्रतो भविष्णुः स कुमारः कार्तिकेयः सहेलः सक्रीडो यो हासस्तेन च्छुरिताननेन्दुर्मिश्रितमुखचन्द्रः सन् । किंचिद्विहस्येत्यर्थः । हि निश्चितम् । सुरानवोचज्जगाद ॥१३॥

हिन्दी—तदनन्तर रण में प्रकृष्ट पराक्रम प्रगट करने वाले तारकासुर के

युद्धार्थ आगमन की प्रतीक्षा करने वाले क्रीड़ापूर्वक हास से शोभित मुख वाले उस कुमार ने देवताओं से कहा ।

भीत्यालमद्य त्रिदिवौकसोऽमी स्वर्गं भवन्तः प्रविशन्तु सद्यः ।
अत्रैव मे दृक्पथमेतु शत्रुर्महासुरो वः खलु दृष्टपूर्वः ॥१४॥

अन्वयः—(भोः) त्रिदिवौकसः अद्य भीत्या अलम् । अमी भवन्तः सद्यः स्वर्गं प्रविशन्तु दृष्टपूर्वः वः शत्रुः महासुरः अत्रैव मे दृक्पथम् एतु ।

संजी०—भीत्येति ॥ भो त्रिदिवौकसो देवाः, अद्य संप्रति भीत्या भयेनालम् । न भेतव्यमित्यर्थः । किं त्वमी भवन्तः सद्यः सहसैव स्वर्गं प्रविशन्तु । स्वर्गप्रवेशे भयहेतुको विलम्बो न विधेय इति तात्पर्यम् । सद्यः सपदि । तत्क्षणमित्यर्थः । अथ रोषादाह—पूर्वं दृष्टो दृष्टपूर्वः । 'राजदन्तादिषु' इति प्राक्प्रयोगार्हस्य पूर्वशब्दस्य परः प्रयोगः । संभवानुरोधाद्बहुव्रीहिरिति लभ्यते । ननु व इत्यनेनैव सिद्धिरिति चेन्न । 'नलोक–' इति षष्ठीनिषेधात् । तथा वो युष्माकं शत्रुर्दृष्टा महासुरस्तारकोऽत्रैव स्वर्ग एव मे मम दृक्पथं दृग्गोचरत्वमेतु प्राप्नोतु । दृक्पथमिति 'ऋक्पूरब्धूः–' इति समासान्तोऽप्रत्ययः ॥१४॥

हिन्दी—हे देवगणो अब आप लोग इस समय भयभीत न हों अतः आप लोग सद्यः स्वर्ग में प्रवेश करें । जिससे आप लोगों ने अपने जिसे शत्रु तारकासुर को पूर्व में देखा है, वह यहीं हमारे सामने आ जावे ।

स्वर्लोकलक्ष्मीकचकर्षणाय दोर्मण्डलं वल्गति यस्य चण्डम् ।
इहैव तच्छोणितपानकेलिमह्नाय कुर्वन्तु शरा ममैते ॥१५॥

अन्वयः—स्वर्लोकलक्ष्मीकचकर्षणाय चण्डम् यस्य दोर्मण्डलम वल्गति तच्छोणितपानकेलिम् एते मम शराः अह्नाय इहैव कुर्वन्तु ।

संजी०—स्वर्लोकेति ॥ स्वर्लोकस्य लक्ष्म्याः कचाः केशास्तेषां कर्षणाय । लक्ष्मीकेशानां हरणं कर्तुमित्यर्थः । 'तुमर्थात्' इति चतुर्थी । चण्डं प्रचण्डं यस्य तारकस्य दोर्मण्डलं भुजामण्डल वल्गति चलति । तस्य तारकस्य यच्छोणितं रुधिरं तस्य पानं तदेव केलिः क्रीडा तां कर्मभूतामेते मम शरा अह्नाय झटिति । 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय' इत्यमरः। इहैव कुर्वन्तु । तं विनाशयन्त्वित्यर्थः ॥१५॥

हिन्दी—स्वर्गलक्ष्मी का बाल खींचने के लिये जिसके प्रचण्ड बाहुओं के मण्डल मचलते रहते हैं, मैं चाहता हूँ कि ये मेरे बाण उसके शोणितपान करने का कौतुक शीघ्रताशीघ्र यहीं करे ।

शक्तिर्ममासावहतप्रचारा प्रभावसारा सुमहःप्रसारा ।
स्वर्लोकलक्ष्म्या विपदावहारेः शिरो हरन्ती दिशतान्मुदं वः ॥१६॥

अन्वयः—अहतप्रचारा प्रभावसारा सुमहः प्रसाराः स्वर्लोकलक्ष्म्याः विपदावहाः (तथा) अरेः शिरः हरन्ती असौ मम शक्तिः वः मुदं दिशतात् ।

संजी०—शक्तिरिति ॥ अहतप्रचाराविच्छिन्नगतिः । तथा प्रभावः सामर्थ्यं स एव सारो यस्याः । सुतरां महसस्तेजसः प्रसारो मण्डलं यस्याः । अतितेजस्विनीत्यर्थः । स्वर्लोकलक्ष्म्या या विपदा तस्या अवहा । किं तु सुखदेत्यर्थः । तथारेः प्रतिकूलस्य शिरः शीर्षं हरन्ती । असौ मम शक्तिरायुधं वो युष्माकं मुदं प्रीतिं दिशताद्दत्तात् । आशिषि लोट् ॥१६॥

हिन्दी—मेरी अमोघ अत्यन्त प्रभवशालिनी महातेजस्विनी स्वर्ग लोक के लक्ष्मी का कष्ट दूर करने वाली यह शक्ति इसी स्थान पर शत्रुओं का शिर काटकर आप लोगों को आनन्द प्रदान करे ।

इत्यन्धकारातिसुतस्य दैत्यवधाय युद्धोत्सुकमानसस्य ।
सर्वं शुचिस्मेरमुखारविन्दं गीर्वाणवृन्दं वचसा ननन्द ॥१७॥

अन्वयः—दैत्यवधाययुद्धोत्सुकमानसस्य अन्धकारातिसुतस्य इति वचसा सर्वम् गीर्वाणवृन्दम् शुचिस्मेरमुखारविन्दं ननन्द ।

संजी०—इतीति ॥ दैत्यवधाय दैत्यवधं कर्तुं युद्ध उत्सुकमानसस्योत्कण्ठितचेतसोऽन्धकारातिसुतस्य शिवपुत्रस्य कुमारस्य संबन्धिना । इति पूर्वोक्तेन वचसा सर्वं गीर्वाणवृन्दं देवसमूहः शुचि शुद्धं स्मेरं समन्दहासं मुखारविन्दं मुखकमलं यस्य तथाभूतं सदा ननन्द जहर्ष ॥१७॥

हिन्दी—दैत्यों का वध करने के लिये युद्ध के प्रति अत्यन्त उत्सुक हृदयवाले अन्धकाराति शिव के पुत्र कुमार कार्तिकेय की इस प्रकार बात सुनकर सभी देव समूह अपने अपने मुखों पर मधुर मुस्कान प्रकट करते हुये परम प्रसन्न हो गये ।

सान्द्रप्रमोदात्पुलकोपगूढः सर्वाङ्गसंफुल्लसहस्रनेत्रः ।
तस्योत्तरीयेण निजाम्बरेण निरुञ्छनं चारु चकार शक्रः ॥१८॥

अन्वयः—सान्द्रप्रमोदात् पुलकोपगूढः सर्वाङ्गसंफुल्लसहस्रनेत्रः शक्रः तस्य उत्तरीयेण निजाम्बरेण निरुञ्छनम् चारु चकार ।

संजी०—सान्द्रेति ॥ सान्द्रप्रमोदाद्घनानन्दाद्धेतोः पुलकै रोमाञ्चैरुपगूढ आश्लिष्टः । 'पुलकः कृमिभेदेऽश्मभेदे च मणिदोषके । रोमाञ्चे हरिताले

गजात्तपिण्डे च गन्धके' इति मेदिनी। तथा सर्वेष्वङ्गेषु संफुल्लानि सहस्रनेत्राणि यस्य। यतः। सहस्राक्षस्तथाभूतः शक्र इन्द्रस्तस्य कुमारस्योत्तरीयेण संव्यानेन। 'संव्यानमुत्तरीयं स्यात्' इत्यमरः। तथा निजाम्बरेण निरुञ्छनं परिवर्तनं चारु चकार। भ्रातृभावायान्योन्यवस्त्रग्रहणं चक्रतुरित्यर्थः। तदुक्तं मेदिन्याम्–'निरुञ्छनं बन्धुतायै वाससः परिवर्तनम्' इति। लोकेऽपि भ्रातृतायै परस्परस्योष्णिग्बन्धनव्यवहारस्तद्वदत्रापीति। अनुशासने सामान्यतो वासोग्रहणेन प्रकृत उत्तरीयग्रहणं संगच्छते। लोकव्यवहारस्तु संप्रदायसिद्धः। उष्णिहि विशेश्रैष्ठचोपलम्भ एव व्यवहारमूलमिति मन्तव्यम् ॥१८॥

हिन्दी—प्रगाढप्रमोद से रोमाञ्चित हुए विकसित अपने सर्वाङ्ग में हजारों नेत्रों वाले इन्द्रदेव ने उनके उत्तरीय से वस्त्र का आदानप्रदान कर अपनी बन्धुता दृढ़ कर ली।

घनप्रमोदाश्रुतरंगिताक्षैर्मुखैश्चतुर्भिः प्रचुरप्रसादैः।
अथो अचुम्बद्विधिरादिवृद्धः षडाननं षट्सु शिरःसु चित्रम् ॥१९॥

अन्वयः—अथो आदिवृद्धः विधिः घनप्रमोदाश्रुतरङ्गिताक्षैः प्रचुरप्रसादैः चतुर्भिः मुखैः वट्सु शिरः षडाननं चित्रं चुचुम्बे।

संजी०—घनेति ॥ अथो अनन्तरमाद्ययोर्हरिहरयोर्वृद्धो महान्विधिर्ब्रह्मा। घनः सान्द्रः। 'घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्यमध्यमनृत्ययोः। ना मुस्तादौ घनाद्येषु विस्तारे लोहमुद्गरे। त्रिषु सान्द्रे च दृष्टार्थे' इति मेदिनी। यः प्रमोदो हर्षस्तेन निमित्तेन यदश्रु नेत्रपयस्तेन तरंगितानि संजाततरंगाणि। 'तारकादिभ्य इतच्'। अक्षीणि नेत्राणि येषां तैः। हर्षवशादुद्गताश्रुभिरित्यर्थः। तथा प्रचुरप्रसादैरधिकप्रसन्नतायुक्तैश्चतुर्भिर्मुखैः षट्षु शिरःसु मध्ये षडाननं कुमारं चुचुम्बे पस्पर्श। इति चित्रं विस्मयः। चतुर्भिर्मुखैः षण्णां मुखानां यौगपद्येन स्पर्शासंभवात्। परिहारस्तु प्रत्येकं षट्षु चतुर्भिश्चुम्बनेन संधेयः ॥१९॥

हिन्दी—देवताओं में सबसे वूढे ब्रह्मदेव की आँखें भी प्रगाढ़ प्रमोद से अश्रुपूर्ण हो डबडबाने लगीं। किं बहुना उनका चारों मुख भी प्रसन्नता से खिल उठा। इस प्रकार उन्होंने प्रचुर प्रसन्नता से भरे हुए अपने चार ही मुखों से कार्तिकेय के छओं मुखों का विचित्र रूप से चुम्बन किया।

तं साधु साध्वित्यभितः प्रशस्य मुदा कुमारं त्रिपुरासुरारेः।
आनन्दयन्वीर जयेति वाचा गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ॥२०॥

अन्वयः—गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः तम् त्रिपुरासुरारेः कुमारम् मुदा साधु साधु इति अभितः प्रशस्य (हे) वीर जय इति वाचा अभ्यनन्दयन् ।

संजी०—तमिति ।। गन्धर्वा देवगायकाः, विद्याधराः, सिद्धाश्च देवविशेषाः, तेषां संघाः समुदायाः कर्तारः तं त्रिपुरासुरस्यारेः शिवस्य कुमारं पुत्रं मुदा प्रीत्या निमित्तेन साधु साध्वित्यभितः संमुखत्वेन प्रशस्य स्तुत्वा 'हे वीर' त्वं जय शत्रोः सकाशाज्जयं प्राप्नुहि' इत्येवंभूतया वाचानन्दयन्नानन्दितमकुर्वन् ।। २० ।।

हिन्दी – उस समस्य फन्धर्वों विद्याधरों एमं सिद्धों के समुदाय भी उन भगवान् शंकर के पुत्र कार्तिकेय को 'साधु साधु' इस प्रकार चारो ओर से प्रशंसा कर 'विजयी वनो' इस प्रकार की आनन्दभरी वाणी कहते हुये आनन्दित करने लगा ।

दिव्यर्षयः शत्रुविजेष्यमाणं तमभ्यनन्दन्किल नारदाद्याः ।
निरुञ्छनं चक्रुरथोत्तरीयैश्चामीकरीयैर्निजवल्कलैश्च ।।२१।।

अन्वय—नारदाद्याः दिव्यर्षयः शत्रुविजेष्यमाणं तम् अभ्यनन्दयन् किल । अथ चामीकरीयैः उत्तरीयैः निजवल्कलैः च निरुञ्छनं चक्रुः ।

संजी०—दिव्यर्षय इति ।। नारदाद्या नारदप्रमुखा दिव्या दिवि भवा ऋषयः । 'द्युप्रागपागुदक्' इति यत् । शत्रुं तारकं विजेष्यमाणं जेष्यन्तं तं कुमारमभ्यनन्दँस्तुष्टुवुः किल । अथानन्तरं चामीकरीयैः सौवर्णैरुत्तरीयैर्वस्त्रैः । तथा निजैर्वल्कलैश्च निरुञ्छनं बन्धुतायै वासः परिवर्तनं चक्रुः । निरुञ्छनं पूर्वमेव निर्णीतम् ।।२१।।

हिन्दी—नारदादि देवर्षियों ने भी शत्रु विजय करने वाले उस कुमार का अभिनन्दन किया और उनके सुनहले वस्त्रों से अपने वल्कलों का आदान-प्रदान कर अपनी मित्रता दृढ़ की ।

ततः सुराः शक्तिधरस्य तस्यावष्टम्भतः साध्वसमुत्सृजन्तः ।
उत्सेहिरे स्वर्गमनन्तशक्तेर्गन्तुं वनं यूथपतेरिवेभाः ।।२२।।

अन्वयः—ततः (अनन्तशक्ते) शक्तिधरस्य तस्य अवष्टम्भतः साध्वसम् उत्सृजन्तः सुराः अनन्तशक्ते यूथयतेः अवष्टम्भतेः इभाः वनम् इव स्वर्गं गन्तुम् उत्सेहिरे ।

संजी०—तत इति ।। ततोऽनन्तरं शक्तिरायुधविशेषस्तां धरतीति तथोक्तस्य तस्य कुमारस्य । 'शक्तिरस्त्रान्तरे शौर्ये उत्साहादौ बले स्त्रियाम्' इति मेदिनी । अवष्टम्भत आश्रयतः । 'अवष्टम्भः सुवर्णे च स्तम्भप्रारम्भयोरपि' इति मेदिनी । अत्र स्तम्भशब्देनाश्रयो लक्षितः । स्तम्भस्याश्रयमिति तत्त्वात् । साध्वसं भयम् । 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः । उत्सृजन्तस्त्यजन्तः ।

सुरा देवाः। अनन्तशक्तेरपारशौर्यस्य यूथपतेर्गजराजस्यावष्टम्भत इभा गजा वनमिव। स्वर्गं गन्तुं प्रवेष्टुमुत्सेहिर उत्साहं चक्रुः। अनन्तशक्तेरिति विशेषणं कुमारेऽपि योजनीयम् ॥२२॥

हिन्दी—इसके पश्चात् अनन्त शक्ति वाले शक्तिधारी उस कुमार के बल का सहारा पाकर देवगण निर्भय हो स्वर्ग में प्रवेश करने के लिये उसी प्रकार उत्साहित हो उठे जिस प्रकार यूथपति के बल का सहारा पाकर छोटे-छोटे हाथी जंगल में प्रवेश करने को उत्साह से समुद्यत हो जाते हैं।

अथाभिपृष्ठं गिरिजासुतस्य पुरंदरारातिवधं चिकीर्षोः।
सुरा निरीयुस्त्रिपुरं दिधक्षोरिव स्मरारेः प्रमथाः समन्तात् ॥२३॥

अन्वयः—अथ सुराः पुरन्दरारातिवधम् चिकीर्षोः गिरिजासुतस्य अभिपृष्ठम् त्रिपुरं दिधक्षोः स्मरारेः (अभिपृष्ठम्) प्रमथा इव समन्तात् निर्ययुः।

संजी०—अथेति॥ अथोत्साहानन्तरं सुराः पुरंदरस्येन्द्रस्यारातेस्तारकस्य वधं मृत्युं चिकीर्षोः कर्तुमिच्छोर्गिरिजासुतस्य कुमारस्याभिपृष्ठं पृष्ठसंमुखं त्रिपुरं दैत्यं दिधक्षोर्दग्धुमिच्छोः। 'दह भस्मीकरणे' इति धातोः इच्छार्थे सनि 'सन्यङो' इति द्वित्वे 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युप्रत्ययः। स्मरारेः शिवस्याभिपृष्ठं प्रमथा इव स्थिताः समन्तान्निरीयुर्निर्जग्मुः। अन्तर्विविशुरित्यर्थः ॥२३॥

हिन्दी—इसके अनन्तर देवतागण इन्द्र के शत्रु तारकासुर का वध करने की इच्छा करने वाले उस कुमार के पीछे इस प्रकार चल पड़े जिस प्रकार त्रिपुरासुर को जलाने के इच्छुक भगवान् शिव के पीछे-पीछे उनके प्रमथादिगण चलने लगे थे।

सुराङ्गणानां जलकेलिभाजां प्रक्षालितैः संततमङ्गरागैः।
प्रपेदिरे पिञ्जरवारिपूरां स्वर्गौकसः स्वर्गधुनीं पुरस्तात् ॥२४॥

अन्वयः—स्वर्गौकसः पुरस्तात् जलकेलिभाजाम् सुराङ्गनानाराम् सततं प्रक्षालितैः अङ्गरागैः पिञ्जरवारिपूराम् स्वर्गधुनीम् प्रपेदिरे।

संजी०—सुराङ्गणानामिति॥ स्वर्गौकसो देवाः पुरस्तादग्रे जलकेलिभाजां जलक्रीडासक्तानां सुराङ्गणानामप्सरसां संततं निरन्तरं प्रक्षालितैरङ्गरागैः कुङ्कुमादिरचितैः पिञ्जरवारिपूरां पीतजलप्रवाहां स्वर्गधुनीं मन्दाकिनीं प्रपेदिरे प्रापुः। सुराङ्गणानामिति 'कुमति च' इति णत्वम् ॥२४॥

हिन्दी—वे देवगण सबसे पहले जलक्रीड़ा करने वाली अप्सराओं के शरीर में लगे हुये अङ्गरागों के प्रक्षालन से पीले जलों वाली आकाशगङ्गा के पास पहुँचे।

अथ चतुर्भिस्तामेव 'दिग्दन्तिना' मित्यादिभिर्विशिनष्टि—

दिग्दन्तिनां वारिविहारभाजां कराहतैर्भीमतरैस्तरंगैः ।
आप्लावयन्तीं मुहुरालवालश्रेणिं तरूणां निजतीरजानाम् ॥२५॥

अन्वयः—वारिविहारभाजाम् दिग्दन्तिनां कराहतैः भीमतरैः तरङ्गैः निजतीरजानाम् तरूणाम् आलबालश्रेणीम् मुहुः आप्लावयन्तीम् ।

संजी०—तत्र दिग्दन्तीति ॥ किंभूतां स्वर्गधुनीम् । वारिणी विहारभाजां क्रीडतां दिग्दन्तिनामैरावतादीनां करैः शुण्डादण्डैः । 'करो वर्षोपले पाणौ रश्मौ प्रत्ययशुण्डयोः' इति मेदिनी । आहतैस्ताडितैरत एव भीमतरैरतिशयभयानकैस्तरंगैः कल्लोलैः कृत्वा निजतीरजानामात्मीयतटोत्पन्नानां तरूणां वृक्षाणां संबन्धिनीमालवालानां मूलस्थलीनां श्रेणिम् । 'श्रेणिः स्त्रीपुंसयोः पङ्क्तौ समाने 'शिल्पिसंहतौ' इति मेदिनी । मुहुर्वारंवारम् । 'मुहुः पुनः पुनः शश्वत्' इत्यमरः । आप्लावयन्तीं सेचयन्तम् ॥२५॥

हिन्दी जो स्वर्गङ्गा जलक्रीड़ा करने वाले दिग्गजों के शुण्डों के पटकने से अपने प्रचण्ड तरङ्गों के द्वारा किनारे के उत्पन्न वृक्षों के आलवालों (थाला) की पंक्तियों को निरन्तर जल पहुँचा कर उन्हें सींचती रहती है ।

लीलारसाभिः सुरकन्यकाभिर्हिरण्मयीभिः सिकताभिरुच्चैः ।
माणिक्यगर्भाभिरुपाहिताभिः प्रकीर्णतीरां वरवेदिकाभिः ॥२६॥

अन्वयः— लीलारसाभिः सुरकन्यकाभिः हिरण्यमयीभिः सिकताभिः उपाहिताभिः उच्चैः वरवेदिकाभिः प्रकीर्णतीराम् ।

संजी०—लीलेति ॥ पुनः किंभूताम् । लीलायां क्रीडायां रसः प्रीतिर्यासां ताभिः सुराणां कन्यकाभिः पुत्रीभिः । तथा हिरणमयीभिः सौवर्णीभिः सिकताभिर्वालुकाभिः । तथा माणिक्यगर्भाभिर्मणिखचितमध्याभिः । तथोपाहिताभिर्निर्भिताभिः । न त्वकृत्रिमाभिः । तथोच्चैर्महतीभिर्वराः श्रेयस्यो या वेदिकास्ताभिश्च प्रकीर्णतीरां व्याप्तसैकताम् ॥२६॥

हिन्दी—क्रीडा करने की प्रीति से आई हुई देवकन्याओं के हाथों से बनी हुई सुनहरी बालू की ऊँची-ऊँची बहुत सी वेदिकायें जिनके तट पर बिखरी दिखाई दे रही थीं ।

सौरभ्यलुब्धभ्रमरोपगीतैर्हिरण्यहंसावलिकेलिलोलैः ।
चामीकरीयैः कमलैर्विनिद्रैश्च्युतैः परागैः परिपिङ्गतोयाम् ॥२७॥

अन्वयः—सौरभ्यलुब्धभ्रमरोपगीतैः हिरण्यहंसावलिकेलिलोलैः चामीकरीयैः विनिद्रैः कमलैः च्युतैः परागैः परिपिङ्गतोयाम् ।

संजी०—सौरभ्येति ॥ पुनः किंभूताम् । सौरभ्ये सौगन्ध्ये लुब्धा लम्पटा

ये भ्रमरा द्विरेफास्तैरुपगीतैः । मुखरितैरित्यर्थः । हिरण्यस्य सुवर्णस्य ये हंसा मरालास्तेषामावल्यः पङ्क्तयस्तासां केलिः क्रीडा तया निमित्तेन लोलैश्चलैश्चामीकरीयैः सौवर्णैर्विनिद्रैर्विदलितैः कमलैरुपलक्षिताम् । अत एव च्युतैः कमलेभ्यो भ्रष्टैः परागैः सुमनोरजोभिः । 'परागः सुमनोरजः' इत्यमरः । परिपिङ्गं परितः पीतं तोयं जलं यस्यास्तथोक्ताम् ॥२७॥

हिन्दी—सुगन्ध के लोभी भौरों के गुञ्जार से युक्त सुनहले हंसों के क्रीडा शोभित तथा सदैव खिले हुये सुवर्णमय कमलों के गिरे हुये परागों से पीले जलवाली स्वर्गङ्गा ।

कुतूहलाद्द्रष्टुमुपागताभिस्तीरस्थिताभिः सुरसुन्दरीभिः ।
अभ्यूर्मिराजिप्रतिबिम्बिताभिर्मुदं दिशन्तीं व्रजतां जनानाम् ॥२८॥

अन्वयः—द्रष्टुं कुतूहलाद् उपागताभिः तीरस्थिताभिः अभ्यूर्मिराजिप्रतिबिम्बिताभिः सुन्रसुदररीभिः व्रजतां जनाजाम् मुदं दिशन्तीम् ।

संजी०—कुतूहलादि ॥ द्रष्टुं कुतूहलात्कौतुकात् । आनन्दादिति यावत् । उपागताभिरागताभिः । अत एव तीरस्थिताभिः अत एवाभ्यूर्मिराजि । ऊर्मिराजावित्यभ्यूर्मिराजि तरङ्गमध्ये प्रतिबिम्बिताभिः सुरसुन्दरीभिर्देवाङ्गनाभिर्निमित्तेन व्रजतां गच्छतामपि जनानां मुदं दिशन्तीं ददतीम् । एकासामप्यप्सरसां प्रतिबिम्बवशादनेकधा दृश्यमानत्वाद्युक्ता प्रीतिजनकतेति । भावः ॥२८॥

हिन्दी—जो स्वर्गङ्गा दर्शन करने के लिये कुतूहलवश आकर तीर में बैठी हुई लहरों की पङ्क्तियों से प्रतिविम्बित होने वाली सुरसुन्दरियाँके द्वार आने जाने वाले लोगों को आनन्द प्रदान करती हैं ।

ननन्द सद्यश्चिरकालदृष्टां विलोक्य शक्रः सुरदीर्घिकां ताम् ।
अदर्शयत्सादरमद्रिपुत्रीमहेशपुत्राय ततः पुरोगः ॥२९॥

अन्वयः—शक्रः चिरकालदृष्टां ताम् सुरदीर्घिकाम् विलोक्य सद्यः ननन्द ततः अद्रिपुत्री महेशपुत्राय सादरं पुरोगः (सन्) अदर्शयत् ।

संजी०—ननन्देति ॥ शक्र इन्द्रश्चिरकालेन बहुकालेन दृष्टां तां सुरदीर्घिकां मन्दाकिनीं विलोक्य सद्यो झटिति ननन्द जहर्ष । अतिरमणीयं वस्तु चिरकालदृष्टं सद्बहुप्रीतिजनकं भवतीति भावः । ततोऽनन्तरमद्रिपुत्रीमहेशयोः पुत्राय कुमाराय सादरं यथा तथा पुरोगः सन्नदर्शयत् ॥२९॥

हिन्दी—इन्द्रदेव बहुत दिनों से देखी हुई इन गंगा को देखकर सद्यः प्रसन्न हो गये, फिर उन्होंने आगे बढ़ कर, पार्वती-शंकर के पुत्र कार्त्तिकेय को भी दिखाया ।

स कार्तिकेयः पुरतः परीतः सुरैः समस्तैः सुरनिम्नगां ताम् ।
अपूर्वदृष्टामवलोकमानः सविस्मयः स्मेरविलोचनोऽभूत् ॥३०॥

अन्वयः—समस्तैः सुरैः परीतः सः कार्त्तिकेयः अपूर्वदृष्टां तां सुरनिम्नगाम् पुरतः अवलोकमानः (सन्) सविस्मयः स्मेरविलोचनः अभूत् ।

संजी०—स इति ॥ समस्तैः सुरैः परीतो व्याप्तः स कार्तिकेयः कुमारः अपूर्वदृष्टाम् । अधुनैव दृष्टामित्यर्थः । तां सुरनिम्नगां पुरतोऽग्रेऽवलोकमानः सन्सविस्मयः साश्चर्यः स्मेरविलोचनः समन्दहासनेत्रश्चाभूत् ॥३०॥

हिन्दी—समस्त देवताओं से घिरे हुये कुमार कार्त्तिकेय पहले कभी न देखी हुई गङ्गा को अपने आगे देखते हुये आश्चर्यचकित हो गये, और उनके नेत्रों पर मन्दहास की रेखा झलक उठी ।

उपेत्य तां तत्र किरीटकोटिन्यस्ताञ्जलिर्भक्तिपरः कुमारः ।
गीर्वाणवृन्दैः प्रणुतां प्रणुत्य नम्रेण मूर्ध्ना मुदितो ववन्दे ॥३१॥

अन्वयः—भक्तिपरः कुमारः गीर्वाणवृन्दैः प्रणुतां तां तत्र उपेत्य किरीटकोटिन्यस्ताञ्जलिः (सन्) प्रणुत्य मुदितः नम्रेण मूर्ध्ना ववन्दे ।

संजी०—उपेत्येति ॥ भक्तिपरो भक्तिप्रवणः कुमारः कार्तिकेयो गीर्वाणवृन्दैर्देवसमूहैः प्रणुतां प्रकर्षेण स्तुताम् । 'णु स्तुतौ' इति धातोः कर्मणि क्तः । तां मन्दाकिनीं तत्रोपेत्य । तत्समीपं गत्वेत्यर्थः । किरीटकोटौ मुकुटाग्रे । 'कोटिः स्त्री धनुषोऽग्रेऽस्त्री' इति मेदिनी । अत्राग्रशब्दस्य धनुःशब्दोपलक्षिततया सर्वेषामग्रवाचकत्वं बोध्यम् । न्यस्तोऽञ्जलिर्येन तथाभूतः सन् । प्रणुत्येडयित्वा मुदितो मुमुदे । इदं कृदन्तरूपं क्रियापदम् । तथा नम्रेण मूर्ध्ना शिरसा ववन्दे नमश्चक्रे ॥३१॥

हिन्दी—श्रद्धायुक्त कुमार कार्त्तिकेय देवताओं के द्वारा वन्दित उस देवनदी के तट पर जाकर मुकुट के प्रान्त भाग में अञ्जलि बाँध प्रणाम कर परम प्रसन्न हो पुनः सिर झुका कर विनम्र हो उनकी वन्दना की ।

प्रणर्तितस्मेरसरोजराजिः पुरः परीरम्भमिलन्महोर्मिः ।
कपोलपालिश्रमवारिहारी भेजे गुहं तं सरितः समीरः ॥३२॥

अन्वयः—प्रणर्त्तितस्मेरसरोजराजिः परीरम्भमिलमहोर्मिः कपोलपालीश्रम वारिहारी सरितः समीरः पुरः तम् ग्रहं भेजे ।

संजी०—प्रणर्तितेति ॥ प्रणर्तिता कम्पिता स्मेरसरोजानां विकसितकमलानां राजिर्माला येन । अनेन सौगन्ध्योक्तिः । तथा परीरम्भेणाश्लेषेण

मिलन्त आत्मनि मिश्रीभवन्तो महोर्मयो यस्य । अनेन शैत्योक्तिः । कपोलपाल्याः । कपोलरूपलताग्रस्येत्यर्थः । 'पालिः कर्णे लताग्रेऽश्रौ' इति विश्वः । श्रमेण यद्वारि स्वेदस्तस्य हारी । अनेन मान्द्योक्तिः । अन्यथा श्रमहृतेरसंभवात् । एवंभूतः सरितो मन्दाकिन्याः समीरः पवनः पुरोऽग्रे स्थितं तं गुहं स्वामिकार्तिकेयम् । यद्वा । पुरोऽग्रे भेजे सिषेवे ॥३२॥

हिन्दी—कमलवनों को नचाने वाले बड़ी-बड़ी लहरों से संपर्क करने वाली कपोल पर आये श्रमसीकर को सुखाने वाले नदी के वायु ने अपने सामने उपस्थित कार्त्तिकेय की भलीभाँति सेवा की ।

ततो व्रजन्नन्दननामधेयं लीलावनं जम्भजितः पुरस्तात् ।
विभिन्नभग्नोद्धृतशालसंघं प्रेक्षांचकार स्मरशत्रुसूनुः ॥३३॥

अन्वयः—ततः व्रजन् स्मर शत्रुसूनुः पुरस्तात् विभिन्नभग्नोद्धृतशाल सङ्घं नन्दननामधेयम् जम्भजितः लीलावनम् प्रेक्षाञ्चकार ।

संजी०—तत इति ॥ ततो गङ्गावलोकनानन्तरं व्रजंश्चलन्स्मरशत्रुसूनुः कुमारः पुरस्तादग्रे । विभिन्नो विदारितः । बाणैः शतरन्ध्रीकृत इति तात्पर्यार्थः । तथा भग्न आमर्दितो मूलं विनोपर्येव शतशकलीकृत उद्धृत उत्पाटितश्च शालसंघो यस्य तत् । 'शालो हाले मत्स्यभेदे शालौकस्तत्प्रभेदयोः । शालद्रुस्कन्धशाखायां शालेति परिकीर्तिता ॥' इति मेदिनी । नन्दननामधेयं नन्दनसंज्ञकम् । 'नन्दनं वनम्' इत्यमरः । जम्भजित इन्द्रस्य लीलावनमुपवनं प्रेक्षांचकार ददर्श । 'इजादेश्च'इत्याम् ॥३३॥

हिन्दी—गङ्गा को प्रणाम करने के पश्चात् आगे बढ़ने पर कामशत्रु शिव के पुत्र कुमार कार्त्तिकेय ने अपने आगे बाणों से विदीर्ण सैकड़ों टुकड़े वाले अथवा मूल को छोड़ कर शाखा के सैकड़ों टुकड़े किये जाने वाले शालसमूहों से व्याप्त नन्दन नामक इन्द्र के लीलावन को देखा ।

सुरद्विषोऽप्लुतमेवमेतद्वनं बलस्य द्विषतो गतश्रि ।
इत्थं विचिन्त्यारुणलोचनोऽभूद्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखः स कोपात् ॥३४॥

अन्वयः—स एतत् बलस्य द्विषतः वनम् सुरद्विषः एव उपप्लुतम् (अतएव) गतश्रि इत्थं विचिन्त्य कोपात् अरुणलोचनः भ्रूभङ्ग दुष्प्रेक्ष्यमुख अभूत् ।

संजी०—सुरद्विषेति ॥ स कुमारः । एतत्पुरोवर्ति बलस्य द्विषत इन्द्रस्य । अत्र 'नलोक–' इत्यादिना षष्ठीनिषेधेऽपि 'द्विषः शतुर्वा' इति विकल्पात्षष्ठी । वनमुपवनं सुरद्विषा तारकेणैव न केनापि । यथा तारकेणोपद्रुतं तथा न केनापीत्यवधारणार्थकैवकारेण ध्वन्यते । 'एव प्रकारोपमयो-

रङ्गीकारावधारणे' इति विश्वः। अभितः सर्वतः। उपप्लुतमुपद्रुतमत एव गतश्रि नष्टशोभमित्थं विचिन्त्य कोपादरुणे लोचने यस्य तथा भ्रूभङ्गेन दुष्प्रेक्ष्यं दुर्दर्शं मुखं यस्य तथोक्तश्चाभूत्। महतां सतिस्वस्मिन्परदुःखं महा-दुःखावहं भवतीति भावः ॥३४॥

हिन्दी—उन कुमार कार्त्तिकेय ने इन्द्र के उस उजड़े वन को देखते ही समझ लिया कि इसे तारकासुर ने ही नष्ट-भ्रष्ट किया होगा। इसलिये क्रोध के कारण उनके नेत्र तमतमा कर लाल हो गये और भ्रुकुटियों के तन जाने से उनका मुख दुष्प्रेक्ष्य हो गया।

निर्लूनलीलोपवनामपश्यद् दुःसंचरीभूतविमानमार्गाम् ।
विध्वस्तसौधप्रचयां कुमारो विश्वैकसारामरावतीं सः ॥३५॥

अन्वयः—सः कुमारः निर्लूनलीलोपवनाम् दुःसंचरीभूतविमानमार्गाम् विध्वस्त-सौधप्रचयाम् विश्वैकसाराम् अमरावतीं ददर्श।

संजी०—निर्लूनेति ॥ स कुमारः कार्तिकेयः निर्लूनानि कर्तितानि लीलायाः क्रीडाया उपवनानि यस्याम्। तथा दुःखेन संचरः संचारो येषु तथाभूता विमानमार्गा विमानसंचारपथा यस्याम्। तथा विध्वस्ताः खण्डिताः। स्फोटिता इति यावत्। सौधप्रचया राजसदनसमूहा यस्याम्। 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः। तथा विश्वस्मिन्नेकामेव सारां तत्त्वभूतांताममरावतीमिन्द्रपुरीमपश्यत्। 'नगरी त्वमरावती' इत्यमरः ॥३५॥

हिन्दी—पुनः वहाँ से कुछ आगे बढ़ने पर कुमार ने जहाँ के क्रीडा के उपवन सर्वथा काट डाले गये थे, विमानों के आने-जाने के मार्ग सर्वथा अवरुद्ध कर दिये गये थे किंबहुना जहाँ के बड़े-बड़े महल भी विध्वस्त कर दिये गये थे, ऐसी समस्त विश्व में एक नमूने वाली अमरावती पुरी को देखा।

गतश्रियं वैरिवराभिभूतां दशां सुदीनामभितो दधानाम् ।
नारीमवीरामिव तामवेक्ष्य स बाढमन्तः करुणापरोऽभूत् ॥३६॥

अन्वयः—सः वैरिवराभिभूतां (अतएव) गतश्रियं सुदीनाम् दशाम् अभितः दधानाम् अवीराम् नारीम् इव ताम् अवेक्ष्य अन्तः बाढम् करुणापरः अभूत्।

संजी० गतश्रियमिति ॥ स कुमारः वैरिवरेण तारकेणाभिभूतां पूर्वोक्त-विधिना पराभूताम्। पराभवोऽत्र विध्वंसनक्रियानुकूलो व्यापारो ग्राह्यः। अत एव गतश्रियं भ्रष्टशोभाम्। अत एव सुतरां दीनां कृपणाम्। अनु-कम्प्यामिति यावत्। दशामवस्थामभितो दधानाम्। अत एवावीरां नपुंसक-

भर्तृकां नारीमिव स्थितांताममरावतीमवेक्ष्यान्तर्मनसि बाढं बहु यथातथा करुणायां पर आसक्तोऽभूत् ॥३६॥

हिन्दी--वह कार्त्तिकेय तारकासुर से पराभूत अतएव श्री रहित चारों ओर से दीन दशा को प्राप्त होने वाली पतिपुत्ररहित नारी के समान उस अमरावती को देखर भीतर से अत्यन्त करुणा पर हो गये।

दुश्चेष्टिते देवरिपौ सरोषस्तस्याविषण्णः समराय चोत्कः ।
तथाविधां तां स विवेश पश्यन्सुरैः सुराधीश्वरराजधानीम् ॥३७॥

अन्वयः दुश्चेष्टिते देवरिपौ सरोषः (तथा) तस्य समराय उत्कः च अविषण्णः सः तथा विधाम् ताम् सुराधीश्वरराधजानीम् पश्यन् सुरैः सह विवेश ।

संजी०—दुश्चेष्टित इति ॥ दुश्चेष्टिते दुष्कर्मणि देवरिपौ तारके विषये सरोषः सक्रोधः । तथा तस्य तत्कर्तृकाय समराय समरं युद्धं कर्तुमुत्कश्च तथाविषण्णोऽनलसः स कुमारः । तथाविधां पूर्वोक्तप्रकारां तां सुराधीश्वरस्येन्द्रस्य राजधानीं पुरीं पश्यन्सन् सुरैः सह विवेश । तदन्तरिति शेषः ॥३७॥

हिन्दी--उस दुराचारी तारकासुर पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उससे युद्ध करने की उत्सुकता में अत्यन्त उतावले कार्त्तिकेय ने इस दुरवस्था को प्राप्त होने वाली देवराज इन्द्र की राजधानी अमरावती को देखते हुये देवताओं के साथ उसमें प्रवेश किया ।

दैतेयदन्त्यावलिदन्तघातैः क्षुण्णान्तराः स्फाटिकहर्म्यपंक्तीः ।
महाहिनिर्मोकपिनद्धजालाः स वीक्ष्य तस्यां विषसाद सद्यः ॥३८॥

अन्वयः—दैतेयदन्त्यावलिदन्तघातैः क्षुण्णान्तराः महाहिनिर्मोकपिनद्धजालाः स्फाटिकहर्म्यपङ्क्तीः वीक्ष्य स सद्यः तस्याम् विषसाद ।

संजी०—दैतेयेति ॥ दैतेयानां दैत्यानां दन्त्यावलिर्गजावलिस्तस्यास्तत्कर्तृका ये दन्तघाता रदनताडितानि तैः क्षुण्णान्तराः क्षोदितमध्या अत एव महाहीनां महासर्पाणां निर्मोकाः कञ्चुकाः । 'समौ कञ्चुकनिर्मोकौ' इत्यमरः । तैः पिनद्धानि जालानि सौधजालानि यासु ताः स्फाटिकहर्म्यपङ्क्तीः स्फटिकनिर्मितसौधनिचयान्वीक्ष्य स सद्यस्तस्यां विषसाद । खिद्यति स्मेत्यर्थः । सद्यः सपदि तत्क्षणे' इत्यमरः ।३८॥

हिन्दी--उस अमरावती में राक्षसों के हाथियों के दाँतों के आघात से पड़े दरारो वाली बड़े-बड़े सांपों के कञ्चुलियों से पिनद्ध वातायनों वाली स्फटिकमणियों के बने प्रासादों की पङ्क्तियों को देख कर कार्त्तिकेय बड़े दुःखी हुये ।

अथ युग्मेनाह—

उत्कीर्णचामीकरपंकजानां दिग्दन्तिदानद्रवदूषितानाम् ।
हिरण्यहंसव्रजवर्जितानां विदीर्णवैदूर्यमहाशिलानाम् ॥३९॥
आविर्भवद्बालतृणाञ्चितानां तदीयलीलागृहदीर्घिकाणाम् ।
स दुर्दशां वीक्ष्य विरोधिजातां विषादवैलक्ष्यभरं बभार ॥४०॥

अन्वयः—सः उत्कीर्ण चामीकरपङ्कजानाम् दिग्दन्तिदानद्रवदूषितानां हिरण्यहंसव्रजवर्जितानाम् विदीर्णवैदूर्यमहाशिलानाम् आविर्भवद्बालतृणाञ्चितानां तदीयलीलागृहदीर्घिकाणाम् । विरोधिजाताम् दुर्दशां वीक्ष्य विषादवैलक्ष्य भरम् बभार ।

संजी०—उत्कीर्णेति आविर्भवदिति च ॥ स कुमारः । उत्कीर्णान्युत्खनितानि चामीकरस्य सुवर्णस्य पङ्कजानि कमलानि यासाम् । उत्खनितसुवर्णकमलानामित्यर्थः । तथा दिग्दन्तिनामैरावतादीनां दानाः खण्डनाः । तज्जेतारस्तारकगजाः । कर्तरि ल्युट् । तेषां द्रवो मदजलं तेन दूषितानां म्लानीकृतानाम् । तारककुम्भीन्द्रमदकलुषीकृतजलानामित्यर्थः । हिरण्यप्रचुरा ये हंसास्तेषां व्रजेन वर्जितानां रहितानाम् । दैत्योपद्रवादिति भावः । तथा विदीर्णाः स्फोटिता वैदूर्याणां रत्नविशेषाणां महत्यः शिला यासाम् । तथाविर्भवन्त्युदयमानानि कानि बालतृणानि शष्पाणि तैरञ्चितानां व्याप्तानाम् । तदीया ऐन्द्रचो या लीलार्थं गृहदीर्घिका गृहवापिकास्तासां संबन्धिनीम् । विरोधिभ्योऽरिभ्यो जातां दुर्दशां दुष्टावस्थां वीक्ष्य विषादवैलक्ष्ययोः खेदलज्जयोर्भरम् । बह्वचौ विषादलज्जे इत्यर्थः । बभार । दुर्दशादर्शनजनितकरुणाबीजं दुःखं मयि सत्यपि सुदुर्दशेति लज्जाहेतुरित्यर्थः ॥४०॥

हिन्दी—उन देवताओं के विलासभवनों की बावलियों के सुनहले कमल उखाड़ डाले गये थे । उनका जल ऐरावतादि दिग्गजों को परास्त करने वाले तारकासुर के हाथियों के मदजल से दूषित कर दिया गया था, अब उनमें सुनहले राजहंस दिखाई नहीं पड़ रहे थे वैदूर्य मणियों से निर्मित उनकी सीढ़ियाँ भी टूट फूट चुकी थीं और उनके चारों ओर छोटे-छोटे तृण उग आये थे—इस प्रकार शत्रुओं के द्वारा की गई अमरावती के बावलियों की दुर्दशा देख कर कुमार विषाद और लज्जा से भर गये ।

तद्दन्तिदन्तक्षतहेमभित्ति सुतन्तुजालाकुलरत्नजालम् ।
निन्ये सुरेन्द्रेण पुरोगतेन स वैजयन्ताभिधमात्मसौधम् ॥४१॥

अन्वयः—सः सुरेन्द्रण पुरोगतेन तद्दन्तिदन्तक्षतभित्तिः सुतन्तु जालाकुलरत्नजालम् (तथा) वैजन्ताभिधम् आत्मसौधम् निन्ये ।

संजी०--तद्दन्तीति ॥ स कुमारः सुरेन्द्रेणेन्द्रेण पुरोगतेनाग्रण्या सता तस्य तारकस्य दन्तिनां गजानां दन्तैः क्षताः क्षुण्णा हैम्यो भित्तयः कुड्यानि यस्मिन्यस्य वा। सुतन्तवो लूतानां शोभनानि सूत्राणि तेषां जालेनाकुलं व्याकुलं रत्नजालं रत्नसमूहो यस्मिन् तथा वैजयन्ताभिधं वैजयन्तसंज्ञकम्। 'स्यात्प्रासादो वैजयन्तः' इत्यमरः। आत्मसौधं स्वराजसदनं निन्ये प्रापितः। कर्मणि लिट् ॥४१॥

हिन्दी--इसके पश्चात् आगे-आगे चलते हुये इन्द्रदेव राक्षसों के हाथियों के दाँत के टक्कर से क्षत-विक्षत भित्तियों वाले, जहाँ के रत्ननिर्मित वातायनों में मकड़ियों के तन्तु के जाले लगे हुये थे, ऐसे अपने वैजयन्त नामक राजभवन में कुमार को ले गये।

निर्दिष्टवर्त्मा विबुधेश्वरेण सुरैः समग्रैरनुगम्यमानः।
स प्राविशत्तं विविधाश्मरश्मिच्छिन्नेन सोपानपथेन सौधम् ॥४२॥

अन्वयः — सः विबुधेश्वरेण समग्रैः सुरैः अनुगम्यमानः (सन्) विविधाश्मराशिमच्छिन्नेन सोपानपथेन तम् सौधम् प्राविशत्।

संजी०--निर्दिष्टेति ॥ स कुमारः। विबुधेश्वरेणेन्द्रेण कर्त्रा। निर्दिष्टवर्त्मेतो गमनं विधेयमित्युक्तिपूर्वकप्रदर्शितमार्गः। तथा समग्रैः सुरैर्देवैरनुगम्यमानोऽनुस्त्रियमाणः सन्। विविधा अनेकवर्णा येऽश्मानो रत्नानि तेषां रश्मिभिः किरणैश्छिन्नेन भिन्नेन। रहितेनेति यावत्। तारककृतसोपानखचितरत्नोत्पाटनादिति भावः। सोपानपथेनारोहणमार्गेण। 'आरोहणं स्यात्सोपानम्' इत्यमरः। तं सौधं प्राविशत् ॥४२॥

हिन्दी--कुमार कार्त्तिकेय जिनके पीछे-पीछे इन्द्र तथा अन्य समस्त देवगण चल रहे थे, तारकासुर द्वारा उखाड़ लिये जाने से रत्नों की किरणों से रहित सीढ़ियों पर होते हुये उस महल में प्रविष्ट हुये।

निसर्गकल्पद्रुमतोरणं तं स पारिजातप्रसवस्रगाढ्यम्।
दिव्यैः कृतस्वस्त्ययनं मुनीन्द्रैरन्तः प्रविष्टप्रमदं प्रपेदे ॥४३॥

अन्वयः - सः निसर्गकल्पद्रुमतोरणम् (तथा) पारिजातप्रसवस्त्रगाढ्यम् दिव्यैः मुनीन्द्रैः कृतस्वस्त्यनम् अन्तः प्रविष्टप्रमदम् तम् प्रपेदे।

संजी०—निसर्गेति ॥ स कुमारः। निसर्गेण स्वभावेन। अनायासेनेति यावत्। 'निसर्गः शीलसर्गयोः' इति विश्वः। कल्पद्रुमा एव तोरणानि यत्र। तथा पारिजातस्य देववृक्षविशेषस्य प्रसवानां पत्रपुष्पाणां स्रजा मालयाढ्यं

युक्तम् । पूजनार्थमनेकपत्रपुष्पसहितमित्यर्थः । तथा दिव्यैः स्वर्गीयमुनीन्द्रैः कश्यपादिभिः कृतस्वस्त्ययनं विहितस्वस्तिवाचनम् । तथान्तःप्रविष्टा मध्यं प्रविश्य स्थिताः प्रमदाः स्त्रियो यत्र तं सौधं प्रपेदे प्राप ॥४३॥

हिन्दी—कुमार कार्तिकेय स्वाभावतः भी कल्पवृक्षों से बने तोरणों वाले कभी पारिजातपुष्पों की प्रचुर मालाओं से सजे हुये, कभी देवर्षियों से विहित स्वस्त्ययन वाले तथा कभी सुन्दर अप्सराओं के निवास वाले उस भवन में प्रविष्ट हुये ।

पादौ महर्षेः किल कश्यपस्य कुलादिवृद्धस्य सुरासुराणाम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिः सन्षड्भिः शिरोभिः स नतैर्ववन्दे ॥४४॥

अन्वयः—सः सुरासुराणाम् कुलादिवृद्धस्य कश्यपस्य महर्षि पादौ किल प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिः सन् नतैः षड्भिः शिरोभिः ववन्दे किल ।

संजी०—पादाविति ॥ स कुमारः । सुरासुराणां देवदैत्यानां कुल आदिवृद्धस्य कश्यपस्य महर्षेः पादौ चरणौ कर्मभूतौ । प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिः सन् । नतैः षड्भिः शिरोभिर्ववन्दे नमश्चक्रे । किलेत्यैतिह्ये ॥४४॥

हिन्दी—उन्होंने देवताओं तथा दानवों के कुल के आदिवृद्ध कश्यप महर्षि के चरणों की प्रदक्षिणा कर पुनः हाथ जोड़े विनम्र हो अपने छहों शिरों से उनको प्रणाम किया ।

स देवमातुर्जगदेकवन्द्यौ पादौ तथैव प्रणनाम कामम् ।
मुनेः कलत्रस्य च तस्य भक्त्या प्रह्वीभवञ्शैलसुतातनूजः ॥४५॥

अन्वयः—सः शैलसुतातनूजः भक्त्या प्रह्वीभवन् (सन्) मुनेः तस्य कलत्रस्य देवमातुः च जगदेकवन्द्यौ पादौ तथैव कामम् प्रणनाम् ।

संजी०—स इति ॥ स शैलसुतातनूजः पार्वतीनन्दनो भक्त्या निमित्तेन प्रह्वीभवन्नम्रीभवन्सन् । मुनेश्च तस्य कलत्रस्य पत्न्याश्च देवानां मातुर्जनन्या अदितेः । जगत एकवन्द्यौ केवलनमस्करणीयौ पादौ तथैव मुनिनमस्कारप्रकारेणैव कामं यथायोग्यं प्रणनाम नमश्चक्रे ॥४५॥

हिन्दी—फिर पार्वतीपुत्र कुमार ने अत्यन्त भक्ति के साथ विनम्र होकर उसी प्रकार कश्यपमुनि की पत्नियों तथा देवमाता अदिति के जगदेव वन्द्य चरणों में उसी प्रकार जैसा (मुनियों को नमस्कार किया था) यथायोग्य प्रणाम किया ।

स कश्यपः सा जननी सुराणां तमेधयामासतुराशिषा द्वौ ।
तया यया नैकजगज्जिगीषुं जेता मृधे तारकमुग्रवीर्यम् ॥४६॥

अन्वयः—सः कश्यपः सा सुराणां जननी (एतौ) द्वौ तम् तया आशिषा एधयामासतुः यया उग्रवीर्यं नैकजगज्जिगीषुम् तारकम् मृधे जेता (भवेत्) ।

संजी०—स इति ॥ स कश्यपो मुनिः, सा सुराणां जनन्यदितिः, एतौ द्वौ तं कुमारं तयाशिषाशीर्वादेनैधयामासतुर्वर्धयतः स्म। ययाशिषा निमित्तेनो-ग्रवीर्यमत एव नैकजगन्त्यनेकजगन्ति। त्रीणि जगन्तीत्यर्थः। जिगीषुं जेतु-मिच्छुम्। 'न लोक-' इति षष्ठीनिषेधः। तारकं दैत्यं मृधे संगरे जेता। जेष्यतीत्यर्थः। कर्तरि लुट् ॥४६॥

हिन्दी—महर्षि कश्यप और उन देवमाता अदिति, इन दोनों ने इस प्रकार के आशीर्वाद से कार्त्तिकेय के उत्साह को बढ़ाया जिससे वे प्रचण्ड पराक्रम वाले तथा तीनों लोकों को जीतने की इच्छा वाले उस तारकासुर को युद्ध में अवश्य जीत लेवें।

स्वदर्शनार्थं समुपेयुषीणां सुदेवतानामदितिश्रितानाम्।
पादौ ववन्दे पतिदेवतास्तमाशीर्वचोभिः पुनरभ्यनन्दन् ॥४७॥

अन्वयः—सः स्वदर्शनार्थम् समुपेयुषीणाम् अदितिश्रितानाम् पादे ववन्दे। अथ च पतिदेवता (तास्तु) आशीर्वचोभिः पुनः तम् अभ्यनन्दन्।

संजी०—स्वेति ॥ स कुमारः। स्वदर्शनार्थं स्वावलोकनार्थं समुपेयुषीणां प्राप्नुवतीनाम्। तथादितिं देवमातरं श्रितानाम्। देवमातुराश्रयेण जीवन्ती-नामित्यर्थः। सुशोभनाः सौभाग्यवत्यो या देवतास्तासां पादौ चरणौ ववन्दे प्रणनाम। अथ च पतिरेव देवता यासां ताः पतिव्रतास्ता देवतास्त्वा-शीर्वचोभिः 'त्वं जय' इत्यादिभिः पुनस्तं कुमारमभ्यनन्दन्। अस्तुव-तेत्यर्थः ॥४७॥

हिन्दी—तदनन्तर अपने दर्शन के लिये आई हुई अदिति के आश्रित रहित रहने वाली अनेक देवाङ्गनाओं के चरणों की कुमार ने वन्दना की, तदनन्तर उन पतिव्रताओं ने भी अपने आशीर्वचनों से कुमार का संवर्धन किया।

पुलोमपुत्रीं विबुधाधिभर्तुस्ततः शचीं नाम कलत्रमेषः।
नमश्चकार स्मरशत्रुसूनुस्तमाशिषा सा समुपाचरच्च ॥४८॥

अन्वयः—ततः नाम एषः स्मरशत्रुसूनुः विबुधाधिभर्तुः कलत्रम् शचीम् पुलोम् पुत्रीम् नमश्चकार (अथ च) सा आशिषा तम् समुपाचरत् च।

संजी०—पुलोमपुत्रीमिति ॥ ततोऽनन्तरम्। नामेति योग्यताप्रतिपाद-कमव्ययम्। अव्ययानामनेकार्थत्वात्। ततश्च प्रणामकर्तृत्वयोग्य इत्यर्थः। न च पुलोमपुत्र्या एव प्रणामार्हत्वविवक्षया विशेषणता स्यादिति वाच्यम्। विबुधाधिभर्तृसंबन्धोद्घाटनेनैव ध्वनितत्वात्। एष स्मरशत्रुसूनुः कुमारो विबुधानां देवानामधिभर्तुरिन्द्रस्य कलत्रं स्त्रीभूतां शचीं शचीसंज्ञिकां पुलोम-

पुत्रीं नमश्चकार । अथ च सेन्द्राण्याशिषाशीर्वादेन तं कुमारं समुपाचरत् । अवर्धयदित्यर्थः ॥४८॥

हिन्दी—इसके पश्चात् कामशत्रु महादेव के पुत्र उन कार्त्तिकेय ने पुलोमपुत्री तथा देवराज इन्द्र की पत्नी शची को नमस्कार किया । उन्होंने भी अपने आशीर्वाद से कुमार का अभिवर्द्धन किया ।

अथादितीन्द्रप्रमदाः समेतास्ता मातरः सप्त घनप्रमोदाः ।
उपेत्य भक्त्या नमते महेशपुत्राय तस्मै ददुराशिषः प्राक् ॥४९॥

अन्वयः—अथ घनप्रमोदाः समेताः ताः अदितीन्द्रप्रमदाः सदा मातरः भक्त्या उपेत्य नमते तस्मै महेशपुत्राय आशिषः प्राक् ददुः ।

संजी० अथेति ॥ अथानन्तरं घनप्रमोदाः सान्द्रानन्दाः । कुमारावलोकनादिति भावः । अत एव समेता एकत्रभूतास्ता अदितीन्द्रस्य कश्यपस्य प्रमदाः स्त्रियः सप्त मातरो ब्राह्मीप्रभृतयो भक्त्या निमित्तेनोपेत्य समीपमागत्य नमते नमस्कुर्वते तस्मै महेशपुत्राय कुमाराय तारकविजयसाधना आशिष आशीर्वादात् प्राङ्नमस्कारात्पूर्वमेव ददुः ॥४९॥

हिन्दी—फिर कुमार ने अत्यन्त आनन्द से अपने को देखने के लिये विह्वल और एकत्र होकर आई हुई कश्यप की उन स्त्रियों को भी प्रणाम किया जो सदा माताओं के नाम से विख्यात हैं, तथा जिन्होंने भक्ति से आकर नमस्कार करने वाले महेश्वर के पुत्र कार्त्तिकेय को अपना आशिष पहले ही दे दिया था ।

समेत्य सर्वेऽपि मुदं दधाना महेन्द्रमुख्यास्त्रिदिवौकसोऽथ ।
आनन्दकल्लोलितमानसं तं समभ्यषिञ्चन्पृतनाधिपत्ये ॥५०॥

अन्वयः—अथ मुदं दधानाः महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे अपि त्रिदिवौकसः आनन्दकल्लोलितमानसम् तम् पृतनाधिपतये समभ्यषिञ्चन् ।

संजी०—सेति ॥ अथानन्तरं मुदं दधाना महेन्द्रमुख्या इन्द्रप्रभृतयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसो देवा आनन्देन भावितारकयुद्धकर्तृत्वजन्मना कल्लोलितं तरंगितं मानसं सर एव मानसं चेतो यस्य तम् । महानन्दमित्यर्थः । तं कुमारं पृतनाधिपत्ये सैनापत्ये समभ्यषिञ्चन्नभिषिक्तमकुर्वन् ॥५०॥

हिन्दी—इसके बाद अत्यन्त आनन्द के साथ एकत्रित हुये इन्द्र आदि सभी देवताओं ने आनन्द से तरङ्गित मानस वाले उन कुमार कार्त्तिकेय का सेनापतित्व पद पर अभिषेक किया ।

सकलविबुधलोकः त्रस्तनिःशेषशोकः
कृतरिपुविधनाशः प्राप्तयुद्धावकाशः ।

अजनि हरसुतेनानन्तवीर्येण तेना-
खिलविबुधचमूनां प्राप्य लक्ष्मीमनूनाम् ॥५१॥

अन्वयः—अनन्तवीर्येण अनूनाम् अखिलविबुधचमूनाम् लक्ष्मीम् प्राप्य तेन हरसुतेन सकलविबुधलोकः कृतरिपुविजयाशः प्राप्तयुद्धावकाशः अजनि ।

संजी०—सकलेति ॥ अनन्तवीर्येणापारपराक्रमेणात एवानूनां महतीमखिला या विबुधचम्बो देवसेनास्तासां लक्ष्मीं वैभवं प्राप्य स्थितेन तेन हरसुतेन हरसुतसाहाय्येनेत्यर्थः । सकलविबुधलोकः समस्तवृन्दारकनिचयः । स्रस्ताः ध्वस्ताः । नष्टा इति यावत् । निःशेषाः समग्राः शोका यस्य । तथा कृता रिपोस्तारकस्य विजय आशा येन । तथा प्राप्तो युद्धायावकाशोऽवसरो येन । तथा भूतश्चाजनि जातः । कुण्ठितवीर्याणां सवीर्यसाहाय्यमेव कार्यसिद्धिहेतुर्भवतीति भावः । मालिनीवृत्तमेतत् । लक्षणं तु पूर्वमेवोक्तम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीता-
रामकविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया
समेतः श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये
कुमारसैनापत्याभिषेको नाम
त्रयोदशः सर्गः ॥

हिन्दी—अनन्तपराक्रम से महती तथा संपूर्ण देवगणों की सेनाओं को एवं लक्ष्मी को प्राप्त करने के पश्चात् उन महेशपुत्र से समस्त देवगण अब शत्रु पर विजय प्राप्त करने की आशा करने लगे और उन्हें युद्ध करने का अवसर भी मिल गया ।

विमर्श—कुण्ठित वीर्यवालों को जब पराक्रमशील कोई सहायक प्राप्त होता है तो उन्हें युद्ध द्वारा विजय की आशा होने लगती है ।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग
की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः

रणोत्सुकेनान्धकशत्रुसूनुना समं प्रयुक्तैस्त्रिदशैर्जिगीषुणा ।
महासुरं तारकसंज्ञकं द्विषं प्रसह्य हन्तुं समनह्यत द्रुतम् ॥१॥

अन्वयः—जिगीषुणा रणोत्सुकेन अन्धकशत्रुसूनुना प्रयुक्तैः त्रिदशैः समम् तारकसंज्ञकं द्विषं महासुरम् प्रसह्य हन्तुं द्रुतं समनह्यत ।

संजी०—रणेति ॥ जेतुमिच्छति जिगीषति । जिगीषतीति जिगीषुस्तेन जिगीषुणा । सन्नन्ताज्जयतेः 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युप्रत्ययः । अत एव रणे समरे । 'रणः कोणे क्वणे पुंसि समरे पुंनपुंसकम्' इति मैदिनी । उत्सुकेनोत्कण्ठितेनान्धकशत्रोः शिवस्य सूनुना कुमारेण कर्त्रा । प्रयुक्तैः प्रेरितैः । संनहनार्थमिति शेषः । त्रिदशैर्देवैरिन्द्रादिभिः समं साधं तारकसंज्ञकं द्विषं शत्रुं महासुरं दैत्यं प्रसह्य बलाद्धन्तुं मारयितुं द्रुतं शीघ्रम् । 'लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः । समनह्यत संनद्धम् । नह्यतेर्भावे लङ् । सर्गेऽस्मिन्नपि वृत्तमुपजातिरेव ॥ १ ॥

हिन्दी—विजय की अभिलाषा लिये युद्ध के लिये उत्सुक शिवपुत्र की प्रेरणा से समस्त देवताओं ने एक साथ ही तारकासुर नामक अपने शत्रुभूत उस महासुर को बलात् मारने के लिये कवचादि पहनना प्रारम्भ किया ।

इतः परं 'सः' इत्यादिभिस्त्रिभिः कुमारसंनहनमाह—

स दुर्निवारं मनसोऽतिवेगिनं जयश्रियः संनयनं सुदुःसहम् ।
विजित्वरं नाम तदा महारथं धनुर्धरः शक्तिधरोऽध्यरोहयत् ॥२॥

अन्वयः—सः धनुर्धरः शक्तिधरः दुर्निवारम् मनसः अतिवेगिनम् (तथा) जयश्रियः संनयनम् सुदुःसहम् विजित्वरम् नाम (दधानं) महारथं तदा अध्यरोहयत् ।

संजी०—तत्र स इति ॥ स गुहः कार्तिकेयो धनुर्धरस्तथा शक्तिधरश्च सन्दुर्निवारं दुःखेन निवारयितुं प्रतिरोद्धुं शक्यम् । अप्रतिरुद्धगतिकमित्यर्थः । मनसः सकाशादप्यतिवेगिनम् । बहुगतिजववन्तमित्यर्थः । इहातिनाम बहुश्चासौ जवश्च । स विद्यते यस्येति कृते 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः' इति निषेधप्रसक्त्या मत्वर्थीयो न स्यात् । अतोऽतीत्यस्य क्रियाविशेषणतामाश्रित्य

समर्थनीयम् । केचित्पुनः 'मनसोऽपि' इति पठित्वा व्याचक्षते । तथा जयश्रियो विजयलक्ष्म्याः संनयनं सम्यक्प्राप्तिसाधनम् । यमारुह्य गच्छन्तो वीराः सजयलक्ष्मीका एव भवन्तीति भावः । सुतरां दुःसहम् । दुःसहता चैतद्दर्शनविषयिणी बोध्या । एतद्दर्शनेनैव शत्रवः पराजिता भवन्ति । अतो युक्तमेव जयश्रीसंनयनत्वम् । अत एव विजित्वरम् । विजित्वरेत्यानुपूर्विकं नाम । नामत्वं च व्यक्तिबोधजनकतावच्छेदकसकेतत्वम् । दधानमिति शेषः । तथाभूतं महारथं महान्तं स्यन्दनम् । 'रथः पुमानवयवे स्यन्दने वेतसेऽपि च' इति मेदिनी । तदाध्यरोहयदारुरोह ।। २ ।।

हिन्दी—इसके बाद धनुष तथा शक्ति को धारण करने वाले कुमार कार्त्तिकेय अप्रतिहत वेगवाले मन से भी अधिक वेगगामी विजयश्री को निश्चित रूप से प्राप्त करने वाले अत्यन्त दुर्द्धर्ष विजित्वर नाम के महारथ पर स्वयम् आरूढ़ हो गये ।

सुरालयश्रीविपदां निवारणं सुरारिसंपत्परितापकारणम् ।
केनापि दध्रेऽस्य विरोधिदारणं सुचारु चामीकरघर्मवारणम् ।।३।।

अन्वयः—विरोधिदारणम् सुरालयश्रीविपदाम् निवारणं सुरारिसंपत् परितापकारणं सुचारु चामीकरघर्मवारणम् अस्य केनापि दध्रे ।

संजी०—सुरालयेति ।। विरोधिनं तारकं दारयति मारयति तद्विरोधिदारणम् । णिजन्तप्रयोगं कुर्वता कविना छत्रस्य जडत्वात्स्वातन्त्र्येण दारणक्रियोपयोगित्वासंभवात्तदीयधारणप्रभावेण वीरोऽप्यसौ कुमारस्तारकं जेष्यतीति सूचितम् । 'ओजसापि खलु नूनमनूनं नासहायमुपयाति जयश्रीः' इति न्यायादिति भावः । अत एव सुरालयस्य स्वर्गस्य श्रियो लक्ष्म्या विपदामापदां निवारणं नाशकम् । अत एव सुरारेस्तारकस्य संपदां परितापस्य संतापस्य कारणं कर्तृ । सर्वत्र कर्तरि ल्युट् । सुचारु सुतरां मनोहरं चामीकरस्य हेम्नो घर्मवारणं छत्रम् । अस्य कुमारस्योपरि केनापि देवेन दध्रे धृतम् । कर्मणि लिट् ।। ३ ।।

हिन्दी—तदनन्तर विरोधी तारकासुर को विदीर्ण करने वाला अतएव स्वर्गश्री की विपत्तियों को दूर करनेवाला तारक की संपत्तियों को संताप उत्पन्न करनेवाला अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमय छत्र उन कार्तिकेय के ऊपर किसी ने लगा दिया ।

शरच्चरच्चन्द्रमरीचिपाण्डुरैः स वीज्यमानो वरचारुचामरैः ।
पुरः सरैः किंनरसिद्धचारणै रणेच्छुरस्तूयत वाग्भिरुल्बणैः ।।४।।

अन्वयः—शरच्चरच्चन्द्रमरीचिपाण्डुरैः वरचारुचामरैः वीज्यमानः रणेच्छुः सः उल्बणैः किन्नरसिद्धचारणैः पुरः सरैः वाग्भिः अस्तूयत ।

संजी०—शरदिति ॥ शरदि घनात्यये चरतो भ्रमतश्चन्द्रस्य मरीचयो मयूखास्तद्वत्पाण्डुरैः शुभ्रैः । 'शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्येतपाण्डुराः' इत्यमरः । चरत इति विशेषणं चामराणामपि वीजनवशेन चलत्वादन्वर्थमिति बोध्यम् । तथाभूतैर्वरैः श्रेष्ठैः । 'वरो जामातरि वृतौ देवतादेरभीप्सिते । पिङ्गे पुंसि त्रिषु श्रेष्ठे कुङ्कुमे तु नपुंसकम्' इति मेदिनी । चारुभिर्मनोहरैश्च चामरैर्वीज्यमानः । तथा रणेच्छुः संग्रामाभिलाषुकः स कुमार उल्बणैरुद्भटैः किंनराः किंपुरुषाः । 'स्यात्किंनरः किंपुरुषः' इत्यमरः । सिद्धा देवविशेषाश्चारणाश्च तैः कर्तृभिः । पुरःसरैः सद्भिर्वाग्भिः कृतवास्तूयतेडितः । 'ष्टु स्तुतौ' इत्यतः कर्मणि लङ् ॥ ४ ॥

हिन्दी—शरत्काल में चलते हुये चन्द्रमा के किरणों के समान गौर वर्णवाले अत्यन्त मनोहर चाँवरों से वीज्यमान एवं युद्ध की अभिलाषा धारण किये उन कुमार कार्त्तिकेय की उद्भट किन्नर, सिद्ध और चारणों ने उनके आगे खड़े होकर मनोहर वाणी से स्तुति की ।

इदानीमिन्द्रादीनामष्टानामनुप्रयाणमाह—

प्रयाणकालोचितचारुवेषभृद्वज्रं वहन्पर्वतपक्षदारणम् ।
ऐरावतं स्फाटिकशैलसोदरं ततोऽधिरुह्य द्युपतिस्तमन्वगात् ॥५॥

अन्वयः—ततः द्युपतिः प्रयाणकालोचितचारुवेषभृत् पर्वतपक्षदारणम् वज्रम् वहन् (तथा) स्फाटिकशैलसोदरम् ऐरावतम् अधिरुह्य तम् अन्वगात् ।

संजी०—प्रयाणेति ॥ ततोऽनन्तरं द्युपतिरिन्द्रः प्रयाणकाले प्रस्थानसमय उचितं योग्यं चारु मनोहरं च वेषं बिभर्ति धरति तथोक्तः । तथा पर्वतपक्षाणां दारणं छेदनम् । करणे ल्युट् । वज्रं स्वायुधं वहन् । करेणेति शेषः । तथा स्फाटिकशैलः कैलासस्तस्य सोदरं सदृशमैरावतं गजमधिरुह्यास्थाय तं कुमारमन्वगात् । अनुययावित्यर्थः । 'अभ्यगात्' इति पाठस्त्वसाधुः । सेनानीत्वेन वृतत्वादतिश्रेयःकुमारापेक्षयान्येषामिन्द्रादीनामपि गौणत्वात्पुरतो गमनानौचित्यात् ॥ ५ ॥

हिन्दी—तदनन्तर इन्द्र भी प्रयाणकालोचित वेष धारण कर पर्वतों के पङ्खों को काटने वाले वज्र को हाथ में धारण कर स्फटिक पर्वत के समान स्वच्छ तथा ऊँचे अपने ऐरावत हाथी पर सवार हो उन का अनुगमन करने लगे ।

तमन्वगच्छद्गिरिश्रृङ्गसोदरं मदोद्धतं मेषमधिष्ठितः शिखी ।
विरोधिविद्वेषरुषाधिकं ज्वलन्महोमहीयस्तरमायुधं दधत् ॥६॥

अन्वयः—विरोधिविद्वेषरुषा अधिकम् ज्वलन् शिखी गिरिश्रृङ्गसोदरम् (तथा) मदोद्धतम् मेषम् अधिष्ठितः महोमहीयस्तरम् आयुधम् दधत् तम् अन्वगच्छत् ।

संजी०—तमिति ।। विरोधिनस्तारकस्य विद्वेषेण वैरेण हेतुना या रुट् क्रोधस्तया निमित्तेनाधिकं ज्वलन्प्रदीप्यमानः शिखिगिर्गिरेः शृङ्गस्य सोदरं सदृशम् । तद्वद्विशालमित्यर्थः । तथा मदेन गर्वेण । 'मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः' इति मेदिनी । उद्धतं मेषं पशुविशेषं लोके 'मेंढा' इति ख्यातमधिष्ठितोऽधिरूढः । तथा महसा तेजसा महीयस्तरमतिशयं महदायुधं शस्त्रं दधत् । अथवा 'महोमहीयस्तरम्' इति छेदः । महस्तेजोरूपं महीयस्तरमायुधमिति व्याख्यातव्यम् । दधत्सन् । तं कुमारमन्वगच्छदनुगतवान् । अत्राप्यभ्यगच्छदित्यसाधु बोध्यम् ।।६।।

हिन्दी—शत्रु के विनाश के लिये उत्पन्न क्रोध से और अधिक जलते हुये अग्निदेव भी पहाड़ की चोटी के समान ऊँचे मतवाले अपने मेष पर चढ़कर अत्यन्त महान् से भी महान् अपना अस्त्र-शस्त्र लिये उन कार्त्तिकेय के पीछे-पीछे चलने लगे ।

अथेन्द्रनीलाचलचण्डविग्रहं विषाणविध्वस्तमहापयोधरम् ।
अधिष्ठितः कासरमुद्धरं मुदा वैवस्वतो दण्डधरस्तमन्वगात् ।।७।।

अन्वयः—अथ वैवस्वतः इन्द्रनीलचलचण्डविग्रहम् विषाणविध्वस्तमहापयोधरम् उद्धतम् कासरम् अधिष्ठितः दण्डधरः (सन्) मुदा तम् अन्वगात् ।

संजी०—अथेति ।। अथानन्तरं वैवस्वतो यमः । 'कालो दण्डधरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः' इत्यमरः । इन्द्रनीलानां नीलमणीनामचलः पर्वतस्तद्वच्चण्डविग्रहं प्रचण्डदेहम् । कालत्वाद्भयानकमित्यर्थः । तथा विषाणाभ्यां शृङ्गाभ्यां विध्वस्ता अधःपातिता महापयोधरा बृहन्मेघा येन तथा । उद्धरमुद्भटं कासरं महिषम् । 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । अधिष्ठितोऽधिरूढः तथा दण्डं धरतीति तथाभूतश्च सन् । मुदा प्रीत्या तं कुमारमन्वगादनुजगाम ।।७।।

हिन्दी—इसके बाद यमराज भी इन्द्रनील पहाड़ के समान ऊँचे तथा काले शरीर से भयङ्कर दिखाई पड़ने वाले अपने सींगों के अग्रभाग से बड़े-बड़े बादलों को फाड़ फेंकने वाले मदोन्मत्त अपने महिष पर सवार हो दण्ड धारण किये अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कार्त्तिकेय का अनुगमन करने लगे ।

मदोद्धतं प्रेतमथाधिरूढवांस्तमन्धकद्वेषितनूजमन्वगात् ।
महासुरद्वेषविशेषभीषणः सुरोषणश्चण्डरणाय नैर्ऋतः ।।८।।

अन्वयः—अथ महासुरद्वेषविशेषभीषणः सुरोषणः नैर्ऋतः महोद्धतम् प्रेतम् अधिरूढवान् (सन्) चण्डरणाय तम् अन्धकद्वेषितनूजं अन्वगात् ।

संजी० --मदोद्धतमिति ।। अथानन्तरं महासुरद्वेषेण तारकासुरवैरेण विशेषमधिकं यथा तथा भीषणो भयानकः । 'भीषणं रसशल्लक्योर्ना गाढे दारुणेऽपि च' इति मेदिनी । तथा सुतरां रोषणः क्रोधनो नैर्ऋतो राक्षसो नैर्ऋतकोणाधीश्वरो मदेन गर्वेणोद्धतं प्रेतं पिशाचमधिरूढवानास्थितवान्सन् । चण्डरणाय प्रचण्डरणं कर्तुं तमन्धकद्वेषिणो हरस्य तनूजं पुत्रं कुमारमन्वगादन्वियाय ।।८।।

हिन्दी --तारकासुर के द्वेष से विशेष भीषण दिखाई पड़ने वाले महाक्रोधी नैर्ऋत मतोन्मत्त प्रेत पर सवार हो भयङ्कर युद्ध करने के लिये उन कुमार के पीछे-पीछे चलने लगा ।

नवोद्यदम्भोधरघोरदर्शने युद्धाय रूढो मकरे महत्तरे ।
दुर्वारपाशो वरुणो रणोल्बणस्तमन्वियाय त्रिपुरान्तकात्मजम् ।।९।।

अन्वयः --रणोल्बणः वरुणः नवोद्यदम्भोधरघोरदर्शने महत्तरे मकरे अधिरूढः दुर्वारपाशः सन् युद्धाय तं त्रिपुरान्तकात्मजं अन्वियाय ।

संजी० --नवेति ।।रणे युद्ध उल्बण उद्भटो वरुणः प्रचेताः । 'वरुणस्तरुभेदेऽप्सु पश्चिमाशापतावपि' इति मेदिनी । नवो नव्यः । 'नवो नव्ये स्तुतौ' इति मेदिनी । उद्यन्नुदयमानो योऽम्भोधरो मेघस्तद्वद्घोरदर्शने भयानकदर्शने । 'घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः । तथा महत्तरेऽतिशयदीर्घे मकरे नक्रे रूढः । तथा दुर्वारः पाश आयुधविशेषो यस्य । पाशधरः सन्नित्यर्थः । युद्धाय युद्धं कर्तुं तं त्रिपुरान्तकस्य शिवस्यात्मजं पुत्रं कुमारमन्वियायान्वगच्छत् ।।९।।

हिन्दी --युद्ध करने में अत्यन्त कर्कश वरुणदेव नवीन उठते हुये बादल के समान महाभयानक दिखाई पड़ने वाले विशाल मकर पर बैठकर हाथों में दुर्निवार पाश लिये युद्ध के लिये कुमार के पीछे-पीछे चलने लगे ।

दिगम्बराधिक्रमणोल्बणं क्षणान्मृगं महीयांसमरुद्धविक्रमम् ।
अधिष्ठितः संगरकेलिलालसो मरुन्महेशात्मजमन्वगाद्द्रुतम् ।।१०।।

अन्वयः --सङ्गरकेलिलालसः मरुत् क्षणात् दिगम्बराधिक्रमणोल्बणम् महीयांसं अरुद्धविक्रमम् क्रमम् मृगम् अधिष्ठितः (सन्) तम् महेशात्मजं द्रुतम् अन्वगात् ।

संजी० --दिगिति ।। संगरकेलौ सङ्ग्रामक्रीडायां लालसा कामो यस्य । 'लालसौत्सुक्यतृष्णातिरेकयाञ्चासु च द्वयोः' इति मेदिनी । तथाभूतो मरुत्पवनो वायुकोणाधीशः क्षणान्मुहूर्तमात्रेणैव । 'क्षणः पर्वोत्सवे च स्यात्तथा मानेऽप्यनेहसि' इति मेदिनी । दिशामम्बरस्य च । 'अम्बरं वाससि व्योम्नि' इति मेदिनी । अधिक्रमण आक्रमण उल्बणमुद्भटं महीयांसं महत्तरम् । अरु-

द्धोऽप्रतिरुद्धो विक्रमो विवत्पक्षिवत्क्रमः पादक्षेपो यस्य तथाभूतं मृगं हरिणम् । 'मृगः पशौ कुरङ्गे च करिनक्षत्रभेदयोः' इति मेदिनी । अधिष्ठितः सन् । तं महेशात्मजं कुमारं द्रुतं सत्वरमन्वगादनुजगाम ॥१०॥

हिन्दी:—युद्धक्रीड़ा की अभिलाषा रखने वाले पवनदेव, दिशाओं एवं आकाश में चौकड़ी भरने वाले, महान् अप्रतिहत पराक्रम वाले अपने मृग पर सवार हो महेश्वरपुत्र कार्त्तिकेय का अनुगमन करने लगे ।

विरोधिना शोणितपारणैषिणीं गदामनूनां नरवाहनो वहन् ।
महाहवाम्भोधिविगाहनोद्धतं यियासुमन्वागमदीशनन्दनम् ॥११॥

अन्वयः—नरवाहनः विरोधिनाम् शोणितपारणैषिणीम् अनूनाम् गदां वहन् महाहवाम्भोधिविगाहनोद्धतम् यियासुम् ईशनन्दनम् अन्वगात् ।

संजी०—विरोधिनामिति ॥ नरवाहनः कुबेरः । 'पौलस्त्यो नरवाहनः' इत्यमरः । विरोधिनां शत्रूणां संबन्धि शोणितं रुधिरं तेन या पारणा भोजनं तामिच्छति तथाभूतामनूनामन्यूनसारां गदामायुधविशेषं वहन्धारयन्सन् । महाहवो महारणः स एवाम्भोधिः समुद्रस्तस्य विगाहन उद्धतमुद्भटम् । समर्थमिति यावत् । अत एव यियासुं जिगमिषुमीशनन्दनं शिवपुत्रं कुमारमन्वागमत् । अनुगच्छति स्मेत्यर्थः ॥११॥

हिन्दी—मनुष्य की सवारी करने वाले कुबेर शत्रुजनों के रक्तों का पान करने की इच्छा करने वाली अपनी विशाल गदा लिये भीषण युद्धरूपी समुद्र में अवगाहन के लिये जाने की इच्छा रखने वाले कार्त्तिकेय का अनुगमन करने लगे ।

महाहिनिर्बद्धजटाकलापिनो ज्वलत्त्रिशूलप्रबलायुधा युधे ।
रुद्रास्तुषाराद्रिसखं महावृषं ततोऽधिरूढास्तमयुः पिनाकिनः ॥१२॥

अन्वयः ततः पिनाकिनः रुद्राः महाहिनिर्बद्धजटाकलापिनः ज्वलत्त्रिसूलप्रबलायुधाः तुषाराद्रिसखं महावृषम् अधिरूढाः युधे तम् अयुः ।

संजी० - महाहीति ॥ ततोऽनन्तरं पिनाकिनः पिनाकवन्तो रुद्रा ईशानकोणाधीशाः महाहिभिर्महद्भिः सर्पैः कृत्वा निर्बद्धो यो जटाकलापः सोऽस्ति येषाम् । अथवा । महाहिभिर्निर्बद्धा जटा येषाम् । 'शेषाद्विभाषा' इति कप् । लापिन इदानीं तारकं जेष्याम इत्युद्धतवादिनश्च । ततो विशेषणसमासः । केचित्तु 'जटाभरावराः' इति पाठं कल्पयन्ति । यथास्थितव्याख्याने तु 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः' इति मत्वर्थीयप्रसङ्गो दुर्वार इत्यलम् । तथा ज्वलद्दीप्यमानं त्रिशूलमेव प्रबलं सबलमायुधं येषाम् । तथा तुषाराद्रेर्हिमवतः सखं

सखायम्। तद्वच्छुभ्रमित्यर्थः महावृषम्। जातावेकवचनम्। अधिरूढाश्च सन्तः। युधे युद्धाय तं कुमारमयुः। अन्वयुरित्यर्थः ॥१२॥

हिन्दी—इसके बाद शिव के रुद्रगण बड़े-बड़े साँपों से अपने जटाजूटों को कसकर बाँधे हुये भयानक त्रिशूल जैसे श्रेष्ठ आयुधों को हाथ में लिये हिमालय जैसे उजले तथा ऊँचे अपने-अपने बैलों पर सवार हो युद्ध करने के लिये कुमार के पीछे-पीछे चल पड़े।

अन्येऽपि संनह्य महारणोत्सवश्रद्धालवः स्वर्गिगणास्तमन्वयुः।
स्ववाहनानि प्रबलान्यधिष्ठिताः प्रमोदविस्मेरमुखाम्बुजश्रियः ॥१३॥

अन्वयः—अन्येऽपि स्वर्गिगणाः प्रमोदविस्मेरमुखाम्बुजश्रियः-महारणोत्सवश्रद्धालव प्रबलानि स्ववाहनानि अधिष्ठिताः संनह्य तम् अन्वयुः।

संजी०—अन्येऽपीति ॥ अन्येऽयुक्तातिरिक्ता अपि स्वर्गिगणा देवगणाः प्रमोदेन रणानन्देन विस्मेरा विशेषेण समन्द हासा मुखाम्बुजश्रीर्येषाम् अतएव महति रणोत्सवे श्रद्धालवः श्रद्धाशीला अत एव प्रबलानि स्ववाहनान्यधिष्ठिताः तथा कवचादिना संनह्य संनद्धा भूत्वा तं कुमारमन्वयुः। अनुजग्मुरित्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी—दूसरे अन्य देवता भी आनन्द की हँसी से प्रफुल्लित मुखों से शोभित उस महारण के उत्सव में श्रद्धायुक्त होकर अत्यन्त बलवान् अपने-अपने वाहनों पर सवार हो कवच धारण किये उन कुमार के पीछे-पीछे चलने लगे।

अथ युग्मेनाह—

उद्दण्डहेमध्वजदण्डसंकुलाश्चञ्चद्विचित्रातपवारणोज्ज्वलाः।
चलद्घनस्यन्दनघोषभीषणाः करीन्द्र घण्टारवचण्डचीत्कृताः ॥१४॥
स्फुरद्विचित्रायुधकान्तिमण्डलैरुद्द्योतिताशावलयाम्बरान्तराः।
दिवौकसां सोऽनुवहन्महाचमूः पिनाकपाणेस्तनयस्ततो ययौ ॥१५॥

अन्वयः—ततः स पिनाकपाणेः तनयः उद्दण्डहेमध्वजदण्डसंकुलाः चञ्चद्विचित्रातपवारणोज्ज्वलाः चलद्घनस्यन्दनघोषभीषणाः करीन्द्रघण्टारवचण्डचीत्कृताः स्फुरद्विचित्रायुधकान्तिमण्डलैः उद्योतिताशावलयाम्बरान्तराः दिवौकसां महाचमूः अनुवहन् ययौ।

संजी०—उद्दण्डेति ॥ स्फुरदिति च ॥ ततः सर्वसंनहनानन्तरं स पिनाकपाणेर्हरस्य तनयः कार्तिकेय उद्दण्डा उच्चनालदण्डा ये हेमध्वजाः सुवर्णविकारध्वजास्तेषां दण्डैर्नालदण्डैः संकुला व्याप्ताः। अनेकध्वजजदण्डवत्य

इत्यर्थः। चञ्चन्ति दीप्यमानानि तथा विचित्राणि हरितपीतादिवर्णयुक्तानि च यान्यातपवारणानि छत्राणि तैरुज्ज्वलाः। कान्तिमत्य इत्यर्थः। चलन्तो ये घना मेघास्त इव ये स्यन्दना रथास्तेषां घोषेणारवेण भीषणाः भयानकाः। तथा करीन्द्राणां मत्तद्विपानां संबन्धीनि घण्टारवाः, चण्डानि भीषणानि चीत्कृतानि च यासु। चीत्कृतेति शब्दानुकृतिः। तथा स्फुरन्ति सर्वतः प्रसरन्ति विचित्राण्यनेकवर्णान्यायुधसंबन्धिनीनां कान्तीनां द्युतीनां मण्डलानि वलयानि तैः कृत्वोद्दद्योतितमुच्चैः शोभितमाशावलयं दिङ्मण्डलमम्बरान्तरमाकाशमध्यं च याभिः। 'अम्बरमवकाशावधि परिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च' इति मेदिनी। एवंविधा दिवौकसां देवानां महाचमूर्महतीः सेना अनु पश्चाद्वहन्सन्। ययौ। जगामेत्यर्थः ॥१४-१५॥

हिन्दी—तदनन्तर कवच धारण के उपरान्त वह कुमार सुनहली पताकाओं को ऊपर उठाने वाले ऊँचे-ऊँचे दण्डों से भरी चमकते हुये हरित, पीतादि वर्णों से विचित्र लगने वाले छत्रों से कान्तियुक्त चलते हुये झुण्ड के झुण्ड रथों की ध्वनि से भयङ्कर लगने वाली, मतवाले हाथियों के घण्टारवों तथा उनके भीषण चीत्कारों से युक्त चारों ओर चमचमाते अस्त्र-शस्त्रों की कान्ति से दिशाओं तथा आकाश के बीच भाग को प्रकाश करती हुई इस प्रकार, देवताओं की उस विशाल सेना के साथ चल पड़े।

कोलाहलेनोच्चलतां दिवौकसां महाचमूनां गुरुभिर्ध्वजव्रजैः।
घनैर्निरुच्छ्वासमभूदनन्तरं दिङ्मण्डलं व्योमतलं महीतलम् ॥१६॥

अन्वयः—उच्चलताम् दिवौकसाम् कोलाहलेन महाचमूनां गुरुभिः घनैः ध्वजव्रजैः निरुच्छ्वासं दिङ्मण्डलं व्योमतलं महीतलः अनन्तरम् अभूत्।

संजी०—कोलाहलेनेति॥ उप्लुत्योड्डीय चलताम्। रोषवशादिति भावः। दिवौकसां देवानां कोलाहलेन घोरघोषेण। तथा महाचमूनां गुरुभिर्विशालैर्घनैः सघनैः। पुष्टैरिति यावत्। ध्वजव्रजैर्ध्वजसमूहैश्च कृत्वा निरुच्छ्वासं निरुद्धश्वासं निरोधहेतुकव्याप्तिमद्दिशां मण्डलं व्योमतलं महीतलमनन्तरमनुद्भासमानभेदमभूत्। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यद्वैतवादिनां ब्रह्मणोऽद्वैतत्वप्रतिपादने निदर्शनमभूदिति भावः ॥१६॥

हिन्दी—उछल-उछल कर चलने वाले देवताओं के कोलाहलों से, तथा उस विशाल सेना की बड़ी-बड़ी घनी ध्वजाओं से श्वास रुक-सा गया और दिशाओं, आकाशमण्डल तथा पृथ्वीमण्डल का अन्तर सभी मिलकर एक-सा हो गया।

सुरारिलक्ष्मीपरिकम्पहेतवो दिक्चक्रवालप्रतिनादमेदुराः ।
नभोऽन्तकुक्षिम्भरयो घनाः स्वना निहन्यमानैः पटहैर्वितेनिरे ॥१७॥

अन्वयः — निहन्यमानैः पटहैः सुरारिलक्ष्मीपरिकम्पहेतवः दिक्चक्रवालप्रतिनाद-मेदुराः नभोऽन्तकुक्षिम्भरयः घनाः स्वनाः वितेनिरे ।

संजी० — सुरारीति ॥ निहन्यमानैस्ताडयमानैः पटहैः कर्तृभिः । 'पटहो ना समारम्भे आनके पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी । 'आनकः पटहोऽस्त्री स्यात्' इत्यमरश्च । सुरारिलक्ष्म्यास्तारकसंपदः संबन्धिनि परिकम्पे हेतवो निदानम् । दिशां चक्रवाले मण्डले । 'चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः । यः प्रतिनादः प्रतिध्वनिस्तेन मेदुराः पुष्टाः । तथा नभोन्तेनाकाशप्रान्तेन । प्रान्तपर्यन्तेने-त्यर्थः । कुक्षिं भरन्ति पिपुरन्ति नभोन्तकुक्षिंभरयः । सर्वं नभो व्याप्नुवन्त इत्यर्थः । 'फलेग्रहिरात्मंभरिश्च' इत्यत्र चात्कुक्षेरपि समावेशात्कुक्षिंभरिरिति सिद्धम् । तया घनाः सान्द्राः स्वनाः शब्दा वितेनिरे । वितस्तरिर इत्यर्थः ॥१७॥

हिन्दी — उस समय युद्ध के नगाड़ों के बजवाये जाने से दैत्यों की राज्यलक्ष्मी को प्रकम्पित करने वाली दिशाओं में प्रतिध्वनित होने से और ऊँची होकर उठने वाली तथा संपूर्ण आकाशमण्डल की कुक्षि में भर जाने वाली गहरी ध्वनि चारों ओर फैल गई ।

प्रमथ्यमानाम्बुधिगर्जितर्जनैः सुरारिनारीगणगर्भपातनैः ।
नभश्चमूधूलिकुलैरिवाकुलं ररास गाढं पटहप्रतिस्वनैः ॥१८॥

अन्वयः — चमूधूलिकुलैः आकुलं नभः प्रमथ्यमानाम्बुधिगर्जितर्जनैः सुरारिनारी-गणगर्भपातनैः पटहप्रतिस्वनैः गाढम् ररास इव ।

संजी० — प्रमथ्यमानेति ॥ चमूनां धूलिकुलै रेणुसमूहैः 'कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि च' इति मेदिनी । आकुलं व्याप्तं पीडितं नभः प्रमथ्यमानोऽ-वलोडयमानो योऽम्बुधिस्तस्य गर्जो गर्जनं तस्य तर्जना जेतारः । ततोऽप्य-धिकगर्जनैरित्यर्थः । अत एव सुरारेस्तारकस्य यो नारीगणः स्त्रीसमूहस्तस्य यो गर्भस्तस्य पातनैः पातनकारिभिः । अतिगर्जनभयादिति भावः । पटहप्रति-स्वनैरानकप्रतिघोषैः कृत्वा गाढं दृढं यथा तथा ररासेव रुरोदेव । उत्प्रेक्षा-लंकारः । आर्तानां रोदनमेवैकं शरणं भवतीति भावः ॥१८॥

हिन्दी — सेना के चलने से उठी हुई धूलि से व्याप्त हो जाने वाला आकाश मथे जाते हुये समुद्र की गर्जना को भी तिरस्कृत करने वाली दैत्यों की स्त्रियों का गर्भपात करा देने वाली नगाड़ों की प्रतिध्वनि से व्याप्त होकर प्रगाढ़ रूप से रोते जैसा प्रतीत होने लगा ।

क्षुण्णं रथैर्वाजिभिराहतं खुरैः करीन्द्रकर्णैः परितः प्रसारितम् ।
धूतं ध्वजैः काञ्चनशैलजं रजो वातैर्हतं व्योम समारुहत्क्रमात् ।।१९।।

अन्वयः—रथैः क्षुण्णम् काञ्चनशैलजं रजः वाजिभिः खुरैः आहतम् (तथा) करीन्द्रकर्णैः परितः प्रसारितं ध्वजैः धूतं वातैः हतम् क्रमाद् व्योम समारुहत् ।

संजी०—क्षुण्णमिति ।। रथैः स्यन्दनैः क्षुण्णमुत्खनितम् । तथा काञ्चनशैलजं सुमेरुपर्वतजनितम् । इदं विशेषणं पीतत्वद्योतनार्थम् । रजो धूलिः । वाजिभिरश्वैः कर्तृभिः । खुरैः करणैः । कृत्वा हतं चूर्णीकृतम् । पिष्टीकृतमिति यावत् । तथा करीन्द्राणां मत्तगजानां कर्णैः श्रवणैः परितः सर्वतः प्रसारितं विस्तृतम् । तथा ध्वजैर्धुतं कम्पितम् । एतेन सघनता द्योतिता । तथा वातैः पवनैर्हतं स्पृष्टम् । एतेन पवनस्योपरि रंहःप्राप्तौ साधकतोक्ता । क्रमाद्यथाक्रमं व्योम कर्म । समारुहत् । आकाशमारूढमित्यर्थः । अत्र रुहेर्भौवादिकत्वाल्लङि गुणप्रसङ्गः, लुङिशलन्तत्वात्क्सप्रसङ्गः, णिजन्तत्वे लङि यकारश्रवणप्रसङ्गः इत्यतोऽयं प्रयोगश्चिन्त्य इति बहवः । वयं तु व्योम्न्याकाशे सम्यगारोहतीति समारोहः, इगुपधलक्षणः कः, तत आचारार्थे क्विपि अल्लोपे धातुत्वाल्लङि शपि अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाद्गुणाभावे च रूपसिद्धिरिति समादध्महे ।।१९।।

हिन्दी—रथों के द्वारा चूर-चूर हो जाने वाली सुमेरु पर्वत की सुनहली धूल घोड़ों के टापों से पिसकर हाथियों के कानों के फटफटाने से चारों ओर बिखर कर झण्डियों से ऊपर उठकर तथा वायु के द्वारा ऊपर उड़कर क्रमशः आकाशमण्डल में व्याप्त हो गई ।

न केवलं व्योमन्यारूढं किंतु दिगन्तेष्वपि तथेत्याह—

खातं खुरै रथ्यतुरंगपुंगवैरुपत्यकाहाटक मेदिनीरजः ।
गतं दिगन्तान्मुखरैः समीरणैः सुविभ्रमं भूरि बभार भूयसा ।।२०।।

अन्वयः—रथ्यतुरङ्गपुंगवैः खुरैः खातम् उपत्यकाहाटकमेदिनीरजः भूरि मुखरैः समीरणैः दिगन्तात् गतं (सन्) भूयसा सुविभ्रमम् बभार ।

संजी०—खातमिति ।। रथं वहन्ति ते रथ्याः । 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इति यत् । तथोक्ता ये तुरंगपुंगवा अश्वश्रेष्ठास्तैः कर्तृभिः । खुरैः कृत्वा खातं क्षुण्णम् । उपत्यकाद्रेरासन्ना या हाटकमेदिनी सुवर्णभूमिः । अद्रेः सौवर्ण्यासन्नभूमिरिति तात्पर्यार्थः । 'उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः' इत्यासन्नार्थे त्यकन्प्रत्ययः । तस्याः संबन्धि । रजः कर्तृ । भूरि बहलं मुखरैः

शब्दायमानैः समीरणैः पवनैर्दिगन्तान्दिक्प्रान्तान्गतम् गमितमित्यर्थः । अन्तर्भाविणिजर्थोऽत्र बोध्यः । तथोक्तं सत् । भूयसातिशयेन शोभमानं विभ्रमं विलासम् । शोभामिति यावत् । बभार धृतवान् । अत्यन्तं शुशुभ इत्यर्थः । 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः ॥२०॥

हिन्दी--रथ में जोते हुये श्रेष्ठ घोड़ों के टापों से पिसी हुई सुमेरु पहाड़ के आसन्न स्थित सुनहली भूमि की धूलि जोर से चलने वाली हवा से उड़ कर दिगन्त तक फैल जाने से और भी अधिक शोभित होने लगी ।

अधस्तथोर्ध्वं पुरतोऽथ पृष्ठतोऽभितोऽपि चामीकररेणुरुच्चकैः ।

चमूषु सर्पन्मरुदाहतोऽहरन्नवीनसूर्यस्य च कान्तिवैभवम् ॥२१॥

अन्वयः--चमूषु मरुदाहतः अधस्तथा ऊर्ध्वम् पुरतः अथ पृष्ठतः तथा अभितः अपि सर्पन् चामीकररेणुः उच्चकैः नवीनसूर्यस्य कान्तिवैभवम् अहरत् च ।

संजी०--अध इति ॥ चमूषु सेनासु मरुता पवनेनाहत उत्पादितः । अत एवाधो नीचैः । तथोर्ध्वमूर्ध्वभागे । तथा पुरतोऽग्रभागे । अथ पृष्ठतः पृष्ठभागे । तथाभितोऽपीतस्ततश्च सर्पन्प्रसरम् । चामीकररेणुः सुवर्णरजः । सुवर्णपर्वतोद्भूतत्वादिति भावः । नवीनसूर्यस्योषस्यसूर्यस्य कान्तिवैभवं द्युतिसंपदमहरत् । ततोऽप्यधिकं शुशुभ इत्यर्थः ॥२१॥

हिन्दी—सेना में वायु के द्वारा उड़ाई हुई नीचे-ऊपर, आगे-पीछे तथा चारों ओर फैलती हुई वह सुनहली धूल ऊँचे पर रहने वाले नवीन उदीयमान सूर्य के कान्तिवैभव (लालिमा) को भी फीका कर रही थी ।

बलोद्धूतं काञ्चनभूमिजं रजो बभौ दिगन्तेषु नभःस्थले स्थितम् ।

अकालसंध्याघनरागपिङ्गलं घनं घनानामिव वृन्दमुद्यतम् ॥२२॥

अन्वयः—काञ्चनभूमिजम् रजः बलोद्धतम् दिगन्तेषु नभःस्थले स्थितम् अकालसन्ध्याघनरागपिङ्गलम् घनम् घनानाम् उद्यतं वृन्दम इव बभौ ।

संजी०--बलोद्धृतमिति ॥ काञ्चनस्य भूमौ जातं रजो धूलिर्बलोद्धृतं सैन्येनोत्पातितमत एव दिगन्तेषु दिक्प्रान्तेषु तथा नभःस्थल आकाशदेशे स्थितं च सत् । अकाले या संध्या तस्या यो घनः सान्द्रो रागो लौहित्यं तेन पिङ्गलं पिशङ्गम् । 'पिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ' इत्यमरः तथा घनं सान्द्रमुद्यतमुत्पन्नम् । पर्वतेभ्य इति शेषः । घनानां मेघानां वृन्दं समूह इव । बभौ । अकालसंध्यालिप्तो मेघो यथा भाति तद्वत्सुवर्णभूमिजमपि रजो बभावित्यर्थः । अत्र पूर्णोपमालंकारः । ननु भानाश्रयीभूते रजसि घनवृन्दत्वेनोत्प्रेक्षास-

भवात्संभावनैवास्त्विति चेत् । सत्यम् । क्रियाप्राधान्यमते रजःकर्तृकशोभायां घन वृन्दत्वोत्प्रेक्षापत्तेः ॥२२॥

हिन्दी—सेना के चलने से उठी हुई उस सुनहली भूमि की धूल दिशाओं तथा आकाश में स्थित होकर ऐसी सुशोभित होने लगी मानो सन्ध्या के बिना ही नील-पीत वर्णवाले सघन बादलों का समूह उमड़ कर आकाश में छा गया हो ।

हेमावनीषु प्रतिबिम्बमात्मनो मुहुर्विलोक्याभिमुखं महागजाः ।
रसातलोत्तीर्णगजभ्रमात्क्रुधा दन्तप्रकाण्डप्रहृतानि तेनिरे ॥२३॥

अन्वयः—महागजाः हेमावनीषु आत्मनः प्रतिबिम्बम् अभिमुखं विलोक्य रसातलोत्तीर्णगजभ्रमात् क्रुधा मुहुः दन्त प्रकाण्डप्रहृतानि तेनिरे ।

संजी०—हेमेति ॥ महागजा महान्तो दन्तिनो हेम्नः सुवर्णस्यावनीषु पृथ्वीषु पतितमात्मनः प्रतिबिम्बमभिमुखं विलोक्य रसातलात्पातालात् । 'अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम्' इत्यमरः । उत्तीर्णा उत्थिता ये गजास्तेषां भ्रमाद्भ्रान्त्या निमित्तेन । जातयेति शेषः । क्रुधा क्रोधेन । 'प्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः । मुहुरनुवेलं दन्ता एव प्रकाण्डाः स्तम्बाः । 'काण्डं स्तम्बे तरुस्कन्धे बाणेऽवसरनीरयोः' इति मेदिनी । तैस्तत्कर्मकानि प्रहृतानि प्रहारान् । भावे निष्ठा । तेनिरे वितस्तरिरे । कर्तरि लिट् । 'अत एकहल्मध्ये नादे-' इत्येत्वाभ्यासलोपौ । पृथिव्यामात्मप्रतिबिम्बदर्शनेनान्यगजभ्रमवतां गजानां युक्तमेव प्रहारकरणमिति भावः । 'नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते' इति गन्धस्यापि दुःसहत्वात् । किं पुनः साक्षाद्दर्शनस्य । तद्दर्शनं तद्वति तत्प्रकारकमतद्वति तत्प्रकारकं वा । तत्र तेषां नातीव निग्रहः । मानान्धतायाः प्राधान्यात् ॥२३॥

हिन्दी—सेना के बड़े-बड़े हाथी उस सुनहली भूमि में पड़ी अपनी परछाईं देखकर उसमें पाताल से निकले अन्य हाथी के भ्रम से क्रुद्ध हो अपनी ही छाया पर अपने दाँतों से टक्कर मारने लगते थे ।

सुजातसिन्दूरपरागपिञ्जरैः कलं चलद्भिः सुरसैन्यसिन्धुरैः ।
शुद्धासु चामीकरशैलभूमिषु नादृश्यत स्वं प्रतिबिम्बमग्रतः ॥२४॥

अन्वयः—सुजातसिन्दूरपरागपिञ्जरैः कलम् चलद्भिः सुरसैन्यसिन्धुरैः शुद्धासु चामीकरशैलभूमिषु अग्रतः स्वम् प्रतिबिम्बम् न अदृश्यत ।

संजी०—सुजातेति ॥ सुजातः शोभनो यः सिन्दूरस्य परागो रजस्तेन पिञ्जरैः पीतैः । तथा कलं मन्द्रं यथा तथा चलद्भिर्गच्छद्भिः सुराणां देवानां सैन्यस्य सिन्धुरैर्गजैः कर्तृभिः । शुद्धासु निर्मलास्वपि चामीकरशैलस्य सुमेरु-

पर्वतस्य भूमिष्वग्रतः पतितमपि स्वं प्रतिबिम्बं नादृश्यत नालोकि। कर्मणि लङ्। आधाराधेययोरेकवर्णतया पृथगभासमानत्वादिति भावः। 'सिन्दूरस्तनुभेदे स्यात्सिन्दूरे रक्तचूर्णके' इति मेदिनी ॥२४॥

हिन्दी—उत्तम सिन्दूर के पराग से रंगे हुए पीले-पीले झूमते हुये धीरे-धीरे चलने वाले देवसेना के हाथी उस शुद्ध सुनहली पहाड़ी भूमि में अपनी ही छाया नहीं देख पाते थे।

इति क्रमेणामरराजवाहिनी महाहवाम्भोधिविलासलालसा।
अवातरत्काञ्चनशैलतो द्रुतं कोलाहलाक्रान्तविधूतकन्दरा ॥२५॥

अन्वयः—महाहवाम्भोधिविलासलालसा कोलाहलाक्रान्तविधूतकन्दरा अमरराजवाहिनी इति क्रमेण काञ्चनशैलतः द्रुतम् अवातरत्।

संजी०—इतीति॥ महानाहवः सङ्ग्रामः स एवाम्भोधिः समुद्रस्तत्र यो विलासो लीला। क्रीडेति यावत्। 'विलासो हावभेदे स्याल्लीलायामपि पुंस्ययम्' इति मेदिनी। तत्र लालसौत्सुक्यं यस्याः। तथा कोलाहलेन कलकलेन। 'कोलाहलः कलकलः' इत्यमरः। आक्रान्ता व्याप्ता अत एव विधुताः कम्पिताः कन्दरा गह्वरा यथा। 'कन्दरस्त्वङ्कुशे पुंसि गुहायां न नपुंसकम्' इति मेदिनी। एवंभूतामरराजवाहिनीन्द्रसेना। 'वाहिनी स्यात्तरङ्गिण्यां सेनासैन्यप्रभेदयोः' इति मेदिनी। इति क्रमेण पूर्वोक्तक्रमेण काञ्चनशैलतः सुमेरोः सकाशाद्द्रुतं शीघ्रमवातरत्। उत्ततारेत्यर्थः ॥२५॥

हिन्दी—इस प्रकार युद्धरूपी समुद्र से क्रीड़ा की लालसा वाली अपने कोलाहल के आक्रमण से कन्दरा को कंपा देने वाली इन्द्रदेव की वह विशाल सेना शीघ्र ही क्रमशः-क्रमशः सुमेरु पर्वत के नीचे उतरी।

महाचमूस्यन्दनचण्डचीत्कृतैर्विलोलघण्टेभपतेश्च बृंहितैः।
सुरेन्द्रशैलेन्द्रमहागुहाशयाः सिंहा महत्स्वप्नसुखं न तत्यजुः ॥२६॥

अन्वयः—सुरेन्द्रशैलेन्द्रमहागुहाशयाः सिंहः महाचमूस्यन्दनचण्डचीत्कृतैः विलोलघण्टेभपतेः च बृंहितैः महत् स्वप्नसुखं न तत्यजुः।

संजी०—महेति॥ सुरेन्द्रस्येन्द्रस्य शैलेन्द्रे मेरौ या महागुहा महागह्वराणि तासु शेरते स्वपन्ति। गुहासु निद्रां कुर्वन्त इत्यर्थः। तथाभूताः सिंहा मृगेन्द्रा महाचमूषु महतीषु सेनासु ये स्यन्दना रथास्तेषां चण्डैः प्रचण्डैः। तीव्रैरिति यावत्। 'चण्डो धनहरी शङ्खपुष्पास्त्रिष्वतिकोपने। तीव्रेऽपि चूडावडभौ शिखायां बाहुभूषणे॥' इति मेदिनी। चीत्कृतैः शब्दविशेषैः। इवं च शब्दानुकृतिः। तथा विलोकघण्टोऽतिचपलघण्टो य इभपतिर्गजरा-

जस्तस्य। जातावेकवचनम्। बृंहितैर्गर्जितैश्च। 'बृंहितं करिगर्जितम्' इत्यमरः। महद्दीर्घं स्वप्ने निद्रायां यत्सुखम्। 'सुखं शर्मणि ना नाके' इति मेदिनी। 'स्वपो नन्' इति नन्प्रत्ययः। न तत्यजुर्न जहुः। अत्र निद्राप्रतिबन्धाश्रयीभूतबहुविधकोलाहलरूपे सत्यपि निदाने निद्राभङ्गरूपकार्योत्पत्त्यभावाद्विशेषोक्तिरलंकारः। 'कार्याजनिर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे' इति लक्षणात्। 'शयवासवासिष्वकालात्' इति सूत्रे हलदन्तादेवेति नियमाद्गुहाशय इत्यत्र तदभावान्नालुक् ॥२६॥

हिन्दी—सुमेरु पर्वत की गम्भीर गुफाओं में सोने वाले सिंहों ने देवताओं की महती सेना के रथों की घरघराहट, हाथियों के गले में बँधे हुये घण्टों एवं उनकी चिग्घाड़ों को सुनकर भी अपने सोने का आनन्द नहीं त्यागा।

गम्भीरभेरीध्वनितैर्भयंकरैर्महागुहान्तप्रतिनादमेदुरैः।
महारथानां गुरुनेमिनिःस्वनैरनाकुलैस्तैर्मृगराजताजनि ॥२७॥

अन्वयः—महागुहान्तप्रतिनादमेदुरैः भयङ्करैः गम्भीरभेरी ध्वनितैः तैः महारथानाम् गुरुनेमिनिःस्वनैः अनाकुलैः तैः मृगराजता अजनि।

संजी०—गम्भीरेति ॥ महान्तः परिणाहिनो ये गुहान्ता गह्वरमध्यानि तेषु यः प्रतिनादः प्रतिध्वनिस्तेन मेदुरैः पुष्टैः। अत एव भयंकरैर्विभीषकैः। 'मेघर्तिभयेषु कृञः' इति खश्। गम्भीराणि मन्द्राणि यानि भेरीध्वनितानि दुन्दुभिशब्दाः। 'भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्' इत्यमरः। तैः। तथा महारथानां महतां स्यन्दनानां संबन्धिन्यो या गुरुनेमयो महत्यश्चक्रधाराः। 'चक्रधारा प्रधिर्नेमिः' इत्यमरः। तासां निःस्वनैः शब्दैश्चापि। निमित्तभूतैरित्यर्थः। अनाकुलैराकुलत्वाभाववद्भिस्तैः सिंहैर्निमित्तैर्मृगराजता मृगाधिपत्यम्। अन्वर्थेति शेषः। साप्यजनि जाता। राज्ञामयमेव परमो धर्मः प्रतिकर्तुमशक्तैरपि यदरिभ्यो न भेतव्यमिति। तदेभिर्मृगराट्त्वधारिभिः कथंचिदपि न भीतम्। अतो युक्तमेषां खलु मृगराज इत्यभिधानमित्यभिप्रायः। अत्रापि विशेषोक्तिरलंकारः ॥२७॥

हिन्दी—बड़ी-बड़ी गुफाओं में प्रतिध्वनित होने से महाभयङ्कर गम्भीर नगाड़ों के शब्दों एवं महारथों के पहियों की गड़गड़ाहट को सुन कर भी व्याकुल न होकर स्थिरभाव से बैठे हुये सिंहों ने अपनी मृगराजता का परित्याग नहीं किया।

समुत्थितेन त्रिदिवौकसां महाचमूरवेणाद्रितटान्तदारिणा।
प्रपेदिरे केसरिणोऽधिकं मदं स्ववीर्यलक्ष्मीमृगराजतावशात् ॥२८॥

अन्वयः—समुत्थेन अद्रितटान्तदारिणा त्रिदिवौकसाम् महाचमूरवेण केसरिणः स्ववीर्यलक्ष्मीमृगराजतावशात् अधिकम् मदम् प्रपेदिरे।

संजी०—समुत्थितेनेति ।। समुत्थितेन समुदितेनात एवाद्रेः सुमेरोस्तटान्तानां शृङ्गमध्यानाम् । 'तटं नपुंसकं क्षेत्रे प्रतीरे तु तटी त्रिषु' इति मेदिनी । 'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरश्च । दारिणा विदारकेण । अतिघोषेण महान्तः पर्वतभृगवोऽपि विदीर्णा बभूवुरित्यर्थः । अत्र शब्दकर्तृकपर्वततटविदारणस्यायोगेऽपि तद्योगकल्पनात्संबन्धातिशयोक्तिरलंकारः । त्रिदिवौकसां देवानां संबन्धिन्यो या महाचम्वो महत्यः सेनाः । 'चमूः सेनाविशेषेऽपि सेनामात्रे च योषिति' इति मेदिनी । तासां रवेण ध्वनिता निमित्तेन केशरिणः सिंहाः कर्तारः । स्वस्य वीर्यं पराक्रम एव लक्ष्मीः शोभा यस्याः । आत्मपराक्रमशालिनीत्यर्थः । तथाभूता । या मृगराजता हरिणाधिपत्यं तस्या वशादायत्तत्वात् । 'वशो जनस्पृहायत्तेष्वायतत्वप्रभुत्वयोः' इति मेदिनी । अधिकं बहु मदं गर्वं प्रपेदिरे । कर्तरि लिट् । भयानकोऽपि चमूरवः प्रत्युत सिंहानामधिकमदकारक एव जात इति भावः ।।२८।।

हिन्दी—सुमेरु पर्वत के शिखर के मध्यभाग को चूर्ण कर देने वाले देवताओं की सेना के ऊपर उठने वाले कोलाहल को सुनकर भी अपने पराक्रम से मृगराजता प्राप्त करने वाले सिंह और अधिफ मतवाले हो गये ।

भिया सुरानीकविमर्दजन्मना विदुद्रुवुर्दूरतरं द्रुतं मृगाः ।
गुहागृहान्ताद्बहिरेत्य हेलया तस्थुर्विशङ्कं नितरां मृगाधिपाः ।।२९।।

अन्वयः—मृगाः सुरानीक विमर्दजन्मना भिया द्रुतम् दूरतरम् विदुद्रुवुः मृगाधिपाः हेलया गुहागृहान्ताद् वहिः एत्य निःशङ्कम् तस्थुः ।

संजी०—भियेति ।। मृगा हरिणाः । 'मृगः पशौ कुरङ्गे च' इति मेदिनी । सुराणां देवानामनीकस्य सैन्यस्य । 'अनीकोऽस्त्री रणे सैन्ये' इति मेदिनी । यो विमर्दः प्राणापहारि मर्दनं तज्जन्मना । ततो जनितयेत्यर्थः । भिया भयेन निमित्तेन द्रुतं सत्वरं दूरतरं विदुद्रुवुः । पलायांचक्रिर इत्यर्थः । भयशीलत्वादिति भावः । अथ च मृगाधिपाः सिंहा हेलया क्रीडया । सहसैवेत्यर्थः । गुहागृहस्य गह्वररूपस्य सद्मनोऽन्तान्मध्याद् बहिरेत्य । अपपरिबहिः' इति समासविधानाज्ज्ञापकात्पञ्चमी । नितरां विशङ्कं निर्भयं यथा तथा तस्थुः ।।२९।।

हिन्दी—हरिण देवताओं की सेना के परस्पर प्राणों के लेवादेवा से उत्पन्न भय से डर कर शीघ्रतापूर्वक दूर भाग गये । किन्तु सिंह अपनी-अपनी गुफाओं से बाहर आकर अत्यन्त निःशङ्क हो खड़े हो गये ।

विलोकिताः कौतुकिनामरावतीजनेन जुष्टप्रमदेन दूरतः।
सुराचलप्रान्तभुवः प्रपेदिरे सुविस्तृतायाः प्रसरं सुसैनिकाः ॥३०॥

अन्वय—कौतुकिना जुष्टप्रमदेन अमरावतीजनेन दूरतः विलोकिताः सुसैनिकाः सुविस्तृतायाः सुराचलप्रान्तभुवः प्रसरम् प्रपेदिरे।

संजी०—विलोकिता इति ॥ कौतुकिना। सैनिकदर्शने कौतुकाविष्टचेतसेत्यर्थः। जुष्टप्रमदेन सेवितकलत्रेण। कलत्रसहितं वर्तमानेनेति फलितोऽर्थः। अमरावतीजनेन सुरेन्द्रनगरीलोकेन दूरतो दूरात्। 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इति पञ्चमी। 'पञ्चम्याः–' इति तसिल्। विलोकिता दृष्टाः सुसैनिकाः शोभनाः सेनास्थलोकाः कर्तारः। सुतरां विस्तृतायाः सुराचलस्य सुमेरोर्या प्रान्तभूस्तस्याः प्रसरं प्रदेशं प्रपेदिरे प्रापुः। सुमेरोरवरुह्याधः प्रापुरिति भावः ॥३०॥

हिन्दी—कौतुकपूर्वक अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ अमरावती में रहने वाले लोगों के द्वारा दूर से ही देखी जाती हुई वह देवसेना अत्यन्त लम्बी-चौड़ी सुमेरु पहाड़ के अधःप्रदेश (तलहटी) में पहुँच गई।

पीतासितारक्तसितैः सुराचलप्रान्तस्थितैर्धातुरजोभिरम्बरम्।
अयत्नगन्धर्वपुरोदयभ्रमं बभार भूम्नोत्पतितैरितस्ततः ॥३१॥

अन्वयः—अम्बरम् इतस्ततः भूम्ना उत्पतितैः सुराचलप्रान्तस्थितैः पीतासितारक्तसितैः धातुरजोभिः अयत्नगन्धर्व पुरोदयभ्रमं बभार।

संजी०—पीतासितेति ॥ अम्बरं नभः कर्तृ। इतस्ततः सर्वत्रेत्यर्थः। भूम्ना बाहुल्येनोत्पतितैरुड्डयितैरत एव सुराचलस्य सुमेरोः प्रान्तेषु स्थितैः। प्रान्तत्वं ह्यूर्ध्वदैशिकमवगन्तव्यम्। तथा पीतानि चासितानि चारक्तानि च सितानि च तैर्धातुरजोभिर्गैरिकादिधूलीभिर्निमित्तेन। अयत्नेन यत्नाभावेन। अनायासेनेति यावत्। यो गन्धर्वपुरस्य देवगायननगरस्योदय उत्पत्तिस्तस्य भ्रमं बभार धृतवत्। अन्तर्भाविणिजर्थः। गन्धर्वपुरस्य ह्यनेकवर्णपरिमण्डितत्वरूपसामान्यधर्मेण नभसो योपमा तन्मूलिका भ्रान्तिः। अत उपमोत्थापितोऽयं भ्रान्तिमानलंकारः। तेनोभयोरङ्गाङ्गिभावेन संकरः ॥३१॥

हिन्दी—उस समय सुमेरु पहाड़ पर स्थित धातुओं की अत्यधिक मात्रा में ऊपर उठने वाली पीली-नीली-लाल तथा श्वेत वर्णों के धूलि से भरा हुआ आकाश बिना परिश्रम के ही बनाये गये विभिन्न रत्नों से परिपूर्ण गन्धर्वनगर का भ्रम पैदा करने लगा।

महास्वनः सैन्यविमर्दसंभवः कर्णान्तकूलंकषतामुपेयिवान् ।
पयोनिधेः क्षुब्धतरस्य वर्धनो बभूव भूम्ना भुवनोदरंभरिः ॥३२॥

अन्वयः—कर्णान्तकूलंकषताम् उपेयिवान् क्षुब्धतरस्य पयोनिधेः वर्धनः भुवनोदरंभरिः सैन्यविमर्दसंभवः महास्वनः भूम्ना बभूव ।

संजी०—महास्वन इति ॥ कर्णान्तः श्रवणमध्यं स एव कूलं तटम् । 'अथ कूलं तटे सूर्ये सैन्यपृष्ठतडागयोः' इति मेदिनी । तत्कषरयुन्मार्ष्टि तस्य भावस्तत्ता ताम् । 'सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः' इति खश् । 'अरुर्द्विषत्–' इति मुम् । उपेयिवान्प्राप्तवान् । कर्णान्तं स्फोटयन्नित्यर्थः । क्षुब्धतरस्यात्यन्तसंचलितस्य । वेलामतिक्रान्तस्येत्यर्थः । पयोनिधेः समुद्रस्य वर्धनः । कर्तरि ल्युट् । तथा भुवनैः कृत्वोदरं भरतीति तथोक्तः । आवृतसकलब्रह्माण्डत्वाद्भुवनानां मध्यपातो युक्त इति भावः । एवंभूतः सैन्यविमर्दसंभवः सेनासंघट्टनोत्पन्नो महास्वनो भूम्ना वाहुल्येन युक्तो बभूव । अतिमहत्त्वविशिष्टो जात इत्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी—कानों के पर्दों को फाड़कर उसके भीतर चले जाने वाले देवसेना की टकराहट से उत्पन्न हुआ अत्यन्त घोर शब्द क्षुब्ध समुद्र की बाढ़ के समान सभी ब्रह्माण्डों में पहुँचकर और भी अधिक गूँजने लगा ।

महागजानां गुरुबृंहितैस्ततैः सुहेषितैर्घोरतरैश्च वाजिनाम् ।
घनैरथानां गुरुचण्डचीत्कृतैस्तिरोहितोऽभूत्पटहस्य निःस्वनः ॥३३॥

अन्वयः—महागजानाम् गुरुबृंहितैः ततैः घोरतरैः च वाजिनाम् सुहेषितैः घनैः रथानाम् गुरुचण्डचीत्कृतैः च पटहस्य निःस्वनः तिरोहितः अभूत् ।

संजी०—महागजानामिति ॥ महागजानां महतां दन्तिनां संबन्धिभिर्गुरुबृन्हितैर्गुरूणि गम्भीराणि यानि बृंहितानि ध्वनितानि तैः । तथा ततैर्विस्तृतैः । तथा घोरतरैरत्यन्तभयंकरैर्वाजिनां सुहेषितैः शोभनहेषणैः तथा घनैर्गम्भीरै रथानां संबन्धिभिर्गुरूणि महान्ति चण्डानि भयानकानि च यानि चीत्कृतानि तैश्च पटहस्य निःस्वनः स्वनस्तिरोहितोऽन्तर्हितः । अप्रकाशित इति यावत् । अभूत् ॥३३॥

हिन्दी—बड़े-बड़े मतवाले हाथियों के महाभयानक चिग्घाड़ों से तथा चारों ओर फैल जाने वाले घोरतर घोड़ों की हिनहिनाहट से एवं रथों के अत्यन्त गम्भीर घरघराहट से नगाड़ों की ध्वनि तिरोहित हो गई ।

महासुराणामवरोधयोषितां कचाक्षिपक्ष्मस्तनमण्डलेषु च ।
ध्वजेषु नागेषु रथेषु वाजिषु क्षणेन तस्थौ सुरसैन्यजं रजः ॥३४॥

अन्वयः—महासुराणाम् अवरोधयोषिताम् कचाक्षिपक्ष्मस्तनमण्डलेषुध्वजेषु नागेषु रथेषु वाजिषु च सुरसैन्यजम् रजः क्षणेन तस्थौ ।

संजी०—महासुराणामिति ॥ महासुराणां तारकादीनां संबन्धिनीनामवरोधयोषितामन्तःपुरस्त्रीणाम् । 'शुद्धान्तश्चावरोधश्च' इत्यमरः । संबन्धीनि कचाश्च, अक्षिपक्ष्माणि च, स्तनमण्डलानि च, तस्मिन् । 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इति प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । तथा ध्वजेषु हस्तिषु रथेषु वाजिषु च घनं सान्द्रं सुरसैन्यजं रजो धूलिः क्षणेन तस्थौ । अनेन तेषां शत्रूणामशुभमुक्तमिति ध्वनिः ॥३४॥

हिन्दी—उस समय देवताओं की महासेना के चलने से उठी हुई धूल क्षणमात्र में दैत्य स्त्रियों के बालों, आँखों, पलकों, स्तनमण्डलों, ध्वजाओं, हाथियों, रथों और घोड़ों पर जाकर स्थित हो गई ।

घनैर्विलोक्य स्थगितार्कमण्डलैश्चमूरजोभिर्निचितं नभःस्थलम् ।
अयायि हंसैरभि मानसं घनभ्रमेण सानन्दमनर्ति केकिभिः ॥३५॥

अन्वयः—घनैः स्थगितार्कमण्डलै चमूरजोभिः निचितम् नभःस्थलम् विलोक्य घनभ्रमेण हंसैः मानसम् अभि अयायि (अथच) केकिभिः सानन्दम् अनर्त्ति ।

संजी०—घनैरिति ॥ घनैः सान्द्रैरत एव स्थगितार्कमण्डलैराच्छादितसूर्यबिम्बैश्चमूरजोभिः सेनाधूलिभिर्निचितं व्याप्तं नभःस्थलं व्योमदेशं विलोक्य घनभ्रमेण मेघभ्रान्त्या हंसैर्मरालैर्मानसं सरोऽभि संमुखमयायि गतम् । भावे लुङ् । तेषां वर्षास्वप्रगल्भत्वादिति भावः । अथ च केकिभिर्मयूरैः सानन्दं सहर्षमनर्ति नृत्यमकारि । अत्रापि भावे लुङ् ॥३५॥

हिन्दी—सूर्यमण्डल को ढक लेने वाली देवसेना की घनी धूलों से भरे आकाश को देखकर हंसों ने घन (वर्षाकाल) के भ्रम से मानसरोवर जाना प्रारम्भ कर दिया तथा मोरगण आनन्द से उन्मत्त हो नाचने लगे ।

सान्द्रैः सुरानीकरजोभिरम्बरे नवाम्बुदानीकनिभैरभिश्रिते ।
चकासिरे स्वर्णमया महाध्वजाः परिस्फुरन्तस्तडितां गणा इव ।३६।

अन्वयः—अम्बरे नवाम्बुदानीकभ्रमैः सान्द्रैः सुरानीकरजोभिः अभिश्रितैः स्वर्णमयाः महाध्वजाः परिस्फुरन्तः तडिताम् गणा इव चकाशिरे ।

संजी०--सान्द्रैरिति ।। अम्बरे नभसि । 'अम्बरं वाससि व्योम्नि कार्पासे च सुगन्धके' इति मेदिनी । नवो नूतनः वार्षिक इति यावत् योऽब्दो मेघस्तस्यानीकं समूहस्तन्निभैस्तत्सदृशैः । 'निभस्तु कथितो व्याजे पुंलिङ्गः सदृशे त्रिषु' इति मेदिनी । तथा सान्द्रैः सघनैः । 'सान्द्रं बले वापि घने मृदौ च' इति मेदिनी । सुराणामनीकस्य सैन्यस्य रजोभी रेणुभिः । 'रजो रेणौ परागे स्यादार्तवे च गुणान्तरे' इति मे दिनी । अभिश्रित आवृते सति स्वर्णमया हेममया महाध्वजा महान्तो ध्वजाः । 'ध्वज स्याच्छौण्डिके पुमान् । न स्त्रियां तु पताकायां खट्वाङ्गे मेढ्रचिह्नयोः' इति मेदिनी । परिस्फुरन्तः परितः स्फुरन्तः प्रकाशमानास्तडितां विद्युताम् । 'तडित्सौदामिनी विद्युत्' इत्यमरः । गणाः समूहा इव चकाशिरे शुशुभिरे ।।३६।।

हिन्दी--नवीन बादलों की घटाओं का भ्रम उत्पन्न करने वाली देवताओं की सेना की उठी हुई सघन धूलि जब आकाशमण्डल में छा गई तो सेना की सुनहली पताका में उन घन मण्डलों में चमकती बिजलियों के समान लहराती हुई अत्यन्त सुशोभित होने लगीं ।

विलोक्य धूलीपटलैर्भृशं भृतं द्यावापृथिव्योरलमन्तरं महत् ।
किमूर्ध्वतोऽधः किमधस्त ऊर्ध्वतो रजोऽभ्युपैतीति जनैरतर्क्यत ।३७।

अन्वयः—जनैः द्यावापृथिव्यो महद् अन्तरम् धूली पटलैः भृशम् भृतम् अवलोक्य रजः ऊर्ध्वतः अधः किम् अधस्तः ऊर्ध्वतः अभ्युपैति किम् इति अलम् अतर्क्यत ।

संजी०--जनैर्लोकैर्द्यावापृथिव्योर्द्यौश्च पृथिवी च तयोः । दिवसश्च पृथिव्याम्' इत्यत्र चकाराद्द्यावादेशः । महद्विशालमन्तरमवकाशो धूलीपटलै रजोनिचयैर्भृशं बहु यथा तथा भृतं पूर्णं विलोक्य रज ऊर्ध्वतः सकाशादध उपैति । किंवाधस्तः सकाशादूर्ध्वत ऊर्ध्वभागे । सार्वविभक्तिकस्तसिः । अभ्युपैति किमित्यलं पर्याप्तमतर्क्यत तर्कितम् । भावे लङ् । सर्वतो रजोव्याप्त्या कुत आगच्छतीति निश्चयाभावादिति भावः ।।३७।।

हिन्दी--पृथ्वी और आकाश के महान अन्तर में छा जाने वाली घनी धूलि की अधिकता देखकर लोग विचार करने लगे कि क्या यह धूल ऊपर से नीचे आ रही है अथवा नीचे से ऊपर जा रही है ।

नोर्ध्वं न चाधो न पुरो न पृष्ठतो न पार्श्वतोऽभूत्खलु चक्षुषोर्गतिः ।
सूच्यग्रभेद्यैः पृतनारजश्चयैराच्छादिता प्राणिगणस्य सर्वतः ।।३८।।

अन्वयः—सूच्यग्रभेद्यैः पृतनारजश्चयैः सर्वतः आच्छादितो प्राणिगणस्य चक्षुषोः गतिः ऊर्ध्वम् न अधः च न पुरः न पृष्ठतः न पार्श्वतः न अभूत् खलु।

संजी०—नोर्ध्वमिति ॥ सूच्यग्रेण सीवनद्रव्यपुरोभागेन। 'सूची तु सीवनद्रव्येऽप्याङ्गिकाभिनयान्तरे' इति मेदिनी। भेद्यैर्भेत्तुं योग्यैः। 'ऋहलोः-' इति ण्यत्। अनेनातिसद्यस्ता द्योतिता। तथाभूतैः पृतनायाः सेनायाः। पृतना तु स्त्रियां सेनामात्रसेनाविशेषयोः' इति मेदिनी। रजसां चयैः समूहैः 'चयः समूहे प्राकारमूलबन्धे समाहृतौ' इति मेदिनी। सर्वत आच्छादितावृता 'प्राणिगणस्य जन्तुसमूहस्य चक्षुषोर्नेत्रयोः। 'लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी' इत्यमरः। गतिः प्रसरणमूर्ध्वं नाभूत्, अधश्च नाभूत्, पुरो नाभूत्, पृष्ठतो नाभूत्, पार्श्वतोऽप्युभयतो नाभूत्। खलु निश्चयेन ॥३८॥

हिन्दी—सूची के अग्रभाग से भेदने योग्य सेना की अत्यन्त घनी धूलों के चारों ओर छा जाने से उस समय लोगों की आँखों में ऐसा अँधेरा छा गया कि उन्हें ऊपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें इधर-उधर कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था।

दिगन्तदन्त्यावलिदानहारिभिर्विमानरन्ध्रप्रतिनादमेदुरैः।
अनेकवाद्यध्वनितैरनारतैर्जगर्ज गाढं गुरुभिर्नभस्तलम् ॥३९॥

अन्वयः—दिगन्तदन्त्यावलिदानहारिभिः विमान रन्ध्रप्रतिनादमेदुरैः गुरुभिः अनारतैः अनेकवाद्यध्वनितैः नभस्थलम् गाढं जगर्ज।

संजी०—दिगन्तेति ॥ दिगन्तेषु या दन्त्यावलिर्गजपंक्तिस्तस्या दानं मदजलं तस्य हारिभिः शोषकैः। घोरध्वनितश्रवणजनितभयवशाद्दिगन्तदन्तिनोऽपि शुष्कमदजला जाता इति भावः। तथा विमानानां देवस्यन्दनानां रन्ध्रेषु जालेषु यः प्रतिनादः प्रतिध्वनिस्तेन मेदुरैः पुष्टैर्गुरुभिर्दीर्घैरनारतैरविद्यमानक्षणिकविरामैरनेकवाद्यानां मृदंगादीनां ध्वनितैर्घोषैः कृत्वा नभस्तलं कर्तृ गाढं दृढं जगर्ज। प्रतिननादेत्यर्थः। अन्योऽपि कस्मिंश्चित्कर्णकटुरवकारिणि सति तटस्थोऽपि प्रतिनदति तद्वत्। समासोक्तिरलंकारः—'समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य यत्' इति लक्षणात् ॥३९॥

हिन्दी—दिगन्त के दिग्गज समूहों के बहते हुए मदजल को भी सुखा देने वाली तथा विमानों के जालियों में टकरा कर प्रतिध्वनित होने से अत्यन्त अधिक गूँजने वाली निरन्तर बजते हुए अनेक बाजों की घनघोर ध्वनि से भरा हुआ आकाश मानो स्वयं गर्जना कर रहा हो।

भुवं विगाह्य प्रययौ महाचमूः क्वचिन्न मान्ती महतीं दिवं खलु।
सुसंकुलायामपि तत्र निर्भरातिक कांदिशीकत्वमवाप नाकुला ॥४०॥

अन्वयः—महाचमूः भुवम् विगाह्य क्वचित् (अपि) न मान्ती (सती) महतीम् दिवम् प्रययौ खलु निर्भरत् सुसंकुलाया अपि तत्र आकुला सती कांदिशीकत्वम् किम न अवाप !

संजी०—भुवमिति ॥ महाचमूर्महती सेना भुवं विगाह्य व्याप्य क्वचिदपि भूमिस्थले न मान्त्यसमाविशन्ती सती महतीं विशालां दिवं स्वर्गं प्रययौ प्राप । खलु निश्चयेन । अथ च निर्भरादधिकात्मभाराद्धेतोस्तत्रापि दिव्यपि सुतरां संकुलायां व्याप्तायां सत्यामाकुला व्याकुला सती कांदिशीकत्वं भयद्रुतत्वम् । 'कांदिशीको भयद्रुतः' इत्यमरः । किं नावाप । अपि त्ववापैवेत्यर्थः । परस्परपेषणभिया व्याकुलत्वाद्दुद्रुवुरित्यर्थः । अत्र द्रवणं द्रवणेच्छामात्रपरं द्रवणं कर्तुमैच्छदिति तात्पर्यार्थः । अन्यथा व्याप्तेः प्रतिबन्धकत्वेन द्रवणासंभवाद्द्रवणोक्तेरफलत्वापत्तिः ॥४०॥

हिन्दी—देवताओं की वह विशाल सेना समस्त पृथ्वीतल पर फैल जाने पर भी वहाँ न समा सकने के कारण विशाल स्वर्ग लोक में पहुँच गई । किन्तु विपुलता के कारण वहाँ पर भी न समा सकने के कारण स्थानाभाव से व्याकुल हो परस्पर टकराव के भय से वहाँ से क्यों भागने का विचार नहीं करने लगी थीं अपितु कर रही थी ।

उद्दामदानद्विपवृन्दबृंहितैर्नितान्तमुत्तुङ्गतुरंगहेषितैः ।
चलद्घनस्यन्दननेमिनिस्वनैरभून्निरुच्छ्वासमिवाकुलं जगत् ॥४१॥

अन्वयः—उद्दामदानद्विपवृन्दबृंहितैः नितान्तं उत्तुङ्गतुरङ्गहेषितैः चलद्घनस्यन्दननेमिनिःस्वनैः आकुलं जगद् उच्छ्वासम् इव अभूत् ।

संजी०—उद्दामेति ॥ उद्दामदाना उत्कटमदा ये द्विपा गजास्तेषां वृन्दस्य समूहस्य बृंहितैः शब्दैः । तथोत्तुङ्गा उन्नता ये तुरंगा अश्वास्तेषां हेषितैर्हेषाभिः । तथा नितान्तमत्यन्तं चलन्तो घना इव स्यन्दना रथास्तेषां या नेमयश्चक्रधारास्तासां निस्वनैश्च नितरामाकुलं जगन्निरुच्छ्वासमिव निरुद्धश्वासमिवाभूत् । आकुलत्वसाधारणधर्मेण निरुद्धश्वासत्वमुत्प्रेक्षत इत्युत्प्रेक्षालंकारः ॥४१॥

हिन्दी—बड़े बड़े मतवाले हस्तिसमूहों की चिग्घाड़, अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे घोड़ों की हिनहिनाहट और इधर से उधर दौड़ते हुए रथों के चक्कों की घरघराहट से सारा संसार घबड़ा गया उनकी साँसें भी घुटने लगीं ।

महागजानां गुरुभिस्तु गर्जितैर्विलोलघण्टारणितै रणोल्बणैः ।
वीरप्रणादैः प्रमदप्रमेदुरैर्वाचालतामादधिरेतरां दिशः ॥४२॥

अन्वयः—महागजानां गुरुभिः गर्जितैः रणोल्बणैः विलोलघण्टारणितैः प्रमद-प्रमेदुरैः वीरप्रणादैः दिशः वाचालताम् आदधिरेतराम् ।

संजी०—महागजानामिति ।। महागजानां संबन्धिभिर्गुरुभिर्दीर्घैर्गर्जितै रणोल्बणैर्विलोला या घण्टास्तासां रणितैश्च प्रमदेनोन्मादेन निमित्तेन प्रमेदुरैः प्रकर्षेण पुष्टैर्वीरणादैर्वीराणां शब्दैश्च दिशः काष्ठाः कर्त्र्यः । वाचालतां मुखरतामादधिरेतरामतिशयेन धृतवत्यः । तरपि 'किमेत्तिङ्-' इत्याम् ॥४२॥

हिन्दी—महागजों की गम्भीर गर्जना, युद्ध के लिए भीषण तथा हिलने वाले घण्टा के शब्दों एवं उन्माद उत्पन्न करने के लिए परिदुष्ट वीरों की गर्जना से समस्त दिशायें मुखरित हो उठीं थीं ।

दन्तीन्द्रदानद्रववारिवीचिभिः सद्योऽपि नद्यो बहुधा पुपूरिरे ।
धारा रजोभिस्तुरगैः क्षतैर्भृता याः पङ्कतामेत्य रथैः स्थलीकृताः ॥

अन्वयः—दन्तीन्द्रदानद्रववारिवीचिभि, नद्यः अपि सद्यः बहुधा पुपूरिरे । (अथ) या तुरगैः क्षतैः रजोभिः भृताः पङ्कताम् एत्य रथैः धारा, स्थलीकृताः ।

संजी०—दन्तीन्द्रेति ।। दन्तीन्द्राणां गजेन्द्राणां ये दानद्रवा मदस्रुतयस्तेषां वारीणि जलानि तेषां वीचिभिस्तरङ्गैः कर्तृभिः । नद्यो वाहिन्योऽपि सद्यो बहुधा पुपूरिरे पूरिताः । कर्मणि लिट् । ग्रीष्मसंतापेन शुष्का अपि नद्यो जलपूर्णा आसन्नित्यर्थः । अथ या नद्यस्तुरगैः क्षतैः क्षुण्णै रजोभिर्भृताः पूर्णा अतएव पंकतां कर्दमतामेत्य स्थिताः । ता रथैः कर्तृभिः धाराश्चक्रधारा भ्रामयित्वा स्थलीकृताः ॥४३॥

हिन्दी सेना के बड़े-बड़े हाथियों की मदधारा के तरङ्गों ने सद्यः नदियों को परिपूर्ण कर दिया । घोड़ों की टापों से क्षत होने के कारण उठी हुई धूलि से नदियाँ कीचड़ से भर गयीं । रथों की पहियों के चलने से दब-दबकर पुनः वही धारा स्थल के रूप में परिणत हो गई ।

निम्नाः प्रदेशाः स्थलतामुपागमन्निम्नत्वमुच्चैरपि सर्वतश्च ते ।
तुरंगमाणां व्रजतां खुरैः क्षता रथैर्गजेन्द्रैः परितः समीकृताः ॥४४॥

अन्वयः—निम्नाः प्रदेशाः स्थलताम् उपागमन् । सर्वतः उच्चैः अपि ते निम्नत्वम् (उपागमन्) अथ च व्रजतां तुरङ्गमाणाम् खुरैः क्षताः रथैः गजेन्द्रैः परितः समीकृता ।

संजी०—निम्ना इति ।। निम्ना नीचाः प्रदेशा भूमयः स्थलतां समानभूमित्वमुपागमन्प्रापुः । सर्वत उच्चैरप्युन्नता अपि ते प्रदेशा निम्नत्व-

मुपागमन् । निम्नमुच्चैरभवत, अन्यप्रदेशोत्थापितधूलिपूरितत्वात् । उच्चैर्निम्नमभवत् । आत्मधूलीनामन्यत्र पतितत्वादिति भावः । अथ च ते प्रदेशा व्रजतां गच्छतां तुरंगमाणां खुरैः क्षतारचुक्षुदिरे । अत एव रथैर्गजेन्द्रैश्च परितो निम्नोन्नतेषु समीकृताः । समाश्चक्रिर इत्यर्थः ॥४४॥

हिन्दी—नीचे के प्रदेश स्थल बन गये क्योंकि वे अन्य प्रदेश की उठी हुई धूलि से पट गये थे । ऊँचे स्थान नीचे हो गये क्योंकि वहाँ की जमीन धूलि बन कर उड़ गई थी । फिर वे प्रदेश जब घोड़ों की टाप से पुनः उखड़ गये तब रथों एवं गजेन्द्रों ने उसे चारों ओर से समतल बना दिया ।

नभोदिगन्तप्रतिघोषभीषणैर्महामहीभृत्तटदारणोल्बणैः ।
पयोधिनिर्धूननकेलिभिर्जगद्बभूव भेरीध्वनितैः समाकुलम् ॥४५॥

अन्वयः—नभोदिगन्तप्रतिघोषभीषणैः महामहीभृत्तटदारणोल्बणैः पयोधिनिर्धूननकेलिभिः भेरीध्वनितैः समाकुलं जगद् बभूव ।

संजी०—नभ इति ॥ नभसि व्योम्नि दिगन्तेषु च यः प्रतिघोषः प्रतिध्वनिस्तेन भीषणैर्भयानकैः । महान्ति यानि महीभृतां पर्वतानां तटानि भृगवस्तेषां दारणे भेदन उल्बणैरुद्भटैः । समर्थैरिति यावत् । तथा पयोधेः समुद्रस्य निर्धूनने कम्पने केलिः क्रीडा येषाम् । पयोधिमपि कम्पयद्भिरित्यर्थः । भेरीध्वनितैर्वदनैकवाद्यमानवाद्यविशेषरवैर्निमित्तैर्जगत्समाकुलं व्याकुलं बभूव ॥४५॥

हिन्दी—उस समय आकाश एवं दिगन्तों में होने वाली प्रतिध्वनि से और भी भयानक बड़े से बड़े पहाड़ों को चूर करने के कारण भयंकर तथा समुद्र को कम्पित कर देने वाले नगाड़ों के शब्दों से सारा संसार व्याकुल हो उठा ।

इतस्ततो वातविधूतचञ्चलैर्नीरन्ध्रिताशागमनैर्ध्वजांशुकैः ।
लक्षैः क्वणत्काञ्चनकिङ्किणीकुलैरमज्जि धूलीजलधौ नभोगते ॥४६॥

अन्वयः—इतस्ततः वातविधूतचञ्चलैः नीरन्ध्रिताशागमनैः क्वणत्काञ्चनकिङ्कीणीकुलैः लक्षैः ध्वजांशुकैः नभोगते धलिजलधौ अमज्जि ।

संजी०—इत इति ॥ इतस्ततो वातविधूतानि पवनकम्पितान्यत एव चञ्चलानि च तैः । तथा नीरन्ध्रितं निरवकाशीकृतमाशासु दिक्षु गमनं यैः । आत्मव्याप्त्या रुद्धपथिकपथैरित्यर्थः । क्वणद्रणत्काञ्चनकिङ्किणीनां सौवर्णनूपुराणां कुलं जालं येषां प्रान्तभागेषु । शोभार्थं प्रतिबद्धनूपुरजालैरित्यर्थः ।

लक्षैर्लक्षसंख्यैः। 'लक्षं शरव्ये संख्यायाम्' इति मेदिनी। ध्वजांशुकैर्ध्वजपटैः। 'अंशुकं शुक्लवस्त्रे स्याद्वस्त्रमात्रोत्तरीययोः' इति मेदिनी। नभसि गते प्रसृते धूलिजलधौ रजोऽम्बुधावमज्जि मज्जितम्। भावे लुङ्। सर्वाणि ध्वजांशुकानि धूलीभिरलक्षितानि बभूवुरित्यर्थः ॥४६॥

हिन्दी—इधर-उधर पवन के वेग से लहराती हुई आकाश के गमन मार्ग को रोक देने वाली बजते हुए सुवर्णमय किङ्किणियों से शोभित होने वाली लाखों पताकाये आकाश में पहुँची हुयी धूलि के समुद्रों में स्नान करती जान पड़ती थीं अर्थात् उस समय पताकायें धूल में ऐसी डूब गईं कि उनका दीखना भी असम्भव हो गया।

घण्टारवै रौद्रतरैर्निरन्तरं विसृत्वरैर्गर्जरवैः सुभैरवः।
मत्तद्विपानां प्रथयांबभूविरे न वाहिनीनां पटहस्य निःस्वनाः ॥४७॥

अन्वयः—मत्तद्विपानां निरन्तर विसृत्वरैः सुभैरवैः गर्जरवैः रौद्रतरैः घण्टारवैः वाहिनीनाम् पटहस्य निःस्वनाः न प्रथयांबभूविरे।

संजी०—घण्टारवैरिति ॥ मत्तद्विपानां संबन्धिभिर्निरन्तरं विसृत्वरैः प्रसृमरैः सुतरां भैरवैर्भीषणैः। 'भैरवः पुंसि शम्बरे। भीषणेऽपि च' इति मेदिनी। गर्जरवैर्गर्जनारूपघोषैः। रौद्रतरैरत्युग्रैः। 'रौद्रं तूग्रममी त्रिषु' इत्यमरः। घण्टारवैश्च। वाहिनानां सेनानां संबन्धिनः पटहस्यानकाख्यवाद्यविशेषस्य निःस्वनाः शब्दा न प्रथयांबभूविरे न प्रकटीचक्रिरे ॥४७॥

हिन्दी—मतवाले हाथियों के निरन्तर चारों ओर फैलने वाली महाभयानक अत्यन्त चिग्घाड़ों एवं गले में बाँधे गये घण्टा के भीषण शब्दों के बीच सेनाओं के बजते हुये नगाड़ों की ध्वनि प्रगट रूप से स्पष्ट ही सुनाई पड़ती थी।

करालवाचालमुखाश्चमूस्वनैर्ध्वस्ताम्बरा वीक्ष्य दिशो रजस्वलाः।
तिरोबभूवे गहनैर्दिनेश्वरो रजोन्धकारैः परितः कुतोऽप्यसौ ॥४८॥

अन्वयः—चमूस्वनैः करालवाचालमुखाः ध्वस्ताम्बरा रजस्वलाः दिशः वीक्ष्य परितः गहनैः रजोऽन्धकारैः असौ दिनेश्वरः कुतः अपि तिरोबभवे।

संजी०—करालेति ॥ चमूस्वनैः सेनाघोषैः करालानि वाचालानि च मुखानि प्रारम्भाः। 'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इति मेदिनी। तथा ध्वस्तं रजोव्याप्तमम्बरं यासाम्। तथा रजस्वला रजोयुक्ता दिशो वीक्ष्य परितो गहनैः सघनै रजोन्धकारैः कर्तृभिः। असौ दिनेश्वरः सूर्यः कुतोऽपि कुत्रापि तिरोबभूवे तिरोगमितः। अन्तर्हित इत्यर्थः। 'भूङ् गतौ'

इत्यतो लिट्। 'भू प्राप्तौ' इत्यतो वा। वीक्ष्येवेति गम्योत्प्रेक्षा। अथ द्वितीयपक्षे—रजस्वला आर्तववतीः। अतएव कराला भीषणा वाचां वाणीमलान्त्यगृह्णन्ति मुखानि यासाम्। ततो विशेषणसमासः। मौनव्रतधारिणीरित्यर्थः। तथा ध्वस्ताम्बराः स्रस्तशाटिकाः। नग्ना इत्यर्थः। एवंभूता चमूर्योषितः। 'चमूः सेनाविशेषे च सेनामात्रे च योषिति' इति मेदिनी। वीक्ष्य रजस्यार्तवविषयेऽन्धकारोऽन्धवत्कारः कृतिः। क्रिया इति यावत्। भावे घञ्। आर्तवमपत्रपद्भिरित्यर्थः। रजस्वलादर्शननिषेधात्। गहनैर्गहनमनोभिः। सद्भिरित्यर्थः। दिनेश्वरः कश्चित्पुरुषः कुतोऽपि कुत्रापि तिरोबभूवे। कश्चिदसत्पुरुषो रजस्वलां पश्यन्नपि सद्भिः करुणया पटादिभिस्तिरोधीयते तद्वदित्यर्थः ॥४८॥

हिन्दी—जिस प्रकार रजस्वला स्त्री को चुपचाप, एवं नंगी देखकर कोई दिनेश्वर नाम का व्यक्ति कहीं जाकर छिप जाता है अथवा देखने पर भी उसे सज्जन लोग करुणापूर्ण दृष्टि से पटादि द्वारा तिरोहित कर देते हैं। उसी प्रकार सेना के शब्द से कराल एवं मुखरित मुखों वाली, आकाश तक धूलि को व्याप्त कर देने वाली अतएव रजस्वला दिशाओं को देखकर अत्यन्त सघन अन्धकार से भगवान् सूर्यदेव ने अपने को स्वयं छिपा लिया।

आक्रान्तपूर्वा रभसेन सैनिकैर्दिगङ्गना व्योम रजोभिदूषिता।
भेरीरवाणां प्रतिशब्दितैर्घनैर्जगर्ज गाढं घनमत्सरादिव ॥४९॥

अन्वयः—सैनिकैः रभसेन आक्रान्तपूर्वा दिगङ्गना रजोऽभिदूषिता घनमत्सरात् इव गाढं व्योम भेरीरवाणां घनैः प्रतिशब्दितैः गाढं जगर्ज।

संजी०—आक्रान्तपूर्वेति॥ सैनिकैः सेनाजनै रभसेन वेगेनाक्रान्तपूर्वा पूर्वमाक्रान्ता दिगङ्गना दिग्रूपा नायिका रजसा धूल्या। आर्तवेन च। 'रजो रेणौ परागे स्यादार्तवे च गुणान्तरे' इति मेदिनी। अभिदूषिता कृता। वीक्ष्येति शेषः। अतो घनमत्सरादिव गाढद्वेषादिव व्योम कर्तृ भेरीरवाणां घनैः प्रतिशब्दितैः कृत्वा गाढं जगर्ज। अन्योऽप्यात्मपत्नीमन्यसंगमेन रजोयुक्तां वीक्ष्य गर्जति ॥४९॥

हिन्दी—सैनिकों के द्वारा वेगपूर्वक पहले से ही आक्रान्त हो जाने वाली अपनी दिन रूपा नायिका को धूलि से दूषित होते देख मानो आकाश अपनी घनी ईर्ष्या के कारण सेना के बजने वाले नगाड़ों के भयङ्कर प्रतिध्वनि के बहाने घनघोर गर्जना कर रहा हो।

गुरुसमीरसमीरितभूधरा इव गजा गगनं विजगाहिरे ।
गुरुतरा इव वारिधरा रथा भुवमितीह विवर्त इवाभवत् ॥५०॥

अन्वयः--गुरुसमीरसमीरितभूधरा इव गजाः गगनं विजगाहिरे । गुरुतराः वारिधारा इव रथा भुवम् (विजगाहिरे) इह ऐरि विवर्तः अभवत् ।

संजी०—गुरुसमीरेति ॥ गुरुणा महता समीरेण वातेन समीरिता उपरिक्षिप्ता भूधराः पर्वता इवेत्युत्प्रेक्षा । गजा गगनं विजगाहिरे । अवगाहितवन्त इत्यर्थः । गुरुतरा अपि महान्तो वारिधरा मेघा इवेत्युत्प्रेक्षा । रथा भुवं विजगाहिरे । इह सङ्कर इत्येवं विवर्त इव व्यत्यय इवाभवत् । गगनपृथिव्यवगाहने स्यन्दननागयोर्भूधरसंभवात् । उत्प्रेक्षितं च तत्सादृश्यदर्शनात् । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥५०॥

हिन्दी—आकाश में इधर-उधर घूमने वाले हाथी बहुत बड़ी आँधी से उड़ते हुये पहाड़ जैसे प्रतीत हो रहे थे और पृथ्वी पर चलने वाले बड़े-बड़े रथ बादलों के जैसे प्रतीत हो रहे थे । इस प्रकार उस सेना ने विचित्र उलट-फेर मचा दी । अर्थात् पृथ्वी के पहाड़ आकाश में और आकाश के बादल पृथ्वी पर दिखाई पड़ने लगे ।

बलमदसुरलोकानल्पकल्पान्तकाले
निरवधय इवाम्भोराशयो घोरघोषाः ।
गुरुतरपरिमज्जद्भूभृतो देवसेना
ववृधुरपि सुपूर्णा व्योमभूम्यन्तराले ॥५१॥

अन्वयः--गुरुतरपरिमज्जद्भभृतः व्योमभूम्यन्तराले सुपूर्णाः घोरघोषाः देवसेना अपि ववृधुः । बलवदसुरलोकानल्पकल्पान्तकाले निरवधयः अम्भोराशय इव ।

संजी०--बलवदिति ॥ गुरुतरा अतएव परिमज्जन्तो भूभृतो राजानः पर्वताश्च यासु येषु च । व्योमभूम्योर्द्यावापृथिव्योरन्तराले मध्ये सुतरां पूर्णा अपि । इत्युभयत्रापि समानम् । घोरघोषा भयानकरवा देवसेना ववृधुः । तत्रोत्प्रेक्षते—बलवतामसुरलोकानामनल्पो महान्यः कल्पान्तकालः प्रलयकालस्तत्र निरवधयोऽपारा अम्भोराशय इव समुद्रा इव । अत्रोपमैवास्त्विति चेत्; न । तत्राभिन्नलिङ्गमुभयोरिति नियमात् । मालिनी छन्दः । लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीतारामकविविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदासकृतौ कुमारसंभवे महाकाव्ये देवसेना-प्रयाणं नाम चतुर्दशः सर्गः ।

हिन्दी—बड़े-बड़े राजाओं अथवा पहाड़ों को अपने में लीन करती हुई आकाश और पृथ्वी के बीच भाग को भली प्रकार पूर्ण करती हुई और भीषण कोलाहल करती हुई देवसेना इस प्रकार आगे बढ़ने लगी मानो महाबलशाली असुरलोक का शीघ्र ही अन्त कर देने वाले इस कल्पान्तकाल में समुद्र अपनी मर्यादा तोड़कर बड़े-बड़े पहाड़ों को डुबोता हुआ पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त स्थानों को जल से पूर्ण करता हुआ तथा भयानक गर्जना करता हुआ बढ़ता आ रहा हो ।

॥ इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥१४॥

पञ्चदशः सर्गः ।



सेनापतिं नन्दनमन्धकद्विषो युधे पुरस्कृत्य बलस्य शात्रवः ।
सैन्यैरुपैतीति सुरद्विषां पुरोऽभूत्किंवदन्ती हृदयप्रकम्पिनी ॥१॥

अन्वयः—बलस्य शात्रवः सेनापतिं अन्धकाद्विषः नन्दनम् पुरस्कृत्य सैन्यैः युधे उपैति इति हृदयकम्पिनी किं वदन्ती सुरद्विषां पुरः अभूत् ।

संजी०—सेनापतिमिति ॥ बलस्य बलनामकराक्षसस्य शात्रवः । शत्रुरेव शात्रवः । प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण् । इन्द्रः । सेनापतिं पृतनाधिपम् । अन्धकद्विषो हरस्य नन्दनं पुत्रं कार्तिकेयं पुरस्कृत्याग्रे कृत्वा सैन्यैः सह युधे युद्धाय । युद्धं कर्तुमिति यावत् । 'क्रियार्थ-' इत्यादिना चतुर्थी । उपैत्यायाति । इत्येवंभूता हृदयप्रकम्पिनी हृदयं वेपयन्ती किंवदन्ती जनश्रुतिः । 'किंवदन्ती जनश्रुतिः' इत्यमरः । सुरद्विषां दैत्यानां तारकनगरनिवासिनां पुरोऽग्रेऽभूत् । सर्गेऽस्मिन्निन्द्रवंशोपजाती वृते ॥ १ ॥

हिन्दी—बलनामक दैत्य का विनाश करने वाले इन्द्रदेव अपने सेनापति कार्त्तिकेय को अपने आगे कर सेनाओं के साथ युद्ध करने के लिये आ रहे हैं । हृदय को दहला देने वाला जब ऐसा समाचार दैत्यों को मालूम हुआ ।

चमूप्रभुं मन्मथमर्दनात्मजं विजित्वरीभिर्विजयश्रियाश्रितम् ।
श्रुत्वा सुराणां पृतनाभिरागतं चित्ते चिरं चुक्षुभिरे महासुराः ॥२॥

अन्वयः—महासुरा विजयश्रिया श्रितं चमूप्रभुं मन्मथमर्दनात्मजम् विजित्वरीभिः सुराणां पृतनाभिः (सह) आगतम् श्रुत्वा चिरं चित्ते चुक्षुभिरे ।

संजी०—चमूप्रभुमिति ॥ महासुरास्तारकनगरनिवासिनो दैत्य विजयश्रिया विजयलक्ष्म्या श्रितं सेवितम् । एतेनास्य कादाचित्कोऽपि पराभवो न भवतीति ध्वनितम् । अतएव चमूप्रभुं मन्मथमर्दनस्य शिवस्यात्मजम् । अनेन यदीयः पिता सकलभुवनजेतुर्मकरध्वजस्यापि प्लोषिता, अतोऽस्य किं वक्तव्यम् । 'कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते', 'प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्' इत्यादिन्यायेन तारकेणाप्ययं दुर्जेय इति ध्वनितम् । तं कार्तिकेयं विजत्विरीभिर्जयशीलाभिः । जयतेः 'इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप्' इति क्वरपि परे

'ह्रस्वस्य पिति' इति तुकि कृते 'टिड्ढा–' इत्यनेन ङीप्। सुराणां देवानां पृतनाभिः सेनाभिः सहागतमायातं श्रुत्वा चिरं बहुकालपर्यन्तं चित्ते मनसि चुक्षुभिरे संचेलुः। बिभ्युरित्यर्थः। 'क्षुभ संचलने'। कर्तरि लिट्। अत्र वाच्यापेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्याधिकचमत्कृतिजनकत्वाद्ध्वनिः ॥ २ ॥

हिन्दी—और उन्होंने जब यह सुना कि विजयलक्ष्मी से युक्त भगवान् शंकर के पुत्र स्वामी कार्तिकेय सेनापति बन कर देवताओं की विजयिनी सेना के साथ आ रहे हैं तो वे सभी दैत्य अपने चित्त में बहुत व्याकुल हो उठे।

समेत्य दैत्याधिपतेः पुरे स्थिताः किरीटबद्धाञ्जलयः प्रणम्य ते।
न्यवेदयन्मन्मथशत्रुसूनुना युयुत्सुना जम्भजितं सहागतम् ॥३॥

अन्वयः—दैत्याधिपतेः पुरेः स्थितः ते समेत्य किरीटबद्धाञ्जलयः प्रणम्य युयुत्सुना मन्मथशत्रुसूनुना सहआगतं जम्भजितं न्यवेदयन्।

संजी०—समेत्येति ॥ दैत्याधिपतेस्तारकस्य पुरे नगरे स्थितास्ते महासुराः समेत्य समुदित्य। संघीभूयेति यावत्। तथा किरीटेषु मुकुटेषु बद्धोऽञ्जलिर्यैस्तथा सन्तः प्रणम्य युयुत्सुना योद्धुमिच्छुना मन्मथशत्रोः शिवस्य सूनुना पुत्रेण कुमारेण सहागतं जम्भजितमिन्द्रं न्यवेदयन्। स शम्भुपुत्रो महेन्द्र आगत इति निवेदितवन्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥

हिन्दी—दैत्याधिपति तारकासुर के पुर में रहने वाले उन सभी दैत्यों ने एकत्र होकर माथे पर अञ्जलि रखे हुये प्रणाम कर युद्ध करने की इच्छा वाले कार्तिकेय के साथ आ रहे इन्द्र के आगमन की सूचना दी।

दासीकृताशेषजगत्त्रयं न मां जिगाय युद्धे कतिशः शचीपतिः।
गिरीशपुत्रस्य बलेन सांप्रतं ध्रुवं विजेतेति स काकुतोऽहसत् ॥४॥

अन्वयः—दासीकृताशेषजगत्त्रयं मां शचीपतिः कतिशः युद्धे न जिगाय सांप्रतं गिरीशपुत्रस्य बलेन ध्रुवं विजेता इति सः काकुतलो अहसत्।

संजी०—दासीकृतेति ॥ दासीकृतं भृत्यीकृतम्। 'दासो भृत्ये च शूद्रे च' इति मेदिनी। अशेषजगत्त्रयं समस्तलोकत्रितयं येन तथाभूतं मां शचीपतिरिन्द्रः कतिशः कतिवारं युद्धे न जिगाय जयति स्म। अपि त्वनेकवारं जिगायेति काकुः। जयनिषेधस्य काक्वाश्रितत्वाज्जयनिषेध एव ध्वन्यते। सांप्रतं वर्तमानकाले गिरीशपुत्रस्य कुमारस्य बलेन वीर्येण। तदाश्रयेणेत्यर्थः। ध्रुवं निश्चयेन विजेता विजेष्येत। इति स तारकः काकुतः काक्वाहसज्जहास। कदाचिदपि न विजेष्यत इति ध्वन्यते ॥ ४ ॥

हिन्दी—त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त करने वाला इन्द्र पिछले कई युद्धों में मुझे तो नहीं जीत सका किन्तु अब वह कुमार कार्तिकेय के बल पर मुझे अवश्य जीत लेगा ? ऐसा व्यङ्ग्य पूर्वक कह कर हँसने लगा ।

ततः क्रुधा विस्फुरिताधराधरः स तारको दर्पितदोर्बलोद्धतान् ।
युधे त्रिलोकीजयकेलिलालसः सेनापतीन् संनहनार्थमादिशत् ॥५॥

अन्वयः—ततः क्रुधा विस्फुरिताधराधरः (तथा) त्रिलोकीजयकेलिलालसः सः तारकः दर्पितदोर्बलोद्धतान् सेनापतीन् युद्धे संनहनार्थम् आदिशत् ।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं क्रुधा क्रोधेन निमित्तेन विस्फुरित उच्छ्वसितोऽधरोऽनूर्ध्वं ओष्ठो यस्य । प्रसिद्धं चैतद्यत्क्रोधवशादधरविस्फुरणम् । तथाऽधरो हीनः । नीच इति यावत् । 'अधरस्तु पुमानोष्ठे हीनेऽनूर्ध्वे च वाच्यवत्' इति मेदिनी । विस्फुरिताधरश्चासावधरश्चेति विशेषणसमासः । तथा त्रिलोक्या जय एव केलिः क्रीडा तस्यां लालसेच्छा यस्य । अनायासेनैव त्रिलोकीं जेष्यामीत्यभिमानवानित्यर्थः । एवंभूतः स तारकोऽसुरो दर्पिताः संजातदर्पास्तथा दोर्बलेन भुजबलेनोद्धतान् प्रगल्भान्सेनापतीन्सेनाधिपान्युधे युद्धाय । युद्धं कर्तुमित्यर्थः । संनहनार्थं संनद्धीभवनार्थं चादिशदाजज्ञे 'युद्धे' इति पाठे युद्धे विषये त्रिलोकीजयकेलिलालस इत्यन्वयितव्यम् ॥ ५ ॥

हिन्दी—तब क्रोध से फड़कते होठों वाले अत्यन्त नीच, खिलवाड़ से ही त्रिलोकी पर विजय प्राप्त करने वाले उस तारकासुर ने अपनी भुजाओं पर अभिमान करने वाले अत्यन्त वीर सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार हो जाने का आदेश दिया ।

महाचमूनामधिपाः समन्ततः संनह्य सद्यः सुतरामुदायुधाः ।
तस्थुर्विनम्रक्षितिपालसंकुले तदङ्गनद्वारवरप्रकोष्ठके ॥६॥

अन्वयः—उदायुधाः महाचमूनाम् अधिपाः सद्यः सुतराम समन्ततः संनह्य विनम्रक्षितिपालसंकुले तदङ्गनद्वार वरप्रकोष्ठके तस्थुः ।

संजी०—महेति ॥ उदायुधा उद्धृतान्यायुधानि शस्त्राणि यैरेवंभूता महाचमूनां महतीनां सेनानामधिपाः स्वामिनः सद्यस्त्वरितं सुतरां संनह्य संनद्धा भूत्वा विनम्रा ये क्षितिपाला राजानस्तैः संकुले व्याप्ते तस्य तारकस्य यदङ्गनद्वारं चत्वरप्रवेशद्वारं तस्य वरः श्रेष्ठो यः प्रकोष्ठकोऽन्तरम् । मध्यमिति यावत् । 'प्रकोष्ठो मणिबन्धे स्यात्कूर्परस्यान्तरेऽपि च । भूपकक्षान्तरेऽपि स्यात्' इति मेदिनी । तत्र समन्ततः सर्वतस्तस्थुः । नृपं प्रतीक्षमाणा इति शेषः । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः ॥ ६ ॥

हिन्दी--तदनन्तर तारकासुर की विशाल सेनाओं के अधिपति शीघ्र ही सन्नद्ध होकर सभी प्रकार के अस्त्रशस्त्रों को धारण कर कवच पहने हुये उसके द्वार पर जहाँ राजा लोग सिर झुकाकर खड़े थे वहाँ (नृप की प्रतीक्षा में) उपस्थित हुए।

स द्वारपालेन पुरः प्रदर्शितान्कृतानतीन्बाहुवरानधिष्ठितान् ।
महाहवाम्भोधिविधूननोद्धतान्ददर्श राजा पृतनाधिपान्बहून् ॥७॥

अन्वयः—सः राजा पुरः द्वारपालेन प्रदर्शितान् कृतानतीन् बाहुवरान् अधिष्ठितान् महाहवाम्भोधिविधूननोद्धतान् बहून् पृतनाधिपान् ददर्श ।

संजी०—स इति ॥ राजा तारकः पुरोऽग्रे द्वारपालेन प्रदर्शितान्कृतानतीन्बाहुवरान्बाहवो वराः श्रेष्ठा येषां तथोक्तानधिष्ठितान् । द्वार इति शेषः । महाहवरूपिणोऽम्भोधेः समुद्रस्य विधूनने कम्पन उद्धतान्प्रगल्भान् । महावीरानित्यर्थः । 'सङ्ग्रामाभ्यागमाहवाः' इत्यमरः । बहून्पृतनाधिपान्सेनापतीन्ददर्श दृष्टवान् । 'अदभ्रं बहुलं बहु' इत्यमरः ॥ ७ ॥

हिन्दी--तदनन्तर उस राजा कार्त्तिकेय ने द्वारपाल के द्वारा दिखाये गये, हाथ जोड़े हुये, बाहुबली द्वार पर उपस्थित महायुद्धरूपी समुद्र को कँपाने में प्रगल्भ अपने बहुत से सेनापतियों को देखा ।

बली बलारातिबलातिशातनं दिग्दन्तिनादद्रवनाशनस्वनम् ।
महीधराम्भोधिनवारितक्रमं ययौ रथं घोरमथाधिरुह्य सः ॥८॥

अन्वयः—अथ बली सः बलारातिबलातिशातनम् दिग्दन्तिनादद्रवनाशनस्वनम् महीधराम्भोधिम् अवारितक्रमम् घोर रथम् अधिरुह्य ययौ ।

संजी०—बलीति ॥ अथानन्तरं बली वीर्यवान्स तारको बलारातेरिन्द्रस्य संबन्धिनो बलस्य सैन्यस्य । 'बलं गन्धरसे रूपे स्यामनि स्थौल्यसैन्ययोः' इति मेदिनी । अतिशातनं तनूकर्तारम् । हन्तारमित्यर्थः । दिग्दन्तिनामैरावतादीनां नादद्रवयोर्घोषमदयोर्नाशनो नाशकः स्वनो घोषो यस्य तम् । यदीयघोषवशाद्दिग्दन्तिनोऽपि तूष्णींशुष्कमदाश्च भवन्तीति भावः । महीधरेषु पर्वतेष्वम्भोधिषु च नवारितक्रममनिवारितसंचारम् । नशब्देन सह 'सुप्सुपा' इति समासः । घोरं भीमं रथमधिरुह्य ययौ जगाम । प्रतस्थ इति यावत् ॥ ८ ॥

हिन्दी—इसके पश्चात् अत्यन्त बलवान् वह तारकासुर इन्द्र की सेना को तहस नहस कर देने वाले दिग्गजों के चिग्घाड़ों एवं उनके मदजल को घरघराहट से बन्द कर देने वाले पहाड़ एवं समुद्र पर विना रोक टोक के चलने वाले अपने भयानक रथ पर सवार हो युद्ध के लिये चल पड़ा ।

युगक्षयक्षुब्धपयोधिनिःस्वनाश्चलत्पताकाकुलवारितातपाः ।
धरारजोग्रस्तदिगन्तभास्कराः पतिं प्रयान्तं पृतनास्तमन्वयुः ॥९॥

अन्वयः—युगक्षयक्षुब्धपयोधि निःस्वनाः चलत्पताकाकुलवारितातपाः धरारजोग्रस्तदिगन्तभास्कराः पृतनाः प्रयान्तं तं पतिम् अन्वयुः ।

संजी०—युगेति ॥ युगक्षये प्रलयकाले क्षुब्धः संचलितो यः पयोधिः समुद्रस्तस्य निःस्वन इव निःस्वनो यासाम् । प्रलयकालोद्वेलीभूतसागरसदृशघोरघोषा इत्यर्थः । चलन्तीनां पताकानां वैजयन्तीनाम् । 'पताका वैजयन्त्यां स्यात्सौभाग्ये नाटकाङ्कयोः' इति मेदिनी । कुलेन समूहेन वारितातपा दूरीकृतधर्मा धराया भूमे रजोभिर्ग्रस्ता दिगन्तानि दिक्प्रान्तानि भास्करस्य याभिस्तथाभूताः पृतनाः सेनाः कर्त्र्यः । प्रयान्तं प्रतिष्ठमानं तं पतिं तारकासुरमन्वयुः । अनुजग्मुरित्यर्थः ॥ ९ ॥

हिन्दी–प्रलयकाल में उमड़ते हुये समुद्र के समान शब्दायमान भीषण कोलाहल करने वाली हिलती हुई पताकाओं से धूप को रोक देने वाली पृथ्वी में उठी हुई धूल से दिशाओं एवं सूर्य को रोक देने वाली उसकी सेना भी प्रस्थान करने वाले अपने स्वामी तारकासुर के पीछे-पीछे चल पड़ी ।

चमूरजः प्राप दिगन्तदन्तिनां महासुरस्याभिसुरं प्रसर्पिणः ।
दन्तप्रकाण्डेषु सितेषु शुभ्रतां कुम्भेषु दानाम्बुघनेषु पङ्कताम् ॥१०॥

अन्वयः—अभिसुरम् प्रसर्पिणः महासुरस्य चमूरजः दिगन्त दन्तिनाम् सितेषु दन्तप्रकाण्डेषु शुभ्रतां दानाम्बु घनेषु कुम्भेषु पङ्कतां प्राप ।

संजी०—चमूरज इति ॥ अभिसुरं सुरसंमुखं प्रसर्पिणः प्रतिष्ठमानस्य महासुरस्य तारकस्य संबन्धिनीनां चमूनां रजो रेणुः । दिगन्तदन्तिनामैरावतादीनां सितेषु शुभ्रेषु दन्तप्रकाण्डेषु । दन्तरूपासु शाखास्वित्यर्थ । 'प्रकाण्डो न स्त्री विटपे मूलशाखान्तरे तयोः' इति मेदिनी । शुभ्रतां पाण्डुतां दानाम्बुना मदजलेन घनेषु सघनेषु कुम्भेषु मूर्धान्तरेषु । गण्डस्थलेष्विति यावत् । 'कुम्भो राश्यन्तरे हस्तिमूर्धान्ते राक्षसान्तरे' इति मेदिनी । पङ्कतां कर्दमताम् । 'पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे' इति मेदिनी । प्राप । धवलिमाश्रयीभूतसंबन्धेन युक्तं हि धवलत्वमिति भावः । अन्यत्स्फुटम् ॥ १० ॥

हिन्दी—देव सेना की ओर बढ़ने वाले उस महासुर के सेना की उठी हुई धूल दिग्गजों के बड़े-बड़े उजले दाँतों पर पड़कर श्वेत हो गई और मदधारा से भरे कुम्भ स्थलों पर कीचड़ (रूप) बन गई ।

महीभृतां कन्दरदारणोल्बणैस्तद्वाहिनीनां पटहस्वनैर्घनैः ।
उद्वेलिताश्चुक्षुभिरे महार्णवा नभःस्रवन्ती सहसाभ्यवर्धत ॥११॥

अन्वयः—महीभृताम् कन्दरदारणोल्बणै घनैः तद्वाहिनीनाम् पटहस्वनै उद्वेलिताः महार्णवाः चुक्षुभिरे तथा नभः स्रवन्ती सहसा अभ्यवर्धत ।

संजी०—महीभृतामिति ॥ महीभृतां पर्वतानां संबन्धिनो ये कन्दरा दर्यः । 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः । तेषां दारणे स्फोटन उल्बणै-रुद्भटैः । आतमव्याप्तिवशात्स्फोटयद्भिरिवेति भासमानैरित्यर्थः । तथा घनै-र्दृढैः । कठोरैरिति यावत् । 'घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्यमध्यमनृत्ययोः । ना मुस्तादौ घनाद्येषु विस्तारे लोहमुद्गरे । त्रिषु सान्द्रे दृढे च' इति मेदिनी । तद्वाहिनीनां तारकसेनानां संबन्धिनो ये पटहा आनकाः 'पटहो ना समारम्भ आनके पुंनपुंसकम्' इति मेदिनी । तेषां स्वनैः कर्तृभिः उद्वेलिता वेलाम-तिक्रामिना महार्णवा महान्तः समुद्राश्चुक्षुभिरे संचेलुः । पटहध्वनिजनित-भयादिति भावः । तथा नभःस्रवन्त्याकाशगङ्गा च सहसाकस्मादभ्यवर्धत । अतिवेला बभूवेत्यर्थः ॥ ११ ॥

हिन्दी—पहाड़ों की कन्दराओं को विदीर्ण करने में समथ अत्यन्त भयानक सेना के नगाड़ों की ध्वनि से अपनी वेला(तट) का अतिक्रमण करने वाले समुद्रों में उफान आ गया तथा स्वर्गङ्गा में भी सहसा बाढ़ की स्थिति आ गई ।

सुरारिनाथस्य महाचमूस्वनैर्विगाह्यमाना तुमुलैः सुरापगा ।
अभ्युच्छ्रितैरूर्मिशतैश्च वारिजैरक्षालयन्नाकनिकेतनावलीम् ॥१२॥

अन्वयः—तुमुलैः सुरारिनाथस्य महाचमूस्वनैः विगाह्यमाना सुरापगा अभ्यु-च्छ्रतैः वारिजैः ऊर्मिशतैः च नाकनिकेतनावलीम् अक्षालयत् ।

संजी०—सुरारिनाथस्येति ॥ तुमुलैः संकुलैः । 'तुमुलः कलिवृक्षे ना तुमुलं रणसंकुले' इति मेदिनी । सुरारिरेव नाथो राजा तस्य । यद्वा सुरा-रीणां नाथो राजा तस्य । संबन्धिनीनां महाचमूनां स्वनैः शब्दैर्विगाह्यमाना व्याप्यमाना सुरापगा मन्दाकिनी । अभ्युच्छ्रितैरभ्युत्पतितैर्वारिजैर्वारिजानि कमलानि विद्यन्ते येषु तैः । कमलसहितैरित्यर्थः । 'अर्श आदिभ्यः' इत्यच् । ऊर्मिशतैस्तरङ्गशतकैश्च । 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा' इत्यमरः । नाकनिकेतनावलीं स्वर्गवेश्मपङ्क्तिमक्षालयन्ममार्ज ॥१२॥

हिन्दी—तारकासुर की सेना की विशाल सेना में होने वाले भयंकर कोलाहल से व्याप्त आकाशगङ्गा ने अपने में खिले सहस्रों कमलों एवं उछलती हुई ऊपर उठने वाली लहरों से स्वर्ग के महलों को प्रक्षालित कर दिया ।

अथ प्रयाणाभिमुखस्य नाकिनां द्विषः पुरस्तादशुभोपदेशिनी ।
अगाधदुःखाम्बुधिमध्यमज्जनं बभूव चोत्पातपरम्परा तव ॥१३॥

अन्वयः——अथ प्रयाणाभिमुखस्य नाकिनां द्विषः पुरस्तात् तव अगाधदुखाम्बुधिमध्यमज्जनम् अशुभोपदेशिनी उत्पातपरंपरा बभूव ।

संजी०—अथेति ॥ अथानन्तरं प्रयाणाभिमुखस्य प्रस्थानसंमुखस्य नाकिनां देवानां द्विषो वैरिणस्तारकस्य पुरस्तादग्रे 'भो तारक, तव त्वत्कमकम् । अगाधोऽतलस्पर्शः । 'अगाधमतलस्पर्शे त्रिषु श्वभ्रे नपुंसकम्' इति मेदिनी । यो दुःखाम्बुधिर्दुःखसमुद्रस्तन्मध्ये मज्जनं भविष्यति' इत्येवमशुभोपदेशिन्यशुभवादिन्युत्पातपरम्परा दुःशकुनपङ्क्तिर्बभूव ॥१३॥

हिन्दी—इसके बाद युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाले उस देव शत्रु तारकासुर के सामने—'हे तारकासुर ! थोड़े ही काल में तुम अगाध दुःख के समुद्र में डूब जाओगे' इस प्रकार के अशुभ का संकेत करने वाली उत्पात परम्परा प्रकट होने लगी ।

इतः परम् 'आगामि—' इत्यादिभिरेकादशभिरुत्पातपरम्परामेव प्रपञ्चयति—

आगामिदैत्याशनकेलिकाङ्क्षिणी कुपक्षिणां घोरतरा परम्परा ।
दधौ पदं व्योम्नि सुरारिवाहिनीरुपर्युपर्येत्यनिवारितातपा ॥१४॥

अन्वयः—घोरतरा कुपक्षिणाम् परम्परा आगामिदैत्याशनकेलिकाङ्क्षिणी सुरारिवाहिनीः उपर्युपरि एत्य निवारितातया (सती) व्योम्नि पदं दधौ ।

संजी०—तत्र आगामीति ॥ घोरतरातिशयभयानका कुपक्षिणां गृध्रादीनां कपोतादीनां वा परम्परा । आगामि भविष्यद्यद्दैत्यस्याशनकेलिर्भोजनक्रीडा तत्काङ्क्षतीति तथाभूता । तथा सुरारिवाहिनीस्तारकसेना उपर्युपरि । 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' इति द्विर्भावः । तद्योगे द्वितीया । तदुक्तं वामनेन— 'उपर्यादिषु सामीप्ये द्विरुक्तेषु द्वितीयया' इति । अनिवारितातपा न निवारितघर्मा च सती व्योम्न्याकाशे पदं स्थानं दधौ धृतवती । अनेन पद्येन प्रयाणानौचित्यद्योतकमुत्पातद्वयं वर्णितम् । तथाहि—आकस्मिकोपरि वृत्तिः आतपानिवृत्तिश्च । तस्मात्सर्वथैवास्य मरणं भविष्यतीति सूच्यते ॥१४॥

हिन्दी—उस समय भयंकर (गृद्धादि मांसभक्षी) कुपक्षियों की पंक्ति भविष्य में दैत्यों के मांस के खाने का उत्सव प्रगट करती हुई उस दैत्य सेना के ऊपर-ऊपर मँडराती हुई अपनी छाया से उनके ऊपर पड़ने वाले धूप को रोक कर आकाश मण्डल में स्थित हो गई । (इस श्लोक में दो उत्पातों का वर्णन है)

मुहुर्विभग्नातपवारणध्वजश्चलद्धराधूलिकलाकुलेक्षणः ।
धूताश्वमातङ्गमहारथाकरानवेक्षणोऽभूत्प्रसभं प्रभञ्जनः ॥१५॥

अन्वयः—विभग्नातपवारणध्वजः चलद्धराधूलिकलाकुलेक्षणे धूताश्वमातङ्ग-महारथाकरानवेक्षणः प्रसभं प्रभञ्जनः अभूत् ।

संजी०—मुहुरिति ॥ विभग्ना त्रोटिता आतपवारणसहिता ध्वजा येन । चलन्त्यो विसरन्त्यो या धराधूलयः पृथिवीरजांसि तासां कुलेन साधनीभूतेनाकुलानि व्याकुलीकृतानीक्षणानि लोकनेत्राणि येन । तथा धूतस्य कम्पितस्य । नभसि भ्रमितस्येति यावत् । अश्वानां मातङ्गानां महारथानां चाकरस्य निकरस्य । 'आकरो निकरे रत्नस्थाने श्रेष्ठे च कथ्यते' इति मेदिनी । अनवेक्षणमदर्शनं येन । आच्छादितसकलसेनाङ्गः प्रभञ्जनो वायुः । 'पवमानप्रभञ्जनाः' इत्यमरः । अभूदुत्पन्नः । 'मुहुः' 'प्रसभम्' इत्यस्य विशेषणत्रयेऽपि संबन्धः । अयं तृतीय उत्पातः ॥१५॥

हिन्दी—उस समय छत्र तथा ध्वजों को तोड़-फोड़ देने वाली, पृथ्वी के उड़ते हुये धूलि समूहों से दैत्यों की आँखों को बन्द कर देने वाली तथा हाथी, घोड़ों एवं महारथों के समूहों को धूलि में अदृश्य कर देने वाली महाभयानक प्रचण्ड आँधी बहने लगी । (यह तृतीय उत्पात हुआ) ।

सद्योविभिन्नाञ्जनपुञ्जतेजसो मुखैर्विषाग्निं विकिरन्त उच्चकैः ।
पुरः पथोऽतीत्य महाभुजंगमा भयंकराकारभृतो भृशं ययुः ॥१६॥

अन्वयः—सद्यो विभिन्नाञ्जनपुञ्जतेजसः उच्चकैः भृशम् भयङ्करा कारभृतः महाभुजङ्गमाः पुरः मुखैः विषाग्निम् विकिरन्तः पथः अतीत्य ययुः ।

संजी०—सद्य इति ॥ सद्यो विभिन्नं तत्क्षणपतितं यदञ्जनं कज्जलम् । 'अञ्जनं कज्जले चाक्तौ सौवीरे च रसान्तरे' इति मेदिनी । तस्य पुञ्ज इव निकर इव तेजो धाम येषाम् । नूतनपातितकज्जलसमूहश्यामभास इत्यर्थः । उच्चकैर्महान्तः । विस्तीर्णा इति यावत् । तथा भृशं भयंकराकारभृतः । अतिभीषणस्वरूपधारिण इत्यर्थः । महाभुजंगमा महान्तः सर्पाः पुरोऽग्रे विषाग्निं गरलरूपमग्निम् । 'क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्' इत्यमरः । विकिरन्तो विक्षिपन्तः सन्तः पथः सैन्यगन्तव्यमार्गानतीत्य पूर्वविहितात्मसंबन्धेन वियोज्य ययुः । चतुर्थोऽयमुत्पातः ॥१६॥

हिन्दी—उस समय टूट कर तत्क्षण गिरे हुये काले अञ्जन पर्वत के टुकड़ों के समान कृष्ण वर्ण वाले ऊँचे-ऊँचे भयंकर आकार के महासर्प ऊँची-ऊँची लपटों वाली

अग्नि ज्वाला के समान भयंकर विष उगलते हुये राक्षसराज की सेना के मार्ग को काटते हुये निकल पड़े।

(यह चतुर्थ उत्पात हुआ।)

मिलन्महाभीमभुजंगभीषणं प्रभुर्दिनानां परिवेषमादधौ।
महासुरस्य द्विषतोऽतिमत्सरादिवान्तमासूचयितुं भयंकरः ॥१७॥

अन्वयः—दिनानाम् प्रभुः द्विषतः महासुरस्य अन्तम् आसूचयितुम् मिलन्महाभीमभुजङ्गभीषणं परिवेषम् अतिमत्सरात् इव आदधौ।

संजी०—मिलदिति ॥ दिनानां प्रभुः सूर्यो द्विषतः शत्रुभूतस्य। 'द्विषद्द्वेषणदुर्हृदाः' इत्यमरः। महासुरस्य तारकस्यान्तं विनाशम्। मरणमिति यावत्। 'अन्तः स्वरूपे नाशे ना स्त्री शेषे चान्तिके त्रिषु' इति मेदिनी। आसूचयितुं ज्ञापयितुं मिलन्तः संयुजन्तः। तथा महाभीमा अतिभयंकरा ये भुजंगाः सर्पास्तैर्भीषणं भयदं परिवेषं परिधिं कुण्डलाकारम्। 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः। अतिमत्सरादिवादधौ धृतवान्। विनाशरूपफलसूचकपरिवेषाधाने मत्सरस्य हेतुत्वाभावेऽपि हेतुत्वकल्पनाद्धेतूत्प्रेक्षा। अत एव भयंकरो विभीषकः। 'मेघर्ति-' इति खश्। पञ्चमोऽयमुत्पातः ॥१७॥

हिन्दी—उधर दिवस के स्वामी भगवान् सूर्य ने भी उस तारकासुर के विनाश की सूचना देने के लिये महा भयंकर सर्पों की कुण्डली के समान मानों अत्यन्त ईर्ष्यावश परिधि मण्डल को धारण कर लिया। (यह पाँचवाँ उत्पात हुआ।)

त्विषामधीशस्य पुरोऽधिमण्डलं शिवाः समेताः परुषं ववाशिरे।
सुरारिराजस्य रणान्तशोणितं प्रसह्य पातुं द्रुतमुत्सुका इव ॥१८॥

अन्वयः—त्विषाम् अधीशस्य अधिमण्डलम् पुरः समेताः शिवाः सुरारिराजस्य रणान्तशोणितम् द्रुतम् प्रसह्य पातुम् उत्सुकाः इव परुषम् ववासिरे।

संजी०—त्विषामिति ॥ त्विषां तेजसामधीशस्य रवेरधिमण्डलम्। मण्डल इत्यर्थः। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। समेताः समुदिताः शिवाः क्रोष्ट्र्यः। 'शिवा झाटामलौषधौ। अभयामलकीगौरीक्रोष्ट्रीशक्रफलासु च' इति विश्वः। सुरारिराजस्य तारकस्य संबन्धिनि रणान्ते सङ्ग्रामसमीपे यच्छोणितं रक्तं द्रुतं शीघ्रं प्रसह्य बलात्पातुं पानं कर्तुमुत्सुका इव परुषं कठोरं यथा तथा ववाशिरे चुक्रुशुः। अत्रोत्पातद्वयम्। मार्तण्डमण्डलाधिकरणकं शिवासमुदितत्वं तत्कर्तृककठोररुदितं चेति। षष्ठसप्तमावेतावुत्पातौ ॥१८॥

हिन्दी—सूर्यमण्डल के चारों ओर आगे-आगे एकत्रित हुई गीदड़ियों ने सन्निकट भविष्य में उस तारकासुर के संग्राम के अन्त में होने वाले शोणित को शीघ्रता से पान करने की इच्छा से मानो भीषण स्वर में रोना प्रारम्भ कर दिया। (यह षष्ठ तथा सप्तम उत्पात हुआ)

दिवापि तारास्तरलास्तरस्विनीः परापतन्तीः परितोऽथ वाहिनीः।
विलोक्य लोको मनसा व्यचिन्तयत्प्राणव्ययान्तं व्यसनं सुरद्विषः १९

अन्वयः—अथ दिवा अपि तरलाः तरस्विनीः तारा वाहिनीः परितः परापतन्तीः विलोक्य लोकः मनसा सुरद्विषः प्राणव्ययान्तम् व्यसनम् व्यचिन्तयत्।

संजी०—दिवापीति॥ अथ दिवापि दिनेऽपि तरलाश्चञ्चलाः तरस्विनीर्वेगवतीः। 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः' इत्यमरः। तारा नक्षत्राणि, वाहिनीः परितः। 'अभितः परितः समया—' इत्यादिना द्वितीया। परापतन्तीर्विलोक्य लोको मनसा सुरद्विषः सम्बन्धि प्राणव्ययान्तं प्राणनाशावधि व्यसनं व्यचिन्तयत्। प्राणनाशावधि राज्ञो दुःखं भविष्यतीति चिन्तयामासेत्यर्थः। अष्टमोऽयमुत्पातः॥१९॥

हिन्दी—इसके अनन्तर दिन में ही चञ्चल हो जाने वाले तारागण बड़े वेग से टूट टूट कर दैत्यराज की सेना के चारों ओर गिरने लगे जिसे देखकर सभी लोग अपने मन में तारकासुर के प्राणों पर उपस्थित होने वाली आपत्ति की कल्पना करने लगे। (यह आठवाँ उत्पात हुआ)

ज्वलद्भिरुच्चैरभितः प्रभाभरैरुद्भासिताशेषदिगन्तराम्बरम्।
रवेण रौद्रेण हृदन्तदारणं पपात वज्रं नभसो निरम्बुदात्॥२०॥

अन्वयः—निरम्बुदात् नभसः अभितः ज्वलद्भिः प्रभाभरैः उच्चैः उद्भासिताशेषदिगन्तराम्बरम् रौद्रेण रवेण हृदन्तदारणं वज्रं पपात।

संजी०—ज्वलद्भिरिति॥ निरम्बुदादनुद्भूतमेघान्नभसो व्योम्नः सकाशादभितो ज्वलद्भिः प्रस्फुरद्भिः प्रभाभरैः कान्तिसमूहैः कृत्वा। उच्चैरतिशयितं यथा तथोद्भासितानि प्रकाशितान्यशेषदिगन्तराम्बराणि समस्तदिशाप्रान्तगगनानि येन। तथा रौद्रेण भयानकेन रवेण घोषेण हृदन्तस्योरोमध्यस्य दारणं विदारकं वज्रं स्फूर्जथुः पपात। 'स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषः' इत्यमरः। अत्राप्युत्पातद्वयम्। अम्बुदसांनिध्याभावेऽपि वज्रदर्शनं तत्पातश्चेति। एवं नवमदशमावुत्पातावुक्तौ॥२०॥

हिन्दी—उस समय बादल रहित आकाशमण्डल से चारों ओर जाज्वल्यमान प्रकाश के महान् चमचमाहट से क्षितिज तथा आकाशमण्डल को प्रकाशित कर देने वाला तथा भीषण कड़क से हृदय को विदीर्ण कर देने वाला वज्रपात आरम्भ हो गया। (इस प्रकार यह नवम-दशम उत्पात हुआ)

ज्वलद्भिरङ्गारचयैर्नभस्तलं ववर्ष गाढं सह शोणितास्थिभिः।
धूमं ज्वलन्तो व्यसृजन्मुखैः रजो दधुर्दिशो रासभकण्ठधूसरम् ॥२१॥

अन्वयः—नभस्तलम् ज्वलद्भिः अंगारचयैः शोणितास्थिभिः सह गाढं ववर्ष ज्वलन्तः दिशः रासभकण्ठधूसरम् रजः दधुः मुखैः धूमम् व्यसृजन्।

संजी०—ज्वलद्भिरिति ॥ नभस्तलम्। निरम्बुदं सदिति शेषः। ज्वलद्भिरङ्गारचयैः काष्ठशकलसमूहैः। तथा शोणितास्थिभिश्च सह गाढं दृढम्। बह्विति यावत्। ववर्ष। ज्वलदङ्गाररुधिरास्थिगर्भितं जलं ववर्षेत्यर्थः। अम्बुदसांनिध्याभावेऽपि वृष्टिरेकादशतमोऽयमुत्पातः। साप्यङ्गारादिमिश्रितेति द्वादशतमः। अत एव ज्वलन्त्यो दिशा रासभकण्ठधूसरं खरगलसदृशधूसरवर्णम्। 'रासभो गर्दभे क्षुद्रजन्तुरोगप्रभेदयोः' इति मेदियोः। धूमं धूमरूपं रजो रेणुं मुखैः प्रारम्भप्रदेशैर्व्यसृजंस्तत्यजुः। त्रयोदशतमोऽयमुत्पातः ॥२१॥

हिन्दी—उस समय आकाशमण्डल लोहू एवं हड्डियों के टुकड़ों के साथ-साथ धधकते हुये अङ्गारों की वर्षा करने लगा और जलती हुई दिशाओं ने गधे के कण्ठ के समान मलीन धूल धारण कर लिया और इतना ही नहीं, वे मुखों से धुयें सी उगलने लगीं। (११, १२ तथा तेरहवाँ उत्पात हुआ।)

निर्घातघोषो गिरिशृङ्गशातनो घनोऽम्बराशाकुहरोदरंभरिः।
बभूव भूम्ना श्रुतिभित्तिभेदनः प्रकोपिकालार्जितगर्जितर्जनः ॥२२॥

अन्वयः—प्रकोपिकालार्जितगर्जितर्जनः अम्बुराशाकुहरोदरंभरिः गिरिशृङ्गशातनः घनः निर्घातघोषः भूम्ना श्रुतिभित्तिभेदनः बभूव।

संजी०—निर्घातेति ॥ प्रकोपिना प्रकृष्टरोषेण कालेन यमेनार्जितोत्पादिता गर्जिनी गर्जनां कुर्वती तर्जनापकारगीर्यत्र। अतएवाम्बरस्याशानां च कुहरेणान्तरेणोदरंभरिरत एव गिरीणां शृङ्गस्य शातनो भेदकः। तथा घनः सान्द्रो निर्घातश्चासौ घोषश्च स भूम्ना बाहुल्येन श्रुतिभित्तिभेदनः कर्णकुड्यताडनो बभूव। चतुर्दशतमोऽयमुत्पातः ॥२२॥

हिन्दी—क्रुद्ध हुये काल द्वारा की गई गर्जना के समान महाभयानक आकाश तथा दिशाओं में व्याप्त पहाड़ों की चोटियों को चूर-चूर कर देने वाला वज्रपात का शब्द जो कानों के पर्दों को विदीर्ण कर देने वाला था, उस समय प्रारम्भ हो गया। (यह चौदहवाँ उत्पात हुआ।)

स्खलन्महेभं प्रपतत्तुरङ्गमं परस्पराश्लिष्टजनं समन्ततः।
प्रक्षुभ्यदम्भोधिविभिन्नभूधराद्बलं द्विषोऽभूदवनिप्रकम्पात् ॥२३॥

अन्वयः—द्विषः बलम् प्रक्षुभ्यदम्भोधिविभिन्नभूधरात् अवनिप्रकम्पात् स्खलन्महेभम् प्रपतत्तुरङ्गमम् परस्पराश्लिष्टजनम् समन्ततः अभूत्।

संजी०—स्खलदिति ॥ द्विषस्तारकस्य बलं सैन्यम्। 'बलं गन्धरसे रूपे स्थामनि स्थौल्यसैन्ययोः' इति विश्वः। प्रक्षुभ्यद्भिरुन्मथ्यमानैरम्भोधिभिर्विभिन्ना विदीर्णा भूधराः पर्वता यत्र। प्रोत्पद्यमानविकटतरधरणिकम्पप्रोच्छलत्समुद्रोल्लजलधिघोरतरप्रवाहस्फुटन्तो धराधरा बभूवुरिति भावः। एवंभूतादवनिप्रकम्पाद्भूकम्पाद्धेतोः स्खलन्महेभं मूर्च्छद्बृहत्करीन्द्रं प्रपतत्तुरँगमं प्रकृष्टपतद्वाजिराजं परस्पराश्लिष्टोभयवदन्योन्यासांसक्ताननो यत्र तथाभूतं बभूव। पञ्चदशतमोऽयमुत्पातः ॥२३॥

हिन्दी—उस समय अपने वेग से समुद्र में भयानक तूफान उत्पन्न कर उसकी धारा से पहाड़ों को फोड़ देने वाला ऐसा भयानक भूकम्प होने लगा कि तारकासुर की सेना के समस्त हाथी जहाँ-तहाँ लड़खड़ाने लगे। बड़े-बड़े घोड़े पृथ्वी पर गिरने की स्थिति में हो गये किंबहुना सैनिक लोग भी आपस में टकराने लगे। (यह १५वाँ उत्पात हुआ।)

ऊर्ध्वीकृतास्या रविदत्तदृष्टयः समेत्य सर्वे सुरविद्विषः पुरः।
श्वानः स्वरेण श्रवणान्तशातिना मिथो रुदन्तः करुणेन निर्ययुः ॥२४॥

अन्वयः—सर्वे श्वानः समेत्य ऊर्ध्वीकृतास्याः रविदत्तदृष्टयः करुणेन श्रवणान्तशातिना स्वरेण मिथः रुदन्तः सुरविद्विषः पुरः निर्ययुः।

संजी—ऊर्ध्वीकृतास्या इति ॥ सर्वे श्वानः समेत्य समुदेत्योर्ध्वीकृतास्या ऊर्ध्वदिशाविहितवदनाः। तथा रविदत्तदृष्टयः सूर्यनिबद्धलोचनाः। तथा करुणेन करुणरसपूरितेनात एव श्रवणान्तशातिना कर्णमध्यतनूकारिणा स्वरेण शब्देन कृत्वा रुदन्तः क्रोशन्तः सन्तः सुरविद्विषस्तारकस्य पुरोऽग्रे निर्ययुर्निरगच्छत्। षोडशतमोऽयमुत्पातः ॥२४॥

हिन्दी—सभी कुत्ते एकत्रित हो अपना मुँह ऊपर उठाये हुये सूर्य की ओर देखते हुये बड़ी करुणा के साथ कानों को फोड़ देने वाले भयानक शब्द से रोते हुये उस तारकासुर के सामने से निकलने लगे। (यह सोलहवाँ अपशकुन हुआ)।

अपीति पश्यन्परिणामदारुणां महत्तमां गाढमरिष्टसंततिम् ।
दुर्दैवदष्टो न खलु न्यवर्तत क्रुधा प्रयाणव्यवसायतोऽसुरः ॥२५॥

अन्वयः—इति गाढं परिणामदारुणाम् महत्तमाम् अरिष्टसंततिम् पश्यन् अपि असुरः क्रुधा प्रयाणव्यवसायतः न न्यवर्तत खलु (यतः) दुर्दैवदष्टः ।

संजी०—अपीति ॥ गाढं दृढं यथा तथा परिणाम उत्तरकाले दारुणां भयप्रदां महत्तमामतिशयमहतीमरिष्टसंततिमुत्पातपरम्परां पश्यन्नप्यसुरस्तारकः क्रुधामर्षेण प्रयाणव्यवसायतः प्रस्थानोद्योगान्न न्यवर्तत न निवृत्तः खलु । यतो दुर्दैवेन दुरदृष्टेन दष्टो हतः । 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' इति न्यायादिति भावः ॥२५॥

हिन्दी—इस प्रकार अत्यन्त भयानक परिणाम वाले बड़े-बड़े अनेक अरिष्टों की परम्परा देखते हुये भी वह तारकासुर क्रोध के वशीभूत होने के कारण युद्ध में अपने प्रस्थान रूप व्यवसाय से विरत नहीं हुआ क्योंकि वह दुर्दैव का मारा था ।

अरिष्टमाशङ्क्य विपाकदारुणं निवार्यमाणोऽपि बुधैर्महासुरः ।
पुरः प्रतस्थे महतां वृथा भवेदसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम् ॥२६॥

अन्वयः—महासुरः अरिष्टम् विपाकदारुणम् आशङ्क्य निवार्यमाणः अपि पुरः (एव) प्रतस्थे । महताम् असद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम् वृथा भवेत् ।

संजी०—अरिष्टेति ॥ महासुरस्तारकोऽरिष्टं विपाक उत्तरकाले दारुणं भयदमाशङ्क्य तर्कयित्वा निवार्यमाणो निषिध्यमानोऽपि पुर एव प्रतस्थे न तु पश्चान्निववृते । तथाहि—महतां महता कृतमसद्ग्रहेणान्धस्याविवेकिनः संबन्धिनो हितोस्योपदेशनं वृथा व्यर्थं भवेत् । दुराग्रहशीलस्य सम्यगुपदेशोऽपि तदमततया व्यर्थः स्यादिति भावः ॥२६॥

हिन्दी—ऐसे भयानक परिणाम वाले अपशकुनों को देखकर उससे डरते हुए । विद्वानों ने यद्यपि उस तारकासुर को बहुत रोका किन्तु वह आगे ही बढ़ता गया; क्योंकि दुराग्रह से अन्धे लोगों में बड़े लोगों का हितकारी उपदेश भी व्यर्थ हो जाता है ।

इदानीं पञ्चभिः पञ्चमहोत्पातानाह—

क्षितौ निरस्तं प्रतिकूलवायुना तदीयचामीकरघर्मवारणम् ।
रराज मृत्योरिव पारणाविधौ प्रकल्पितं हाटकभाजनं महत् ॥२७॥

अन्वयः—प्रतिकूलवायुना क्षितौ निरस्तम् तदीयचामीकरघर्मवारणम् मृत्योः इव पारणाविधौ प्रकल्पितम् महत् हाटकभाजनम् इव रराज ।

संजी०—क्षिताविति ।। प्रतिकूलवायुना प्रतीपपवनेन क्षितौ पृथिव्यां निरस्तं निःक्षिप्तम् । 'असु क्षेपणे' इत्यतः कर्मणि निष्ठा । तदीयं तारकसंबन्धि चामीकरस्य हेम्नः । 'चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः । घर्मवारणं छत्रं मृत्योर्यमस्य संबन्धिनि पारणाविधौ । भोजनक्रियाभिनिमित्तामित्यर्थः । 'निमित्तात्कर्मयोगे' इति सप्तमी । योगोऽत्र संयोगः । प्रकल्पितं निर्मितं महद्विशालं हाटकभाजनं सुवर्णपात्रमिवेत्युत्प्रेक्षा । रराज शुशुभे ।।२७।।

हिन्दी—उसी समय प्रतिकूल वायु के चलने से तारकासुर का सुवर्णमय छत्र पृथ्वी पर उलट कर गिर पड़ा मानो किसी ने वहीं मृत्यु के लिए बहुत बड़ा भोजन का पात्र उपस्थित कर दिया हो । (प्रथम महोत्पात) ।

विजानता भाविशिरोनिकृन्तनं प्रज्ञेन शोकादिव तस्य मौलिना ।
मुहुर्गलद्भिस्तरलैरलंतरामरोदि मुक्ताफलबाष्पबिन्दुभिः ।।२८।।

अन्वयः—प्रज्ञेन भावि शिरोनिकृन्तनं विजानता तस्य मौलिना शोकाद् मुहुर्गलद्भिः तरलैः मुक्ताफलबाष्पबिन्दुभिः अलन्तराम् अरोदि इव ।

संजी०—विजानतेति ।। प्रज्ञेन बुधेन । 'प्रज्ञस्तु पण्डिते वाच्यलिङ्गो बुद्धौ तु योषिति' इति मेदिनी । अत एव भावि भविष्यच्छिरोनिकृन्तनं मस्तकच्छेदनं विजानता बुध्यमानेन तस्य तारकस्य मौलिना किरीटेन । 'मौलिः किरीटे शृङ्गारे धम्मिले द्रुमचूडयोः' इति विश्वः । शोकाद्धेतोर्मुहुर्गलद्भिर्निःसरद्भिस्तरलैश्चञ्चलैः । 'तरलं चञ्चले खिङ्गे हारमध्यमणावपि' इति विश्वः । मुक्ताफलान्येव बाष्पबिन्दवोऽश्रुबिन्दवः । 'बिन्दुस्तु दन्तनाले स्यात्तथा वेदिप्लुविप्रुषोः' इति विश्वः । तैः कृत्वालं तरामतिशयपर्याप्तं यथा तथा । अलं भूषणपर्याप्तिवारणेषु निरर्थके' इति विश्वः । अरोदीव रुदितमिवेत्युत्प्रेक्षा । मुकुटखचितमणिनिचयसाहसिकभूपतनरूप उत्पातोऽयमिति भावः ।।२८।।

हिन्दी—उस समय भविष्य में होने वाले अपने शिरोकर्त्तन का ज्ञान रखने वाला उसकी मौलिस्थ मुकुट शोक से बारम्बार टूट कर गिरने वाले मोती रूप अश्रु विन्दुओं के द्वारा मानो बारम्बार रोना प्रारम्भ कर दिया । (यह दूसरा महोत्पात है) ।

निवार्यमाणैरभितोऽनुयायिभिर्ग्रहीतुकामैरिव तं मुहुर्मुहुः ।
अपाति गृध्रैरभि मौलिमाकुलैर्भविष्यदेतन्मरणोपदेशिभिः ।।२९।।

अन्वयः—भविष्यदेतन्मरणोपदेशिभिः (तथा) आकुलैः गृध्रैः अमितः अनुयायिभिः मुहुर्मुहुः निवार्यमाणैः (अपि) तम् ग्रहीतुकामैः इव मौलिम् अभि आपाति ।

संजी०—निवार्यमाणैरिति ॥ भविष्यत एतस्य तारकस्य मरणमुपदिशन्ति बोधयन्ति तथाभूतैः। तथाकुलैर्भक्षणक्रियासंभ्रमितैर्गृध्रैः पक्षिविशेषैः। 'गृध्रः खगान्तरे गृध्री वाच्यवच्चाथः लुब्धके' इति विश्वः। अभितः सर्वतोऽनुयायिभिरनुगच्छद्भिः। अत एवोत्प्रेक्षते मुहुर्मुहुरनेकवेलं निवार्यमाणैरपि तं ग्रहीतुकामैरिव मौलिं किरीटमभि संमुखमपाति पतितम्। भावे लुङ्। पुनःपुनर्निवार्यमाणा अपि तद्बुभुक्षया मौलिमुद्दिश्यैव पेतुरिति भावः। अयमपि महोत्पातः ॥२९॥

हिन्दी—भविष्य में सन्निकट तारकासुर के मरण की सूचना देने वाले अत्यन्त आकुल गृध्र सेवकों द्वारा उड़ाये जाने पर भी मानो उसे पकड़ने के लिए चारो ओर से उसके शिर पर मंडरा रहे थे। (यह तीसरा महोत्पात है।)

सद्योनिकृत्ताञ्जनसोदरद्युतिं फणामणिप्रज्वलदंशुमण्डलम्।
निर्यद्विषोल्कानलगर्भफूत्कृतं ध्वजे जनस्तस्य महाहिमैक्षत ॥३०॥

अन्वयः—जनः तस्य ध्वजे सद्योनिकृत्ताञ्जनसोदरद्युतिम् फणा मणिप्रज्वलदंशुमण्डलम् निर्यद्विषोल्कानलगर्भफूत्कृतम् महाहिम् ऐक्षत।

संजी०—सद्य इति ॥ जनो लोकस्तस्य तारकस्य ध्वजे। तदुपरीत्यर्थः। सद्यो निकृत्तस्य तत्कालपातितस्याञ्जनस्य कज्जलस्य सोदरा समाना द्युतिः शोभा यस्य। अंजनसदृशश्यामलमित्यर्थः। तथा फणामणिभिः फणरत्नैः प्रज्वलदधिकीभवदंशुमण्डलं यस्य। निर्यद्विषमेवोल्कानलः स गर्भे मध्ये येषां तादृशानि फूत्कृतानि यस्य तथाभूतं महाहिं महान्तं सर्पमैक्षत ददर्श। अयमपि महोत्पातः ॥३०॥

हिन्दी—लोगों ने उस समय सहसा तत्काल पारे गये काजल के समान कृष्णवर्णवाला अपने फणामणि के देदीप्यमान किरणों से घिरा हुआ तथा विषभरी फूत्कार से आग उगलने वाला एक साथ तारकासुर के झण्डे पर देखा, (यह चतुर्थ महोत्पात है।)

रथाश्वकेशावलिकर्णचामरं ददाह बाणासनबाणधीन्।
अकाण्डतश्चण्डतरो हुताशनस्तस्यातनुस्यन्दनधुर्यगोचरः ॥३१॥

अन्वयः—अकाण्डतः तस्य अतनुस्यन्दनधुर्यगोचरः चण्डतरोः हुताशनः रथाश्वकेशावलिकर्णचामरं बाणासनबाणधीन् ददाह।

संजी०—रथेति ॥ अकाण्डतोऽसमये। सार्वविभक्तिकस्तसिल्। तस्य तारकस्य संबन्धी योऽतनुस्यन्दनो महान्रथस्तस्य धुर्योऽग्रभागस्तस्य गोचरः। तल्लग्न इत्यर्थ। चण्डतरोऽतिशयप्रचण्डो हुताशनोऽग्निः। रथाश्व-

संबन्धिनी या केशावलिः कर्णचामराणि च तेषां समाहारस्तत् । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । तथा बाणासनं बाणक्षेपक्रियासाधनम् । करणे ल्युट् । धनुर्बाणाः बाणधिस्तूणीरश्चेत्येतानित्यर्थः । ददाह । अयमपि महोत्पातः ॥३१॥

हिन्दी—उस समय अकस्मात् तारकासुर के महान् रथ की धुरी में लगने वाली भयानक आग ने तारकासुर के रथ में जुते हुए घोड़ों के गरदन के बालों तथा कान के पास लगे चामरों तथा उसके धनुषबाण एवं तरकसों को भी जला दिया। (यह पाँचवाँ महोत्पात हुआ)

इत्याद्यरिष्टैरशुभोपदेशिभिर्विहन्यमानोऽप्यसुरः पुनः पुनः ।
यदा मदान्धो न गतान्न्यवर्तताम्बरात्तदाभून्मरुतां सरस्वती ॥३२॥

अन्वयः—मदान्धः असुरः अशुभोपदेशिभिः इत्याद्यरिष्टैः पुनः पुनः विहन्यमानः अपि यदा गताद् न न्यवर्त्तत तदा अम्बरात् मरुताम् सरस्वती अभूत् ।

संजी०—इत्याद्येति ॥ मदान्धोऽसुरस्तारकोऽशुभोपदेशिभिरमङ्गलसूचकैरित्याद्यरिष्टैः पूर्वोक्तमहोत्पातैः पुनः पुनर्विहन्यमानोऽपि विघ्नितः क्रियमाणोऽपि यदा गताद्गमनात् । भावे निष्ठा । न न्यवर्तत न निवृत्तः । तदाम्बराद्व्योम्नः सकाशान्मरुतां देवानां सरस्वती वाण्यभूत् ॥३२॥

हिन्दी—मदान्ध वह तारकासुर जब अशुभ की सूचना देने वाले उपर्युक्त पाँच महोत्पातों के होने पर भी सैन्य प्रस्थान से विरत नहीं हुआ तब आकाश मण्डल से इस प्रकार की देववाणी हुई।

मदान्ध मा गा भुजदण्डचण्डिमावलेपतो मन्मथहन्तृसूनुना ।
सुरैः सनाथेन पुरंदरादिभिः समं समन्तात्समरं विजित्वरैः ॥३३॥

अन्वयः—भोः मन्दान्धः भुजदण्डचण्डिमालेपतः विजित्वरैः पुरन्दरादिभिः सुरैः समन्तात् सनाथेन मन्मथहन्तृसूनुना समम् समरम् मा गाः ।

संजी०—मदान्धेति ॥ भो मदान्ध, भुजदण्डयोर्यश्चण्डिमा प्रचण्डत्वं तेन योऽवलेपो गर्वः । 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति मेदिनी विश्वश्च । तस्मात् । पञ्चम्यास्तसिल् । हेत्वर्थे पञ्चमी । विजित्वरैर्जयनशीलैः पुरंदरादिभिः सुरैः समन्तात्परितः सनाथेन सहितेन मन्मथहन्तृसूनुना शिवपुत्रेण समं सह समरं युद्धम् । कर्तुमिति शेषः । मा गा मा याहि ॥३३॥

हिन्दी—ओ मदान्ध तारक अपने प्रचण्डभुजदण्डों के अभिमान से तू विजयशील इन इन्द्रादि देवताओं से चारों ओर घिरे हुए कार्त्तिकेय के साथ युद्ध करने के लिए मत जा।

अथ 'गुह---' इत्यादिभिश्चतुर्भिः कुमारविषये तारककर्तृकसमरानौचित्यमेव दर्शयति--

गुहोऽसुरैः षड्दिनजातमात्रको निदाघधामेव निशातमोभरैः ।
विषह्यते नाभिमुखो हि संगरे कुतस्त्वया तस्य समं विरोधिता ।।३४।।

अन्वयः--(भो मदान्ध) संगरे अभिमुखः षड्दिनजातमात्रकः गुहः असुरैः निशातमोभरैः निदाघधामा इव न हि विषह्यते त्वया समम् तस्य विरोधिता कुतः ।

संजी०--तत्र गुहेति ।। भो मदान्ध, संगरे युद्धेऽभिमुखः सम्मुखः षड्दिनानि जातानि व्यतीतानि यस्य। जन्मदिनादारभ्यातिक्रान्तषड्दिनीकमित्यर्थः। गुहः सेनानीः । 'गुहः षाण्मातुरे गुह्ये' इति मेदिनी । असुरैर्दैत्यैः कर्तृभिः । निशातमोभरैः रात्र्यन्धतमससमूहैर्निदाघधामा उष्णतेजाः सूर्य इव न हि नैव विषह्यते विमृष्यते । त्वया समं सह तस्य संबन्धिनी विरोधिता वैरं कुतः कारणात्स्यात् । कुमारविषयकभवत्कृतवैरनिमित्तसमरोऽनुचित एवेति भावः ।।३४।।

हिन्दी--ओ मदान्ध ! जिस प्रकार रात्रि का घना से भी घना अन्धकार सूर्य के सामने नहीं टिक पाता उसी प्रकार केवल छः दिन के बालक इस कार्त्तिकेय के संमुख ये समस्त राक्षस भी नहीं टिक पायेगे । फिर ऐसे कुमार के साथ तुम विरोध क्यों करते हो ।

अभ्रंलिहैः शृङ्गशतैः समन्ततो दिक्चक्रवालैः स्थगितस्य भूभृतः ।
क्रौञ्चस्य रन्ध्रं विशिखेन निर्ममे येनाहवस्तस्य सह त्वया कुतः ।।३५।।

अन्वयः--येन अभ्रंलिहैः शृङ्गशतैः दिक्चक्रवालैः समन्ततः स्थगितस्य क्रौञ्चस्य भूभृतः रन्ध्रम् विशिखेन निर्ममे तस्य आहवः त्वया सह कुतः ।

संजी०--अभ्रंलिहैरिति ।। भो मदान्ध, येन सेनान्या कर्त्रा । अभ्रंलिहैराकाशस्पृग्भिः शृङ्गशतैः सानुशतैः। तथा दिक्चक्रवालैः काष्ठामण्डलैः। 'चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः । समन्ततः परितः स्थगितस्याच्छादितस्य क्रौञ्चस्य क्रौञ्चसंज्ञकस्य भूभृतः पर्वतस्य संबन्धि रन्ध्रं छिद्रम् । जातावेकवचनम् । विशिखेन बाणेन निर्ममे निर्मितम् । कर्मणि लिट् । तस्याहवः सङ्ग्रामस्त्वया सह कुतः कारणात्स्यात् । अपि तु नेदमुचितमितिभावः ।।३५।।

हिन्दी--अरे मदान्ध जिन कार्त्तिकेय ने आकाश को चूमने वाले अपने सैकड़ों चोटियों से दिशाओं को आच्छादित करने वाले क्रौञ्चपर्वत को भी अपने बाणों से

छेद कर उसमें बिल बना दिया भला उन कार्तिकेय का युद्ध तुम्हारे साथ किस प्रकार उचित होगा। अर्थात् किसी भी प्रकार उचित न होगा।

अथ युग्मेनाह—

लब्ध्वा धनुर्वेदमनङ्गविद्विषस्त्रिः सप्तकृत्वः समरे महीभुजाम्।
कृत्वाभिषेकं रुधिराम्बुभिर्घनैः स्वक्रोधवह्निं शमयांबभूव यः ॥३६॥
न जामदग्न्यः क्षयकालरात्रिकृत्स क्षत्रियाणां समराय वल्गति।
येन त्रिलोकीसुभटेन तेन कुतोवकाशः सह विग्रहग्रहे ॥३७॥

अन्वयः— यः अनङ्गविद्विषः धनुर्वेदं लब्ध्वा समरे महीभुजाम् घनैः रुधिराम्बुभिः अभिषेकं कृत्वा स्वक्रोधवह्निं शमयांबभूव क्षत्रियाणां क्षयकालरात्रिकृत् स जामदग्न्यः त्रिलोकीसुभटेन येन समराय न वल्गति तेन सह विग्रहग्रहे कुतः अवकाशः (स्यात्)।

संजी०—लब्ध्वेति ॥ यो जामदग्न्यः परशुरामोऽनङ्गविद्विषो हरसकाशाद्धनुर्वेदं लब्ध्वा प्राप्य। अधीत्येति यावत्। अतः समरे युधि महीभुजां राज्ञां सम्बन्धिभी रुधिराम्बुभिःशोणितजलैस्त्रिः सप्तकृत्वस्त्रिगुणसप्तवारम्। एकविंशतिवारमिति यावत्। अभिषेकं स्नानं कृत्वा स्वक्रोधवह्निमात्मीयकोपाग्निं शमयांबभूव। एकविंशतिवारं क्षत्रियान्हत्वा शान्तोऽभूदिति भावः ॥३६॥

संजी०—नेति ॥ क्षत्रियाणाम्। 'क्षत्राद्घः' इति घप्रत्ययः। 'आयनेयी—' इति तस्येयादेशः। क्षयसम्बन्धिनीं कालरात्रिं करोति यः स जामदग्न्यो जमदग्नेरपत्यं पुमान् रामस्त्रिलोक्यां सुभटेन सुतरां योद्धा येन सेनान्या सह समराय समरं कर्तुं न वल्गति न चलति। नैवोद्युङ्क्त इत्यर्थः। तेन सकलराजकुलजिघत्सद्रामविभीषकेण सेनान्या सह तव त्वत्कर्तृके विग्रहग्रहे रणग्रहणे। 'विग्रहः कायविस्तारविभागे ना रणे स्त्रियाम्' इति मेदिनी। कुतः कस्मादवकाशोऽवसरः स्यात्। अपि तु न स्यादिति काक्वा व्याख्येयम्। अतः सर्वथैवामुना सह त्वया न योद्धव्यं किं तु निवर्तनीयमेवेति भावः ॥३७॥

हिन्दी—शङ्कर जी से धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने वाले जिन परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों के गाढे रक्त से स्नान कर अपनी क्रोधाग्नि को शान्त किया। इस प्रकार क्षत्रियों के लिए कालरात्रि उपस्थित करने वाले जमदग्निपुत्र परशुराम भी त्रिलोकी के एकमात्र वीर जिस योद्धा से युद्ध करने के लिए उत्साहित नहीं होते। अरे अहङ्कारी भला ऐसे बहादुर के साथ विग्रह का आग्रह तुमने किस प्रकार किया है?

ननु निवर्तने पुनरपि वधशङ्केति चेत्तत्राह--

त्यजाशु गर्वं मदमूढ मा स्म गाः स्मरारिसूनोर्वरशक्तिगोचरम् ।
तमेव नूनं शरणं व्रजाधुना जगत्सुवीरं स चिराय जीव तत् ॥३८॥

अन्वयः—(भो) मदमूढ आशु गर्वं त्यज स्मरारिसूनोः वरशक्तिगोचरम् मा स्म गाः अधुना नूनम् एव शरणं तम् जगत्सुवीरम् व्रजं तत् सह (त्वम्) चिराय जीव।

संजी०--त्यजेति ॥ भो मदमूढ उन्मादमूर्ख, आशु शीघ्रं गर्वमभिमानं त्यज। स्मरारिसूनोः सेनान्याः सम्बन्धिनी या वरा श्रेष्ठा शक्तिरायुधं तस्या गोचरं विषयं मा स्म गा मा स्म याहि। तर्हि किं कर्तव्यमित्याह--अधुनेदानीं नूनमेव निश्चयेनैव। 'नूनमवश्यं निश्चये द्वयम्, इत्यरः। शरणं रक्षितारम्। शरणं गृहरक्षित्रोर्वधरक्षणयोरपि' इति मेदिनी। तं जगत्सुवीरं सेनान्यं व्रज गच्छ। ततस्माग्द्गमनाद्धेतोः स त्वां चिराय जीव बहुकालं प्राणान्धारय। कुमारगमनं विना न तवान्यज्जीवातुरिति भावः ॥३८॥

हिन्दी—अरे घमण्ड में अन्धे हुए दैत्य तू अपना अभिमान छोड़ दे। तू कार्तिकेय की शक्ति के सामने मत जा। तेरे लिए अच्छा यहीं उपाय है कि तू जगत् के एकमात्र योद्धा उन्हीं की शरण में जा और उनसे मैत्री स्थापित कर उन्हीं के साथ चिरंजीवी बन।

श्रुत्वेति वाचं वियतो गरीयसीं क्रोधादहंकारपरो महासुरः।
प्रकम्पिताशेषजगत्त्रयोऽपि सन्नकम्पतोच्चैर्दिवमभ्यधाच्च सः ॥३९॥

अन्वयः--वियत इति गरीयसीम् वाचं श्रुत्वा क्रोधात् अहङ्कारपरः सः महासुरः प्रकम्पिताशेषजगत्त्रयः सन् अपि अकम्पत च दिवम् अपि उच्चैः अभ्यधात्।

संजी०--श्रुत्वेति ॥ वियत आकाशस्येत्येवंभूतां गरीयसीमतिशयगुर्वीं वाचं श्रुत्वा क्रोधाद्धेतोरहंकारेऽभिमाने। 'गर्वोभिमानोऽहंकारः' इत्यमरः। परः सक्तः। 'परः श्रेष्ठादिदूरान्योत्तरे क्लीवं तु केवले' इति मेदिनी। आदिशब्दसंगृहीतत्वेन शक्तिवाचकत्वं विवेचनीयम्। सोऽसुरस्तारकः प्रकर्षेण कम्पितं वेपितमशेषं समस्तं जगतां त्रयं येन तथाभूतः सन्नप्यकम्पत चकम्पे। भारत्या अत्याप्तत्वादिति भावः। अथ च दिवं स्वर्गमुच्चैरुच्चैः स्वरेणाभ्यधादचकथत् ॥३९॥

हिन्दी--आकाश से इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण बाणी को सुन कर क्रोध से तिलमिलाता हुआ वह महासुर तीनों लोकों को कंपाने की शक्ति रखता हुआ। स्वयम् भी काँप उठा और उन स्वर्गवासियों से ऊँचे शब्दों में बोला—

अथ 'किम' इत्यादिभिस्त्रिभिस्तदुक्तिमाह--

किं ब्रूथ रे व्योमचरा महासुराः स्मरारिसूनुप्रतिपक्षवर्तिनः।
मदीयबाणव्रणवेदना हि साधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता ॥४०॥

अन्वयः रे व्योमचराः महासुराः स्मरारिसूनुप्रतिपक्षवर्त्तिनः किम् ब्रूथ सा मदीयवाणव्रणवेदना अधुना हि कथं विस्मृतिगोचरीकृता।

संजी०--किमिति ॥ रे व्योमचराः। रे इति नीचसम्बोधने। महासुरा महान्तः सुराः यूयं स्मरारिसूनोः कुमारस्य प्रतिपक्षे कोटौ वर्तन्ते तथाभूताः सन्तः किं ब्रूथ वदथ। नेदं वाच्यमिति ध्वनिः। ननु वादे त्वया किं कृतमित्याह--सा पूर्वतरा मदीयानां बाणानां सम्बन्धिनां व्रणानां रन्ध्राणां वेदना पीडाधुना हीदानीमेव कथं केन प्रकारेण विस्मृतिगोचरीकृता विस्मरणविषयीकृता। अपि त्विदानीमपि सैव स्मर्तव्या, अग्रे भोक्ष्यमाणत्वात् ॥४०॥

हिन्दी--अरे आकाशचारी देवगणो! तुम कार्त्तिकेय के पक्ष में होकर यह क्या कह रहे हो, क्या तुम लोग मेरे वाणों से हुये व्रण की वेदना को इस समय भूल गये हो?

कटुस्वरैः प्रालपथाम्बरस्थिताः शिशोर्बलात्षड्दिनजातकस्य किम्।
श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्तका इव ॥४१॥

अन्वयः--(भो देवाः) षड् दिनजातस्य शिशोः बलात् कार्त्तिके प्रमत्ताः श्वानः इव निशिवनान्ते मृगधूर्तका इव कटुस्वरैः किम् स्वरं प्रालपथ।

संजी०--कटुस्वरैरिति ॥ भो देवाः, यूयमम्बरस्थिता आकाशवर्तिनः सन्तः षटदिनजातकस्य षट्दिनजन्मनः शिशोर्बालस्य बलाद्वीर्याद्धेतोः कार्तिके बाहुले मासि प्रमत्ता उन्मत्ताः श्वान इव निशि वनान्ते वनमध्ये मृगधूर्तका मृगा एव धूर्तकास्त इव किं प्रालपथ प्रलापं कुरुथ। अपि तु मदपेक्षया निर्वीर्यैर्भवद्भिः प्रलापो न विधेय इति भावः ॥४१॥

हिन्दी--अरे देवताओ! तुम लोग मात्र छ-दिन के इस बच्चे के बल पर कार्तिक में पागल कुत्तों के समान अथवा जंगल में रहने वाले धूर्त्त शृगालादि वन जन्तुओं के समान रात्रि में इस प्रकार का कटु प्रलाप क्यों कर रहे हो?

सङ्गेन वो गर्भतपस्विनः शिशुर्वराक एषोऽन्तमवाप्स्यति ध्रुवम्।
अतस्करस्तस्करसङ्गतो यथा तद्वो निहन्मि प्रथमं ततोऽप्यमुम् ॥४२॥

अन्वयः--(भो देवाः) वः सङ्गेन वराकः (अपि) एषः गर्भतपस्विनः शिशुः तस्करसङ्गतः अतस्करः यथा ध्रुवम् अन्तम् अवाप्स्यति तत् वः प्रथमं निहन्मि ततः अमुम् अपि निहन्मि।

संजी०--सङ्गेनेति ।। भो देवाः, वो युष्माकं सङ्गेन सम्बन्धेन निमित्तेन वराकोऽतिकृपणत्वाच्छोचनीयः । 'वराकः शंकरे पुंसि शोचनीयेऽभिधेयवत्' इति मेदिनी । एष पुरोवर्ती गर्भतपस्विनः । अत्र गर्भशब्देन गर्भत्वं तदस्यास्तीति गर्भः । अर्शआद्यच् । ततो गर्भत्ववानिति निष्पन्नम् । गर्भत्वं चात्र बालत्वम् । 'गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ' इति मेदिनी । एवं च बाल इति निष्कर्षः । स चासौ तपस्वी च । बालत्वेऽपि तपस्वित्वकथनाद्वार्धक्ये त्वर्थात्सिद्धम् । एवं च बालत्वमारभ्य तपस्वित्वेन निष्किचनस्येति तात्पर्यार्थः । अथवा गर्भत्वादिति ल्यब्द्योतनिका या पञ्चमी तदन्तेन तपस्विशब्दस्य समासो विधेयः । गर्भत्वं बालत्वमारभ्य तपस्वीत्यर्थः । तथाभूतस्य शिवस्य शिशुर्बालः कुमारः । तस्करसङ्गतश्चौरसङ्गेनातस्करो यथा चौर इव । ध्रुवं निश्चयेनान्तं मरणमवाप्स्यति प्राप्स्यति । तत्तस्माद्वो युष्मान्प्रथमं प्राङ् निहन्मि । 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यकालेऽपि वर्तमानप्रयोगः । ततो भवद्धननानन्तरममुं कुमारमपि निहन्मि निहनिष्यामि ।।४२।।

हिन्दी—अरे देवगणो ! तुम्हारे लोगों का साथ करने से बाल्यावस्था से ही तपस्या में निरत रहने वाले इस शिव के अत्यन्त दीन पुत्र का भी मैं उसी तरह विनाश करूँगा जिस प्रकार चोर का साथ पकड़ने वाला उसका अचोर (सच्चा) भी साथी मारा जाता है इसलिये पहले तुम लोगों का वध करूँगा, पश्चात् इस बालक का ।

इतीरयत्युग्रतरं महासुरे महाकृपाणं कलयत्यलं क्रुधा ।
परस्परोत्पीडितजानवो भयान्नभश्चरा दूरतरं विदुद्रुवुः ।।४३।।

अन्वयः--इति ईरयति महासुरे क्रुधा उग्रतरम् महाकृपाणम् अलं कलयति नभश्चराः भयात् परस्परोत्पीडितजानवः दूरतरं विदुद्रुवुः ।

संजी०--इतीति ।। इति पूर्वोक्तमीरयति वदति महासुरे तारके क्रुधा हेतुनोग्रतरमत्यन्तभयानकं महाकृपाणं महान्तं खड्गम् । अलं पर्याप्तत्वेन । अनेन प्रथमं स्पर्शमात्र एवेति व्यज्यते । 'अलं भूषणपर्याप्तिवारणेषु निरर्थके' इति विश्वः । कलयति बिभ्रति सति । नभश्चरा देवा भयाद्धेतोः परस्परमन्योन्यमुत्पीडिता अतिसंकीर्णतया धृष्टत्वाद्व्यथिता जानव ऊरुपर्वाणि येषाम् । 'जङ्घा तु प्रसृता जानूरुपर्वाष्ठीवदस्त्रियाम्' इत्यमरः । तथाभूताः सन्तो दूरतरमतिदूरम् । 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इति प्रातिपदिकार्थमात्रे द्वितीया । विदुद्रुवुः पलायांचक्रिरे । 'द्रु गतौ' इत्यस्मात् कर्तरि लिट् ।।४३।।

हिन्दी—इतनी बात कह लेने के पश्चात् उस क्रोध में भरे हुये उस महान् असुर के द्वारा अपनी भयानक तलवार उठाते ही आकाशचारी देवता परस्पर जाँघो से टकराते हुये बहुत दूर भागने लगे।

ततोऽवलेपाद्विकटं विहस्य स व्यधत्त कोशादसिमुत्तमं बहिः।
रथं द्रुतं प्रापय वासवान्तिकं नन्वित्यवोचन्निजसारथिं रथी ॥४४॥

अन्वयः—ततः स अवलेपाद् विकटं विहस्य उत्तमम् असिम् कोशाद् बहिः व्यधत्तः (अथ च) रथी रथम् वासवान्तिकं द्रुतं ननु प्रापय इति निजसारथिम् अवोचत्।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं स तारको विकटं करालं यथा तथा। वक्ष्यमाणस्यासेर्विशेषणं वा। 'विकटा वज्रवाराह्यां त्रिषु रुचिकरालयोः' इति मेदिनी। विहस्याट्टहासं कृत्वा। उत्तममसिं करवालं कोशाद् बहिर्व्यधत्त कृतवान्। अथ च रथी सः 'रथं वासवान्तिकमिन्द्रसमीपं द्रुतम्। ननु निश्चयेन। प्रापय' इति निजं स्वीयं सारथिं सूतमवोचत्। 'ननु प्रश्नेऽप्यनुनयेऽनुज्ञानेऽप्यवधारणे इति विश्वः ॥४४॥

हिन्दी—इसके पश्चात् बड़े घमण्ड से भयङ्कर हास्य करते हुए बस तारकासुर ने अपनी भयानक तलवार म्यान से बाहर निकाल ली, फिर उस महारथी ने अपने सारथी से कहा कि शीघ्र ही इस रथ को इन्द्र के पास ले चलो।

मनोतिवेगेन रथेन सारथिप्रणोदितेन प्रचलन्महासुरः।
ततः प्रपेदे सुरसैन्यसागरं भयंकराकारमपारमग्रतः ॥४५॥

अन्वयः—ततः मनोतिवेगेन सारथिप्रणोदितेन रथेन प्रचलन् महासुरः अग्रतः अपारम् भयङ्कराकारम् सुरसैन्यसागरम् प्रपेदे।

संजी०—मन इति ॥ ततोऽनन्तरं मनोतिवेगेनान्तःकरणादपि बहुलगतिजवेन सारथिना प्रणोदितेन प्रेरितेन रथेन प्रचलन्गच्छन्महासुरस्तारकोऽग्रतः पुरतः। स्थितमिति शेषः। अपारमनवधिकं भयंकराकारम्। विभीषणाकृतिमत्पुरुषमित्यर्थः। सुरसैन्यसागरं देवसेनासमुद्रं प्रपेदे प्राप ॥४५॥

हिन्दी—तदनन्तर मन से भी अत्यन्त वेगवान् सारथी के द्वारा हाँके जाते हुये अपने रथ से चलते हुये उस महासुर ने आगे अत्यन्त भीषण समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर देवताओं की सेना में प्रवेश किया।

पुरः सुराणां पृतनां प्रथीयसीं विलोक्य वीरः पुलकं प्रमोदजम्।
बभार भूम्नाथ स बाहुदण्डयोः प्रचण्डयोः संगरकेलिकौतुकी ॥४६॥

अन्वयः—अथ वीरः सः प्रथीयसीम् सुराणाम् पृतनां पुरः विलोक्य प्रचण्डयोः बाहुदण्डयोः प्रमोदजं पुलकं भूम्ना बभार (यतः) सङ्गरकेलिकौतुकी ।

संजी०—पुर इति ॥ वीरः शूरः । 'वीरो रसविशेषे पुंस्युत्तारे सुभटे त्रिषु' इति मेदिनी । स तारकः प्रथीयसीमतिपृथुलां सुराणां देवानां सम्बन्धनीं पृतनां सेनां पुरोऽग्रे विलोक्य प्रचण्डयोर्बाहुदण्डयोर्भुजदण्डयोः । 'दण्डा स्त्री लगुडे पुमान्' इति मेदिनी । प्रमोदजमानन्दजनितं पुलकं रोमाञ्चं भूम्ना बाहुल्येन बभार धृतवान् । यतः संगरकेलौ सङ्ग्रामक्रीडायां कौतुक्युत्साहवान् । वीराणां सेनादर्शनमेव महान्मुदो हेतुरिति भावः ॥४६॥

हिन्दी—इसके पश्चात् उस महावीर ने विशाल देवताओं की सेना को अपने आगे देखकर अपने प्रचण्ड बाहुदण्डों में आनन्द से उत्पन्न पुलकावली (रोमाञ्च) धारण कर ली । क्योंकि वह युद्धरूपी क्रीडा का कौतुकी था ।

ततः महेन्द्रस्य चराश्चमूचरा रणान्तलीलारभसेन भूयसा ।
पुरः प्रचेलुर्मनसोऽतिवेगिनो युयुत्सुभिः किं समरे विलम्ब्यते ॥४७॥

अन्वयः—ततः मनसः अतिवेगिनः भूयसा रणान्तलीलारभसेन चमूचराः महेन्द्रस्य चराः समरे युयुत्सुभिः किम् विलम्ब्यते इति (वक्तुमिव) पुरः प्रचेलुः ।

संजी०—तत इति ॥ ततोऽनन्तरं मनसः सकाशादप्यतिवेगिनोऽत्यन्तजववन्तः । तथा भूयसातिशयेन रणान्ते सङ्ग्राममध्ये या लीला विलासः । विलासोऽत्र समराङ्गणाधिकरणकमात्मीयभुजदण्डगतपराक्रमचमत्कृतिदर्शनम् । तत्र रभसेन वेगेन । 'लीलां विदुः केलिविलासखेलाशृङ्गारभावप्रभव क्रियासु' इति विश्वः । चम्वां सेनायां चरन्तीति विग्रहे 'चरेष्टः' इति टप्रत्ययः । तथाभूता महेन्द्रस्येन्द्रस्य चराश्चाराः, दूता इति यावत् । 'चरो द्यूतप्रबन्धे स्याच्चारजङ्गमयोश्चले' इति विश्वः । समरे सङ्ग्रामे युयुत्सुभिर्योद्धुमिच्छुभिः । भवद्भिरित्यर्थः । किं विलम्ब्यते किं विलम्बः क्रियते । अपि तु सत्वरमेव युध्यतामिति प्रतिपक्षान् । वक्तुमित्यपि शेषः । पुरोऽग्रे प्रचेलुः ॥४७॥

हिन्दी—उसी समय मन से भी अत्यन्त वेगवान् युद्धक्रीडा के लिये अत्यन्त उतावले इन्द्र के बड़े-बड़े लड़ाकू सैनिक 'युद्ध की इच्छा रखने वालों को विलम्ब नहीं करना चाहिये' मानो ऐसा कहते हुये आगे की ओर दैत्यों की सेना पर टूट पड़े ।

पुरःस्थितं देवरिपोश्चमूचरा बलद्विषः सैन्यसमुद्रमभ्ययुः ।
भुजं समुत्क्षिप्य परेभ्य आत्मनोऽभिधानमुच्चैरभितो न्यवेदयन् ॥४८॥

अन्वयः--देवरिपोः चमूचराः पुरः स्थितम् बलद्विषः सैन्यसमुद्रम् अभ्ययुः (अथ च) अभितः भुजम् समुत्क्षिप्य आत्मनः अभिधानम् उच्चैः परेभ्यः न्यवेदयन् ।

संजी०--पुर इति ॥ देवरिपोस्तारकस्य चमूचराः सेनाचराः पुरःस्थितमग्रस्थितं बलद्विष इन्द्रस्य संबन्धिनं सैन्यसमुद्रं सेनासागरमभ्ययुः संमुखत्वेन जग्मुः । अथ चाभितः संमुखम् । 'अभितः शीघ्रसाकल्यसंमुखोभयतोऽन्तिके' इति विश्वः । भुजं बाहुं समुत्क्षिप्योत्थाप्य । आत्मनोऽभिधानं नाम । 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः । उच्चैःस्वरेण परेभ्यः शत्रुभ्यो न्यवेदयन्वयममुकनामानो वयममुकनामान इति निवेदितवन्तः ॥४८॥

हिन्दी—इधर दैत्यों की सेना के बड़े-बड़े उद्भट भट अपने आगे खड़ी देवताओं के समुद्र जैसी विशाल सेना पर टूट पड़े और अपनी अपनी भुजायें ऊपर उठाकर शत्रुओं से ऊँचे-ऊँचे स्वर में अपने-अपने नामों की घोषणा करने लगे ।

पुरोगतं दैत्यचमूमहार्णवं दृष्ट्वा परं चुक्षुभिरे महासुराः ।
पुरारिसूनोर्नयनैककोणके ममुर्भटास्तस्य रणेऽवहेलया ॥४९॥

अन्वयः--महासुराः पुरोगतम् दैत्यचमूमहार्णवम् दृष्ट्वा परं चुक्षुभिरे । रणे अवहेलया तस्य पुरारिसूनोः नयनैककोणके भटाः ममुः ।

संजी०—पुर इति ॥ महासुरा महान्तः सुरा इन्द्रादयः पुरोगतमग्रे प्राप्तं दैत्यस्य तारकस्य चमूरेव महानर्णवः समुद्रस्तं दृष्ट्वा परं केवलम् । 'परमव्ययमिच्छन्ति' इति विश्वः । चुक्षुभिरे संचेलुः । विव्यथुरिति यावत् रणे संगरेऽवहेलया मदपेक्षया केयं वराकिका सेनेत्यनादरेणोपलक्षितस्य तस्य पुरारिसूनोः शिवपुत्रस्य नयनैककोणके नेत्रैकदेश एव । 'कोणो वाद्यप्रभेदे स्यात्कोणोऽब्धौ लगुडेऽकंजे । वीणादिवादनोपायेऽप्येकदेशे गृहस्य च ॥' इति विश्वः । अत्र गृहस्यैव कोण इत्यविवक्षितम् । किंत्वन्यसाधारणत्वेन प्रकृत इष्टसिद्ध्यर्थमुपलक्षितत्वेन गमनीय इत्यलम् । भटा योद्धारो ममुः समाविविशुः ॥४९॥

हिन्दी--उस समय बड़े-बड़े देवता भी अपने आगे समुद्र के समान उमड़ती हुई दैत्यों की उस विशाल सेना को देखकर घबरा उठे । किन्तु कुमार कार्त्तिकेय ने अपनी नेत्र की कनखियों में ही उस सारी सेना को निर्भयतापूर्वक समाविष्ट कर लिया ।

द्विषद्बलत्रासविभीषिताश्चमूर्दिवौकसामन्धकशत्रुनन्दनः ।
अपश्यदुद्दिश्य महारणोत्सवं प्रसादपीयूषधरेण चक्षुषा ॥५०॥

अन्वयः—महारणोत्सवम् उद्दिश्य अन्धकशत्रुनन्दनः द्विषद्बलत्रासविभीषतताः दिवौकसाम् चमूः प्रसादपीयूषधरेण चक्षुषा अपश्यत् ।

संजी०—द्विषदिति ॥ महारणोत्सवमुद्दिश्य स्थितोऽन्धकशत्रुनन्दनः कार्तिकेयो द्विषद्बलत्रासेन तारकसैन्यशासनेन विभीषिता भीता दिवौकसां देवानां चमूः सेनाः कर्म । प्रसादोऽनुग्रहः स एव पीयूषममृतं तद्धरति तथाभूतेन चक्षुषापश्यद्ददर्श । अनेन यूय मा भैष्ट, प्रसन्ना भवत, निःशङ्कं युध्यध्वं चेति व्यज्यते ॥५०॥

हिन्दी—उस समय महान् रणोत्सव के उद्देश्य से कुमार कार्तिकेय ने दैत्यसेना के भय से व्याकुल देवसेना को अपनी आनन्दपूर्ण अमृत भरी निगाहों से देखा ।

उत्साहिताः शक्तिधरस्य दर्शनान्मृधे महेन्द्रप्रमुखा मखाशनाः ।
अहं मृधे जेतुमरीनहीरमन्न कस्य वीर्याय वरस्य संगतिः ॥५१॥

अन्वयः—शक्तिधरस्य मृधे दर्शनात् उत्साहिताः महेन्द्रप्रमुखाः मखाशनाः मृधे अहम् (एव) अरीन् जेतुम् (समर्थः अस्मि नान्यः इति वदन्तः सन्तः) अरीरभन् वरस्य संगतिः कस्य वीर्याय न ।

संजी०—उत्साहिता इति ॥ शक्तिधरस्यायुधविशेषधारिणः । 'शक्तिर्बले प्रभावादौ शक्तिः प्रहरणान्तरे' इति विश्वः । अत एव मृधे शङ्ख्ये । 'मृधमास्कन्दनं सङ्ख्यम्' इत्यमरः । तस्य कुमारस्य दर्शनाद्धेतोरुत्साहिता उत्साहं प्राप्ता महेन्द्रप्रमुखा इन्द्रपूर्वा मथासना यज्ञहविभोक्तारो देवा मृधे संगरे 'अहमेवारीञ्शत्रूञ्जेतुं समर्थोऽस्मि नान्यः' इति वदन्तः सन्तोऽरीरमन्रेमिरे । तथाहि । वरस्य श्रेष्ठस्य संगतिः संबन्धः कस्य पुरुषस्य वीर्याय वीर्यं कर्तुं न भवति । अपि तु सर्वस्यापीत्यर्थः । गतवीर्यस्य वीर्यंकरणे महदाश्रय एव निदानं नान्यदिति काक्वा ध्वन्यते ॥५१॥

हिन्दी—युद्ध में उपस्थित कार्त्तिकेय के दर्शन मात्र से ही उत्साहित हुये इन्द्रादि विशिष्ट यज्ञ भागों के देवता 'हम शत्रुओं को अवश्य ही जीत लेगें' ऐसा कहते हुए उछलने लगे, भला बड़े लोगों का साथ किसके पराक्रम को नही बढाता ।

परस्परं वज्रधरस्य सैनिका द्विषोऽपि योद्धुं स्वकरोद्धृतायुधाः ।
वैतालिकश्रावितताररिक्रमाभिधानमीयुर्विजयैषिणो रणे ॥५२॥

अन्वयः—रणे विजयैषिणः योद्धुम् स्वकरोद्धतायुधाः वज्रधरस्य द्विषः अपि सैनिकाः वैतालिकश्रावितताग्विक्रमामिधानम् (यथा स्यात्तथा) परस्परम् ईयुः ।

संजी०—परस्परमिति ॥ रणे युद्धे विजयैषिणो विजयं प्राप्तुमिच्छवः । अत एव योद्धुं युद्धं कर्तुं स्वकरैरात्मीयपाणिभिरुद्धृतानि गृहीतान्यायुधानि

खड्गादीनि यैस्तथाभूता वज्रधरस्येन्द्रस्य द्विषोऽपि तारकस्य च। अपिरत्र समुच्चयार्थः। 'अपिः संभावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये' इति विश्वः। सैनिकाः सेनाचराः। 'चरति' इति ठक्। वैतालिकैर्बन्दिभिः श्रावितान्याकर्णितानि तार उच्चैर्विक्रमोऽभिधानानि नामानि च यस्मिन्कर्मणि यथा परस्परमन्योन्यमीयुः प्रापुः। मिमीलुरिति यावत् ॥५२॥

हिन्दी---युद्ध में अपने-अपने पक्ष की विजयाभिलाषा लिये हुए दोनों पक्ष के योद्धा अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों को ले चारणो द्वारा अपने-अपने विजयकीर्त्ति का गान सुनसुनकर परस्पर एक दूसरे से टक्कर लेने लगे।

सङ्ग्रामं प्रलयाय संनिपततो वेलामतिक्रामतो
वृन्दारासुरसैन्यसागरयुगस्याशेषदिग्व्यापिनः ।
कालातिथ्यभुजो बभूव बहलः कोलाहलः क्रोषणः
शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुर्ब्रह्माण्डकुक्षिंभरिः ॥५३॥

अन्वयः---प्रलयाय सग्रामम् संनिपततः वेलाम् अतिक्रामतः अशेषदिग्व्यापिनः कालातिथ्यभुजः वृन्दारासुरसैन्यसागरयुगस्य क्रोषणः कोलाहलः बहलः शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुः ब्रह्माण्डकुक्षिंभरिः बभूव।

संजी०---सङ्ग्राममिति॥ प्रलयाय नष्टचेष्टतायै। तां कर्तुमित्यर्थः। सङ्ग्रामं समरं संनिपततः समुदितवतः। अन्यत्र प्रलयाय लोकसंहाराय संनिपततो वर्धमानस्य। अत एव वेलां मर्यादाम्। एकत्र न्याय्याचरणम्, अन्यत्रावधिम्। सीमानमिति यावत्।

'वेला काले च जलधौ तीरे नीरविकारयोः।
क्लिष्टरसने रोगे च सीम्नि वाचि युधि स्त्रियाम्'॥ इति विश्वः।

अतिक्रामत उल्लङ्घयतः। निर्मर्यादत्वेन युध्यमानस्य सीमानमुल्लङ्घ्य चलत इत्यर्थः। अत एवाशेषासु दिक्षु व्यापिनो व्याप्नुवतः। उभयत्रापि समानमेतत्। तथा कालस्य यमस्य संबन्ध्यातिथ्यमतिथ्युचितसत्कारं भुनक्ति भोक्ष्यति तथोक्तस्य। 'वर्तमानसामीप्ये-' इति लट्। अन्यत्र कालं कृष्णमातिथ्यमतिथिसत्कारं भुनक्ति भोजयति। अन्तर्भावितणिजर्थः। प्रलये वर्धमानसमुद्रनीरे केवलं तस्यैव वर्तमानत्वात्। वृन्दारकाणां देवानामसुराणां

खड्गादीनि यैस्तथाभूता वज्रधरस्येन्द्रस्य द्विषोऽपि तारकस्य च। अपिरत्र समुच्चयार्थः। 'अपिः संभावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये' इति विश्वः। सैनिकाः सेनाचराः। 'चरति' इति ठक्। वैतालिकैर्बन्दिभिः श्राविताान्याकर्णितानि तार उच्चैर्विक्रमोऽभिधानानि नामानि च यस्मिन्कर्मणि यथा परस्परमन्योन्यमीयुः प्रापुः। मिमीलुरिति यावत् ॥५२॥

हिन्दी—युद्ध में अपने-अपने पक्ष की विजयाभिलाषा लिये हुए दोनों पक्ष के योद्धा अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों को ले चारणो द्वारा अपने-अपने विजयकीर्त्ति का गान सुनसुनकर परस्पर एक दूसरे से टक्कर लेने लगे।

सङ्ग्रामं प्रलयाय संनिपततो वेलामतिक्रामतो
वृन्दारासुरसैन्यसागरयुगस्याशेषदिग्व्यापिनः ।
कालातिथ्यभुजो बभूव बहलः कोलाहलः क्रोषणः
शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुर्ब्रह्माण्डकुक्षिंभरिः ॥५३॥

अन्वयः—प्रलयाय सग्रामम् संनिपततः वेलाम् अतिक्रामतः अशेषदिग्व्यापिनः कालातिथ्यभुजः वृन्दारासुर सैन्यसागरयुगस्य क्रोषणः कोलाहलः बहलः शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुः ब्रह्माण्डकुक्षिंभरिः बभूव।

संजी०—सङ्ग्राममिति॥ प्रलयाय नष्टचेष्टतायै। तां कर्तुमित्यर्थः। सङ्ग्रामं समरं संनिपततः समुदितवतः। अन्यत्र प्रलयाय लोकसंहाराय संनिपततो वर्धमानस्य। अत एव वेलां मर्यादाम्। एकत्र न्याय्याचरणम्, अन्यत्रावधिम्। सीमानमिति यावत्।

'वेला काले च जलधौ तीरे नीरविकारयोः।
क्लिष्टरसने रोगे च सीम्नि वाचि युधि स्त्रियाम्'॥ इति विश्वः।

अतिक्रामत उल्लङ्घयतः। निर्मर्यादत्वेन युध्यमानस्य सीमानमुल्लङ्घ्य चलत इत्यर्थः। अत एवाशेषासु दिक्षु व्यापिनो व्याप्नुवतः। उभयत्रापि समानमेतत्। तथा कालस्य यमस्य संबन्ध्यातिथ्यमतिथ्युचितसत्कारं भुनक्ति भोक्ष्यति तथोक्तस्य। 'वर्तमानसामीप्ये–' इति लट्। अन्यत्र कालं कृष्णमातिथ्यमतिथिसत्कारं भुनक्ति भोजयति। अन्तर्भावितणिजर्थः। प्रलये वर्धमानसमुद्रनीरे केवलं तस्यैव वर्तमानत्वात्। वृन्दारकाणां देवानामसुराणां

च ये सैन्ये ते एव सागरौ समुद्रौ तयोर्युगस्य युग्मस्य। 'युग्मं तु युगलं युगम्' इत्यमरः। तत्संबन्धी क्रोषणो मुखरः कोलाहलः कलकलो बहलः। अत एव शैलसंबन्धिनीनामुत्ताला उच्चतालवृक्षसहिता यास्तटयः संकतानि। शृङ्गाणीति यावत्। तासां विघट्टने स्फोटने पटुः समर्थः। अत एव ब्रह्माण्डेन कुक्षिं भरति तयोक्तश्च बभूव। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् –'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात् ॥५३॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीताराम-
कविविरचितया संजीवनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
देवसेनाप्रयाणं नाम पञ्चदशः सर्गः।

हिन्दी--जिस प्रकार प्रलय करने के लिये अपने-अपने तटों की सीमा तोड़कर चारों ओर फैलते हुये तथा दुनियाँ को डुबो कर कालरूपी अतिथि का स्वागत करते हुये दो समुद्र परस्पर टकराते हुये भीषण कोलाहल के साथ आगे बढ़ते चले जाते हैं उसी प्रकार देव तथा दैत्यों की सेनाओं में भी संपूर्ण दिशाओं को व्याप्त कर देने वाला कालरूपी अतिथि का स्वागत करने वाली बड़े-बड़े पर्वतों की तलहटी को उखाड़ फेंकने वाला एवं ब्रह्माण्डकुक्षि को विदीर्ण कर देने वाला भयङ्कर कोलाहल होने लगा ॥५३॥

इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के पञ्चदश
सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी
व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः



अथान्योन्यं विमुक्तास्त्रशस्त्रजालैर्भयंकरैः ।
युद्धमासीत्सुनासीरसुरारिबलयोर्महत् ॥१॥

अन्वयः--अथ भयङ्करैः अन्योन्यम् विमुक्तास्त्रशस्त्रजालैः सुनासीरसुरारिबलयोः महत् युद्धम् आसीत् ।

संजी०--अथेति ॥ अथ सुरासुरसंमेलनानन्तरम् । भयंकरैर्भयमुत्पादयद्भिः । अन्योन्यं परस्परं विमुक्तानि प्रहर्तुं विसृष्टान्यस्त्रशस्त्राणां शरादिमोहनादीनां जालानि समूहास्तैः कृत्वा । सुनासीर इन्द्रः, सुरारिस्तारकः, तयोर्बले सैन्ये तयोः । 'बलं गन्धरसे रूपे स्थामनि स्थौल्यसैन्ययोः' इति विश्वः । महद्घोरं युद्धं सङ्ग्राम आसीद्बभूव । सर्गेऽस्मिन्वृत्तमनुष्टुप् ॥१॥

हिन्दी--इसके पश्चात् परस्पर एक दूसरे पर भयंकर अस्त्र शस्त्रों के समूहों की वर्षा करने वाली देवताओं तथा राक्षसों की सेना में महान् युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥१॥

पत्तिः पत्तिमभीयाय रणाय रथिनं रथी ।
तुरंगस्थं तुरंगस्थो दन्तिस्थं दन्तिनि स्थितः ॥२॥

अन्वयः--पत्तिः पत्तिम् रथी रथिनम् तुरङ्गस्थः तुरङ्गस्थम् दन्तिनिस्थितः दन्तिस्थम् रणाय अभीयाय ।

संजी०--पत्तिरिति ॥ पत्तिः पादचारी पत्तिं पादचारिणम्. रथी रथारूढो रथिनं रथारूढम्, तुरंगस्थोऽश्ववाहस्तुरंगस्थमश्ववाहम्, दन्तिनि गजे स्थितो दन्तिस्थं गजारोहम्, रणाय रणं कर्तुमभीयाय संमुखमगमत् । अत्र प्रत्येकं क्रियासंबन्धो विधेयः । अन्यथा बहुत्वप्रसङ्गः ॥२॥

हिन्दी--पैदल सिपाही पैदलों के साथ, रथ वाले रथियों के साथ, घुड़सवार घुड़सवारों के साथ तथा हाथीसवार हाथीसवारों के साथ युद्ध करने के लिए परस्पर टूट पड़े ।२॥

युद्धाय धावतां घोरं वीराणामितरेतरम् ।
वैतालिकाः कुलाधीशा नामान्यलमुदाहरन् ॥३॥

अन्वयः--इतरेतरम् युद्धाय घोरम् धावताम् वीराणाम् नामानि कुलाधीशाः वैतालिकाः अलम् उदाहरन् ।

संजी०—युद्धायेति ।। इतरेतरं परस्परं युद्धाय युद्धं कर्तुं धीरं गम्भीरं यथा तथा धावतां विद्रवतां वीराणां योद्धॄणां नामानि कुलाधीशाः कुलस्वामिनः । कुलप्रदीपा इति यावत् । अनेन स्वात्मविद्यायामतिप्रावीण्यं व्यज्यते । वैतालिका बन्दिनः । अलं भूषणम् । शोभेति यावत् । यथा स्यात्तथोदाहरन्नूचुः । अयममुकसंज्ञको वीरो धावति, अयममुकसंज्ञको वीरो धावतीत्येवंभूतं जगदुरित्यर्थः । आत्मपरावबोधार्थमिति भावः ।।३।।

हिन्दी--परस्पर युद्ध करने के लिये झपटकर दौड़ते हुये वीर सैनिकों का नाम ले-ले कर वंशवेत्ता चारण लोग उनकी प्रशंसा का गान करने लगे ।।३।।

पठतां बन्दिवृन्दानां प्रवीरा विक्रमावलीम् ।
क्षणं विलम्ब्य चित्तानि ददुर्युद्धोत्सुकाः पुरः ।।४।।

अन्वयः--प्रवीराः विक्रमावलीम् पठताम् बन्दिवृन्दानाम् पुरः चित्तानि क्षणं विलम्ब्य ददुः । यतः युद्धोत्सुकाः ।

संजी०--पठतामिति ।। प्रवीराः प्रकृष्टयोद्धारो विक्रमावलीं पराक्रमसमाहारं पठतां स्तुवताम् 'साधु पराक्रान्तम्, साधु पराक्रान्तम्' इति वदतां बन्दिवृन्दानां वैतालिकसमूहानां पुरोऽग्रे चित्तानि मनांसि क्षणं विलम्ब्य ददुः । यतो युद्धोत्सुकाः समरोत्कण्ठिताः । समरोत्कण्ठितमनोज्ञाताभावो न श्रवणेन्द्रियस्य केवलस्यैवार्थबोधासभवात् ।।४।।

हिन्दी--युद्ध में लड़ने वाले महान्-महान् योद्धा अपने पराक्रम का गीत गानेवाले बन्दियों के सामने थोड़ी देर ठहर कर अपना चित्त पराक्रम का गीत सुनने में लगाते थे । क्योंकि उस समय मन युद्ध के लिये उत्साहित हो रहा था ।।४।।

सङ्ग्रामानन्दवर्धिष्णौ विग्रहे पुलकाञ्चिते ।
आसीत्कवचविच्छेदो वीराणां मिलतां मिथः ।।५।।

अन्वयः--संग्रामानन्दवर्धिष्णौ पुलकाञ्चिते मिथः मिलताम् वीराणाम् विग्रहे कवचविच्छेदः आसीत् ।

संजी०--सङ्ग्रामेति ।। सङ्ग्रामानन्देन समरोत्साहेन वर्धिष्णौ वृद्धिशीले अत एव पुलकाञ्चिते रोमाञ्चव्याप्ते मिथो मिलतां संगच्छमानानां वीराणां योद्धॄणां विग्रहे शरीरे । जातावेकवचनम् । कवचानां वारणानां विच्छेदो विभेद आसीत् ।।५।।

हिन्दी--संग्रामजन्य आनन्द के बढ़ने से रोमाञ्च उत्पन्न करने वाले तथा आपस में संघर्ष करने वाले वीरों के उस भयानक युद्ध में कवचों के बटन परस्पर संघर्ष के कारण खुल जाया करते थे ।।५।।

निर्दयं खड्गभिन्नेभ्यः कवचेभ्यः समुत्थितैः ।
आसन्व्योमदिशस्तूलैः पलितैरिव पाण्डुराः ॥६॥

अन्वयः--निर्दयम् खड्गभिन्नेभ्यः कवचेभ्यः समुत्थितैः तूलैः पलितै इव व्योम-दिशः पाण्डुराः आसन् ।

संजी०--निर्दयमिति ॥ निर्दयं निष्कृपं खड्गभिन्नेभ्यः करवाल-विदीर्णेभ्यः कवचेभ्यः सकाशात्समुत्थितैरुड्डयितैस्तूलैः कार्पासैः । 'तूलः पिचौ भवेत्तूलं ब्रह्मदारुविहायसोः' इति विश्वः । पलितैरिव जराजनित-शुक्लत्वैरिव । 'पलितं जरसा शौक्लयम्' इत्यमरः । व्योमसहिता दिशः पाण्डुराः श्वेता आसन् । उत्प्रेक्षया कवचविच्छेदेऽपि वीराणां युद्धविषयक उत्साहो न विच्छिन्न इति ध्वन्यते । अतोऽलंकारेण वस्तुध्वनिः ॥६॥

हिन्दी--सैनिकों की तलवारों की करारी चोट लगने से कटे हुये कवचों के भीतर से निकली हुई रुई राशि आकाश तथा दिशाओं में व्याप्त होकर उन्हें इस प्रकार उजली बना रही थी मानो वे पके हुये बालों के ढेर से उजली हो गई हों ॥६॥

खड्गा रुधिरसंलिप्ताश्चण्डांशुकरभासुराः ।
इतस्ततोऽपि वीराणां विद्युतां वैभवं दधुः ॥७॥

अन्वयः--रुधिरसंलिप्ताः अपि इतस्ततः चण्डांशुकरभासुराः वीराणाम् खड्गाः विद्युताम् वैभवं दधुः ।

संजी०--खड्गा इति ॥ रुधिरेण संलिप्ताः । तथेतस्ततश्चण्डांशुकरैः सूर्यकिरणव्यतिकरैर्भासुराश्चमत्कुर्वन्तो वीराणां खड्गा विद्युतां तडितां वैभवं सादृश्यं दधुः । तद्वच्छुशुभिर इत्यर्थः । अत्रोपमया खड्गानां वीरकर-संपर्कजनितपरिकम्पचमत्कारकारित्वं ध्वन्यते । अतोऽत्राप्यलंकारेण वस्तु-ध्वनिः । तथा वीरकरसंपर्कजनितपरिकम्पचमत्कारकारित्वरूपव्यङ्ग्येन प्रतिद्वन्द्विविहननजनितद्विगुणोत्साहवत्त्वं च व्यज्यते ॥७॥

हिन्दी--रुधिर से सनी हुई तथा जहाँ-तहाँ सूर्य की किरणों के पड़ने से चमकती हुई वीरों की तलवारें चमकती हुई बिजली जैसी प्रतीत होती थीं ॥७॥

विसृजन्तो मुखैर्ज्वाला भीमा इव भुजंगमाः ।
विसृष्टाः सुभटै रुष्टैर्व्योम व्यानशिरे शराः ॥८॥

अन्वयः--रुष्टैः सुभटैः विसृष्टाः शराः मुखैः ज्वाला विसृजन्तः भीमा भुजङ्गमा इव व्योम व्यानशिरे ।

संजी०--विसृजन्त इति ॥ रुष्टैः सुभटैः शोभनयोद्धृभिर्विसृष्टा विमुक्ताः शरा बाणाः । मुखैरग्रैर्ज्वाला उल्का विसृजन्तो मुञ्चन्तः । अत एव भीमा

भयानका भुजंगमा इवेत्युत्प्रेक्षा । व्योम कर्म व्यानशिरे व्यापुः। अत्र सुभटकर्तृकविसर्जनव्यापारपूर्वकव्योमव्याप्त्या प्राग्भाविताविशिष्टशत्रुविग्रहभेदनं ध्वन्यते। अन्यथा व्योमव्याप्तिमात्रस्यैव विवक्षितत्वेन व्यापृतेर्व्यर्थत्वमुद्भाव्येत। तेनात्र वस्तुना वस्तुध्वनिः ॥८॥

हिन्दी—क्रोध में भरे हुये महावीरों के द्वारा छोड़े हुये वाण मुख से आग उगलते हुये भयङ्कर साँप के समान सारे आकाशमण्डल में व्याप्त हो गये ॥८॥

बाढं वपूंषि निर्भिद्य धन्विनां निघ्नतां मिथः।
अशोणितमुखा भूमिं प्राविशन्दूरमाशुगाः ॥९॥

अन्वयः—मिथः दूरं निघ्नताम् धन्विनां वपूंषि बाढम् निर्भिद्य अपि अशोणितमुखा आशुगाः भूमिम् प्राविशन् ।

संजी०—बाढमिति ॥ मिथोऽन्योन्यं दूरमतिशयेन निघ्नतां प्रहरतां धन्विनां धनुर्धारिणां वपूंषि गात्राणि बाढं गाढम्। दृढमिति यावत्। निर्भिद्याप्यशोणितमुखाः शोणितसाहित्यराहित्यवन्ति मुखान्यग्राणि येषां त आशुगा बाणा भूमिं प्राविशन्प्रविष्टाः। अत्र विभेदका अप्यशोणितमुखा इति विरोधाभासालंकारेण बाणानामतिशीघ्रगामित्वरूपवस्तुध्वनिः। न च शीघ्रमेव व्यञ्जनीयमिति वाच्यम्। आशुगा इत्यनेनैव तदभिहितत्वात् ॥९॥

हिन्दी—दूर से ही एक दूसरे पर चलाये गये धनुर्धारियों के वाण उन वीरों के शरीर को छेदते हुये। शीघ्रता से पार हो पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाते थे किन्तु उसमें कहीं भी रक्त का नामोनिशान भी नहीं दिखाई पड़ता था ॥९॥

निर्भिद्य दन्तिनः पूर्वं पातयामासुराशुगाः।
पेतुः प्रवरयोधानां प्रीतीनामाहवोत्सवे ॥१०॥

अन्वयः—आहवोत्सवे प्रीतानां प्रवरयोधानाम् आशुगाः दन्तिनः निर्भिद्य पूर्वम् पातयामासुः (पश्चात् स्वयम्) पेतुः।

संजी०—निर्भिद्येति ॥ आहवोत्सवे सङ्ग्रामरूपोत्सवे प्रीतानां प्रवरयोधानामतिश्रेष्ठयोद्धॄणां सम्बन्धिन आशुगा बाणा दन्तिनो गजान्निर्भिद्य भेदयित्वा पूर्वं पातयामासुः। पश्चात्स्वयमपि पेतुः। अत्र वाक्यार्थरूपवस्तुना प्राणापहारकं तेषामतितैक्ष्ण्यं वस्तु ध्वन्यत इति वस्तुना वस्तुध्वनिः ॥१०॥

हिन्दी—उस युद्धमहोत्सव में हर्षित हुये अत्यन्त श्रेष्ठ वीरों द्वारा चलाये गये वाणों ने प्रथम हाथियों को विदीर्ण कर उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। पश्चात् स्वयम् भी गिर पड़े ॥१०॥

ज्वलदग्निमुखैर्बाणैर्नीरन्ध्रैरितरेतरम् ।
उच्चैर्वैमानिका व्योम्नि कीर्णे दूरमपासरन् ॥११॥

अन्वयः—ज्वलदग्निमुखैः इतरेतरम् नीरन्ध्रैः बाणैः उच्चैः कीर्णम् व्योम्नि वैमानिका दूरम् अपासरन् ।

संजी०—ज्वलदिति ॥ ज्वलदग्निमुखैः प्रज्वलद्वह्निसहिताग्रैः । तथेतरेतरं परस्परं नीरन्ध्रैर्निर्गतावकाशैः । परस्परसंघट्टितैरिति तात्पर्यार्थः । बाणैः शरैः । उच्चैरतिशयितं यथा तथा कीर्णे व्याप्ते व्योम्नि वैमानिका विमानचारिणो देवा विष्ण्वादयो दूरमपासरन् दुद्रुवुः । आत्मशरीरसंबन्ध शङ्काकुलत्वादिति भावः ॥११॥

हिन्दी—ज्वाला उगलते हुये एवम् आपस में टकराते हुये वीरों के बाणों से समूचा आकाशमण्डल इस प्रकार पट गया कि विमानों पर बैठे हुये देवताओं को भी उसे छोड़कर दूर जाना पड़ा ॥११॥

विभिन्नं धन्विनां बाणैर्व्यथार्तमिव विह्वलम् ।
ररास विरसं व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात् ॥१२॥

अन्वयः—धन्विनाम् बाणैः विभिन्नम् व्यथार्त्तम् विह्वलम् व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात् विरसं ररास इव ।

संजी०—विभिन्नमिति ॥ धन्विनां बाणैर्विभिन्नं विदीर्णम् । अत एव व्यथार्तं पीडया दुःखितम् । अत एव विह्वलम् । इतिकर्तव्यताविस्मरणाश्रयमित्यर्थः । व्योम नभः श्येनप्रतिरवस्य पक्षिविशेषप्रतिध्वनेश्छलान्मिषेण विरसं कठोरं यथा तथा ररासेव रुरोदेवेत्युत्प्रेक्षालंकारः ॥१२॥

हिन्दी—धनुर्धारियों के वाण से छलनी बना हुआ अतएव व्यथा से कराहता हुआ समस्त आकाशमण्डल बाजपक्षी के भयावने शब्दों के बहाने रोते जैसा जान पड़ता था ॥१२॥

चापैराकर्णमाकृष्टैर्विमुक्ता दूरमाशुगाः ।
अधावन्रुधिरास्वादलुब्धा इव रणैषिणाम् ॥१३॥

अन्वयः—आकर्णम् आकृष्टैः रथैषिणाम् चापैः विमुक्ताः आशुगाः रुधिरास्वादलुब्धा इव दूरम् अधावन् ।

संजी०—चापैरिति ॥ आकर्णं कर्णपर्यन्तमाकृष्टैः रणैषिणां योद्धृणां सम्बन्धिभिश्चापैर्धनुर्भिर्विमुक्ता विसृष्टा आशुगाः शरा रुधिरास्वादे लुब्धा लम्पटा इव दूरमधावन्विद्रुताः । लम्पटोऽपि भोजनास्वादाय द्रुतं पलायते तद्वत् ॥१३॥

हिन्दी—कानतक खींच कर वीरों के द्वारा छोड़े गये बाण रुधिरपान के लोभ से दूर-दूर तक दौड़ते हुये से जान पड़ते थे ॥१३॥

गृहीताः पाणिभिर्वीरैर्विकोशाः खड्गराजयः ।
कान्तिजालच्छलादाजौ व्यहसन्संमदादिव ॥१४॥

अन्वयः—आजौ वीरैः पाणिभिः गृहीताः विकोशा खड्गराजयः कान्तिजालच्छलात् संमदाद् व्यहसन्निव ।

संजी०—**गृहीता इति ॥ आजौ सङ्ग्रामे वीरैः कर्तृभिः । पाणिभिर्गृहीताः । तथा विकोशाः कोशरहिताः । 'कोशोऽस्त्री कुड्मले पाले दिव्यखड्गपिधानके' इति मेदिनी । खड्गराजयः करवालपङ्क्तयः कान्तिजालच्छलाद्द्युतिसमूहकैतवेन सम्मदाद्वीराणामपि शत्रुविघातसाधने वयमेव यथोचितास्तथा नान्य इति प्रमोदाद् व्यहसन्निव जहसुरिवेत्युत्प्रेक्षा ॥१४॥**

हिन्दी—युद्ध में योद्धाओं के हाथों से पकड़ी गई नङ्गी तलवारों की पङ्क्ति अपनी चमक से ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वे उन्मत्त हो नङ्गी नाच रही हों ॥१४॥

खड्गाः शोणितसंदिग्धा नृत्यन्तो वीरपाणिषु ।
रजोघने रणेऽनन्ते विद्युतां वैभवं दधुः ॥१५॥

अन्वयः—शोणितसंदिग्धाः वीरपाणिषु नृत्यन्तः खड्गाः रजोघने अनन्ते रणे विद्युताम् वैभवं दधुः ।

संजी०—**खड्गा इति ॥ शोणितसंदिग्धा रुधिरसंलिप्ताः । तथा वीरपाणिषु नृत्यन्तः खड्गाः । रजसा घने सान्द्रे । तथानन्तेऽपारे रणे विद्युतां वैभवं दधुः । तद्वच्छुशुभिर इत्यर्थः । अत्र पदार्थवृत्तिनिदर्शनालंकारः ॥१५॥**

हिन्दी—वीरों के हाथों में नाचती हुई खून से लथपथ तलवारें उस धूल से भरे तथा विस्तृत रणक्षेत्र में बादलों के बीच बिजली जैसी चमक रही थीं ॥१५॥

कुन्ताश्चकाशिरे चण्डमुल्लसन्तो रणार्थिनाम् ।
जिह्वाभोगा यमस्येव लेलिहाना रणाङ्गणे ॥१६॥

अन्वयः—रणाङ्गणे चण्डम् (यथा स्यात्तथा) उल्लासन्तः कुन्ताः लेलिहाना यमस्य जिह्वाभोगा इव चकाशिरे ।

संजी०—**कुन्ता इति ॥ रणाङ्गणे सङ्ग्रामचत्वरे चण्डं प्रचण्डं यथा तथोल्लसन्तो दीप्यमानाः कुन्ताः प्रासाः । भल्ला इति यावत् । 'कुन्तः प्रासे चण्डभावे क्षुद्रजन्तौ गवेधुके' इति विश्वः । लेलिहानाः पुनः पुनरतिशयेन वा लिहन्ति ते लेलिहानाः । आस्वादयन्त इत्यर्थः । लिहेर्यङन्ताच्छानच् । यमस्य**

जिह्वाभोगा रसनारूपयन्त्राणीव। 'अभोगो वरुणच्छत्रे पूर्णतायन्त्रयोरपि' इति विश्वः। चकाशिरे दिद्युतिरे ॥१६॥

हिन्दी--उस युद्धक्षेत्र में लड़ने वाले योद्धाओं के भयानक रूप से चमचमाते भाले यमराज की लपलपाती जीभ जैसे प्रतीत हो रहे थे ॥१६॥

प्रज्वलत्कान्तिचक्राणि चक्राणि वरचक्रिणाम्।
चण्डांशुमण्डलश्रीणि रणव्योमनि बभ्रमुः ॥१७॥

अन्वयः--प्रज्वलत्कान्तिचक्राणि चण्डांशुमण्डलश्रीणि वरचक्रिणाम् चक्राणि रणव्योमनि बभ्रमुः।

संजी०—प्रज्वलदिति ॥ प्रज्वलत्प्रदीप्यमानं कान्तिचक्रं द्युतिमण्डलं येषां तानि। तथा चण्डांशुमण्डलस्य सूर्यमण्डलस्य श्रीरिव श्रीः शोभा येषां तानि। वराः श्रेष्ठा ये चक्रिणो योधास्तेषां संबन्धीनि चक्राण्यायुधविशेषाः। 'चक्रो गणे चक्रवाके चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः। ग्रामजाले कुलालस्य भाण्डे राष्ट्रास्त्रयोरपि' इति विश्वः। रणव्योमनि सङ्ग्रामरूपगगने बभ्रमुः। 'वा जृभ्रमुत्रसाम्' इत्येत्वाभ्यासलोपयोर्विकल्पः। अथ व्याख्यानानन्तरम्—वरचक्रिणां वराणां वीराणां ये चक्रिणो रथास्तेषां चक्राण्यङ्गानि रणव्योमनि बभ्रमुः। विशेषणद्वयमुभयत्रापि समानम् ॥१७॥

हिन्दी—अत्यन्तप्रदीप्तकान्तिमण्डल से घिरे अतः प्रचण्ड सूर्यमण्डल के समान चमकते हुये चक्रधारी वीरों के चक्र उस युद्धरूपी आकाश में चारों ओर चक्कर लगाते हुये घूम रहे थे ॥१७॥

केचिद्धीरैः प्रणादैश्च वीराणामभ्युपेयुषाम्।
निपेतुः क्षोभतो वाहादपरे मुमुहुर्मदात् ॥१८॥

अन्वयः--अभ्युपेयुषाम् वीराणां धीरैः प्रणादैः केचित् क्षोभतः वाहात् निपेतुः अपरे मदात् मुमुहुः।

संजी०—केचिदिति ॥ अभ्युपेयुषां संमुखमागतवतां वीराणां धीरैर्गम्भीरैः प्रणादैर्गर्जितैः केचिद्वीराः क्षोभतश्चित्तसंचलनाद्धेतोर्वाहादश्वान्निपेतुर्मुमूर्छुः। अपरे केचिन्मदाद् गर्वान्मुमुहुः। चेतनाविरहिता बभूवुरित्यर्थः ॥१८॥

हिन्दी--युद्ध में सामने आये हुये वीरों की घोर गर्जना से कुछ वीर चञ्चलचित्त हो अपने घोड़ों से गिरकर मूर्च्छित हो जाते थे और कुछ अपने अत्यन्त गर्व से ही चेतनारहित हो जाते थे ॥१८॥

कश्चिदभ्यागते वीरे जिघांसौ मुदमादधौ।
परावृत्य गते क्षुब्धे विषसादाहवप्रियः ॥१९॥

अन्वयः—कश्चित् (वीरः) जिघांसौ वीरे अभ्यागते (सति) मुदम् आदधौ । (अथ च) क्षुब्धे परावृत्य गते (तु) निषसाद (यतः) आहवप्रियः ।

संजी०—कश्चिदिति ॥ कश्चिद्वीरो जिघांसौ हन्तुमिच्छौ वीरेऽभ्यागते संमुखमागते सति । मुदमादधौ प्रससाद । अथ च क्षुब्ध एतदीयप्रहारक्षुभितेऽत एव परावृत्य गते तु विषसाद खिन्नोऽभूत् । यत आहवप्रियः सङ्ग्रामप्रियः । वीराणां प्रतिद्वन्द्विसंमुखागमनमेव प्रीतिजनकं भवतीति भावः ॥१९॥

हिन्दी—कोई वीर अपने को मार डालने की अभिलाषा से आये हुये किसी वीर को अपने सामने देखकर प्रहर्षित हो जाता था किन्तु जब वही मार की चपेट से क्षुब्ध होकर लौट जाता था तो वह वीर बड़ा दुःखी हो उठता था। क्योंकि वह युद्धप्रिय था ॥१९॥

बहुभिः सह युद्ध्वा वा परिभ्रम्य रणोल्बणाः ।
उद्दिश्य तानुपेयुः केऽपि ये पूर्ववृता रणे ॥२०॥

अन्वयः—रणोल्बणाः केऽपि योधाः रणे बहुभिः सह युद्ध्वा परिभ्रम्य वा तान् उद्दिश्य उपेयुः ये पूर्ववृताः ।

संजी०—बहुभिरिति ॥ रण उल्बणा उद्भटाः केऽपि योधा रणे सङ्ग्रामे बहुभिः सह युद्ध्वा परिभ्रम्य वा तानुद्दिश्योपेयुर्युद्धार्थमभिजग्मुः । ये पूर्वं वृता अङ्गीकृताः । यैः सह पूर्वमयोधि पुनरपि तैरेव सह योद्धुं जग्मुरित्यर्थः ॥२०॥

हिन्दी—रण में अत्यन्त कर्कश कितने योधा युद्ध में बहुतों के साथ लड़कर अथवा युद्धभूमि में इधर-उधर घूम-घामकर पुनः उसी से भिड़ जाते थे जिनसे लड़ने के लिये उसने बहुत पहले ही प्रतिज्ञा कर ली थी ॥२०॥

अभितोऽभ्यागतान्योद्धुं वीरान्रणमदोद्धतान् ।
प्रत्यनन्दन्भुजादण्डरोमोद्गमभृतो भटाः ॥२१॥

अन्वयः—भुजदण्डरोमोद्गमभृतः भटाः रणमदोद्धतान् योद्धुम् अभितः अभ्यागतान् वीरान् प्रत्यनन्दन् ।

संजी०—अभित इति ॥ भुजादण्डेषु यो रोम्णामुद्गमस्तं बिभ्रति तथाभूता भटा योधाः कर्तारः । रणस्य सङ्ग्रामस्य मदेनोद्धतान् । अत एव योद्धुमभितोऽभ्यागतान्वीरान् । आलोक्येति शेषः । प्रत्यनन्दन्नहृष्यन् ॥२१॥

हिन्दी—अपने प्रचण्ड भुजदण्डों में रोमाञ्च धारण करनेवाले महाभट युद्ध करने के लिये चारों ओर से आकर डट जानेवाले वीरों को देखकर फूले नहीं समाते थे ॥२१॥

शस्त्रभिन्नेभकुम्भेभ्यो मौक्तिकानि च्युतान्यधः ।
अध्याहवक्षेत्रमुप्तकीर्तिबीजाङ्कुरश्रियम् ॥२२॥

अन्वयः--शस्त्रभिन्नेभकुम्भेभ्यः मौक्तिकानि अधः च्युतानि अध्यावहक्षेत्रम् उप्तकीर्त्तिबीजाङ्कुरश्रियम् दधुः ।

संजी०—शस्त्रेति ।। शस्त्रैर्भिन्ना विदीर्णा य इभकुम्भा गजगण्डस्थलानि । 'कुम्भः स्यात्कुम्भकर्णस्य सुते वेश्यापतौ घटे । राशिभेदे द्विपाङ्गे च' इति विश्वः । तेभ्योऽधश्च्युतानि मौक्तकानि कर्तृणि । अध्याहवक्षेत्रमधिसङ्ग्राम-केदारम् । उप्तम् । 'टुवप् बीजसंताने' इत्यतो निष्ठा । यत्कीर्तिबीजं यशो-रूपमहीरुहबीजं तस्याङ्कुरस्तस्य श्रियं शोभाम् । दधुरिति शेषः ।।२२।।

हिन्दी--हथियारों से कटकर गिरे हुये हाथियों के मस्तक के नीचे गिरनेवाली मोती ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो युद्धक्षेत्र में बोये गये कीर्त्तिरूपी बीज के अङ्कुर निकल आये हों ।।२२।।

वीराणां विषमैर्घोषैर्विद्रुता वारणा रणे ।
शास्यमाना अपि त्रासाद्भेजुर्धूताङ्कुशा दिशः ।।२३।।

अन्वयः--रणे विषमैः वीराणाम् घोषैः विद्रुता वारणाः शास्यमानाः अपि धूताङ्कुशाः भासात् दिशः भेजुः ।

संजी०—वीराणामिति ।। रणे विषमैर्दुःसहैर्वीराणां घोषैर्विद्रुताः पला-यिता वारणा गजाः शास्यमानाः शिष्यमाणा अपि । यन्तृभिरिति शेषः । धूताङ्कुशा अपमानिताङ्कुशाः सन्तस्त्रासाद्दिशो भेजुः । 'तृफलभज-' इत्येत्वाभ्यासलोपौ । दिशः प्रति पलायांचक्रिरे ।।२३।।

हिन्दी--युद्ध में वीरों के भयङ्कर ललकार से भागते हुये हाथी फीलवानों द्वारा रोके जाने पर भी अङ्कुश के चोटों की परवाह किये विना ही भयभीत हो इधर-उधर दिशाओं में भागने लगे ।।२३।।

रणे बाणगणैर्भिन्ना भ्रमन्तो भिन्नयोधिनः ।
निममज्जुर्मिलद्रक्तनिम्नगासु महागजाः ।।२४।।

अन्वयः--रणे बाणगणैः भिन्नयोधिनः (अतएव स्वयम्) भिन्ना भ्रमन्तः महागजाः मिलद्रक्तनिम्नगासु निममज्जुः ।

संजी०--रण इति ।। रणे सङ्ग्रामे बाणगणैः शत्रुशरनिकरैर्भिन्नयोधिनो विदीर्णयन्तारः । अत एव स्वयमपि भिन्नाः । अत एव भ्रमन्तो महागजा मिलन्त्यः संयुजन्त्यो या रक्तस्य निम्नगा नद्यस्तासु निममज्जुः ।।२४।।

हिन्दी--युद्ध में बाणों से आहत हुये फीलवानों वाले मदमत्त हाथी स्वयं भी घायल होकर इधर-उधर घूमते हुये बहती हुई रक्त की नदी में गिरकर डूब जाते थे ॥२४॥

अपारेऽसृक्सरित्पूरे रथेषूच्चैस्तरेष्वपि ।
रथिनोऽभि रिपुं क्रुद्धा हुंकृतैर्व्यसृजञ्शरान् ॥२५॥

अन्वयः--उच्चैस्तरेषु अपि रथेषु अपारे असृक्पूरे रथिनः क्रुद्धाः हुङ्कृतैः अभिरिपून् शरान् व्यसृजन् ।

संजी०--अपार इति ॥ उच्चैस्तरेष्वपि रथेष्वपारेऽगाधेऽसृक्सरित्पूरे रुधिरनदीप्रवाहे मज्जत्सु सत्सु रथिनो रथारोहाः क्रुद्धाः । अत एव हुंकृतैः । भीषयन्त इति शेषः । अभिरिपुं शत्रुसंमुखं शरान्व्यसृजंस्तत्यजुः ॥२५॥

हिन्दी--अत्यन्त ऊंचे रथों पर बैठे हुये अगाध रक्त की धारा में बहते हुये भी महारथी क्रोध से हुङ्कार कर अपने शत्रुओं पर बाण छोड़ते जाते थे ॥२५॥

खड्गनिर्लूनमूर्धानो व्यापतन्तोऽपि वाजिनः ।
प्रथमं पातयामासुरसिना दारितानरीन् ॥२६॥

अन्वयः--खड्गनिर्लूनमूर्धानः वाजिनः व्यापतन्तः अपि असिना दारितान् अरीन् प्रथमम् पातयामासुः ।

संजी०--खड्गेति ॥ खड्गनिर्लूनमूर्धानः करवालकृत्तशिरसः । अत एव वाजिनोऽश्वाद्व्यापतन्तोऽप्यसिना खड्गेन दारितान्विदीर्णानरीन्प्रथमं पातयामासुः । पुनः स्वयं पेतुरिति शेषः । अत्र 'दारयित्वासिना रिपून्' इति पाठः साधीयान् ॥२६॥

हिन्दी--बहुत से वीर तलवार से अपने मस्तक के कट जाने पर घोड़े से नीचे गिरते हुये भी पहले अपनी तलवार से अपने शत्रुओं को काटकर गिरा देते थे तदन्तर स्वयं नीचे गिरते थे ॥२६॥

वीराणां शस्त्रभिन्नानि शिरांसि निपतन्त्यपि ।
अधावन्दन्तदष्टोष्ठभीमान्यभिरिपुं क्रुधा ॥२७॥

अन्वयः--शस्त्रभिन्नानि निपतन्ति अपि दन्तदष्टोष्ठभीमानि वीराणां शिरांसि क्रुधा अभिरिपून् अधावन् ।

संजी०--वीराणामिति ॥ शस्त्रभिन्नान्यत एव निपतन्त्यपि दन्तैर्दष्टाः पीडिता या ओष्ठा अधरास्तैर्भीमानि घोराणि वीराणां शिरांसि क्रुधाभिरिपुं वैरिसंमुखमधावन् ॥२७॥

हिन्दी--शस्त्रों से कटकर गिरते हुये वीरों के मुण्ड भी क्रोध के कारण अपने दाँतों से होठों को चबाते हुये अत्यन्त भयङ्कर ही शत्रुओं की ओर दौड़ रहे थे ॥२७॥

शिरांसि वरयोधानामर्धचन्द्रहृतान्यलम् ।
आदधाना भृशं पादैः श्येना व्यानशिरे नभः ॥२८॥

अन्वयः--अर्धचन्द्रहृतानि वरयोधानां शिरांसि पदैः आदधानाः श्येनाः भृशं नभः व्यानशिरे ।

संजी०--शिरांसीति ॥ अर्धचन्द्रहृतान्यर्धचन्द्राकारबाणकर्तितानि वरयोधानां शिरांसि । पादैरादधाना गृह्णन्तः श्येनाः पक्षिविशेषा भृशमतिशयेन नभो। व्यानशिरे व्यापुः । सर्वस्मिन्नेव नभसि श्येननीतमस्तकान्येव जातानीति भावः ॥२८॥

हिन्दी--अर्धचन्द्राकारबाणों से कटे हुये वीरों के बहुत से शिरों को बाज अपने चङ्गुलों में दवा-दबाकर आकाश में उड़ने लगे जिससे सारा आकाश मुण्डों से भर-सा गया ॥२८॥

क्रोधादभ्यापतद्दन्तिदन्तारूढाः पदातयः ।
अश्वारोहा गजारोहप्राणान्प्रासैरपाहरन् ॥२९॥

अन्वयः--पदातयः अश्वारोहा क्रोधात् अभ्यापदद्वन्तिदन्तारूढाः प्रासैः गजारोहप्राणान् अपाहरन् ।

संजी०--क्रोधादिति ॥ पदातयः पद्गतयोऽश्वारोहाश्च क्रोधाद्धेतोरभ्यापततां संमुखमागच्छतां दन्तिनां दन्तेष्वारूढाः सन्तः प्रासैः कुन्तैर्गजारोहप्राणान्यन्तृणामसूनपाहरन् ॥२९॥

हिन्दी--पैदल तथा घुड़सवार योद्धा क्रोध में आकर सामने वाले हाथियों के दाँतों पर चढ़कर उन पर बैठे हुये वीरों को अपने भालों से मौत के घाट उतार देते थे ॥२९॥

शस्त्रच्छिन्नगजारोहा विभ्रमन्त इतस्ततः ।
युगान्तवातचलिताः शैला इव गजा बभुः ॥३०॥

अन्वयः--शस्त्रच्छिन्नगजारोहाः इतस्ततः विभ्रमन्तः गजाः युगान्तवातचलिताः शैला इव बभुः ।

संजी०--शस्त्रेति ॥ शस्त्रैश्छिन्ना गजारोहा येषामत एवेतस्ततो विभ्रमन्तो गजाः । युगान्तवातैः प्रलयप्रभञ्जनैश्चलिता उत्पातिताः शैला इव । बभुः शुशुभिरे ॥३०॥

हिन्दी--शस्त्रों से काटे गये सवारों वाले हाथी युद्धस्थल में इधर-उधर घूमते हुये ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो प्रलयकालीन वायु में उड़ते हुये पहाड़ हों ॥३०॥

मिलितेषु मिथो योद्धुं दन्तिषु प्रसभं भटाः ।
अगृह्णन्युद्धयमानाश्च शस्त्रैः प्राणान्परस्परम् ॥३१॥

अन्वयः--योद्धुम् मिलितेषु दन्तिषु भटाः मिथः युध्यमानाः च प्रसभम् शस्त्रैः परस्परम् प्राणान् अगृह्णन् ।

संजी०--मिलितेष्विति ॥ योद्धुं मिलितेषु दन्तिषु । आरूढा इति शेषः । भटा मिथोऽन्योन्यं युद्धयमानाः प्रसभं बलाच्छस्त्रैः कृत्वा परस्परं प्राणानगृह्णन् ॥३१॥

हिन्दी--जब लड़ने के लिये दो हाथी परस्पर गुंथ जाते थे तो उनपर बैठे हुये योद्धा भी परस्पर लड़ते हुये हठात् शस्त्रों से एक दूसरे के प्राणों को ले लेते थे ॥३१॥

रुषा मिथो मिलद्दन्तिदन्तसंघर्षजोऽनलः ।
योधाञ्शस्त्रहृतप्राणानदहत्सहसारिभिः ॥३२॥

अन्वयः--रुषा मिथः मिलद्दन्तिदन्तसंघर्षजः अनलः अरिभिः शस्त्रहृतप्राणान् योधान् सहसा अदहत् ।

संजी०--रुषेति ॥ रुषा क्रोधेन मिथोऽन्योन्यं मिलतां दन्तिनां ये दन्तास्तेषां संघर्षाज्जातोऽनलोऽग्निररिभिर्वैरिभिः शस्त्रैर्हृताः प्राणा येषां तान्योधान्सहसाकस्माददहत्पुप्लोष ॥३२॥

हिन्दी--अत्यन्त क्रोध के साथ आपस में लड़ते समय हाथियों के दाँतों के टक्कर से उत्पन्न होनेवाली आग शत्रुओं के हथियारों से मारे गये योद्धाओं को अकस्मात् जलाकर भस्म कर देती थी ॥३२॥

आक्षिप्ता अपि दन्तीन्द्रैः कोपनैः पत्तयः परम् ।
तदसूनहरन्खड्गघातैः स्वस्य पुरः प्रभोः ॥३३॥

अन्वय--परं कोपनैः दन्तीन्द्रैः आक्षिप्ताः अपि पत्तयः स्वस्य प्रभोः पुरः खड्गघातैः तदसून् अहरन् ।

संजी०--आक्षिप्ता इति ॥ परमतिशयितं कोपनैः क्रुद्धैर्दन्तीन्द्रैराक्षिप्ता अपि । आक्षेप्तुं शुण्डेन गृहीता अपीत्यर्थः । पत्तयः । पादचारिणः स्वस्य प्रभोः पुरः खड्गघातैस्तदसून्दन्तीन्द्रप्राणानहरञ्जगृहुः ॥३३॥

हिन्दी—अत्यन्त क्रुद्ध हुये हाथियों द्वारा फेंक दिये जाने पर भी पैदल सैनिक अपनी तलवारों के प्रहार से उनके मालिकों के सामने ही उन्हें काटकर प्राण ले लिया करते थे ॥३३॥

उत्क्षिप्य करिभिर्दूरान्मुक्तानां योधिनां दिवि ।
प्रापि जीवात्मभिर्दिव्या गतिर्वा विग्रहैर्मही ॥३४॥

अन्वयः—अरिभिः उत्क्षिप्य दिवि दूरात् मुक्तानाम् योधिनाम् जीवात्मभिः दिव्य गतिः प्रापि विग्रहैः मही वा प्रापि ।

संजी०—उत्क्षिप्येति ॥ करिभिरुत्क्षिप्योत्थाप्य दिवि दूरान्मुक्तानां योधिनां जीवात्मभिर्जीवैः । प्राणैरिति यावत् । दिव्या स्वर्गीया गतिः प्रापि । विग्रहैर्देहैर्मही वा प्रापि प्राप्ता । कर्मणि लुङ् ॥३४॥

हिन्दी—हाथियों द्वारा उठाकर आकाश में बहुत ऊँचाई तक फेके गये वीरों के जीवात्माओं ने दिव्य गति प्राप्त की किन्तु उनके शरीर पृथ्वी पर लौटकर आ गिरे ॥३४॥

खड्गैर्धवलधारालैर्निहत्य करिणां करान् ।
तैर्भुवापि समं विद्वान्संतोषं न भटा ययुः ॥३५॥

अन्वयः—भटः धवलधारालैः खड्गैः भुवः अपि समम् तैः विद्वान् करिणाम् करान् निहत्य (अपि) संतोषम् न ययुः ।

संजी०—खड्गैरिति ॥ भटा योधा धवलधारालैर्धवलां धारां लान्ति गृह्णन्ति तैः । शुभ्रधारैरित्यर्थः । अद्वितीयैः खड्गैः कृत्वा भुवा पृथिव्या समं विद्धान्प्रहृतान्करिणां कराञ्शुण्डादण्डान्निहत्यापि लवित्वापि संतोषं तृप्तिं न ययुः । अन्यानपि निहन्मीति बुद्धिमन्तो बभूवुरित्यर्थः ॥३५॥

हिन्दी—यद्यपि योद्धागण अपनी उजली धार वाली तलवारों से हाथियों के सूँड़ों को काटने के साथ ही पृथ्वी को भी विदीर्ण कर देते थे किन्तु इतने पर भी उन्हें संतोष नहीं होता था ॥३५॥

आक्षिप्याभिदिवं नीताः पत्तयः करिभिः करैः ।
दिव्याङ्गनाभिरादातुं रक्ताभिर्द्रुतमीषिरे ॥३६॥

अन्वयः—करिभिः करैः आक्षिप्य अधिदिवम् नीताः पत्तयः रक्ताभिः दिव्याङ्गनाभिः द्रुतम् आदातुं ईषिरे ।

संजी०—आक्षिप्येति ॥ करिभिः कर्तृभिः । करैर्दण्डैः कृत्वाक्षिप्योत्थाप्याभिदिवमाकाशसंमुखं नीताः प्रापिताः पत्तयः पादचारिणो रक्तभिरनुरक्ता-

भिर्दिव्याङ्गनाभिर्द्रुतं शीघ्रमादातुं गृहीतुमीषिरे इष्टा बभूवुः । अहमेतान्गृहीष्यामि, अहमेतान्गृहीष्यामीति त्वरिता बभूवुः ॥३६॥

हिन्दी—हाथियों के शुण्डदण्डों से फेंके गये वीर जब स्वर्ग चले जाते थे तो उन पर अनुरक्त दिव्याङ्गनायें उन्हें ग्रहण करने के लिये अत्यन्त उतावली हो उठती थीं ॥३६॥

धन्विनस्तुरगारूढा गजारोहाञ्शरैः क्षतान् ।
प्रत्यैच्छन्मूर्छितान्भूयो योद्धुमाश्वसतश्चिरम् ॥३७॥

अन्वयः—तुरागारूढाः धन्विनः शरैः शतान् मूर्च्छितान् गजारोहान् भूयः योद्धुम् आश्वसतः (एतादृशान्) चिरं प्रत्यैच्छन् ।

संजी०—धन्विन इति ॥ तुरगारूढा धन्विनो धनुर्धारिणो योधाः शरैः क्षतान् । अत एव मूर्छितान्गजारोहान्यन्तॄन्भूयोऽपि पुनरपि योद्धुमाश्वसतो जीवत एतादृशांश्चिरं प्रत्यैच्छन् । प्रतीक्षन्ते स्मेत्यर्थः ॥३७॥

हिन्दी—जब कोई घुड़सवार धनुर्धर अपने बाणों से किसी गजारूढ सैनिक को घायल कर मूर्च्छित कर देता था तो वह उसके होश में आने तक पुनः उससे लड़ने के लिये चिरकाल तक उसकी प्रतीक्षा करता रहता था ॥३७॥

क्रुद्धस्य दन्तिनः पत्तिर्जिघृक्षोरसिना करम् ।
निर्भिद्य दन्तमुसलावारुरोह जिघृक्षया ॥३८॥

अन्वय—पत्तिः क्रुद्धस्य जिघृक्षोः दन्तिनः करम् असिना निर्भिद्य जिघृक्षया दन्तमुसलौः आरुरोह ।

संजी०—क्रुद्धस्येति ॥ पत्तिः पादचारी कश्चिद्योधः क्रुद्धस्यात एव जिघृक्षोर्गृहीतुमिच्छोर्दन्तिनः करं दन्तयोरधोभागम् । असिना निर्भिद्य च्छित्वा जिघृक्षया प्रत्युत तस्यैव गृहीतुमिच्छया दन्तमुसलावारुरोहारूढवान् ॥३८॥

हिन्दी—जब क्रोध में भरा हुआ कोई हाथी किसी पैदल सैनिक को पकड़ने के लिये अपना शुण्डदण्ड आगे बढ़ाता था तो सैनिक अपनी तलवार से उसके सूंड़ को काटकर उसके दाँत को उखाड़ने के लिये मुसल के समान लम्बे उसके दाँतों पर चढ़ जाता था ॥३८॥

खड्गेन मूलतो हत्वा दन्तिनो रदनद्वयम् ।
प्रातिपक्ष्ये प्रविष्टोऽपि पदातिर्निरगाद्द्रुतम् ॥३९॥

अन्वयः—प्रातिपक्ष्ये प्रविष्टः अपि पदातिः दन्तिनः रदनद्वयम् खड्गेन मूलतः हत्वा द्रुतम् निरगात् ।

संजी०—खड्गेनेति ।। प्रातिपक्ष्ये शत्रुसंबन्धिनि सैन्ये प्रविष्टोऽपि पदातिः पादचारी दन्तिनो गजस्य रदनद्वयं दन्तद्वयं खड्गेन कृत्वा मूलतो मूलादुधृत्वा भित्त्वा द्रुत निरगान्निश्चक्राम । शत्रुसैन्यप्रविष्टस्य मरणमेव ध्रुवम्, तदस्य विपरीतमभूदित्यपिना द्योत्यते ।।३९।।

हिन्दी—कोई पैदल सैनिक शत्रुसेना में घुसकर भी अपनी तलवार से हाथी के दाँतों को जड़ से काटकर पुनः बड़ी कुशलता से अपनी सेना में लौट आता था ।।३९।।

करेण करिणा वीरः सुगृहीतोऽपि कोपिना ।
असिनासूञ्जहाराशु तस्यैव स्वयमक्षतः ।।४०।।

अन्वयः—कोपिना करिणा करेण सुगृहीतः अपि वीरः असिना तस्य एव असून् आशु जहार स्वयम् अक्षतः (अभूत्) ।

संजी०—करेणेति ।। कोपिना क्रुद्धेन करिणा दन्तिना कर्त्रा । करेण कृत्वा सुतरां गृहीतोऽपि वीरोऽसिना खड्गेन तस्यैव करिण एवासून्प्राणाञ्जहार हृतवान् । स्वयमक्षतोऽभूत् ।।४०।।

हिन्दी—क्रुद्ध हाथी की सूँड़ के द्वारा अच्छी प्रकार से लपेट में आया कोई वीर अपनी तलवार से स्वयम् उसे शीघ्र मार डालता था और स्वयम् अक्षत बच जाता था ।।४०।।

तुरंगी तुरगारूढं प्रासेनाहत्य वक्षसि ।
पततस्तस्य नाज्ञासीत्प्रासघातं स्वके हृदि ।।४१।।

अन्वयः—तुरङ्गी तुरगारूढं प्रासेन वक्षसि आहत्य पततः तस्य स्वके हृदि प्रासघातम् न अज्ञासीत ।

संजी०—तुरंगीति ।। तुरंग्यश्वारोहः कश्चिद्योद्धा तुरगारूढमश्ववारं प्रासेन कुन्तेन वक्षस्याहत्य ताडयित्वा पततस्याश्ववारस्य कर्तृकं स्वके आत्मीये हृदि प्रासघातं कुन्तक्षतं नाज्ञासीन्न विजज्ञे । तदीयपतनजानन्दस्योद्वेलत्वादिति भावः ।। ४१।।

हिन्दी—कोई घुड़सवार किसी घुड़सवार के छाती में भाला भोंककर इतना प्रसन्न हो जाता था कि वह उस घोड़े से गिरते हुये घायल सवार द्वारा अपनी छाती में भोंके गये भाले का ज्ञान भी नहीं कर पाता था ।।४१।।

द्विषा प्रासहृतप्राणो वाजिपृष्ठदृढासनः ।
हस्तोद्धृतमहाप्रासो भुवि जीवन्निवाभ्रमत् ।।४२।।

अन्वयः—द्विषा प्रासहृतप्राणः वाजिपृष्ठदृढासनः हस्तोद्धृतमहाप्रासः जीवन इव भुवि अभ्रमत् ।

संजी०—**द्विषेति ।।द्विषा शत्रुणा प्रासेन कृत्वा हृतप्राणो मारितः । तथा वाजिपृष्ठेऽश्वपृष्ठभागे दृढासनः प्राग्दृढासनत्वान्मृतत्वे दृढत्वं युक्तम् । तथा हस्त उद्धृतो महाप्रासो येन तथाभूतः कश्चिज्जीवन्निव भुव्यभ्रमत् । अश्व-भ्रमणवशाद् भ्रमञ्शवोऽशव इव लक्षित इति भावः ।।४२।।**

हिन्दी—शत्रु के द्वारा भाले से प्राणहीन हो जाने वाला कोई सैनिक घोड़े पर बैठा हुआ हाथ में भाला लिये जीवित के समान पृथ्वी पर घूमने जैसा प्रतीत होता था ।

तुरंगसादिनं शस्त्रहृतप्राणं गतं भुवि ।
अबद्धोऽपि महावाजी न साश्रुनयनोऽत्यजत् ।।४३।।

अन्वयः—अबद्धः अपि महावाजी साश्रुनयनः शस्त्रहृतप्राणं भुवि गतं तुरङ्ग-सादिनं न अत्यजत् ।

संजी०--**तुरंगेति ।। अबद्धोऽप्यनिरुद्धोऽपि महावाजी महानश्वः साश्रुणी सबाष्पे नयने यस्य तथाभूतः सन् । शस्त्रहृतप्राणमत एव भुवि गतं तुरग-सादिनमश्ववारं नात्यजन्न जहौ । किन्तु तज्जीवनमपेक्षमाणस्तत्रैव तस्था-वित्यर्थः ।।४३।।**

हिन्दी--शस्त्रों से मारे गये अपने सवार को पृथ्वी पर पड़े देख कर कोई अच्छी जाति का घोड़ा आँखों से आँसू बहाते हुए अविचल भाव से वहीं खड़ा रह गया यद्यपि वह वहाँ बँधा नहीं था ।

भल्लेन शितधारेण भिन्नोऽपि रिपुणाश्वगः ।
नामूर्च्छत्कोपतो हन्तुमियेष प्रपतन्नपि ।।४४।।

अन्वय--रिपुणा शितधारेण भल्लेन भिन्नः अपि अश्वगः कोपतः न अमूर्च्छत् किन्तु प्रपतन् अपि (रिपु) हन्तुम् इयेष-

संजी०—**भल्लेनेति ।। रिपुणा कर्त्रा । शितधारेण तीक्ष्णधारेण भल्लेन भिन्नोऽपि विदारितोऽप्यश्वगस्तुरंगगामी कोपतः क्रोधवशान्नामूर्च्छन्न मुह्यति स्म । किंतु प्रपतन्नप्यश्वादधः अंसमानोऽपि रिपुं हन्तुमियेषैच्छत् ।।४४।।**

हिन्दी--कोई घुड़सवार शत्रु के तेज धार वाले भाले से घायल होकर लड़-खड़ाते हुए भी मूर्च्छित नहीं हुआ किन्तु अपने घोड़े से गिरने की अवस्था में भी वह क्रोधपूर्वक अपने शत्रु को मार डालने की अभिलाषा कर रहा था ।

मिथः प्रासाहतौ वाजिच्युतौ भूमिगतौ रुषा ।
शस्त्र्या युयुधतुः कौचित्केशाकेशि भुजाभुजि ॥४५॥

अन्वयः--मिथः प्रासाहतौ वाजिच्युतौ भूमिगतौ कौचित् रुषा (युतौ) शस्त्र्या युयुधतुः (अथ च) केशाकेशि भुजाभुजि (युद्धम्) अभूत् ।

संजी०--मिथ इति ॥ मिथोऽन्योन्यं प्रासेनाहतौ । अत एव वाजिभ्यां सकाशाच्युतावधः पतितौ । अत एव भूमिं गतौ कौचिद्योधौ रुषा युतौ सन्तौ शस्त्र्या खड्गपुत्र्या युयुधतुर्युयुधाते । अथ च केशाकेशि केशेषु केशेषु गृहीत्वा प्रवृत्तं यद्युद्धम् भुजाभ्यां भुजाभ्यां प्रहृत्य प्रवृत्तं यद्युद्धं तदभूत् । 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' इति सूत्रेण समासः ॥४५॥

हिन्दी--दो घुड़सवार आपस में एक दूसरे के भाले से घायल होकर भूमि पर गिर कर भी अत्यन्त क्रोध के साथ छुरे से लड़ने के पश्चात् एक दूसरे से लिपट कर केशाकेशि तदनन्तर बाहुवाहवि (परस्पर बाहुयुद्ध) युद्ध करने लग गये ।

रथिनो रथिभिर्बाणैर्हृतप्राणा दृढासनाः ।
क्षतकार्मुकसंधानाः सप्राणा इव मेनिरे ॥४६॥

अन्वय--रथिभिः बाणैः हृतप्राणाः दृढासनाः क्षतकार्मुकसन्धानाः रथिनः सप्राणाः इव मेनिरे ।

संजी०--रथिन इति ॥ रथिभी रथारोहैः कर्तृभिः । बाणैः कृत्वा हृतप्राणास्तथा दृढासनाः क्षतं नष्टं कार्मुकसंधानं धनुःसञ्जीकरणं येषामेवंभूता रथिनो रथारोहाः सप्राणा इव जीवन्त इव मेनिरे मताः । कर्मणि लिट् । द्रष्टृभिरिति शेषः ॥४६॥

हिन्दी--बहुत से रथी योद्धा शत्रु के रथी योद्धाओं के बाणों से यद्यपि मर चुके थे तथापि अपने टूटे हुए धनुष को तान कर दृढ़ता के साथ रथ पर बैठे रहने के कारण वे जीवित जैसे प्रतीत हो रहे थे ।

न रथी रथिनं भूयः प्राहरच्छस्त्रमूर्च्छितम् ।
प्रत्याश्वसन्तमन्विच्छन्नातिष्ठद्युधि लोभतः ॥४७॥

अन्वयः--रथी शस्त्रमूर्च्छितम् रथिनं भूयः न प्राहरत् युधि लोभतः प्रत्याश्वसन्तं अन्विच्छन् अतिष्ठत् ।

संजी०--नेति ॥ रथी रथारोहः शस्त्रेण मूर्च्छितमचेतितं रथिनं भूयो न प्राहरत् । किन्तु पुनरपि युधि लोभतो लोभेन । तृतीयार्थे तसिः । प्रत्याश्वसन्तं पुनरुज्जीवन्तमन्विच्छन्नपेक्षमाणः सन्नतिष्ठत् ॥४७॥

हिन्दी कोई रथी योद्धा अपने शस्त्र से शत्रु पक्ष के रथी को शस्त्र से मूर्च्छित कर देने के पश्चात् पुनः उस पर प्रहार नहीं किया, किन्तु उसके जागने तक लड़ने की लालच में वहीं खड़ा हो प्रतीक्षा कर रहा था ।

अन्योन्यं रथिनौ कौचिद् गतप्राणौ दिवं गतौ ।
एकामप्सरसं प्राप्य युयुधाते वरायुधौ ॥४८॥

अन्वय—वरायुधौ कौचित् रथिनौ अन्योन्यम् गतप्राणौ दिवङ्गतौ एकाम् अप्सरसं प्राप्य (पुनः) युयुधाते ।

संजी०—अन्योन्यमिति ॥ वरायुधौ श्रेष्ठायुधौ कौचिद्रथिनावन्योन्यं परस्परेण कृत्वा गतप्राणौ गमितासू अत एव दिवं गतावेकामप्सरसं प्राप्य युयुधाते । अहमेतां गृहीष्यामि, अहमेतां गृहीष्यामीति वदन्तौ कलहं चक्रतुरित्यर्थः ॥४८॥

हिन्दी—उत्तम शस्त्रधारी दो महारथी योद्धा अपने-अपने शस्त्रों से एक दूसरे के प्राण लेकर स्वर्ग पहुँच गये किन्तु वहाँ पर भी दोनों एक ही अप्सरा को प्राप्त करने के लिए पुनः लड़ाई करने लग गये ।

मिथोऽर्धचन्द्रनिर्लूनमूर्धानौ रथिनौ रुचा ।
खेचरौ भुवि नृत्यन्तौ स्वकबन्धावपश्यताम् ॥४९॥

अन्वय—मिथः अर्धचन्द्रनिर्लूनमूर्धानौ खेचरौ रुचया रथिनौ भुवि नृत्यन्तौ स्वकबन्धौ अपश्यताम् ।

संजी०--मिथ इति ॥ मिथोऽन्योन्यमर्धचन्द्रेण तदाकारबाणेन निर्लूनमूर्धानौ छिन्नमस्तकावत एव खेचरावाकाशचारिणौ रुचा कान्त्या युतौ कौचिद्रथिनौ रथारोहौ कर्तारौ । भुवि नृत्यन्तौ गात्रं विक्षिपन्तौ स्वकबन्धौ शिरोरहितस्वदेहौ कर्म । अपश्यतां दृष्टवन्तौ ॥४९॥

हिन्दी--दो रथियों ने अर्धचन्द्राकार बाणों से परस्पर युद्ध करते हुए एक दूसरे के शिर को काट दिया पुनः जब वे आकाशमार्ग से ऊपर जाने लगे तो वहाँ से पृथ्वी पर नाचते हुए अपने कबन्धों को देखने लग गये ।

रणाङ्गणे शोणितपङ्कपिच्छिले कथं कथंचिन्ननृतुर्धृतायुधाः ।
नदत्सु तुर्येषु परेतयोषितां गणेषु गायत्सु कबन्धराजयः ॥५०॥

अन्वय--तूर्येषु नदत्सु परेतयोषिताम् गणेषु गायत्सु (सत्सु) धृतायुधाः कबन्धराजयः शोणितपङ्क पिच्छिले रणाङ्गणे कथंकथञ्चित् ननृतुः ।

संजी०—रणेति ॥ तुर्येषु नदत्सु सत्सु, परेतयोषितां भूताङ्गनानां गणेषु गायत्सु सत्सु, धृतायुधाः कबन्धराजयः शिरोरहितदेहपङ्क्तयः शोणितपङ्कपिच्छिले रुधिरकर्दमलिप्ते । अनेन स्निग्धत्वमुक्तम् । रणाङ्गणे सङ्ग्रामचत्वरे कथं कथंचिन्महता कष्टेन ननृतुर्गात्रं विचिक्षिपुः । भूमेरतिस्निग्धतया पादयोः स्थैर्येण स्थापनासंभवान्नृत्ये प्रयत्नो योग्य इति भावः । एषां श्लोकानां स्फुटार्थत्वाद्विस्तरेण विवृतिर्नोक्ता । प्रसङ्गा-

द्वक्तव्यनिर्धारणेन लाघवाद्यकारि। अतः क्षन्तव्यमित्यलम्। उपजातिर्वृत्तम् ॥५०॥

हिन्दी—रणक्षेत्र में बाजे बज रहे थे, प्रेत की स्त्रियाँ एकत्रित हो गाना गा रही थी। और आयुध धारण किए वीरों की कबन्ध पङ्क्तियाँ खून के कीचड़ से लथ-पथ उस रणाङ्गण में किसी-किसी प्रकार नाच रही थीं। इस प्रकार ताना बाना तथा नृत्य का तमाशा रणाङ्गण में दिखाई पड़ता था।

> **इति सुररिपुर्वृत्ते युद्धे सुरासुरसैन्ययो**
> **रुधिरसरितां मज्जद्दन्तिव्रजेषु तटेऽवलम्।**
> **अरुणनयनः क्रोधाद्भीमभ्रमद्भृकुटीमुखः**
> **सपदि ककुभामीशानभ्यागमत्स युयुत्सया ॥५१॥**

अन्वयः—इति सुरासुरसैन्ययोः युद्धे वृत्ते रुधिरसरिताम् तटेषु मज्जद्दन्तिव्रजेषु (सत्सु) अलम् क्रोधात् अरुणनयनः भीमभ्रमद् भृकुटी मुखः सः सुररिपुः युयुत्सया सपदि ककुभाम् ईशान् अभ्यागमत्

संजी०—इतीति॥ इति पूर्वोक्तप्रकारेण सुरासुरसैन्ययोर्देवदैत्यसैन्ययोर्युद्धे सङ्ग्रामे वृत्ते भूते सति। तथा रुधिरसरितां शोणितनदीनां तटेषु मज्जन्तो निमग्नीभवन्तो दन्तिव्रजा गजसमूहा येषु तथाभूतेषु सत्सु। अलमतिशयेन क्रोधाद्धेतोररुणनयनो रक्तलोचनः। तथा भीमे भयानके भ्रमती विवर्तमाने भृकुटीमुखे भृकुटचोरग्रे यस्य तथोक्तः स सुररिपुस्तारको युयुत्सया योद्धुमिच्छया सपदि तत्क्षणमेव ककुभां दिशामीशानिन्द्रादीनष्टदिक्पालानभ्यागमत्सम्मुखमाजगाम। हरिणी वृत्तम्—'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति लक्षणात् ॥५१॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसीतगर्भसंभवश्रीसीताराम-
कविविरचितया संजीवनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
देवसेनाप्रयाणं नाम षोडशः सर्गः

हिन्दी—इस प्रकार देवताओं तथा दैत्यों की सेनाओं में युद्ध होते रहने पर जब खून की नदी के किनारों पर बड़े-बड़े हाथियों के समूह डूबने लगे, तब देवताओं का शत्रु वह तारकासुर क्रोध से भौंहें टेढ़ी किए अपनी लाल आँखों से युद्ध करने की अभिलाषा से शीघ्र ही इन्द्रादि दिक्पालों के सामने आकर डट गया।

इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के षोडशः
सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी
व्याख्या पूर्ण हुई ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः

इदानीं तारकवधं चिकीर्षुस्तत्रभवान्कालिदासः सप्तदशतमं सर्गमारभते--

दृष्ट्वाभ्युपेतमथ दैत्यपतिं पुरस्ता-
त्सङ्ग्रामकेलिकुतुकेन घनप्रमोदम् ।
योद्धुं मदेन मिमिलुः ककुभामधीशा
बाणान्धकारितदिगम्बरगर्भमेत्य ॥१॥

अन्वयः---अथ (एते) ककुभाम् अधीशाः संग्रामकेलिकुतुकेन घनप्रमोदम् बाणान्धकारित दिगम्बरगर्भम् (तथा) अभ्युपेतम् दैत्यपतिम् पुरस्ताद् दृष्ट्वा योद्धुम् एत्य मदेन मिमिलुः ।

संजी०---दृष्ट्वेति ॥ अथ तारकसंमुखगमनानन्तरम् । एते ककुभामधीशा इन्द्रादयोऽष्टौ दिक्पालाः । सङ्ग्रामः समरः स एव केलिः क्रीडा । न तु प्रयत्नसाध्यं कर्मेति भावः । तत्र यत्कुतुकं कौतूहलम् । तदनुभवहेतुक उत्साह इति यावत् । तेन घनः सान्द्रः । बहल इति यावत् । यः प्रमोद आनन्दः स यस्य । तथा बाणैरन्धकारितः संजातान्धकारी कृतो दिशामम्बरस्य च गर्भः कुक्षिः । मध्य इति यावत् । येन । तथाभ्युपेतं संमुखमागतं दैत्यपतिं तारकं दृष्ट्वा विलोक्य योद्धुं संप्रहर्तुं मदेन गर्वेण । वीररसानुभावेनेति यावत् । मिमिलुः संयुयुजुः । सर्गेऽस्मिन्वसन्ततिलका वृत्तम्—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति लक्षणात् ॥१॥

हिन्दी--युद्धक्रीड़ा करने के उत्साह से अत्यन्त प्रसन्न तथा अपने बाणों की झड़ी से निरन्तर दिशाओं तथा आकाश को अन्धकारमय कर डालने वाले उस तारकासुर को अपने सम्मुख आया देख इन्द्र आदि सभी दिक्पाल उससे लड़ने के लिए मस्ती से एकत्रित हो युद्धक्षेत्र में डट गये ।

देवद्विषां परिवृढो विकटं विहस्य
बाणावलीभिरमरान्विकटान्ववर्ष ।
शैलानिव प्रवरवारिधरो गरिष्ठा-
नद्भिः पराभिरथ गाढमनारताभिः ॥२॥

अन्वयः—अथ देवद्विषाम् परिवृढः विकटम् विहस्य प्रवरवारिधरः गरिष्ठान् शैलान् पराभिः अनारताभिः अद्भिः इव विकटान् अमरान् बाणावलीभिः गाढं ववर्ष ।

संजी०—देवेति ।। अथानन्तरं देवद्विषामसुराणां परिवृढो नायकस्तारको विकटं यथा स्यात्तथा।'विकटः सुन्दरे प्रोक्तो बिशालविकरालयोः'इति विश्वः। विहस्य हसित्वा। अट्टाट्टहासं कृत्वेत्यर्थः। अट्टाट्टहासोऽत्र रुडभिव्यञ्जकः, न तु सुरसैन्यविषयिणोऽवहेलनस्य। तत्र शांकरेरधिष्ठितत्वात्। विहस्येत्यत्र वेर्व्यर्थत्वं नाशङ्कनीयम्। विकटत्वेऽपि विशेषाधानात्। प्रवरः प्रकर्षेण श्रेष्ठः। वर्षाकालिक इति यावत्। स चासौ वारिधरो मेघो गरिष्ठानतिशयगुरूञ्शैलान्। उद्दिश्येति शेषः। पराभिरुत्कृष्टाभिरनारताभिर्निरन्तरं पतन्तीभिरद्भिर्जलैरिव विकटान्करालानमरानिन्द्रादिदेवान्। उद्दिश्येति शेषः। बाणावलीभिः शरपङ्क्तिभिः कृत्वा ववर्ष वृष्टिमकार्षीत् ।।२।।

हिन्दी—जिस प्रकार वर्षाकाल के घने बादल अनवरत गहरी भीषण वर्षा से बड़े-बड़े पहाड़ों को आच्छन्न कर देते हैं उसी प्रकार देवताओं का शत्रु वह तारकासुर भी विकट हास करते हुए युद्ध में महाभयङ्कर देवताओं को अपने बाणों की निरन्तर वर्षा से ढँक लिया।

जम्भद्विषत्प्रभृतिदिक्पतिचापमुक्ता
बाणाः शिता दनुजनायकबाणसङ्घान्।
अह्नाय तार्क्ष्यनिवहा इव नागपूगा-
न्सद्यो विचिच्छिदुरलं कणशो रणान्ते ।।३।।

अन्वयः—दनुजनायकबाणसंघान् जम्भद्विषत्प्रभृतिदिक्पतिचापमुक्ताः शिताः बाणाः नागपूमान् अह्नाय तार्क्ष्यनिवहा इव रणान्ते सद्यः अलम् कणशः प्रचिच्छिदुः।

संजी०—जम्भद्विषदिति ।। दनुजानां दैत्यानां नायकस्य स्वामिनस्तारकस्य संबन्धिनो बाणसङ्घाञ्शरसमूहान्कर्मभूतान्। जम्भद्विषत्प्रभृतयो महेन्द्रादयो ये दिक्पतयो दिगधिपास्तैः कर्तृभिः। चापेभ्यो मुक्ता विसृष्टाः शितास्तीक्ष्णा बाणाः शराः। नागपूगान्सर्पव्रजान्। 'नागः पन्नगमातङ्गक्रूराचारिषु तोयदे' इति। 'पूगस्तु क्रमुके वृन्दे' इति च विश्वः। अह्नाय शीघ्रम्। 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय' इत्यमरः। तार्क्ष्यनिवहा गरुडसमूहा इव। 'तार्क्ष्यं रसाञ्जने तार्क्ष्यो गरुडे गरुडाग्रजे' इति विश्वः। रणान्ते सङ्ग्राममध्ये सद्यः सपद्यलमतिशयेन कणशो विचिच्छिदुर्बिभिदुः। कणश इति 'बह्वल्प-' इति शस् ।।३।।

हिन्दी—जिस प्रकार एकत्र गरुड़पक्षियों का समुदाय झुण्ड के झुण्ड साँपों को काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े करते चले जाते हैं। उसी प्रकार इन्द्रादि दिक्पालों के धनुषों से छूटे हुए तीखे बाण उस युद्ध क्षेत्र में तारकासुर के बाण समूहों को शीघ्रता के साथ टुकड़े-टुकड़े करते हुए काटने लगे।

तान्प्रज्वलत्फलमुखैर्विषमैः सुरारि-
नामाङ्कितैः पिहितदिग्गगनान्तरालैः ।
आच्छादितस्तृणचयानिव हव्यवाह-
श्चिच्छेद सोऽपि सुरसैन्यशरान्शरौघैः ॥४॥

अन्वयः—सः अपि प्रज्वलत्फलमुखैः विषमैः सुरारिनामाङ्कितैः पिहित दिग्गगनान्तरालैः शरौघैः तान् सुरसैन्यशरान् आच्छादितः हव्यवाहः तृणनिचयान् इव चिच्छेद ।

संजी०—तानिति ॥ सोऽपि तारकोऽपि प्रकर्षेण ज्वलन्ति दीप्यमानानि फलानां फलकानाम् । अयोनिर्मितपुरोभागानामिति यावत् । 'फलं हेतुकृते जातीफले फलकसस्ययोः' इति मेदिनी । मुखान्यग्राणि येषाम् । अत एव विषमैर्दुःसहैः । तथा सुरारिनाम्ना तारक इति व्रणपाटयाङ्कितैर्युक्तैः । तथा पिहितमाच्छादितं दिशां गगनस्याम्बरस्य चान्तरालं मध्यं यैस्तथाभूतैः शरौघैर्बाणसंङ्घैः कृत्वा तानद्वितीयान्सुरसैन्यस्य देवसैन्यस्य शरान् । आच्छादित उपर्यावृतो हव्यवाहोऽग्निस्तृणचयानिव घासराशीनिव । चिच्छेद ज्वालयति स्मेत्यर्थः । हव्यवाहस्य तृणचयभस्मीकरणे यावान्प्रयत्न उद्भवति तावानेव सुरशरभस्मसात्करणे । इत्यतोऽसुरबाणानां सामर्थ्यातिशयो ध्वन्यत इत्यलंकारेण वस्तुध्वनिः ॥४॥

हिन्दी—उस तारकासुर ने भी चमचमाते फलों वाले अत्यन्त तीक्ष्ण अपने नाम खुदे हुए दिशाओं तथा आकाश को आच्छादित कर देने वाले अपने भयंकर वाण समूहों से देवताओं के बाणों को उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे अग्निदेव अपने ऊपर पड़े हुए घास-फूस के समूहों को जला कर नष्ट कर देते हैं ।

दैत्येश्वरो ज्वलितरोषविशेषभीमः
सद्यो मुमोच युधि यान्विशिखान्सहेलः ।
ते प्रापुरुद्भटभुजंगमभीमभावं
गाढं बबन्धुरपि तांस्त्रिदशेन्द्रमुख्यान् ॥५॥

अन्वयः—ज्वलितरोषविशेष भीमः दैत्येश्वरः युधि सहेलः यान् विशिखान् मुमोच ते सद्यः उद्भटभुजङ्गमभीमभावं प्रापुः (अथ च) त्रिदशेन्द्रमुख्यान् तान् गाढम् (यथा स्यात्तथा) बबन्धुः अपि ।

संजी०—दैत्येश्वर इति ॥ ज्वलितः प्रदीप्तो यो रोषः क्रोधः । 'कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघाः' इत्यमरः । तस्य विशेष आधिक्यं तेन भीमो घोरो दैत्येश्वरस्तारकः युधि युद्धविषये सहेलः किमेतद्युद्धमित्यनादरसहितः सन् । यान्विशिखान्बाणान् । 'विशिखो लोमशे शरे' इति विश्वः । मुमोच

विससर्ज। ते शराः सद्यः सपद्युद्भूटा विकटा ये भुजंगमाः सर्पाः, भीमा भयानकास्तदुभयभावं तदुभयत्वं प्रापुः। सत्यपि भुजंगमत्वे भीमत्वस्यैच्छिकत्वात्पृथग्व्यपदेशः। अथ च त्रिदशेन्द्रमुख्यानिन्द्रप्रभृतींस्तान्देवान्गाढं दृढं यथा तथा बबन्धुरपि। अपिरत्र प्राप्तिक्रियापेक्षया समुच्चयार्थः। 'अपि संभावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये' इति विश्वः। इन्द्रप्रभृतयो देवास्तारकोन्मुक्तनागपाशबद्धा बभूवुरित्यर्थः ॥५॥

हिन्दी—क्रोध से जलते हुए अतएव अत्यन्त भयंकर उस तारकासुर ने उस युद्ध में खेल ही खेल में शीघ्रता से जिन-जिन बाणों को छोड़ा उन बाणों ने बड़े-बड़े साँपों का रूप धारण कर लिया और इन्द्रादि प्रमुख देवताओं के गले में लिपट कर दृढ़ता से उन्हें बाँधने लग गये।

ते नागपाशविशिखैरसुरेण बद्धाः
श्वासानिलाकुलमुखा विमुखा रणस्य।
दिङ्नायका बलरिपुप्रमुखाः स्मरारि-
सूनोः समीपमगमन्विपदन्तहेतोः ॥६॥

अन्वयः—असुरेण नागपाशविशिखैः बद्धा श्वासानिलाकुलमुखाः रणस्य विमुखाः बलरिपुप्रमुखाः दिङ्नायकाः विपदन्तहेतोः स्मरारिसूनोः समीपम् अगमन्।

संजी०—त इति ॥ असुरेण तारकेण नागपाशविशिखैर्नागपाशरूपबाणैः कृत्वा बद्धाः। अत एव श्वासानिलैर्निःश्वासपवनैराकुलानि व्याप्तानि मुखानि येषाम्। अतएव रणस्य विमुखाः पराङ्मुखाः। भीतस्य च रणवैमुख्यं नानुचितमिति भावः। बलरिपुप्रमुखा इन्द्रप्रभृतयो दिङ्नायका अष्टदिगधिपाः कर्तारः विपदोऽन्तो नाशः स एव हेतुः कारणं तस्मात्स्मरारिसूनोः कुमारस्य समीपं संनिधिमगमन्प्रापुः ॥६॥

हिन्दी—तब असुर के द्वारा छोड़े गये नागपाश में बँधे हुए अतएव घुंटते श्वास के कारण व्याकुल हुए इन्द्रादि दिक्पाल उस अपनी विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए भगवान् शंकर के पुत्र कार्त्तिकेय के शरण में जा पहुँचे।

दृष्टिप्रपातवशतोऽपि पुरारिसूनो-
स्ते नागपाशघनबन्धविपत्तिदुःखात्।
इन्द्रादयो मुमुचिरे स्वयमस्य देवाः
सेवां व्यधुर्निकटमेत्य महाजिगीषोः ॥७॥

अन्वयः—ते देवाः इन्द्रादयः पुरारिसूनोः दृष्टिप्रपातवशतः अपि नागपाशबन्धविपत्तिदुःखात् मुमुचिरे (अथ) महाजिगीषोः अस्य स्वयम् निकटम् एत्य सेवाम् व्यधुः।

संजी०—दृष्टिरिति ।। त इन्द्रादयो देवाः पुरारिसूनोस्त्रिपुरशत्रुपुत्रस्य दृष्टिर्नेत्रम् । 'स्त्रियां दृष्टिः स्त्रियां बुद्धौ लोचने दर्शनेऽपि च' इति विश्वः । तस्य प्रपातः पतनं तस्य वशतो वशेन प्रभुत्वेन । प्रभावेणेति यावत् । 'वशं मिथ्याप्रभुत्वयोः' इति विश्वः । नागपाशेन घनो दृढो बन्धो बन्धनमेव विपत्तिस्तेन यद्दुःखं ततस्तस्मान्मुमुचिरे मुक्ताः । अथ महाजिगीषोरस्य कुमारस्य स्वयमात्मना न तु परोक्षेण निकटं सांनिध्यमेत्यागत्य सेवां सेवनम् । स्तुतिमिति फलितोऽर्थः । व्यधुश्चक्रुः ।।७।।

हिन्दी—वे इन्द्रादि दिक्पाल कार्त्तिकेय की दृष्टि-प्रसाद प्राप्त करते ही नागपाश के उस कठोर बंधन रूपी विपत्ति से मुक्त हो गये और विजयाभिलाषी उन कुमार के पास पहुँच कर उनकी सेवा में लग गये ।

अथ युग्मेनाह—

उद्दीप्तकोपदहनोऽथ सुरेन्द्रशत्रु-
रह्नाय सारथिमवोचत चण्डबाहुः ।
बद्धा मया सुरपतिप्रमुखाः प्रसह्य
बालस्य धूर्जटिसुतस्य निरीक्षणेन ।।८।।
मुक्ता बभूवुरधुना तदिमान्विहाय
कर्तास्म्यमुं समरभूमिपशूपहारम् ।
तत्स्यन्दनं सपदि वाहय शंभुसूनुं
द्रष्टाऽस्मि दर्पितभुजाबलमाहवाय ।।९।।

अन्वयः—अथ उद्दीप्त कोपदहनः चण्डबाहुः सुरेन्द्रशत्रुः अह्नाय (भो सारथे) मया प्रसह्य बद्धाः सुरपतिप्रमुखाः बालस्य धूर्जटिसुतस्य निरीक्षणेन मुक्ताः बभूवुः तत् अधुना इमान् विहाय आहवाय दर्पित भुजाबलम् अभ्रम् शंभुसूनुम् द्रष्टास्मि (अथ च) समरभूमिपशूपहारम् कर्त्तास्मि तत् सपदि स्यन्दनम् बाह्य इति सारथिम् अवोचत् ।

संजी०—उद्दीप्तेति । मुक्ता इति च ।। अथ नागपाशविमोचनानन्तरम् । उद्दीप्तः प्रदीप्तः कोप एव दहनोऽग्निर्यस्य । तथा चण्डौ प्रचण्डौ बाहू यस्य । एवंभूतः सुरेन्द्रशत्रुस्तारकोऽह्नाय झटिति 'भो सारथे, मया प्रसह्य बलाद्बद्धा नागपाशवशीकृताः सुरपतिप्रमुखा इन्द्रादयो देवा बालस्य शिशोः, न तु यूनः धूर्जटिसुतस्य शिवपुत्रस्य निरीक्षणेन दर्शनमात्रेण, न तु यूनः, धूर्जटिसुतस्य शिव पुत्रस्य निरीक्षणेन दर्शनमात्रेण, न तु प्रत्यस्त्रादि-प्रयत्नेन, मुक्ता बभूवुः । अनेन शिशुनात्मनिरीक्षणेनैव स्वपक्षवर्तिनो देवा मोचिता अतो महाधन्योऽयमिति भावः । तत्तस्मान्मदीयशत्रूणां पक्षवृत्ति-

त्वेन कृतनागपाशमोचनरूपापराधादिमान्पुरोवर्तिन इन्दादिदेवान्विहाय परित्यज्य। आहवाय। मया सहाहवं कर्तुमित्यर्थः। दर्पितमभिमानमूलकं भुजाबलं बाहुवीर्यं यस्य न तु तत्त्वतः, तथाभूतममुं पुरोवर्तिनं शंभुसूनुं द्रष्टास्मि द्रक्ष्यामि। लुट उत्तमैकवचनम्। अथ च समरभूमौ सङ्ग्राम-भुवि ये पशवो गृध्रप्रभृतयस्तेषामुपहारमुपदारूपं कर्तास्मि करिष्यामि। प्रागवलोकितमेनमत्र हत्वा सङ्ग्रामभूमिस्थेभ्यो विहंगेभ्योऽत्तुं विभज्य दास्यामीत्यर्थः। तत्तस्माद्देवकार्यत्वात्सपदि सद्य एव स्यन्दनं रथं वाहय प्रापय। अवश्यकर्तव्ये विलम्बानौचित्यादिति भावः। इति सार्धैकपद्योक्तं सारथिमवोचत जगाद। 'नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः' इत्यमरः ॥८-९॥

हिन्दी—यह देखकर प्रचण्ड क्रोध से तिलमिलाते हुए उस तारकासुर ने तुरन्त ही अपने सारथी से कहा कि मैंने इन्द्रादि प्रमुख देवताओं को बलपूर्वक नागपाश में बाँध लिया था। किन्तु वे इस बालक कुमार कार्त्तिकेय की दृष्टिमात्र से छुटकारा पा गये। इसलिए अब इस समय इन्हें छोड़कर युद्ध की लालसा से गर्वित उस कुमार कार्त्तिकेय को देखना चाहता हूँ, और उसे इस युद्ध में गीदड़ आदि पशुओं को उपहार रूप में समर्पित करना चाहता हूँ। इसलिए मेरा रथ शीघ्रातिशीघ्र उस शिवपुत्र कुमार कार्त्तिकेय के पास ले चलो।

तत्स्यन्दनः सपदि सारथिसंप्रणुन्नः
प्रक्षुब्धवारिधरधीरगभीरघोषः।
चण्डश्चचाल दलिताखिलशत्रुसैन्य-
मांसास्थिशोणितविपङ्कविलुप्तचक्रः ॥१०॥

अन्वयः—प्रक्षुब्धवारिधरधीरगभीरघोषः (तथा) दलिताखिल शत्रुसैन्यमांसा-स्थिशोणितविपङ्कविलुप्तचक्रः चण्डः तत् स्यन्दनः सपदि साराथिक्षणुन्न चचाल।

संजी०—तत्स्यन्दन इति ॥ प्रक्षुब्धः कोपाविष्टः। अनेन प्रलयकालीन इति व्यज्यते,प्रायस्तत्रैव तस्य क्रोधाविष्टत्वदर्शनात्। यो वारिधरो मेघस्तस्य घोष इव धीरो गभीरो घनश्च घोषो यस्य तथोक्तः। तथा दलितं चूर्णीकृतमखिलं समस्तं यच्छत्रुसैन्यं वैरिसैन्यं तस्य मांसमस्थीनि शोणित-विपङ्को रुधिरकर्दमश्चेत्येतैर्विलुप्तानि चक्राणि चरणानि यस्य। अत एव चण्डः प्रचण्डस्तत्स्यन्दनस्तारकरथः सपदि। स्वामिनोऽनुशासनक्षण एव। न तु मुहूर्तमात्रं स्थित्वेति भावः। सारथिना संप्रणुन्नश्चलितुं नोदितः सन् चचाल ॥१०॥

हिन्दी—तदनन्तर प्रलयकालीन बादलों के समान घरघराता हुआ अपने नीचे पड़ने वाले समस्त शत्रु सेनाओं को कुचल देने के कारण उनके माँस-अस्थि-शोणित से परिपूर्ण कीचड़ों में धँसते हुये पहियों वाला उस तारकासुर का भयानक वह रथ सारथि की प्रेरणा पाकर सद्यः वहाँ से चल पड़ा।

दृष्ट्वा रथं प्रलयवातचलद्गिरीन्द्र-
कल्पं दलद्बलविरावविशेषरौद्रम्।
अभ्यागतं सुररिपोः सुरराजसैन्यं
क्षोभं जगाम परमं भयवेपमानम् ॥११॥

अन्वयः—प्रलयवातचलन्द्रगिरीन्द्रकल्पं दलद्वलविरावविशेष रौद्रम् अभ्यागतम् सुररिपोः रथं दृष्ट्वा भयवेंपमानं सुमाजसैन्यम् परमक्षोभं जगाम।

संजी०—दृष्ट्वेति॥ प्रलयवातेन युगान्तकालप्रभञ्जनेन चलतोड्डीयमानेन गिरीन्द्रकल्पं गिरीन्द्रेण हिमालययेनेषन्न्यूनम्। हिमालयौपम्यं धवलवसनवेष्टितत्वात्। 'ईषदसमाप्तौ कल्पम्' इति कल्पप्प्रत्ययः। तथा दलतामुपरि वेगपूर्वकवशाच्चूर्णीभवतां बलानां देवसैन्यानां यो विरावो हाहा हाहेति रुदितं तेन कृत्वा विशेषरौद्रमतिशयभयानकम्। आत्मीयघोराररौद्रत्वाश्रयीभूतत्वेऽप्यतिजवप्रपतनचूर्णीकृतसकलसुरसैन्यविहितमहाघोरविरावधारणाजनितरौद्रत्वाधारणानुकूलव्यापाराश्रयीभूतमित्यर्थः। तथाभ्यागतं संमुखमागतं सुररिपोस्तारकस्य रथं दृष्ट्वा भयेन वेपमानं कम्पमानं सुरराजस्य महेन्द्रस्य सैन्यं सेनाजनसमूहः कर्तृ। परममतुलं क्षोभं व्यथां जगाम प्राप। तदीयरथावलोकनादेव क्षोभप्राप्तिः, किं पुनस्तदीयाकृतिविलोकनादिभि भावः॥११॥

हिन्दी—प्रलयकालीन आँधी में उड़ते हुये पर्वत के समान तथा चूर्ण हुये देवसैनिकों के चीत्कार से अत्यन्त भीषण प्रतीत होने वाले तारकासुर के उस रथ को अपने समीप आया देख देवताओं की सेना भय से काँपती हुई अत्यन्त व्यग्र हो उठी।

प्रक्षुभ्यमाणमवलोक्य दिगीशसैन्यं
शंभोः सुतं कलहकेलिकुतूहलोत्कम्।
उद्दामदोःकलितकार्मुकदण्डचण्डः
प्रोवाच वाचमुपगम्य स कार्तिकेयम् ॥१२॥

अन्वयः—सः दिशीशसैन्यम् प्रक्षुभ्यमाणम् अवलोक्य उद्दामदोः कलितकार्मुकदण्डचण्डः कलहकेलिकुतूहलोत्कम् शंभोः सुतं कार्त्तिकेयम् उपगम्य वाचम् प्रोवाच।

संजी०—प्रक्षुभ्यमाणमिति ॥ स तारको दिगीशसैन्यं देवसैन्यं प्रकर्षेण क्षुभ्यमाणं क्षोभं प्राप्नुवत्। बिभ्यदिति यावत्। क्षुभ्यतेर्दैवादिकत्वं तदाकृतिगणत्वाद्बोध्यम्। तथाभूतमवलोक्य दृष्ट्वोद्दामयोरुद्भटयोर्दोष्णोर्बाह्वोः कलितेन निहितेन कार्मुकरूपदण्डेन चण्डः सन्। कलहः सङ्ग्रामरूपो विग्रहः स एव केलिः, न तु प्रयत्नसाध्यं कर्म, तत्र यत्कुतूहलं तत्रोत्कम्। तदभिलाषुकमित्यर्थः। तथा शंभोः शिवस्य सुतं पुत्रम्। अनेन तारकवीररसस्यानुभाव उक्तः। कार्तिकेयं कुमारमुपगम्य समीपं गत्वा वाचं प्रोवाचावोचत् ॥१२॥

हिन्दी—इस प्रकार लोकपालों की सेना को घबड़ाई हुई अवस्था में देखकर अपने बलशाली भुजाओं में धनुष धारण किये हुये वह तारकासुर युद्धक्रीड़ा के कुतूहल को देखने के लिये उत्साह में भरे शिवपुत्र कार्त्तिकेय के पास पहुँच कर कहने लगा।

इतः परम् 'रे' इत्यादिभिस्त्रिभिः श्लोकैर्वाचमेव प्रपञ्चयति—

रे शंभुतापसशिशो बत मुञ्च मुञ्च
दोर्दर्पमत्र विरम त्रिदिवेन्द्रकार्यात्।
शस्त्रैः किमत्र भवतोऽनुचितैरतीव
बालत्वकोमलभुजातुलभारभूतैः ॥१३॥

अन्वयः—रे शंभुतापसाशिशो अत्र विषये दोर्दर्पम् मुञ्च मुञ्च (अथ च) त्रिदिवेन्द्रकार्यात् विरम। अतीवबालत्वकोमलभुजातुलभारभूतैः अत्र भवतः अनुचितैः शस्त्रैः किम्।

संजी०—तत्र रे इति ॥ रे इति नीचोक्तिसंबोधने। भोः शंभुतापसशिशो शंभुः शिवः स एव तापसस्तपस्वी। अनेन महाकृपणत्वं व्यज्यते। तस्य शिशो कौमारावस्थानुभवरसिक, अत्र मयि विषये। विधीयमानमिति शेषः। दोर्दर्पं भुजदण्डवीर्यहेतुकमभिमानम्। 'दर्पोऽहंकारकस्तूर्योः' इति विश्वः। मुञ्च मुञ्च। सर्वथैव मुञ्चेत्यर्थः। अथ च त्रिदिवेन्द्रकार्यान्मदीयवधरूपमहेन्द्रविधेयाद्विरम। अनुद्युक्तो भवेत्यर्थः। 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति परस्मैपदम्। नन्वनेकसाधनकर्माश्रयीभूतत्वेन त्वदीयवधं चिकीर्षुरहं कथं विरमामीत्याशङ्क्य न हि तव साधनानि मयि विषये परिपक्रिमाणि भविष्यन्तीत्याह—अतीव बालस्य भवतः संबन्धिनोः कोमलभुजयोर्बालत्वादतिशयपेलवबाह्वोरतुलं बहुभारभूतैः। दुर्वहैरित्यर्थः। अत एवात्र मय्यनुचितैरयोग्यैः शस्त्रैः कृपाणप्रभृतिभिः किम्। अपि तु न किमपीति भावः ॥१३॥

हिन्दी—अरे तपस्वी शंकर के बच्चे, इस युद्ध के विषय में अपनी भुजाओं के बल का अभिमान छोड़ दे इतना ही तू इन्द्र के इस कार्य से भी अलग हो जा। देख, इस बाल्यावस्था के कारण तुम्हारे कोमल हाथों में अत्यन्त बोझीले ये शस्त्र अनुचित जान पड़ते हैं।

एवं त्वमेव तनयोऽसि गिरीशगौर्योः
किं यासि कालविषयं विषमैः शरैर्मे।
सङ्ग्रामतोऽपसर जीव पितुर्जनन्या-
स्तूर्णं प्रविश्य वरमङ्कतलं विधेहि ॥१४॥

अन्वयः—रे शिशो एवम् विषमैः मे शरैः कालविषयम् किम् यासि (यतः) गिरीशगौर्योः त्वम् एव तनयः असि (रे शिशो) संग्रामतः अपसर जीव पितुः (तथा) जनन्याः अङ्कतलम् तूर्णं प्रविश्य वरम् विधेहि।

संजी०—एवमिति ॥ रे शिशो, एवं नाम मद्विषयको यो दोर्दर्पस्तस्याङ्गीकारे रसिकः। त्वमिति शेषः। 'एवं प्रकारोपमयोरङ्गीकारावधारणे' इति विश्वः। विषमैर्दुःसहैर्मे मम शरैर्बाणैः कृत्वा कालविषयं दण्डधरदेशं संयमिनीं पुरीमित्यर्थः। किं किमर्थं यासि प्राप्नोषि। 'नीवृज्जनपदो देशविषयौ तूपवर्तनम्' इत्यमरः। ननु कालविषयप्राप्तौ कैव नः खलु वीराणां हानिरित्याशङ्क्याह—यतो गिरीशगौर्योः शिवपार्वत्योः। अत्र गिरीशस्याभ्यर्हितत्वाद्बह्वचोऽपि पूर्वनिपातः। त्वमेव तनयोऽसि पुत्रोसि। अतिकृच्छ्रलब्धैकपुत्रस्य वृद्धस्य तनयकर्मककालविषयप्राप्तिरतिदुःखावहा भवतीति भावः। एतेन मया सह भवता न कदापि योद्धव्यमिति व्यज्यते। तर्हि किं कर्तव्यं मयेत्यत्राह—सङ्ग्रामत इति ॥ रे शिशो, सङ्ग्रामतः समरसकाशादपसर पलायस्व। मदग्रे मा तिष्ठेत्यर्थः। अत एव जीव प्राणान्धरस्व। इतः पलायनमेव तव परमं जीवातुरिति भावः। ननु पलायनपूर्वकजीवनेन कः पुरुषार्थो भविष्यतीत्यत आह—पितुरिति ॥ पितुर्जनकस्य। तथा जनन्या मातुश्च। अङ्कतलमुत्सङ्गतलं तूर्णं शीघ्रं प्रविश्योपविश्य वरं श्रेष्ठम्। कृतार्थमिति यावत्। विधेहि कुरु। पुत्रस्यायमेव परमो धर्मः, यन्मातापित्रोर्येन केनापि सद्व्यापारेण चित्तस्य परितोषकृत्याश्रयो भवति। कथं सङ्ग्रामतः पलायनं सद्व्यापारपदवाच्यमित्यस्याः शङ्कायाः पूर्वश्लोके तापसपदेन निवर्तितत्वात् ॥१४॥

हिन्दी—अरे बालक! इस प्रकार मेरे तीक्ष्ण बाणों से आहत होकर काल के गाल में क्यों जाना चाहते हो? क्योंकि शंकर तथा पार्वती के तुम्हीं एकमात्र

बालक हो। अच्छा यही है कि तुम इस रणप्राङ्गण से भाग जाओ और अपने जीवन की रक्षा करो। जाओ,अपने माता तथा पिता की गोद में शीघ्रतापूर्वक बैठो और अपना कल्याण करो।

इदानीं हितोपदेशनव्याजेन पलायनविधिमुपदिशति—

सम्यक्स्वयं किल विमृश्य गिरीशपुत्र
जम्भद्विषोऽस्य जहिहि प्रतिपक्षमाशु।
एष स्वयं पयसि मज्जति दुर्विगाह्ये
पाषाणनौरिव निमज्जयते पुरा त्वाम् ॥१५॥

अन्वयः—(भो) गिरीशपुत्र! त्वम् सम्यक् (यथा स्यात्तथा) विमृश्य अस्य जम्भद्विषः प्रतिपक्षं माम् स्वयं किल आशु जहिहि (रे शिशो) एषः पुरा दुर्विगाह्ये पयसि पाषाणनौः इव स्वयम् मज्जति त्वाम् च निमज्जते।

संजी०—सम्यगिति ॥ भो गिरीशपुत्र शिवपुत्र, त्वं सम्यक्साधु यथा स्यात्तथा विमृश्य विचार्य। साधुविचारणमत्रोदर्कविचारणम्। तत्कृत्वास्य पुरोवर्तिनो जम्भद्विष इन्द्रस्य प्रतिपक्षं मां स्वयं किलात्मनैव, न तु परीक्षेण। प्रयोज्यकर्त्रेति यावत्। आशु सत्वरं जहिहि नाशय। साधु विचार्यैव मदीयहननकृत्याश्रयो भव। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणते हि विमृश्य कारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥' इति न्यायादितिभावः। प्रस्तुतेऽविमृश्य करणेन कैव विपत्तिरित्याशङ्क्याह—एष इति ॥ रे शिशो, एष जम्भद्विट् पुराग्रे दुःखेन कृच्छ्रेण विगाह्य उत्तार्ये पयसि नीरे। मदीयनाराचवर्षणरूप इत्यर्थः। पाषाणनौरिव प्रस्तरतरिरिव स्वयं मज्जति मङ्क्ष्यति। त्वां च निमज्जयते। निमज्जयिष्यत इत्यर्थः। 'यावत्पुरा–' इति भविष्यदर्थे लट्। यथा पाषाणघटितनौका पयःपतिता मज्जति, आत्मोपर्यारूढांश्च निमज्जयति, तथायमिन्द्रोऽपि मदीयघोरनाराचनिचयरूपजलेनावृतः सन्मरिष्यति। स्वात्माश्रयीभूतं त्वामपि तत्र पातयित्वा मारयिष्यतीति वाच्यार्थः। अत आत्मजीवनाभिलाषुकत्वपक्ष एतदाश्रयीभूतत्वं विहाय वृद्धयोर्मातापित्रोः समीपमेव गन्तव्यम्। तेनेहामुत्र च महान्ति श्रेयांसि भविष्यन्तीति व्यङ्ग्यार्थः। तेनात्रलंकारेण वस्तुध्वनिः ॥१५॥

हिन्दी—अथवा हे शिवपुत्र, तुम भलीभाँति विचार कर इस इन्द्र के प्रतिपक्षी शत्रु मेरा विनाश करो। किन्तु यदि अविचारित काम करोगे तो यह इन्द्र पहले इस दुर्विगाह्य समुद्ररूप रणस्थल में पत्थर के नाव पर अपने आप डूबेगा और उसका

आश्रय ग्रहण करने के कारण तुम्हें भी डुबो देगा। इसलिये अच्छा यही है कि तुम जाओ, माता-पिता की गोद में बैठो और अपने जीवन की रक्षा करो।

इत्थं निशम्य वचनं युधि तारकस्य
कम्प्राधरो विकचकोकनदारुणाक्षः।
क्षोभात् त्रिलोचनसुतो धनुरीक्षमाणः
प्रोवाच वाचमुचितां परिमृश्य शक्तिम् ॥१६॥

अन्वयः—युधि तारकस्य वचनं निशम्य क्षोभात् कम्प्राधरः विकचकोकनदारुणाक्षः त्रिलोचनसुतः शक्ति परिमृश्य धनुः ईक्षमाणः सन् उचिताम् वाचं प्रोवाच।

संजी—इत्थमिति ॥ युधि सङ्ग्रामे स्थितस्य तारकस्य संबन्धीत्थमेवंभूतं वचनं निशम्य श्रुत्वा क्षोभात्क्रोधाद्धेतोः कम्प्रः कम्पनशीलोऽधरोऽधरोष्ठो यस्य। क्रोधवशादधरविस्फुरणं लोकप्रसिद्धमेव। तथा विकचकोकनदवद्विलसद्रक्तोत्पलवदरुणे शोणिते अक्षिणी नेत्रे यस्य। क्रोधवशादरुणनेत्रत्वमपि प्रसिद्धमेव। एवंभूतस्त्रिलोचनसुतः कुमारः शक्तिमात्मीयवीर्यवैभवं परिमृश्य तुलयित्वा। मदीयवीर्यापेक्षया किमेतदीयवीर्यमित्यनादरपूर्वकमात्मीयशक्तेराधिक्यं परामृश्येत्यर्थः। धनुरीक्षमाणः पश्यन्सन्। अनेन त्वां क्षणादेव निहन्मि, सावधानो भव, मदीयैतद्धनुरग्रे कुतो यास्यसीति व्यज्यते। तेन वस्तुना वस्तुध्वनिः। उचितां योग्यां वाचं वचनं प्रोवाच प्रोचे ॥१६॥

हिन्दी—युद्धभूमि में तारकासुर की ऐसी बातें सुनकर क्षोभ से काँपते होंठो वाले तथा क्रोध से लाल-लाल नेत्रों वाले कार्तिकेय जी ने अपनी शक्ति का विचार कर धनुष की ओर देखते हुये उचित बात कहना प्रारम्भ किया।

दैत्याधिराज भवता यदवादि गर्वा-
त्तत्सर्वमप्युचितमेव तवैव किं नु।
द्रष्टास्मि ते प्रवरबाहुबलं वरिष्ठं
शस्त्रं गृहाण कुरु कार्मुकमाततज्यम् ॥१७॥

अन्वयः—(भो) दैत्याधिराज ! भवता गर्वात् यद् अवादि तत् सर्वम् अपि तव उचितमेव किन्तु वरिष्ठम् ते प्रवरबाहुबलम् द्रष्टाऽस्मि। अतः शस्त्रं गृहाण कार्मुकम् आततज्यं कुरु।

संजी दैत्येति ॥ भो दैत्यानामधिराज तारकसंज्ञक महाराज, भवता त्वया गर्वाद्धेतोर्यदवादि रे शंभुतापस–' (१३) इत्यादिना यदुक्तं तत्सर्वमपि तवोचितमेव योग्यमेव। अभिमानिनो महाराजस्य तव बालत्वाद्-

राकीभूतमदवज्ञा योग्यैव । ननु मदुक्त्यौचित्याज्ञानवतस्तव कथमयं सङ्ग्राम-करणसमारम्भ इति चेत्तत्राह—किं त्विति । किं तु वरिष्ठमतिशयश्रेष्ठं ते त्वत्संबन्धि प्रवरौ प्रकृष्टश्रेष्ठौ यौ बाहू भुजौ तयोर्बलं वीर्यमेव द्रष्टास्मि द्रक्ष्यामि । त्वदीयपराजयं कृत्वा मदीयो विजयः स्यादित्यभिलाषे न मम तात्पर्यम्, किं तु लोकारोप्यमाणवीरताश्रयीभूतेन मया त्वदीयवीरताव-लोकनमेव युद्धकरणे तात्पर्यम् । वस्तुतस्तु मयि वीरत्वासंभवात्त्वया सह युद्धकरणानौचित्येऽपि तत्र प्रवृत्तिः केवलं बालत्वजनितबालिशत्वमेवोद्भाव-यति । अतोऽपि भवता क्षन्तव्यम् । 'जनक इव शिशुत्वेऽसुप्रियस्यैकसूनोर-विनयमपि सेहे पाण्डवस्य स्मरारिः' इत्यादिन्यायादिति भावः । अतो युद्ध-करणपक्षे शस्त्रं कृपाणादिकं गृहाणादत्स्व । कार्मुकं धनुराततज्यं विस्तृत-मौर्वीकं कुरु । युद्धार्थं शस्त्रसंधानेन सज्जो भवेति वाच्यार्थः ।।१७।।

हिन्दी—हे दैत्यराज ! आप ने अभिमान के साथ जो कुछ भी कहा, वह सब आप के लिये उचित ही था । किन्तु हे वीरश्रेष्ठ ! मैं आप के उत्कृष्ट बाहुबल को देखना चाहता हूँ । अतः आप अपना शस्त्र ग्रहण कीजिये और अपने धनुष की डोरी चढ़ाइये ।

इत्युक्तवन्तमवदत्त्रिपुरारिपुत्रं
दैत्यः क्रुधौष्ठमधरं किल निर्विभिद्य ।
युद्धार्थमुद्भटभुजाबलदर्पितोऽसि
बाणान्सहस्व मम सादितशत्रुपृष्ठान् ।।१८।।

अन्वयः—इति उक्तवन्तं त्रिपुरारिपुत्रं दैत्यः क्रुधा अधरम् ओष्ठं विनिर्भिद्य (रे बाल !) सादितशत्रुपृष्ठान् मम बाणान् सहस्व (यतः त्वम्) युद्धार्थम् उद्भट-भुजबलदर्पितः असि (इति) अवदत् ।

संजी०—इतीति ।। इत्युक्तवन्तं निगदितवन्तं त्रिपुरारिपुत्रं कुमारं कर्म । दैत्यस्तारकः क्रुधा निमित्तेनाधरं नीचैरोष्ठम् । अधरोष्ठमित्यर्थः । निर्वि-भिद्य दन्तैश्चर्वयित्वा रे बाल, सादितं विभिन्नं शत्रुपृष्ठं यैर्नतु मुखम् । मदीयबाणानां तदुद्देशेनाभिगच्छतां प्रहृतिसहनासमर्थतया पलायमानत्वात् । एवंभूतान्मम बाणान्सहस्व । अपि तु त्वया न सहिष्यन्त इति ध्वन्यते । ननु बालत्वात्कथमहं सहे इत्याह—यतस्त्वं युद्धार्थं युद्धकरणायोद्भटे विपरीत-लक्षणयानुद्भटे ये भुजे बाहू तयोर्बलं वीर्यं तेन दर्पितोऽसि संजातगर्वोऽसि । विपरीतलक्षणापन्नभुजानुद्भटत्वमेव न सहिष्यन्त इति व्यङ्ग्ये हेतुः । अतो मया सह कथंचिदपि त्वया न योद्धव्यमिति फलितोऽर्थः । 'द्वौ परौ द्वयोः । भुजबाहू' इत्यमरः ।।१८।।

हिन्दी—इस प्रकार की बात सुनकर वह दैत्यराज क्रोध से अपने अधरोष्ठ को (दाँतों से) काटते हुये कार्त्तिकेय से कहने लगा, अरे बालक ! शत्रुओं की पीठ में घाव कर देने वाले अब मेरे बाणों को सहन करो। क्योंकि तुम्हें युद्ध करने के लिये अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बलपर बड़ा अभिमान हैं।

दुःप्रेक्षणीयमरिभिर्धनुराततज्यं
सद्यो विधाय विषमान्विशिखान्न्यधत्त ।
स क्रोधभीमभुजगेन्द्रनिभं स्वचापं
चण्डं प्रपञ्चयति जैत्रशरैः कुमारे ॥१९॥

अन्वयः—सः कुमारे क्रोधभीमभुजगेन्द्रनिभम् चण्डं स्वचापम् जैत्रशरैः प्रपञ्चयति अरिभिः दुःप्रेक्षणीयम् धनुः सद्यः आततज्यं विधाय विषमान् विशिखान् न्यधत्त ।

संजी०—दुरिति ॥ स तारकः कुमारे क्रोधेन भीमो यो भुजगेन्द्रस्तेन निभं सदृशम् । अत एव चण्डं प्रचण्डं स्वचापमात्मधनुर्जैत्रशरैर्जयसाधनबाणैः प्रपञ्चयति संदधति सति । अरिभिर्वैरिभिर्दुःप्रेक्षणीयं दुरवलोकनीयं धनुः सद्यः सपद्याततज्यं विस्तृतप्रत्यञ्चं विधाय कृत्वा विषमानतितीक्ष्णान्विशिखान्बाणान्न्यधत्त निदधे । कुमारं सज्जमवलोक्य स्वयमपि तथाभूदिति भावः ॥१९॥

हिन्दी—जिस समय कुमार क्रुद्ध भयङ्कर महासर्प के समान अपने प्रचण्ड धनुष पर विजयशील बाण चढ़ा रहे थे उसी समय तारकासुर ने भी शत्रुओं से दुर्द्धर्ष अपने धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तीक्ष्ण बाण चढ़ा लिया।

कर्णान्तमेत्य दितिजेन विकृष्यमाणं
कोदण्डमेतदभितः सुषुवे शरौघान् ।
व्योमाङ्गणे लिपिकरान्किरणप्ररोहैः
सान्द्रैरशेषककुभां पलितंकरिष्णून् ॥२०॥

अन्वयः—दितिजेन कर्णान्तम् एत्य विकृष्यमाणम् एतत् कोदण्डम् सान्द्रैः किरणप्ररोहैः व्योमाङ्गणे लिपिकरान् (तथा) अशेषककुभाम् पलितं करिष्णून् (एवभूतान्) शरौघान् अभितः सुषुवे ।

संजी०—कर्णान्तमिति ॥ दितिजेन तारकेण कर्णान्तं श्रवणप्रान्तमेत्य प्रापय्य । अन्तर्भावितणिजर्थः । आकर्णान्तमित्यर्थः । विकृष्यमाणं विस्तार्यमाणमेतत्कोदण्डं धनुः सान्द्रैः सघनैः किरणप्ररोहैर्मयूखाङ्कुरैः कृत्वा व्योमाङ्गण आकाशचत्वरे लिपिकराँल्लेपनकर्तॄन् । तथा अशेषककुभां समस्तदिशां संबन्धि पलितंकरिष्णूञ्जराजनितशौक्ल्यं कर्तुं शीलं येषाम् ।

'अलंकृञ्-' इत्यादिनेष्णुच् । एवंभूताञ्शरौघान्बाणसंघानभितः सर्वतः सुषुवे प्रासूत । कुमारोद्देशेन तारकनिःक्षिप्तविशिखसमूहैर्व्योम दिशश्च व्याप्ता बभूवुरित्यर्थः । अनेन वाच्यार्थेन मदीय विशिखनिचयव्याप्यमानोऽयं बाल इतिकर्तव्यताहीनः सन्नन्तरेव निरुद्धश्वासतया प्रयत्नमन्तरैव मरिष्यति किं पुनरायोधनप्रयत्नेनेति व्यङ्ग्यार्थस्य प्रतीयमानत्वादगम्योत्प्रेक्षोत्थापित-तद्‌गुणालंकारेण वस्तुध्वनिः ॥२०॥

हिन्दी—तारकासुर अपने धनुष को कान तक खींचकर आकाश रूपी आँगन में घने किरण रूपी अङ्कुरों से भर देने वाले तथा सभी दिशाओं को अपने प्रकाश से उजला बना देने वाले बाणों को छोड़ने लगा ।

बाणैः सुरारिधनुषः प्रसृतैरनन्तै-
र्निर्घोषभीषितभटो लसदंशुजालैः ।
अन्धीकृताखिलसुरेश्वरसैन्य ईश-
सूनुः कुतोऽपि विषयं न जगाम दृष्टेः २१॥

अन्वयः—सुरारिधनुषः प्रसृतैः अनन्तैः लसदंशुजालैः वाणैः अन्धीकृताखिल-सुरेश्वरसैन्यः निर्घोषभीषितभटः ईशसूनुः कुतः अपि दृष्टेः विषयम् न जगाम ।

संजी०—बाणैरिति ॥ सुरारेस्तारकस्य धनुषः कार्मुकसकाशात्प्रसृतैः निःसृतैरिति फलितोऽर्थः । तथानन्तैरपारैः । असंख्यैरिति यावत् । लसद्दीप्य-दंशुजालं किरणजालं येषाम् । अनेन सोल्का बाणा निःक्षिप्ता इति व्यज्यते । तथाभूतैर्बाणैः कर्तृभिः । अन्धीकृतं सर्वत आच्छादितत्वात्प्रति-रुद्धविलोचनीकृतसकलजनम् । अखिलं सर्वं यत्सुरेश्वरसैन्यमिन्द्रसैन्यं तत्र मध्ये । 'यतश्च निर्धारणम्' इति सप्तमी । निर्घोषेण निर्ह्रादेन भीषिता भयं प्रापिता भटा योधास्तारकपक्षवर्तिनो येन । एवंभूत ईशसूनुः कुमारः कुतोऽपि कुत्रापि । सप्तम्यर्थे तसिः । दृष्टेर्विषयं गोचरं न जगाम । तारकपरिक्षिप्तशितशरगणैः सर्वत आच्छादितत्वात्कुत्रासौ कुमारो गत इति चिन्तयतां सैनिकानां दृगिन्द्रियग्रहणविषयतासंबन्धावच्छिन्नकोटि-गणनाबहिर्भूतोऽभूदिति भावः । 'विषयो गोचरे देशे' इति मेदिनी ॥२१॥

हिन्दी—देवताओं के शत्रु तारकासुर के धनुष से छूटे हुये असंख्य चमचमाते हुये बाणों ने इन्द्र की सारी सेना को अन्धा बना दिया । इतनी ही नहीं, उन बाणों के फुफुकार से बड़े-बड़े उद्भट भट भयभीत हो उठे । यहाँ तक कि कुछ देर के लिये कुमार कार्त्तिकेय को भी कुछ नहीं दिखाई पड़ा ।

अन्वयः—जिष्णुः जगद्विजयदुर्ललितः (तथा) कोपकलुषः असुरः विकटम् विहस्य (तथा) कुमारे वरशस्त्रयुधम् व्यर्थाम् समर्थ्य सहेलम् वायव्यम् अस्त्रं अह्नाय धनुषि न्यधत्त ।

संजी०—अह्नायेति ॥ जिष्णुर्जयनशीलः, अत एव जगतां विजयेन दुर्ललित उद्धटः । तथा कोपेन क्रोधेन निमित्तेन कलुषोऽनच्छः । आविल इति यावत् । 'कलुषोऽनच्छ आविलः' इत्यमरः । असुरस्तारको विकटं करालं यथा स्यात्तथा विहस्य । इदानीं त्वां जेष्यामीति कुतो गमिष्यसीति विकटहासेन व्यज्यते । तथा कुमारे विषये वरैः श्रेष्ठैः शस्त्रैः कृत्वा युधं युद्धम् । 'समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः । व्यर्थां फलराहित्येन निरर्थकां समर्थ्य सिद्धान्तयित्वा । निश्चित्येति यावत् । सहेलं सानादरम् । अयं मायोचितो नास्ति व्यर्थमेवात्र मायायुद्धमित्यवहेलना-सहितं यथा स्यात्तथा । वायव्यं वायुदेवताकमस्त्रमह्नाय झटिति धनुषि न्यधत्त निदधे ॥२५॥

हिन्दी—विजयशील एवम् सारे जगत् के विजय से अहङ्कार में भरे हुये कोप से कलुष उस तारकासुर ने कुमार के साथ अन्यान्य श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रों से युद्ध करना व्यर्थ समझकर तथा माया युद्ध को भी तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हुये शीघ्र ही अपने धनुष पर वायव्य अस्त्र का अनुसन्धान किया ।

संधानमात्रमपि यस्य युगान्तकाल-
भूतभ्रमं पुरुषभीषणघोरघोषः ।
उद्धूतधूलिपटलैः पिहिताम्बराशः
प्रच्छन्नचण्डकिरणो व्यसरत्समीरः ॥२६॥

अन्वयः—यस्य संधानमात्रमपि युगान्तकालभूतभ्रमम्, परुष भीषणघोरघोषः उद्धूत धूलिपटलैः पिहिताम्बराशः प्रच्छन्न चण्डकिरणः समीरः व्यसरत् ।

संजी०—संधानमिति ॥ यस्य वायव्यास्त्रस्य संधानमात्रमपि कोदण्डे प्रक्षेपणार्थमारोपणमात्रमपि युगान्तकाल इव भूतानां प्राणिनां भ्रमो भ्रान्ति-रोगो येन तथाभूतम् । यस्य संधानमात्रेणैव भूतानां भ्रान्तिरोग उत्पद्यते, किं पुनस्तस्य प्रक्षेपणेन वाच्यम् । तस्य प्रक्षेपणेनेति शेषः । परुषः कठोरो भीषणो भयदायी घोरो महान् । परुषेण भयदत्वं दीर्घत्वेन भयदत्वं चेत्युभय-विधस्य भयदायित्वस्य विवक्षितत्वान्न पौनरुक्त्यम् । तथाविधो घोष आरवो यस्य । तथोद्धूतान्युपर्युत्पातितानि यानि धूलिपटलानि रजोमण्डलानि तैः कृत्वा पिहिता आच्छादिता अम्बरं व्योम दिशश्च येन । तथा प्रच्छन्नः

विहितश्चण्डकिरणो रविर्येन तथाभूतः। एवंभूतश्च समीरो वायुर्व्यसरत्प्रससार। प्रचचालेति यावत् ॥२६॥

हिन्दी—उस वायव्य अस्त्र के धनुष पर अनुसंधान करते ही अत्यन्त कठोर तथा भीषण ध्वनि करती हुई एक ऐसी प्रचण्ड आँधी चारों ओर फैलने लगी कि लोगों को उसी समय प्रलय काल होने का भ्रम होने लगा। उससे उठी हुई धूलि के कणों से आकाश तथा दिशायें तमसाछन्न हो गईं। किबहुना प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी छिप गया।

कुन्दोज्ज्वलानि सकलातपवारणानि
धूतानि तेन मरुता सुरसैनिकानाम्।
उड्डीयमानकलहंसकुलोपमानि
मेघाभधूलिमलिने नभसि प्रसस्रुः ॥२७॥

अन्वयः—कुन्दोज्ज्वलानि तेन मरुता धूतानि उड्डीयमान कलहंसकुलोपमानि सुरसैनिकानाम् सकलातपवारणानि मेघाभधूलिमलिने: नभसि प्रसस्रुः।

संजी०—कुन्दोज्ज्वलानीति ॥ कुन्दपुष्पवदुज्ज्वलानि विमलानि। श्वेतानीति फलितोऽर्थः। तथा तेन वायव्यास्त्रप्रभूतेन मरुता धूतानि कम्पितानि। उपर्युड्डीयितानीति यावत्। अत एवोड्डीयमाना उत्पतन्तो ये कलहंसा राजहंसास्तेषां कुलेन समुदायेनोपमा सादृश्यं येषाम्। उत्पतत्कलहंससदृशानीत्यर्थः। सुरसैनिकानां देवरूपसेनालोकानां सकलातपवारणानि समस्तानि छत्त्राणि मेघाभा वर्षाकालीनपयोदसदृशभासो या धूलयः सेनोत्पतितरजांसि ताभिर्मलिने मेचके नभसि प्रसस्रुः। प्रभञ्जनवेगोड्डीयितानि विशदवर्मवारणान्युत्पतत्कलहंसकुलानीव रेजुरित्यर्थः ॥२७॥

हिन्दी—कुन्द के समान उज्ज्वल उस वायु से प्रकम्पित अतएव उड़ते हुये कलहंस के समान स्वच्छ प्रतीत होने वाले उन संपूर्ण देवसेनाओं के छत्र मेघ के समान मलिन धूलि भरे आकाश में उड़ते दिखाई देने लगे।

विध्वस्य तेन सुरसैन्यमहापताका
नीता नभस्थलमलं नवमल्लिकाभाः।
स्वर्गापगाजलमहौघसहस्रलीलां
व्यातेनिरे दिवि सिताम्बरकैतवेन ॥२८॥

अन्वयः—प्रचण्ड तेन अलम् विध्वस्य नभःस्थलम् नीताः नवमल्लिकाभाः सुरसैन्यमहापताकाः सिताम्बरकैतवेन स्वर्गापगाजल महौघसहस्रलीलाम् दिवि व्यातेनिरे।

संजी०--विध्वस्येति ॥ तेन प्रभञ्जनेन कर्त्राऽलं विध्वस्य भञ्जयित्वा नभःस्थलमाकाशतलं नीताः प्रापिताः। तथा नवमल्लिकाभा नूतनविदलन्मल्लिकाकुसुमसदृशभासः सुरसैन्यस्य महान्त्यः पताकाः सिताम्बरकैतवेन श्वेतवस्त्रव्याजेन स्वर्गापगाया जलस्य महतामोघानां पूराणां सहस्रस्य लीलां शोभां व्यातेनिरे वितस्तरिरे। उत्पतन्त्यो व्योमनि स्थिताः श्वेताः पताका अतिविदूरदोषेण अलघवोऽपि लघव इव प्रतीयमाना नभोगतगगनवाहिनीनिर्झरा इव रेजुरिति भावः। अत्र कैतवापह्नुतिनिदर्शनालंकारयोः संसृष्टिः ॥२८॥

हिन्दी--उस प्रचण्ड वायु के द्वारा सर्वथा भग्न होकर आकाशमण्डल में उड़नेवाली नवमल्लिका के समान स्वच्छ सुरसैनिकों की अनेक पताकायें बहुत बड़ी होने पर भी दूर से छोटी दिखाई पड़ने के कारण सहस्रों भागों में प्रविभक्त होकर प्रवाहित होने वाली आकाशगङ्गा की निर्झरिणी जैसी प्रतीत होने लगीं।

धूतानि तेन सुरसैन्यमहागजानां
सद्यः शतानि विधुराणि दलत्कुथानि।
पेतुः क्षितौ कुपितवासववज्रलून-
पक्षस्य भूधरकुलस्य तुलां वहन्ति ॥२९॥

अन्वयः--तेन धूतानि विधुराणि दलत्कुथानि कुपितवासववज्रलूनपक्षस्य भूधरकुलस्य तुलाम् वहन्ति सुरसैन्य महागजानाम् शतानि सद्यः क्षितौ पेतुः।

संजी०--धूतानीति ॥ तेन वायुना धूतानि कम्पितानि। नभसि भ्रामितानीति यावत्। अत एव विधुराणि पीडितानि। तथा दलन्तः 'चरड् चरड्' इति स्फुटन्तः कुथाः कम्बला येषाम्। 'कुथः स्त्रीपुंसयोर्वर्णकम्बले पुंसि बर्हिषि' इति मेदिनी। अत एव कुपितस्य वासवस्य वज्रेण पविना लूनपक्षस्य छिन्नपत्त्रस्य भूधरकुलस्य पर्वतसमूहस्य तुलां साम्यं वहन्ति दधति। सुरसैन्यमहागजानां देवसैन्यबृहद्दन्तिनां शतानि शतसंख्याककुलानि क्षितौ भुवि पेतुः पतितवन्ति ॥२९॥

हिन्दी--उस प्रचण्ड आँधी के द्वारा उड़ाये गये एवम् सर्वथा अस्त-व्यस्त हाथियों के सैकड़ों झूल तत्काल ही पृथ्वी पर गिरते हुये ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों क्रुद्ध हुये इन्द्र के वज्र से कटे हुये पहाड़ों के सहस्रों पङ्ख पृथ्वी पर गिर पड़े हों।

त्रास्ताः खरेण मरुता रथराजयोऽपि
दोधूयमाननिपतिष्णुतुरंगमाश्च।
विस्रस्तसारथिकुलप्रवराः समन्ता-
द्व्यावृत्य पेतुरवनौ सुरवाहिनीनाम् ॥३०॥

अन्वयः—ततस्ताः सुरवाहिनीनाम् रथराजयः अपि स्वरेण मरुता दोधूयमानानि पतिष्णुतुरङ्गमाः च विस्रस्तसारथिकुलप्रवराः समन्ताद् व्यावृत्य अवनौ पेतुः ।

संजी०—ता इति ।। तास्ताः सुरवाहिनीनां देवसेनानां रथराजयोऽपि स्यन्दनपङ्क्तयोऽपि खरेण तीक्ष्णेन मरुता वायुना दोधूयमानाः पुनःपुनरतिशयेन वा कम्प्यमाना अत एव निपतिष्णवः पतनशीलास्तुरंगमा अश्वा यासाम् । तथा विस्रस्ता अधःपतिताः सारथय एव कुलप्रवराः कुलश्रेष्ठाः । कुलीना इति यावत् । यासाम् । तथाभूताः सन्त्यो नभसि समन्ताद्व्यावृत्य परिभ्रम्यावनौ पेतुः ।।३०।।

हिन्दी—तदनन्तर उस प्रचण्ड आँधी के कारण देवसेना की रथों की पङ्क्तियाँ भी तीक्ष्ण वायु से हिलने लगी जिससे उसमें जुते हुये घोड़े लड़खड़ाकर पृथ्वी में गिरने लगे, किं बहुना रथों के सारथी भी इधर-उधर आकाश में चारो ओर घूमते हुये पृथ्वी पर गिरने लगे ।

हित्वायुधानि सुरसैन्यतुरंगवाहा-
वातेन तेन विधुराः सुरसैन्यमध्ये ।
शस्त्राभिघातमनवाप्य निपेतुरुर्व्यां
स्वीयेषु वाहनवरेषु पतत्सु सत्सु ।।३१।।

अन्वयः—तेन वातेन विधुराः सुरसैन्यतुरङ्गवाहाः सुरसैन्यमध्ये आयुधानि हित्वा स्वीयेषु वाहनरथेषु पतत्सु सत्सु शस्त्राभिघातम् अनवाप्य ऊर्व्याम् निपेतुः ।

संजी०—हित्वेति ।। तेन वातेन विधुराः पीडिताः सुरसैन्यस्य देवसैन्यस्य तुरंगवाहा अश्ववाहाः । अश्वारोहा इति यावत् । सुरसैन्यमध्य आयुधानि भल्लादीनि हित्वा परित्यज्य स्वीयेष्वात्मीयेषु वाहनवरेषु श्रेष्ठवाहनेषु पतत्सु सत्सु शस्त्राभिघातं शस्त्रप्रहारमनवाप्यापि न प्राप्याप्युर्व्यां भूमौ निपेतुः ।।३१।।

हिन्दी—उस अन्धड़ से सर्वथा किंकर्त्तव्यविमूढ एवम् अन्धे हुये देवसेना के घुड़सवार अपनी ही सेना के ऊपर अपने शस्त्रों का प्रयोग करने लगे और पृथ्वी पर लुढ़कते हुये अपने घोड़ों की पीठ से शस्त्रों के आघात के विना ही स्वयं भी पृथ्वी पर गिरने लगे ।

तेनाहतास्त्रिदशसैन्यपदातयोऽपि
त्रस्तायुधाः सुविधुराः परुषं रसन्तः ।
वात्याविवर्तदलवद्भ्रममेत्य दूरं
निःपेतुरम्बरतलाद्वसुधातलेऽस्मिन् ।।३२।।

अन्वयः—तेन आहताः स्रस्तायुधाः सुविधुराः परुषम् रसन्तः त्रिदशसैन्यपदातयः अपि वात्याविवर्त्तदलवत् भ्रमं दूर एत्य अम्बरतलाद् अस्मिन् वसुधातले निपेतुः ।

संजी०—तेनेति ॥ तेन प्रभञ्जनेनाहताः पीडिताः । अत एव स्रस्तान्यधःपतितान्यायुधानि शस्त्राणि येषाम् । अत एव सुतरां विधुरा दुःखिताः । करेभ्यः शस्त्रगलनं वीराणामतिदुःखावहं भवतीति भावः । तथा परुषं कठोरं यथा स्यात्तथा रसन्तः क्रोशन्तः । रुदन्त इति यावत् । त्रिदशसैन्यपदातयोऽपि देवसैन्यपादचारिणो योधा अपि । पूर्वोक्तानां गजादीनामपेक्षया समुच्चयार्थकोऽपिशब्दः । 'अपि संभावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये' इति विश्वः । वात्यया वातसमूहेन विवर्तं भ्रान्तं यद्दलं पत्रं तद्वद्दूरमतिशयेन भ्रमं भ्रान्तिमेत्य प्राप्याम्बरतलादाकाशमध्यादस्मिन्वसुधातले भूतले निपेतुः । वातसमूहत्रिवर्तितानि वृक्षशुष्कपत्राणि यथाधःपतन्ति, तथा देवसैन्यपत्तयोऽपि वायव्यास्त्रजनितप्रभञ्जनवशादम्बरमभित उड्डीयमानाः कियन्तमपि कालं तत्र रथचक्रवत्परिभ्रम्य प्रक्षीणभ्रमणजवाः सन्तोऽधः पेतुरिति वाच्यार्थः । यथा पतितमपि दलं न चूर्णीभवति, तथाधःपतन्तोऽपि सैनिका न चूर्णीभूता इत्यभिहितयोपमया व्यज्यते । सति पतनेऽपि चूर्णत्वाभावे देवत्वादिति गूढो हेतुः । अतोऽलंकारेण वस्तुध्वनिः ॥३२॥

हिन्दी—उस आँधी के थपेड़े से आहत तथा हथियारों के उड़ जाने से व्याकुल हुये सुरसैनिक बड़े जोरों से चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगे और बवण्डर में पड़े हुये पत्तों के समान चक्कर काटते हुये आसमान से उड़कर पुनः पृथ्वी पर गिर पड़े ।

इत्थं विलोक्य सुरसैन्यमथो अशेषं
दैत्येश्वरेण विधुरीकृतमस्त्रयोगात् ।
स्वर्लोकनाथकमलाकुशलैकहेतु-
र्दिव्यं प्रभावमतनोदतनुः स देवः ॥३३॥

अन्वयः—अथो अतनुः स देवः अशेषं सुरसैन्यम् दैत्येश्वरेण इत्थम् अस्त्रयोगात् विधुरीकृतं विलोक्य स्व दिव्यम् प्रभावम् अतनोत् (यतः) स्वर्लोकनाथकमलाकुशलैकहेतुः ।

संजी०—इत्थमिति ॥ अथो तारकप्रयोजितवायव्यास्त्रकृतसैन्यविप्लवानन्तरम् । अतनुर्महान् । महत्त्वं च विद्यया, विद्या चास्त्रशस्त्रनैपुण्यम् । स देवः षाण्मातुरः । अशेषं सकलं सुरसैन्यं देवसैन्यं कर्म दैत्येश्वरेण तारकेणेत्थं पूर्वोक्तप्रकारेणास्त्रयोगाद्वायव्यास्त्रप्रयोगान्निमित्ताद्विधुरीकृतं पीडितं विलोक्य

दिव्यं लोकोत्तरं प्रभावं सामर्थ्यमतनोत्। अनेन वायव्यप्रतिरोधकं पवनाशनास्त्रमक्षिपदिति व्यज्यते। यतः स्वर्लोकनाथस्येन्द्रस्य कमलाया लक्ष्म्याः कुशले श्रेयस्येक एव हेतुर्निदानम् ॥३३॥

हिन्दी—तदनन्तर विद्या तथा अस्त्र शिक्षा से महान् उन भगवान् कार्त्तिकेय ने वायव्यास्त्र के प्रभाव से समस्त सुरसैनिकों को इस प्रकार अस्त-व्यस्त होते देख अपने दिव्य प्रभाव का विस्तार करने लगे क्योंकि वे एकमात्र इन्द्र की राज्य-लक्ष्मी के कल्याण के कारण हैं।

तेनोज्झितं सकलमेव सुरेन्द्रसैन्यं
स्वास्थ्यं प्रपद्य पुनरेव युधि प्रवृत्तम्।
दृष्ट्वासृजद्दहनदैवतमस्त्रमिद्ध-
मुद्दीप्तकोपदहनः सहसा सुरारिः ॥३४॥

अन्वयः—तेन सकलम् एव उज्झितं सुरेन्द्रसैन्यम् स्वास्थ्यं प्रपद्य पुनः युधि एव प्रवृत्तम् दृष्ट्वा उद्दीप्तकोपदहनः सुरारिः सहसा इद्धं दहनदैवतम् अस्त्रम् असृजत्।

संजी०—तेनेति॥ तेन कुमारप्रभावेण सकलमेव, न तु त्यक्तभागम्। उज्झितं वायव्यास्त्रनिर्मुक्तं सुरेन्द्रसैन्यं इन्द्रसैन्यं कर्म स्वास्थ्यमविकलत्वं प्रपद्य प्राप्य पुनर्युध्येव, न त्वन्यकार्ये पलायनरूपे। एवंविधास्त्रप्रयोक्तासौ दुर्जय इति बुद्धया। पलायनप्रसक्तिशङ्कानिरासार्थमेवकारः। प्रवृत्तं युद्धं व्यापाराश्रयीभूतं दृष्ट्वा। उद्दीप्तोऽनुभावसान्निध्यात्प्रदीप्तः कोप एव दहनोऽग्निर्यस्यैवंभूतः सुरारिस्तारकः सहसा झटिति, न तु विलम्बेन। इद्धं सिद्धम्, न तु तत्कालसाधनीयम्। प्रदीप्तमिति वा। दहनदैवतमग्निदेवताकमस्त्रमसृजद्व्यसृजत्। 'सृज विसर्गे' इत्यस्मात्तौदादिकाल्लङ्। वायव्यास्त्रपरिहारानन्तरं वह्न्यस्त्रमक्षिपदित्यर्थः ॥३४॥

हिन्दी—उन स्वामी कार्त्तिकेय ने अपने दिव्य प्रभावे से वायव्यास्त्र से समस्त सैनिकों को छुटकारा दिलाकर इतना स्वस्थ बना दिया कि वे पुनः असुरों से युद्ध करने में प्रवृत्त हो गये। यह देख देवशत्रु उस तारकासुर ने क्रोध से झल्लाते हुये तत्काल ही अग्निदेवताक अग्निबाण का संधान किया।

वर्षातिकालजलदद्युतयो नभोऽन्ते
गाढान्धकारितदिशो घनधूमसंघाः।
सद्यः प्रसस्रुरसितोत्पलदामभासो
दृग्गोचरत्वमखिलं न हि सन्नयन्तः ॥३५॥

अन्वयः——वर्षातिकालजलदद्युतयः असितोत्पलदामभासः गाढान्धकारितदिशः घनधूमसंघाः अखिलं दृग्गोचरत्वं न हि सनयन्तः सद्यः प्रसस्रुः ।

संजी०——वर्षेति ॥ वर्षास्वतिकाला मेचकतरा ये जलदा मेघास्तेषां द्युतिः कान्तिरिव कान्तिर्येशाम् । वर्षाकालीनमेघसदृशमेचकितभा इत्यर्थः । श्यामत्वे द्वितीयविशेषणेनोपमिमीते–असितानां नीलानामुत्पलानां सकमलानां दाम्नः स्रजो भा इव भा रुग्येषामत एव गाढं नितरामन्धकारिता विसंजाता-न्धकारीकृता दिशो यैरेवंभूता घनधूमसंघा निबिडधूमसमूहा अखिलं घटादि-वस्तु दृग्गोचरत्वं दृष्टिविषयत्वं न हि नैव । 'हि पादपूरणे हेतौ विशेष्येऽ-प्यवधारणे' इति विश्वः । नयन्तः प्रापयन्तः सन्तः । घनधूमसंघ व्याप्त्या तमोव्याप्त्येव न हि किंचिदपि वस्तु लक्षणीयं बभूवेति भावः । सद्यः सपदि प्रसस्रुः । प्रज्वलिष्यद्दहनप्राग्भावित्वेन धूमप्रसरणस्योचितत्वाद्धूमप्रसरण-मुक्तम् । प्रपूर्वात् 'सृ गतौ' इत्यतो लिट् ॥३५॥

हिन्दी——उस समय तत्काल आकाशमण्डल में वर्षाऋतु के समय दिखाई पड़ने वाले काले-काले बादलों के समान नील कमलों की माला के समान काला काला धुआँ चारों ओर इतने घने रूप में फैल गया कि समस्त घटादि वस्तुजात आँखों से दिखाई नहीं पड़ने लगे ।

दिक्चक्रवालगिलनैर्मलिनैस्तमोभि-
र्लिप्तं नभःस्थलमलं घनवृन्दसान्द्रैः ।
धूमैर्विलोक्य मुदिताः खलु राजहंसा
गन्तुं सरः सपदि मानसमीषुरुच्चैः ॥३६॥

अन्वयः—दिक्चक्रवालगिलनैः (तथा) मलिनैः (अतएव) घनवृन्दसान्द्रैः धूमैः तमोभिः अलम् लिप्तं नभःस्थलम् विलोक्य मुदिताः राजहंसाः सपदि उच्चैः मानसं सरः गन्तुम् ईषुः खलु ।

संजी०——दिगिति ॥ दिशां चक्रवालस्य मण्डलस्य गिलनैराच्छादकैः । 'गॄ निगरणे' इत्यतः कर्तरि ल्युट् । 'अचि विभाषा' इति रेफस्य लत्वम् । तथा मलिनैर्मेचकैः, अत एव घनवृन्दमिव मेघमण्डलमिव सान्द्रैः सघनैर्धू-मैर्धूमरूपैस्तमोभिर्लिप्तं व्याप्तं नभःस्थलं विलोक्य दृष्ट्वा मुदिताः प्रसन्ना राजहंसाः सपदि सद्य उच्चैर्महन्मानसं सरः पल्वलं गन्तुमीषुरैच्छन् । दह-नास्त्रप्राग्भूतधूमावलीव्याप्तनभोदर्शनजनितमेघागमभ्रान्तिमतां कलहंसानां मानससरोजिगमिषोचितैवेति भावः ॥३६॥

हिन्दी—दिशाओं को निगल जानेवाले अत्यन्त मलीन घने-घने बादलों के समान धूममण्डल के अन्धकार से जब समस्त आकाशमण्डल व्याप्त हो गया तो

राजहंस वर्षाऋतु के आगमन की आशङ्का से प्रसन्नतापूर्वक मानसरोवर की ओर यात्रा के लिये तैयार हो गये ।

जज्वाल वह्निरतुलः सुरसैनिकेषु
कल्पान्तकालदहनप्रतिमः समन्तात् ।
आशामुखानि विमलान्यखिलानि कीला-
जालैरलं कपिलयन्सकलं नभोऽपि ॥३७॥

अन्वयः—कल्पान्तकालदहनप्रतिमः अतुलः वह्निः कीलाजालैः अखिलानि विमलानि आशामुखानि (तथा) सकलंनभः अपि अलं कपिलयन् सुरसैनिकेषु समन्तात् जज्वाल ।

संजी०—जज्वालेति ॥ कल्पान्तकालस्य प्रलयकालस्य दहनोऽग्निस्तस्य प्रतिमेव प्रतिमा स्वरूपं यस्य । तथातुलो बहुलो वह्निः कीलाजालैर्ज्वालासमूहैः । 'वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' इत्यमरः । अखिलानि समस्तानि विमलानि शुद्धान्याशामुखानि दिगग्राणि । तथा सकलं नभोऽपि व्योम च कपिलयन्पिशङ्गीकुर्वन्सुरसैनिकेषु मध्ये । 'यतश्च निर्धारणम्' इति सप्तमी । समन्तात्परितो जज्वाल दिदीपे ॥३७॥

हिन्दी—प्रलयकाल की अग्नि के समान विशाल अग्निदेव ने अपने ज्वाला समूहों से समस्त विमल दिशाओं के अग्रभाग तथा समस्त-नभोमण्डल को सुर सैनिकों के मध्य पीला-पीला कर दिया ।

उज्जागरस्य दहनस्य निरर्गलस्य
ज्वालावलीभिरतुलाभिरनारताभिः ।
कीर्णं पयोदनिवहैरिव धूमसंघै-
र्व्योमाभ्यलक्ष्यत कुलैस्तडितामिवोच्चैः ॥३८॥

अन्वयः—उज्जागरस्य निरर्गलस्य दहनस्य अतुलाभिः अनारताभिः ज्वालावलीभिः (तथा) पयोदनिबहैः इव धूमसङ्घैः (व्याप्तम्) व्योम उच्चैः तडिताम् कुलैः कीर्णम् इव अभ्यलक्ष्यत ।

संजी०—उज्जागरस्येति ॥ उज्जागरस्योद्दीप्तस्य । जागर्तेः 'ऋदोरप्' इति भावेऽप् । निरर्गलस्य निर्गतप्रतिबन्धस्य दहनस्य वह्नेरतुलाभिर्बहुलाभिरनारताभिरक्षणिकाभिर्ज्वालावलीभिः कीलपङ्क्तिभिः । तथा पयोदनिवहैरिव मेघसमूहैरिव धूमसंघैः व्याप्तमिति शेषः । तथाभूतं व्योम नभः कर्तृ । उच्चैर्महद्भिस्तडितां विद्युतां कुलैर्गणैः कीर्णं वृतमिवाभ्यलक्ष्यत

दर्शनीयं बभूव । मेघमण्डलान्तरे चमत्कारकारिणीभिः क्षणदाभिर्नभो यथा राजति; तथा मेघमण्डलसदृशधूमसंघमण्डलान्तर्गतक्षणदासदृशज्वालावलीभिरपि बभावित्यर्थः । भानक्रियाकर्तोभयत्राप्येक एव, अतो ज्वालावलीषु क्षणदात्वेनोत्प्रेक्षितम् ॥३८॥

हिन्दी—धधक-धधक कर वे रोक-रोक निरन्तर ऊपर उठनेवाली बड़ी-बड़ी अग्नि की लपटों तथा काले-काले बादलों के समान धूमसमूहों से व्याप्त हुआ आकाशमण्डल बड़ी-बड़ी बिजलियों के समूहों से तथा घने-घने बादल समूहों से व्याप्त जैसा दिखाई पड़ने लगा ।

गाढाद्भयाद्वियति विद्रुतखेचरेण
दीप्तेन तेन दहनेन सुदुःसहेन ।
दन्दह्यमानमखिलं सुरराजसैन्य-
मत्याकुलं शिवसुतस्य समीपमाप ॥३९॥

अन्वयः—गाढात् भयात् वियति विद्रुतखेचरेण दीप्तेन सुदुःसहेन तेन दहनेन-दन्दह्यमानम् अत्याकुलं अखिलं सुरराजसैन्यं शिवसुतस्य समीपम् आप ।

संजी०—गाढादिति ॥ गाढाद्भयाद्धेतोर्वियति नभसि विद्रुता विद्राविताः । पलायिता इति यावत् । खेचरा रव्यादयो येन । रव्यादयो ग्रहा अपि यद्भयात्दुद्रुवुरित्यर्थः । तथा दीप्तेन प्रदीप्तेन । तथा सुतरां दुःसहेन सोढुमशक्येन तेन दहनेन कर्त्रा दन्दह्यमानं पुनः पुनरतिशयेन वा दह्यते भस्मीक्रियते तथाभूतमत एवात्याकुलमतिपीडितमखिलं समस्तं सुरराजसैन्यं कर्तृ शिवसुतस्य कुमारस्य समीपं संनिधिमाप । अतो नः पाहीति निवेदयितुं जगामेति व्यज्यते । तेन वस्तुना वस्तुध्वनिः ॥३९॥

हिन्दी—उस भयानक धधकती हुई आग से भयभीत हुये आकाशचारी सूर्यादिग्रह भी इधर-उधर भागने लगे कि बहुना उससे बुरी तरह जलती हुई देवसेना भी अत्यन्त व्याकुल हो शंकर जी के पुत्र कार्त्तिकेय के पास जा पहुँची ।

इत्यग्निना घनतरेण ततोऽभिभूतं
तद्देवसैन्यमखिलं विकलं विलोक्य ।
सस्मेरवक्त्रकमलोऽन्धकशत्रुसूनु-
र्बाणासनेन समधत्त स वारुणास्त्रम् ॥४०॥

अन्वयः—ततः स अन्धकशत्रुसूनुः इति घनतरेण अग्निना अभिभूतम् अखिलम् तत् देवसैन्यम् विकलम् विलोक्य सस्मेरवक्त्रकमलः बाणासनेन बरुणास्त्रम् समधत्त ।

संजी०—इतीति ॥ ततः सैन्यागमनानन्तरम् । सोऽन्धकशत्रुसूनुः कुमारः । इति पूर्वोक्तप्रकारेण घनतरेणातिसान्द्रेणाग्निनाभिभूतं पराभूतमखिलं

समस्तं तद्देवसैन्यं विकलं विधुरं विलोक्य सस्मेरं समन्दहासं वक्त्रकमलं यस्य। किंचिद्विहस्येत्यर्थः। अनेनात्मोत्कर्षव्यञ्जक उपहासो व्यज्यते। बाणासनेन धनुषा वारुणास्त्रमग्न्यस्त्रप्रतिरोधकं वरुणदेवताकमस्त्रं समधत्त। संदध इत्यर्थः ॥४०॥

हिन्दी – तदनन्तर कार्तिकेय भगवान् ने भयङ्कर आग से अभिभूत समस्त देवसेना को व्याकुल देखकर मुखकमल से मन्द-मन्द हँसते हुये अपने धनुष पर वारुणास्त्र को चढ़ाया।

घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगान्त-
कालानलप्रबलधूमनिभो नभोऽन्ते।
गर्जारवैर्विघटयन्नवनीधराणां
शृङ्गाणि मेघनिवहो घनमुज्जगाम ॥४१॥

अन्वयः—घोरान्धकारनिकरप्रतिमः युगान्तकालानलप्रबलधूमनिभः गर्जारवैः अवनीधराणां शृङ्गाणि विघटयन् मेघानिवहः नभोऽन्ते घनम् उज्जगाम।

संजी०—घोरेति ॥ घोराणि भयानकानि यान्यन्धकाराणि तमांसि तेषां निकरस्य समूहस्य प्रतिमेव प्रतिमा स्वरूपं यस्य। गाढान्धकारसदृशकान्तिरित्यर्थः। तथा युगान्तकालस्य योऽनलोऽग्निस्तस्य प्रबलोऽधिको यो धूमस्तेन सदृशः। तथा गर्जारवैर्गर्जनाघोषैः कृत्वावनीधराणां पर्वतानां शृङ्गाणि सानूनि विघटयन् स्फोटयन्मेघनिवहः पयोधरसमुदायो नभोऽन्ते व्योममध्ये घनं सान्द्रम्। न तु विरलतया। उज्जगामोदियाय ॥४१॥

हिन्दी—घने अन्धकार के पुञ्ज के समान तथा प्रलयाग्नि से उठने वाले धूयें के समान काली-काली घटायें समस्त आकाश में चारों ओर से छा गई और उनके गड़गड़ाहट भरे शब्दों से पहाड़ों के शिखर ढहने लगे।

विद्युल्लता वियति वारिदवृन्दमध्ये
गम्भीरभीषणरवैः कपिशीकृताशा।
घोरा युगान्तचलितस्य भयंकराथ
कालस्य लोलरसनेव चमच्चकार ॥४२॥

अन्वयः—अथ वियति गम्भीर भीषण रवैः कपिशीकृताशाः युगान्तचलितस्य कालस्य भयङ्कराः लोलरसनाः इव घोराः विद्युल्लता वारिवृन्दमध्ये चमच्कार।

संजी०—विद्युदिति ॥ अथ मेघोदयानन्तरं वियति नभसि गम्भीराः सान्द्रा अत एव भीषणा भयदा ये रवा घोषास्तैरुपलक्षिता। तथा कपिशीकृताः पिशङ्गिता आशा दिशो यया। तथा युगान्तचलितस्य प्रलयकाले

लोकादनाय प्रस्थितस्य कालस्य यमस्य भयंकरा भयदा लोलरसना चपलजिह्वेव घोरा भीमा विद्युल्लता तडिद्रूपिणी हाटकलता वारिदवृन्दमध्ये जलदमण्डलान्तराले चमच्चकार। प्रतिक्षणव्यक्तीकृतात्मरोचिरासीदित्यर्थः। अनेनोपमालंकारेण तारकासुरसैनिकानामियमिव चमत्कुर्वन्ती वैवस्वतरसना नोऽभ्यवहरिष्यतीति बुद्धिरुत्पन्नेति ध्वन्यते। अतोऽलंकारेण वस्तुध्वनि- ॥४२॥

हिन्दी—उस समय आकाशमण्डल में अपनी भयङ्कर गर्जना से दिशाओं को पीली पीली करती हुई युगान्त काल में लपलपाती भयङ्कर काल की जीभ के समान घोर बिजलियाँ उन बादलों के मध्य में चमक रही थीं।

कादम्बिनी विरुरुचे विषकण्ठिकाभि-
रुत्तालकालरजनीजलदावलीभिः।
व्योम्न्युच्चकैरचिररुक्परिदीपिताशा
दृष्टिच्छदा विषमघोषविभीषणा च ॥४३॥

अन्वयः—अचिररुक्परिदीपिताशा (तथा) अदृष्टिच्छदा (तथा) विषमघोषविभीषणा च उच्चकैः व्योम्नि विषकण्ठिकाभिः उत्तालकाल रजनीजलदावलीभिः कादम्बिनी निरुरुचे।

संजी०—कादम्बिनीति ॥ अचिररुग्भिर्विद्युद्भिः प्रयोज्यकर्त्रीभिः परिदीपिताः प्रकाशिता आशा यया प्रयोजककर्त्र्या। तथादृष्टिच्छदा दृष्टिच्छदा नेत्रावरणकर्त्री सा न भवतीति, किं तु नेत्रप्रकाशिका। 'पुंसि संज्ञायां घः' इति घः। 'छादेर्घे' इति ह्रस्वः। तथा विषमेण करालेन घोषेण विभीषणा भयदा। उच्चकैर्महति व्योम्न्यन्तरिक्षे विषं जलम्। 'विषं तुङ्गबले तोये' इति विश्वः। कण्ठे मध्ये यासाम्। जलपूर्णमध्याभिरित्यर्थः। उत्ताला विकरालाः। 'उत्तालो होमकुण्डे स्याद्गर्ते चोत्ताल उत्कटे। श्रेष्ठेऽपि विकरालेऽपि स्यादुत्तालः प्लवंगमे ॥' इति विश्वः। तथा कालाः कृष्णपक्षीयाः। 'कालश्यामलमेचकाः' इत्यमरः। एवं भूता या रजन्यो रात्रयः। 'रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः। ता इव या जलदावल्यो मेघपङ्क्तयः। मयूरव्यंसकादयश्च' इति समासः। ताभिरुपलक्षिता कादम्बिनीमाला विरुरुचे बभौ। अत्र कादम्बिनीशब्दः केवलमालापरः। तदुक्तम् 'विशिष्टवाचकानां पदानां सति हि पृथग्विशेषणसमवधाने विशेष्यमात्रपरता इति ॥४३॥

हिन्दी—रह-रहकर अपने में रहने वाली बिजलियों से दिशाओं को प्रकाशित करने वाली, नेत्रों की प्रकाशिका तथा अपनी भयंकर गर्जना से भय उत्पन्न करने-

वाली ऊँचे आकाश में अपने मध्य भाग में जल धारण करने वाली काल रात्रि के समान घोर अन्धकार से परिपूर्ण बादलों की पंक्तियों की माला उस कार्त्तिकेय के वारुणास्त्र से सुशोभित होने लगी।

व्योम्नस्तलं पिदधतां ककुभां मुखानि
गर्जारवैरविरतैस्तुदतां मनांसि।
अम्भोभृतामतितरामनणीयसीभि-
र्धारावलीभिरभितो ववृषे समूहैः ॥४४॥

अन्वयः—व्योम्नः तलम् ककुभां मुखानि पिदधतां अविरतैः गर्जारवैः मनांसि तुदताम् अम्भोभृतां समूहैः अनणीयसीभिः धारावलीभिः अभितः अतितराम् ववृषे।

संजी०—व्योम्न इति ॥ व्योम्न आकाशस्य तलं स्वरूपम्। 'तलं स्वरूपाधरयोः खड्गमुष्टिचपेटयोः' इति विश्वः। तथा ककुभां दिशां मुखान्यग्राणि च पिदधतामाच्छादयताम्। 'पिधानाच्छादनानि च' इत्यमरः। तथाऽविरतैर्निरन्तरभवद्भिर्गर्जारवैर्गर्जनाघोषैः कृत्वा मनांसि तुदतां व्यथयतामम्भोभृतां जलधराणां समूहैः कर्तृभिः। अनणीयसीभिरणीयस्योऽतिलघ्व्यो न भवन्ति तथोक्ताभिः। महतीभिरित्यर्थः। धारावलीभिः संपातपङ्क्तिभिः कृत्वातितरां ववृषे वृष्टम्। भावे लिट् ॥४४॥

हिन्दी—संपूर्ण आकाशमण्डल तथा दिशाओं को आच्छादित करने वाली तथा निरन्तर अपनी घनघोर गर्जना से मन को दहला देने वाली घनघटायें महती मूसलाधार वर्षा करने लगीं।

घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां
गम्भीरगर्जनरवैर्व्यथितासुराणाम्।
वृष्टया तया जलमुचां वरुणास्त्रजानां
विश्वोदरंभरिरपि प्रशशाम वह्निः ॥४५॥

अन्वयः—घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां गम्भीरगर्जनरवैः व्यथितासुराणां वरुणास्त्रजानां तथा जलमुचां वृष्टया विश्वोदरम्भरिः अपि वह्निः प्रशशाम।

संजी०—घोरेति ॥ घोराणि भयदानि यान्यन्धकारपटलान्यन्धतमसपटलानि तैः कृत्वा पिहिताम्बराणामावृतगगनानाम्। तथा गम्भीरगर्जनरवैः कृत्वा व्यथिताः पीडिता असुरा यैस्ते वरुणास्त्रजानां वरुणदैवतास्त्रोत्पन्नानां जलमुचां मेघानाम्। तथाद्वितीयया वृष्टया वर्षेण विश्वेन समस्तजगता कृत्वोदरं भरतीति तथोक्तोऽपि समस्तलोकव्याप्यमानोऽपि वह्निरग्निः प्रशशाम। कुमारकृतवारुणास्त्रप्रयोगेणाग्न्यस्त्रमप्यनशदिति भावः ॥४५॥

वाली ऊँचे आकाश में अपने मध्य भाग में जल धारण करने वाली काल रात्रि के समान घोर अन्धकार से परिपूर्ण बादलों की पङ्क्तियों की माला उस कार्त्तिकेय के वारुणास्त्र से सुशोभित होने लगी।

व्योम्नस्तलं पिदधतां ककुभां मुखानि
गर्जारवैरविरतैस्तुदतां मनांसि।
अम्भोभृतामतितरामनणीयसीभि-
र्धारावलीभिरभितो ववृषे समूहैः ॥४४॥

अन्वयः—व्योम्नः तलम् ककुभां मुखानि पिदधतां अविरतैः गर्जारवैः मनांसि तुदताम् अम्भोभृतां समूहैः अनणीयसीभिः धारावलीभिः अभितः अतितराम् ववृषे।

संजी०—**व्योम्न इति ॥ व्योम्न आकाशस्य तलं स्वरूपम्। 'तलं स्वरूपाधरयोः खड्गमुष्टिचपेटयोः' इति विश्वः। तथा ककुभां दिशां मुखान्यग्राणि च पिदधतामाच्छादयताम्। 'पिधानाच्छादनानि च' इत्यमरः। तथाऽविरतैर्निरन्तरभवद्भिर्गर्जारवैर्गर्जनाघोषैः कृत्वा मनांसि तुदतां व्यथयतामम्भोभृतां जलधराणां समूहैः कर्तृभिः। अनणीयसीभिरणीयस्योऽतिलघ्व्यो न भवन्ति तथोक्ताभिः। महतीभिरित्यर्थः। धारावलीभिः संपातपङ्क्तिभिः कृत्वातितरां ववृषे वृष्टम्। भावे लिट् ॥४४॥**

हिन्दी—संपूर्ण आकाशमण्डल तथा दिशाओं को आच्छादित करने वाली तथा निरन्तर अपनी घनघोर गर्जना से मन को दहला देने वाली घनघटायें महती मूसलाधार वर्षा करने लगीं।

घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां
गम्भीरगर्जनरवैर्व्यथितासुराणाम्।
वृष्ट्या तया जलमुचां वरुणास्त्रजानां
विश्वोदरंभरिरपि प्रशशाम वह्निः ॥४५॥

अन्वयः—घोरान्धकारपटलैः पिहिताम्बराणां गम्भीरगर्जनरवैः व्यथितासुराणां वरुणास्त्रजानां तथा जलमुचां वृष्ट्या विश्वोदरम्भरिः अपि वह्निः प्रशशाम।

संजी०—**घोरेति ॥ घोराणि भयदानि यान्यन्धकारपटलान्यन्धतमसपटलानि तैः कृत्वा पिहिताम्बराणामावृतगगनानाम्। तथा गम्भीरगर्जनरवैः कृत्वा व्यथिताः पीडिता असुरा यैस्ते वरुणास्त्रजानां वरुणदैवतास्त्रोत्पन्नानां जलमुचां मेघानाम्। तथाद्वितीयया वृष्ट्या वर्षेण विश्वेन समस्तजगता कृत्वोदरं भरतीति तथोक्तोऽपि समस्तलोकव्याप्यमानोऽपि वह्निरग्निः प्रशशाम। कुमारकृतवारुणास्त्रप्रयोगेणाग्न्यस्त्रमप्यनशदिति भावः ॥४५॥**

हिन्दी—घोर अन्धकार समूहों से आकाश को ढक लेने वाली, अपनी गम्भीर गर्जना से दैत्यों को कंपा देनेवाली, कार्त्तिकेय के वरुणास्त्र से उत्पन्न उस प्रकार के भयङ्कर बादलों की वृष्टि से समस्त संसार में फैली हुई तारकासुर के आग्नेयास्त्र की आग शान्त हो गई।

दैत्योऽपि रोषकलुषो निशितैः क्षुरप्रै-
राकर्णकृष्टधनुरुत्पतितैः स भीमैः।
तद्भीतिविद्रुतसमस्तसुरेन्द्रसैन्यो
गाढं जघान मकरध्वजशत्रुसूनुम् ॥४६॥

अन्वयः—रोषकलुषः स दैत्यः अपि निशितैः भीमैः आकर्णकृष्टधनुरुत्पतितैः क्षुरप्रैः तद्भीति विद्रुतसमस्तसुरेन्द्रसैन्यः गाढम् मकरध्वजशत्रुसूनुम् जघान।

संजी०—दैत्य इति॥ रोषेण क्रोधेन कलुष आविलः। कलुषं त्वाविले पापे' इदि मेदिनी। स दैत्योऽपि निशितैः खरैः। अत एव भीमैर्भयदैः। तथाकर्णमाश्रवणं कृष्टाद्धनुषः सकाशादुत्पतितैर्निःसृतैः क्षुरप्रैः शरविशेषैः कृत्वा। तेभ्यः क्षुरप्रेभ्यो भीत्या निमित्तेन विद्रुतं विद्रावितं समस्तं सुरेन्द्र-सैन्यं पुरंदरबलं येन। सैन्यं क्लीबं बले सेनासमवेते तु वाच्यवत्' इति मेदिनी। तथाभूतः सन्। गाढं दृढं यथा स्यात्तथा मकरध्वजस्य कामस्य शत्रोः शंभोः सूनुं पुत्रं जघान। प्राणापहरणकरणाभिप्रायेण हिनस्ति स्मे-त्यर्थः। 'पुनस्तत्रैवावलम्बितो वेतालः' इति न्यायेन मायया सुखेन जेय एवेति मन्यमानेन तारकेण बाणसमरं हित्वा मायासमरं कुर्वाणेन तत्र सत्यपि दुर्जेयताबुद्ध्या पुनर्बाणयुद्धमकार्षीदित्यर्थः। अनेन वाच्यार्थेन 'अप्रतिहतप्रचारा मदीया मायाप्यनेन वीरेण प्रतिहता' इति शोकग्रस्तेन दैत्येन यथा पराजितेनापि विदुषा युक्त्या विवाद्यते तथा युध्यते, न तु वीर-रसानुगतत्वेनेति ध्वन्यते ॥४६॥

हिन्दी—तदनन्तर क्रोध से लाल लाल आँखें किये वह तारकासुर अत्यन्त तीक्ष्ण भयानक तथा कर्णपर्यन्त खीचे हुये अपने धनुष से छोड़े गये बाणों से, जिसके भय से सारी देवताओं की सेना भागने लगी थीं, कार्त्तिकेय पर करारी चोट पहुँचाया।

देवोऽपि दैत्यविशिखप्रकरं सचाप
बाणैश्चकर्त कणशो रणकेलिकारी।
योगीव योगविधिशुष्कमना यमाद्यैः
सांसारिकं विषयसंघममोघवीर्यम् ॥४७॥

अन्वयः—रणकेलिकारी देवः अपि वाणैः सचापम् दैत्यविशिखप्रकरम् योगविधिशुष्कमनाः योगी यमाद्यैः अमोघवीर्यम् सांसारिकम् विषयसङ्घम् इव कणशः चकर्त्त ।

संजी०—देवोऽपीति ॥ रण एव केलिः क्रीडा तां करोति । संग्रामरूपक्रीडाविधायीत्यर्थः । देवोऽपि कुमारोऽपि बाणैः शरैः सचापं सकोदण्डं दैत्यस्य तारकस्य विशिखानां शराणां प्रकरं समूहं योगविधिना योगाभ्यासविधानेन शुष्कमना नीरसमनाः । निःस्पृहचेता इति तात्पर्यार्थः । योगी-यमाद्यैर्यमनियमप्रभृतिर्योगसाधनैः कृत्वामोघवीर्यं योगिनामपि मनःसंभ्रान्तिकरणे सफलप्रभावं सांसारिकं संसारः प्रयोजनमस्येति तथोक्तम् । प्रयोजने ठक् । विषयसंघं चक्षुरादिकरणोपभोग्यसमाहारमिव कणशश्चकर्त विलेद । यथा योगाभ्यासनिरतो यमनियमपूर्वैश्चक्षुरादिकरणभोग्यं दर्शनीयादिकरणवस्तु कृन्तति, तथा कुमारोऽपि यमनियमवत्तीव्रैर्बाणैर्विषयसंघमिव सफललक्ष्यभेदनक्रियोचितत्वमपि शरनिकरमभनगिति भावः ॥४७॥

हिन्दी—युद्धस्थल में क्रीड़ा करने वाले कुमार कार्त्तिकेय ने अपने बाणों से धनुष सहित उस असुर के समस्त वाण समूहों को इस प्रकार कण-कण काट कर विनष्ट कर दिया जिस प्रकार योगविधि से मन को अत्यन्त बलवान् सांसारिक रूपरसादि विषय समूहों को तिल-तिल काट कर उसे व्यर्थ बना देता है ।

भ्रूभङ्गभीषणमुखोऽसुरचक्रवर्ती
संदीप्तकोपदहनोऽथ रथं विहाय ।
क्रीडत्करालकरवालकरोऽसुरेन्द्र-
स्तं प्रत्यधावदभितस्त्रिपुरारिसूनुम् ॥४८॥

अन्वयः—अथ संदीप्तकोपदहनः भ्रूभङ्गभीषणमुखः असुरचक्रवर्त्ती रथं विहाय क्रीडत्करालकरवालकरः तम् त्रिपुरारिसूनुम् अभितः प्रत्यधावत् ।

संजी०—भ्रूभङ्गेति ॥ अथ शस्त्रास्त्रयुद्धानन्तरं सम्यगधिकं यथा तथा दीप्तः कोप एव दहनोऽग्निर्यस्य । अत एव भ्रुवोर्भ्रुकुट्योर्भङ्गेन वक्रत्वेन भीषणं विलोकयितॄणां भयदं मुखं वदनं यस्य तथोक्तोऽसुराणां दैत्यानां चक्रवर्ती सम्राट् । सार्वभौम इत्यर्थः । 'राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः । चक्रवर्ती सार्वभौमा नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः' इत्यमरः । असुरेन्द्रस्तारको रथं स्यन्दनं विहाय परित्यज्य क्रीडन्नूर्ध्वदिशि कम्पमानस्तथा करालो भीषणः करवालः खड्गः स करे पाणौ यस्य । धारितविकटकृपाणः सन्नित्यर्थः ।

तं त्रिपुरारिसूनुं शिवपुत्रमभितः संमुखं प्रत्यधावत्। कुण्ठितसर्वशस्त्रास्त्रत्वात्करवालेन शिरोनालजिहीर्षया प्रतिदुद्रावेत्यर्थः। धावु गतौ' इत्यस्मात्कर्तरि लङ् ॥४८॥

हिन्दी—इसके अनन्तर अपनी कोपाग्नि से जाज्वल्यमान तथा टेढी भौहों के कारण भीषण मुखवाली वह चक्रवर्त्ती (दैत्यसम्राट) तारकासुर अपना रथ त्याग कर ऊपर की ओर लपलपाती अपनी भयानक तलवार हाथ में ले कार्त्तिकेय के ऊपर झपट कर दौड़ा।

अभ्यापतन्तमसुराधिपमीशपुत्रो
दुर्वारबाहुविभवं सुरसैनिकैस्तम्।
दृष्ट्वा युगान्तदहनप्रतिमां मुमोच
शक्तिं प्रमोदविकसद्वदनारविन्दः ॥४९॥

अन्वयः—सुरसैनिकैः दुर्वारबाहुविभवम् तम् असुराधिपम् अभ्या पतन्तं दृष्टवा ईसपुत्रः प्रमोदविकशसद्वदनारविन्दः युगान्तदहन प्रतिमां शक्तिं मुमोच।

संजी०—अभ्यापतन्तमिति॥ सुरसैनिकैर्देवसेनाजनैर्दुर्वारो दुःसह्यो बाहुविभवो भुजवीर्यं यस्य। सुरसैनिकैर्जेयमित्यर्थः। तमसुराधिपं दैत्यराजमभ्यपतन्तं संमुखमागच्छन्तं दृष्ट्वा विलोक्येशपुत्रो महेशतनयः कुमारः प्रमोदेन तदीयवशंगतत्वजनितानन्देन विकसद्विदलद्वदनारविन्दं मुखकमलं यस्य। किंचिद्विहस्येत्यर्थः। युगान्तदहनस्य प्रलयकालीनानलस्य प्रतिमेव प्रतिमा प्रतियातना यस्याः। प्रज्वलद्दहनकीलाजालपरिवृतामित्यर्थः। शक्तिमायुधविशेषं मुमोच। 'शक्तिः प्रहरणान्तरे' इति विश्वः॥४९॥

हिन्दी—अपनी भुजाओं के बल से समस्त सुरसैनिकों को पराजित कर देने वाले उस असुरसम्राट् तारकासुर को अपनी ओर आते देख ईशपुत्र कुमार कार्त्तिकेय ने हर्ष से अपने वदनारविन्द को विकसित करते हुये प्रलयकालीन अग्नि के समान अपनी शक्ति उस पर छोड़ी।

उद्द्योतिताम्बरदिगन्तरमंशुजालैः
शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य।
हर्षाश्रुभिः सह समस्तदिगीश्वराणां
शोकोष्णबाष्पसलिलैः सह दानवानाम् ॥५०॥

अन्वयः—सा शक्तिः समस्तदिगीश्वराणाम् हर्षाश्रुभिः सह दानवानाम् शोकोष्णवाप्पसलिलैः सह अंशुजालैः उद्योविताम्बरदिगन्तरम् तस्य महासुरस्य हृदि पपात।

संजी०--उद्द्योतितेति ।। अत्र सेति शेषः । सा कुमारमुक्ता शक्तिः समस्ता ये दिगीश्वराः इन्द्रादयोऽष्टदिक्पालास्तेषां हर्षाश्रुभिरानन्दबाष्पैः सह । तेषामभिलषितत्वायुक्तमेव तदीयहृदयशक्तिपतनजनित आनन्दो यदासीत् । दानवानां तदीयपक्षपातिनां रक्षसां शोकेन भर्तृमरणजनितेनोष्णानि यानि बाष्पसलिलानि तैः सह । अंशुजालैः किरणसमूहैः कृत्वोद्द्योतितं प्रकाशितमम्बरस्य दिशां चान्तरं मध्यं यत्र यस्यां क्रियायां यथा भवति तथा । उज्ज्वालितसकलदिगम्बरमध्यं तस्य महासुरस्य तारकस्य हृदि हृदये पपात पतितवती ।।५०।।

हिन्दी--वह शक्ति समस्त दिक्पालों के आनन्दाश्रुओं के साथ तथा दानवों के शोकपूर्ण उष्णाश्रुओं के साथ अपनी किरणों से आकाश तथा दिशाओं के मध्यभाग को प्रकाशित करती हुई उस महासुर के हृदयस्थल में जाकर लग गई ।

शक्त्या हृतासुमसुरेश्वरमापतन्तं
कल्पान्तवातहतभिन्नमिवाद्रिशृङ्गम् ।
दृष्ट्वा प्ररूढपुलकाञ्चितचारुदेहा
देवाः प्रमोदमगमंस्त्रिदशेन्द्रमुख्याः ।।५१।।

अन्वयः—शक्त्या हृतासुम् असुरेश्वरम् कल्पान्तवातहतभिन्नम् अद्रिशृङ्गम् इव आपतन्तं दृष्ट्वा प्ररूढपुलकाञ्चितचारुदेहाः त्रिदशेन्द्रमुख्याः देवाः प्रमोदम् अगमन् ।

संजी०--शक्त्येति ।। शक्त्या कर्त्र्या हृता अपगमिता असवः प्राणा यस्य । शक्तिप्रहारेण गतप्राणमित्यर्थः । एवंभूतमसुरेश्वरं तारकं कल्पान्तवातेन प्रलयकालीनप्रभञ्जनेन हतमास्फोटितमत एव भिन्नं विदीर्णमद्रिशृङ्गमिव पर्वतसान्विवापतन्तं मूर्च्छन्तं दृष्ट्वा प्ररूढैः प्रोद्गतैः पुलकैः रोमभिरञ्चिता व्याप्ता अत एव चारवो मनोहरा देहा गात्राणि येषां प्रफुल्लितरोमाञ्चितविग्रहास्त्रिदशेन्द्रमुख्याः पुरंदरप्रभृतयो देवाः प्रमोदमानन्दमगमन् प्रापुः ।।५१।।

हिन्दी—प्रलयकाल की आँधी से टूटकर गिरे हुये पहाड़ की चोटी के समान भाले के चोट से मरकर गिरे हुये उस तारकासुर को देखकर इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का शरीर रोमाञ्च से फूल उठा और वे बहुत प्रसन्न हो उठे ।

यत्रापतत्स दनुजाधिपतिः परासुः
संवर्तकालनिपतच्छिखरीन्द्रतुल्यः ।
तत्रादधात्फणिपतिर्धरणीं फणाभि-
स्तद्भूरिभारविधुराभिरधो व्रजन्तीम् ।।५२।।

अन्वयः—परासुः संवर्त्तकालनिपच्छिखरीन्द्रतुल्यः सः दनुजाधिपतिः यत्र अपतत् तत्र फणिपतिः अधः व्रजन्तीम् धरणीम् तद्भूरिभारविधुराभिः फणाभिः अदधात्।

संजी०—यत्रेति ॥ परासुर्गतप्राणः मृत इति यावत्। अत एव संवर्तकालः प्रलयकालस्तत्र निपतता शिखरीन्द्रेण पर्वतराजेन तुल्यः समानः स दनुजानां दैत्यानामधिपतिस्तारको यत्र भूमिदेशेऽपतन्मूर्च्छितस्तत्र भूमिदेशे फणिपतिः शेषोऽधो व्रजन्ती नीचैर्गन्तुं प्रवर्तमानां धरणीं फणाभिस्तस्य तारकस्य भूरिभारेण विधुराभिर्भुग्नीभवन्तीभिरदधार्दधः पतनान्निवर्तयांचक्रे। अनेन तारकविग्रहस्यातिभारवत्त्वं ध्वनितम् ॥५२॥

हिन्दी—प्रलयकाल में गिरे हुये महान् पर्वत के समान वह तारकासुर निष्प्राण होकर जिस स्थान पर गिरा वहाँ नीचे की ओर जा रही पृथ्वी को शेषनाग ने अत्यन्त भारी-भरकम भार से टेढे हो जाने वाले अपने फणों से नीचे जाने से रोक लिया।

स्वर्गापगासलिलसीकरिणी समन्ता-
त्सौरभ्यलुब्धमधुपावलिसेव्यमाना।
कल्पद्रुमप्रसववृष्टिरभून्नभस्तः
शंभोः सुतस्य शिरसि त्रिदशारिशत्रोः ॥५३॥

अन्वयः—त्रिदशारिशत्रोः शंभोः सुतस्य सिरसि नभस्तः स्वर्गापगासलिलसीकरिणी सौरभ्यलुब्धमधुपावलिसेव्यमाना कल्पद्रुमप्रसववृष्टिः समन्तात् अभूत्।

संजी०—स्वर्गापगेति ॥ त्रिदशानां देवानामरेस्तारकस्य शत्रोः शातयितुः। हन्तुरिति यावत्। 'शंभोः सुतस्य कुमारस्य शिरसि शीर्षे। 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः। नभस्य आकाशसकाशात्। पञ्चम्यास्तसिल्। स्वर्गापगाया गङ्गायाः सलिलस्य सीकरः सृताम्बुकणाः। 'सीकरोऽम्बुकणाः सृताः' इत्यमरः। ते विद्यन्ते यस्याम्। तथा सौरभ्ये सौगन्ध्ये लुब्धया मधुपानां भ्रमराणामावल्या पंक्त्या कर्त्र्या सेव्यमाना श्रीयमाणा कल्पद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य प्रसवानां पुष्पाणाम्। 'प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोचने' इति विश्वः। वृष्टिरभूत्। तारकवधजनितानन्दार्णवमग्ना व्योमस्थिता विष्ण्वादयो देवाः कुमारमस्तकोपरि कल्पद्रुमपुष्पाणि विचकरुरित्यर्थः ॥५३॥

हिन्दी--उस समय दैत्यशत्रु उन कार्तिकेय के शिर पर आकाशमण्डल से आकाशगङ्गा के जल के फुहारों से भरी सुगन्ध के लोभी भौंरो से परिपूर्ण कल्पवृक्ष में उत्पन्न होनेवाले पुष्पों की वृष्टि चारों ओर से होने लगी।

पुलकभरविभिन्नवारबाणा भुजविभवं बहु तारकस्य शत्रोः।
सकलसुरगणा महेन्द्रमुख्याः प्रमदमुखच्छविसंपदोऽभ्यनन्दन् ॥५४॥

अन्वयः--प्रमदमुखच्छविसंपदः पुलकभरविभिन्नवारवाणाः महेन्द्रमुख्याः सकलसुरगणाः वहु तारकस्य शत्रोः भुजविभवम् अभ्यनन्दम्।

संजी०--पुलकेति॥ प्रमदा उत्कृष्टा या मुखच्छविर्वदनकान्तिः सैव संपद्वैभवं येषां तारकवधजनितमानन्दमेव महतीं संपदं मन्यमानाः। अत एव पुलकभरेण रोमाञ्चभारेण विभिन्नानि स्फुटितानि वारबाणानि कवचानि येषाम्। 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः। प्रथमविग्रहप्रमाणनिर्मितानां कवचानामिदानीमानन्दवशात्प्रफुल्लद्विग्रहेषु संकीर्णतया विदलनमुचितमेवेति भावः। एवं भूता महेन्द्रमुख्याः पुरंदरप्रभृतयः सकलसुरगणाः समस्तवृन्दारकसंघा बहु महत्तारकस्य शत्रोः कुमारस्य भुजविभवं बाहुपराक्रममभ्यनन्दन् 'साधु ते विक्रमः' इति तुष्टुवुः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥५४॥

हिन्दी--उस समय आनन्दातिरेक से इन्द्रादि प्रमुख देवताओं के मुखकमल विकसित हो उठे। रोमाञ्च तो इतना हुआ कि उससे उनके शरीर पर कसे कवच तड़तड़ा कर टूट गये। इस प्रकार आनन्दमग्न हुये इन्द्रादि समस्त प्रमुख देवता उन कार्त्तिकेय के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे।

इति विषमशरारेः सूनुना जिष्णुनाजौ
त्रिभुवनवरशल्ये प्रोद्धृते दानवेन्द्रे।
बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य
व्यजयत सुरचूडारत्नघृष्टाग्रपादः ॥५५॥

अन्वयः--जिष्णुना विषमशरारेः सूनुना त्रिभुवनवरकाल्ये दानवेन्द्रे इति प्रोद्धृते अथ बलरिपुः नाकस्य आधिपत्यम् प्रपद्य सुरचूड़ारत्नघृष्टाग्रपादः व्यजयत।

संजी०--इतीति॥ जिष्णुना जयशीलेन विषमशरारेः पञ्चशरशत्रोर्हरस्य सूनुना कुमारेण त्रिभुवनस्य भुवनत्रयस्य वरे श्रेष्ठे शल्ये शत्रौ। 'शल्यश्च कथितः शत्रौ मदनद्रुमयोरपि' इति विश्वः। दानवेन्द्रे तारक इत्येवंप्रकारेण प्रोद्धृत उत्खनिते। मारिते सतीत्यर्थः। अथ तारकवधा-

नन्तरं बलरिपुः पुरंदरो नाकस्य स्वर्गस्याधिपत्यं राज्यं प्रपद्य प्राप्य सुराणां चूडारत्नैर्मुकुटमणिभिर्घृष्टावग्रपादौ पादाग्रे यस्य। षष्ठीसमासे राजदन्तादित्वादग्रशब्दस्य पूर्वनिपातः। तथाभूतः सन्। व्यजयतः। सर्वोत्कर्षेण ववृत्त इत्यर्थः। स स्वर्गराज्यं प्राप्य निष्कण्टकतयाभुनगिति भावः। व्यजयतेति 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम्। मालिनीवृत्तम्। लक्षणं तूक्तप्रायम् ॥५५॥

यं प्रासूत सुतं पुरा च जननी नाम्ना सुहीरेति सा
ख्यातो यस्य बुधेन्द्रमस्तकमणिः श्रीलक्ष्मणाख्यः पिता।
यद्भ्रातृद्वितयं महद्विजयते विद्वत्तया मण्डितं
तेनासौ रचिता कुमारविवृतिः संजीवनी जीवदा॥

संवत्सरेऽङ्काद्रिपुराण (१८७०) तुल्ये नभस्यमासे बहुले दले च।
तिथावनङ्गस्य सजीववारे टीका कुमारस्य समापदेवा॥

शुद्धं त्वशुद्धं च विवेचनीयं सर्वत्र विद्यार्णवपारगेण।
मयोक्तमेतद्विदुषा परेण पक्षेऽपरस्मिन्ननुकम्पनीयः॥

टीकासंयुतकाव्यपञ्चकमथ स्तोत्राणि दिक्संख्यका-
न्येकश्छन्दसि चैक एव गणिते साहित्यशास्त्रे त्रयः।
प्राक्काव्यद्वयटिप्पणीद्वयमिति ग्रन्थावलीसंगता
सीतारामकवेः कृतिः कृतिगले नक्षत्रमालायताम्॥

इति श्रीपर्वणीकरोपनामकश्रीलक्ष्मणभट्टात्मजसतीगर्भसंभवश्रीसीताराम-
कविविरचितया संजीवनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः
श्रीकालिदासकृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
तारकासुरवधो नाम सप्तदश सर्गः॥

हिन्दी—इस प्रकार विजयी कार्त्तिकेय ने जब समस्त संसार के हृदय में काँटे के समान चुभने वाले उस तारकासुर को मार डाला तब पुनः इन्द्र स्वर्ग का राज्य प्राप्त कर प्रणाम करने के समय देवगणों के मुकुटमणियों के रत्नों से घृष्टाग्रपाद हो सर्वोत्कृष्टता से वर्त्तने लगे।

इस प्रकार श्रीकालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के
सप्तदश सर्ग की डॉ० सुधाकर मालवीय कृत
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

परिशिष्ट

अथ कुमारसम्भवस्य

अष्टमः सर्गः

मल्लिनाथकृतया संजिविन्या समेतः

अथ श्रृङ्गारमुभयोः.................................।
कुमारसंभवकाले सर्गेऽस्मिन्नाह संप्रति ।।
सोऽपि संक्षिप्तसंपन्नसंयुक्तश्च समृद्धिमान् ।
इति भेदाश्चतुर्धोक्ताश्चतुर्णां च वियोगिनाम् ।।
तत्रावस्थाप्रभेदेन श्रृङ्गारे नायिका त्रिधा ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा च तत्र दरीसाध्वसाविलाम् ।।
मुग्धावस्थां समाश्रित्य देव्या आद्यसमागमे ।
आदावेकादश श्लोकाः ख्यातपूर्वानुरागिणोः ।।
प्रथमं नाम श्रृङ्गारं शिवयोः कथितं कविः ।
चुम्बनेष्वधरेत्यत्र लक्षणं त्वस्य वक्ष्यते ।।

पाणिपीडनविधेरनन्तरं शैलराजदुहितुर्हरं प्रति ।
भावसाध्वसपरिग्रहादभूत्कामदोहदसुखं मनोहरम् ।।१।।

संजी०--पाणीति ।। पाणिपीडनविधेरनन्तर पाणिग्रहणानन्तरम् । विधेरिति पञ्चमी षष्ठी च । उभयथाप्यनुशासनसंभवादित्युक्तं प्राक् । शैलराजदुहितुः पार्वत्याः कर्त्र्याः तं हरं प्रति भावसाध्वसपरिग्रहान्मनोहरं चित्ताकर्षकं कामदोहदम् । कामसंवर्धकमित्यर्थः । 'तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् । पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्' इति शब्दार्णवे । तच्च तत्सुखं कामदोहदसुखमभूत् । हरस्येति शेषः । नायिकानायकयोरन्योन्यानुभवदर्शनात्सुखमाविर्भवति । तच्च मदनोद्दीपकमिति रसविदां स्थितिः । तथा च हरस्य गौर्यां नवोढायां स्वगोचरभावप्रयुक्तसाध्वसदर्शनात्सुखमाविर्भवति । तच्च मदनाकारं प्रादुर्बभूवेत्यर्थः । तत्र रसभावस्थायिनः कार्यमनुभावः । तदुक्तम्—'रसा गच्छन्ति संस्थानं यत्कार्यमुपलक्ष्यते । सोऽनुभावः.............. संस्थानसूचकः ।।' इति ।।१।।

हिन्दी--विवाह के बाद पार्वती को अनुराग से समागमका भय उत्पन्न होने से पार्वती का शरीर शिवजी के प्रति काम के क्षभिलाषा से मनोहर हो गया ।

विमर्श--पद के योग से हर शब्द में 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इस वार्तिक से द्वितीया विभक्ति हुई । इस सर्ग में रथोद्धता छन्द है ।।१।।

उक्तं भावसाध्वसम् । तस्य सुखमयत्वं च वर्णयति—

व्याहृता प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।
सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥२॥

अन्वयः—सा व्याहृता (सती) प्रतिवचो न सनधे अविलम्बितांऽशुका गन्तुम् ऐच्छत्, पराङ्मुखी (सती) प्रतिवचो न स्म, तथाऽपि पिनाकिनो रतये (बभूव) ।

संजी०—व्याहृतेति ॥ सा पार्वती व्याहृता यत्किंचिदभिहिता सती प्रतिवचः प्रत्युत्तरं न संदधे । न ददावित्यर्थः । अवलम्बितांशुका गृहीतवस्त्रा सती गन्तुमपसर्पतुमैच्छदिच्छति स्म । इषिधातोर्लङ् । 'इषुगमियमां छः' इति छकारः । पराङ्मुखी सती शयनं सेवते स्म । अनभिमुखमशयिष्टेत्यर्थः । तथापि इत्थं साध्वसात्प्रतिकूलचेष्टितापीत्यर्थः । पिनाकिनः शिवस्य रतये सुखाय । बभूवेति शेषः प्रातिकूल्यमपि तस्यानन्दकरमभूदित्यर्थः । एतेन नवोढाया देव्या मौग्ध्याद्विजितं तन्ममत्वमवसेयम् ॥२॥

हिन्दी—पार्वती ने शिवजी के कुछ कहने पर उत्तर नहीं दिया, शिवजी से आँचल पकडने पर बाहर जाने की इच्छा की, करवट फेर कर बिछौने में लेटती थीं तो भी वे शिवजी की प्रीति के लिए हुई ।

कैतवेन शयिते कुतूहलात्पार्वति प्रतिमुखं निपातितम् ।
चक्षुरुन्मिषति सस्मितं प्रिये विद्युदाहतमिव न्यमीलयत् ॥३॥

अन्वयः—पार्वती प्रिये कुतूहलात् कैतवेन शयिते (सति) मुखं प्रति निपातितं चक्षुः सस्मितम् उन्निर्षात, विद्युता आहतम् इव न्यमीलयत् ।

संजी०—कैतवेनेति ॥ प्रिये भर्तरि कुतूहलात् । एषा किं करिष्यतीति बुभुत्सयेत्यर्थः । कैतवेन कपटेन शयिते सुप्ते सति पार्वती कर्त्री प्रतिमुखं यथा तथा निपातितम् । प्रियस्वापपरीक्षार्थं तदभिमुखं प्रवर्तितमित्यर्थः । चक्षुः स्वदृष्टिं सम्मितमुन्मिषति । पुनः प्रिये सहासं पश्यतीत्यर्थः । विद्युदाहतं विद्युता प्रतिहतमिव न्यमीलयत् । साध्वसादिति भावः । एतेन किंचित्साध्वसस्यापचयो व्यज्यते ॥३॥

हिन्दी—पार्वती प्रिय शिवजी के कुतूहल से सोने का बहाना करने पर उनके मुख में डाली गई आँखको मुस्कुराहट के साथ शिवजी के देखने पर बिजली से ताडत के समान मूँद लेती थी ।

नाभिदेशनिहितः सकम्पया शंकरस्य रुरुधे तया करः ।
तद्दुकूलमथ चाभवत्स्वयं दूरमुच्छ्वसितनीविबन्धनम् ॥४॥

अन्वयः—नाभिदेशनिहितः शङ्करस्य करः सकम्पया तया तरुधे, अथ तदनुकूलं स्वयं दूरम् उच्छ्वसितनीविबन्धनम् अभवत् ।

संजी०—नाभीति ।। नाभिदेशनिहितः । नीविमोचनायेति शेषः । शंकरस्य करः सकम्पया वेपथुमत्या । प्रियकरस्पर्शादुत्पन्नसात्विकभावयेत्यर्थः । तया पार्वत्या रुरुधे निवारितः । अथ च तथापीत्यर्थः । तद्दुकूलं स्वयं स्वत एव दूरमत्यन्तमुच्छ्वसितं स्रस्तं नीविबन्धनं नीविग्रन्थिर्यस्य तत्तथाभूतमभवत् । रतिपारवश्यादिति भावः ।।४।।

हिन्दी—पार्वती के नाभिदेश में रक्खे गये शिवजी के हाथ को काँपती हुई पार्वती ने रोक दिया, तब उनका वस्त्र स्वयम् मूर तक शिथिल नीवीबन्धवाला हो जाता था ।

विमर्श—रुरुधे='रुधिर् आवरणे' धातु से कर्म में लिट् ।

एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति ।
सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ।।५।।

अन्वयः—'हे आलि ! रहसि शङ्करः एवं निगृहीत साध्वसं सेव्यताम् ।' इति सभीभिः उपदिष्टं सा शङ्करे प्रमूखवर्तिनि सति आकुलता न अस्मरत् ।

संजी०—एवमिति ।। हे आलि सखि पार्वति ! रहसि शंकर एवम् । स्वोपदिष्टप्रकारेणेत्यर्थः । निगृहीतसाध्वसं निरस्तभयं यथा तथा सेव्यतामिति । सखीभिरुपदिष्टमुक्तं वचनं सा पार्वती प्रिये शंकरे प्रमुखवर्तिनि सत्याकुला साध्वसविह्वला सती नास्मरत् । न स्मृतवतीत्यर्थः । स हि भयपरिप्लुते चेतसि दृष्टतरोऽप्युपदेशः संसारमाधत्त इति भावः ।।५।।

हिन्दी—'हे सखि ! एकान्त में शिवजी का भय छोड़ कर इस प्रकार सेवा करो ।' इस तरह सणियों से उपदेश दिये गये वचन को पार्वती शिवजी के सम्मुख होने पर भय से विह्वल होती हुई भूल जाती थीं ।

विमर्श—आलि=आलि शब्द से 'कृनिकाशदक्तिः' इससे ङीष होकर सम्बुद्धि में 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इस सूत्र से ह्रस्व हुआ है ।

अप्यवस्तुनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम् ।
वीक्षितेन परिगृह्य पार्वती मूर्धकम्पमयमुत्तरं ददौ ।।६।।

अन्वयः—कथाप्रवृत्तये अवस्तुनि अपि प्रस्नतत्परम् अनुङ्गशासनं पार्वती वीक्षितेन परिगृह्य मूर्धकम्पमयम् उत्तरं ददौ ।

संजी०—अपीति ।। कथाप्रवृत्तये संलापप्रवर्तनायावस्तुन्यप्रस्तुतार्थेऽपि प्रश्नतत्परम् । यत्किंचित्पृच्छन्तमित्यर्थः । अनङ्गशासनमीश्वरं पार्वती

वीक्षितेन । न तु वाचेत्यर्थः । परिगृह्याङ्गीकृत्य मूर्धकम्पमयं शिरःकम्पस्वरूपम् । स्वार्थे मयट् । उत्तरं ददौ । न तु वाङ्मयं साध्वसादिति भावः । विहृतनामा लज्जानुभाव उक्तः । तदुक्तं रतिरहस्ये—ईर्ष्यामानातिलज्जाभ्यां न दत्तं योग्यमुत्तरम् । क्रियया व्यज्यते यत्र विहृतं तदुदीरितम् । इति ॥६॥

हिन्दी—बातचीत करने के लिए अप्रस्तुत विषय में भी प्रश्न करने में तत्पर शिवजी को पार्वती दर्शनमात्रा से स्वीकार कर (न कि वचन से) शिरः कम्पस्वरूप उत्तर देती थीं ।

पुनस्तमेवाह—

शूलिनः करतलद्वयेन सा संनिरुध्य नयने हृतांशुका ।
तस्य पश्यति ललाटलोचने मोघयत्नविधुरा रहस्यभूत् ॥७॥

अन्वयः—रहित हृतांऽशुका करतलद्वयेन शूलिनः नयने संनिरुध्य सा तस्य ललाट लोचने पश्यति (सति) मोघयत्नविधुरा अभूत् ।

संजी०—शूलिन इति ॥ सा पार्वती रहसि हृतांशुका प्रियेणाकृष्टवस्त्रा सती करतलद्वयेन । स्वकीयेनेत्यर्थः । शूलिनो हरस्य नयने नेत्रद्वयं संनिरुध्य संच्छाद्य तस्य शूलिनो ललाटलोचने तृतीयेऽक्षिण पश्यति सति मोघयत्नाऽफलाखिलप्रयासात एव विधुराभूत् । तृतीयकराभावादिति भावः । एतेन किंचिद्धाष्टर्चादयो व्यज्यन्ते ॥७॥

हिन्दी—पार्वती एकान्त में प्रिय के वस्त्र खींचने पर अपनी दोनों हथेलियों से शिवजी के दोनों नेत्रों को रोककर ललाट (लिलार) पर नेत्रवाले शिवजी के देखते रहने पर अपने यत्न के निष्फल होने से आकुल हो जाती थीं ।

चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं सन्नहस्तमदयोपगूहनम् ।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ॥८॥

अन्वयः—चुम्बनेषु अधरदानवर्जितम् अदयोपगूहने सन्नहस्तं दुर्लभप्रतिकृतं क्लिष्टमन्मथम् अपि वधूरतं प्रभोः प्रियम् (अभूत्) ।

संजी०—चुम्बनेष्विति ॥ चुम्बनेष्वधरदानवर्जितमोष्ठार्पणरहितमदयोपगूहने निर्दयालिङ्गने सन्नौ स्तब्धौ हस्तौ करौ यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । तथा दुर्लभप्रतिकृतम् । प्रगल्भत्वान्नखदन्तताडनाद्यकृतप्रयत्नमित्यर्थः । अत एव क्लिष्टमन्मथं लज्जयोपरुद्धमदनमपि वध्वा नवोढाया रतं वधूरतं प्रभोरीश्वरस्य प्रियम् । अभूदिति शेषः । 'वधूः स्नुषानवोढास्त्रीभार्यासृष्टा-

ङ्गनासु च' इति विश्वः। अयं लज्जासाध्वसाभ्यां संकुचितोपचारत्वात्संक्लिष्टसंभोगः। तदुक्तं भूपालेन—युवानौ यत्र संक्षिप्तसाध्वसव्रीडनादिभिः। उपचारान्निषेवन्ते स संक्लिष्ट इतीरितः। इति ॥८॥

हिन्दी—अपने चुम्बनों में ओष्ठ के अर्पण से रहित, निर्दयतापूर्वक आलिङ्गन में शिथिल हाथो वाला, नखक्षत दन्तक्षत आदि प्रतिकार से रहित, अत एव लज्जा के कारण कामदेव के रोके जाने पर नवपरिणीता वधू का संभोग शिवजी को अभीष्ट ही हुआ।

यन्मुखग्रहणमक्षताधरं दानमव्रणपदं नखस्य यत्।
यद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत् ॥९॥

अन्वयः—पार्वती प्रियस्य अक्षताऽधरं यत् मुखग्रहणम् अव्रणपदं यत् नखं, सदयं यत् रतं तत् विषहते स्म इतरत् न (विषहते स्म)।

संजी—यदिति ॥ पार्वती प्रियस्य संबन्ध्यक्षतोऽखण्डितोऽधरो यस्मिंस्तत्तथोक्तं यन्मुखग्रहणं मुखचुम्बनम्। अव्रणपदं लक्ष्मरहितम्। 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। दत्तं यच्च नखं नखकर्म यत्सदयं रतं तत्सर्वं विषहते सहते स्म। नेतरद्विपरीतम्। प्रचण्डमिति यावत्। तच्चुम्बनं नखं सुरतं वा न सहते स्म। नवोढात्वादिति हृदयम्। तदुक्तं रतिरहस्ये—सात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रतिलोमतः। सिद्धिं गच्छन्ति। वा तस्मान्मध्येन साधयेदिति। नवोढाम् इति ॥९॥

हिन्दी—पार्वती प्रिय के अधर को क्षत किये बिना जो चुम्बन, व्रण किये विना जो नखकर्म और दया पूर्वक जो संभोग क्रिया उसको सह लेती थीं उससे भिन्न कठोर सम्भोग को नहीं।

रात्रिवृत्तमनुयोक्तुमुद्यतं सा प्रभातसमये सखीजनम्।
नाकरोदपकुतूहलं ह्रिया शंसितुं तु हृदयेन तत्वरे ॥१०॥

अन्वयः—सा प्रभातसमये रात्रिवृत्तम् अनुयोक्तुम् उद्यतं सखीजनं ह्रिया अपकुतूहलं न अकरोत्, हृदा तु शंसितुं तत्वरे।

संजी०—रात्रीति ॥ सा पार्वती विभातसमये प्रभातकाले रात्रिवृत्तम्। सुरतवृत्तान्तमित्यर्थः। अनुयोक्तुं प्रष्टुम्। प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः। उद्यतं प्रवृत्तं सखीजनं ह्रिया लज्जयापकुतूहलं निराकाङ्क्षं नाकरोत्। न किंचिदाचष्ट इत्यर्थः। हृदयेन हृदा च शंसितुं तत्वरे त्वरिताभूत्। औत्सुक्यादिति भावः। त्वरा संभ्रमादीनामनुभावत्वादिति ॥१०॥

हिन्दी—पार्वती ने प्रातःकाल में रात का वृत्तान्त पूछने में तत्पर सखी जनको लज्जा के कारण उत्कण्ठा से रहित नहीं किया मनसे तो कहने के लिए शीघ्रता करती थीं।

विमर्शः—तत्वरे='त्रि त्वरा संभ्रमे' धातु से लिट् लकार का रूप है ॥१०॥

दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः ।
प्रेक्ष्य बिम्बमुपबिम्बमात्मनः कानि-कानि न चकार लज्जया ॥११॥

अन्वयः—दर्पणे परिभोगदर्शिनी सा पृष्ठतो निषेदुषः प्रणयिनो बिम्बम् आत्मनो बिम्वम् अनु प्रेक्ष्य लज्जया कानि कानि न चकार।

संजी०—दर्पण इति ॥ किंचेति चार्थः। दर्पणे मुकुरे परिभोगो नखक्षतादिसंभोगचिह्नं पश्यतीति परिभोगदर्शिनी सा पार्वती पृष्ठतः पश्चाद्भागे निषेदुषः स्थितवतः। सदेः क्वसुः। प्राणयिनः प्रियस्य हरस्य बिम्बं प्रतिबिम्बम्। दर्पणे संक्रान्तमित्यर्थः। आत्मनः स्वस्य बिम्बमनु। प्रतिबिम्बस्य पृष्ठत इत्यर्थः। 'अनुर्लक्षणे' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद्द्वितीया। प्रेक्ष्य लज्जया। स्वचापलप्राकटचकृतयेत्यर्थः। कानि कानि यानि यानि भेदवाच्यानि। अङ्गसंवरणादिचेष्टितानीत्यर्थः। उक्तं च—लज्जानुभावेन साचीकृता वर्णवैवर्ण्याधोमुखादिकृत् इति। चकार ॥११॥

हिन्दी—दर्पण में अपने संभोग चिह्नों को देखने वाली पार्वती अपने पीछे रहे हुए प्रिय शिवजी के प्रतिबिम्ब को अपने प्रतिबिम्ब के पीछे देख कर लज्जा से किन-किन चष्टाओं को नहीं करती थीं।

नीलकण्ठपरिभुक्तयौवनां तां विलोक्य जननी समाश्वसत् ।
भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातुरस्यति शुचं वधूजनः ॥१२॥

अन्वयः—नीलकण्ठपरिभुक्तयौवनां तां विलोक्य जननी समाश्वसत्; वधूजनः भर्तृवल्लभनया मातुः मानसीं शुचम् अस्यति।

संजी०—नीलकण्ठेति ॥ नीलकण्ठेन परिभुक्तं यौवनं यस्याः सा तथोक्ताम्। प्रियेण भुक्तयौवनामित्यर्थः तां पार्वतीं विलोक्य जननी मेना समाश्वसत्। संतुतोषेत्यर्थः श्वसिधातोर्लङ्। 'अड्गार्ग्यगालवयोः' इति विकल्पादडागमः। तथाहि। वधूजनो भर्तृवल्लभतया पतिवात्सल्येन मातुर्मानसीं मनोभवां शुच शोकमस्यति निरम्यति हि। 'विपर्ययाद्विपर्ययश्च' इत्यर्थादवसेयं सामान्यैकविशेषणसमर्थनरूपोर्थान्तरन्यासः ॥१२॥

हिन्दी—शिवजी से उपभुक्त यौवनवाली पार्वती को देखकर माता (मैना) आश्वस्त हुई क्योंकि वधूजन पति की प्रिय होने से अपनी माता के मन में उत्पन्न होने वाले शोक का निवारण करती है।

सम्प्रति देव्या मुग्धावस्थातो मध्यमावस्थाप्राप्तिमाह—

वासराणि कतिचित्कथंचन स्थाणुना रतमकारि चानया ।
ज्ञातमन्मथरसा शनैः शनैः सा मुमोच रतिदुःखशीलताम् ॥१३॥

अन्वयः—स्थाणुना अनया (सह) कतिचित् वासराणि कथञ्चन रतम् अकारि । सा शनैः ज्ञातमन्मथरसा रतिदुःखशीलतां मुमोच ।

संजी०—वासराणीति । स्थाणुना शंभुना कर्त्रा प्रिया पार्वती कर्मभूता कतिचिद्वासराणि । कैश्चिदहोभिरित्यर्थः । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । कथंचन कृच्छ्रेण पदं पदप्रक्षेपमकार्यत कारिता । सुरतकर्मणीति शेषः । करोतेर्ण्यन्तात्कर्मणि लुङ् । 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इत्यणि कर्तुः कर्मत्वे 'ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः' इत्यभिहितत्वं च । सा कृतपदा पार्वती ज्ञातमन्मथरसानुभूतसुरतसुखास्वादा सती । 'आस्वादे विरसमाहुः' इति शब्दानुशासने । शनै शनैः क्रमेण रतौ रते दुःथशीलतां प्रतिकूलस्वभावतां मुमोच 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः । मध्यमावस्थां प्राप्तेत्यर्थः ॥१३॥

हिन्दी—शिवजी ने पार्वती के साथ कुछ दिनों तक किसी तरह समागम किया । पार्वती ने धीरे-धीरे कामरस का अनुभव करती रमण में प्रतिकूल स्वभाव को छोड़ दिया ।

विमर्श—वासराणि = काल के अत्यन्त संयोग में द्वितीया ॥१३॥

तुल्यलज्जास्मरत्वमेवाह—

सस्वजे प्रियमुरो निपीडनं प्रार्थितं मुखमलेन नाहरत् ।
मेखलाप्रणयलोलतां गतं हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा ॥१४॥

अन्वयः—सा उरोनिपीडनं प्रियं सस्वजे, अनेन प्रार्थितं मुखं न अहरत, मेखला प्रणयलोलतां गतम् अस्य हस्तं शिथिलं रुरोध ।

संजी०—सस्वज इति ॥ सा पार्वत्युरसोनिपीडनं यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा प्रियं सस्वजे आलिङ्गितवती । न तु निष्पन्दमास्तेत्यर्थः । अनेन स्मरातिशयः सूचितः । तथाऽनेन प्रियेण प्रार्थितं चुम्बनार्थं याचितम् । 'याच्ञायामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः । मुख नाहरत् नाऽवकृयत् । मेखलायां प्रणयः परिचयः । 'प्रणयः स्यात्परिचये याच्ञायां सुहृदेऽपि च' इति यादवः । सत्र लोलतां चञ्चलतां गतमस्य हस्तं शिथिलं मन्दं रुरोध न्यवारयत् । न तु निर्भरमिति भावः । अत्र सहनप्रतीकाराभ्यां तुल्यलज्जास्मरत्वं व्यज्यते ॥१४॥

हिन्दी—पार्वती ने अपनी छाती को पीडित करके प्रिय (शिवजी) को

आलिंगन किया, चुम्बन के लिये उनसे प्रार्थित मुख को नहीं हटाया और मेखला (करधनी) हटाने के लिए चञ्चल उनके हाथ को शिथिलता के साथ रोका।

विमर्श--सस्वजे = 'स्वञ्ज सङ्गे' धातु से लिट् लकार का रूप है ॥१४॥

अथ देव्याः प्रगल्भावस्थां दर्शयितुं तयोः समानरागित्वं तावदाह--

भावसूचितमदृष्टविप्रियं चाटुमत्क्षणवियोगकातरम्।
कैश्चिदेव दिवसैस्तथा तयोः प्रेम गूढमितरेतराश्रयम् ॥१५॥

अन्वयः--तयोः भावसूचितम् अदृष्टविप्रियं चाटुमत् क्षणवियोगकातरं गूढं तयोः प्रेम कैश्चित् एव दिवसैः इतरेतराश्रयम् (अभूत्)।

संजी०—भावेति ॥ तयोः शिवयोः कैश्चित्कतिभिश्चिदेव दिवसैः। भावसूचितं भावैश्चेष्टाभिः कटाक्षनिक्षेपादिभिः सूचितं ज्ञापितं विप्रियमप्रियाचरणं यत्र तत्तथोक्तम्। अचाटूनि प्रियोक्तयोयस्मिन्सन्ति तच्चाटुमत् भूतार्थे मतुप्। क्षणवियोगात्क्षणमात्रविरहादपि कातरं भीरुत्वम्। इतरेतराश्रयमन्योन्यविषयं प्रेमपदाभिलष्याऽङ्कुरावस्था भवतीत्यर्थः। गूढमभूत्। क्रमेणानुरागपदाभिलष्यां प्राप्तमित्यर्थः। तदेतत्सर्वं स्फुटीकृतं भूपालेन —(अङ्कुरपल्लवकलिकाप्रसूनफलभागियम्) इत्यादिना। एका रतिरेव स्थायीभूता रसो भवति तस्याश्चाङ्कुरावस्थालेदोपपत्तौसा प्रेमादिपदैरभिलष्यत इत्यर्थः। 'शप्रेमभेदरहितं यूनोर्यद्भावबन्धनम्। भावो रति राग एव स्संवेद्यदशाप्राप्तयावदाश्रयवृत्तिश्चेदनुरागः' इति मानादिलक्षणं विस्तरभयान्न लिख्यत इत्याकर एव द्रष्टव्यम् ॥१५॥

हिन्दी--चेष्टाओं से सूचित, अप्रिय नहीं देखे गये, प्रिय वचनों से युक्त, अल्प समय के विरह में भी कातर और गुप्त उन दोनों का प्रेम कुछ ही दिनों में परस्पर में आश्रय करने वाला हो गया।

विमर्श—दिवसैः मैं 'अपवर्गे तृतीया' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति है ॥१५॥

अथ देव्याः प्रगल्भावस्थामाश्रित्य संभोगमाह—

तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।
सागरादनपगा हि जाह्नवी सोऽपि तन्मुखरसैक वृत्तिभाक् ॥१६॥

अन्वय--वधूः आत्मसदृशं तं वरं प्रति यथा अन्वरज्यत, वरोऽपि तां प्रति तथैव अन्वरज्यत। हि जाह्नवी सागरात् अनपगा, सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।

संजी०--तामिति ॥ वधूरात्मसदृशं स्वानुरूपं वरं वोढारं प्रति यथान्वरज्यतानुरक्ताभूत्। रञ्जेर्दैवादिकात्कर्तरि लकारः। स्वरितत्वादात्मनेपदम्। तथैव वरोऽपि नवोढोप्यात्मनः सदृक्तामामसदृशम्। 'त्यदादिषु

दृशोऽनालोचने कश्च' इति चकारात्क्विप्प्रत्ययः। तां वधू प्रत्यन्वरज्यत वध्वामनुरक्तोऽभूदित्यर्थः। 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' इत्यनेन सकर्मकत्वम्। दृष्टान्तमाह—जाह्नवी गङ्गा सागरन्नापगच्छतीत्यनपगापेता हि सोऽपि सागरस्तस्या जाह्नव्या मुखरसेनाग्रसलिलेन वक्त्रास्वादेनैका मुख्या निर्वृतिरानन्दो यस्य स तथोक्तः। अत्र दृष्टान्तालंकारः। लक्षणं तूक्तम् इत्थं समानानुरागकथनाद्रसाभासत्वं निरस्तम्। तदुक्तम्—(योषितो बहुसक्तिश्चेद्रसाभासः स उच्यते)। कविनाप्युक्तं मालविकायाम्—(अनातुरोक्तं प्रति विप्रसिद्धता समीपगेनापि रतिर्न मां प्रति। परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वा शरीरनाशोऽपि समानरागयोः।) इति ॥१६॥

हिन्दी—वधू अपने समान उन वर (शिवजी) के प्रति जैसे अनुरक्त हुई, वर (शिवजी) भी उन वधू (पार्वती) के प्रति वैसे ही अनुरक्त हुए। जैसे गङ्गाजी समुद्र को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती है वैसे ही समुद्र भी गङ्गा जी के मुखरस में ही मुख्य आनन्दवाला होता है।

विमर्श—अन्वरज्यत = अनु-उपसर्गपूर्वक रञ्ज रागे' इस दिवादि धातुसे लङ्।

शिष्यतां निधुवनोपदेशिनः शंकरस्य रहसि प्रपन्नया।
शिक्षितं युवतिनैपुणं तया यत्तदेव गुरुदक्षिणीकृतम् ॥१७॥

अन्वयः—रहसि निधुवनोपदेशिनः शङ्करस्य शिष्यतां प्रपन्नया तया तद् युवतिनैपुणं शिक्षितं तया तदेव गुरुदक्षिणीकृतम्।

संजी०—शिष्यतामिति ॥ रहस्येकान्ते निधुवनमुपदिशतीति निधुवनोपदेशिनः सुरतविद्यागुरोः। 'व्यवायो ग्राम्यधर्मो मैथुनं निधुवनं रतम्'। इत्यमरः। शंकरस्य शिष्यतां प्रपन्नया प्राप्तया तया पार्वत्या यद्युवतिनैपुणं युवतिजनोचितं नैपुणम्। सुरतकौशलमित्यर्थः। शिक्षितमभ्यस्तम्। आचरितमित्यर्थः। तदेव गुरुदक्षिणीकृतम्। यथोपदेशकरणाद्दक्षिणासममभूदित्यर्थः। अनेन कृतप्रतिकृतं सूच्यते ॥१७॥

हिन्दी—एकान्त में रमणक्रिया के उपदेश देने वाले शिवजी की शिष्या होने वाली पार्वती ने जो युवति की निपुणता सीखी, उन्होंने उसी को गुरुदक्षिणा के तौर पर शिवजी को अर्पण किया।

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुतहस्तपल्लवा।
शीतलेन निरवापयत्क्षणं मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः ॥१८॥

अन्वयः—अम्बिका दष्टमुक्तम् अधरोष्ठं वेदनाविधुतहस्तपल्लवा (सती) शूलिनो मौलिचन्द्रशकलेन क्षणं निरवापयत्।

संजी०---दष्टमिति। अम्बिका पार्वती दष्टश्चासौ मुक्तश्च तं दष्ट-मुक्तम्। 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इत्यनेन समासः। अधरोष्ठं वेदनया विधुतौ कम्पितौ हस्तपल्लवौ पाणिपल्लवौ यस्याः सा तथोक्ता सती शीतलेन शूलिनो मौलिचन्द्रशकलेन क्षणं निरवापयत्। शीतलोपचारेण निर्व्यथमकरोदिति विश्रम्भोक्तिः। निर्वातेर्धातोर्ण्यन्तात् 'अर्तिह्रीव्लीरीक्नुयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ' इत्यनेन पुगागमः। अत्राधरपीडनात्सुखेऽपि दुःखवदुपचारात्कुट्टिमनामानुभाव उक्तः। तदुक्तम्—(केशाधरादिसंग्रहणे मोदमानापि मानसे। दुःखितेव बहिः कुप्येतत्कुट्टिमम् उदाहृतम्) ॥१८॥

हिन्दी—पार्वती शिवजी के दाँतों से काट कर छोड़े गये अधरोष्ठ को वेदना से हस्तपल्लव को कम्पित करती हुई शिव जी के शिर में स्थित चन्द्रखण्ड से कुछ समय में ही दूर करती थीं ॥१८॥

चुम्बनादलकचूर्णदूषितं शंकरोऽपि नयनं ललाटजम्।
उच्छ्वसत्कमलगन्धये ददौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने ॥१९॥

अन्वयः—अथ शङ्करोऽपि चुम्बनात् अलकचूर्णदूषितं ललाटजं नयनम् उच्छ्वसत्कमलगन्धये पार्वतीवदनगन्धवाहिने ददौ।

संजी०—चुम्बनादिति॥ अथ शंकरोऽपि चुम्बनाच्चुम्बनार्थितोऽलकचूर्णेन दूषितमुपहतं ललाटजं नयनमुच्छ्वसत्कमलगन्धये विकचारविन्दगन्धधारिणे। 'उपमानाच्च' इतीकारः। पार्वत्या वदनगन्धवाहिने। फूत्कारमारुतायेत्यर्थः। ददौ। रजोनिःसारणार्थं तदाभिमुख्येन स्थापितवानित्यर्थः। एतेन देव्याः प्रियवशंवदत्वमुक्तम्। अत्र हरचक्षुष्यलकचूर्णकथनाद्देव्या उपरिभावः सूचितः ॥१९॥

हिन्दी—तब शिवजी ने भी चुम्बन से अलकके चूर्ण से दूषित ललाट में उत्पन्न नेत्र को खिले हुए कमल के गन्ध वाले पार्वती के मुख की वायु को (अलकके चूर्ण को दूर करने के लिए) दे दिया ॥१९॥

एवमिन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनादनुगृहीतमन्मथः।
शैलराजभवने सहोमया मासमात्रमवसद् वृषध्वजः ॥२०॥

अन्वयः—वृषध्वजः एवम् इन्द्रियसुखस्य वर्त्मनः सेवनात् अनुगृहीतमन्मथः (सन्) उमया सह शैलराजभवने मासमात्रम् अवसत्।

संजी०—एवमिति॥ वृषध्वजो हर एवमुक्तरीत्येन्द्रियाणां सुखस्यानुकूलस्य वर्त्मनो मार्गस्य स्त्रीप्रसङ्गस्येत्यर्थः। सेवनात्परिभोगादनुगृहीतमन्मथः पुनरुज्जीवितमदनः सन्। वृषदवजः उमया सह शैलराजभवने

हिमवद्गेहे मासमात्रमवसत्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। मासमात्रमिति वधूवशीकरणकालक्लृप्तिः प्रदर्शिता ॥२०॥

हिन्दी—शिवजी ने इस प्रकार इन्द्रिय सुख के मार्ग का सेवन करने से कामदेव को अनुगृहीत कर पार्वती के साथ हिमालय के प्रसाद में एक मास तक निवास किया ॥२०॥

सोऽनुमान्य हिमवन्तमात्मभूरात्मजाविरहदुःखपीडितम्।
तत्र तत्र विजहार संचरन्नप्रमेयगतिना ककुद्मता ॥२१॥

अन्वयः—स आत्मभूः आत्मजाविरहदुःखपीडितं हिमवन्तम् अनुमान्य अप्रमेयगतिना ककुद्मता तत्र तत्र संपतन् विजहार।

संजी०—स इति ॥ स आत्मभूः शिव आत्मजाया दुहितुर्विरहदुःखेन पीडितं हिमवन्तमनुमान्यानुमतं कृत्वा अप्रमेयगतिनाऽपरिच्छेद्यगतिना ककुद्मता वृषेण संचरन्संचरमाणस्तत्र तत्र नानादेशेषु विजहार ॥२१॥

हिन्दी—तब शिवजी ने पुत्री (पार्वती) के वियोग के दुःख से पीड़ित हिमालय को मना कर अपरिमित गति वाले वृषभ की सवारी कर तत् तत् स्थानों में विहार किया ॥२१॥

मेरुमेत्य मरुदाशुवाहकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतः कृती।
हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरानन्वभूत्सुरततत्परं क्षपाम् ॥२२॥

अन्वयः—मरुदाशुगोक्षकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतः कृती मेरुम् एत्य सुरतमर्दनक्षमान् हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरान् रात्रिम् एत्य अन्वभूत्।

संजी०—मेरुमिति ॥ मरुदाशुवाहनः। पवनजवनवाहनः पार्वतीस्तनाभ्यां पुरस्कृतः। पार्वतीपुरोगतयाश्लिष्ट इत्यर्थः। अन्वभूदित्यनेनान्वयः। कृती कुशलो हरो मेरुमेत्य हेमपल्लवानां विभङ्गाः खण्डास्त एव संस्तरस्तल्पं यस्यां तां तथोक्तां क्षपां रात्रिं सुरततत्परः सुरतासक्तः सन्। अन्वभूत् ॥२२॥

हिन्दी—वायु के समान वेग वाले वृषभ पर आरूढ और पार्वती से आलिङ्गित होकर कुशल शिव जी ने सुमेरु पर्वत को प्राप्त कर सुवर्ण पल्लवों के खण्डरूप बिछौने पर रात का अनुभव किया ॥२२॥

पद्मनाभवलयाऽङ्किताश्मसु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रुषो नवाः।
मन्दरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदनपद्मषट्पदः ॥२३॥

अन्वयः—पार्वतीवदनपद्मषट्पदः (सः) पद्मनाभवलयाऽङ्किताऽश्मसु नवाः अमृतबिप्लुषः प्राप्तवत्सु मन्दरस्य कटकेषु च अवसत्।

हिमवद्गेहे मासमात्रमवसत्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। मासमात्रमिति वधूवशीकरणकालक्लृप्तिः प्रदर्शिता ॥२०॥

हिन्दी—शिवजी ने इस प्रकार इन्द्रिय सुख के मार्ग का सेवन करने से कामदेव को अनुगृहीत कर पार्वती के साथ हिमालय के प्रसाद में एक मास तक निवास किया ॥२०॥

सोऽनुमान्य हिमवन्तमात्मभूरात्मजाविरहदुःखपीडितम्।
तत्र तत्र विजहार संचरन्नप्रमेयगतिना ककुद्मता ॥२१॥

अन्वयः—स आत्मभूः आत्मजाविरहदुःखपीडितं हिमवन्तम् अनुमान्य अप्रमेयगतिना ककुद्मता तत्र तत्र संपतन् विजहार।

संजी०—स इति ॥ स आत्मभूः शिव आत्मजाया दुहितुर्विरहदुःखेन पीडितं हिमवन्तमनुमान्यानुमतं कृत्वा अप्रमेयगतिनाऽपरिच्छेद्यगतिना ककुद्मता वृषेण संचरन्संचरमाणस्तत्र तत्र नानादेशेषु विजहार ॥२१॥

हिन्दी—तब शिवजी ने पुत्री (पार्वती) के वियोग के दुःख से पीड़ित हिमालय को मना कर अपरिमित गति वाले वृषभ की सवारी कर तत् तत् स्थानों में विहार किया ॥२१॥

मेरुमेत्य मरुदाशुवाहकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतः कृती।
हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरानन्वभूत्सुरततत्परंक्षपाम् ॥२२॥

अन्वयः—मरुदाशुगोक्षकः पार्वतीस्तनपुरस्कृतः कृती मेरुम् एत्य सुरतमर्दनक्षमान् हेमपल्लवविभङ्गसंस्तरान् रात्रिम् एत्य अन्वभूत्।

संजी०—मेरुमिति ॥ मरुदाशुवाहनः। पवनजवनवाहनः पार्वतीस्तनाभ्यां पुरस्कृतः। पार्वतीपुरोगतयाश्लिष्ट इत्यर्थः। अन्वभूदित्यनेनान्वयः। कृती कुशलो हरो मेरुमेत्य हेमपल्लवानां विभङ्गाः खण्डास्त एव संस्तरस्तल्पं यस्यां तां तथोक्तां क्षपां रात्रिं सुरततत्परः सुरतासक्तः सन्। अन्वभूत् ॥२२॥

हिन्दी—वायु के समान वेग वाले वृषभ पर आरूढ और पार्वती से आलिङ्गित होकर कुशल शिव जी ने सुमेरु पर्वत को प्राप्त कर सुवर्ण पल्लवों के खण्डरूप बिछौने पर रात का अनुभव किया ॥२२॥

पद्मनाभवलयाऽङ्किताश्मसु प्राप्तवत्स्वमृतविप्रुषो नवाः।
मन्दरस्य कटकेषु चावसत्पार्वतीवदनपद्मषट्पदः ॥२३॥

अन्वयः—पार्वतीवदनपद्मषट्पदः (सः) पद्मनाभवलयाऽङ्किताऽश्मसु नवाः अमृतविप्लुषः प्राप्तवत्सु मन्दरस्य कटकेषु च अवसत्।

संजी०—पद्मनाभेति ॥ पार्वतीवदनपद्मे षट्पदः । प्रियामुखरसास्वादलोल इत्यर्थः । स हरः । पद्मं नाभिर्यस्य स पद्मनाभो विष्णुः । अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः' इत्यत्राजिति योगविभागात्समासान्तः । तस्य वलयैरङ्किता अश्मानो येषां तेषु । अमृतमथनसमय इति भावः । तथा नवाः प्रत्यग्रा अमृतविप्रुषः सुधाबिन्दून्प्राप्तवत्सु मन्दरस्य मन्थाचलस्य कटकेषु नितम्बेषु चावसत् । ऐतेन मन्दरस्यानेकाद्भुताधारत्वान्मनोविनोदकत्वमुक्तम् ॥२३॥

हिन्दी—पार्वती के मुखरूप कमल में भ्रमर के समान आस्वाद लेने में चञ्चल अमृतबिन्दुओं को प्राप्त करने वाले मन्दरपर्वत के समान मध्यभागों पर भी निवास किया ॥२३॥

रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनः ।
एकपिङ्गलगिरौ जगद्गुरुर्निर्विवेश विशदाः शशिप्रभाः ॥२४॥

अन्वय—जगद्गुरुः रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तदृढबाहुबन्धनः (सन्) एक पिङ्गलगिरौ विशदाः शशिप्रभाः निर्विवेश ।

संजी०—रावणेति ॥ जगद्गुरुः । विश्रवसोऽपत्यं रावणो दशकण्ठः । 'तस्यापत्यम्' इत्यण्प्रत्ययः । वृत्तिविषये विश्रवस् शब्दस्य रवणादेशः । रावणस्य ध्वनितात्कैलासोत्पाटनसमयक्ष्वेडिताद्भीतया तया पार्वत्या कण्ठसक्ताभ्यां मृदुबाहुभ्यां बन्धनं यस्य स तथाभूतः । ऐकनेत्रत्वादेकपिङ्गलः कुबेरस्तस्य गिरौ कैलासे विशदा निर्मलाः शशिप्रभाश्चन्द्रिका निर्विवेश बुभुजे । 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इत्यमरः ॥२४॥

हिन्दी—जगत्गुरु (शिवजी ने कैलास पर्वत को उठाते समय रावण के सिंहनाद से डरी हुई पार्वती से अपने कण्ठ में आसक्त बाहुबन्धन को प्राप्त कर कुबेर के पर्वत (कैलास) पर निर्मल चाँदनियों का उपभोग किया ।

विमर्श—ईर्ष्या से पार्वती को देखने से उनके शाप से कुबेर के नेत्र नष्ट हुए । पीछे शिवजी के अनुग्रह से उनका एक नेत्र पिङ्गल (पीला) हो गया, अतएव कुबेर को एकपिङ्ग वा एकपिङ्गल कहते हैं, एक पिङ्गलगिरौ = एकं पिङ्गलं नेत्रम्) यस्य सः (बहु०) तस्य गिरौ (ष० त०) ॥२४॥

तस्य धातु मलयस्थलीरतेर्धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम् ।
आचचाम सलवङ्गकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः ॥२५॥

अन्वयः—जातु धूतचन्दनलतः सलवङ्गकेसरः दक्षिणाऽनिलः चाटुकार इव मलयस्थलीरतेः तस्य प्रियाक्लमम् आचचाम ।

संजी०—तस्येति ।। जातु कदाचिद् धूतचन्दनलतः कम्पितपटीरशाखः । 'समे शाखालते' इत्यमरः । सह लवङ्गस्य केसरैः सलवङ्गकेसरः । 'लवङ्गं देवकुसुमम्' इत्यमरः । विशेषणाभ्यां शैत्यसौरभ्ये दर्शिते । दक्षिणानिलो मलयमारुतः । चाटुकारश्चाटुप्रयोगः । प्रियवाद इति यावत् । भावे घञ् । स इव मलयस्थलीषु मलयाचलप्रदेशेषु रतिः सुरतं यस्य तथोक्तस्य । तत्र रममाणस्येत्यर्थः । तस्य शिवस्य प्रियाक्लमं प्रियायाः सुरतश्रममाचचाम जहार । यथा लोके महानपि श्रम एकेन प्रियवादेनापैति तद्वद्दक्षिणमारुतेनाप्यस्य सकलोऽपि सुरतक्लमो हृत इत्यर्थः ।।२५।।

हिन्दी—किसी समय चन्दनलता को कम्पित करने वाला और लवङ्ग के केसरों से युक्त दक्षिणदिशा का समीर (वायु) चाटू (खुशामद) करने वाले के समान होकर शिवजी की प्रिया (पार्वती) की सुरतक्रीडा की ग्लानि को दूर करता था ।

टिप्पणी—चाटुकारः=चाटु करोतीति ऐसे विग्रह से 'कृञो हेतुताच्छील्याऽनुलोम्येषु' इससे हेत्वादि में प्राप्त ट प्रत्यय का 'न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु' इस सूत्र से निषेध होने से 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय (उपपद०) । इस पद्य में समासोक्ति अलंकार है । २५।।

हेमतामरसताडितप्रिया तत्कराम्बुविनिमीलितेक्षणा ।
खे व्यगाहत तरङ्गिणीमुमा मीनपङ्क्तिपुनरुक्तमेखला ।।२६।।

अन्वयः—उमा हेमतामरसताडितप्रिया तत्कराऽम्बुविनिमीलितेक्षणा मीनपङ्क्तिपुनरुक्तमेखला से तरङ्गिणीं व्यगाहत ।

संजी०—हेमेति ।। उमा गौरी हेमतामरसेन कनककमलेन ताडितः प्रियो यया सा । तेनोत्थितस्य प्रियस्य कराम्बुना कराक्षिप्ताम्भसा विनिमीलितेक्षणा मुकुलिताक्षी । मीनपङ्क्त्या पुनरुक्ता द्विगुणिता मेखला यस्याः साः तथाभूता सती खे तरङ्गिणीं व्यगाहत । तत्र तत्र जलक्रीडामकरोदित्यर्थः ।।२६।।

हिन्दी—पर्वती ने सुवर्णकमल से प्रिय (शिव को) को ताडित कर और उन (शिव जी) के हाथों के जल से आँखों को मूदती हुई मछलियों की पङ्क्ति से द्विगुण (दुगनी) मेखला (करधनी) वाली होकर आकाशगङ्गा में अवगाहन किया (जलक्रीडा की) ।।२६।।

तां पुलोमतनयालकोचितैः पारिजातकुसुमैः प्रसाधयन् ।
नन्दने चिरमयुग्मलोचनः सस्पृहं सुरवधूभिरीक्षितः ।।२७।।

अन्वयः—अयुग्मलोचनः नन्दने पुलोमतनयाऽलकोचितैः पारिजातकुसुमैः ता प्रसाधयन् सुरवभूमिः सस्पृहम् चिरम् ईक्षितः ।

संजी०—तामिति ।। अयुग्मानि लोचनानि यस्य सोऽयुग्मलोचनस्त्र्यम्बकः । युग्मशब्दो विशेष्यनिघ्नोऽप्यास्ते । 'तस्मिन्युग्मासु संविशेत्' 'युग्मान्दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च' । इत्यादिप्रयोगदर्शनात् । नन्दने नन्दनोद्याने पुलोमतनया शची । 'पुलोम्नस्तु शची सुता' इति हरिवंशे । तस्या अलकानामुचितैः पारिजातकुसुमैस्तां प्रसाधयन्नलंकुर्वंश्चिरं सुरवधूभिः सस्पृहमीक्षितः । केन वा पुण्येनायं लभ्यत इति साभिलाषदृष्ट इत्यर्थः । अत्र देवस्यानुकूलनायकत्वं देव्याः स्वाधीनपतिकात्वं चावसेयम् ।।२७।।

हिन्दी—नन्दन उद्यान में इन्द्राणी के अलकों के योग्य पारिजात वृक्ष के फूल से पार्वती को अलंकृत करते हुए शिव जी को देवाङ्गनाओं ने अभिला पूर्वक बहुत समय तक देखा।

इत्यभौममनुभूय शंकरः पार्थिवं च दयितासखः सुखम् ।
लोहितायति कदाचिदातपे गन्धमादनगिरिं व्यगाहत ।।२८।।

अन्वयः—इति शङ्करः वनितासखः (सन्) अभौमं पार्थिवं च सुखम् अनुभूय कदाचित् आतपे लोहितायति (सति) गन्धमादनवनं व्यगाहत।

संजी०—इतीति ।। इतीत्थं शंकरो वनितासखः सन् । भूमौ भवं भौमम् । न भौममभौमं दिव्यं, पृथिव्यां भवं पार्थिवं च सुखमनुभूय कदाचिदातपे लोहितायति लोहितवर्णे भवति सति । अस्तंगते सवितरीत्यर्थः । 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति क्यष्प्रत्ययः । गन्धमादनगिरिं व्यगाहत । पर्वतमुद्दिश्य निवृत्त इत्यर्थः । उद्देशक्रियां प्रति गिरेः कर्मत्वम् । यथाह भाष्यकारः "" । २८ ।।

हिन्दी—इस प्रकार शिवजी ने पार्वती के सहचर होकर दिव्य (स्वर्गीय) और पार्थिव सुख का अनुभव कर किसी समय धूप के लाल होने पर अर्थात् सूर्य के अस्तगत होने पर गन्धमादन पर्वत के वन में प्रवेश किया।

तत्र काञ्चनशिलातलाश्रयो नेत्रगम्यमवलोक्य भास्करम् ।
दक्षिणेतरभुजव्यपाश्रयां व्याजहार सहधर्मचारिणीम् ।।२९।।

अन्वयः—तत्र काञ्चनशिलातलाश्रयः (सः) नेत्रगम्यं भास्करम् अवलोक्य दक्षिणेतरभुजव्यपाश्रयां सहधर्मचारिणीं व्याजहार।

संजी०—तत्रेति ।। तत्र गन्धमादने काञ्चनस्यविकारः काञ्चनं सौवर्णं तच्च तच्छिलातलं तदाश्रयो यस्य स भगवान्नेत्रगम्यं सायंतनम् अर्थाद्दर्शनयोग्यम् । भास्करं सूर्यम् । 'दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादी०'-त्यादिना टप्रत्ययः । अवलोक्य दक्षिणेतरभुजः सव्यबाहुर्व्यपाश्रयो यस्या-

स्ताम् । निजवामभुजमवष्टभ्योपविष्टामित्यर्थः । सह धर्मं चरतीति सहधर्मचारिणीं पत्नीं व्याजहार जगाद ।।२९।।

हिन्दी—गन्धमादन पर्वत में सोने के शिलातल पर बैठकर शिवजी ने नेत्रों से देखे जाने के योग्य सायंकाल के सूर्य को देखकर बाएँ बाहुका सहारा लेने वाली धर्मपत्नी पार्वती को कहा ।

पद्मकान्तिमरुणत्रिभागयोः संक्रमय्य तव नेत्रयोरिव ।
संक्षये जगदिव प्रजेश्वरः संहरत्यहरसावहर्पतिः ।।३०।।

अन्वयः—(हे प्रिये !) असौ अहर्पतिः पद्मकान्तिम् अरुणत्रिभागयोः तव नेत्रयोः संक्रमय्य इव संक्षये प्रजेश्वरो जगत् इव अहः संहरति ।

संजी०—पद्मकान्तिमिति ।। असावह्नां पतिरहर्पतिः सूर्यः । 'अहरादीनां पत्यादिषूपसङ्ख्यानम्' इति रेफादेशः । पद्मकान्तिं पद्मशोभाम् । तृतीयो भागस्त्रिभागः । वृत्तिविषये पूरणार्थत्वं सङ्ख्याया इत्युक्तम् । अरुणस्त्रिभागो ययोस्तयोः । अरुणोपान्तयोरिति भाग्यलक्षणोक्तिः । तव नेत्रयोः संक्रमय्येव । तदानीं पद्मानामविकासान्नेत्रयोस्तु विकासाच्चेयमुत्प्रेक्षा । प्रलयकाले प्रजेश्वरः प्रजापतिर्जगदिवाहर्दिवसं संहरति । अस्तं गच्छतीत्यर्थः ।।३०।।

हिन्दी—(हे प्रिये !) ये सूर्य कमल की शोभा को लाल तृतीय भाग वाले तुम्हारे नेत्रों में मानों संक्रमण कर जैसे प्रजापति जगत् को समेटते हैं, उसी तरह दिन को समेट रहे हैं (सूर्य अस्त पर्वत पर जा रहे हैं) ।।३०।।

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति ।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी ।।३१।।

अन्वयः—विवस्वति मरीचिभिः सीकरव्यतिकरं दूरयति (सति) हे अवनते ! अमी तव पितुः निर्झराः इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां व्रजन्ति ।

संजी०—सीकरेति ।। विवस्तेजोऽस्यास्तीति विवस्वांस्तस्मिन्विवस्वति सूर्ये मरीचिभिः । सहार्थविवक्षायां तृतीया । अत एव विनापि सहशब्देन तृतीया । सीकरव्यतिकरं पय किरणसंपर्कं दूरयति दूरीकुर्वति सति । हे अवनते पार्वति । अमी तव पितुर्भवत्पितुर्हिमवतो निर्झराः प्रवाहाः । 'प्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः । इन्द्रचापं नानावर्णप्रभासमूहस्तस्य परिवेषेण परिवेष्टनेन शून्यतां व्रजन्ति । अर्ककिरणसंपर्ककृतत्वादैन्द्रचापस्य तन्निवृत्त्या निवृत्तिरित्यर्थः ।।३१।।

हिन्दी—सूर्य के जलकण के संपर्क को दूर करने पर झुके हुए शरीर वाली पार्वती ! तुम्हारे पिता के ये झरने इन्द्रचाप के परिवेष से शून्य हो रहे हैं ।।३१।।

दष्टतामरसकेसरत्यजोः क्रन्दतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः ।
निघ्नयोः सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम् ॥३२॥

अन्वयः—दष्टतामरसकेसरस्रजोः क्रन्दतोः विपरिवृत्तकण्ठयोः निघ्नयोः चक्रवाकयोः सरसि अल्पम् अन्तरम् अनल्पतां गतम् ।

संजी०—दष्टेति ॥ दष्टमर्धजग्धं तामरसकेसरं पद्मकिञ्जल्कम् । मुखद्वयेनैकमिति भावः । तत्त्यजत इति तथोक्तयोः क्रन्दतोः कूजतोर्विपरिवृत्तकण्ठयोः । परस्परालोकनार्थं वक्रीकृतग्रीवयोरित्यर्थः । निघ्नयोर्दैवाधीनयोः । 'अधीनो निघ्न आयत्त' इत्यमरः । चक्रवाकी च चक्रवाकश्च तयोः 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः । सरस्यल्पमन्तरं व्यवधानमनल्पतामाधिक्यं गतम् । सरसि वियुज्यमानयोर्महद् व्यवधानमभूदित्यर्थः ॥३२॥

हिन्दी—कमल के केसर के आधेभाग को मुख में रखने वाले और छोड़ते हुए चिल्लाते हुए गर्दन को टेढ़ा करते हुए दैव के अधीन चकवी और चकवा के तालाब में थोड़ा व्यवधान (दूरी) भी ज्यादा हो रहा है ॥३२॥

स्थानमाह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकीविटपभङ्गवासितम् ।
आविभातचरणाय गृह्णते वारि वारिरुहबद्धषट्पदम् ॥३३॥

अन्वयः—दन्तिनः आह्निकं स्थानम् अपास्य सल्लकीविटपभङ्ग वासितं वारिरुहबद्धषटपदं वारि आविभातचरणाय गृह्णते ।

संजी०—स्थानमिति । दन्तिनो गजाः । अह्नि भवमाह्निकम् 'कालाट्ठञ्' स्थानमपास्य विहाय सल्लकी गजप्रिया काचिल्लता । 'सल्लकी स्याद्गजप्रिया' इति हलायुधः । तस्या विटपभङ्गैः पल्लवखण्डैर्वासितं सुरभितं वारिरुहेषु बद्धाः संगताः षट्पदा यस्मिस्तद्वारि जलमाविभातं प्रभातमारभ्य यच्चरणं तस्मै । तत्पर्याप्तमित्यर्थः । गृह्णत उपाददते । गजा हि भुक्तिपर्याप्तजलं सकृदेव सायं पिबन्तीति प्रसिद्धम् ॥३३॥

हिन्दी—हाथी दिन में निवास किये हुए स्थान को छोड़कर शल्लकी के पल्लवखण्डों से सुगन्धित और कमल में बन्द भौंरोंवाले जल को सुबह से आरम्भ करके पर्याप्त रूप से ग्रहण कर रहे हैं ॥३३॥

पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता ।
दीर्घया प्रतिमया सरोऽम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम् ॥३४॥

अन्वयः—हे मितकथे ! पश्चिमदिगन्तलम्बिना विवस्वता दीर्घया प्रतिमया सरऽम्भसां तापनीयं सेतुबन्धनम् इव निर्मितम् । पश्य ।

संजी०—पश्येति ॥ हे मितकथे, हे मितभाषिणि ! एतेन स्वस्य तत्संलापने लौल्यं सूचयति । पश्चिमदिगन्तलम्बिना विवस्वता कर्त्री

दीर्घया दिगन्तलम्बित्वादायतया प्रतिमया निजप्रतिबिम्बेन। 'प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया। प्रतिकृतिरर्चा पुंसि प्रतिनिधिरुपमोपमानं स्यात्।' इत्यमरः। सरोम्भसां तपनीयविकारस्तापनीयं हिरण्मयम्। तपनीयं शातकुम्भम्' इत्यमरः। सेतुबन्धनंनिर्मितम्। इवेत्युत्प्रेक्षा। अस्तमयसमये सरः पारावारिणामरुणमायतमर्कप्रतिबिम्बं हिरण्मयसेतुरिव दृश्यत इत्यर्थः। पश्येति वाक्यार्थः कर्म ॥३४॥

हिन्दी--हे मितभाषिणि! पश्चिम दिशा के प्रान्त में लटके हुए सूर्य से प्राप्त दीर्घ अपने प्रतिबिम्ब से तालाब के जल का मानों सुनहला पुल बना हुआ है, देखो ॥३४॥

उत्तरन्ति विनिकीर्यं पल्वलं गाढपङ्कमतिवाहितातपाः।
दंष्ट्रिणो वनवराहयूथपा दष्टभङ्गुरविसाङ्कुरा इव ॥३५॥

अन्वयः - दंष्ट्रिणो दष्टभङ्गुरविसाऽङ्कुरा वनवराहयूथवा गाढपङ्कं पल्वलं विनिकीर्य अतिवाहितातपाः (सन्तः) उत्तरन्ति।

संजी०—उत्तरन्तीति॥ दष्ट्रिणो दंष्ट्रावन्तः। व्रीह्यादित्वादिनिः। अत एव दष्टा भङ्गुराः कुटिला बिसाङ्कुरा मृणालाङ्कुरा यैस्ते त इव स्थिता वनवराहाणां यूथपाः। 'यूथनाथस्तु यूथपः' इत्यमरः। गाढपङ्कमतिपङ्किलं पल्वलमल्पसरः। 'वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः। विनिकीर्य विक्षिप्यातिवाहितातपा उत्तरन्ति पल्वलान्निर्गच्छन्ति ॥३५॥

हिन्दी--दाढ़ों वाले कुटिल मृणालों के अङ्कुरों को चबाये हुए वनवराहों के यूथपति गाढ़े कीचड़ वाले छोटे से तालाब को घाम के समय बिताकर छोड़कर बाहर निकल रहे हैं ॥३५॥

एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलः।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु ! पिबतीव बर्हिणः ॥३६॥

अन्वयः--हे पीवरोरु! एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलो बर्हिणो हीयमानम् अहरत्ययाऽऽतपं पिबति इव।

संजी०—एष इति॥ हे पीवरोरु, एष वृक्षशिखरे वृक्षाग्रे कृतस्पदः कृतस्थितिर्जातरूपरसगौरमण्डल आतपरूषणात्काञ्चनद्रववददरुणबर्हमण्डलः। 'चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने' इत्यमरः बर्हमस्यास्तीति बर्हिणो मयूरः। 'फलबर्हाभ्यामिनज्वक्तव्यः' इतीनच्प्रत्ययः। हीयमानं क्षीयमाण महरत्ययातपं दिनान्तातपं पिबतीव। कथमन्यथा क्षीयमाणत्वमिति भावः ॥३६॥

हिन्दी--हे पुष्ट ऊरुवाली पार्वती! पेड़ की चोटी पर बैठा हुआ सुवर्णरस के

समान पीला मण्डल वाला मयूर क्षीण होती हुई सायंकाल की धूप को मानों पी रहा है ।।३६।।

विमर्श—पीवरोरु=पीवरौ ऊरू यस्याः सा पीवरोरूः, तत्सम्बुद्धौ (बहु०), 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' इस सूत्र से स्त्रीत्वविवक्षा में ऊङ् प्रत्यय और 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्व' इस सूत्र से ह्रस्व हुआ है ।

पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकतः ।
खं हृतातपजलं विवस्वता भाति किंचिदिव शेषवत्सरः ।।३७।।

अन्वयः—पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिः एकतो व्यक्तपङ्कम् इव जातं विवस्वता हृताऽऽतपजलं खं किञ्चित् शेषवत् सर इव भाति ।

संजी०—पूर्वभागेति ।। पूर्वभागे प्राचीमूले तिमिरप्रवृत्तिभिर्ध्वान्तप्रसरैरेकतो व्यक्तपङ्कं स्फुटपङ्कमिव जातं तथा विवस्त्रीता हृतमतप एव जलं यस्य तत्तथोक्तं खमाकाशं किंचिदोषच्छेषोस्यास्तीति शेषवच्छुष्कं सर इव भाति ।।३७।।

हिन्दी—पूर्व दिशा के भाग में अन्धकार के फैलाव से एक तरफ स्पष्ट कीचड़ वाले के समान तथा सूर्य से हटाये गये धूपरूप जल वाला आकाश कुछ अवशिष्ट जल वाले तालाब के समान शोभित हो रहा है ।।३७।।

आविशद्भिरुटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः ।
आश्रमाः प्रविशदग्निधेनवो बिभ्रति श्रियमुदीरिताग्नयः ।।३८।।

अन्वयः—उटजाऽङ्गणम् आविशद्भिः मृगैः मूलसेकसरसैः वृक्षकैः प्रविशदग्निधेनवः उदीरिताऽग्नयः आश्रमाः श्रियं बिभ्रति ।

संजी०—आविशद्भिरिति ।। उटजाङ्गणं पर्णशालाङ्गणमाविशद्भिः । प्रविशद्भिरित्यर्थः । 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । 'उपान्वध्याङ्वस' इति कर्मत्वम् । मृगैः । तथा मूलानां सेकेन सेचनेन सरसैः सद्रवैर्वृक्षकैश्चोपलक्षिताः । अल्पार्थे कप्रत्ययः । प्रविशन्त्यो वनादागच्छन्त्योऽग्नितहोत्रार्था धेनवः उदीरिताग्नयश्चाश्रमाः श्रियं बिभ्रति ।।३८।।

हिन्दी—वर्णशाला के अङ्गण में प्रवेश करते हुए मृगों से और जड़ में सेचन करने से सरस पौधों से उपलक्षित और प्रवेश करती हुई अग्निहोत्र की गायों से युक्त तथा प्रदीप्त अग्नि से सम्बद्ध आश्रय भी शोभाको धारण कर रहे हैं ।।३८।।

बद्धकोशमपि तिष्ठति क्षणं सावशेषविवरं कुशेशयम् ।
षट्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम् ।।३९।।

अन्वयः—बद्धकोशम् अपि कुशेशयं वसतिं ग्रहीष्यते षट्पदाय प्रीतिपूर्वम् अन्तरं दातुम् इव क्षणं साऽवशेषं विवरं तिष्ठति ।

संजी०—बद्धकोशमिति ।। बद्धकोशमपि । मुकुलितमपीत्यर्थः । कुशेशयं कर्तृ । 'शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः । वसतिं ग्रहीष्यते । स्थितिं करिष्यत इत्यर्थः । 'लृटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः । षट्पदाय प्रीतिपूर्वमन्तरमवकाशं दातुमिव क्षणं सावशेषविवरं तिष्ठति ।।३९।।

हिन्दी—मूँदा हुआ कमल भी, निवास करने वाले भौंरे को प्रतिपूर्वक मानों अवकाश देने के लिए कुछ समय तक अवशिष्ट छिद्ररूप स्थान वाला हो रहा है।

दूरलग्नपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरुणेन भानुना ।
भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका ।।४०।।

अन्वयः वारुणी दिक् दूरलग्नपरिमेयरश्मिना अरुणेन केसरवता बन्धुजीवतिलकेन मण्डिता कन्यका इव भाति ।

संजी०—दूरलग्नेति ।। वारुणी दिक्प्रतीची दूरं लग्ना अत एव परिमेया अल्पावशिष्टा रश्मयः यस्य तेन तथोक्तेनारुणेन लोहितवर्णेन केसरवता किञ्जल्कवता बन्धुजीवं बन्धुजीवककुसुमम् । 'बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः । तदेव तिलकं तेन मण्डितालंकृता कन्यकेव भाति ।।४०।।

हिन्दी—पश्चिमदिशा दूर गिनने योग्य किरणों वाले लाल वर्ण वाले सूर्य से केसरवाले बन्धक पुष्परूप तिलक से भूषित कुमारी की तरह शोभित हो रही है।

टिप्पणी—इस पद्य में रूपक और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि अलंकार हैं ।।४०।।

सामभिः सहचराः सहस्रशः स्यन्दनाश्वहृदयंगमस्वनैः ।
भानुमग्निपरिकीर्णतेजसं संस्तुवन्ति किरणोष्मपायिनः ।।४१।।

अन्वयः—किरणोष्मपायिनः सहस्रश सहचराः अग्निपरिकीर्णतेजसं भानुं स्यन्दनाऽश्वहृदङ्गमस्वनैः सामभिः सहस्रशः संस्तुवन्ति ।

संजी०—सामभिरिति ।। किरणोष्मपायिनः किरणोष्माणं पिबन्तीति तथोक्ताः । तदाहारा इत्यर्थः । चरन्तीति चराः । पचाद्यच् । सहभूताश्चराः सहचरा बालखिल्यप्रभृतयो महर्षयोऽग्नौ परिकीर्णं तेजो यस्य तत्तथोक्तम् । अग्निर्वादित्यः सायमनु प्रविशति इति श्रुतेः । भानुम् । हृदयं गच्छन्तीति हृदयंगमा मनोरमाः । गमेः सुपीति वक्तव्यात्खच् । स्यन्दनाश्वानां हृदयंगमाः स्वना येषां तैः सामभिः सामवेदैः सहस्रशः संस्तुवन्ति । सामवेदेनास्तमये गीयते इति श्रुतेः ।।४१।।

हिन्दी—सूर्य किरण की गर्मी को पीने वाले हजारों सहचर (बालखिल्य आदि महर्षि) अग्नि को तेज सौंपने वाले सूर्य को रथ के घोड़ों के मनोहर सामवेद के मन्त्रों से स्तुति कर रहे हैं ।।४१।।

सोऽयमानतशिरोधरैर्हयैः कर्णचामरविघट्टितेक्षणैः ।
अस्तमेति युगभुग्नकेसरैः संनिधाय दिवसं महोदधौ ।।४२।।

अन्वयः--स: अयं दिवसं महोदधौ सन्निधाय आनतशिरोधरैः कर्णचामरविघट्टितेक्षणैः युगभुग्नकेसरैः हयैः अस्तम् एति ।

संजी०—स इति ।। सोऽयं भानुर्दिवसं महोदधौ संनिधाय निधायेत्यर्थः दिवसस्यादर्शनादियमुत्प्रेक्षा । आनतशिरोधरैर्गगनावतरणान्नम्रकन्धरैरत एव कर्णचामरविघट्टितेक्षणैर्युगभुग्नकेसरैः कुटिलतस्कन्धरोमभिर्हयैरस्तमेति । 'अस्तस्तु चरमक्ष्माभृत्' इत्यमरः ।।४२।।

हिन्दी--ये सूर्य, दिन को समुद्र में रखकर झुकी हुई गरदन वाले कर्णों के चामर से विघट्टित नेत्रों वाले और कुटिल किये गये केसरों (कन्धों के रोमों) से युक्त घोड़ों के साथ अस्त पर्वत की ओर उतर रहे हैं ।।४२।।

खं प्रसुप्तमिव संस्थिते रवौ तेजसो महत ईदृशी गतिः ।
तत्प्रकाशयति यावदुत्थितं मीलनाय खलु तावताच्युतम् ।।४३।।

अन्वयः--रवौ संस्थिते खं प्रसुप्तम् इव, (स्थितम्) महतः तेजस ईदृशी गतिः । तत् उद्गतं (सत्) यावत् प्रकाशयति च्युतं (सत्) तावतः मीलनाय (भवति) खलु ।

संजी०—खमिति ।। रवौ संस्थितेऽस्तमिते सति खं व्योम प्रसुप्तमिव निःप्रकाशत्वान्निद्रितमिव । स्थितमित्यर्थः । युज्यते चैतदित्याह । महतस्तेजस ईदृशी वक्ष्यमाणप्रकारा गतिः । स्वभाव इत्यर्थः । तां गतिमेवाह--तदिति । तन्महत्तेज उत्थितं सद्यावत् । स्थानमिति शेषः—प्रकाशयति । तावताधश्च्युतं सत् । तत्स्थानादिति शेषः । मीलनाय संकोचाय खलु भवति । यत्र स्थाने तेजस्तिष्ठति तत्प्रकाशत इति स्थितिः । यतो गच्छति न तत्प्रकाशते । अतः सूर्यापाये खं प्रसुप्तमिवेति युक्तोत्प्रेक्षेति भावः । अस्यार्थस्य तेजोमात्रसाधारण्येऽपि महति स्फुटमिति महद्ग्रहणं कृतम् ।।४३।।

हिन्दी---सूर्य के अस्तमित होने पर आकाश सोया-सा हो जाता है, बड़े के तेज का ऐसा स्वभाव होता है। वह महान् तेज उठकर जितने स्थान को प्रकाशित करता है और नीचे गिरकर उतने स्थान को संकुचित करने के लिए हो जाता है ।।४३।।

संध्ययाप्यनुगतं रवेर्वपुर्वन्द्यमस्तशिखरे समर्पितम् ।
प्राक्तथेयमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमापदि ।।४४।।

अन्वयः—सन्ध्यया अपि अस्तशिखरे समर्पितं वन्द्यं रवेः वपुः अनुगतम् प्राक् उदये तथा पुरस्कृता (इयम्) तम् आपदि कथं न अनुयास्यति ?

संजी०—संध्ययेति ।। संध्ययाप्यस्तशिखरेऽस्ताद्रिशृङ्गे समर्पितं तिहितं वन्द्यं रवेर्वपुरनुगतमन्वगामि । असंयुतं रविमन्वगादिति भावः । युक्तं

चैतदित्याह्--प्राक्पूर्वमुदयैं तथा तेन प्रकारेण पुरस्कृताग्रतः कृता । पूजिता चेति गम्यते । प्रातः सूर्योदयात्प्रागेव संध्यागम इति हि प्रसिद्धम् । इयं संध्या तं रविमापद्यस्तसमये कथं नानुयास्यति । अनुयास्यत्येवेत्यर्थः संपदसंपदोस्तुल्यरूपमेव साधूनामिति भावः ॥४४॥

हिन्दी--सन्ध्या ने भी अस्ताचल की चोटी पर रक्खे गये वन्दनीय सूर्य के शरीर का अनुगमन किया। पहले उदय (उदय पर्वत-वा उन्नति) में उस प्रकार से आगे की गई (अथवा पूजित) यह (सन्ध्या) सूर्य को आपत् (अस्ताचलगमन) के समय में क्यों अनुगमन नहीं करेगी ? ॥४४॥

रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिलकेशि ! भान्त्यमूः ।
द्रक्ष्यसि त्वमिति सांध्यवेलया वर्तिकाभिरिव साधुवर्तिताः ॥४५॥

अन्वयः—हे कुटिलकेशि ! अमूः रक्त-पीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः भान्ति त्वं द्रक्ष्यसि इति सान्ध्यवेलया वर्तिकाभिः साधु वर्तिताः इव ।

संजी०--रक्तेति ॥ हे कुटिलकेशि ! 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीप् । अमूः पुरोगताः रक्ताः पीताः कपिशाश्च रक्तपीतकपिशाः । नानावर्णा इत्यर्थः । चार्थे द्वन्द्वः । न तु 'वर्णो वर्णेन' इति तत्पुरुषः । सामानाधिकरण्याभावात् । पयोमुचां कोटयोऽश्रयः । 'स्यात्कोटिरश्रौ चापाग्रे संख्याभेदप्रकर्षयोः' इति विश्वः । त्वं द्रक्ष्यसीति हेतोरनया । सांध्यवेलया । संध्ययेत्यर्थः । 'संध्रिवेलया' इति क्वचित्पाठः । वर्तिकाभिश्चित्रशलाकाभिः साधुवर्तिता उत्पादिताश्च भान्ति ॥४५॥

हिन्दी—हे कुटिल केशों वाली पार्वती ! ये लाल, पीली और भूरी बादलों की रेखायें शोभित हो रही है, तुम देखोगी, इसलिए इस सन्ध्या ने कूंचियों से अच्छी तरह मानों रंग भर दिया है ॥४५॥

सिंहकेसरसटासु भूभृता पल्लवप्रसविषु द्रुमेषु च ।
पश्य धातुशिखरेषु चात्मना संविभक्तमिव सांध्यमातपम् ॥४६॥

अन्वयः--सिंहकेसरसटासु पल्लवप्रसविषु धातुशिखरेषु भूभृता आत्मना संविभक्तम् इव सान्ध्यम् आतपं पश्य ।

संजी०--सिंहेति ॥ सिंहानां केसराणि स्कन्धरोमाणि तान्येव सटा जटास्तासु । 'सटा जटा केसरयोः' इति विश्वः । अथवा सटाशब्देन समूहो लक्ष्यतेऽन्यथा पौनरुक्त्यात् । पल्लवप्रसविषु पल्लवप्रसवयुक्तेषु द्रुमेषु तथा धातुशिखरेषु च भूभृतास्ताद्रिणात्मना स्वयमेव सविभक्तमिव स्थितं संध्यायां भवं सांध्यमातपं यस्य तथा पश्य । आरुण्यमरुणद्रव्येषु भूयिष्ठमुपलभ्यत इति भावः ॥४६॥

हिन्दी--सिंह के केसरो (कन्धों के रोमों) के समूह में, पल्लवों की उत्पत्तिवाले वृक्षों में और धातुओं की चोटियों में पर्वत से स्वयं विभक्त के समान स्थित सन्ध्या समय की धूप को देखो ॥४६॥

पार्ष्णिमुक्तवसुधास्तवस्विनः पावनाम्बुरचिताञ्जलिक्रियाः ।
ब्रह्म गूढमभिसंध्यमादृताः शुद्धये विधिविदो गृणन्त्यमी ॥४७॥

अन्वयः--पार्ष्णिमुक्तः वसुधाः पावनाऽम्बुविहिताञ्जलिक्रियाः अमी तपस्विनः आदृताः (सन्त) अभिसन्ध्यं शुद्धये ब्रह्म गूढं गृणन्ति ।

संजी०--पार्ष्णीति ॥ पार्ष्णयो गुल्फाधोभागास्तैर्मुक्तवसुधास्त्यक्तभूतलाः । पादाग्रस्थिता इत्यर्थः । 'गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य मुक्तपार्ष्णिः क्षिपेज्जलम्' इति स्मरणात् । पावनैरम्बुभी रचिताऽञ्जलिक्रियाः । विहिताघ्यंप्रक्षेपा इत्यर्थः । विधिविदः । शास्त्रज्ञा इत्यर्थः । अमी तपस्विन आदृता आदरवन्तः । श्रद्दधाना इत्यर्थः । कर्तरि क्तः । अभिसंध्यं संध्यामभि । 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इत्यव्ययीभावः । शुद्धयशुद्धयेर्थं ब्रह्म गायत्रीं गूढमुपांशु गृणन्ति जपन्ति । 'प्रत्यगा तारकोदयात्' इति स्मरणात् ॥४७॥

हिन्दी—चरण के अग्र भाग से जमीन पर रखे हुए, पवित्र जल से अर्घ्यदान किये हुए ये तपस्वी लोग आदरयुक्त होकर संध्या में शुद्धि के लिए गायत्री का गुप्त रूप से उच्चारण कर रहे हैं ।

विमर्श--तपस्विनः=तपोऽस्ति येषां ते, तपस्-शब्द से 'तपःसहस्राभ्यां विनीनी' इस सूत्र से विनिप्रत्यय । तपस्वी तापसः पारिकाङ्क्षी' त्यमरः ॥४७॥

तन्मुहूर्तमनुमन्तुमर्हसि प्रस्तुताय नियमाय मामपि ।
त्वां विनोदनिपुणः सखीजनो वल्गुवादिनि ! विनोदयिष्यति ॥४८॥

अन्वयः--तत् हे वल्गुवादिनि ! माम् अपि प्रस्तुताय नियमाय मुहूर्तम् अनुमन्तुम् अर्हसि । विनोदनिपुणः सखीजनः त्वां विनोदयिष्यति ।

संजी०--तदिति ॥ तत्तस्मात्कारणान्मामपि प्रस्तुताय नियमाय प्रकृतसंध्याविधये मुहूर्तमनुमन्तुमर्हसि । हे वल्गुवादिनि ! मञ्जुभाषिणि विनोदनिपुणः कालक्षेपचतुरः सखीजनसत्वां विनोदयिष्यति । विनोदशब्दात् 'तत्करोति' इति णिच् ॥४८॥

हिन्दी--इस कारण हे मधुरभाषिणि ! तुम मुझे भी प्रस्तुत नियम-(सन्ध्यावन्दन) के लिए कुछ समय तक अनुमति देने के लिए योग्य हो । मन बहलाव करने में निपुण तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा मन बहलाव करेंगी ।

विमर्श—विनोदयिष्यति='विनोदं करिष्यति' ऐसा विग्रह कर के विनोद शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' इससे णिच् प्रत्यय, लृट् लकार है ॥४८॥

निर्विभुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्तुरवधीरणापरा।
शैलराजतनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम् ॥४९॥

अन्वयः--ततः भर्तुः वाचि अवधीरणापरा शैलराजतनया दशनच्छदं निर्विभुज्य समीपगा विजयाम् अहेतुकम् आललाप।

संजी०--निर्विभुज्येति ॥ ततो भर्तुर्वाचि वचनेऽवधीरणापरा तिरस्कारतत्परा शैलराजतनया पार्वती। छाद्यतेऽनेनेति छदः 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' इति घप्रत्ययः। दशनच्छदं निर्विभुज्य कुटिलीकृत्य समीपगां विजयां विजयाख्यां सखीमहेतुकं निर्निमित्तमाललाप। न तु रोषाद्भर्तुरुत्तरं ददावित्यर्थः ॥४९॥

हिन्दी--तब शिवजी के वचन में तिरस्कार में तत्पर होकर पार्वती ओष्ठ को कुटिल बनाकर निकट में स्थित सखी विजया से बेमतलब की बातों में लग गई ॥४९॥

ईश्वरोऽपि दिवसात्ययोचितं मन्त्रपूर्वमनुतस्थिवान्विधिम्।
पार्वतीमवचनामसूयया प्रत्युपेत्य पुनराह सस्मितम् ॥५०॥

अन्वयः--ईश्वरोऽपि दिवसाऽत्ययोचितं विधिं मन्त्रपूर्वम् अनुतस्थिवान्। असूयया अवचनां पार्वतीं पुनः प्रत्युपेत्य सस्मितम् आह।

संजी—ईश्वर इति ॥ ईश्वरोऽपि दिवसात्ययोचितं सायंकालोचितं विधिं संध्यावन्दनकृत्यं मन्त्रपूर्वमनुतस्थिवाननुष्ठितवान्। तिष्ठतेः क्वसुप्रत्ययः। असूयया संध्यावन्दनजनितासूययाऽवचनामभाषमाणां पार्वतीं पुनः प्रत्युपेत्य सस्मितमाह ॥५०॥

हिन्दी—शिवजी ने भी सन्ध्याकाल की उचित विधि (सन्ध्यावन्दन) को मन्त्रोच्चारणपूर्वक कर लिया और ईर्ष्या से भाषण न करने वाली पार्वती के पास आकर मुसकुरा कर कहा ॥५०॥

मुञ्च कोपमनिमित्तकोपने! संध्यया प्रणमितोऽस्मि नान्यथा।
किं न वेत्सि सहधर्मचारिणं चक्रवाकसमवृत्तिमात्मनः ॥५१॥

अन्वयः—हे अनिमित्तकोपने! कोपं मुञ्च। सन्ध्यया प्रणमितोऽस्मि। अन्यथा न। आत्मनः सहधर्मचारिणं (मम) चक्रवाकसमवृत्तिं किं न वेत्सि?

संजी०—मुञ्चेति ॥ हे अनिमित्तकोपनेऽकारणकोपिनि! नन्द्यादित्वात् कर्तरि ल्युः। कोपं मानं मुञ्च। सन्ध्यया प्रणमितोऽस्मि प्रणामं कारितोऽस्मि। अन्यथा प्रकारान्तरं न। धर्माभिसंधायिनं मां कामाभिसन्धायिनं मा मन्यस्वेत्यर्थः। आत्मनस्तव सह धर्मं चरतीति सहधर्मचारिणं मां चक्रवाकेन समवृत्तिं तुल्यव्यवहारं न वेत्सि किम्? अनन्यसङ्गिनं वेत्स्येवेत्यर्थः ॥५१॥

हिन्दी—हे विना कारण रूठने वाली पार्वती ! क्रोध छोड़ों, संध्या के कारण प्रणत हुआ हूँ। दूसरा कारण नहीं है। अपने साथ धर्म का आचरण करने वाले और चक्रवाक (चकवे) के समान व्यवहार करने वाले मुझको क्या तुम नही जानती हो ? ॥५१॥

प्रणामकारणमाह्—

निर्मितेषु पितृषु स्वयंभुवा या तनुः सुतनु ! पूर्वमुज्झिता ।
सेयमस्तमुदयं च सेव्यते तेन मानिनि ! ममात्र गौरवम् ॥५२॥

अन्वयः—हे सुतनु ! स्वयंभुवा पितृषु निर्मितेषु या तनु उज्झिता, सा इयं तनुः अस्तम् उदयं च सेवते। मानिनि ! तेन मम अत्र गौरवम्।

संजी०—निर्मितेष्विति ॥ हे सुतनु सुगात्रि ! पूर्वं स्वयं भवतीति स्वयंभूश्चतुराननः। 'भुवः संज्ञान्तरयोः' इति क्विप्। मयूरव्यंसकादित्वात्समासः। तेन पितृष्वग्निष्वात्तादिषु निर्मितेषु सत्सु या तनुरुज्झिता सेयं तनुरस्तमस्तमयकालमुदयमुदयकालम्। अव्ययमेतत्। सेव्यते पूज्यते च। संध्यारूपेणेति शेषः। हे मानिनि ! अविमृश्यकारिणीति भावः। तेन ब्रह्मतनुत्वेन हेतुना ममात्र संध्यायां गौरवमादरः। तदेतदुक्तं भविष्यपुराणे—पितामहः पितृन्सृष्ट्वा मूर्ति तामुत्ससर्ज ह। प्रातः सायं समागत्य संध्यारूपेण पूज्यते। एतां संध्यां यतात्मानो ये तु दीर्घामुपासते। दीर्घायुषो भविष्यन्ति नीरुजः पाण्डुनन्दन। इति ॥५२॥

हिन्दी—हे सुन्दरि ! ब्रह्माजी ने अग्निष्वात्ता आदि पितरों की रचना करने पर जिस शरीर को छोड़ दिया था उसी शरीर को सूर्य के अस्त समय और उदय समय में पूजा करता हूँ, इस कारण हे अभिमानिनि ! मेरा इस (संध्याकाल) में आदर है ॥५२॥

इत्थं देव्याः कोपनीय धातुसंध्यादिवर्णनं करोति—

तामिमां तिमिरवृत्तिपीडितां भूमिलग्नमिव सम्प्रति स्थिताम् ।
एकेतस्तटतमालमालिनीं पश्य धातुरसनिम्नगामिव ॥५३॥

अन्वयः—सम्प्रति तिमिरवृत्तिपीडितां भूमिलग्नम् इव सम्प्रति स्थितां ताम् इमाम् एकतस्तटतमालमालिनीं धातुरसनिम्नगाम् इव पश्य।

संजी०—तामिति ॥ संप्रति तिमिरवृत्तिपीडितां तमोवृत्त्युपरुद्धामतएव भूमौ लग्नमिव स्थितां तामिमां संध्यामेकत एकत्र तटतमालमालिनीं तीरतमालतरुपङ्क्तिमतीम्। व्रीह्यादित्वादिनिः। धातुरसनिम्नगां धातुद्रवनदीमिव पश्य ॥५३॥

हिन्दी—इस समय अन्धकार की स्थिति से रुकी हुई अतः मानो जमीन को छूकर रही हुई इस सन्ध्या की एक ओर तीर के तमालों की कतार वाली धातु के रस की नदी के समान देखो ॥५३॥

सांध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखनपरा बिभर्ति दिक् ।
संपरायवसुधासशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्यगुत्थितम् ॥५४॥

अन्वयः—अपरा दिक् अस्तमितशेषं रक्तरेखं सान्ध्यम् आतपं सम्परायवसुधा तिर्यक् उत्तिथं सशोणितं मण्डलाऽग्रम् इव बिभर्ति ।

संजी०—सांध्यमिति ॥ अपरा दिक्प्रतीची । अस्तमिति मकारान्तमव्ययम् । तस्येतशब्देन समासः । अस्तमितशेषमस्तंगतावशिष्टमत एव रक्तो लेखाकृतिर्यस्य तं संध्यायां भवं सांध्यमातपं संपरायवसुधा युद्धभूमिः । 'समरे संपरायः स्यात्' इति विश्वः । तिर्यगुत्थितं तिर्यक्फलितं सशोणितं मण्डलाग्रं कृपाणमिव बिभर्ति । 'कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत्' । इत्यमरः ॥५४॥

हिन्दी—पश्चिम दिशा अस्त होने से शेष, लाल रेखा वाले सायंकाल की धूप को मानों युद्धभूमि तिरछा गिराये गये तलवार के समान धारण कर रही है ॥५४॥

यामिनीदिवससंधिसंभवे तेजसि व्यवहिते सुमेरुणा ।
एतदन्धतमसं निरर्गलं दिक्षु दीर्घनयने विजृम्भते ॥५५॥

अन्वयः—हे दीर्घनयने ! यामिनीदिवससन्धिसंभवे तेजसि सुमेरुणा व्यवहिते सति एतत् अन्धतमसं दिक्षु निरङ्कुशं विजृम्भते ।

संजी०—यामिनीति ॥ यामिनीदिवसयोः संधिः संध्या तत्र संभवे तेजसि संध्यारागे सुमेरुणा व्यवहिते सति हे दीर्घनयने ! एतदन्धतमसम् । 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इति समासान्तः । दिक्षु निरर्गलं विजृम्भते ॥५५॥

हिन्दी—हे लम्बी आँखों वाली प्रिये ! रात और दिन को सन्धि (संध्या) में होनेवाले तेज (लाली) के सुमेरु पर्वत से व्यवधान (रुकावट) होने पर यह गाढ़ा अन्धकार दिशाओं में निरङ्कुश होकर फैल रहा है ॥५५॥

नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।
लोक एष तिमिरोल्बवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥५६॥

अन्वय—ऊर्ध्वम् ईक्षणगतिः न, अधोऽपि न, अभितो न, पुरतो न, पृष्ठतश्च न (तथा सति) एष लोकः निशि तिमिरोल्बवेष्टितः (सन्) गर्भवासे इव वर्तते ।

संजी०—नेति ॥ ऊर्ध्वमुपरीक्षणगतिर्दृष्टिप्रसारो नास्ति । अधोऽपि च न । अभितः पार्श्वयोश्च न । पुरतोऽग्रे च न । पृष्ठतः पश्चादपि न ।

ईक्षणगतिरिति सर्वत्र संबध्यते। तथाप्येष लोको निशि तिमिरमेवोल्वं जरायुः। 'गर्भाशयो जरायुः स्यात्' इत्यमरः। तेन वेष्टितः आवृतः सन्। गर्भ एव वासो वसतिस्तत्र गर्भवासे वर्तते। इवेत्युत्प्रेक्षा ॥५६॥

हिन्दी—नेत्रगति न ऊपर है, न नीचे है, न दायें बायें है, न आगे है और न तो पीछे ही है ऐसा होने पर यह लोक रात में मानों अन्धकारसमूहरूप झिल्ली से वेष्टित गर्भरूप वास में है ॥५६॥

शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ् महत्त्वमसतां हृतान्तरम् ॥५७॥

अन्वयः—शुद्धम्, आविलम्, अवस्थितं, चलं, वक्रम्, आर्जवगुणाऽन्वितं च यत्, (तत्) सर्वम् एव तमसा समीकृतम्। हृताऽन्तरम् असतां महत्त्वं धिक्।

संजी०—शुद्धमिति ॥ शुद्धं स्वच्छमाविलं मलिनमवस्थितं स्थावरं चलं जंगमं वक्रं कुटिलमृजोर्भाव आर्जवं तदेव गुणस्तेनान्वितं च यद्वस्तुजातम्। तदिति यत्तदोर्नित्यसंबन्धाल्लभ्यते। तत्सर्वमेव तमसा समीकृतं। दुर्लक्ष्य-विशेषं कृतम्। तथाहि। हृतमन्तरं विशेषो येन तद्धृतान्तरमसतामसाधूनां महत्त्वं वृद्धि धिक्। धिक्शब्दयोगाद् द्वितीया। समत्वेन परगतिविशेष-तिरस्करणमसतां स्वभाव इति सुप्रसिद्धम्। तमसोऽपि तथा महत्त्वं धिगित्यर्थः ॥५७॥

हिन्दी—स्वच्छ और मलिन, स्थावर और जङ्गम, टेढ़ा और सीधा, जो कुछ है वह सब अन्धकार ने समान बना दिया। भेद को नष्ट करने वाले दुर्जनों के महत्त्व को धिक्कार है ॥५७॥

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।
पुण्डरीकमुखि! पूर्वदिङ्मुखं कैतकैरिव रजोभिरावृतम् ॥५८॥

अन्वयः—हे पुण्डरीकमुखि! यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये नूनम् उन्नमति। पूर्वदिङ्मुखं कैतकैः रजोभिः आवृतम् इव (दृश्यते)।

संजी०—नूनमिति ॥ यज्वानो विधिनेष्टवन्तः। 'यज्वा तु विधिनेष्ट-वान्' इत्यमरः। 'सुयजोर्ङ्वनिप्' इति ङ्वनिप्प्रत्ययः। तेषां पतिः चन्द्रः। दर्शपूर्णमासादियागप्रवृत्तिहेतुत्वादिति भावः। शार्वरस्य शर्वर्यां भवस्य तमसो निषिद्धये निरासाय नूनमुन्नमत्युदेति। कुतः हे पुण्डरीकमुखि! पूर्वस्या दिशो मुखं पुरोभागः पूर्वदिङ्मुखं केतक्या इमानि कैतकानि तैः रजोभिः परागैरावृतमिव। दृश्यत इति शेषः। अतो नूनमुदेति चन्द्र इति संबन्धः ॥५८॥

हिन्दी—हे सफेद कमल के समान मुख वाली पार्वती ! चन्द्रमा रात के अन्धकार का निवारण करने के लिए उदित हो रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। पूर्व दिशा का मुख केतकी के फूलों के परागों से आच्छादित-सा दिखाई दे रहा है।

टिप्पणी--इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।।५८।।

मन्दरान्तरितमूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका।
त्वं मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठतः ।।५९।।

अन्वयः--सतारका निशा मन्दराऽन्तरितमूर्तिना शशभृता पृष्ठतः वचनानि श्रोष्यता मया प्रियसखीसमागता त्वम् इव लक्ष्यते।

संजी०—मन्दरेति ।। सतारका निशा मन्दरान्तरितमूर्तिना मन्दराद्रिव्यवहितमण्डलेन शशभृता चन्द्रेण पृष्ठतः पश्चाद्भागे वचनानि श्रोष्यता श्रोतुं स्थितेनेत्यर्थः। मया प्रियसखीसमागता प्रियसखीभिरावृता त्वमिव लक्ष्यते ।।५९।।

हिन्दी—हे पार्वती ! ताराओं सहित रात्रि, मन्दर पर्वत से व्यवहित शरीर वाले चन्द्रमा से पीछे से तुम लोगों के वचन सुनने के लिए मुझसे प्रिय सखियों से घिरी हुई तुम्हारी तरह देखी जा रही है ।।५९।।

रुद्धनिर्गमनमा दिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनुचन्द्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति रात्रिचोदिता दिग्रहस्यमिव चन्द्रमण्डलं ।।६०।।

अन्वयः--आ दिनक्षयात् रुद्ध निर्गमनं पूर्वदृष्टतनु एतत् चन्द्रमण्डलं रात्रिचोदिता चन्द्रिकास्मितं दिग्रहस्यम् उद्गिरति इव।

संजी०—रुद्धेति ।। दिक्पूर्वदिक्। नायिका ध्वन्यते। आ दिनक्षयादा सायं रुद्धं निर्गमनं निःसरणं यस्य तत्तथोक्तम्। अन्यत्र बहिरप्रकाशितमित्यर्थः। तनुचन्द्रिकास्मितमिव तनुचन्द्रिकास्मितं पूर्वदृष्टं यस्मात्तत्तथोक्तम्। एतच्चन्द्रमण्डलं नर्मरहस्य गोप्यार्थमिव रात्रिचोदिता। रात्र्या सख्यैव प्रेरिता सतीत्यर्थः। उद्गिरति प्रकाशयति। यथा काचिदासायं मनस्विनी गूहितमभिलाषं प्रदोषे सख्या मह्यं ब्रूहीति निर्बन्धात्पृष्टा सती प्रकटयति तद्वदित्यर्थः ।।६०।।

हिन्दी—दिन भर निरुद्ध गति वाला पहले देखा गया शरीर वाला यह चन्द्रमण्डल मानों रात्रि से कहने के लिए प्रेरित होता हुआ चन्द्रिकारूप मन्दहास्य वाला होकर पूर्व दिशा के रहस्य को प्रकट कर रहा है ।।६०।।

पश्य पक्वफलिनीफलत्विषा बिम्बलाञ्छितवियत्सरोम्भसा।
विप्रकृष्टविवरं हिमांशुना चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते ।।६१।।

अन्वयः—पक्वफलिनीफलत्विषा बिम्बलाञ्छितबियत्सरोम्भसा हिमांऽशुना विप्रकृष्टबिवरं चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते, पश्य ।

संजी०—पश्येति ॥ पक्वफलिनीफलत्विषोदयरागाद्बिम्बाभ्यां प्रतिबिम्बाभ्यां लाञ्छिते चिह्निते वियत्सरोम्भश्च येन तथोक्तेन हिमांशुना विप्रकृष्टं विवरमन्तरालं यस्य तत्तथोक्तम् । अतिदूरस्थमित्यर्थः । चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यतेऽनुक्रियते पश्य । रात्रौ वियति सरोजले चेन्दोर्बिम्बप्रतिबिम्बौ विरहाद् दूरवर्तिनौ चक्रवाकाविव दृश्येते इत्यर्थः ॥६१॥

हिन्दी—हे पार्वती ! पके हुए प्रियङ्गुल के समान कान्ति वाले तथा आकाश और तालाब के जल में प्रतिबिम्बों से चिह्न करने वाले चन्द्रमा से रात से दूर अन्तराल वाला चकवी और चकवा का जोड़ा अनुकृत हो रहा है, देखो ॥११॥

शक्यमोषधिपते नवोदया कर्णपूररचनाकृते तव ।
अप्रगल्भयवसूचि कोमलाश्छेत्तुमग्रनखसंपुटैः कराः ॥६२॥

अन्वयः—(हे पार्वति !) नवोदया: अप्रगलभयवसूचिकोमला: ओषधिपते: करा: तव कर्णपूररचनाकृते अग्रनखसम्पुटैः छेत्तुं शक्यम् ।

संजी०—शक्यमिति ॥ नवोदयाः सद्य उत्पादिता अप्रगल्भयवसूचिकोमला अकठोरयवाङ्कुरसुकुमारा ओषधिपतेरिन्दोः करास्तव कर्णपूररचनाकृते कर्णावतंसनिर्माणक्रियायां । संपदादित्वाद्भावे क्विप् । अग्रनखसंपुटैर्नखाग्रसंभेदैश्छेत्तुं शक्यम् । शक्या इत्यर्थः । 'शकिसहोश्च' । इति कर्मणि यत्प्रत्ययः । शक्यमिति विपरीतलिङ्गवचनस्यापि सामान्योपक्रमात्कर्माभिधायकत्वम् । पाश्चात्कर्मविशेषाकाङ्क्षायां करा इति निर्देशो न विरुध्यते । यथाह वामनः—'शक्यमिति रूपं लिङ्गवचनस्यापि सामान्योपक्रमत्वादिति । अत्र प्रमाणम–शक्यं श्वमांसेनापि क्षुत्प्रतिहन्तुमिति भाष्यकारप्रयोगः, इति ॥६२॥

हिन्दी—(हे पार्वति !) अभी ही उगी हुई अकठोर यव (जौ) के अंकुर के समान कोमल चन्द्रमा की किरणें तुम्हारे कर्णभूषण की रचना के लिए नाखूनों के अग्रभागों से तोड़ी जा सकती हैं ॥६२॥

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥६३॥

अन्वयः—शशी अङ्गुलीभि: केशसञ्चयम् इव मरीचिभि: तिमिरं संनिगृह्य कुड्मलीकृतसरोजलोचनं रजनीमुखं चुम्बति इव ।

संजी०—अङ्गुलीभिरिति ॥ शशी चन्द्रमाः । नायकस्तु प्रतीयते । अङ्गुलीभिः केशसंचयमिव मरीचिभिस्तिमिरं संनिगृह्य गृहीत्वा । सरोजे

लोचने इवेत्युपमितिसमासोऽङ्गुलीभिरिवेत्युपमायास्तत्साधकत्वात्। कुड्मलीकृते सरोजलोचने यस्य तत्तथोक्तं रजन्या मुखं प्रारम्भः वदनं चेति गम्यते। चुम्बतीव। अत्र समासोक्त्या उत्प्रेक्षासङ्कर श्चेते ॥६३॥

हिन्दी—हे पार्वति! चन्द्रमा (अथ वा कोई नायक) उँगलियों से केशसमूह के समान किरणों से अन्धकार को ग्रहण कर मुकुल के समान किये गये कमलों रूप नेत्रवाले रात्रि (रात वा किसी नायिका) के मुख (पूर्व भाग वा मुख) को मनो चूम रहा है।

निमर्श—इस पद्य में उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का अङ्गाङ्गिभावरूपक शङ्कर अलङ्कार है ॥६३॥

पश्य पार्वति नवेन्दुरश्मिभिः सामिभिन्नतिमिरं नभस्तलम्।
लक्ष्यते द्विरदभोगदूषितं संप्रसीददिव मानसं सरः ॥६४॥

अन्वयः—हे पार्वति! नवेन्दुरश्मिभिः भिन्नसान्द्रतिमिरं नमस्तलं द्विरदभोग दूषितं सप्रसादं मानसं सर इव लक्ष्यते। पश्य।

संजी०—पश्येति॥ हे पार्वति! नवेन्दुरश्मिभिः सामिभिन्नतिमिरमर्धनिरस्तध्वान्तं नभस्तलं द्विरदभोगदूषितं गजक्रीडाकलुषितं संप्रसीदत्प्रसादं गच्छन्मानसं मानसाख्यं सर इव लक्ष्यते पश्य ॥६४॥

हिन्दी—हे पार्वति! नये चन्द्रमा की किरणों से मिटा हुआ गाढ़ अन्धकारवाला आकाश हाथी की क्रीडा से पहले मैले और पीछे निर्मल जल वाले मानससरोवर के समान देखा जा रहा है। देखो ॥६४॥

रक्तभावमपहाय चन्द्रमा जात एष परिशुद्धमण्डलः।
विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ॥६५॥

अन्वयः—एष चन्द्रमा रक्तभावम् अपहाय परिशुद्धमण्डलो जातः। निर्मलप्रकृतिषु कालदोषजा विक्रिया स्थिरोदया न खलु।

संजी०—रक्तभावमिति। एष चन्द्रमा रक्तभावं रक्तत्वमुदयरागमपहाय परिशुद्धमण्डलः शुभ्रबिम्बो निष्कण्टको जातः। तथाहि! निर्मलप्रकृतिषु स्वच्छस्वभावेषु शुद्धसन्निवसंपन्नेषु च कालदोषेण जाता कालदोषजा विक्रिया विकारः स्थिरोदया स्थायिनी न भवति खलु। चन्द्रोऽपि स्वभावनिर्मल इति। यथा कश्चिद्राजा कुतश्चिन्निमित्ताद्विरक्तमण्डलः पश्चात्प्रतिकृतिशुद्ध्या स्वस्थमण्डलो भवति तद्विदिति भावः। तत्र प्रथमार्थे समासोक्तिरलङ्कारस्तस्यार्थान्यासेनाङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥६५॥

हिन्दी--यह चन्द्रमण्डल लालिमा को छोड़कर उज्ज्वलमण्डल वाला हो गया। क्योंकि निर्मल स्वभाव वालों में काल के दोष से उत्पन्न विकार स्थायी नहीं होता है ॥६५॥

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः ।
नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसैव गुणदोषयोर्गतिः ॥६६॥

अन्वयः--शशिनः प्रभा उन्नतेषु स्थिता। निशातमः निम्नसंश्रयपरम् वेधसा गुणदोषयोः अत्मसदृशी गतिः प्रकल्पिता हि एव ननु।

संजी०-उन्नतेष्विति। शशिनः प्रभा चन्द्रिकोन्नतेष्वद्रिशृङ्गादिषु स्थिता। निशातमस्तु निम्नसंश्रयपरं गर्तादिनीचस्थानप्रवणम्। तथाहि। वेधसा गुणदोषयोरात्मसदृशी स्वभावानुरूपा गतिः प्रवृत्तिः प्रकल्पितैव ननु। तेजस्विन उन्नमन्ति मलिनास्तु नीचन्तीति भावः ॥६६॥

हिन्दी--चन्द्रमा की कान्ति (चाँदनी) ऊँचे (पर्वतों की चोटी आदि पदार्थों) पर पड़ गई है और रात का अन्धकार गढ्ढा आदि निम्न स्थानों पर पड़ गया है। ब्राह्मा जी ने गुण और दोषों की अपने अनुरूप प्रवृत्तिकी कल्पा ही की है ॥६६॥

चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः ।
मेखलातरुषु निद्रितानमून्वोधयत्यसमये शिखण्डिनः ॥६७॥

अन्वयः--गिरिः चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिः चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिः मेखलातरुषु निद्रितान् अमून् शिखण्डिनः असयये बोधयति।

संजी०--चन्द्रपादेति ॥ गिरिर्हिमाद्रिश्चन्द्रपादैरिन्दुकिरणैर्जनितप्रसरैश्चन्द्रकान्तमणीनां जलबिन्दुभिः करणैर्मेखलातरुषु निद्रितान्संजातनिद्रान्। तारकादित्वादितच्। अमूञ्शिखण्डिनो मयूरानसमयेऽकाले बोधयति। इन्दुकिरणसंपर्कादुपरिचन्द्रमणिस्पन्देष्वधोवृक्षेशयाः शिखण्डिनो वृष्टिभयाज्जाग्रतीत्यर्थः। शिखण्डिग्रहणमितरशकुन्तानां कुलायनिलयत्वादिति भावः ॥६७॥

हिन्दी--हिमालय पर्वत चन्द्रकिरणों से उत्पन्न चन्द्रकात मणि को जलबिन्दुओं से पहाड़ के ढाल के पेड़ों में सोये हुए मयूरों को असमय में वृष्टि का ज्ञान पैदा कर जगा रहा है ॥६७॥

कल्पवृक्षशिखरेषु संप्रति प्रस्फुरद्भिरविकल्प सुन्दरि !
हारयष्टि गणनामिवांशुभिः कर्तुमुद्यतकुतूहलः शशी ॥६८॥

अन्वयः--हे सुन्दरि ! शशी सम्प्रति कल्पवृक्षशिखरेषु प्रस्फुरद्भिः अंशुभिः हारयष्टिगणनां कर्तुम् उद्यतकुतूहल इव, पश्य।

संजी०--कल्पवृक्षेति ॥ हे अविकल्पेनाविवादेन सुन्दरि अविकल्पसुन्दरि ! शशी संप्रति कल्पवृक्षाणां शिखरेष्वग्रेषु प्रस्फुरद्भिरंशुभिः। करस्थानीयैरिति भावः। हारयष्टिगणनां कल्पतरुलम्बिहारपरिगणनां कर्तुमुद्यतकुतूहल इवोत्पन्नकौतुकः किम्। इत्युत्प्रेक्षा ॥ ६८ ॥

हिन्दी--हे सुन्दरि ! चन्द्रमा इस समय कल्पवृक्षों की चोटियों पर चमकती हुई किरणों से मुक्ताहारों की लड़ियों बनाने के लिए कौतुक वाला ही रहा है ऐसा प्रतीत होता है देखो ॥६८॥

उन्नतावनत भागवत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तदन्तिनः ॥६९॥

अन्वयः--गिरेः उन्नताऽवतभाववत्तया सतिमिरा इयं चन्द्रिका बहुविधाभिः भक्तिभिः अर्पिता मत्तहस्तिनः भूतिः इव भाति।

संजी०---उन्नतेति ॥ गिरेरुन्नतावनतभागवत्तया निम्नोन्नतप्रदेशवत्वेन हेतुना सतिमिरा तिमिरमिश्रा। समोन्नतेषु तमसोऽनवकाशादिति भावः। इयं चन्द्रिका बहुविधाभिर्भक्तिभी रचनाभिरर्पिता विन्यस्ता मत्तदन्तिनो भूतिर्भसितमिवाभाति। 'भूतिर्मातङ्गश्रृङ्गारे' इति विश्वः। तत्र भक्तिसहितानि गजाङ्गान्येव तिमिरभागोपमानमित्यनुसंधेयम् ॥६९॥

हिन्दी—हे पार्वति ! पहाड़ के ऊँच-नीच होने से अन्धकार से मिश्रित यह चांदनी अनेक प्रकारों की रचनाओं से अर्पित मत्त हाथी की भूति की समान शोभित हो रही है देखो ॥६९॥

एतदु च्छ्वसितपीतमैन्दवं सोढुमक्षयमिव प्रभारसम्।
मुक्तषट्प दविरावमञ्जसा भिद्यते कुमुदमानिबन्धनात् ॥७०॥

अन्वयः--एतत् कुमुदम् उच्छ्वसितपीतम् इन्दवं प्रभारसं सोढुम् अक्षमम् इव अञ्जसा मुक्तषट्पदविरावम् आनिबन्धनात् भिद्यते।

संजी०—एतदिति ॥ एतत्कुमुदं कैरवं कर्तृ उच्छ्वसितेन पीतमुच्छ्वसितपीतम्। अतितृष्णयोच्छ्वस्योच्छ्वस्य पीतमित्यर्थः। इन्दोरिदमैन्दवं प्रभा चन्द्रिका सैव रसो द्रवस्तं सोढुमक्षममिवाञ्जसा मुक्तषट्पदविरावं प्रवर्तितभृङ्गनादं यथा तथा निबन्धनादा वृन्ताद्भिद्यते विकसति। कर्मकर्तरि लट्। यथा लोके कस्यचिदतिपानान्निःसहात्मन उच्चैः क्रोशत उदरं भिद्यते तथैतदिति भावः ॥७०॥

हिन्दी—हे पार्वती ! यह कुमुद का फूल साँस लेकर पीये गये चन्द्रमा की चाँदनी की रस को धारण करने मे असमर्थ-सा होकर भौरों की आवाज छोड़ कर डंडी तक फट रहा है ॥७०॥

पश्य कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूपसंशयम् ।
मारुते चलति चण्डि ! केवलं व्यज्यते विपरिवृत्तमंशुकम् ॥७१॥

अन्वयः—हे चण्डिके ! कल्पतरुलम्बि शुद्धया ज्योत्स्नया जनितरूपसंशयम् अंशुकं केवलं मारुते चलति विपरिवृत्तं व्यज्यते ॥७१॥

संजी०—पश्येति ॥ शुद्धया ज्योत्स्नया जनिता रूपसंशया अंशुकं ज्योत्स्ना वेति स्वरूपसंदेहो यस्य तत्तथोक्तं कल्पतरुलम्ब्यंशुकं । हे चण्डि अत्यन्तकोपने ! गौरादित्वान्ङीष् । केवलं मारुते चलति सति विपरिवृत्तं चलं सद् व्यज्यते पश्य । ज्योत्स्नासच्छायत्वान्न रूपतो विविच्यते परन्तु क्रिययेत्यर्थः ॥७१॥

हिन्दी—हे चण्डि ! कल्पवृक्षों पर लटकते हुए शुद्ध चाँदनी से रूप में सन्देह उत्पन्न करने वाला वस्त्र, हवा के चलने पर यह वस्त्र है ऐसा प्रतीत होता है ॥७१॥

शक्यमङ्गुलिभिरुद्धृतैरधः शाखिनां पतितपुष्पपेशलैः ।
पत्त्रजर्जरशशिप्रभालवैरेभिरुत्कचयितुं तवालकान् ॥७२॥

अन्वयः—अङ्गुलिभिः उद्धृतैः शाखिनाम् अधः पतित पुष्पपेशलैः एभिः पत्त्रजर्जरशशिप्रभालवैः तव अलकान् उत्कचयितुं शक्यम् ।

संजी०—शक्यमिति । अङ्गुलिभिरुद्धृतैरुत्थितैः शाखिनामधः पतितपुष्पवत्पेशलैः कोमलैः । तथा भ्रमकरैरित्यर्थः । एभिः पत्त्रैर्जर्जरा शकलिता शशिप्रभा चन्द्रिका तस्या लवैः खण्डैः । तरुतलेषु पत्त्रान्तराललक्ष्यज्योत्स्नामण्डलैरित्यर्थः । तवालकानुत्कचयितुं बद्धुम् । 'कच दीप्तिबन्धनयोः' इति धातोस्तुमुन्प्रत्ययः । शक्यम् शक्या इत्यर्थः । शक्यमिति लिङ्गवचनस्य सामान्योपक्रमादित्याद्यनुपदमेवोक्तम् ॥७२॥

हिन्दी—(हे पार्वती !) उंगलियों से निकाले गये पेड़ों के नीचे गिरे हुए फूलों के समान कोमल इन पत्तों से जर्जर चाँदनी के खण्डों से तुम्हारे अकलों को बाँधा जा सकता है ॥७२॥

एष चारुमुखि ! योगतारया युज्यते तरलबिम्बया शशी ।
साध्वसादुपगतप्रकम्पया कन्ययेव नवदीक्षया वरः ॥७३॥

अन्वयः—हे चारुमुखि ! एष शशी तरलबिम्बया योगतारया साध्वसात् उपगतप्रकम्पया नवदीक्षया कन्यया वर इव युज्यते ।

संजी०—एष इति ॥ चारुमुखि=हे उज्ज्वलानने ! 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति ङीष् । एष शशी, तरलबिम्बया=स्फुरन्मण्ड-

लया योगतारया। प्रत्यहं यया युज्यते सा योगतारा। नित्यनक्षत्रेणेत्यर्थः। साध्वसान्नवसंगमभयादुपगतप्रकम्पया=वेपथुमत्या, नवदीक्षया=नवोढ़ाहया कन्यया वरो वोढेव युज्यते संगच्छते। युजेर्देवादिकत्वाकर्तरि लट् ॥७३॥

हिन्दी –हे सुन्दरि ! यह चन्द्रमा चमकते हुए मण्डलवाली नित्य मिलनेवाली तारा से नवसंगम के भय से कम्प से युक्त नववधू कन्या से वर के समान सगत हो रहा है ॥७३॥

पाकभिन्नशरकाण्डगौरयोरुल्लसत् प्रतिकृतिप्रदीपयोः ।
रोहतीव तव गण्डलेखयोश्चन्द्रबिम्बनिहिताक्षि ! चन्द्रिका ॥७४॥

अन्वयः—हे चन्द्रबिम्बनिहिताक्षि ! पाकभिन्नशरकाण्डगौरयोः उल्लसत्प्रतिकृतिप्रदीपयोः तव गण्डलेखयोः चन्द्रिका उपरि रोहित इव ।

संजी०—पाकेति ॥ हे चन्द्रबिम्बनिहिताक्षि हे चन्द्रबिम्बनिहितेक्षणे ! पाकभिन्नः पाकविकसितो यः शरकाण्डस्तद्वद्गौरयोः सितजो। 'अवदातः सितौ गौरः' इत्यमरः। उल्लसन् प्रतिकृत्या चन्द्रिकाप्रतिबिम्बेन प्रदीप्तयोः प्रोज्ज्वलयोस्तव गण्डलेखयोश्चन्द्रिका रोहतीव। गण्डस्थलप्रतिबिम्बसंक्रमणमूर्च्छिता चन्द्रिका तयोरेव प्ररूढेति प्रतीयत इत्यर्थः ॥७४॥

हिन्दी –हे चन्द्रमण्डल में नेत्रों को लगाने वाली ! पकने से विकसित सरकण्डे के समान सफेद, शोभित तथा स्वाभाविक प्रसन्नतावाले तुम्हारे कपोलों पर चन्द्रिका मानों आरोहण कर रही है ।

अत्रान्तरे कांचिदवलोक्याह—

लोहितार्कमणिभाजनार्पितं कल्पवृक्षमधु बिभ्रती स्वयम् ।
त्वामियं स्थितिमतीमुपस्थिता गन्धमादनवनाधिदेवता ॥७५॥

अन्वयः—लोहिताऽर्कमणिभाजनाऽर्पितं कल्पवृक्षमधु स्वयं बिभ्रती इयं गन्धमादनवनाऽधिदेवता स्थितिमतिं त्वां स्वयम् उपस्थिता ॥७५॥

संजी०—लोहितेति ॥ लोहितेऽरुणेऽर्कमणिभाजने सूर्यकान्तपात्रेऽर्पितं कल्पवृक्षमधु कल्पतरुप्रसूतं मद्यं, स्वयं बिभ्रती गन्धमादनवनाधिदेवता स्थितिमतीमवस्थानवतीम्। इह स्ववने तिष्ठन्तीमित्यर्थः। त्वामियं प्रत्यक्षोपस्थिता प्राप्ता। स्वगृहागतां त्वां सम्भावयितुमागतेत्यर्थः ॥७५॥

हिन्दी—(हे पार्वती !) लाल सूर्यकान्त रत्न के प्याले में कल्पवृक्ष के मधु को स्वयम् लेती हुई गन्धमादन पर्वत की यह वन देवता यहाँ बैठी हुई तुम्हारे पास स्वयम् आई हुई है ॥७५॥

आर्द्रकेसरसुगन्धि ते मुखं रक्तमेवनयनं स्वभावतः।
अत्र लब्धवसतिर्गुणान्तरं कं विलासिनि मधुः करिष्यति॥७६॥

अन्वयः—हे विलासिनि ! अत्र लब्धवसतिः मधुः कं गुणान्तरं करिष्यति ? (यतः) इदं ते स्वभावत आर्द्रकेसरसुगन्धि मुखं रक्तमेवनयनम् ॥७६॥

संजी०—आर्द्रेति ॥ हे पार्वती ! इदं ते स्वभावत आर्द्रकेसरसुगन्धि सरसकेसरसुगन्धि। 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' इत्यनेनेकारः।मुखम्। रक्तमेव नयनम्। हे विलासिनि विलसनशीले, अत्र त्वन्मुखे लब्धवसतिर्लब्धानुप्रवेशो मधुर्मद्यं कं गुणान्तरं गुणविशेषं करिष्यति। न कंचिदित्यर्थः। केसरसौगन्ध्यादिगुणानां त्वन्मुखे स्वभावसिद्धत्वान्मधुनः फलं न पश्यामीत्यर्थः। 'अर्धर्चाः पुंसि च' इति पुंलिङ्गत्वम्। यदाहुः—'मकरन्दस्य मद्यस्य माक्षिकस्य च वाचकः। अर्धर्चादिगणे पाठात्पुंनपुंसकयोर्मधुः।' इति ॥७६॥

हिन्दी—हे विलासिनि ! यहाँ निवास पाया हुआ मद्य कौन-सा गुणविशेष करेगा क्योंकि तुम्हारा मुख स्वभाव से ही सरस केसर के समान सुगन्धवाला और मदयुक्त लाल नेत्रों वाला है ॥७६॥

मान्यभक्तिरथवा सखीजनः सेव्यतामिदमनङ्गदीपनम्।
इत्युदारमभिधाय शंकरस्तामपाययत पानमम्बिकाम् ॥७७॥

अन्वयः—"(हे पार्वति !) अथवा सखीजनो मान्यभक्तिः, (अतः) अनङ्गदीपनम् इदं सेव्यताम्" इति उदारम् अभिधाय शङ्करः तान् अम्बिकां पानम् अपाययत।

संजी०—मान्यभक्तिरिति ॥ अथवा सखीजनो मान्या भक्तिर्यस्य स तथोक्तः। सखीजनः स्वकीय इत्यर्थः। ततोऽनङ्गदीपकमिदं वक्ष्यमाणं पानं सेव्यतामित्युदारं चतुरमभिधाय शंकरस्तामम्बिकां पीयत इति पानं मद्यमपाययत पाययामास। पिबतेर्ण्यन्ताल्लुङि तङ्। पिबतेः प्रत्यवसानार्थादणि कर्तुः कर्मत्वम्। पिबतेर्निगरणार्थत्वेऽपि 'नपादम्या०' इति परस्मैपदप्रतिषेधः। ननु मान्यभक्तिरित्यत्र कथं पुंवद्भावः। "अप्रियादिषु" इति निषेधाद्भक्तिशब्दस्य प्रियादिपाठान्नैष दोषो नपुंसकपूर्वपदत्वात्। यथाह वृत्तिकारः—'दृढभक्तिरित्येवमादिषु स्त्रीपूर्वपदस्याविवक्षितत्वात्सिद्धम्' इति। भोजराजस्तु—'भज्यत इति कर्मसाधनस्यैव प्रियादिपाठतया दृढभक्तिरिति न तु भजनं भक्तिरिति भावसाधनस्य। अतोऽत्र स्त्रीपूर्वपदत्वेऽपि न दोषः' इत्याह ॥७७॥

हिन्दी—"(हे पार्वति !) अथवा सखियों की भक्ति को मानना चाहिए इस कारण से काम के उद्दीपक इस (पानक) की सेवा करो" इस प्रकार ऐसा उदार वचन कहकर शिवजी ने पार्वती को पान पिला दिया ॥७७॥

पार्वती तदुपयोगसंभवां विक्रियामपि सतां मनोहराम् ।
अप्रतर्क्यविधियोगनिर्मितानम्रतेव सहकारतां ययौ ॥७८॥

अन्वयः—पार्वती तदुपयोगसंभवां विक्रियाम् अपि सतां मनोहराम् नम्रताम् अप्रतर्क्यविधियोगनिर्मितां सहकारताम् इव ययौ ।

[संजी०—पार्वतीति ॥ पार्वती=कर्त्री । तदुपयोगसंभवां मद्यपानजन्यां विक्रियामपि सतां मनोहराम् आम्रताम्रत्वमप्रतर्क्यो दुर्ज्ञेयो यो विधियोगोऽनुष्ठातयोगस्तेन निर्मितां सहकारतामतिसौरभत्वमिव ययो=प्रापेत्यर्थः । 'आम्रश्चूतो रसालोसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । आम्रमेवाऽनुष्ठानविशेषेण यथा सहकारो भवति तद्वद्विक्रियाऽपि मनोहराऽभूदिति भावः ॥७८॥ अस्य श्लोकस्य व्याख्या नोपलब्धा]

हिन्दी—जैसे अतर्कनीय विधियोग से निर्मित नम्रभाव सहकारभाव को प्राप्त करता है उसी तरह पार्वती मद्य के उपयोग से विकार को भी मनोहर रूप में प्राप्त हुई ।

तत्क्षणं विपरिवर्तितह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः ।
सा बभूव वशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च ॥७९॥

अन्वयः—सुवदना तत्क्षणं विपरिवर्तितह्रियोः शयनं नेष्यतोः इद्धरागयोः शूलिनः मदस्य च वशर्तिनी बभूव ।

संजी०—तदिति ॥ सुवदना=पार्वती, तत्क्षणं=तथैव विपरिवर्तितह्रियोर्निवर्तितलज्जयोः, शयनं=तल्पं, नेऽयतोः=प्रापयिष्यतोरित्थं प्रवृद्धो रागोऽनुराग आरुण्यं च ययोरिद्धरागयोः शूलिनः प्रियतमस्य मदस्य चेति द्वयोर्वशे वर्तत इति वशवर्तिन्यधीना बभूव ॥७९॥

हिन्दी—सुमुखी (पार्वती) उसी समय लज्जा को दूर करने वाले, शयन को प्राप्त कराने वाले, अनुराग को बढ़ाने वाले शिवजी और मद्य के वश में रहने वाली हो गई ॥७९॥

मदपारवश्यं तावदाह—

घूर्णमाननयनं स्खलत्कथं स्वेदबिन्दुमदकारणस्मितम् ।
आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पपौ ॥८०॥

अन्वयः—ईश्वरो घूर्णमाननयनं स्खलत्कथं स्वेदबिन्दुमत् अकारणस्मितम् उमामुखं तावत् आननेन न पपौ चक्षुषा चिरं पपौ ।

संजी०—घूर्णमानेति ।। ईश्वरो घूर्णमाननयनं भ्रम्यन्नेत्रं स्खलत् कथं स्खलद्वचनं स्वेदबिन्दुमत्स्वेदयुक्तमकारणस्मितमाकस्मिकहासयुक्तमुमामुखं तावत् । आ तृष्णापगममित्यर्थः । आननेन मुखेन न पपौ । न चुचुम्बेत्यर्थः । किंतु चिरं चक्षुषा पपौ । तृष्णयाद्राक्षीदित्यर्थः । तस्या मदपारवश्यं दृष्ट्वा मुदं तावदन्वभूदित्यर्थः ।।८०।।

हिन्दी—शिवजी ने घूमते हुए नेत्रोंवाले, स्खलित वचनवाले, पसीने की बूदों से युक्त और विना कारण के हास्यवाले पार्वती के मुख को मुख से पान नही किया किन्तु तृष्णा से अधिक समय तक देखा ।।८०।।

संप्रति प्रियवशंवदत्वमाह—

तां विलम्बितपनीयमेखलामुद्वहञ्जघनभारदुर्वहाम् ।
ध्यान संभृतविभूतिसंभृतं प्राविशन्मणिशिलागृहं हरः ।।८१।।

अन्वयः—हरः विलम्बितपनीयमेखलां जघनभारदुर्वहां ताम् उहन् ध्यानसंभृतविभुतिः रंहः मणिशिलागृहं प्राविशत् ।

संजी०—तामिति ।। हरो विलम्बितपनीयमेखलां विस्रंसिहेमरसनां जघनभारेण दुर्वहां तां पार्वतीमुद्वहन्ध्यानसंभृतया संकल्पमात्रसिद्धयाविभूत्या भोगसाधनेन संभृतं=सम्पूर्णं मणिशिलागृहं प्राविशत् । रिरंसुरिति भावः।८१।

हिन्दी—शिवजी ने लटकी हुई सुवर्ण की करधनी वाली और जघन प्रदेश के से युक्त पार्वती को लेते हुए सङ्कल्पमात्र की सिद्धि से सम्पन्न रत्नशिला से निर्मित गृह में प्रवेश किया ।।८१।।

तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनम् ।
अध्यशेत शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः ।।८२।।

अन्वयः—रोहिणीपतिः शारदाऽभ्रम् इव तत्र हंसधवलोत्तरच्छदं जाह्नवीपुलिनचारुदर्शनं शयनं प्रियासखः सन् अध्यशेत ।

संजी०—तत्रेति । तत्र मणिभवने हंसवद्धवल उत्तरच्छदः प्रच्छदपटो यस्य तत्तथोक्तं जाह्नवीपुलिनमिव चारुदर्शनं शयनं शय्यां रोहिणीपतिश्चन्द्रः, शरदि भवं शारदमभ्रं मेघमिव । शरद्ग्रहणं धावल्यार्थम् । प्रिजसखः सन् । प्रियया सहेत्यर्थः अध्यशेत शयितवान् । "अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम् । रोहिणीग्रहणसामर्थ्यादिन्दोरप्यभ्रारोहणे रोहिणीसाहित्यमनुसंधेयम् ।।८२।।

हिन्दी--जैसे रोहिणी के प्रति चन्द्रमा शरत्काल के मेघ में शयन करते हैं वैसे ही शिव जी ने हंस के समान उज्जवल चादर वाले पलङ्ग पर प्रिया (पार्वती) के शाथ शयन किया ।।८२।।

क्लिष्टचन्द्रमदयैः कचग्रहैरुत्पथार्पितनखं समत्सरम् ।
तस्य तच्छिदुरमेखलागुणं पार्वतीरतमभूदतृप्तये ।।८३।।

अन्वयः—अदयैः कचग्रहैः क्लिष्टचन्द्रम् उत्पथाऽर्पितनखं समत्सरं छिदुरमेखलागुणं तत् पार्वतीरतं तस्य अतृप्तये अभूत् ।

संजी० –क्लिष्टेति । अदयैर्निर्दयैः कचग्रहैः=केशकर्षणैः क्लिष्टचन्द्रं पीडितहरचन्द्रमुत्पथमुन्मर्यादमर्पिता नखा यस्मिंस्तत्समत्सरमन्योन्यविजिगीषापूर्वकं छिदुराः स्वयमेव छिद्यमाना मेखलागुणा यस्मिस्तत्तथोक्तम् । 'विदिभिदिच्छिदेः कुरच्'' इति कुरचप्रत्ययः 'कर्मकर्तरि' इति काशिका । पार्वतीरतं तस्येश्वरस्यातृप्तयेऽभूत् तृप्तये नाभूदिति भावः ।।८३।।

हिन्दी—पार्वती के निर्दयता के साथ शिव जी के बालों को खींचने से उनके सिर पर स्थित चन्द्रमा भी पीडित हुए शिवजी के बिना मर्यादा के किए गये नखक्षत से युक्त और स्वयम् टूटने वाली मेखला की लड़ी से युक्त वैसा पार्वती का रमण शिवजी की तृप्ति के लिए पर्याप्त नहीं हुआ ।।८३।।

केवलं प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पङ्क्तिषु ।
तेन तत्परिगृहीतवक्षसा नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् ।।८४।।

अन्वयः—प्रियतमादयालुना केवलं तत्परिगृहीतवक्षसा तेन ज्योतिषां पङ्क्तिषु अवनतासु (सतीषु) नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् ।

संजी०—केवलमिति । प्रियतमादयालुना केवलम् । प्रियतमायां दययैव तस्येश्वरस्य सौकुमार्यादनवरतं सुरतासहिष्णुत्वात् । नतु स्वयं तृप्त्येत्यर्थः । तत्परिगृहीतवक्षसा तया पार्वत्याश्लिष्टवक्षसा तेनेश्वरेण ज्योतिष=नक्षत्राणां पङ्क्तिष्ववनतासु सतीषु । पश्चिमायामित्यर्थः । नेत्रमीलनकुतूहलं कृतम् । निद्रा स्वीकृतेत्यर्थः ।।८४।।

हिन्दी--केवल प्रियतमा (पार्वती) में दयालु पार्वती से आलिङ्गित वक्षःस्थलवाले शिवजी ने तारा की पंक्तियों के अवनत होने पर (रात के पिछले पहर में) आँखों के मूदने का कुतूहल (शयन) किया ।।८४।।

स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः शातकुम्भकमलाकरैः समम् ।
मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किंनरैरुषसि गीतमङ्गलः ।।८५।।

अन्वयः—बुधस्तवोचितः स उषसि मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किन्नरैः गीतमङ्गला (सन्) शातकुम्भकमलाकरैः समं व्यबुध्यत ।

संजी०—स इति । बुधस्तवोचितो विद्वत्स्तोत्रार्हः स हर उषसि प्रभाते । स्वराणामारोहक्रमो मूर्च्छना । 'क्रमयुक्ताः स्वरास्तत्र मच्छंना परिकीर्तिता' इति भरतः । तया मूर्च्छनया परिगृहीतकैशिकैः स्वीकृतरागविशेषैः किंनरैर्गीतमङ्गलः सन् । शातकुम्भकमलाकरैः समं कनकपद्माकरैः सह । 'तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्बुरम्' इत्यमरः । व्यबुध्यत विबुद्धवान् । बुध्यतेर्दैवादिकात्कर्तरि लङ् । अत्र बुध्यतेर्जागरविकासयोर्बोधयोः श्लेषनिमित्तकाभेदाध्यवसायमूला सहोक्तिरलंकारः ॥८५॥

हिन्दी—विद्वानों की स्तुति के योग्य शिव जी प्रातःकाल में मूर्च्छना से रागविशेष का स्वीकार करने वाले किन्नरों से मङ्गलगान किये जाने वाले होकर सुनहले कमलों के साथ प्रबुद्ध हुए (जग गये) ॥८५॥

तौ क्षणं शिथिलितोपगूहनौ दंपती चलितमानसोर्मयः ।
पद्मभेदनिपुणाः सिषेविरे गन्धमादनवनान्तमारुताः ॥८६॥

अन्वयः—शिथिलितोपगूहनौ दम्पती तौ रचितमानसोर्मयः पद्मबोधनिपुणाः गन्धमादनवनाऽन्तमारुतः क्षणं सिषेविरे ।

संजी०—ताविति । शिथिलितोपगूहनौ शिथिलितालिङ्गनौ । जाया च पतिश्च दंपती । जायाशब्दस्य दंभावो निपातितः । तौ शिवौ रचितमानसोर्मयः । मानसे सरसि रचिततरङ्गा इत्यर्थः । पद्मभेदनिपुणाः । पद्मभेदपिशुना इति यावत् । बिकाससूचका इत्यर्थः । गन्धमादनवनान्तमारुताः क्षणं सिषेविरे ॥८६॥

हिन्दी—आलिङ्गन को शिथिल करने वाले दम्पति पार्वती और शिवजी, मानस सरोवर में तरङ्गों की रचना करने वाली और कमलों के विकास में कुशल गन्धमादन पर्वत के वन के भीतर चलने वाली हवा से कुछ समय तक सेवित हुए ॥८६॥

ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः ।
वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत् ॥८७॥

अन्वयः—तत्क्षणम् ऊरुमूलनखमार्गराजिभिः हृतविलोचनः हरः प्रशिथिलस्य वाससः संयमं कुर्वतीं प्रियतमाम् अवारयत् ।

संजी०—ऊर्विति । तत्क्षणं मारुतवीजनसमय ऊरुमूले नखमार्गराजिभिर्नखपदपङ्क्तिभिः । मारुता प्रसारितवस्त्रतया प्रकाशिताभिरित्यर्थः । हृतविलोचन आकृष्टदृष्टिर्हरः प्रशिथिलस्य वाससः सयमं बन्धनं कुर्वतीं प्रियतमामवारसत् ॥८७॥

हिन्दी--उस समय ऊरु के मूल पर नखक्षत की पंक्तियों से आकृष्ट नेत्र वाले शिवजी ने शिथिल बन्धन वाले वस्त्र का संयम करती हुई प्रियतमा (पार्वती) को रोक दिया।

स प्रजागरकषायलोचनं गाढदन्तपदताडिताधरम्।
आकुलालकमरंस्त रागवान् प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम् ॥८८॥

अन्वयः--रागवान् स प्रजागरकषायलोचनं गाढदन्तपदताडिताऽधरम् आकुलाऽलकं भिन्नतिलकं प्रियामुखं प्रेक्ष्य अरंस्त।

संजी०--स इति। रागवान्रागी स हरः प्रजागरेण कषायलोचनं रक्तनेत्रं गाढैर्दन्तपदैर्दन्तक्षतैस्ताडिताधरमाकुलालकं भिन्नतिलकं प्रियामुखं प्रेक्ष्यारंस्तान्वरज्यत। तादृङ्मुखदर्शनमेव तस्योद्दीपकमित्यर्थः ॥८८॥

हिन्दी--अनुराग वाले शिवजी जगने से लाल नेत्रों वाले, गाढदन्तक्षत से ताडित अधर वाले, अस्तव्यस्त अलकों वाले तथा भिन्न तिलक वाले प्रिया पार्वती के मुख को देख कर अनुरक्त हो गये ॥८८॥

तेन भङ्गिविषमोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलम्।
निर्मलेऽपि शयनं निशात्यये नोज्झितं चरणरागलाञ्छितम् ॥८९॥

अन्वयः--निशात्यये अपि तेन भिन्नविषमोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलं (तथा) चरणरागलाञ्छितं शयनं न उज्झितम्।

संजी०--तेनेति। तेन हरेण भङ्गिभिर्भङ्गैर्विषमो निम्नोन्नत उत्तरच्छदः प्रच्छदपटो यस्मिंस्तत्। मध्ये पिण्डिता पुञ्जीकृता विसूत्रमेखला छिन्नरसना यस्मिंस्तत्तथोक्तं चरणयो रागेण लाक्षारागेण लाञ्छितं चिह्नितं शयनं निशात्यये प्रभाते निर्मलेऽपि सूर्योदये सत्यपीत्यर्थः। नोज्झितं न त्यक्तम्। अत्र देव्याः सकलसुरतोपचारसंपन्नत्वं पुरुषायितं सूच्यते ॥८९॥

हिन्दी--प्रातःकाल के निर्मल होने पर भी शिव जी ने ऊँच-नीच हुई चादरवाली, बीच में सूत्ररहित मेखला वाली तथा चरणों के महावर के रंग से चिह्नित शय्या को नहीं छोड़ा ॥८९॥

स प्रियामुखरसं दिवानिशं हर्षवृद्धिजननं सिषेविषुः।
दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदितः ॥९०॥

अन्वयः--हर्षवृद्धिजननं प्रियामुखरसं दिवानिशं सिसेविषुः (सन्) विजयानिवेदितः दर्शनप्रणयिनाम् अदृश्यताम् आजगाम।

संजी०--स इति। स हरो हर्षवृद्धिजननं सुखातिशयकारणं प्रियामुखरसं मदिरामृतं दिवा च निशि च दिवानिशम्। द्वन्द्वैकवद्भावः। सिषेविषुः सेवितुमिच्छुः सन्। विजयानाम्नी काचिद्देव्याः सखी तया निवेदितः। एत-

दर्थमागतेति ज्ञापितोऽपीत्यर्थः। दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम। दर्शनं न ददावित्यर्थः ॥९०॥

हिन्दी--अत्यन्त सुख देने वाले प्रिया के अधराऽमृत को दिन-रात पान के अभिलाषी शिवजी, विजया के निवेदन करने पर भी अपने दर्शन में प्रेम करने वाले जनों के लिए अदर्शनीय हो गये ॥९०॥

समदिवसनिशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभोः
शतमगमदृतूनां सार्धमेका निशेव।
न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव
ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतज्जलौघैः ॥९१॥

अन्वयः--समदिवसनिशीथं तत्र सङ्गिनः शम्भोः साग्रम् ऋतूनां शतम् एका निशा इव अगमत्। स समुद्राऽन्तर्गतः ज्वलन इन जलौघैः छिन्नतृष्णो न बभूव।

संजी०—समेति। निशीथोऽत्र निशामात्रलक्षकः। समदिवसनिशीथं तुल्याहर्निशं यथा तथा तत्र तस्यां पार्वत्यां सङ्गिन आसक्तस्य। रात्रिदिवं रममाणस्येत्यर्थः। शम्भोः शिवस्य सार्धमर्धेन सहितमृतूनां शतं पञ्चाशदुत्तरं मानुषमानेन पञ्चविंशतिवर्षाण्यगमत्। स शम्भुः समुद्रान्तर्गतः समुद्रस्यान्तर्वृत्तिर्ज्वलनो वडवाग्निरिव तज्जलौघैस्तस्य समुद्रस्य प्रवाहैरिव सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो निवृत्ताभिलाषी न बभूव। किन्तु चिरमवर्धतेत्यर्थः ॥९१॥

॥ इति श्रीमन्महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया
संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेतः श्रीकालिदासकृतौ
कुमारसंभवे महाकाव्ये उमासुरतवर्णनं
नामाष्टमः सर्गः ॥८॥

हिन्दी--दिन और रात को तुल्य रूप से पार्वती में आसक्त शिवजी का कुछ अधिक सौ ऋतुओं तक एक रात के समान बीत गये परन्तु शिवजी समुद्र के भीतर स्थित अग्नि (वाडवाग्नि) जैसे जलराशि से तृप्त नहीं होता है, उसी तरह कामतृष्णा से रहित नहीं हुए।

विमर्श—इस श्लोक में मालिनी छन्द है। लक्षण इस प्रकार हैं—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥९१॥

इस प्रकार श्री कालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के अष्टम सर्ग की
डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥८॥

श्लोकानुक्रमणिका